ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

गणदेवता

गणदेवता

बांग्ला से हिन्दी में अनूदित उपन्यास
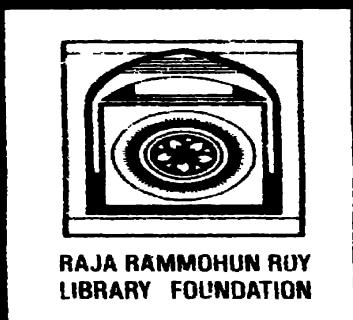
गणदेवता

('चण्डीमण्डप' और 'पंचग्राम')

ताराशंकर बन्द्योपाध्याय

अनुवाद
हंसकुमार तिवारी

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रस्तुति

दिल्ली में, 11 मई, 1967 को जब घोषणा हुई कि भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित साहित्य-पुरस्कार योजना के अन्तर्गत गठित प्रवर परिषद् ने श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय की कृति 'गणदेवता' को सन् 1925 से 1959 के बीच प्रकाशित समूचे भारतीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माना है और एक लाख रुपये के पुरस्कार से सम्मानित किया है, तो जहाँ देश के साहित्यकारों को इस बात से प्रसन्नता हुई कि श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय निःसन्देह पुरस्कार के अधिकारी हैं, वहाँ बांग्ला साहित्य से सामान्य परिचय रखनेवालों को इस बात से कौतूहल हुआ कि तारा बाबू की जिन कृतियों को बांग्ला साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों के रूप में अन्य माध्यमों द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है उनमें 'गणदेवता' का नाम क्यों नहीं? और, इस सर्वोच्च अखिल भारतीय पुरस्कार के लिए 'गणदेवता' श्रेष्ठतम के रूप में कैसे चुना गया?

श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय के समूचे कृतित्व का पुनर्मूल्यांकन करने के उपरान्त अब प्रायः सभी सहमत हैं कि 'गणदेवता' का चुनाव पुरस्कार की अखिल भारतीय भूमिका के सर्वथा अनुरूप ही हुआ है। इस निर्वाचन का श्रेय मुख्यतः बांग्ला भाषा परामर्श समिति के सदस्यों को है जिन्होंने प्रवर परिषद् के विचारार्थ 'गणदेवता' की संस्तुति की। 'गणदेवता' का यह हिन्दी संस्करण बांग्ला में प्रकाशित कृति से इस दृष्टि से विशेष है कि बांग्ला में 'गणदेवता' के शीर्षक से समूचा उपन्यास एक जिल्द में अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। बांग्ला में यह कृति दो पुस्तकों के रूप में प्रकाशित है : 'गणदेवता' और 'पंचग्राम', यद्यपि 'पंचग्राम' में 'गणदेवता' की कथा अग्रसारित है।

भारतीय साहित्य में श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय की प्रतिष्ठा का चरम बिन्दु यह है कि वह बंकिमचन्द्र, शरतचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शृंखला में आते हैं। तारा बाबू की साहित्यिक उपलब्धि अमर है। उनका मार्ग अपना निजी है, साधना अन्तःप्रेरित, और जीवन-दृष्टि स्वयं-प्राप्त। शरतचन्द्र मध्यवित्त भद्रलोकों की संवेदना के संवाहक थे। उनका उद्देश्य था समाज को वह दृष्टि देना जो पतितों और चरित्रहीनों के उदात्त मानवीय पक्ष को उद्घाटित करे। तारा बाबू ने साहित्य की अछूती और दुर्गम पगडण्डियों पर साहस के साथ पग रखे हैं। उन्होंने जिस शहरी

और देहाती मध्यवित्त समाज को चित्रित किया है, वह उनका अपना सहवर्ती समाज है—उनके अपने जमाने की समस्याओं से ग्रस्त, अपने युग से प्रभावित और अपने युग का निर्माण करता हुआ, नयी लीकें डालता हुआ तथा पुरानी लीकों को पालने में टूटता हुआ।

तारा बाबू की कृतियों में जीवन के अनेक आयाम अदले-बदले हैं। वह पहुँचे हैं समाज के अछूते अंचलों में, निम्नवर्गों में, सुख-दुःख के ठोस संघर्ष में, दानवी-मानवी और दैवी प्रकृति के आदिम लोक में। जो उन्होंने देखा, वाष्पाकुल नेत्रों से नहीं, कल्पना-भावनाओं के उद्दाम वेगों से बहते हुए नहीं, प्रकृतिस्थ होकर, यथार्थ को स्वीकृति देकर, परम्परा के श्रेय को मान देकर, नये के प्रेम को अपनत्व देकर।

'गणदेवता' भारतीय नवजागरण काल का महाकाव्य है। इसमें जीवन के सांस्कृतिक पक्ष की परम्परा और नये प्रभावों का केन्द्र है 'चण्डीमण्डप'—माँ काली की पूजास्थली। और, जीवन के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन, विघटन, पुनर्गठन की कथा का आधार है 'पंचग्राम'—मनु की व्यवस्था के अनुसार पाँच ग्रामों की इकाई, जो सामाजिक जीवन के सभी पक्षों और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन उपलब्ध करती है। महाकाव्य की-सी भूमिका के अनुरूप ही 'गणदेवता' की कथा का उदय और विस्तार हुआ है, जिसमें पुरानी सामाजिक अर्थव्यवस्था का विघटन, नयी उद्योग-व्यवस्था की स्थापना और इस उलटफेर में जीवन-मूल्यों की नयी तुला पर असाधारण व्यक्तियों का साधारणीकरण, जो फिर भी अपने चरित्र की महत्ता में असाधारण रहते हैं। इसी पृष्ठभूमि में देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष और बलिदान की कथा, अत्याचारों और अत्याचारियों से टक्कर लेने का दुर्दम साहस—बड़े विलक्षण और मार्मिक चरित्र अवतरित हैं सब।

साधारण और असाधारण की क्रिया-प्रतिक्रिया, एक ही मानव के उदात्त और अनुदात्त पक्षों का यथार्थ चित्रण—और सर्वोपरि, जीवनसत्य के अनुसन्धान का प्रमाणीकृत प्रतिफल इस सबके परिप्रेक्ष्य में 'गणदेवता' असन्दिग्ध रूप से उच्चकोटि के सर्जनात्मक कृतित्व से अलंकृत है।

मूल बांग्ला में 'गणदेवता' सर्वप्रथम 1942 में प्रकाशित हुआ था। तब से कई संस्करण इसके हो चुके हैं। उपन्यास का कथानक, इसके चरित्र, उनकी समस्या-भावनाएँ, और उनके आवेग-संवेग नितान्त स्वाभाविकता के साथ इस मूलभूत वास्तविकता को रेखांकित करते हैं कि सर्जनात्मक साहित्यिक रचना, यों देश के किसी भाग से सम्बद्ध हो, वह समूचे देश को प्रतिबिम्बित करती है। देश की अन्तरात्मा यथार्थतः अविभाज्य है, भले ही वह अभिव्यक्ति देश की अनेक भाषाओं में से किसी एक में ग्रहण करे। और यही तो भारतीय ज्ञानपीठ की मूल दृष्टि है और उसके द्वारा प्रवर्तित इस पुरस्कार की प्रेरणा-भावना।

'गणदेवता' के इस हिन्दी रूपान्तर का प्रकाशन-उद्‌घाटन प्रथम बार 15 दिसम्बर 1967 को पुरस्कार समर्पण-समारोह के अवसर पर हुआ था। उससे एक वर्ष पहले जब महाकवि जी. शंकर कुरुप को पुरस्कार समर्पित किया गया था उस अवसर पर भारतीय ज्ञानपीठ ने पुरस्कृत कृति 'ओटक्कुषल' का हिन्दी अनुवाद 'बाँसुरी' शीर्षक से प्रस्तुत किया था। इन प्रकाशनों ने भारतीय ज्ञानपीठ की 'राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला' को एक नया गौरव दिया है।

यह अनुवाद श्री हंसकुमार तिवारी ने प्रस्तुत किया है। बांग्ला के देहाती मुहावरे को यथार्थ हिन्दी पर्याय देने में वह विशेष रूप से कुशल हैं, क्योंकि देहाती जीवन से वह सम्पृक्त रहे हैं। अनुवाद में हिन्दी के बँधे-बँधाये गठन से हटकर यदि कुछ विचित्र-सा लगे तो उसे अनुवादक द्वारा मूल की भंगिमा को व्यक्त करने का प्रयोग माना जाए।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

(तीसरा संस्करण, 1970 से)

दो शब्द

'गणदेवता' उपन्यास वर्ष 1966 के भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुआ है। भारतीय ज्ञानपीठ के प्रयत्न से ही इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है।

'गणदेवता' का प्रकाशन सर्वप्रथम सन् 1942 में हुआ था जिसके प्रथम खण्ड का नाम है 'गणदेवता' (चण्डीमण्डप)। इसका दूसरा खण्ड 'पंचग्राम' सन् 1944 में प्रकाशित हुआ। वास्तव में इन दोनों खण्डों को मिलाकर ही एक सम्पूर्ण रचना बनती है। इस प्रकार 'चण्डीमण्डप' और 'पंचग्राम', इन दो खण्डों का संयुक्त नाम 'गणदेवता' है। बांग्ला में दोनों खण्ड दो पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हैं। भारतीय ज्ञानपीठ ने इन दोनों को एकत्र कर 'गणदेवता' नाम से हिन्दी में प्रकाशित किया है।

'गणदेवता' का रचना-काल 1941-42 है। इस समय भारतवर्ष परोक्ष में युद्धाक्रान्त था और प्रत्यक्ष में विदेशी शासन की शृंखलाओं से मुक्ति के लिए संघर्षरत। यही वेदना उसके अन्तःकरण को क्षत-विक्षत किये थी। उसी उत्ताप और ज्वाला के कुछ चिह्न इस उपन्यास में भी आ गये हैं, ऐसा मैं सोचता हूँ।

'गणदेवता' बंगाल के ग्राम्यजीवन पर आधारित एक ग्रामभित्तिक उपन्यास है। कृषि पर निर्भरशील ग्राम्यजीवन की शताब्दियों की सामाजिक परम्परा किस प्रकार पाश्चात्य औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप यन्त्र-सभ्यता के संघात से धीरे-धीरे अस्त-व्यस्त होने लगी थी, यही इस उपन्यास में दिखाया गया है। कृषि-निर्भर ग्राम्यजीवन जिन सामाजिक परम्पराओं पर टिका हुआ था उनका रूप सम्भवतया संसार के कृषि-निर्भर, यन्त्र-सभ्यता से अछूते ग्राम्यजीवन में सर्वत्र एक ही है। किन्तु 'पंजाब-सिन्ध-गुजरात-मराठा-द्राविड़-उत्कल-बंग' को अपने में समेटे इस विशाल देश भारत की सामाजिक परम्परा के साथ एक और तत्त्व भी गुम्फित था जिसे अनुशासन कहा जा सकता है। यह अनुशासन नीति का अनुसरण करता है, और न्याय और अन्याय के बोध को लेकर सदा स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से जीवन में सब कहीं, सब क्षेत्रों में, किसी-न-किसी प्रकार अपने को प्रयुक्त करना चाहता है। सम्पूर्ण सामाजिक परम्परा की आधार-भूमि यह बोध ही था। इस बोध के परिणामस्वरूप प्राकृतिक

विभिन्नता के रहते भी आभ्यन्तरिक तथा बाह्य जीवन में सारे भारत के ग्राम्यजीवन को एक आश्चर्यमयी एकता की वाणी प्राप्त होती है।

इसीलिए, बंगाल के ग्राम्यजीवन का जो चित्र इस उपन्यास का आधार है वह केवल बंगाल का होने पर भी उसमें सम्पूर्ण भारत के ग्राम्यजीवन का न्यूनाधिक प्रतिबिम्ब मिलेगा। बंगाल के गाँव का खेतिहर-महाजन श्रीहरि घोष, संघर्षरत आदर्शवादी युवक देबू घोष, अथवा जीविकाहीन-भूमिहीन अनिरुद्ध लुहार केवल बंगाल के ही निवासी नहीं हैं; इनमें भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम—सब दिशाओं के भिन्न-भिन्न राज्यों के ग्रामीण मनुष्यों का चेहरा खोजने पर प्रतिबिम्बित मिल जाएगा। बंगाल के श्रीहरि, देबू या अनिरुद्ध ने दूसरे प्रान्तों में जाकर सिर्फ़ नाम ही बदला है, पेशे और चरित्र में वे लोग भिन्न नहीं हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ, उसकी अध्यक्षा माननीया श्रीमती रमा जैन, तथा मन्त्री श्रीयुत् लक्ष्मीचन्द्र जैन को मैं इस पुस्तक का आग्रह और यत्न से प्रकाशन करने के लिए धन्यवाद अर्पित करता हूँ तथा प्रतिष्ठित अनुवादक श्री हंसकुमार तिवारी को भी अनुवाद-कार्य के लिए धन्यवाद देता हूँ।

—ताराशंकर बन्द्योपाध्याय

25 जुलाई, 1967
टाला पार्क, कलकत्ता-2

गणदेवता : खण्ड एक

चण्डीमण्डप

एक

कारण मामूली-सा था। मामूली-से ही कारण से एक विपर्यय हो गया। बस्ती के लुहार अनिरुद्ध कर्मकार और बढ़ई गिरीश सूत्रधर ने नदी के उस पार बाजार में अपनी-अपनी दूकान कर ली थी। तड़के ही उठकर चल दिया करते और लौटते रात के दस बजे। लिहाजा गाँववालों की असुविधाओं का अन्त नहीं था। इस बार खेती के समय उन्हें क्या-क्या मुसीबतें उठानी पड़ीं, यह वही जानते हैं। हल का फाल पजाने और पहियों में हाल बँधवाने के लिए खेतिहरों की कठिनाई की पूछिए मत। गिरीश बढ़ई के यहाँ पिछले फागुन-चैत से ही गाँववालों के बबूल के कुन्दों का ढेर लगा पड़ा था; लेकिन आज तक उन्हें नये हल नहीं मिले।

इसी बात को लेकर अनिरुद्ध और गिरीश के खिलाफ लोगों के असन्तोष की सीमा नहीं थी। लेकिन खेती के समय इसके लिए पर-पंचायत करने की फुरसत किसी को नहीं मिली। जरूरत का तकाजा था, लिहाजा मीठी बातों से ही उनसे काम निकाला गया; रात रहते ही अनिरुद्ध के दरवाजे पर जा बैठे और उसे रोक-टोककर लोगों ने अपना-अपना काम करा लिया; ज्यादा जरूरी हुआ तो फाल लिये, हाल और गाड़ी का पहिया लुढ़काते हुए लोग उसके पास बाजार तक भी दौड़े। चार मील का फासला—मगर अकेले मयूराक्षी नदी ही बीस कोस के बराबर थी। बरसात में नाव से पार करने में पूरा डेढ़ घण्टा लग जाता है। सूखे समय में गाड़ी के पहिये को बालू पर इतनी दूर तक ठेलते हुए ले जाना आसान काम न था। थोड़ा घूमकर जाने से नदी पर रेल का पुल है, मगर लाइन के पासवाला रास्ता इतना ऊँचा और सँकरा है कि पहिये को लुढ़काकर ले जाना मुश्किल है।

खेती का समय निकल गया। फसल पक गयी। अब हँसिया चाहिए। लोहा-इस्पात लेकर लुहार ही सदा हँसिया बना दिया करता था, पुराने हँसिये पर धार चढ़ा दिया करता; बढ़ई लगा दिया करता था मूठ। मगर लुहार-बढ़ई दोनों की एक ही रफ्तार थी। जो किसी तरह अनिरुद्ध के यहाँ से पार हो गया, वह गिरीश के

यहाँ झूलता रहा। सो हार-पार कर गाँववालों ने पंचायत बुलायी। एक नहीं, आस-पास के दो गाँवों के लोग जुटे और एक खास दिन अनिरुद्ध तथा गिरीश को हाजिर होने की खबर भिजवायी। पंचायत गाँव के शिव-थान के सार्वजनिक चण्डीमण्डप में बैठी। चण्डीमण्डप में मयूरेश्वर शिव हैं; पास ही है ग्रामदेवी माता भग्नकाली की वेदी। काली-मन्दिर जितनी भी बार बना, टूट-टूट गया। इसीलिए काली का नाम पड़ा भग्नकाली। चण्डीमण्डप भी बहुत ही पुराना है। उसके छप्पर की ठाट को मानो अजर-अमर करने के लिए हाथी-सूँड़, बड़दल, तीरसंगा—सब प्रकार की लकड़ियों से बनवाया गया था। नीचे की जमीन भी सनातन नियम से माटी की थी। इसी चण्डीमण्डप में दरी-चटाई बिछाकर पंचायत बैठी।

गिरीश और अनिरुद्ध भी आये आखिर। दोनों समय पर पहुँचे। बैठक में दो गाँवों के जाने-माने लोग जमा हुए थे। हरीश मण्डल, भवेश पाल, मुकुन्द घोष, कीर्तिवास मण्डल, नटवर पाल—ये सबके सब वजनी लोग थे, गाँव के मातबर सद्गोप। पड़ोस की बस्ती के द्वारका चौधरी भी आये थे। ये एक विशिष्ट और प्रवीण व्यक्ति थे, इलाके में इनका अच्छा मान था। आचार-व्यवहार और सूझ-बूझ के लिए सबकी श्रद्धा के पात्र थे। आज भी लोग कहा करते—आखिर हैं कैसे खानदान के, यह भी तो देखना है! चौधरी के पुरखे कभी इन दोनों गाँवों के जमींदार थे : आज अवश्य ये एक सम्पन्न किसान ही गिने जाते हैं। दूकानदार वृन्दावन पाल—वह भी सम्पन्न आदमी। मध्यवित्त अवस्था का कम उम्र का खेतिहर गोपेन पाल, राखाल मण्डल, रामनारायण घोष—ये सब भी हाजिर हुए थे। इस बस्ती का एकमात्र ब्राह्मण बाशिन्दा हरेन्द्र घोषाल, उस बस्ती का निशि मुखर्जी, पियारी बनर्जी—ये सब भी एक ओर बैठे थे।

मजलिस के लगभग बीच में जमकर बैठा था छिरू पाल—यह जगह उसने खुद ली थी आकर। छिरू यानी श्रीहरि पाल ही इस बस्ती का नया धनी था। इस हलके में जो गिने-चुने धनी हैं, दौलत में छिरू उनमें से किसी से भी कम नहीं—ऐसा ही अनुमान था लोगों का। बड़ा-सा चेहरा, स्वभाव से अलग और बड़ा ही खूँखार आदमी। दौलत के लिए जो सम्मान समाज किसी को देता है, वह सम्मान ठीक उसी कारण से छिरू का नहीं था। अभद्र, क्रोधी, गँवार, दुश्चरित्र, धनी छिरू पाल को लोग मन-ही-मन घृणा करते; बाहर से डरते हुए भी धन के अनुरूप सम्मान उसका कोई नहीं करता। छिरू को इस बात का क्षोभ था कि लोग उसका सम्मान नहीं करते, इसलिए वह सब पर खीझा रहता। वह जबरन यह सम्मान पाने के लिए कमर कसे तैयार रहता। इसलिए जब भी ऐसी कोई सामाजिक बैठक होती, वह बैठक के ठीक बीच में जमकर बैठ जाता।

एक और मजबूत लम्बा-तगड़ा साँवला-सा युवक निरा निःस्पृह-सा एक ओर खम्भे से लगकर खड़ा था। यह था देवनाथ घोष—इसी बस्ती के सद्गोप खेतिहर

का बेटा। अवश्य देवनाथ खुद खेती नहीं करता, वह स्थानीय यूनियन बोर्ड के फ्री प्राइमरी स्कूल का अध्यापक था। आने की वैसी इच्छा न रहते हुए भी वह आया था, उसे पता था कि अनिरुद्ध का यह जो अन्याय है, उस अन्याय की जड़ कहाँ है। उसकी यह निःस्पृहता इसीलिए थी कि जिस बैठक में छिरू पाल-जैसा आदमी माला के मनका-जैसा प्रधान बन बैठा हो, उस बैठक पर उसे आस्था नहीं। इसीलिए वह मौन उपेक्षा से एक ओर खम्भे से सटकर खड़ा था। बैठक में आये नहीं थे तो केवल दो जने : उस गाँव के कृपण महाजन स्वर्गीय राखोहरी चक्रवर्ती का दत्तक पुत्र हेलाराम चटर्जी और गाँव का डॉक्टर जगन्नाथ घोष। गाँव का चौकीदार भूपाल लुहार भी मौजूद था। आस-पास गाँव के बच्चे शोर-गुल कर रहे थे; एकबारगी एक किनारे गाँव के हरिजन किसान भी खड़े थे। गाँव के मजदूर खेतिहर दरअसल यही लोग हैं, असुविधाओं का प्रायः बारह आना तो इन्हीं को भोगना पड़ता।

अनिरुद्ध और गिरीश आकर मजलिस में बैठे। साफ-सुथरे, फिट-फाट। शहरी फैशन की स्पष्ट छाप। दोनों सिगरेट पीते आ रहे थे। सभा से कुछ दूर उधर ही सिगरेट फेंक दोनों आकर बैठ गये।

बात की शुरुआत अनिरुद्ध ने की। बैठते ही एक बार चेहरे को अच्छी तरह से हाथ से पोंछ लिया और कहा, "जी हाँ। तो क्या कहना है, कहिए। हम लोग मेहनत-मशक्कत करके रोजी चलाते हैं। आज की यह वेला हमारी नाहक मारी गयी।"

उसके कहने के ढंग और सुर से सब लोग जरा चकित हो उठे। प्रवीणों ने खँखारकर अपना-अपना गला साफ कर लिया। कम उम्रवालों में एक आग-सी उठी। छिरू उर्फ श्रीहरि बोल उठा, "मारी गयी समझते हो तो आने की ही क्या जरूरत थी?"

बोलने के लिए हरेन्द्र घोषाल अकबक कर रहा था; उसने कहा, "तो बिगड़ा क्या है, चाहो तो जा सकते हो तुम लोग। कोई पकड़कर तो लाया नहीं, बाँधकर भी नहीं रखा है।"

अब हरीश मण्डल ने कहा, "तुम लोग चुप रहो। सुनो, जब बुलाहट हुई तो आना तो पड़ेगा ही। तुम लोग आये हो, अच्छी बात है, बहुत अच्छा किया है। अब दोनों तरफ से बात होगी। हमें जो कहना है हम कहेंगे—जवाब जो देना हो तुम लोग दोगे। फिर विचार होगा। ऐसी जल्दी करने से कैसे चलेगा?"

गिरीश बोला, "मतलब, कि बात हम लोगों के ही बारे में है," अनिरुद्ध ने कहा, "हम लोगों ने अन्दाज लगाया था। खैर, क्या कहना है आप लोगों को, कहिए। हम अपना जवाब देंगे। लेकिन एक बात है, आप सब लोग जब एक हो गये हैं तो इसका विचार कौन करेगा? नालिश जब आपको करनी है, तब आप कैसे विचार करेंगे, हम यह नहीं समझ पा रहे हैं।"

द्वारका चौधरी एकाएक गला साफ करने के लिए जोर से खाँस उठा—यह उसके बोलने का पूर्वाभास था। उस आवाज से सब चौधरी की तरफ देखने लगे। चौधरी के चेहरे और भंगिमा में खासियत थी। गोरा रंग, धपधप सफेद मूँछ—बैठक में वह विशिष्ट-सा होकर बैठा था। अब उसने जबान खोली, "सुनो अनिरुद्ध, कुछ खयाल मत करना भैया, मैं एक बात कहूँ। शुरू से ही तुम लोगों की बातचीत के ढंग से लगता है कि तुम लोग विवाद करने के लिए तैयार होकर आये हो। मगर यह तो अच्छी बात नहीं भैया। बैठो, स्थिर होकर बैठो।"

अनिरुद्ध ने गरदन झुकाकर विनय के साथ कहा, "ठीक है, कहिए।"

हरीश मण्डल ने ही शुरू किया। कहा, "सुनो भैया, खोलकर सब कहूँ तो पूरा महाभारत सुनना होगा। संक्षेप में ही कहूँ, तुम दोनों ने शहर में अपना कारोबार शुरू किया है। ठीक ही किया है। जहाँ दो पैसे मिलेंगे, आदमी वहीं जाएगा। सो जाओ। लेकिन यहाँ एकबारगी सब समेट लो और हम कन्धे पर सामान उठाये नदी पार करके यह दो कोस रास्ता दौड़ा करें, यह तो नहीं होने का भैया। इस बार तुम दोनों ने क्या गत वनायी है हमारी, खुद ही सोच देखो जरा।"

अनिरुद्ध बोला, "जी हाँ असुविधा तो कुछ जरूर हुई है आप लोगों को।"

छिरू यानी श्रीहरि पाल गरज उठा—"कुछ? कुछ क्या कहते हो? पता है, खेत में पानी रहते हुए भी चूँकि फाल नहीं पजाया जा सका इसलिए खेती बन्द करनी पड़ी है! आखिर जमीन तो तुम्हारी भी है, एक बार खेत का चक्कर काटकर देख तो आओ जरा कि किस तरह पटपटी घास उग आयी है! अच्छे फाल की कमी से जोतते वक्त एक भी जड़ नहीं उखड़ी घास की। वक्त पर बोरा लिये धान के लिए हाजिर हो जाओगे और जरूरत के समय शहर में जाकर बैठ रहोगे—ऐसा करने से कैसे चलेगा?"

हरेन्द्र ने तुरत हामी भरी—"बिलकुल वाजिब।"

सारी मजलिस लगभग एक स्वर में बोल उठी—"बिलकुल।"

अनिरुद्ध अब जरा सप्रतिभ हो सम्भलकर बैठा और बोला, "यही शिकायत है न आप लोगों को? अब हमारी सुनिए। मैं आप सबका फाल पजा देता हूँ, पहियों में हाल चढ़ाता हूँ, हँसिया में धार कर देता हूँ, बदले में आप हल पीछे मुझे कच्ची पाँच सोली[1] धान देते हैं। गिरीश सूत्रधर..."

छिरू पाल ने टोका, "गिरीश से तुम्हें क्या मतलब?"

लेकिन छिरू अपनी बात पूरी नहीं कर सका। द्वारका चौधरी ने कहा, "श्रीहरि, अनिरुद्ध ने कुछ वेजा नहीं कहा। बात उन दोनों की एक ही है। कोई एक ही कहे तो कोई हर्ज नहीं।"

---

1. एक सोली अर्थात् वीस सेर।

छिरू चुप हो गया। अनिरुद्ध ने थोड़ा भरोसा पाकर कहा, "चौधरीजी के रहे बिना क्या मजलिस की शोभा होती है! वाजिब बात कहे कौन?"

"तुम जो कह रहे थे, कहो अनिरुद्ध!"

"जी! मुझे यानी लुहार को हल पीछे पाँच सोली, और बढ़ई को हल पीछे चार सोली धान मिलता है। हम इसी पर आज तक काम भी करते आये हैं। लेकिन आपसे बता दूँ, अपना पावना हम प्रायः पाते नहीं हैं।"

"नहीं पाते हो?"

"जी नहीं।"

गिरीश ने भी कहा, "जी नहीं। प्रायः सभी लोग कुछ-न-कुछ बाकी रख लेते हैं। कहते हैं, बाद में ले जाना, या कि अगले साल ले लेना। और वह बाकी हमें फिर कभी नहीं मिलता।"

छिरू साँप-जैसा फुफकार उठा—"नहीं मिलता? किसने नहीं दिया है, सुनूँ जरा? केवल कह देने से नहीं होगा। नाम बताना पड़ेगा। कहो किसके यहाँ बाकी है?"

मारे गुस्से के बिजली की तेजी से गरदन घुमा श्रीहरि की ओर ताककर अनिरुद्ध ने कहा, "किसके यहाँ? नाम बताना पड़ेगा। ठीक है, तुम्हारे यहाँ बाकी है।"

"मेरे यहाँ?"

"जी हाँ, तुम्हारे यहाँ। दो साल से दिया है धान तुमने?"

"और मैंने जो तुम्हें हैण्डनोट पर रुपया दिया है। उसमें कै रुपया चुकाया है तुमने, कहो तो? मैंने नहीं दिया है—भरी सभा में इतनी बड़ी बात कह दी!"

"लेकिन उसका कुछ हिसाब-किताब तो होगा आखिर। धान की कीमत की उसपर वसूली तो लिखनी होगी कि नहीं? आप ही कहें चौधरीजी, मण्डलजी वगैरह भी तो हैं, कहें।"

चौधरी ने कहा, "सुनो। चुप रहो जरा। भैया श्रीहरि, हैण्डनोट की पीठ पर वसूली लिख देना! और सुनो अनिरुद्ध, किन-किनके पास तुम लोगों का बाकी है, उसकी एक फिहरिस्त बनाकर हरीश मण्डलजी को दे दो। बैठक में इसके लिए शोर करना ठीक नहीं। वही लोग तुम्हारा बकाया वसूल करा देंगे। और सुनो, गाँव में भी काम-काज का कुछ सिलसिला रखो। जैसे काम-काज किया करते थे, किया करो।"

बैठक के सभी लोगों ने इस बात पर हामी भरी। लेकिन अनिरुद्ध और गिरीश चुप रहे। हाव-भाव से भी हाँ-ना का कोई लक्षण नहीं प्रकट किया।

अब देवनाथ ने जबान खोली। बूढ़े चौधरी का यह फैसला उसे अच्छा लगा। उसे अनिरुद्ध और गिरीश के बकाये की बात मालूम थी, इसलिए पहले उसे लगा

कि पंचायत उन दोनों पर जुल्म कर रही है। वरना वह गाँव की समाज-शृंखला को कायम रखने का हिमायती है। खास कर चौधरी ने छिरू-जैसे आदमी के अन्याय का विचार करके जो व्यवस्था फैसले में की, उससे देबू खुश हुआ। उसे लगा कि अनिरुद्ध और गिरीश को अब झुकना चाहिए। बोला, "अनिरुद्ध भैया, अब तो तुम्हें आपत्ति नहीं करनी चाहिए।"

चौधरी ने पूछा, "अनिरुद्ध?"

"जी।"

"क्या कहते हो, कहो?"

अनिरुद्ध ने हाथ जोड़कर कहा, "जी, हमें तो आप लोग माफ ही करें। हम लोगों से अब नहीं बनता।"

बैठक में असन्तोष की हलचल हुई।

"क्यों?"

"न हो सकने की वजह?"

"नहीं बनता कहने से कैसे चल सकता है?"

"ठट्ठा है?"

"आखिर बस्ती में बसते नहीं हो क्या?"

चौधरी ने अपना लम्बा हाथ उठाकर इशारा किया—"खामोश, खामोश!"

हरीश ने खीजकर कहा, "अरे, तुम छोकरे चुप तो रहो। हम लोग अभी मरे नहीं हैं।"

हरेन्द्र घोपाल नौजवान है। मैट्रिक पास। वह जोर से चिल्ला उठा, "ऐ लो! साइलेन्स-साइलेन्स!"

अन्त में द्वारका चौधरी उठ खड़ा हुआ। उसके उठने का लाभ हुआ। चौधरी ने कहा, "हो-हल्ला से तो कुछ होने-हवाने का नहीं। ठीक तो है, अनिरुद्ध बताये कि उससे क्यों नहीं बनेगा। उसे कहने तो दो।"

सब चुप हो गये। चौधरी बैठ गया और बोला, "अनिरुद्ध, केवल 'नहीं बनेगा' कहने से तो काम नहीं चलेगा भैया। क्यों नहीं बनेगा, यह बताओ। पीढ़ियों से तुम करते आये हो। आज ना कहने से गाँव की क्या व्यवस्था होगी?"

देवनाथ बोला, "यह अनिरुद्ध और गिरीश का अन्याय है, महा अन्याय!"

हरीश ने कहा, "तुम्हारे पुरखे महाग्राम के बाशिन्दे थे। इस गाँव में लुहार नहीं था, इसलिए तुम्हारे दादा को यहाँ लाकर बसाया गया—यह तो तुमने भी सुना है। अब ना कहने से कैसे चल सकता है?"

अनिरुद्ध बोला, "मण्डल चाचा, तो सुनिए। और आप विचार कीजिए चौधरीजी। सोच देखिए कि इस गाँव में पहले कितना हल था। कितने घरों का हल उठ गया, यह देखिए। यों समझिए कि गदाई, श्रीनिवास, महेन्द्र—मैंने लेखा लगाकर

देखा है—मेरे देखते-देखते ग्यारह हल यहाँ के उठ गये। जमीन जा रही कंकना के बाबुओं के पास। कंकना में अलग से लुहार है। हम लोगों को उन ग्यारह घरों का पावना अब नहीं मिलता। फिर यह सोचिए कि खेती के दिनों तो हम हल-फ़ाल का, गाड़ी का काम करते थे। और समय गाँव में घर-द्वार बनता था। हम काँटी-कब्जा बनाते थे, कुदाल-कुल्हाड़ी गढ़ देते थे—गाँववाले हमसे खरीदा करते थे। अब ये सब चीजें गाँववाले बाजार से लेते हैं। चूँकि सस्ती मिलती हैं, इसलिए लेते हैं। यह गिरीश गाड़ी बनाता था, किवाड़ बनाता था। छप्पर की ठाट बनाने के लिए लोग इसी को बुलाते थे। अब बाहर से सस्ता मिस्त्री बुलाकर काम कराया जाता है। तिस पर यह भी सोचिए कि धान सवा-डेढ़ रुपया मन है और दूसरी चीज़ें महँगी हैं। आप ही कहिए, ऐसे में एक इसी के भरोसे हम पड़े रहें, तो कैसे चले? जब घर-गिरस्ती बसायी है, तो लोगों के मुँह में दो दाने तो देने ही पड़ेंगे। और फिर आजकल का हालचाल वैसा नहीं..."

छिरू अब तक मन-ही-मन खीज रहा था। मौका मिलते ही बीच में टोक दिया, "बेशक, आजकल पॉलिश किये हुए जूते चाहिए, लम्बा कुरता, सिगरेट चाहिए; स्त्री के लिए शेमीज, बॉडिस्—"

"देखो छिरू, तुम जरा हिसाब से बातें करो—" अनिरुद्ध ने इस बार तीखे में प्रतिवाद किया।

छिरू ने दो-एक बार हिल-डुलकर कहा, "हिसाब मेरा किया-कराया है रे! पचीस रुपये नौ आने तीन पैसे। मूल दस रुपये, सूद पन्द्रह रुपये नौ आने तीन पैसे। जी चाहे तो खुद जोड़कर देख ले। शुभंकरी जानता है न?"

यह हिसाब हैण्डनोट के बकाये का था। अनिरुद्ध कुछ क्षण ठक-सा रहा, फिर बैठक के सभी लोगों को एक बार ताककर देखा। सभा के सभी लोग इस आकस्मिक अप्रत्याशित रूढ़ व्यवहार से स्तब्ध हो गये थे। अनिरुद्ध उठ खड़ा हुआ।

छिरू डपट उठा, "जा कहाँ रहे हो?"

अनिरुद्ध ने इसकी परवा न की। चला गया।

चौधरी ने इतनी देर के बाद कहा, "श्रीहरि!"

छिरू बोला, "आप मुझे आँखें मत दिखाइए चौधरीजी! आपने मुझे दो-तीन बार रोक दिया है, मैं चुप हो गया हूँ। लेकिन अब मैं बरदाश्त नहीं करूँगा।"

चौधरी ने अपनी चादर कन्धे पर रखी और बाँस की लाठी उठाकर खड़ा हुआ। कहा, "तो मैं चलता हूँ। ब्राह्मणों को प्रणाम—आप सबको नमस्कार।"

इतने में बस्ती का पातूलाल मोची हाथ जोड़े आगे बढ़ आया। बोला, "चौधरीजी, जरा मेरा इन्साफ कर देना होगा।"

बैठक से बाहर निकल आने का उपक्रम करते हुए चौधरी ने कहा, "ये सभी लोग हैं, अपनी इनसे कहो भैया?"

"चौधरीजी!"

चौधरी ने देखा अनिरुद्ध लौट आया है।

"आपको जरा देर रुकना होगा चौधरीजी! छिरू पाल के रुपये मैं ले आया हूँ—आप लोगों को अपने सामने मेरा हैण्डनोट वापस दिला देना होगा।"

बैठक में मौजूद सभी लोगों ने चौधरीजी को रुकने का आग्रह किया। लेकिन उसने नहीं ही माना, धीरे-धीरे सभा से बाहर हो गया।

अनिरुद्ध ने पंचायत के सामने पचीस रुपये दस आने रख दिये। कहा, "छिरू पाल, मेरा हैण्डनोट ला दो।"

और जब हैण्डनोट वापस मिल गया, तो कहा, "बाकी एक पैसा लौटाने की जरूरत नहीं। पान खा लेना उसका! आओ भैया गिरीश, चलें।"

हरीश ने कहा, "अरे, तुम लोग तो चल दिये! जिनके लिए पंचायत बुलाई गयी—"

अनिरुद्ध ने कहा, "जी! हम लोगों से अब काम न होगा। जवाब देता हूँ। और, जो पंचायत छिरू पाल पर शासन नहीं कर सकती, उस पंचायत को हम नहीं मानते।"

वे दोनों तेजी से निकल गये। बैठक टूट गयी।

दूसरे ही दिन सुबह खबर मिली, अनिरुद्ध के दो बीघे खेत का कुल अधपका धान किसी ने या किन्हीं लोगों ने काटकर गायब कर दिया है!

दो

उजड़े खेत की मेड़ पर खड़े होकर अनिरुद्ध ने थिर आँखों जरा देर देखा। निष्फल क्रोध से अपनी लोहा पीटनेवाली हथेलियों को मुट्ठी बाँधकर उसने शिकंजे-जैसा सख्त कर लिया। बड़ी ही तेजी से घर लौटा और अपने अधबँहिया कुरते को खींचकर पहनते हुए दरवाजे की तरफ बढ़ा।

अनिरुद्ध की पत्नी का नाम है पद्ममणि—कद की लम्बी, जवान और काली। नुकीली नाक, खिंची हुई बड़ी-बड़ी आँखें। उसे रूप चाहे न हो, श्री है। शरीर में काफी क्षमता। चक्का उगने से डूबने तक काम करती। और वैसी ही पैनी सांसारिक बुद्धिवाली। अनिरुद्ध को इस ढंग से बाहर जाते देख वह उससे भी तेजी से चलकर आगे जा खड़ी हुई। बोली, "जा कहाँ रहे हो?"

अनिरुद्ध ने सख्त निगाहों ताककर कहा, "तू क्यों पीछे लग गयी! कहीं जा रहा हूँ, तुझे क्या मतलब?"

हँसकर पद्म ने कहा, "पीछे कहाँ लगी हूँ, सामने आकर खड़ी हुई हूँ। खोजपूछ से मतलब मुझे है। तुम मारपीट करने के लिए नहीं जा सकते।"

अनिरुद्ध ने कहा, "मारपीट करने नहीं जा रहा हूँ, थाने पर जा रहा हूँ। रास्ता छोड़ दे।"

"थाना?..." पद्म की आवाज में उद्वेग झलका।

"हाँ, थाना। साला छिरू के नाम डायरी लिखवाऊँगा।"

गुस्से से अनिरुद्ध की आवाज री-री कर रही थी। पद्म ने थिर भाव से गरदन हिलाकर कहा, "नहीं। बात सही ही है, फिर भी छिरू मण्डल ने तुम्हारा धान चुराया है—इस बात पर इस इलाके में कौन यकीन करेगा?"

लेकिन अनिरुद्ध की दशा उस समय ऐसी सलाह सुनने-जैसी न थी। वह पद्म को ठेलकर हटाते हुए निकल जाना चाहने लगा।

अनिरुद्ध का अनुमान बिलकुल सही था। धान श्रीहरि पाल ने ही काट लिया था।

लेकिन जो कुछ पद्म ने कहा, वह भी कठोर सत्य था। धनी को चोर साबित करना सहज काम नहीं, श्रीहरि धनी है।

इस इलाके में पास-पास तीन गाँव हैं—कालीपुर, शिवपुर और कंकना। तीनों में छिरू पाल के धन की बड़ी शोहरत है। सरकारी सरिश्ते में कालीपुर और शिवपुर दो अलग-अलग गाँव के हिसाब से जमींदारों के अधीन अलग मौजे जरूर हैं, मगर कार्यतः दोनों एक ही गाँव हैं। महज एक तालाब के इस पार—उस पार। श्रीहरि इसी कालीपुर में रहता है। इन दोनों गाँवों में श्रीहरि के बराबर का दूसरा आदमी नहीं। शिवपुर में हेला चटर्जी के पास रुपया और अनाज काफी है मगर लोग कहते, श्रीहरि के पास सोने की इंट हैं—रुपयों की तो बात ही क्या! कोस-भर के फासले पर कंकना है; यह अवश्य बहुत समृद्ध गाँव है। वहाँ के मुखर्जी लोगों के पास लाखों-लाख रुपये हैं। इलाके के लगभग सभी गाँव उन्हीं के पेट में समा गये। महाजन से धीरे-धीरे वे प्रतापी बलशाली जमींदार होते जा रहे थे। शिवपुर और कालीपुर भी धीरे-धीरे उनके ग्रास के खिंचाव से साँप-सी लपलपाती जीभ की ओर बढ़ते जा रहे थे। लेकिन श्रीहरि पाल की धाक वहाँ भी है। मयूराक्षी नदी के उस पार आधे शहर-सा बाजार है—रेल का जंक्शन। यहाँ बहुतेरे अमीर मारवाड़ियों की गद्दियाँ हैं, चावल की दस-बारह मिलें, तेल-कल दो-एक, आटे की एक चक्की। श्रीहरि को वहाँ के सभी लोग 'घोष बाबू' कहा करते। इस इलाके का थाना उसी जंक्शन शहर में है।

पद्म का कहना गलत न था—कंकना या जंक्शन शहर का कोई भी इस बात

पर विश्वास नहीं करेगा। लेकिन शिव-कालीपुर का कोई भी इस बात पर अविश्वास नहीं करता कि छिरू बड़ा भयंकर आदमी है। संसार में ऐसा कोई काम ही नहीं, जो वह नहीं कर सकता। अनिरुद्ध का धान काट लेना महज उससे बदला चुकाना ही नहीं है, बल्कि चोरी भी उसका अन्यतम उद्देश्य है—यह भी शिव-कालीपुर के बूढ़े-बच्चे विश्वास करते हैं। लेकिन खुलकर यह बात कहने की हिम्मत किसी में न थी।

विशाल था शरीर श्रीहरि का—मोटा नहीं। मेदशैथिल्य जरा भी नहीं। बाँस-जैसी मोटी थी हाथ-पाँव की हड्डी और उसपर चढ़ी सख्त पेशियाँ। दो प्रकाण्ड पंजे, विशाल माथा, बड़ी-बड़ी आँखें, कान तक फैला हुआ मुँह, घुँघराले बाल। ऐसा विशाल शरीर होते हुए भी वह बिना आवाज के तेज चल सकता था। दूसरे की बँसबिट्टी का बाँस रातों-रात काटकर अपने पोखरे में डाल लेता। काटने में आवाज न हो इसलिए आरी से बाँस काटता। फेंका-जाल डालकर पराये पोखर की मछलियाँ पकड़कर अपना तालाब भर लेता। अपने घर की दीवार को हर साल बरसात में खुद कुदाल चलाकर गिरा देता और नयी दीवार उठाते वक्त दूसरे की थोड़ी-सी जमीन या रास्ता दबा लेता। उससे ज्यादा कुछ बोलचाल कोई नहीं करता, लेकिन किसी खास आदमी की जमीन दबा लेता तो प्रतिवाद किये विना उपाय नहीं था। ऐसे में छिरू कुदाल तानकर डट जाता। बिना दाँतवाले मुँह से जाने क्या बोलता कि समझ में नहीं आता। लगता कि कोई पशु गरज रहा है। महज चवालीस साल की उम्र में ही उसके दाँत जाते रहे, यौन-व्याधि से सारे दाँत गिर गये। हरिजनों के टोले में जब सारी मरद सूरतें शराब के नशे में चूर होतीं, तो वह दबे पाँवों वहाँ शिकार की टोह में पैठता। बहुत बार लोगों ने उसका पीछा किया, मगर वह निशाचर हिंसक पशु-सा दौड़ लगाता गायब हो जाता। यह रहा श्रीहरि घोष उर्फ छिरू पाल या छिरू मण्डल।

अनिरुद्ध छिरू को खूब पहचानता था, फिर भी पत्नी की बात का विचार करना तो दूर उसे ठेलकर हटाते हुए बाहर रास्ते पर उतर पड़ा। पद्म बुद्धिमती थी। उसने न तो गुस्सा किया, न मान। फिर आवाज दी, "अजी ओ, सुनो-सुनो, लौटो।" खूब धीमे से हँसकर कहा, "पीछे से रोक रही हूँ, सुनो!"

अबकी छेड़े हुए गेहुँअन-सा अनिरुद्ध बिगड़कर पलटा।

पद्म ने हँसकर कहा, "थोड़ा-सा पानी पी लो, तब जाओ।" लौटकर अनिरुद्ध ने जोर से उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया—"और टोकेगी पीछे से?"

पद्म का माथा झनझना उठा। लोहा पीटनेवाला हाथ अनिरुद्ध का—वह चोट वड़ी कठिन थी। 'बाप रे' कहते हुए हथेली से मुँह ढँककर पद्म बैठ गयी।

अब अनिरुद्ध अप्रतिभ हो गया। साथ ही उसे जरा डर भी लगा। जहाँ-तहाँ तमाचा पड़ जाने से तो लोग मर भी जाते हैं! घबराकर उसने आवाज दी, "पद्म, पद्म... बहू!"

पद्म का शरीर थरथर काँप रहा था, वह फफक-फफककर रो रही थी।

अनिरुद्ध बोला, "यह ले बाबा, ले; कुरता उतार देता हूँ, अब थाना नहीं जाऊँगा। उठ! रो मत... ऐ पद्म!" मुँह ढँके उसके हाथ को खींचते हुए कहा, "पद्म!" पद्म ने मुँह पर से हाथ हटा लिए और खिलखिलाकर हँस पड़ी। मुँह ढँककर वह रो नहीं रही थी, चुपचाप हँस रही थी। पद्म में गजब की ताकत थी और फिर अनिरुद्ध का तमाचा-मुक्का खाने की आदी भी हो चुकी थी। एक तमाचे से क्या होना था उसका!

लेकिन अनिरुद्ध के पौरुष को शायद चोट लगी—वह गुम-सुम हो गया। पद्म थोड़ा-सा गुड़ और एक बहुत बड़े कटोरे में फरवी तथा एक लोटा पानी लाकर रखती हुई बोली, "छिरू मण्डल को मुजरिम बनाकर तुम जो इजहार करोगे, गाँव का कौन आदमी तुम्हारी तरफ से गवाही देगा, कहो तो? कल से तो गाँव के सारे लोग तुम्हारे खिलाफ हो गये हैं।"

कल शाम के बाद फिर बैठक बैठी थी। 'पंचायत को हम नहीं मानते'—अनिरुद्ध का यह कहना लोगों को खल गया था। अनिरुद्ध और गिरीश के खिलाफ जमींदार के पास नालिश करने की बात तय हो गयी थी।

यह बात अनिरुद्ध को याद आयी, मगर फिर भी मन नहीं माना।

तीन

खूब अच्छी तरह से चिलम चढ़ाकर हुक्के का पानी बदलकर पद्म पति का खाना खत्म होने की राह देख रही थी। अनिरुद्ध का भोजन समाप्त होते ही हाथ धुलाकर उसने उसे हुक्का थमा दिया और कहा, "पियो।" अनिरुद्ध ने मजे मे दम लगाया। नाक-मुँह से गलगलाकर धुआँ निकाला तो पद्म बोली, "गुस्सा अब कुछ शान्त हुआ हो तो मेरी बात को जरा सोच देखो!"

"गुस्सा?"—अनिरुद्ध ने नजर उठाकर देखा, उसके दोनों होंठ थर-थर काँप रहे थे– "मेरा यह गुस्सा भुस की आग है, जनम-भर नहीं बुझेगी। दो बीघा खेत का धान..."

अपनी बात वह पूरी न कर सका। पद्म की बड़ी-बड़ी आँखें भी तब तक घुटे आँसुओं से डबडबा आयी थीं। देखते-ही-देखते टप-टप दो-एक बूँद आँसू टपक पड़े।

अनिरुद्ध ने कहा, "रो क्यों रही है तू? दो बीघा जमीन का धान गया, जाने दे। अरे बाबा मैं तो हूँ! फिर देख तो जरा, मैं करता क्या हूँ!"

आँखें पोंछते हुए पद्म ने कहा, "मगर थाना-पुलिस मत करना, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ मैं। वे ऐसे लोग हैं कि साँप होकर काटते हैं और ओझा बनकर झाड़ते भी हैं। मेरे मैके में डकैती हुई। बाबूजी ने एक को पहचान लिया। मगर पुलिस ने उसे छुआ तक नहीं गोकि बाबूजी के मुट्ठी-मुट्ठी रुपये खर्च हो गये। घर-भर की परेशानी। कभी दारोगा आता तो कभी निसपिट्टर, तो कभी साहब—और देते रहो इजहार! उसके बाद कुछ लोगों को पकड़ा, उनकी शनाख्त के लिए औरतों तक को जेहल की दौड़-धूप। इसके सिवा गाली-गलौज, भला-बुरा तो है ही।"

"हुँ।"—चिन्तित-सा हुक्के में कई दम लगाकर अनिरुद्ध ने कहा, "मगर इसका कोई किनारा तो करना ही होगा। आज दो बीघे का धान ही ले गया, कल तालाब की मछलियाँ मार लेगा, परसों घर में—"

"अरे अन्नी भाई हो?"—अनिरुद्ध की बात खत्म होने के पहले ही गिरीश पुकारते हुए अन्दर आ गया। आधा घूँघट खींचकर जूठे बरतन उठा पद्म घाट की ओर चली गयी।

एक लम्बा निःश्वास फेंकते हुए अनिरुद्ध ने कहा, "दो बीघे का धान बिलकुल काट लिया, एक बाल तक नहीं बचा!"

गिरीश ने भी लम्बा निःश्वास छोड़कर कहा, "हाँ सुना।"

"थाने में रपट लिखवाने की सोची, मगर बहू मना कर रही है। कहती है, लोग इस बात पर विश्वास क्यों करने लगे कि छिरू पाल ने ही चोरी की है। मेरी ओर से गाँव का कोई गवाही भी न देगा।"

"हाँ। कल शाम शायद फिर चण्डीमण्डप में बैठक हुई थी। हम लोगों ने गाँववालों का क्या अपमान किया है? जमींदार के पास नालिश करेंगे लोग।"

होंठ का हिस्सा टेढ़ा करके अनिरुद्ध बोल उठा, "अरे जा, जमींदार... ठिठुआ करेगा जमींदार मेरा!"

गिरीश को बात जँची नहीं। उसने कहा, "मगर हम यही क्यों कहें? जमींदार के भी तो विचार हैं, वही फैसला करें न!"

अनिरुद्ध ने बार-बार गरदन हिलाकर अस्वीकार करते हुए कहा, "उहुँ, खाक इन्साफ करेगा! खुद जमींदार ने ही तीन साल से धान नहीं दिया है। तुम नहीं जानते, देखना वह उन्हीं लोगों की हाँ-में-हाँ मिलाएगा।"

उदास-सा हो गिरीश बोला, "मुझे चार साल से नहीं मिला।"

अनिरुद्ध ने कहा, "देखो भैया, जब मुँह खोलकर मैंने कह दिया कि नहीं करूँगा, तो अब मेरा मरा बाप आकर भी मुझसे नहीं करा सकता। अब मेरे नसीब में चाहे जो भी लिखा हो! रही बात तुम्हारी, तुम ठीक से सोच लो अभी भी।"

गिरीश बोला, "इसके लिए तुम निश्चिन्त रहो। जब तक तुम नहीं मेटमाट करते, मैं भी नहीं करूँगा।"

खुश होकर अनिरुद्ध ने चिलम उसके हाथ में दी। उँगलियों की भाँज में चिलम रखकर कश लगाते हुए गिरीश ने कहा, "इधर झमेला भी आखिरी हो गया है! हम दोनों ही नहीं हैं केवल! इन्साफ करे तो जमींदार? कितनों का करेगा! नाई, धोबी, दाई, चौकीदार, घाट का मल्लाह, बैहार जोतनेवाला—सब अकड़ बैठे हैं, उतने धान पर हम काम नहीं कर सकेंगे। तारा नाई तो आज ही घर के सामने अर्जुन पेड़ के नीचे ईंट डालकर बैठ गया है—पैसा ले आ, हजामत बनवा।"

चिलम झाड़कर नये सिरे से तम्बाकू भरते हुए अनिरुद्ध ने कहा, "अच्छा! पैसे खोलो गाँठ से, खोआ खाओ। हम तुम्हारे बिराने थोड़े ही हैं।"

गिरीश की बातचीत में पण्डिताई दिखाने का खास ढंग रहता है। आदत हो गयी है उसकी। वह बोला, "यह बात हुई। पहले का समय कुछ और था। सस्ते का जमाना था, उस समय धान पर काम करके चल जाता था। हम करते थे। अब अगर न चलता हो..."

बाहर रास्ते पर साइकिल की टुनटुन घण्टी बजी। और साथ-ही-साथ आवाज आयी—"अनिरुद्ध!"

डॉक्टर जगन्नाथ घोष।

अनिरुद्ध और गिरीश दोनों जने बाहर निकले। नाटे कद का मोटा-मोटा आदमी—बाबरी बाल। वह साइकिल पकड़े खड़ा था।

डॉक्टरी उसने कहीं से पढ़-सुनकर नहीं पास की थी। चिकित्सा-विद्या उसकी पुश्तैनी थी—तीन पुश्त से। दादा कविराज थे, बाप और चाचा कविराज और डॉक्टर दोनों थे। जगन्नाथ सिर्फ डॉक्टर था; हाँ, कभी-कभी दो-एक मुष्टियोग का प्रयोग करता था। उससे झटपट लाभ भी होता था। गाँव के सभी लोग उसे दिखाया करते, मगर पैसा जल्दी कोई नहीं देता। डॉक्टर को इसपर ज्यादा एतराज नहीं। बुलाते ही जाता, उधार पर उधार देता। दूसरे गाँवों में भी शुरू से उसका नाम-यश था, सो उसी आमदनी से गुजारा चलता। कभी साग-भात और कभी, जिसे कहते हैं, एक अन्न पचास व्यंजन! जब जैसी आमदनी। कभी घोष लोग धनवान और प्रतिष्ठित थे। धनियों के गाँव कंकना में भी उनका खासा सम्मान था, किन्तु कंकना के ही लखपती मुखर्जी परिवार का हजार का ऋण धीरे-धीरे चार हजार हो गया और घोषों की सारी जायदाद हड़प बैठा। जायदाद और तब के सम्मानित बूढ़ों के गुजर जाने से उनकी मान-मर्यादा भी चली गयी। जगन्नाथ के लाख इलाज और दवा की मदद करने पर भी वह मर्यादा नहीं लौटी। वह किसी की रियायत नहीं करता—ऊँचे गले से कड़ी भाषा में कहता—सबके सब चोर हैं—जानवर। कुछ छिपकर नहीं, सामने ही कहता। लोगों की छोटी-सी भूल का भी वह बड़ा कठोर प्रतिवाद करता।

अनिरुद्ध और गिरीश के बाहर निकलते ही डॉक्टर ने बिना किसी भूमिका के कहा, "थाने में डायरी लिखा दी?"

अनिरुद्ध ने कहा, "जी, वही तो...!"

"वही तो क्या? जा, डायरी लिखा आ।"

"जी, सभी मना कर रहे हैं। कहते हैं, छिरू पाल ने चोरी की है, भला इस बात पर कौन विश्वास करेगा?"

"क्यों? उस साले के पास रुपया है इसलिए?"

"वही तो सोच रहा हूँ, डॉक्टर बाबू!"

तीखे व्यंग्य की हँसी हँसकर जगन्नाथ ने कहा, "फिर तो इस दुनिया में जिसके पास रुपया है, वही साधु है और सारे गरीब बेचारे असाधु हैं, क्यों? किसने कही यह बात?"

अनिरुद्ध चुप रह गया। घर के अन्दर बरतनों की खन-खन हो रही थी। पद्म लौट आयी थी, सब सुन रही थी। जवाब गिरीश ने दिया, "डायरी लिखाकर भी क्या होगा डॉक्टर बाबू, वह रुपया देकर तुरत दरोगा का मुँह बन्द कर देगा। और, थाने के जमादार से छिरू की खूब पटती भी है। साथ ही पीते-खाते हैं। और..."

डॉक्टर बोला, "मालूम है मुझे। लेकिन दरोगा रुपया लेगा तो उसके ऊपर भी तो कोई है। बाप का भी बाप। दरोगा घूस ले तो पुलिस-साहब है, मजिस्ट्रेट है, उससे ऊपर कमिश्नर है, फिर छोटा लाट, छोटे लाट पर बड़ा लाट।"

अनिरुद्ध ने कहा, "सो तो है डॉक्टर बाबू, लेकिन घर की औरत को इजहार-फिजहार करना पड़ेगा, मैं उस हंगामे की सोच रहा हूँ।"

"औरत का इजहार?" डॉक्टर अचरज में पड़ गया। "खेत से धान की चोरी हुई है, इसमें औरत को क्यों इजहार देना पड़ेगा? किसने कहा तुमसे? अन्धेर नगरी है क्या?"

अनिरुद्ध तुरत खड़ा हो गया—"तो ठीक है, मैं अभी ही जा रहा हूँ।"

साइकिल पर सवार होकर डॉक्टर ने कहा, "तू बेफिक्र जा। मैं शाम को आऊँगा। यह मत कहना कि चोरी करने के लिए धान काट लिया है। कहना कि गुस्से में मेरा नुकसान करने के लिए चोरी की है।"

अनिरुद्ध फिर घर में अन्दर नहीं गया कि कहीं पद्म फिर न बाधा दे। वह डॉक्टर की साइकिल के साथ-साथ ही चलने लगा। गिरीश से बोला, "भई गिरीश, जरा लुहारखाने की कुंजी तो माँग लाओ।"

जंक्शन शहर की दूकान की कुंजी गिरीश को अन्दर जाकर माँगने की जरूरत नहीं पड़ी। दरवाजे की आड़ से आकर कुंजी झन्न से उसके सामने गिर पड़ी। गिरीश झुककर उसे उठाने लगा। पद्म ने दरवाजे के पास से झाँककर देखा कि डॉक्टर और

अनिरुद्ध काफी दूर निकल गये हैं। आधा घूँघट काढ़कर वह सामने आकर बोली, "जरा पुकारो तो उन्हें।"

नजर उठाकर एक बार उसे और एक बार अनिरुद्ध की ओर देखकर गिरीश बोला, "पीछे से पुकारने पर वह बिगड़ उठेगा।"

"सो तो उठेगा। लेकिन भात? भात कौन ले जाएगा? आज क्या खाना-दाना नहीं होगा?"

होता यह है कि गिरीश और अनिरुद्ध सवेरे ही उस पार चले जाते हैं, जाने के पहले ही उनकी रसोई बन जाती है और जाते समय वह साथ ले जाते हैं। उसी खाने पर उनका दिन कटता है। गिरीश ने कहा, "मुझे दे दो। मैं ही लेता जाऊँगा।"

घर में पद्म अकेली ही है। दो साल पहले, सास के मरने के बाद से ही, तमाम दिन उसे अकेले बिताना पड़ता है। खुद वह बाँझ है। गाँवों में ऐसी हालत में एक मजे का काम रहता है--टाले में घूमना। लेकिन पद्म का स्वभाव है मकड़ी-जैसा। दिन-भर वह अपनी गृहस्थी का ही जाल बुनती रहती है। धान-उड़द धूप में डालती है और उठाती है, मिट्टी और चुनी हुई ईटों से चोतरा बनाती है, राख से मले हुए बरतनों का मैल पोंछती है, सर्दी की बिस्तर-कंथरी को नये सिरे से तहियाती है। इसके सिवा दैनन्दिन काम--गुहाल साफ करना, चारा काटना, उपले पाथना--तीन-चार बार घर बुहारना तो है ही।

आज उसे कोई काम करने की इच्छा न हुई। वह पिछवाड़े के घाट पर जाकर पाँव पसारकर बैठ गयी। अनिरुद्ध को जो थाना जाने से मना किया, हँसते हुए मजाक करके उसे शान्त करने की कोशिश की, वह महज इसलिए कि आगे अशान्ति न हो। मगर दो बीघा खेत के धान के लिए भी उसके दुःख की सीमा नहीं थी। वह खुद भी मन-ही-मन छिरू पाल को भला-बुरा कहने लगी--"अन्धे होंगे, अन्धे होंगे वे, हाथ में कोढ़ फूटेगा, सत्यनाश हो जाएगा--भीख माँगकर पेट पालेंगे..."

अचानक कहीं जोरों का शोरगुल होता सुनाई पड़ा। पद्म ने कान लगाकर सुना। लगा, गोलमाल मोची-टोले में हो रहा है। कोई बड़े ही तेज स्वर में भद्दी गालियाँ देते हुए चिल्ला रहा है। पद्म को मानो उसी की छूत लग गयी। उसने भी जोर-जोर से मुहल्ले-भर को जताते हुए गाली-शाप देना शुरू कर दिया।

--"दो-दो बेटे छटपटाकर मरेंगे एक ही बिस्तर पर, एक साथ। मेरे धान के चावल से हैजा होगा। निरबंस होंगे, निरबंस। आप मरेंगे नहीं, अन्धे होंगे, दोनों आँखें फूटेंगी, हाथों में कोढ़ फूटेगा। जो कुछ है सब चला जाएगा, उड़ जाएगा। गली-गली भीख माँगते फिरेंगे..."

वह छिरू पाल का नाम ले-लेकर गाली-शाप दे रही थी। एकाएक उसकी नजर पड़ी, पिछवाड़े के पोखरे के उस पार खड़ा छिरू पाल हँसते हुए उसकी गालियों का मजा ले रहा है। छिरू भी पातू मोची को मार-पीटकर अभी ही लौटा था। मोची-टोले का वह हो-हल्ला उसी के विक्रम का नतीजा था। वहीं से लौटते हुए वह अनिरुद्ध की स्त्री का गाली-गलौज सुनकर खड़ा-खड़ा हँस रहा था। उस हँसी में क्रूर प्रवृत्ति की प्रेरणा या ताड़ना भी थी। उसे देखकर पद्म घर के अन्दर चली गयी। छिरू के मन में आया कि उछलकर उसके घर में ही घुस जाए। लेकिन दिन की रोशनी का बड़ा डर था उसे, धड़कते कलेजे से उसे दुविधा हो रही थी। अचानक पद्म की आवाज सुन उसने फिर से पलटकर देखा, लेकिन जाने किस चीज की चमकती चौंध-सी उसकी आँखों में आयी और उसने आँखें फेर लीं।

"हुँः! धार जाँचने के लिए एक चोट में दो बकरे काटकर मेरा काम बढ़ा गये हैं वीर-बहादुर! लहू का दाग तक न धोया और रख दिया। अब मैं झामे से रगड़-रगड़कर धोती रहूँ।"

पद्म के हाथ में एक दाव था, जो धूप से झकमका रहा था। उसी की छटा से छिरू पाल ने आँखें फेर ली थीं। वह झट घर की ओर चल पड़ा। पद्म के चेहरे पर कौतुक की हँसी फूट उठी।

चार

गाँव से निकलते ही पंचग्राम की विशाल बैहार। छह मील लम्बी, चार मील चौड़ी। कंकना, कुसुमपुर, महाग्राम, शिवकालीपुर और देखुड़िया का सिमाना। बैहार के दक्खिन-पूरब-पश्चिम बहती है मयूराक्षी नदी। उसके तट की यह बैहार गजब की उपजाऊ है। उसमें भी शिवकालीपुर के सिमाने की जमीन शायद सबसे ज्यादा। उतने ही हिस्से का नाम है अमरकुण्डा बैहार। शिवपुर की जमीन का परिमाण इधर बहुत कम है, वहाँ की ज्यादा जमीन उत्तर की तरफ है। कालीपुर के खेत ज्यादातर गाँव के दक्खिन और पूरब में ही हैं। शिव-कालीपुर नाम के ही दो गाँव हैं, इन दोनों के बीच महज एक तालाब का व्यवधान है। गाँव कालीपुर ही बड़ा है, उसी में लोगों की संख्या ज्यादा है। श्रीहरि, देबू आदि सभी वहीं रहते हैं।

शिवपुर गाँव बहुत पहले एक छोटा-सा टोला था। तब, यानी आज से लगभग

अस्सी-नब्बे साल पहले, वहाँ एक विचित्र वर्ग के लोग बसते थे। अपने को वे लोग 'देवलचाषी' कहते थे। वे लोग स्वयं खेती नहीं करते थे। शिवकालीपुर के बूढ़े शिव की सेवा-पूजा का भार उन्हीं पर था। अब उस वर्ग का कोई भी नहीं रह गया है। ज्यादातर लोग मर-हिरा गये। यहाँ से पाँचेक कोस दूर के रक्षेश्वर और आठ कोस के फासले पर जलेश्वर गाँव में उसी नाम के दो शिव हैं जिनके सेवारत पण्डा के रूप में अपनी जातिगोष्ठी के लोगों के साथ वे रह रहे हैं। चूँकि शिव के भक्त देवलों की आबादी थी, इसलिए टोले का नाम शिवपुर था। उनके चले जाने के बाद कालीपुर के चौधरियों ने गाँव के जमींदारी हकूक खरीद लिए और शिवपुर में ही आ बसे। भाई-बन्द और प्रजा से दूर रहने के लिए ही उन्होंने यह बन्दोबस्त किया था। चौधरी लोगों ने ही शिवपुर को एक अलग मौजा बनाया था। उन लोगों की अवनति से फिर शिवपुर बुझ-सा आया है।

कहते हैं—उत्तर-पश्चिमवाले बैहार में लक्ष्मी नहीं बसती। गॉव के दक्खिन-पूरब के जिस हिस्से में खेती होती है, उसपर शायद उसकी अपार दया है। कम-से-कम बड़े-बूढ़े तो यही कहते हैं। उत्तर और पश्चिम की बैहार गाँव से ऊँची है। ज्यादातर दक्खिन और पूरब की ओर वह ढालवाँ ही होती चली गयी है। लिहाजा जो खेत दक्खिन-पूरब की तरफ हैं, गाँव का सारा पानी उन्हीं में गिरता है। गाँव-धुले पानी की उपजाऊ शक्ति काफी होती है। इसके सिवा गाँव के पोखरों के पानी की भी सोलहों आना सुविधा मिलती है। यही कारण है कि शिवपुर और कालीपुर दोनों गाँवों के पास-पास होने के बावजूद दोनों की जमीन के मूल्य और महत्त्व में बड़ा फर्क है। इसीलिए कालीपुर के लोगों का गुमान शिवपुर के लोग बहुत बरदाश्त करते हैं। शिवपुर के चौधरी लोग कभी उनके जमींदार थे; उस समय कालीपुर को शिवपुर का मालिकाना सहना पड़ा है। आज कालीपुर को जो अहंकार है, बहुत हद तक वह इसकी भी प्रतिक्रिया है।

द्वारका चौधरी उसी खानदान का है। चौधरी लोगों की समृद्धि बहुत पहले की बात है। द्वारका चौधरी के एक पुश्त पहले ही सम्मान-समृद्धि का भण्डार रीत चुका। चौधरी को आभिजात्य का कोई भान भी नहीं। वे बातें अब वह भूल चुका है। इस इलाके के खेतिहरों से वह समानता के भाव से मिलता-जुलता है। साथ बैठकर तम्बाखू पीता है, सुख-दुःख की बातें करता है। लेकिन चौधरी की बातचीत के ढंग और सुर में कुछ स्वतन्त्रता है। चौधरी बोलता बहुत कम है और जो भी बोलता है, वह—बहुत धीमे और धीरज से। कोई प्रतिवाद करता तो चौधरी फिर उसका प्रतिवाद नहीं करता। कभी प्रतिवादी की बात संक्षेप में मान भी लेता, कभी चुप लगा जाता और कभी कल की तरह सभा से उठकर चला आता। मतलब कि अपने अवस्थान्तर में चौधरी शान्त भाव से ही जीवन बिताता आ रहा है।

बूढ़ा द्वारका चौधरी सवेरे ही छाता लगाये, हाथ में बाँस की लाठी लिये

कालीपुर के दक्खिन की बैहार के खेतों में रबी-फसल की जुगत देखने को निकला था। कालीपुर की जमींदारी का हकूक न होते हुए भी मोटी जोंत अभी तक थी। कालीपुर के दक्खिन में ही है अमरकुण्डा बैहार। यहाँ की फसल कभी मरती नहीं—सूखा नहीं पड़ता कभी। बैहार के ऊपर झरनों के दो बड़े कुण्ड हैं। एक गहरे साफ-सुथरे कुण्ड से नाले की राह लगातार पानी बहता रहता है। कुण्ड सदा लबालब भरा रहता है। कभी नहीं सूखता। अमरकुण्डा बैहार के माथे के ये दोनों कुण्ड मानो धरती माता की छाती से बहनेवाली दूध की धारा हों। पानी की कमी होने पर बाँध बाँधकर लोग जिधर चाहते हैं, पानी ले जाते हैं।

अगहन आते ही हेमन्ती धान पकने लगा, हरा रंग पीला होने लगा। अमरकुण्डा बैहार के एक छोर से दूसरे तक, नदी के किनारे तक, धान के हरे-पीले मिले-जुले रंग की बिखरी हुई अपूर्व शोभा। धान के प्राचुर्य से खेतों की मेड़ तक नहीं दिखाई देती कहीं। केवल झरने के दोनों ओर के टेढ़े-मेढ़े बाँध के ऊपर ताड़ के पेड़ आँकी-बाँकी पाँत में आसमान की ओर सिर उठाये खड़े रहते हैं। हेमन्त की सुनहली धूप से बैहार झलमला रही थी। आसमान में आज भी शरद् की नीलिमा का आभास था। अभी तक धूल का उड़ना शुरू नहीं हुआ। दूर फसल के पार—खेतों के अन्त में नदी के बाँध पर सरपत का हरा जंगल एक लम्बी हरी दीवार-सा खड़ा था। सिर पर चूना-पुते कार्निस-जैसा सफेद फूलों का समृद्ध समारोह...

कालीपुर के पश्चिम में सम्भ्रान्त धनियों का गाँव कंकना; वन-रेखा के माथे पर सफेद-लाल-पीले पक्के मकानों का ऊपरी हिस्सा दिख रहा था। बिलकुल खुले मैदान में स्कूल, अस्पताल, बाबुओं का नाटक-घर साफ-साफ दिखाई पड़ रहा था। कुछ दिनों से बाबुओं ने रुपये में एक पैसा धर्मादा बाँध दिया था; रुपया देते समय ही लोगों को वह भी देना पड़ता। उन्हीं रुपयों से पर्व-त्यौहार के मौके पर मुक्ताकाशी नाटक[1] होते। चौधरी ने निःश्वास छोड़ा, लम्बा निःश्वास। साल में उसे डेढ़-दो रुपया धर्मादा देना पड़ता था। अमरकुण्डा की बैहार में अभी भी पानी था। इस पानी में बेहद मछलियाँ होती हैं। मेड़ को काटकर पानी के बहाव के मुँह पर टोकरी लगाकर हाड़ी-बाउरी, डोम और मोची औरतें मछली पकड़ रही थीं। बहुत-से लोग खेतों में भी घूम रहे थे, जो दिख नहीं रहे थे—केवल धान के पौधों को चीरकर एक चलती हुई लकीर दिखाई पड़ रही थी, जैसे कम गहरे पानी के अन्दर से मछली के चले जाने पर पानी के ऊपर एक रेखा खिंच गयी हो। कुछ लोग अपने गाय-गोरुओं के लिए और कुछ लोग बेचकर दो पैसा कमाने के लिए घास काट रहे थे। अमरकुण्डा

---

1. बिना परदे के खेला जानेवाला नाटक।

बैहार के ठीक बीचोंबीच एक साफ-सुथरी मेड़ पर से जाने-आने का रास्ता। 'साफ-सुथरी' से मतलव कि एक आदमी उसपर मजे में चल सकता है, दो जने थोड़ा कष्ट से। इसी रास्ते से गाँव के मवेशी चरने के लिए नदी-किनारे जाते हैं। इन दिनों उनके मुँह में रस्सी का जाल बाँध दिया जाना है कि धान न खा सकें। प्रौढ़ चौधरी जरा निराशा की हँसी हँसा—इन मवेशियों के मुँह से जाल खोलने लायक चरोखर भी न रहा अब।

बाँध के उस पार नदी के चौर पर रबी की खेती की धूम पड़ गयी थी। खेतिहरों के लिए अवश्य दूसरा उपाय भी न था। अमरकुण्डा बैहार की आधी से अधिक जमीन कंकना के विभिन्न बाबुओं के क़ब्जे में जा चुकी थी। बहुतेरे खेतिहरों को जमीन रह ही नहीं गयी थी। उन्हीं लोगों ने पहले नदी-किनारे के गोचर में रबी की फसल लगाना शुरू कर दिया था। वाद में तो देखा-देखी अब सबने शुरू कर दिया। चौर की जमीन बेशक बहुत उपजाऊ थी। तमाम बरसात पानी में डूबे रहने की वजह से गीली मिट्टी जमते-जमते मानो सोना हो जाती हो। वही सोना पौधों की वालियों में फल जाता। गेहूँ और सरसों बहुत होता, सबसे ज्यादा होता चना। उस चौर का नाम ही चनाकुण्ड था। वैसे आजकल आलू की खेती का रिवाज ही ज्यादा चल पड़ा था। काफी बड़ा-वड़ा और बहुत ज्यादा आलू उपजता। नदी के उस पार जंक्शन में आलू का बाजार भी खासा था। कलकत्ते से महाजन लोग वहाँ आलू खरीदने के लिए आया करते थे। इन कुछ महीनों के लिए उनमें से कोई-कोई आढ़त खोले बैठा रहता। आलू बिका नहीं कि रुपया आया। जो बड़े खेतिहर है, उन्हें पचीस-पचास रुपये का उधार भी मिलता। सबके चलते चौधरी को भी गोचर तोड़कर आलू-गेहूँ-चने की खेती करनी पड़ रही थी। चारों तरफ खड़ी फसल के बीच केवल उस गोचर में मवेशी चराना नहीं चल सकता। अबूझ-अबोले पशु कब अचानक फसल पर टूट पड़ेंगे, इसका भी भला क्या ठिकाना! फिर यह भी नो था कि अमरकुण्डा की अच्छी बाँगर जमीन में रबी की फसल असम्भव-सी हो उठी थी। कंकना के वावुओं के सारे खेत पड़े रहते हैं, वे रबी फसल का झमेला नहीं झेलना चाहते, न ही खाद-खली पर रुपया लगान को तैयार थे। लिहाजा धान काट लेने के वाद से उनकी जमीन पड़ी ही रहती। जैसे अधिकांश जमीन में खेती होने पर पास ही पड़ी थोड़ी-सी परती जमीन में गाय-गोरू चराना मुश्किल होता है, वैसे ही अधिकांश जमीन परती पड़ी हो, तो वहाँ पर थोड़ी-सी जमीन में खेती करना भी कठिन होता है। गाय-बकरी को तो फिर भी रोका जा सकता है, लेकिन आदमी और बन्दर से पार पाना मुश्किल है। खाकर ही खत्म कर देंगे सब...।

उफ् कैसा काल-युद्ध किया अँगरेजों ने जर्मनों से। सब बण्टाढार कर दिया। दुःख-दुर्दशा तो सदा होती है, लेकिन इस युद्ध के बाद जैसी हुई वैसी कभी नहीं हुई। एक जोड़ा धोती की कीमत छह-सात रुपये; दवा की कीमत तो आग ही हो

गयी—काँटों और सूई तक का दाम चौगुना बढ़ गया। धान-चावल की क़ीमत भी लगभग दुगुनी बढ़ी, लेकिन कपड़े की बढ़ी तीन गुनी। जमीन का दाम भी दुगुना हो गया। दाम जो बढ़ा सो इन अभागे मूर्खों ने अपने खेत कंकना के बाबुओं के पेट में डाल दिये। अब आज अफसोस करने से भला क्या होगा। जाएँ, जहन्नुम जाएँ अभागे। ओह, वही सन् 1914 में शुरू हुई लड़ाई और खत्म हुई सन् '18 में। आज सन् '22 है, मगर फिर भी आग नहीं बुझी बाजार की। कंकना के बाबू लोग मुट्ठी-मुट्ठी धूल सोने के भाव बेचकर ढेरों रुपये ला रहे हैं और काफी दाम देकर कालीपुर की जमीन खरीद रहे हैं। धूल नहीं कहें तो और क्या! मिट्टी काटने से कोयला निकलता है, वही कोयला बेचकर तो पैसा आता है। जिस कोयले की दर तीन आने चौदह पैसे थी, उसी कोयले का दाम हो गया चौदह आना मन। मरे को मारे शाह मदार! इस महँगाई में पंचायत करके यूनियन बोर्ड ने टैक्स बढ़ा दिया। पंच बनकर बाबू लोग बन गये कर्ता-धर्ता और तुम सब अब देते रहो टैक्स। टैक्स वसूली की कैसी धूम है—चौकीदार-दफादार साथ लिये बगल में बही दबाये दुगाई मिसिर, जैसे लाट साहब हों।...

चौधरी सहसा ठिठक गया। कोई जोर से रो रहा है न? लाठी को बगल में दबाया, और जैसे धूप बचा रहा हो, भँवों पर हाथ की आड़ करके इधर-उधर देखते वह पीछे मुड़कर खड़ा हो गया। हाँ, पीछे ही तो—गाँव के कुछ लोग आ रहे हैं, उन्हीं में से कोई स्त्री रो रही है, जो दिखाई नहीं पड़ती। सामने आ रहे पुरुष की आड़ में पड़ गयी है वह। हाय-हाय, गेहुँअन साँप की तरह वह आदमी औरत को झोंटा पकड़कर पीट रहा है। चौधरी ने यहीं से शोर मचाया—"अरे... रे, ऐ..."

पता नहीं, उन लोगों ने यह सुना भी या नहीं। लेकिन वह औरत चुप हो गयी, मरद ने भी उसे छोड़ दिया। चौधरी जरा देर उधर देखता हुआ खड़ा रहा, फिर चल पड़ा। लोग नीच और कहते क्यों हैं! लाज-शरम, अत-नीत इन्हें कभी न आएगी। कम्बख्त को पता नहीं कि औरत का झोंटा पकड़ने से शक्ति छीजती है। रावण-जैसा आदमी, जिसके दस सिर, बीस हाथ थे, एक लाख लड़के और एक सौ लाख पोते थे वह रावण भी सीता का झोंटा पकड़ने से निरबंस हो गया!

चौधरी बाँध के करीब पहुँचा। पीछे से पाँव की आहट सुन मुड़कर देखा, पातू मोची जंगली सूअर-जैसा हन्-हन् करता दौड़ता चला आ रहा है। उससे कुछ ही दूर पीछे एक औरत दौड़ी आ रही है। शायद पातू की स्त्री है। वह अभी भी रो रही है और रह-रहकर आँख पोंछ रही है। चौधरी जरा सशंकित हो उठा। जिस ढंग से पातू आ रहा है, उसके लिए रास्ता छोड़ दे—और दूसरा कोई उपाय नहीं है। क्योंकि उसके आगे चल सके, ऐसी कूबत तो चौधरी में थी नहीं। लेकिन पातू ने खुद ही अपनी राह बना ली। वह बगल के खेत में उतर गया और धान के बीच से चलने

लगा। अचानक वह ठिठका और चौधरी को प्रणाम करके बोला, "जरा देख लीजिए चौधरीजी, देखिए!"

पातू की तरफ ताककर चौधरी सिहर उठा। माथे पर ताजा चोट थी, सारा चेहरा लहू-लुहान हो रहा था।

"...ओ बाबू, खून कर डाला...!" पातू की स्त्री जोर से रो पड़ी।

"...ऐ।" पातू गरजा—"फिर शोर मचाने लगी?"

पातू की स्त्री की आवाज तुरन्त धीमी पड़ गयी। वह चुपचाप रोने लगी, "देखिए जरा, गरीब की क्या गत कर दी है! आप लोग ही इसका इन्साफ करें।"

पातू ने उलटकर अपनी पीठ दिखायी। कहा, "जरा पीठ देख लीजिए..." उसकी पीठ पर बेरहम मार से उग आयी लम्बी लकीरें खून से दगदगा रही थीं। लकीर भी एक-दो नहीं, सारी पीठ चोट के निशानों से छलनी हो रही थी।

अकपट ममता और सहानुभूति से चौधरी विचलित हो उठा। आवेग-विगलित स्वर में ही बोला, "हाय, यह किसने किया रे पातू?"

"जी, उसी छिरू पाल ने।" मारे गुस्से के गनगनाता हुआ, सवाल से पहले ही पातू ने जवाब दिया, "न बोल न चाल, और आते ही रस्सी की मार से क्या हाल कर दिया, देखिए।" उसने फिर से अपनी छलनी हुई पीठ को चौधरी की ओर फेर दिया। उसके बाद फिर सामने घूमकर बोला, "जब रस्सी थाम ली तो एक फराठी से कपाल ही फोड़ दिया।"

छिरू पाल—श्रीहरि घोष? यकीन न करने की काई बात ही नहीं थी। उफ् बड़ी निर्दयता से पीटा है। चौधरी की आँखों में अचानक पानी आ गया। कभी-कभी परायी दुःख-दुर्दशा से आदमी इतना विचलित होता है कि वह अपने सुख-दुःख से परे पीड़ित के दुःख को मानो अपने देह-मन से प्रत्यक्ष अनुभव करता है। ऐसी ही दशा में पहुँचकर चौधरी गीली आँखों पातू को देखता रहा, उसके पोपले मुँह के शिथिल होंठ अजीब ढंग से थर-थर काँपने लगे।

पातू ने कहा, "मैं तभी मण्डल के पास गया। मगर किसी ने चूँ तक न की। समरथ का सौ खून माफ होता है न!"

पातू की स्त्री भी धीरे-धीरे रोती हुई कहने लगी, "उस कलमुँहे के लिए बाबू..."

पातू ने डाँटा—"ऐ, फिर घन-घन करती है!"

चौधरी ने अपने को सँभालकर पूछा, "आखिर इस बेरहमी से उसने मारा क्यों? तुमने ऐसा क्या कसूर किया था कि..."

बीच में ही पातू ने शिकायत करते हुए कहा, "उस दिन चण्डीमण्डप की बैठक में जो मैं कह रहा था वह तो सुना नहीं, उठकर चले गये थे। मुझे गाँव-भर के लोगों के लिए नाधा-जोता जुटाना पड़ता है, लेकिन उसके बदले कुछ भी नहीं मिलता।

जव लुहार ने आवाज उठायी तो मैंने भी कहा कि अब मुझसे भी काम न होगा। कल पाल का मजूरा नाधा-जोता लेने आया था, साँझ को। मैंने कह दिया, जाकर पैसा ले आओ। बस, कहना-भर था कि आज आया और, न कुछ कहना न सुनना, वस रस्सी लेकर मारना शुरू कर दिया।"

चौधरी चुप रहा। पातू की स्त्री बार-बार गरदन हिलाकर बिलखती हुई बोली, "नहीं बाबूजी, नहीं–"

पातू ने उसकी बात को ढँकते हुए कहा, "आखिर मेरा गुजारा कैसे हो? इसका कुछ खयाल न करके आप लोग इसी तरह मारेंगे?"

चौधरी ने खँखारकर गले को साफ करते हुए कहा, "श्रीहरि ने तुम्हें इस तरह से मारकर बड़ा अन्याय किया है, कसूर किया है, यह बात हजार बार, लाख बार सच है। लेकिन नाधा-जोता की वात तुम्हें नहीं मालूम भैया! गाँव में मवेशियों का जो मसान है, तुम लोग उसका लाभ लेते हो। बदले में नाधा-जोता देना पड़ता है सवको। ऐसा ही नियम है। मवेशी मरते हैं तो तुम उनका चमड़ा लेते हो, हड्डी बेचते हो...।" मांस ले जाने की बात चौधरी घृणा से न कह सका।

पातू अचम्भे में आ गया–"मवेशियों के मसान के बदले...?"

"हाँ। तुम्हारे बड़े-बूढ़े तो रहे नहीं, उन्हें सब पता था।"

"महज इसीलिए नहीं बावूजी... वह कलमुँहा, पापी...।" पातू की पत्नी वोली।

अवकी पातू ने भी कहा, "जी, सिर्फ नाधा-जोता की हो तो बात नहीं। आप भले लोग अगर हमारे घर की औरतों पर नजर डालें, तो हम कहाँ जाएँ, आप ही वताएँ?"

धर्मपरायण बूढ़े चौधरी के मुँह से निकल पड़ा–"हरे राम! हरे राम! राधाकृष्ण! राधाकृष्ण!"

पातू ने कहा, "जी, राम-राम नहीं चौधरीजी! मेरी बहन दुरगी जरा शैतान है। शादी कर दी, मगर ससुराल से भाग आयी है। बस यह छिरू पाल उसी पर आँख गड़ाये है। कोई वहाना वनाकर टोले में आ जाता है और घर के अन्दर बैठता है। और मेरी माँ–उस हरामजादी को तो आप जानते ही हैं। उसका शुरू से आखिर तक एक ही तरह से वीता है। वह छिरू को बिठलाती है; फुसफुस करती है। घर में आखिर मेरी भी घरनी है। मैंने अपनी बीवी, माँ और दुरगी को एकाध थपेड़ा लगाया था। उसे भी कहा था कि चौधरीजी, जात-बिरादरी मेरी निन्दा करते हैं, आप यहाँ मत आया करें। असली चिढ़ तो इसकी थी।"

चौधरी के दोनों हाथ लाठी और छाते में अटके थे। कान में उँगली डालने का उपाय नहीं था। घृणा से थूककर मुँह फेरते हुए कहा, "हाय राम, अब रहने दो पातू, रहने दो। सवेरे पहर ये सब बातें मुझे मत सुनाओ। मैं कर भी क्या सकता हूँ। राधे-राधे!"

लेकिन पातू नाराज हो गया। कुछ बोले बिना वह हनहनाते हुए आगे बढ़ गया। उसके पीछे-पीछे उसकी स्त्री भी दौड़ने लगी। पति के चुप होने का लाभ उठाकर उसने फिर शुरू किया—"और हरामजादी बनती कैसी है! भाई के दुःख से बैठी रो रही है : 'हाय राम, मैं क्या करूँ?"

पातू बिजली की गति से पलटा। उसकी स्त्री डर से अस्फुट चीत्कार कर उठी—"ऐं!"

पातू झुँझलाकर बोला, "तू मत चीख बाबा! तुझसे कुछ नहीं कह रहा, तू चुप हो जा।" और, धक्का देकर स्त्री को हटाते हुए वह लौट रहे चौधरी के सामने आ खड़ा हुआ। कहा, "अच्छा चौधरीजी, अलीपुर के रहमत शेख ने कंकना में रमेन्द्र चटर्जी के साथ मवेशी-मसान को दखल किया है, उसका आप लोग क्या कर रहे हैं?"

चकित होकर चौधरी ने कहा—"ऐं?"

"जी हाँ। हम सब उसके सिवाय और किसी को चमड़ा नहीं दे सकते। वह कहता है, जमींदार ने हमें अधिकार दे दिया है। खाल छुड़ाने की मजदूरी और नमक का दाम—बस, इससे दो-चार आना भी ज्यादा नहीं देता; जबकि चमड़े का दाम इस समय आग हो रहा है।"

पातू की ओर ताककर चौधरी ने पूछा, "यह सच है?" और पातू बोला—"जी। गलत हो तो पचास जूता कबूल। नाक मलूँगा।"

"तो—" चौधरी ने गरदन हिलाकर कहा, "तो तुम हजार बार कह सकते हो अपनी बात। गाँववालों को तुम्हें पैसा देना ही पड़ेगा। लेकिन जमींदार के गुमाश्ते से पूछा है?"

पातू ने कहा, "गुमाश्ता क्यों, मैं खुद जमींदार के पास जाऊँगा। डॉक्टर घोष ने तो थाने जाने को कहा है, मगर थाना क्यों पहले जमींदार के ही पास जाऊँगा। दोनों बातों का फैसला हो जाए। देखूँ जमींदार क्या कहता है!"

वह फिर लौटा और मेड़वाली सीधी राह को छोड़कर दक्खिन की तरफ की एक मेड़ पकड़कर कंकना की ओर चल पड़ा। बूढ़ा चौधरी ठुकठुक करके नदी के चौर की तरफ बढ़ा। नदी के पार के जंक्शन के कारखानों की चिमनियाँ अब साफ झलकने लगी थीं। चौधरी अब चौर तक आ पहुँचा। हक्का-बक्का हो गया बुड्ढा। सब तो सब, रमेन्द्र चटर्जी अन्त में चमड़ा बेचकर धनी बनेगा! छिः छिः, ब्राह्मण का लड़का है!

पाँच

कहानी में ऐसा सुना जाता है कि जुड़वे भाई के मामले में यमदूत राम के बदले श्याम को ले जाता है, श्याम के बदले आकर पकड़ लेता है राम को। उनका अनुकरण करते हुए ही बात को जरा बढ़ाकर आदमी ज्यादा बुद्धि के नाते राम के अपराध करने पर भी श्याम को ही लेकर खींचतान करता है। पुलिस भी आदमी है, इसलिए इस मामले में वह अपवाद नहीं है। दूसरे ही दिन पुलिस की जाँच-पड़ताल हो गयी। अनिरुद्ध ने छिरू पाल पर सन्देह करके नालिश की थी, लेकिन पुलिस ने आकर बैहार जोतनेवाले सतीश बाउरी के घर की खानातलाशी ली और तहस-नहस करके उसे खींच लायी। घण्टों उससे पूछताछ करके उसके नाकों दम कर दिया और अन्त में उसे छोड़ भी दिया। हाँ, छिरू पाल के घर के खलिहान को भी एक बार घूम-घामकर देखा पुलिस ने—लेकिन वहाँ दो बीघा जमीन के अधपके धान का एक तिनका भी न मिला।

पुलिस आकर गाँव के चण्डीमण्डप में ही बैठी थी। गाँव के मुखिया-मातबर लोग भी चन्द्रमण्डल के नक्षत्र-सभासदों की तरह उसके चारों तरफ घिरकर उत्तेजित-से फुसफुसाकर आपस में बातें कर रहे थे। छिरू पाल पुलिस के बहुत करीब बैठा था—गम्भीर भाव से। कान तक फैले हुए उसके मुख-गह्वर के पास के दोनों जबड़े सख्त होकर ऊँचे हो आये थे। अनिरुद्ध सामने बैठा सिर झुकाये कितना क्या सोच रहा था। जाँच खत्म करके पुलिस उठी; अनिरुद्ध भी उठा। बिना देखे भी वह साफ अनुभव कर रहा था कि सारे गाँव के लोग हिंसा-भरी तीखी निगाहों से उसे देख रहे हैं। अप्रत्यक्ष यन्त्रणा सही जाती है, निरुपाय होकर आदमी को सहना भी पड़ता है। लेकिन उसका भावी इंगित मनुष्य के लिए असह्य होता है। वह पुलिस के पीछे-पीछे ही चला आया।

पुलिस के जाते ही चण्डीमण्डप में बड़ा हो-हल्ला शुरू हो गया। उपस्थित लोगों में से हरेक अपनी-अपनी कहने लगा, जब यह लगा कि कोई किसी की नहीं सुन रहा है तो हरेक ने अपनी आवाज भरसक ऊँची कर दी। यह सच है कि सद्गोप सम्प्रदाय का कोई भी श्रीहरि घोष को अच्छी नजर से नहीं देखता, किन्तु अनिरुद्ध लुहार ने पुलिस को खबर देकर उसके घर की तलाशी करवा दी, घर में सिपाहियों को घुसा दिया, तो अपमान को सम्प्रदायगत मानकर वे उत्तेजित हो उठे। खास करके उस दिन इसलिए कि अनिरुद्ध ने समाज की उपेक्षा की, उस उद्धत अपराध की नींव पर घटी घटना खासी बड़ी हो गयी।

देवनाथ घोष की आवाज जैसी तीखी थी, उतनी ही ऊँची भी। गाँव के सारे शोरगुल से ऊपर उसकी आवाज सुनाई पड़ती थी। खेतिहरों के घरों में वह अतिक्रम

हो मानो। देवनाथ तेज बुद्धि का युवक है। अपने छात्र-जीवन में वह तेज विद्यार्थी रहा है। लेकिन पैसों की कमी और घर की प्रतिकूल परिस्थिति से उसे प्रवेशिका में ही पढ़ना छोड़ना पड़ा। तभी वह गाँव की ही पाठशाला में अध्यापकी करता है। उसने ग्राम-जीवन की व्यवस्था-शृंखला के बहुत-से तथ्य कौतूहल से छानबीन करके जाने हैं। वह कह रहा था, "लुहार, बढ़ई, नाई—ये सब काम न करने की कहें तो यह नहीं हो सकता। उन्हें तो काम करना ही पड़ेगा।"

श्रीहरि वैसे ही गम्भीर होकर दाँत पर दाँत दबाये बैठा था। बात यहाँ तक आएगी, वह यह नहीं सोच पाया था। और उधर श्रीहरि के खलिहान में सूखने के लिए फैलाये गये धान को पाँवों से उलटते-पुलटते हुए श्रीहरि की माँ अनिरुद्ध को भद्दी गालियाँ वक रही थीं, आक्रोश से कठोर शाप दे रही थी।

उत्कण्ठित दृष्टि से राह की ओर ताकती हुई पद्म दरवाजे पर ही खड़ी थी। थाना-पुलिस से उसे बड़ा डर लगता। छिरू की माँ की भद्दी गाली और कठोर शाप यहाँ से साफ सुनाई पड़ रहा था। पद्म भी एक ही बकवासी है—गाली-सराप वह भी बहुत जानती है, वह किसी का नाम बिना लिए ही उसकी अवस्था से मिलाते हुए ऐसे सराप दे सकती है कि जिसे देती है, शब्दवेधी बाण की तरह उस व्यक्ति के ठीक कलेजे में जाकर बिंध जाता है। लेकिन आज ऐसी उत्कण्ठा में गाली-सराप उसकी जबान पर नहीं आ रहा था। इतने में अनिरुद्ध आया और घर के अन्दर गया। उसे देखकर गहरे आश्वास के साथ उसने एक लम्बी साँस फेंकी। दूसरे ही क्षण आँख-मुँह को दमकाकर बोली, "सुनते हो, अब मैं भी गाली-गलौज करूँगी।"

अनिरुद्ध की हालत ठीक जाड़े की बर्फ-जैसी अनुतप्त, स्थिर और सख्त थी। उसने रूखे गले से कहा, "न, गाली देने की जरूरत नहीं। अन्दर चल।"

पद्म अन्दर आते-आते बोली, "अन्दर क्या आऊँ, तुम तो सिर-कान खो बैठे हो,—गालियाँ सुनाई नहीं पड़तीं तुम्हें?"

"तो फिर तू भी गाली दे, गला फाड़कर चिल्ला जाकर।"

पद्म भुनभुनाती हुई भण्डार-घर में जाकर तेल ले आयी। बोली, "सुन नहीं रहे हो, क्या दुर्दशा कर रही है मेरी..." पद्म के कोई बाल-बच्चा न था। इसलिए छिरू की माँ अनिरुद्ध की मौत मनाती हुई पद्म के लिए भविष्य में घृणित पेशे का गन्दा उल्लेख करती हुई उसे सराप रही थी। पद्म ने तेल की कटोरी बगल में रखी। पति का एक हाथ खींचकर उसमें तेल लगाने लगी। रूखा और सख्त हाथ। आग की आँच में सारे रोएँ जलकर मुड़ी हुई दाढ़ी-सरीखे रूखे हो गये थे। सिर्फ हाथ ही नहीं, हाथ-पाँव-छाती—यानी सामने के सारे ही खुले हिस्सों का रोआँ जला हुआ था। तेल मलते हुए पद्म बोली, "बाप रे, हाथ है यह कि जैसे काठ।"

अनिरुद्ध ने इसपर कान नहीं दिया। कहा, "मेरी गुप्ती को निकालकर जरा अच्छी तरह से साफ करके रखना तो।"

पद्म पति के चेहरे की तरफ ताकती हुई बोली, "ठीक है, मैंने उसे पहले ही साफ करके धार चढ़ाकर रखा है, अपने गले में मारकर किसी दिन दो टुकड़े होकर पड़ी रहूँगी मैं।"

"क्यों?"

"तुम खून-फसाद करके फाँसी चढ़ोगे और मैं क्या हाँड़ी का भाग डोम की दुर्गत भोगने के लिए जिन्दा रहूँगी?"

अनिरुद्ध ने बात का कोई जवाब नहीं दिया। केवल हुँ-हुँ कहा। यानी पद्म के हाँड़ी का भाग डोम की दुर्गत की सम्भावना को उसने सोचकर नहीं देखा, वरना छिरू को घायल करके जेल जाने या उसका खून करके फाँसी चढ़ने में अभी उसे कोई खास आपत्ति नहीं थी।

"मैंने मना किया कि थाना-पुलिस न करो। पर तुमने तो सुना ही नहीं। आखिर हुआ क्या? क्या किया पुलिस ने? केवल गाँववालों से झगड़ा बढ़ गया। और जब कहती हूँ कि मैं गाली दूँगी तो बाघ की तरह गुर्रा उठते हो, 'न, गाली मत दे'।"

घुटे क्रोध से अनिरुद्ध खीझकर असहिष्णु हो उठा था। लेकिन कोई बड़ी बात कहने की न तो हिम्मत हुई उसे, न इच्छा ही। बाँझ पद्म के लिए उसे बड़ी सावधानी से चलना पड़ता : महज मामूली-सी बात पर वह निरी बच्चों-सी मान करके सिर पीटकर, रो-धोकर अनर्थ कर बैठती और कभी तो जैसे बड़ी-बूढ़ियाँ शरारती लड़के का रूठना-झगड़ना सहती हैं, वह हँसती हुई अनिरुद्ध की ज्यादती को सह लेती। अनिरुद्ध से पिटकर भी वह उसी क्षण खिलखिलाकर हँस पड़ती। वह कब किधर जाएगी, अनिरुद्ध बहुत-कुछ समझ सकता है। आज की बात में लाड़ का सुर फूट रहा था। यह समझकर, खीझ के बावजूद अन्त में अनिरुद्ध ने अपने को रोक लिया। उसने कुछ न कहा। तेल लगाये हुए अपने पैर को खींचकर पूछा, "अँगोछा कहाँ है?"

लेकिन पद्म तो रूठी थी। वह कुछ बोली नहीं, बिजली की गति से मुँह उठाकर अजीब निगाह से पति की ओर ताका और तुरन्त तेल की कटोरी उठाकर चली गयी।

खीझ से भँवें तानकर अनिरुद्ध ने कहा, "जरा समय का भी तो खयाल किया होता? छाँह कहाँ गयी, देख जरा। तीन बज रहा है।"

गम्भीर होकर चकित दृष्टि से आँगन की छाँह को गौर से देखकर पद्म अँगोछा लाकर अनिरुद्ध को देते हुए बोली, "बैठो। मैं पानी ला देती हूँ, घर ही नहा लो।"

अँगोछे को कन्धे पर डालकर वह बोला, "इसमें तो देर हो जाएगी पद्म। मैं गया नहीं कि आया। पनकौड़ी-सी डुबकी लगाकर लौट आऊँगा। तू खाना परस।..." और वह जल्दी निकल गया।

खाना परसने वह गयी तो रसोईघर की जंजीर पर हाथ रखकर ठिठक गयी। दाल-तरकारी सब तो बर्फ हो गयी। बाबू को रुचेगी क्या! बाबू नहीं नवाब! जितनी आमदनी, उतना खर्च। अवश्य लुहार, कुम्हार, नाई, सुनार की खर्चे के लिए सदा से बदनामी है, मगर अनिरुद्ध-जैसा शाह-खर्च पद्म ने किसी को नहीं देखा। नदीपार में लुहारखाना करने के बाद तो खर्च की सनक और बढ़ गयी है। रुपये सेर की हिलसा मछली इस गाँव में किसने खायी है? खाना गरम न रहे तो नवाब छूकर ही उठ जाएगा। पिछवाड़े की गड़ही के किनारे पद्म ने क्वार के आरम्भ में ही प्याज के कुछ पौधे लगा दिये थे, वे काफी फैलकर बड़े हो गये थे। उसका हरा शाक भून दूँ तो कैसा रहे? वह खिड़की की ओर बढ़ी ही थी कि उसे लगा, दरवाजे के पास कोई खड़ा है। उसके सफेद कपड़े का कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा था। वह सिहर उठी। उसे छिरू पाल की कलवाली घिनौनी हँसी याद आयी। वह दो-एक डग पीछे हटकर खड़ी हो गयी। पूछा, "कौन? कौन खड़ा है?"

आवाज पाकर आगन्तुक चकित गति से अन्दर आ गया। पद्म को भरोसा हुआ। वह मरद नहीं, औरत थी। लेकिन दूसरे क्षण वह दंग रह गयी, यह तो छिरू पाल की बीवी है। तीस-बत्तीस से ज्यादा की उम्र न होगी। कभी सुन्दरी रही थी, अब असमय में बुढ़ापा आ जाने से टूट-सी गयी थी। उसकी आँखों में करुण निवेदन था। बिना भूमिका के वह दोनों हाथ जोड़कर पद्म से बोली, "बहन, लुहार-बहू!"

पद्म कुछ भी न कह सकी। छिरू पाल की स्त्री को वह खूब अच्छी तरह जानती थी। उतनी अच्छी औरत कम ही होती हैं। वह कैसे बड़े और भले घर की बेटी है यह भी मालूम था उसे। उसे कितना दुःख है, इसे भी उसने अपनी आँखों देखा है, कानों सुना है। छिरू पाल को उसने इसे पीटते भी देखा है, और छिरू की माँ का गाली-गलौज तो यह रोज सुन रही है।

छिरू की स्त्री करीब आयी और जरा झुककर बोली, "मैं तुम्हारे पाँव पकड़ने आयी हूँ बहन!"

पद्म झट पीछे हट गयी—"ना-ना-ना। यह क्या है!"

"बहन, मेरे बेटों को गालियाँ न दो : जिसने ऐसा किया है, उसे गाली दो, मैं उसको क्या कहूँ।"

छिरू पाल के सात बच्चों में से केवल दो बच रहे थे। वे भी गुप्त रोग के जहर से जर्जर थे—एक बीमार, दूसरा लगभग पगु।

बच्चोंवाली स्त्रियों से बाँझ पद्म को एक हिंसा-सी है, अवचेतनागत। लेकिन इस वक्त उसकी वह जलन भी गायब हो गयी। वह एक दीर्घ निःश्वास फेंककर रह गयी।

छिरू पाल की स्त्री ने कहा, "तुम लोगो का बहुत ही नुकसान किया है। खेतिहर की बेटी हूँ—मैं समझती हूँ। तुम ये रुपये रख लो बहन।" कहकर स्तब्ध-सी

पद्म के हाथों में उसने दस-दस के दो नोट दिये और बोली, मैं छिपकर आयी हूँ बहन, पता चले तो मेरी गरदन न बचेगी। अब चलती हूँ। कहकर वह तेजी से लौट गयी। जाते-जाते दरवाजे के पास वह खड़ी हुई और पलटकर हाथ जोड़ते हुए कहा, "मेरे दोनों बेटों का कोई कसूर नहीं है बहन, मैं हाथ जोड़ती हूँ।" और तुरन्त वह पिछले दरवाजे के उस पार ओझल हो गयी। पद्म बेबस और निस्पन्द-सी खड़ी रह गयी।

कुछ ही देर बाद पास में होते हुए कोलाहल की चोट से उसकी वह स्तम्भित दशा दूर हुई। शायद फिर कोई बखेड़ा हुआ। सारे कोलाहल के ऊपर एक आदमी का गला सुनाई पड़ रहा था। पद्म उत्कण्ठित हो उठी, अनिरुद्ध तो नहीं? न-न, वह नहीं है तो? छिरू पाल? पद्म ने कान लगाकर सुना। न, आवाज छिरू पाल की भी नहीं है। फिर? वह तेजी से बाहरी दरवाजे के सामने रास्ते पर जा खड़ी हुई। जब उसने साफ समझा कि यह गला गाँव के एकमात्र ब्राह्मण हरेन्द्र घोषाल का है तब वह निश्चिन्त हुई। चेहरे पर थोड़ी व्यंग्य-हँसी भी झलकी। हरेन्द्र घोषाल का दिमाग कुछ गड़बड़ है, इसमें सन्देह नहीं। गाँव के हर किसी से होड़ लगाना उसके लिए जरूरी है। छिरू पाल ने साईकिल खरीदी, तो उसने साइकिल और ग्रामोफोन खरीद लिया, जमीन गिरवी रखकर। एक बार मजाक में छिरू पाल ने यह बात उड़ा दी कि मैं घोड़ा खरीदूँगा तो अपनी शान बचाने के लिए हरेन्द्र घोषाल ने भी अपनी माँ से राय की कि छिरू पाल घोड़ा खरीदेगा तो मैं हाथी खरीदूँगा।... पता नहीं आज उसके सर पर कौन-सी सनक सवार है! मगर रास्ते में कोई था भी नहीं कि कुछ पूछे।

ठीक इसी वक्त अनिरुद्ध आता दिखाई पड़ा। करीब आकर अनिरुद्ध पद्म की ओर देखकर जोरों से हँस पड़ा। पद्म बोली, "हाय राम, हँस क्यों रहे हो?"

हँसते-हँसते अनिरुद्ध प्रायः लोट-पोट हो गया।

"अरे, बात बताकर तो कोई हँसता है। आखिर इतना शोरगुल काहे का है? हुआ क्या? हारो ठाकुर चिल्ला क्यों रहा है?"

"ठाकुर को बड़े बेमौके फँसाया है। आधी हजामत बना दी है, उसके बाद—" बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर अनिरुद्ध ने बात पूरी करनी चाही—"तारा हजाम..." मगर जोरों की हँसी से उसकी बात बन्द हो गयी।

कपड़ा बदलकर जब वह खाने बैठा, तो किसी तरह अपनी बात पूरी की—"उनकी देखा-देखी तारा हजाम ने भी कह दिया है, धान के बदले तमाम साल सारे गाँव की हजामत मुझसे न बनेगी। जिसके जोत-जमीन नहीं है, उससे धान नहीं मिलता। और जिन्हें है; उनमें से भी सभी नहीं देते। लिहाजा धान के बदले उसने नकद का कारबार शुरू किया है। हारो ठाकुर हजामत बनवाने गया था और तारा

ने पैसे माँगे थे। थोड़ी बकझक के बाद आखिर पैसा देने का वादा करके हारो ठाकुर हजामत बनवाने बैठा।"

अनिरुद्ध ने आगे कहा, "एक तो हजाम यों ही धूर्त, तिस पर तारा हजाम। आधी हजामत बनाकर बोला, ठाकुर, कहाँ हैं पैसे? हारो ने कहा, कल दूँगा। यह कहना था कि किस्वत समेटकर तारा अन्दर चला गया। बोला, बाकी हजामत कल वना दूँगा। वस, शोरगुल गाली-गलौज इसी बात का है—हिन्दी, फारसी, अँगरेजी। गाँव के लोग फिर मिल रहे हैं, इसके लिए।..." प्रवल कौतुक से अनिरुद्ध फिर हँस उठा। हँसी के आवेग से उसके मुँह का भात छिटककर सामने तमाम फैल गया।

पद्म को कुछ सफाई की झख है। बात यह झल्ला पड़ने की थी; लेकिन आज वह कुछ भी न वोली। अनिरुद्ध के इतना हँसने पर भी वह जरा न हँसी। अचानक अनिरुद्ध ने जब यह देखा तो गहरे विस्मय से पद्म की ओर ताकते हुए उसने पूछा. "आज तुझे हुआ क्या है, बता तो सही।"

लम्बा निःश्वास छोड़कर वह बोली, "छिरू पाल की स्त्री घर से छिपकर यहाँ आयी थी।"

"कौन?" आश्चर्यचकित होकर अनिरुद्ध ने पूछा।

"अजी, छिरू पाल की स्त्री..." उसके बाद पद्म ने सब कहा और खूँट में बँधे दोनों नोट दिखाये।

अनिरुद्ध चुप रहा।

अनिरुद्ध ने कुछ न कहा, तो पद्म ने एक लम्बी उसाँस ली—"अहा, माँ का जी।"

अनिरुद्ध कुछ देर और ठक-सा रहा। एकाएक झटककर उठ बैठा, मानो अपने को खींचकर उठाया हो। बोला, "बाप रे, दुनिया का काम बाकी पड़ा है। खा-पीकर अभी डेढ़ कोस दौड़ना है।"

पद्म ने कुछ कहा नहीं। हाथ-मुँह धोकर थोड़ी-सी सौंफ-सुपारी मुँह में डाल, वीड़ी सुलगाकर हँसते हुए अनिरुद्ध ने कहा, "एक नोट दे तो मुझे।"

भँवें सिकोड़कर पद्म ने उसकी ओर देखा। अनिरुद्ध ने और भी हँसते हुए कहा, "पाँच रुपये का लोहा-इस्पात लेना होगा। साले छिरू को रुपया देने के लिए गाहक के रुपये खर्च कर दिये हैं, और—"

पद्म कुछ बोली नहीं। एक नोट उसने अनिरुद्ध के सामने फेंक दिया।

नोट को उठाते हुए अनिरुद्ध बोला, "कसम से मैं सिर्फ एक रुपये से फूटी पाई ज्यादा नहीं खर्च करूँगा। तू ही बता कितने दिनों से नहीं पी है?"

पद्म तो भी कुछ न बोली। सहसा मानो अनिरुद्ध से उसका मन विरूप हो उठा हो।

छह

हारो घोषाल की आधी हजामत बाकी छोड़ने में तारा हजाम को रसिकता जितनी भी प्रकट हुई हो, गाँव के लोगों ने हारो घोषाल का वह अर्द्धनारीश्वर रूप देखकर पहले हँसते हुए बात को जितना ही हास्ययुक्त क्यों न बनाया हो, उसकी प्रतिक्रिया उतनी ही पेचीदा तौर पर गम्भीर हो उठी।

हरीश मण्डल बुजुर्ग ठहरा, उसमें समझ-बूझ भी है। उसी ने पहले कहा, "हँसो मत, तुम लोग। यह हँसने की बात नहीं है। एक बार यह भी सोचा है तुम लोगों ने कि गाँव की हालत क्या हुई है?"

हँसी के आवेग को जरा जब्त करके सब हरीश की तरफ ताकने लगे। हरीश ने गम्भीर होकर कहा, "घोर अराजकता है यह।"

भवेश पाल–छिरू का चाचा–आदमी स्थूल है, मगर बुद्धि का मान है उसे। वह भी गम्भीर होकर बोला, "बेशक।"

देवनाथ हँसी-मजाक में साथ देनेवाला आदमी नहीं है, उसने मामले का अनुमान किया और बोला, "मगर इसे आप लोग रोक कैसे सकते हैं? गाँव में मेल भी है सब में? लुहार-बढ़ईवाली पंचायत में छिरू ने द्वारका चौधरी का अपमान किया। चौधरी उठकर चला गया। जगन डॉक्टर तो आया ही नहीं, उलटे उसने अनिरुद्ध को उकसा दिया।"

भवेश ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "हरिनाम सत्य है। कलयुग के अन्त में सब एक जाति यवन होंगे। यह कुछ झूठ थोड़े ही है, भैया। इसी तरह से धरम-करम सब जाएगा।"

हरीश ने कहा, "मालूम है, लुटनी दाई ने क्या कहा? मेरी पतोहू के यह पूरा समय चल रहा है। इसीलिए मैंने कहला भेजा था कि रात-बिरात अगर और कहीं जाना हो तो बताकर जाना। इसपर उसने कहा, खैर, मैं आऊँगी तो, लेकिन विदाई नकद देनी होगी।"

गहरी चिन्ता में विभोर होकर भवेश ने कहा, "हूँऽ।"

हरीश बोला, "कहावत है, राजा के बिना राज्य नाश। बात झूठी नहीं है। अपना जो जमींदार है, उसका तो होना-न-होना बराबर है।"

देवनाथ ने कहा, "जमींदार को छोड़िए। जमींदार बुरा ही कैसे है? यह काम जमींदार लोगों का तो है नहीं, है आप लोगों का। आप लोग जरा जमकर करें तो पंचायत, सिर झुकाकर सबको आना पड़ेगा। कैसे नहीं कोई आएगा, ठट्ठा है। आफत-विपद् नहीं है? सब क्या लोहे से सिर बाँधकर घर-गिरस्ती करते हैं। पहले चौधरी को बुलाइए, जगन डॉक्टर को बुलाइए। घर सँभालिए। उसके बाद लुहार, बढ़ई, मोची, दाई, धोबी, नाई–इन सबको बुलाइए और सही विचार कीजिए।"

हरीश ने सबकी ओर देखकर कहा, "देवनाथ ठीक ही कह रहा है। क्या खयाल है?"

भवेश ने कहा, "हाँ ठीक है।"

नटवर बोला, "तो वही कीजिए।"

देवनाथ के उत्साह की सीमा न रही। उसने कहा, "आज ही शाम को मिलिए। मैं जगह ठीक किये देता हूँ, स्कूलवाली चालीस बत्ती की रोशनी देता हूँ, सबको ख़बर भी कर देता हूँ। क्या राय है?"

हरीश ने फिर सबकी ओर देखकर पूछा, "क्या कहते हैं, कहिए?"

"ठीक है। लेकिन तम्बाखू और आग का भी इन्तजाम रखना।"

बहुत दिनों के बाद रोशनी से झकमकाकर चण्डीमण्डप फिर से गाँव की बैठक से जम उठा। तीस साल पहले भी यह इसी तरह रोज शाम को जगमगा उठता था। विचार हुआ करता, संकीर्तन होता, शतरंज-चौपड़ भी चलता। यह चण्डीमण्डप गाँव के सलाह-मशविरे का केन्द्र था। गाँव में किसी के यहाँ कुटुम्ब-अतिथि आता तो उसे यहीं बैठाया जाता। क्रिया-कर्म, अन्नप्राशन, विवाह, श्राद्ध—सब-कुछ यहीं होता था। धूल और काल की गति से लगभग मिटी हुई वसुधारा की लकीरें आज भी शिवमन्दिर की दीवार और चण्डीमण्डप के पाये में दिखाई पड़ती हैं। उस समय गाँव में निजी बैठक या बाहरी कमरा किसी के पास न था। जगन डॉक्टर के पुरखे—जगन के दादा ने तो कविराज होकर बाहरी कमरे या बैठकखाने की शुरुआत की थी। शुरू में वह भी चण्डीमण्डप में बैठकर ही रोगियों को देखा करता था। उसके बाद माली हालत बदलने के कारण भी, और कुछ कहा-सुनी जमींदार के गुमाश्ते से भी हो गयी थी, इसलिए भी, कविराज ने दवाखाना और बैठका वहाँ से हटाकर पान-तम्बाखू की इफ़रात से अपने घर मजलिस जमाकर यहाँ की बैठक को उखाड़ दिया था। उसके बाद एक-एक करके बहुत सारे घरों में बाहरी कमरे का चलन हुआ। और उनके कारण गाँव मे बहुत-सी बैठकें जम गयीं। कोई अकेले ही रोशनी जलाकर सामने के अँधेरे को ताकता हुआ चुप बैठा रहता। लेकिन फिलहाल जगन डॉक्टर के यहाँ की मजलिस ही ज्यादा जमती। जगन के रूखे ढंग के बावजूद रोगी वहाँ जाते। कुछ और भी लोग जाते—अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र से खबर सुनने की उम्मीद से। इतनी विरूपता होते हुए भी देवनाथ घोष जाया करता। वही जोर-जोर से अखबार पढ़ता, लोग सुनते। असहयोग-आन्दोलन खत्म हुआ, स्वराज पार्टी की गरमा-गरम बातों और समालोचना से अखबार के स्तम्भ भरे होते। सुननेवालों के मन में चौंध जगती, बुझी हुई-सी गतिवाले ग्रामीणों के लहू में मानो एक गरम सिहरन-सी होती।

आज देवनाथ ही सबसे कह रहा था। मजलिस का जमानेवाला वही था। बैठक

शुरू होने से ही उसने खूब जमा रखा था। चण्डीमण्डप के बाहर देवस्थल के अँगना का पुराना मौलसिरी पेड़ गाँव का षष्ठीथान था। षष्ठी कहकर लोग उसी को पूजा करते। वहीं पर मोटी सूखी डाल जलाकर आग सुलगायी गयी थी। उस आग के चारों ओर गाँव के कुछ हरिजन बैठे थे। द्वारका चौधरी, जगन डॉक्टर, छिरू पाल तथा और दो-चार जने अभी आये नहीं थे।

चालीस बत्तियोंवाले झाड़ की रोशनी में चण्डीमण्डप के ऊपर की ओर ताककर भवेश ने कहा, "जो भी कहो, फब यह खूब रहा है।"

हरीश ने भी एक बार चारों तरफ देखकर कहा, "लेकिन भव, एक बार इसकी मरम्मत कराना जरूरी है।" और उसने प्रशंसा करते हुए कहा, "जरा बनावट तो देखो। ओह, लकड़ी कैसी है।"

देवनाथ ने कहा, "षड्दल में लिखा क्या है, मालूम है? 'यावच्चन्द्रार्कमेदिनी'! यानी जबतक सूरज, चाँद और पृथ्वी रहेगी, तबतक यह रहेगा!"

"सो रहेगा भैया। वाह! क्या खूब बना है!" भवेश पाल नाहक ही उच्छ्वसित और पुलकित हो उठा।

ठीक इसी समय लाठी ठुकठुकाते हुए द्वारका चौधरी ने आकर कहा, "ओह, ताकीद तो बड़ी कड़ी पहुँची।"

देवनाथ व्यस्त होकर उठा, जगन डॉक्टर और छिरू को बुलाने के लिए फिर दो लड़कों को भेजा। लेकिन जगन डॉक्टर नहीं आया। उसने साफ कहला दिया, मुझे समय नहीं है। आँखों पर ऐनक लगाये वह शायद अखबार पढ़ रहा था। छिरू भी नहीं आया, उसे बुखार आया है। मगर उसने कहला भेजा है कि पाँच जन जो करेंगे, उसी में मरी राय है।

छिरू की इस विनय से देवनाथ चकित रह गया।

छिरू की बात यह निहायत अस्वाभाविक थी। विनय तो छिरू को छू भी नहीं गयी। बुखार भी नहीं आया उसे। वह मारे क्रोध के, गढ़ के भीतर अजगर जैसे चोट खाकर चक्कर काटता है, अपने मन में ही ऐंठ रहा था। अपने घर के अन्दर बरामदे में उकड़ूँ बैठा हुक्के में लगातार दम लगाता जा रहा था और अपलक किन्तु पैनी नजर से आँगन के एक बिन्दु को एकटक देख रहा था। उसके दिमाग में बहुत-सी बातें चक्कर काट रही थीं।

"घर में आग लगा दूँ तो कैसा रहे?" मन आनन्द से चंचल हो उठता।...

दूसरे ही क्षण लगता—न! जरा-सी उत्तेजना में ऐसा कुछ कर बैठने से, हो सकता है—शायद फिर ऐसे ही झमेले में पड़ना पड़े। आज ही जमादार को पचास रुपये देने पड़े! इसके लिए माँ अभी तक बुदबुदाती हुई गाली दे रही है।—मर जा

तू, मर! इतना गुस्सा है तुझे! जरा भी सब्र नहीं! मूरख ढपोल कहीं का! मेरे पचास रुपये निकल गये! तू मेरे कलेजे पर बाँस-बोझाई कर दे, जुड़ा जाऊँ मैं!

श्रीहरि उसपर कान नहीं दे रहा था। और दिन होता तो अब तक वह बुढ़िया को झोंटा पकड़कर आँगन में पटक देता और बेरहमी से पीटना शुरू कर देता। लेकिन आज वह बदला चुकाने की चिन्ता में खो गया है।

अनिरुद्ध रात के नौ-दस बजे उस पार से लौटता है। अँधेरे में अचानक हमला—न! साथ में गिरीश बढ़ई भी रहता है! लेकिन दोनों को घायल करना भी क्या कठिन है। मेरा दोस्त गराई भी तो खुशी-खुशी मेरी मदद करेगा।

उसी क्षण वह चौंक उठा। कहीं पकड़ा गया तो फाँसी हो जाएगी। उसका यह चौंकना इतना स्पष्ट था कि कमजोर नजरवाली उसकी बुढ़िया माँ तक ने देख लिया। वह गाली देने लगी—"मर जा मुँहजला! नन्हे-नादान-सा चौंकता है!"

श्रीहरि ने बड़ी सख्त निगाह से एक बार माँ की तरफ देखा, फिर नजर फेरकर हुक्के पर से चिलम उतारता हुआ बोला, "ऐ! सुनती है! जरा चिलम ताज़ा कर दे।"

यह उसने अपनी स्त्री से कहा। उसकी स्त्री रसोई में भात की हाँड़ी को देखती हुई बैठी थी। पास ही रोशनी में बड़ा लड़का किताब खोलकर एकटक अपने बाप को देख रहा था। दुबला-रोगी, दसेक साल का होगा, गले में तावीजों का बोझ—बड़ी-बड़ी आँखों की अजीब स्थिर मूढ़ दृष्टि से अपने चिन्तित बाप की हर हरकत पर गौर कर रहा था। श्रीहरि का छोटा लड़का पंगु-सा और गूँगा है। वह भी एक ओर बैठा था। मुँह की टपकती हुई लार से छाती भीग रही थी। वह लड़का आया और चिलम ले गया। श्रीहरि ने एक बार लड़के की तरफ देखा। अजीब है लड़का। उसकी मार खाकर भी रोता नहीं, एकटक देखता रह जाता है। उसकी वजह से अब उसकी माँ को भी पीटना कठिन हो गया है। माँ को वह सदा अगोरे रहता है। पीटने पर जानवर-जैसा ख़ूँख़ार हो उठता है। उस रोज श्रीहरि जब अपनी स्त्री को पीट रहा था तो उसने उसकी पीठ पर सूई गड़ा दी थी। लड़के की ओर से नजर हटाकर श्रीहरि ने स्त्री को देखा' सूखा-सा गोरा मुखड़ा, चूल्हे की आभा से लाल हो उठा था। चमड़े-से लिपटा कंकाल-सा चेहरा! श्रीहरि ने नजर हटा ली।

—हाँ। एक तरकीब और है! अनिरुद्ध जब घर में नहीं रहे तो दीवार फाँदकर पद्म को..। श्रीहरि का कलेजा जोरों से धड़कने लगा। लेकिन लम्बी-तगड़ी उस लुहारिन का वह गँड़ासा बड़ा तेज है। उसकी नजर ठण्डी लेकिन बड़ी खूँखार है। उस रोज धूप में छिटकती हुई दाव की चमक से छिरू की आँखें चौंधिया गयी थीं।

और फिर दुर्गा देखने में लुहारिन से कहीं अच्छी है। जवानी का उभार भी है। रंग की गोरी और मौज-मजे में अनोखी, लेकिन वह बहुतों के काम आ चुकी है, इसलिए उसका अब उतना आकर्षण नहीं रहा छिरू को। दुर्गा के बड़े भाई पातू

ने जमींदारों के पास छिरू के नाम नालिश की है। जरा मोची की मजाल तो देखो! छिरू के चेहरे पर उपेक्षा की व्यंग्य हँसी फूटी। जमींदार के बेटे की सोने की करधनी उसके पास गिरवी है। एकाएक श्रीहरि उठ खड़ा हुआ।

श्रीहरि की स्त्री चिलम भरकर दे गयी। चिलम श्रीहरि को जँची नहीं। दीवार की कील में टँगे कुरते से बीड़ी-दियासलाई निकालकर वह निकल पड़ा। अँधेरी गलियों से होता हुआ वह हरिजन टोले के पास पहुँचा।

जोरों का शोर हो रहा था। टोले के एक छोर पर बहुत दिनों का पुराना मौलसिरी का पेड़ है, वही है धर्मराज-थान। वहीं रोज साँझ को उनकी बैठक बैठती। गाना-बजाना होता, घेंटू-गीत का अभ्यास चलता और कभी-कभी लड़ाई-झगड़ा भी होता। आज झगड़ा हो रहा था। श्रीहरि एक पेड़ की ओट में खड़ा हो गया और कान लगाकर सुनने लगा।

पातू जोरों से बिगड़ रहा था। दुर्गा का तेज गला सुनाई पड़ रहा था—"भात देने का भतार नहीं, मुक्का मारने के गुसाईं! भैया वन रहे हैं मेरे, भैया! तू मारेगा क्यों मुझे? मेरे जो जी में आएगा वही करूँगी मैं। मेरे पास हजार जने आएँगे, तुझे क्या? तेरा कौन-सा भात खायी हूँ मैं?"

दुर्गा की माँ भी चीख रही थी। श्रीहरि हँसा—"आन्दोलन उसी के लिए चल रहा है।"

श्रीहरि पेड़ की आड़ में से निकला और चुपचाप दुर्गा के टोले की तरफ बढ़ा। टोला सुनसान था। सभी लोग मौलसिरी के नीचे जा जमे थे। श्रीहरि छिपकर दुर्गा के घर में घुस गया। घर के माने एक छोटे-से आँगन के दो ओर दो कमरे—चहारदीवारी नदारद। एक कमरा दुर्गा और उसकी माँ का, दूसरा पातू का। श्रीहरि की पैनी नजर पातू के कमरे पर थी। वह हताश हुआ। दरवाजा बन्द था। बरामदा भी सूना पड़ा था।

एक कुत्ता अचानक भूँकता हुआ भाग गया। शायद वह कच्चे चमड़े के लोभ में आया था। श्रीहरि मन-ही-मन हँसा। एक बीड़ी सुलगायी और चालाकी से उसे पूरी तरह छिपाकर पीते हुए बाहर निकला। पता नहीं, दुर्गा का कब तक इन्तजार करना पड़... फिर आकर गाछ की आड़ में खड़ा हो गया।

उधर झगड़ा धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। श्रीहरि ने फिर एक बीड़ी सुलगायी। कुछ देर बाद वह पेड़ की आड़ से निकला, और जलती हुई बीड़ी पातू के छप्पर पर फेंक तेजी से अपने घर की ओर चला गया। उधर चण्डीमण्डप में जोरों की बहस हो रही थी। श्रीहरि फिर हँसा।

कुछ ही देर में गाँव के ऊपर का अँधेरा आसमान लाल आभा से भयावना हो उठा। आकाश के तारे गायब हो गये। चिनगारियाँ उड़-उडकर ऊपर जाकर बुझने लगीं। रह-रहकर पटाखे की तरह जलते हुए बाँस आवाज के साथ छिटककर बगीचे

में बिखरने लगे। आग! आग! भयभीत चीख—स्त्री-बच्चों के रोने की आवाज से शून्यलोक की वायुतरंग मुखर और भारी हो उठी।

पल-भर में ही हरिजनों की और फिर चण्डीमण्डप की मजलिस टूट गयी।

सात

अकेले पातू का नहीं, पातू के घर की आग ने फैलकर हरिजन टोले के सारे घरों को ही स्वाहा कर दिया। बीच में बड़े-बड़े पेड़ों के होने की वजह से दो-तीन घर बच गये। बाकी सारे के सारे बहुत थोड़े ही समय में राख हो गये। झोंपड़े-जैसे छोटे और कम ऊँचे घर, बाँसों की टाट, उनपर फूस की हलकी छौनी। कातिक के शुरू से ही बारिश न होने के कारण धूप से वे बारूद-जैसे हो रहे थे, आग के छूते ही दहक गये। गाँव के बहुतेरे लोग दौड़ आये, खासकर लड़कों की जमात। कोशिश भी उन्होंने भरसक की, लेकिन चूँकि पानी भरने का साधन नहीं था और जलती हुई सँकरी गलियों में खड़े होने की जगह नहीं थी, इसलिए कुछ कर नहीं सके। उनका मुखिया था जगन डॉक्टर। आग लगने के समय सेनापति की तरह चीखकर आदेश-निर्देश देते-देते उसने अपना गला इस कदर चौपट कर लिया था कि आग बझते-बुझते उसका गला बिलकुल बैठ गया।

रात में उन सबों को चण्डीमण्डप में आकर सोने की इजाजत दी गयी। किन्तु वे भी गजब के आदमी थे—अपने उन जले हुए मकानों की माया छोड़कर वे नहीं आये। तमाम रात वहीं किसी प्रकार से जगह बनाकर हेमन्त की सर्दी में खुले आसमान के नीचे बितायी। बच्चे अवश्य सो गये, औरतें गीत-सा गुनगुनाकर रोयीं और मरद आपस में एक-दूसरे को दोष देकर अपनी करनी की शेखी बघारते हुए जले घर की आग से चिलम भरकर पीते रहे। लगभग सभी घरों में दो-एक गाय-बैल, दो-चार बकरियाँ हैं : आग लगने पर लोगों ने उनको खोल दिया था। वे सब किधर-कहाँ चले गये—इस रात में खोजने का भी उपाय नहीं था। बत्तख-मुर्गे भी थे, उनमें से कुछ जल गये। देख पाने की गुंजाइश न थी, लेकिन गन्ध से अन्दाज लग रहा था। जो भागकर बच गये थे, वे इस बीच लौट आये और अपने-अपने मालिक के पास डैने फुलाकर सिकुड़कर बैठ गये। कुछ मिट्टी और दो-चार काँसा-पीतल के बरतन, फटे कपड़ों से सिली फटी-चिटी बदबूदार कथरियाँ और तकिये, चटाई, मछली

मारने की पलुही, दो-चार कपड़े—इनमें से कुछ तो जल गये और कुछ राख में दब गये। जो जितना निकाल पाया था, उसे समेटे, अपने परिवार के घेरे के बीच मानो सबने मिलकर अपनी छाती से घेरकर रखा था। रात के आखिरी पहर में सर्दी तेज हो जाने से सिकुड़कर कुछ देर के लिए थकावट की नीरवता में वे सोये पड़े थे।

सवेरा होते ही जमकर औरतें फिर एक बार शोक प्रकट करने के लिए रोने लगीं। किरण छिटकते ही कमर बाँधकर औरत-मर्द मिलकर टोकरी में उठा-उठाकर राख को घूरे में फेंकते हुए घर-द्वार साफ करने लगे। जली लकड़ी को एक ओर सहेजने लगे—राख के ढेरों में जिसके जो बरतन दबे पड़े थे उन्हें निकालकर अलग रखा। ये सारे काम अभ्यस्त हैं उन्हें। घर की ऐसी दुर्घटनाएँ उसपर प्रायः घटा करती हैं। जोरों की बारिश होने से घर की जर्जर छौनी गिर जाती है। जोरों का बाँध टूट जाने पर बाढ़ का पानी टोले को डुबो देता है और इनके घर धँस जाते हैं। कभी-कभी जलाने के लिए बटोरते हुए सूखे पत्तों की ढेरी में जलती हुई बीड़ी का टुकड़ा फेंककर नशे में ख़ुद ही आग लगा लेते हैं। दुर्घटना के बाद गिरस्ती की यह शिक्षा उन्हें परम्परा से मिलती रही है। घर-द्वार की सफाई के बाद भोजन की समस्या। रात का बासी भात ही उनका सुबह का भोजन होता है। छोटे बच्चों को फड़वी देते हैं। लेकिन भात या फड़वी, सब-कुछ बरबाद हो गया था। बच्चे इतनी ही देर में रोने-चिल्लाने लगे थे। लेकिन कोई उपाय नहीं था। किसी-किसी माँ ने तो उनकी पीठ पर मुक्का-थप्पड़ जमा दिया।—"राक्षस के पेट में जैसे आग लगी हो। मर... मर जा।"

मालिक के यहाँ जाना होगा, तब भोजन की व्यवस्था होगी। ऐसे मौकों पर मालिक सदा उनकी सहायता करते हैं। इस टोले के लगभग सभी खेतिहरों के यहाँ मजूरी करते हैं। या तो बँधा हुआ सालाना वेतन या उपज का हिस्सा मिलता है। कोई-कोई दोनों जून भोजन या उसी हिसाब से साल-भर का धान लेते हैं। छोटे लड़के साल में सात हाथ की चार धोतियों पर चरवाही करते हैं। उनसे कुछ बड़े लड़के आठ आने से एक रुपया तक माहवार पाते हैं। उन्हें धान भी ज्यादा मिलता है। वयस्क लोग उपज की एक-तिहाई पर खेती में मजदूरी करते हैं। मालिक खेती के दिनों अनाज देकर इनकी गिरस्ती चला देते हैं और फसल तैयार होने पर उनके हिस्से के धान सूद समेत काट लेते हैं। सूद की दर होती है सैकड़े पर पचीस या तीस। जिस साल सूखा होता है और कर्ज अदा नहीं हो पाता तो असल सूद जोड़कर फिर उसका सूद चलता है। इस तरीके में उन्हें कोई अन्याय नहीं लगता बल्कि जी में कृतज्ञता का भाव ही रखते हैं। आपद्-विपद् में मालिक मदद कर देते हैं, यही उनकी बहुत बड़ी दया है। मालिक की उसी दया के भरोसे वे भोजन की चिन्ता में उतने व्याकुल नहीं हो रहे थे। औरतें भी मालिक के घर साँझ-बिहान बरतन-बासन करतीं, झाड़ू-बुहारू करतीं। उनके मालिकों से भी कुछ मिलेगा। इनके सिवा थोड़ा-बहुत दूध

का बकाया है। लेकिन वह बकाया गाँव में नहीं है। खेतिहर के गाँव में घर-घर दूध होता है। हरिजन लोग अपना दूध कंकना गाँव में ले जाकर बेचते हैं। वहीं उपले भी बिकते हैं।

लेकिन पातू को इस सब पर भरोसा नहीं था। वह जाति का बजनिया या मोची है। सेवकाई में उसे कुछ जमीन मिली है। उसका काम है गाँव के सरकारी शिवमन्दिर, कालीमन्दिर और बगल के गाँव के चण्डीमण्डप में रोज ढाक बजाना। उसी के लिए साल में देवोत्तर जायदाद का कुछ धान वह दादा के जमाने से ही पाता है। खुद के दो बैल थे उसके। उनसे वह कंकना के बाबू की कुछ जमीन बटाई में जोतता-बोता। इसके सिवा मरे हुए मवेशी की खाल बेचा करता। सुख-दुःख में वही लोग दो-चार रुपयों का उधार देते थे। लेकिन हाल में जमींदार ने उसकी भी बन्दोबस्ती कर दी, लिहाजा यह आमदनी उसकी बहुत घट गयी थी। महज मजूरी यानी मेहनताने के तीन-चार आने से पाई भी ज्यादा नहीं मिलती। इसी बात पर चमड़ावालों से मन-मुटाव हुआ है। अब भला वे क्यों मदद करने लगें? बटाई में जिस भले आदमी की जमीन वह जोतता है, वह कुछ दे सकता है। मगर कागज लिखवाये बिना नहीं। वह भी झमेले का काम है। लिखा-पढ़ी से पातू को बड़ा डर लगता है। कहीं नालिश करके घर दखल कर बैठे तो कहाँ जाए बेचारा? दुनिया में जायदाद कहने को बस यही मकान ही है।

मन-ही-मन यह सब सोचते हुए पातू जल्दी-जल्दी राख जमा कर रहा था। छिरू पाल से उस रोज पिटकर उसके मन में जो उत्तेजना जगी थी, वह दिन-ब-दिन बढ़ ही रही थी। उसी उत्तेजना से उस रोज अमरकुण्डा बैहार में द्वारका चौधरी से उसने छिरू और अपनी बहन दुर्गा के बुरे सम्बन्ध की बात कह दी थी। उसके लिए कल साँझ को जाति-भाइयों की सभा में उसे बड़ा अपमानित होना पड़ा। उसी बात पर लोगों ने उससे पूछा भी था कि "तुमने तो खुद अपने ही मुँह से इस कलंक की बात को चौधरी से कहा है। कहा है या नहीं, कहो?"

"हाँ कहा है।"

"फिर क्यों नहीं तुम जाति से निकाले जाओगे?"

इसके पहले पातू को यह बात याद नहीं आयी थी। वह चौंक उठा था। कुछ देर चुप रहकर वह हनहनाता हुआ घर गया और झोंटा पकड़कर दुर्गा को मजलिस में खींच लाया। ढकेलकर उसे गिरा दिया और कहा, "वह बात इस हरामजादी छिनाल से पूछो। मैं इससे अलग हूँ।"

दुर्गा के पीछे-पीछे उसकी माँ भी चीखती-चिल्लाती हुई आयी थी; सबके पीछे पातू की बिलैया-जैसी बहू भी रोती हुई आयी। उसके बाद तो गन्दी बातों का ताँता लग गया। दुर्गा ने जोरदार गले से टीले की हर औरत की कुकीर्ति का छिपा इतिहास जाहिर करते हुए पातू के मुँह पर घोषणा की—"घर मेरा है। मैंने अपनी कमाई से

बनाया है। मैं जिसे चाहूँगी, वही मेरे घर आएगा। तेरा क्या? इसमें तेरा क्या? तू क्या मुझे खिलाता है या कि कभी खिलाएगा? तू अपनी बीवी तो सँभाल।"

पातू ने उसे दो-चार थपेड़े और जमाये। पातू की स्त्री ने घूँघट के अन्दर से ननद को गाली देना शुरू कर दिया था। मजलिस गरम हो उठी। उत्तेजित शोर हाथापाई पर शायद पहुँच ही रहा था कि आग जल उठी उधर...

दो दिनों की उत्तेजना, तिसपर आग लगने से बेघर होने के असीम दुःख ने उसे मुँहबन्द ज्वालामुखी-सा कर दिया था। वह चुपचाप ही काम कर रहा था कि इतने में उसकी स्त्री की रुलाई कानों में पहुँची। अपनी गाय-बकरियों को पास के खजूर-तले खूँटों में बाँधकर बत्तखों को बगल के तालाब में छोड़कर अब वह पति को मदद देने आयी थी। बटोरी हुई राख को टोकरी में भर-भरकर वह घूरे पर फेंकने लगी। पातू खूँखार जानवर-सा दाँत निकालकर गरज उठा, "सुन, यह ऊँ-ऊँ करके तू रो मत, कहे देता हूँ, मारकर हड्डी तोड़ दूँगा।"

घर जल जाने के दुःख से और सारी रात तकलीफ उठाने से पातू की स्त्री का भी मिजाज ठीक नहीं था। वह बन-बिलारी-सी फोंस कर उठी—"क्यों, मेरी हड्डी क्यों तोड़ेगा तू, सुनूँ तो जरा। कहावत भी तो है कि दरबार में हारे और बीवी को मारे। अपनी छिनाल बहन को कुछ कहने की जुर्रत नहीं है—"

पातू से और बरदाश्त नहीं हुआ। वह शेर की तरह उछला। स्त्री को जमीन पर पटककर उसकी छाती पर बैठ गया और गला दबाने लगा।

पातू के घर के ठीक सामने, आँगन के उस किनारे दुर्गा और उसकी माँ का घर था। वे दोनों भी घर की राख की सफाई कर रही थीं। पातू की स्त्री का कहना सुनकर दुर्गा काट खाने के लिए कान फाड़े हुए साँपिन-सी पलटकर खड़ी हो गयी थी, लेकिन पातू को सजा देते देखकर उसने बहू को कुछ नहीं कहा। पुरखिन की तरह भाई से बोली—"हाँ, बीवी को जरा सँभाल, सिर पर मत चढ़ा।"

ठीक ऐसे समय जगन डॉक्टर की बैठी हुई आवाज सुनाई पड़ी—"अरे हाँ-हाँ! छोड़ दे, हरामजादा बजनिया, मर जाएगी वह।"

बोलते-बोलते डॉक्टर ने आकर पातू का बाल खींचा। पातू ने स्त्री को छोड़ दिया और हाँफते हुए कहा, "जरा इस हरामजादी की करतूत देखिए, घर में आग-बाग लगाकर—"

"...पानी, पानी ला। जल्दी। हरामजादा, गँवार कहीं का।" जगन घुटने गाड़कर बैठ गया। पातू की स्त्री बेहोश पड़ी थी। डॉक्टर ने नब्ज देखी।

पातू को अब शंका हुई। उसने झुककर स्त्री का मुँह देखा और अचानक फफककर रो पड़ा—"अरे हाय, मैंने बहू को मार डाला!"

साथ-ही-साथ पातू की माँ चीख उठी, "हाय-हाय, क्या किया रे।" डॉक्टर ने कहा, "अबे, पानी जल्दी ला।"

दौड़कर दुर्गा पानी ले आयी। बैठकर उसने बहू का सिर अपनी गोदी में लिया और उसकी छाती सहलाने लगी। डॉक्टर सपासप पानी के छींटे देने लगा। बोला, "दुरगी, उसके मुँह में मुँह रखकर फूँक तो जरा।"

लेकिन फूँकना नहीं पड़ा। बहू ने लम्बी उसाँस लेकर आप ही आँख खोल दी। कुछ देर में वह उठ बैठी और रोने लगी—"मुझपर अब किसी को ममता करने की जरूरत नहीं। दुनिया में मेरा कोई नहीं है।..." गला बैठ गया था, आवाज नहीं निकल रही थी, फिर भी वह जी-जान से चीखने लगी।

कितने घर जले हैं, गिनकर जगन डॉक्टर ने नोटबुक में लिख लिया। कितने आदमी इस आफत के शिकार हुए, यह भी लिखा। रिपोर्ट अखबार में भेजनी थी। इस बीच मजिस्ट्रेट साहब को भेजने के लिए उसने दरख्वास्त तैयार कर ली थी। उसने आस-पास के चार-पाँच गाँवों से माँगकर पुआल, बाँस, पुराने कपड़े, चावल, रुपये जुटाने के लिए एक सहायता समिति बनाने की भी सोची थी। डॉक्टर ने सबको बुलाकर कहा, "तुम लोग अपने-अपने खेतिहर मालिक के पास जाओ। जाकर उनसे कहो कि हमें दो-दो बाँस, दस आँटी पुआरी, पाँच-सात दिन की खुराक दीजिए। इसके सिवा जो कुछ भी लगेगा—माँग-जाँचकर मैं जुटाता हूँ। मजिस्ट्रेट साहब को एक दरख्वास्त देनी पड़ेगी। मैं लिख-लिखाकर रखूँगा। शाम को सब कोई उसपर अगूँठे का निशान बना देना।"

सभी चुप रह गये। मजिस्ट्रेट के नाम से भड़क गये। साहबों को ये लोग सजा-फैसलावाला ही जानते हैं। सिपाही-दरोगा के बड़े साहब के नाते मजिस्ट्रेट के नाम से ही डर जाते हैं। उनके पास दरख्वास्त भेजकर जाने फिर कौन-सा बखेड़ा खड़ा हो।

जगन ने पूछा, "मैंने जो कहा—समझा तुम लोगों ने?"

सतीश बाउरी ने कहा, "जी हाँ, साहब के पास..."

"हाँ, साहब के पास।"

"फिर न जाने कौन-सा बखेड़ा हो!"

"बखेड़ा कैसा? वे जिले के मालिक हैं। प्रजा के सुख-दुःख की जिम्मेदारी है उनपर। दुःख की खबर पाने पर उन्हें मदद देनी ही पड़ेगी।"

"जी, वो..."

"वो फिर क्या?"

"जी, पुलिस-दरोगा, थाना-वाना, खींच-तान-कैफियत, पूछिए मत, हजार हंगामा।"

डॉक्टर अब बिगड़ उठा। उसकी बात का प्रतिवाद करने से वह बिगड़ उठता

है। फिर लोक-सेवा के वहाने मजिस्ट्रेट के सम्पर्क में आने की उसे बड़ी लालसा थी। यूनियन वोर्ड का मेम्बर होने की आकांक्षा बहुत दिनों की है उसकी : न केवल मान-मर्यादा के लिए, बल्कि देश-सेवा की भी आकांक्षा थी। लेकिन यूनियन बोर्ड की मेम्बरी कंकना के बाबुओं ने ही दखल कर रखी थी। यूनियन के सारे ही गाँव में कंकना के बाबुओं की जमींदारी थी। पिछली बार जगन चुनाव में खड़ा हुआ था। उसे महज तीन वोट मिले। सरकार से मनोनीत मेम्बर होना भी कंकना के बाबू लोगों की ही बपौती-सा था। साहब-सूबा उन्हीं लोगों को पहचानते हैं, उनका जाना-आना कंकना तक ही है। सदस्य-मनोनयन के समय उनकी दरख्वास्तें ही मंजूर हो जाती हैं। इसीलिए ऐसे एक परहित-व्रत के बहाने साहब से भेंट करने की इच्छा जगन को बहुत पहले से है और वह परम काम्य है। अपने उस संकल्प के पूरा होने में बाधा देखकर जगन चिढ़ गया। कहा, "तो फिर मरो। सड़-सड़कर मरो, हरामजादे, बेवकूफ!"

"अरे हुआ क्या डॉक्टर साहब?" कहते हुए ऐन वक्त पर बूढ़ा द्वारका चौधरी पीछे के पेड़-पौधों की आड़ से डॉक्टर के सामने खड़ा हुआ। इन लोगों की इस आकस्मिक विपदा में सहानुभूति दिखाने के लिए वह आया था। यह उसके पुरखों का चलाया हुआ कर्तव्य था। उस कर्तव्य को वह आज भी भरसक निबाहता था। इस व्यवस्था में दया की ही प्रधानता है, मगर कुछ प्रेम भी है।

चौधरी को देखकर डॉक्टर ने कहा, "कम्बख्तों की बेवकूफी तो देखिए। कह रहा हूँ कि मजिस्ट्रेट साहव के पास एक दरख्वास्त दे दें तो कहते हैं कि थाना-पुलिस-दरोगा—बड़ा वखेड़ा है।"

चौधरी ने कहा, "इसके लिए साहब-सूबा की क्या जरूरत है भैया! गाँव के ही पाँच जनों से इनका काम चल जाएगा। मैं इनमें से हर एक को दो गण्डा पुवाल और पांच बाँस दूँगा। इसी तरह से..."

डॉक्टर ने इसके आगे नहीं सुना। उसने तेजी से चलना शुरू कर दिया। जाते-जाते कह गया, "आना फिर कभी मेरे पास।" कुछ दूर चले जाने के बाद रुककर चिल्लाया, "कल रात कौन कहाँ था रे? कल रात?"

चौधरी ने जरा सोचकर कहा, "लेकिन दरख्वास्त देने में ही क्या हर्ज है भैया सतीश? डॉक्टर तो कह ही रहा है, और साहब की कृपा अगर हो जाए तो तुम लोगों का ही भला होगा। जाना डॉक्टर के पास।"

सतीश बोला, "कोई हंगामा तो नहीं होगा चौधरी बाबा! हमें उसी का डर है।"

"डर काहे का? हंगामा होने का तो कुछ लगता नहीं है। न, कोई हंगामा नहीं होगा।" चौधरी ने कहा।

तीसरे पहर सब लोग डॉक्टर के पास पहुँचे। आया नहीं केवल तो एक पातू।

डॉक्टर खुश हो उठा था। उसने अच्छी तरह से सबको देख लिया और पूछा, "पातू कहाँ है, पातू?"

सतीश ने कहा—"जी वह नहीं आएगा। उसने कहा है कि अब वह इस गाँव में ही नहीं रहेगा।"

"गाँव में ही नहीं रहेगा? क्यों, इतना गुस्सा किस लिए?"

"यह तो सरकार, वही जाने। वह नदी पार जंक्शन में रहेगा। कहता है, जहाँ मजूरी करूँगा, वहीं रोटी मिलेगी।"

"और देवोत्तर की जमीन?"

"छोड़ देगा। कहता है, उससे पेट नहीं भरता तो लेकर क्या करना! बड़े आदमी की बात छोड़िए आप। पातू बजनिया बड़ा आदमी है—वकील बालिस्टर।"

"अहा, वही हो। वह बड़ा आदमी हो। तुम्हारे मुँह में फूल-चन्दन।"

सबके पीछे दुर्गा थी। वहीं फोंसकर उठी। उसके बाद बोली, "वह अगर गाँव छोड़कर चला ही जाए तो लोगों का क्या? यह वकील-बालिस्टर—सात-सत्रह किस लिए? वह चला ही जाए तो भला तो तुम्हीं लोगों का होगा। इस भीख का तुम्हें मोटा हिस्सा मिल सकेगा।"

डॉक्टर जगन ने डाँट बतायी—"ठहर, ठहर दुर्गा।"

"क्यों ठहरूँ, किस लिए? इतनी बात ही क्यों!"—मुँह फेरकर वह अपने टोले की तरफ चल पड़ी।

"अरी ओ दुर्गा! अँगूठे का निशान बना जा।"

"नहीं बनाऊँगी।"

"तो समझ लो कि सरकारी रुपये में से कुछ भी न मिलेगा तुझे।" अबकी वह मुड़ी और मुँह बिदकाकर बोली, "मैं ठप्पा देने नहीं आयी थी। देह में दम रहते भीख क्यों माँगने लगी। छिः!" मुड़कर वह फिर अपनी राह चल पड़ी।

रास्ते में बाँस की झाड़ियों से घिरा पाल का पोखरा पड़ता है। वहाँ पहुँची तो देखा, छिरू पाल छिपा खड़ा है। दुर्गा ने हँसकर दोनों पंजा दिखाते हुए कहा—"रुपया चाहिए—इतना! घर बनाना है। समझा?"

श्रीहरि ने उसपर ध्यान न दिया। पूछा, "यह दरख्वास्त क्या पड़ रही है?"

"मजिस्ट्रेट के पास। घर जल गये हैं इसीलिए।"

"साला डॉक्टर मुझी को दोषी बनाकर दरख्वास्त दे रहा है, क्यों? साले को...।" श्रीहरि का चेहरा भयानक हो उठा।

दुर्गा ने गम्भीर होकर पैनी निगाह से छिरू को देखा। वह अपराधी को पहचान गयी—"आग तुमने ही लगायी है।"

"किसने कहा? देखा है, तुमने?"

"हाँ, जरूर देखा है।"

"चुप! जितना माँग रही है, उतना ही रुपया दूँगा।"

दुर्गा ने जवाब नहीं दिया। होठ बिचकाकर अजीब नजर से छिरू को ताककर चली गयी। पोपले मुँह से हँसकर छिरू अपनी राह लगा।

आठ

दुर्गा देखने में सुन्दर और सुडौल है। उसके शरीर का रंग तक गोरा है, जो उसकी स्वजाति के लिए जितना दुर्लभ है, उतना ही आकस्मिक। इसके सिवा उसके रूप में ऐसी एक सहज मादकता है, जो साधारणतः आदमी के मन को मुग्ध करती है—बरबस खींचती है!

पातू ने खुद ही द्वारका चौधरी से कहा था कि मेरी माँ हरामजादी को आप जानते ही हैं! उस दई मारी की आदत नहीं गयी।... दुर्गा के रूप की यह आकस्मिकता उसकी माँ के उसी स्वभाव का जीता-जागता प्रमाण है।

इस स्वभाव को दबाने के लिए कोई सजा या उसे बदलने के लिए किसी आदर्श का संस्कार इन सबके समाज में नहीं है। थोड़ी-बहुत ऐसी उच्छृंखलता तो पति तक देखकर भी नहीं देखते। खास करके उस उच्छृंखलता से अगर ऊँची जाति का कोई पैसेवाला आदमी सम्बन्धित हो। लेकिन दुर्गा की उच्छृंखलता तो उस हद को भी पार कर गयी थी। वह एक ही स्वेच्छाचारिणी थी—ऊँच-नीच की किसी भी सीमा को लाँघनें में उसे हिचक न थी। आधी रात को वह कंकना जमींदार के विलासभवन में जाती। यूनियन बोर्ड के अध्यक्ष को वह जानती थी। लोग कहते, दरोगा-हाकिम भी उसके अजाने नहीं। एक दिन जिला-परिषद् के उपाध्यक्ष श्री मुखर्जी से गहरी रात में परिचय कर आयी। दफादार उसके साथ-साथ पहरेदार बनकर गया था। दुर्गा को इसका अभिमान होता, अपने को वह अपनी जाति के और लोगों से श्रेष्ठ मानती। अपने कलंक को वह छिपाती नहीं। उसके इस स्वभाव के लिए लोग उसकी माँ को ही जिम्मेदार ठहराते,—कि शायद माँ ने ही बेटी को पति से छुड़वाकर यह रास्ता दिखाया है। लेकिन वास्तव में इस बात की जिम्मेदार उसकी माँ नहीं थी। दुर्गा का ब्याह कंकना में हुआ था। उसकी सास वहाँ के किसी बाबू के घर झाड़दारनी थी। एक दिन सास बीमार पड़ी तो दुर्गा एवज में काम करने गयी। घर का काम-काज जब हुआ तो बाबू के नौकर ने बगीचे का घर बुहारने के

लिए अकझक करके उसे एक कमरे में दाखिल कर दिया। इस कमरे में बाबू थे। *घबराकर दुर्गा दरवाजे की ओर लौटी। अरे! दरवाजा तो बाहर से बन्द है!...*

घण्टे-भर बाद वह घर लौटी। कपड़े की कोर में पाँच रुपये का एक नोट बँधा था। डर से, बेचैनी से और साथ ही बाबू की दुर्लभ कृपा तथा पैसा पाने के आनन्द से वह सीधे वहीं से अपनी माँ के पास मैके भाग आयी थी। सारा किस्सा सुनने के बाद उसकी माँ की आँखों में एक अजीब दृष्टि फूट उठी थी—मानो उसकी आँखों के सामने सहसा एक प्रशस्त रास्ता झलक आया। उसने अपनी बेटी को वही रास्ता दिखा दिया। उसके बाद से तो दुर्गा उसी रास्ते चलती आयी है।

छिरू पाल से दुर्गा का निरा व्यावसायिक नाता था। उसके लिए दुर्गा के मन में स्नेह और करुणा कभी न थी। आज छिरू पाल के प्रति उसके मन में बेहद घृणा और क्रोध हो आया। पातू से उसका जितना ही बिगाड़ क्यों न रहा हो, जाति-भाइयों को कितना ही गिरा हुआ क्यों न सोचती रही हो, आज उनके लिए उसने ममता का अनुभव किया। वह सारे रास्ते यही सोचती आयी थी कि छिरू की शराब में यदि जहर मिला दे तो कैसा हो?

"डॉक्टर ने क्या कहा, बेचेगा गाँछ?"—सवाल दुर्गा की माँ ने किया। चिन्ता में डूबती-उतराती वह कब घर पहुँच गयी थी, खयाल ही न था।

अकचकाकर दुर्गा ने कहा, "नहीं।"

"नहीं बेचेगा?"

"मैंने पूछा नहीं।"

"हाय राम, तो फिर तू गयी क्यों वहाँ?"

दुर्गा ने सिर्फ एक बार टेढ़ी और तीखी निगाहों से माँ की तरफ देखा। कोई जवाब नहीं दिया।

माँ अपनी बेटी की देह की कमाई पर जी रही है—उसकी तीखी नजर देखकर वह सकुचाकर चुप रह गयी। जरा देर बाद वह फिर बोली, "पैकार हमदू शेख आया था।"

दुर्गा ने अबकी भी जवाब नहीं दिया। माँ ने फिर कहा, "वह फिर आएगा। अभी धर्मराजतला में लोगों से बतिया रहा है।"

अब दुर्गा बोली, "क्यों? जरूरत क्या है? मैं गाय-बकरी नहीं बेचूँगी!" दुर्गा के बहुत-सी बकरियाँ थीं, कुछ गायें भी थीं और एक बछड़ा भी था। अगलग्गी की खबर पाकर शेख आप ही दौड़ा आया था। यहाँ वह गाय-बकरियाँ खरीदा करता था, जरूरत पड़ने पर चार-आठ आने से लेकर दो-चार रुपये तक पेशगी भी देता था। बाद में गाय-बकरी लेकर सूद समेत वसूल हो जाता था। आज भी वह गाय-बकरियाँ ही खरीदने आया था। किसी-किसी को पेशगी भी देगा। इतनी बड़ी विपदा टोले के लोगों पर आयी, लोगों की इस जरूरत की घड़ी में हमदू रुपये कर्ज

लेकर आया। दुर्गा के बछड़े के लिए उसने बहुत बार खुशामद की थी, दुर्गा ने बेचा नहीं। आज वह फिर उसी मंशा के साथ पहुँचा, बल्कि दुर्गा की माँ को चार आने पैसे भी दिये। पश्चिम की ओर मुँह करके वादा भी किया कि सौदा हो जाने पर और चार आने देगा। बेटी की बात माँ को जरा भी अच्छी न लगी। जरा झुँझलायी-सी बोली, "बेचोगी नहीं तो घर कैसे बनेगा, सुनूँ तो जरा?"

"तेरा बाप पैसे देगा, समझ गयी हरामजादी! मैं जड़ाऊ-चूड़ी बेचूँगी साखे की।" दुर्गा ने गहने भी गढ़ाये थे दो-चार सोने के, बेशक मामूली-से थे, मगर उन्हीं में उसके लिए सपने साकार थे।

दुर्गा की माँ अब बारूद-सी भड़क उठने को हुई। मगर दुर्गा उससे दबनेवाली न थी, उसने पूछा "हमदू शेख से कै आने लिये? क्या समझती है कि मैं कुछ नहीं समझती! मैं धान-चावल का भात नहीं खाती—क्यों?"

माँ के क्रोध का बारूद फटने-फटने को होकर बिखर गया। वह अचानक रोने लगी—"मेरे पेट की बच्ची होकर तूने मुझे इतनी बड़ी बात कह दी!" वह बोली।

दुर्गा ने परवा न की। कहा, "रहने दे, बहुत हुआ! अभी यह तो बता कि भैया कहाँ गया? भाभी कहाँ गयी?"

माँ रोती गयी, दुर्गा के सवाल का जवाब उसी में था—"मेरे गरभ में आग लग जाए तो अच्छा। पत्थर मारना चाहिए मेरे कलेजे में। जीते जी मुझे जला-जला के मारा। जैसा बेटा, वैसी ही बेटी! बेटी चोर कहती है और बेटा तो दुनिया से बाहर ही है! सब लोगों ने ताड़ का पत्ता काट-काटकर अपना घर छाया है और मेरा बेटा गाँव छोड़कर चला। मरे वह, मरे, अगहन की सर्दी मैं सन्निपात से मरे।"

बड़ी रुखाई से दुर्गा ने कहा, "मैं पूछती हूँ, रसोई-पानी भी करेगी कि री-री करके रोती ही रहेगी। भकोसना है कि नहीं?"

"नहीं बाबा, अब भकोसना नहीं है। उससे तो फाँसी लगाकर मरना ठीक है मेरे लिए।"—माँ ओर जोर से रोने लगी।

दुर्गा कुछ बोली नहीं। अन्दर से लाकर गाय बाँधनेवाला पगहा उसने माँ के पास डाल दिया—फाँसी लगाने के लिए। और उसके बाद वह आग की खोज में निकल गयी।

हरिजन-टोले की बैठक का स्थान—धर्मराज का बकुलतला। बहुत दिनों का पुराना पेड़—डाल-पत्तों में काफी फैला हुआ। पेड़ के धड़ का बहुत अंश खाली है। बहुत पहले किसी प्रचण्ड आँधी से उखड़-सा गया था और तब से लगभग गिरी हुई हालत में ही आज तक जिन्दा है। इस तरह गिरी हुई हालत में शायद ही कहीं किसी ने पेड़ देखा हो? यह धर्मराज की अनोखी महिमा ही है और क्या! पेड़ के नीचे माटी

के घोड़ों का ढेर है। मन्नत मानकर लोग धर्मराज को घोड़ा दे ज़ाते हैं। आस-पास की छाँह-भरी जगह खूब साफ-सुथरी है। टोले का हर कोई रोज सवेरे वहाँ गोबर का एक गोला बना जाता है लीपकर। वे सारे गोल आकार एक हो गये हैं और इसी बहाने सारी ही जगह लिपी-लिपायी हो गयी है। वहीं बैठकर हमदू शेख गाय-बकरियों का मोल-भाव कर रहा था लोगों से। कुछ हटकर पाँच-सात बकरियाँ और दो गायें बँधी थीं। यह सब खरीदी जा चुकी थीं।

टोले की मर्द-सूरतें जगन डॉक्टर के यहाँ गयी थीं। हाट का कार-बार औरतों से चल रहा था। औरतों में कोई उसकी मौसी थी तो कोई फूफी, कोई चाची और कोई भाभी। वह एक खस्सी का दर-दस्तूर कर रहा था, किसी बाउरी[1] भाभी से। कह रहा था–"तू ही बता भाभी, इसमें भी क्या है। सिर्फ चमड़ा और हड्डियाँ ही तो हैं। पाँच सेर भी तो गोश्त नहीं निकलेगा। बहुत निकलेगा तो तीनेक सेर। मैं सवा रुपये दे रहा हूँ, क्या बेजा दे रहा हूँ। और भी पाँच जने तो हैं। वही कहें। और फिर ऐसे वक्त लेता कौन है! गर्ज तुझे है अभी कि औरों को!"–कहते-कहते उसने आवाज दी- "अरी ओ दुर्गा दीदी? जरा सुन तो लो। तेरे यहाँ पाँच बार गया मैं। सुन!"

दुर्गा आग की खोज में चली थी। दूर से ही बोली, "मैं नहीं बेचूँगी।"

"अरे बाबा, न बेचेगी न सही। बेचने को नहीं कहता हूँ। सुन तो जा।"

"क्या कहना है कहो?" दुर्गा करीब आयी।

"अरे बाप रे, दीदी तो बिलकुल घोड़े पर सवार है!"

"हाँ, लौटकर रसोई करनी है। क्या कहना है कहो?"

"मैं तो तेरे ही काम की कह रहा हूँ। पूछता हूँ, टीन से घर छाओगी? मेरी जान में सस्ता टीन है।"

"टीन?"

"हाँ री। बिलकुल नया। कलवाले बेचेंगे, लोगी! एकबारगी निश्चिन्त हो जाओगी। सोच देखो। कुल चालीस-पचास रुपये!"

दुर्गा ने कुछ क्षण सोचा। मन की आँखों से देखा, छप्पर पर टिन। धूप की रोशनी में चाँदी के पत्तर-सा झकझका रहा है। लेकिन तुरन्त अपने को जब्त करके उसने कहा, "ऊहूँ, न!"

"तेरे पास रुपये न हों तो मुझे बाद में दे देना। छह महीने, साल-भर बाद।"

दुर्गा ने हँसते हुए गरदन हिलाकर कहा, "ऊहूँ। उस बछड़े से तुम हाथ धो लो हमदू भाई। इसे मैं अभी दो साल तक नहीं बेचूँगी।"–और बदन को झटकाकर वह चली गयी।

---

1. एक जाति

आग लेकर घर लौटी तो देखा, पगहा ज्यों का त्यों पड़ा है, माँ ने उसे छुआ नहीं है। चूल्हा सुलगाकर वह पातू से बहस कर रही है। ताड़ के पत्तों के दो बड़े-बड़े बोझे आँगन में पटककर हाँफते हुए गुस्से में शेर की तरह माँ को ताक रहा है। पातू की बहू लकड़ी-काठी बटोरकर जमा कर रही है। रसोई चढ़ाएगी।

दुर्गा ने बिना भूमिका बाँधे ही कहा, "भौजी, रसोई नहीं बनानी पड़ेगी। मैं बना रही हूँ, साथ ही खाएँगे सब!"

पातू ने दुर्गा की ओर मुड़कर कहा, "जरा देख ले दुरगी, माँ की जबान देख ले। जो मुँह में आ रहा है, वही बके जा रही है! अच्छा नहीं होगा, मैं कहे देता हूँ।"

"तो मैं ही क्या करूँ, बता? अब तक मुझसे ही उलझ रही थी। माँ है, पेट में रखा है। भगा नहीं सकते, खून नहीं कर सकते।..."

"तेरी बात बिलकुल सही है। मगर इस गाँव में कौन-से सुख के लिए रहूँ, तू ही बता?"

"तो क्या सच ही तू गाँव छोड़ देगा? पुश्तैनी घर भूल जाएगा?"

पातू कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "तभी तो देख इतनी देर करके भी यह ताड़ के पत्ते काट लाया हूँ दुरगी! नहीं तो दोपहर को जंक्शन के कारखाने में नौकरी और घर ठीक कर आया था।..."

वह दोनों हाथ फैलाकर उसी में सिर गाड़कर नीचे देखने लगा। दुर्गा ने कहा, "उठ। वह देख, मेरे बाँस हैं वहाँ; उन्हें ऊपर चढ़ा और ताड़ का पत्ता डालकर बाहर हाल ढक दे। तू ऊपर जा, मैं और भौजी सब चढ़ा देती हैं। बाप-दादों का घर छोड़कर कोई जाता है भला!"

एक उसाँस लेकर पातू उठा। दुर्गा ने आँचल को कसकर कमर में बाँधा और बोली, "अरे वही सतीश! सतीश बाउरी! वह कम्बख्त डॉक्टर को कहता था कि—पातू बजनिया, बड़ा आदमी है—वकील-बालिस्टर! सो मैंने तो कह दिया—अहा, तेरे मुँह में फूल-चन्दन पड़े। बोला, 'बड़ा आदमी है। गाँव छोड़कर चला जाएगा'। चला जाएगा तो घर-द्वार तुम लोगों को दान दे जाएगा। तुम लोग भोगना!"

बिलारिन-सी मोटी-ताजी पातू की स्त्री मिहनत खूब कर सकती है। छोटे पाँव तेजी से लट्टू की तरह घुमाती रहती है। वह इसी बीच बाँसों को आँगन में खींच लायी थी।

नौ

सारे टोले को जलाने की नीयत श्रीहरि की नहीं थी। लेकिन जब स्वाहा हो ही गया तो उसका भी अफसोस उसे नहीं हुआ। जल गया तो ठीक ही हुआ। बीच-बीच में ऐसा विपर्यय हुए बिना ये छोटे लोग नवते नहीं—कम्बख्तों का दिमाग ऊँचा होता जा रहा था। हाथ की मार से कुछ नहीं होता, भात की मार चाहिए। यानी जीविका छीनने से आदमी झुकता है। बाघ-जैसे जानवर को पिंजड़े में डालकर भूखा रख के आदमी पालतू बनाता है।

इन बातों में छिरू का गुरु था दुर्गापुर का स्वनामधन्य त्रिपुरा सिंह। दुर्गापुर यहाँ से दसेक कोस दूर होगा। श्रीहरि की ननिहाल वहीं है। उसका नाना त्रिपुरा सिंह की खेती-बारी की देखभाल करता था। छुटपन में श्रीहरि अपने ननिहाल जाता था। उस समय उसने त्रिपुरा सिंह को देखा था। लम्बी-तगड़ी देह, जाति का राजपूत। शुरू में त्रिपुरा सिंह एक मामूली आदमी था। कुछ बीघा जमीन ही कुल जायदाद थी उसकी। उस जमीन में वह राक्षस की तरह परिश्रम करता था। साथ ही वह जमींदार के यहाँ भी काम करता। तम्बाखू का व्यापार करता था। हाथ में लाठी और माथे पर तम्बाखू का बोझा लिए वह एक गाँव से दूसरे गाँव जाया करता था। इस तरह धीरे-धीरे महाजनी शुरू की। उस महाजनी से पहले तो अच्छा जोतदार और अन्त में जमींदार की जमींदारी का कुछ हिस्सा खरीदकर छोटा-मोटा जमींदार बन बैठा था। त्रिपुरा सिंह की दाढ़ी बड़े शौक की थी। उसका गलपट्टा बाँधकर मूँछ ऐंठते हुए कहता—श्रीहरि ने अपने कानों सुना है—"मैंने इस गाँव को तीन बार जलाया, तब जाकर इन कम्बख्तों ने मेरी धाक मानी।"

हा-हा-हा हँसते हुए जब त्रिपुरा सिंह कहता, "जब-जब घर जला, सालों ने कर्ज लिया। जो कम्बख्त पहली बार चकमे में नहीं आया, वह दूसरी बार में आया; जो दूसरी बार भी नहीं आये वे तीसरी बार आकर झुक गये।" ये बातें कहने में सिंह को जरा भी हिचक नहीं होती थी। कहता, "बड़े-बड़े जमींदारों की टिप्पन-जनमपत्री ले आओ, देखोगे कि सबने यही किया है। मेरे दादा रतनगढ़ के जमींदार के पाले हुए डकैत थे। डकैती बाबुओं का पेशा था। सीता नगर के चटर्जी बाबुओं ने अभी-अभी उस रोज तक डकैती निबाही है।"

त्रिपुरा सिंह ने जो बातें अपनी जबानी नहीं सुनायीं या इतिहास का जो हिस्सा उसके मुँह से सुनना श्रीहरि को नसीब नहीं हुआ, वह उसे उसके नाना ने सुनाया। रात में खा-पी चुकने के बाद तम्बाखू पीते हुए बीते दिनों की बातें नाती को सुनाया करता था—"त्रिपुरा सिंह की शक्ति की कहानी तो रूपकथा-सी है। उसकी जमीन के पास ही बहुबल्लभ पाल की थोड़ी-सी जमीन थी—दसेक कट्ठा। उस जमीन के लिए उसने एक सौ रुपया तक देना चाहा था। लेकिन बहुबल्लभ की दुर्गति कहिए,

या माया, उसने हर्गिज न दी। वर्षा बीतते-बीतते एक दिन रात अकेले कुदाली चलाकर सिंह ने दोनों खेतों को ऐसे आकार-प्रकार का कर दिया कि खुद बहुबल्लभ भी नहीं बता सका कि लम्बाई-चौड़ाई में उसकी जमीन के चारों कोने कहाँ थे। बहुबल्लभ ने नालिश की थी। मुकदमे में वह हार तो गया ही, ऊपर से यह भी हुआ कि कई रोज बाद जब उसकी जवान बीवी पानी लाने घाट गयी तो लौटी नहीं। रास्ते में साँझ के धुँधलके में कोई उसके मुँह में कपड़ा ठूँसकर उठा भागा।"

बूढ़ा धीरे-धीरे कहता, "अब वह औरत बूढ़ी हो गयी है। सिंहजी के यहाँ दाई का काम करती है। इस तरह की सिंहजी के यहाँ एक नहीं, पाँच-सात दाइयाँ हैं।"

त्रिपुरा सिंह की सूझ-बूझ और दूरदर्शिता के लिए बूढ़े की श्रद्धा का अन्त नहीं था। कहता, "सिंहजी लक्ष्मीवन्त हैं। विषय-बुद्धि भी उनकी वैसी ही है! जमींदार के यहाँ काम करते-करते ही उन्होंने समझ लिया था कि इस घर की अब वह बात नहीं। लाट दाखिल करने की रकम आती है महल से। लेकिन दाखिल करने का समय निकल जाता। सो त्रिपुरा सिंह ने स्वयं उधार देना शुरू किया। जब भी जरूरत पड़ी उन्होंने ना नहीं कहा, कभी अपने पास नहीं होता तो आठ आने सूद पर लाकर रुपये सैकड़े के हिसाब से अपने बाबुओं को दिया। उसके बाद सूद-मूल सब जोड़कर हैण्डनोट बदलकर अन्त में जब धर दबाया तो बाबुओं की जमींदारी ही हाथ आ गयी। क्षण जन्मा लक्ष्मीवन्त आदमी..."—कहकर उसने मालिक को प्रणाम किया।

श्रीहरि का बाप सफल खेतिहर था। एड़ी-चोटी का पसीना एक करके उसने परती जमीन को बढ़िया खेत बनाया था। श्रम और संयम से उसने अपने आँगन को धान की मोरियों से एक मनोरम श्रीभवन बना दिया था। बाप के गुजर जाने के बाद जब दौलत श्रीहरि के हाथों आयी तो उसे अपने नाना के स्वनामधन्य मालिक त्रिपुरा सिंह की याद आयी। मन-ही-मन उसी को आदर्श मानकर उसने जिन्दगी का सफर शुरू किया। मेहनत में वह कतई कोताही नहीं करता, फसल भी खूब होती। मगर उस फसल को वह अपने बाप की तरह सिर्फ सहेजकर नहीं रखता, सूद पर उधार दिया करता। सैकड़े पचीस से पचास तक सूद। एक मन उधार दिया तो साल के आखिर में सवा या डेढ़ मन वसूला। यह श्रीहरि का कोई जुल्म-जहर नहीं था, सूद की यही दर चालू है। चूँकि आमतौर से यही दर चालू थी इसलिए उधार लेनेवाले इसे ज्यादा नहीं समझते बल्कि मौके पर देने के कारण महाजन के अनुगृहीत होते। यह नहीं कि लोग श्रीहरि की खातिर नहीं करते, असल में जितनी होती है श्रीहरि उसे काफी नहीं समझता। उसे ऐसा महसूस होता है कि उस मौखिक श्रद्धा की आड़ में लोग उससे डाह करते हैं, उसकी बरबादी चाहते हैं। इसीलिए कभी-कभी उसके जी में आता कि सारे गाँव को फूँककर लोगों को सर्वहारा बना दे। राह चलते जगन डॉक्टर-जैसे दुश्मन के घर पर नजर पड़ते ही बिजली की तरह उसकी वह इच्छा कौंध जाती। लेकिन त्रिपुरा सिंह-जैसा भयंकर साहस उसमें नहीं। न ही वह जमाना है।

त्रिपुरा सिंह अपनी जो इच्छा पूरी कर लेता था, जमाने के लिहाज से श्रीहरि को अपनी वह इच्छा जब्त करनी पड़ती। इसके सिवा श्रीहरि का अन्याय-बोध समय के अन्तर के अनुसार त्रिपुरा सिंह से कुछ ज्यादा था।

चूँकि त्रिपुरा सिंह से उसका अन्याय-बोध ज्यादा था इसीलिए वह रातवाली घटना के लिए अपने ही मन में तरह-तरह की सफाई दे रहा था। बड़ी देर तक बैठे रहने के बाद वह उठा और उस स्वाहा हुए टोले की तरफ चला। लेकिन जाते-जाते भी कई बार पलटा। अजीव सकुचाहट-सी हो रही थी उसके भीतर। अन्त में अपने चरवाहे के घर जाने की सोच वह आगे बढ़ा। घर का चरवाहा—ऐसी आफत के समय उसको खोज लेना फर्ज था। उसे कुछ कहे, ऐसी मजाल किसे थी, आप ही आप वह जोर से बड़बड़ा उठा—"ऐ!..." शायद जो भी उसे कुछ कहता, मन-ही-मन उसने उसे पहले ही डपट दिया। इस तरह दरअसल उसने अपने मन में उठे हुए बेबस संकोच को डाँट बतायी।

चरवाहा अपने मालिक से यम की तरह डरता था। छिरू के वहाँ जाकर खड़े होते ही उसने समझा कि आज चूँकि नहीं गया हूँ, इसलिए वह उसकी गरदन पकड़ने आया है। बेचारा लड़का रो उठा—"जी, घर जल गया है इसलिए..."

जले हुए टोले की हालत अपनी आँखों देखने के बाद मन-ही-मन श्रीहरि को भी थोड़ी-सी लज्जा आयी। उसने स्नेह से उस लड़के को कहा, "तो रो क्यों रहा है? दैव के ऊपर कोई बात नहीं। किया क्या जाए? आखिर किसी ने आग लगा तो नहीं दी है!"

चरवाहे बालक के बाप ने कहा, "लगा कौन देगा सरकार, और लगाएगा भी क्यों? हमने किसी का क्या बिगाड़ा है कि कोई हमारे घर में आग लगाएगा!"

श्रीहरि चुपचाप जले हुए घरों की ओर ताक रहा था। चरवाहे बालक के बाप ने कहा, "छोटे लोगों का काम, सूखी पतई में आग पकड़ गयी होगी—और क्या।"

"सुन। जितना पुआल लगे मेरे यहाँ से ले आ। लकड़ी-बाँस भी ले लेना—छौनी कर ले।" फिर उस लड़के से कहा, "मेरे यहाँ से दस सेर चावल ले आ जाकर। बल्कि कल धान भी ले लेना—समझा?"

लड़के का बाप एक प्रकार से श्रीहरि के पैरों पर लोट गया।

इस बीच और भी दो-एक जने आ खड़े हुए थे। एक ने हाथ जोड़कर कहा, "जी, थोड़ा-बहुत करके हमें भी अगर धान देते..."

"धान?"

"जी। उसके बिना तो भूखों मरने की नौवत होगी।"

"खैर, आज हर घर को पाँच सेर के हिसाब से चावल दे देता हूँ। थोड़ा-बहुत धान भी दूँगा, लेकिन कल। धान का दिन कल है। और..."

"जी..."

"सबको दस गण्डा पुआल दूँगा। टोले में सबको कह देना।"

"जय हो! आपकी जय-जयकार हो। दूध-पूत से फलें आप।"—श्रीहरि की उदारता से अभिभूत होकर वह आदमी दौड़कर मुहल्ले में गया। यह खबर हर किसी को देने के लिए वह छटपटा उठा।

श्रीहरि के देने की उदारता से जिस प्रकार ये गरीब और अपढ़ लोग अभिभूत हो उठे, उसी प्रकार श्रीहरि भी उनकी निश्छल कृतज्ञता से अभिभूत हो उठा। महज मामूली-से दान के भार से एक पल में वे सब पैरों पर झुक गये। श्रीहरि को खास तौर से यह लगा कि जो अपराध मैंने गयी रात में किया है वह मानो उन्हीं लोगों की गीली आँखों की अश्रुधारा में देखते-ही-देखते बिलकुल धुल गया। भाव के आवेग से श्रीहरि का भी गला रुँध आया था। उसने कहा, "आ जाना मेरे पास। धान-चावल, पुआल ले आना।" वह बहुत-कुछ हलका और निर्मल मन लेकर घर लौटा।

घर लौटते हुए उसने बहुत-बहुत कल्पनाएँ कीं : गरमी के दिनों में अभाव से लोगों को आखिर कष्ट ही होता है। पीने के पानी के लिए औरतों को नदी तक जाना पड़ता है। इज्जत के नाते जो नहीं जातीं उन्हें पोखर का गन्दा और बदबूवाला पानी पीना पड़ता है। मैं एक कुआँ खुदवा दूँ...

गाँव की पाठशाला के सामान के लिए पिछली बार घर-घर की खाक छानी, लेकिन पाँच रुपया भी चन्दा नहीं मिला। मैं सामान के लिए पाठशाला को पचास रुपया दूँगा।...

और भी बहुत-कुछ। गाँव के रास्ते को मिट्टी डलवाकर पक्का बनवा दूँगा। ...चण्डीमण्डप के माटी-फर्श को सीमेण्ट का बनवाकर अपना नाम खुदवा दूँगा, जैसा कि कंकना के चण्डीमण्डप के संगमरमर की फर्श पर वहाँ के बाबुओं का नाम खुदा है।...

उसके मन की आँखों में आया कि इससे गाँव के लोग सम्मान के साथ कृतज्ञ होकर उसे नमस्कार करते हुए रास्ता छोड़ देंगे।...

आज श्रीहरि के हृदय में नयी अभिज्ञता के कारण अजाने पड़े बीज के अंकुर-सा एक नया मन जाग उठा। ऐसी ही कल्पनाएँ करते हुए गाँव के मैदान में कुछ देर घूम-घामकर जब वह घर लौटा तो दिन प्रायः बीत चुका था। देखा, अपराधी की तरह दरवाजे पर गरीब लोग आकर खड़े हैं। और उसकी माँ कठोर भाषा में गाली-गलौज कर रही है। गाली-गलौज सिर्फ उन अभागों को ही नहीं वल्कि श्रीहरि को भी देने में वह कंजूसी नहीं कर रही थी। श्रीहरि खीझकर ही घर के अन्दर गया। उसे देखकर माँ और जल उठी और बकने लगी, "अरे ओ अभागे, मैं पूछती हूँ—तू दाता कर्ण कब से हो गया? दरवाजे पर टिड्डी का यह दल खड़ा है। कहता है..."

श्रीहरि के नंगे स्वभाव का बड़ा निष्ठुर ढंग है। वैसी स्थिति में वह चीखता-चिल्लाता नहीं—चुपचाप बड़ी भयानक शक्ल बनाकर मनुष्य या पशु को स्थिर भाव से सताता है। श्रीहरि जब ऐसा ही रुख बनाकर आगे बढ़ा तो उसकी माँ पिछले दरवाजे से भाग गयी।

श्रीहरि ने खुद ही सबको चावल दिया और कहा, "धान और पुवाल कल लेना।" और यह भी कहा कि—"माँ की बातों का कुछ खयाल मत करना, समझे।"

एक ने उसके पाँवों की धूल ली। कहा, "जी, ऐसा भी हो सकता है भला?" और, जहाँ तक उसे बुद्धि थी मजाक से उस बात को महज मामूली बना देने के खयाल से बोला, "माँ तो अपनी पगली माँ है। नाराज हुई तो खैर नहीं।"

श्रीहरि ने कोई जवाब नहीं दिया। वह सोच रहा था—यह हरामजादी माँ ही कुछ नहीं करने देगी। अपनी आज की परिकल्पना को साकार करने में इतने रुपये खर्च करने में यह हरामजादी जरूर कोई न कोई अड़ंगा खड़ा कर देगी। काठ के सन्दूक की कुंजी वही आज तक जतन से रखे हुए है। जहाँ रुपये निकालने गया कि आफत होगी। मगर रुपये की वैसी कोई फिकर नहीं है। दो-एक बड़े कर्जदारों से सूद-भर ले लेने से ही काम चल जाएगा।... हाँ-हाँ, वही करना होगा।...

आज की यह मामूली-सी घटना बरगद के एक नन्हे बीज से तुलना करने लायक है। उस छोटे-से बीज में एक विशाल पेड़ की सम्भावना छिपी है। उसी सम्भावना की शुरुआत में ही श्रीहरि मानो अपने अब तक के छूटे हुए अन्धकार और बदबू-भरे जीवन-सौध के हर कमरे में—देह की हर गाँठ में—हर जोड़ में एक अजीब स्पन्दन का अनुभव करने लगा। वह सौध मानो फटकर चौकोर हो जाएगा।

दस

यूनियन बोर्ड का मुहर लगा हुआ एक परचा लिए भूपाल चौकीदार जा रहा था, उसके आगे-आगे डौंड़ी पीटता जा रहा था पातू।

"एक हफ्ते के अन्दर आषाढ़ और क्वार—इन दो किस्तों की बाकी लगान जमा न कर देने पर जुर्माना सहित ड्योढ़ा टैक्स बजरिए कुर्क के वसूल किया जाएगा..."

जगन डॉक्टर सुनकर आग हो गया। बोला, "क्या?... क्या किया जाएगा?"

भूपाल ने डरते हुए कागज उसकी ओर बढ़ा दिया, "जी, देखिए न।"

जगन ने सख़्त नजर से भूपाल की ओर ताकते हुए कहा, "सरकारी वरदी पहनकर माथा नवाना भूल गया तू तो!"

अप्रतिभ हो भूपाल जल्दी-जल्दी जगन के पैरों की धूल अपने माथे में लगाकर कहा, "जी, भला यह भी भूल सकता हूँ! आप ही लोग तो माई-बाप हैं!"

पातू बोला, "और क्या!"

नोटिस देखकर जगन गरज उठा, "ठट्ठा है! यह कोई बपौती जमींदारी है! लोगों की फसल खेतों में खड़ी रही और बाबुओं ने कुर्क की नोटिस निकाल दी! सरकार ने लोगों को उजाड़कर टैक्स वसूलने के लिए कहा है? मैं आज ही दरख्वास्त देता हूँ।"

भूपाल ने हाथ जोड़कर कहा, "हुजूर, हम लोग नौकर ठहरे, जो कहा..."

"हाँ, तुम लोगों का क्या कसूर है? तुम लोग क्या कर सकते हो? पीटो डौंड़ी।"

पातू ने ढोल पर काठी की चोट मारते हुए कहा, "डॉक्टर बाबू, बाईस तारीख को नवान्न है।"

"नवान्न? बाईस को??"

"जी हाँ।"

"यह तू और सबको बता! गाँववालों से मेरा कोई नाता नहीं। मैं जब चाहूँगा, नवान्न करूँगा।"

पातू ने और कुछ नहीं कहा। आगे बढ़ा। डॉक्टर क्रोध के मारे थर-थर काँपते हुए उनकी ओर ताककर बोला, "अरे ऐ पातू, सुन!"

"जी!" वह मुड़कर खड़ा हो गया।

"उस रोज तू दरख्वास्त पर अँगूठे का निशान लगाने नहीं आया? बहुत बड़ा आदमी हो गया है... क्यों? शहर में मकान बनाएगा, मैंने सुना, तू गाँव छोड़ रहा है?"

खीझ से पातू की भँवें सिकुड़ गयीं। लेकिन जवाब नहीं दिया उसने। डॉक्टर अन्दर से दरख्वास्त निकाल लाया और स्नेह से आदेश देते हुए बोला, "ले, लगा दे निशान। तेरे ही लिए मैंने अभी तक दरख्वास्त नहीं भेजी।"

पातू ने बिना ना-नू किये अँगूठे की छाप लगा दी। उस रोज वह आया नहीं। दिन-भर गाँव छोड़ने का संकल्प करता रहा, जंक्शन बाजार तक घूम आया। बात तो वह सामयिक जोशोखरोश की थी। आज भी घड़ी-भर पहले उसने डॉक्टर की बात पर भँवें सिकोड़ीं, सो भी डॉक्टर की बातों की रुखाई के कारण। वरना मदद या भीख लेने में उसे कोई एतराज नहीं। उसने कृतज्ञता के साथ ही अँगूठे की छाप लगायी। छाप लगाकर अँगूठे की स्याही माथे में पोंछते और एहसान जताते हुए

बोला, "डॉक्टर बाबू की तरह गरीबों का उपकार कोई नहीं करता।" डॉक्टर के जूते की धूल उँगली की नोक पर लेकर उसने मुँह और माथे पर लगा ली। भूपाल चौकीदार ने भी उसी तरह किया।

डॉक्टर कुछ सोच रहा था। सोचकर दो-एक बार गरदन हिलाकर बोला, "रुक जा जरा। एक छाप और लगा दे।"

"जी?" पातू ने डरकर पूछा। यानी दोबारा क्यों? अँगूठे के निशान से बहुत डरते हैं ये।

"मैं इस टैक्स अदायगी के खिलाफ दरख्वास्त दूँगा। तुम लोगों का घर स्वाहा हो गया, किसानों की फसल खेत में ही खड़ी है। ऐसी हालत में कुर्क की धमकी! आखिर यह क्या लुटेरों का मुलुक है!"

इस बार पातू का चेहरा डर से सूख गया। यूनियन बोर्ड के हाकिमों के खिलाफ दरख्वास्त! उसने भूपाल चौकीदार की तरफ देखा। वह भी मुश्किल में पड़ गया था। डॉक्टर ने ताकीद की, "लगा, निशान लगा।"

"जी नहीं। यह मुझसे नहीं होगा।" यह कहकर पातू तेजी से चल पड़ा। उसके पीछे-पीछे भागकर भूपाल की भी जान में जान आयी। भूपाल सोचने लगा—'परसीडेण्ट' को खबर कर देनी चाहिए, नहीं तो यह शुबहा होगा कि इस साजिश में मेरा भी हाथ है।

डॉक्टर बेहद नाराज होकर भागते हुए पातू और भूपाल की ओर देखता रहा। कुछ ही क्षणों में वह उबल पड़ा—"हरामजादों की जात! जो तुम लोगों की भलाई करे, वह गधा है।" डॉक्टर दरख्वास्त को फाड़ डालने पर आमादा हो गया।

"फाड़ो मत डॉक्टर, मत फाड़ो।" पाठशाला के गुरु देबू ने मना किया। उसने करीब से ही सब-कुछ देखा था। ऐसे मामलों में उसकी आन्तरिक सहानुभूति थी।

देबू घोष जरा अजीब किस्म का आदमी है। वह गाँवों के पंचों में एक होते हुए भी जैसे सबसे अलग रहता। उसका मतामत भी आम लोगों से अलग है। अपनी दुर्दशा दूर करने के लिए वह मदद की भीख माँगने का हामी नहीं। अनिरुद्ध और छिरू को सीख देने के लिए वह जमींदार की शरण लेने का हिमायती नहीं, लेकिन पंचायत बुलाने में वह अगुआ है। तो भी आज उसने जगन डॉक्टर को दरख्वास्त फाड़ने से मना किया।

डॉक्टर ने कहा, "फाड़ने को मना कर रहे हो? उन कम्बख्तों की भलाई करने को कहते हो? उनकी सारी करनी तो तुमने देखी!"

देबू ने हँसकर कहा, "सो तो देखा, मगर उनपर बिगड़कर भी क्या करोगे बोलो! तुम दरख्वास्त दो, मैं भी दस्तखत करता हूँ, औरों के भी करवा देता हूँ।"

डॉक्टर ने पण्डित को बीड़ी-दियासलाई दी। कहा, "बैठो!" उसके बाद घर की ओर मुँह करके आवाज दी—"मीनू, दो प्याला चाय..."

मीनू डॉक्टर की लड़की है।

डॉक्टर ने फिर कहना शुरू किया, "लोंग सोचते क्या हैं, जानते हो पण्डित? सोचते हैं कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ है। जोर-जुल्म का प्रतिकार होने से बचेंगे सभी, लेकिन राजा हो जाऊँगा मैं!"

देबू ने बीड़ी सुलगायी। दियासलाई डॉक्टर को देते हुए जरा हँसकर कहा, "स्वार्थ तो है डॉक्टर!"

"स्वार्थ!" डॉक्टर ने तीखी किन्तु अचरज-भरी आँखों से देबू की ओर निहारा।

देबू, सुलगायी हुई बीड़ी की आग पर नजर रखकर हँसते-हँसते ही सहज भाव से बोला, "स्वार्थ तो है ही! दस लोगों के बीच तुम्हारा मान होगा, दो दिन के बाद यूनियन बोर्ड के मेम्बर भी हो सकते हो—स्वार्थ नहीं है! मेरा तो अपना खयाल है, स्वार्थ के बिना आदमी दुनिया में टिक नहीं सकता।"

डॉक्टर की पेशानी पर शिकन पड़ गये। बोला, "यह भी अगर स्वार्थ ही है तो साधु-संन्यासी जो भगवान का भजन करते हैं, उसमें भी स्वार्थ है। तब तो वशिष्ठ और बुद्धदेव भी स्वार्थी हैं!"

"स्वार्थ को सँकरे अर्थ में न लो तो यह जरूर सच है। आखिर परमार्थ का भी तो अर्थ है!" देबू ने हँसते हुए कहा।

डॉक्टर ने कहा, "यूनियन बोर्ड का मेम्बर मैं होना चाहता हूँ। जरूर होना चाहता हूँ। मगर वह दस की सेवा करने के लिए होना चाहता हूँ। परलोक-वरलोक और जप-तप में मेरा विश्वास नहीं। छिरू पाल को ही देखो, चोरी करेगा और घर बैठे जप-तप करेगा, धूमधाम से काली-पूजा करेगा, ऐसे धरम-करम को मैं झाड़ू मारता हूँ!"

उसके बाद डॉक्टर ने एक लम्बा भाषण शुरू कर दिया—दुनिया में जीवन को धन्य कौन नहीं करना चाहता? कोई जप-तप से ईश्वर को पाकर धन्य करना चाहता है, कोई लोक-सेवा से धन्य होना चाहता है आदि-आदि। भाषण के जवाब में देबू घोष भाषण दे सकता था, लेकिन उसने दिया नहीं। सिर्फ इतना भर कहा कि "दस का उपकार करना चाहते हो, यह बड़ी अच्छी बात है डॉक्टर! लेकिन गाँव के लोगों को तुम छोटा क्यों समझते हो? आज तुमने कह दिया कि गाँववालों के साथ मैं नवान्न नहीं करूँगा। कई दिनों पहले गाँव में दो-दो सभाएँ हुईं, खुद तो तुम नहीं गये, उलटे तुमने लुहार को उकसा दिया।"

"हरगिज नहीं। गाँववालों के खिलाफ मैंने किसी को नहीं उभाड़ा है। अनिरुद्ध का धान काट लिया, इसलिए मैंने उसे छिरू पर नालिश करने को कहा है, बस।"

"अच्छा मान लिया। पंचायत में क्यों नहीं गये?"

"पंचायत! जिस पंचायत में रुपयों के जोर पर छिरू पाल की पूछ है, वहाँ मैं नहीं जाता।"

"उसकी वह पूछ तुम खत्म कर दो। वहाँ जाकर अपने जोर से खत्म करो। यों घर बैठे रहने से तो वह और बढ़ जाएगा।"

जगन अबकी चुप रह गया।

"अच्छा, यह बताओ गाँववालों के साथ नवान्न क्यों नहीं करोगे तुम?"

डॉक्टर अब संयमित हो गया था। जरा देर बाद बोला, "नहीं करूँगा—ऐसी प्रतिज्ञा तो नहीं की है मैंने।"

देबू ने खुश होकर कहा, "यह हुई बात! दस मिलकर काम करो तो हार-जीत की बात नहीं। जो भी करो, सब एक होकर करो। फिर देखोगे कि तीन ही दिन में सब दुरुस्त! अनिरुद्ध लुहार, गिरीश बढ़ई, तारा हजाम, पातू मोची, यहाँ तक कि छिरू को भी नाक रगड़वाकर छोड़ूँगा। इसके बिना हजार दरख्वास्त करने पर भी कोई लाभ न होगा, डॉक्टर! दुनिया में अकेले तो बाघ और सिंह रहते हैं, मनुष्य नहीं।"

डॉक्टर बोला, "बहुत खूब। मुझे कोई एतराज नहीं। लेकिन एक होने के माने सब काम में एक होना होगा। गाँव को जब गरज पड़े तो जगन डॉक्टर और देबू घोष और यूनियन बोर्ड के वोट का समय आये तो कंकना के बाबू और छिरू पाल..."

देबू ने टोककर कहा, "अबकी तीन नम्बर वार्ड से हम-तुम खड़े होंगे। तब तो होगा?"

देवनाथ घोष—देबू पण्डित जरा स्वतन्त्र-सा आदमी है। अपनी विद्या-बुद्धि पर उसे अगाध विश्वास है। उसकी इस बुद्धि के मामले में चेतना के साथ थोड़ी कल्पना, थोड़ा-सा स्वार्थ मिला हुआ है। विद्या भी वैसी खास क्या है, मगर देबू उसकी दिन-रात चर्चा करता है। खोज-खोजकर वह किताबें जुटाता और पढ़ता है, समाचार पत्रों से एक-एक बात का खबर रखता है। फिर, महाग्राम के न्यायरत्न महाशय का पोता विश्वनाथ एम.ए. का छात्र है और उसका घनिष्ठ मित्र। वह उसे ढेरों किताबें ही ला-लाकर नहीं देता, बातचीत मं भी कितनी-कितनी नयी बातें बता जाता है। इन्हीं सब कारणों से उसे थोड़ा अहंकार भी है। गाँव में अपने बराबर का विद्वान् उसे दूसरा तो नजर नहीं आता! उसके मुकाबले जगन डॉक्टर तक कम पढ़ा-लिखा है। जगन कंकना के हाईस्कूल में फोर्थ क्लास तक पढ़ा, उसके बाद पढ़ना छोड़कर उसने बाप के पास डॉक्टरी सीखी। देबू फर्स्ट क्लास तक पढ़ा है। पढ़ने-लिखने में वह अच्छा ही था, पढ़ता तो मैट्रिक पास करता, अच्छी ही तरह पास करता—इस बात को कंकना के मास्टर आज भी कबूल करते हैं। और देबू का तो खयाल है, यदि पढ़ने का मौका मिलता तो वह स्कॉलरशिप के साथ पास करता। उसके बाद आई.ए., बी.ए.।

उसकी कल्पना दूर-दूर तक उड़ान भरती। वह मजिस्ट्रेट तक हो सकता है—कम-से-कम वह तो ऐसा ही समझता है। और उसने लम्बी साँस ली अपनी बदनसीबी पर।

अचानक बाप की मृत्यु हो गयी। खेती-बारी, घर-गृहस्थी देखनेवाला दूसरा आदमी नहीं था घर में। उसकी माँ बस्ती की दूसरी औरतों की तरह बैहार में घूमा करे, लोगों से मरदों की तरह लड़ती फिरे, देबू की कल्पना में यह भी असह्य हो गया था और बाप के मरने पर घर की हालत डूबने-डूबने-जैसी हो गयी! पास एक कौड़ी नहीं, घर में धान का दाना नहीं। ऊपर से औरों का देना हो गया था। इसी से पढ़ाई छोड़कर वह गृहस्थी में लग गया। लेकिन सन्तुष्ट होकर नहीं, मन में उसके सदा ही एक असन्तोष जगा रहता जो आज तक बना है। कुछ साल पहले जब स्वायत्त शासन के कानून के अन्तर्गत गाँव के स्कूल का भार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और यूनियन बोर्ड ने ले लिया तो खेती-बारी छोड़कर उसने वहाँ मास्टरी कर ली। वेतन बारह रुपये माहवार। खेती बटाई पर लगा दी। लोगों ने अब 'पण्डितजी' कहना शुरू किया और थोड़ा सम्मान भी देने लगे मगर देबू को उससे भी तृप्ति न हुई।

उसका खयाल है, गाँव का श्रेष्ठ व्यक्ति है वह। उसे ही श्रेष्ठ का सम्मान मिलना चाहिए। जंगल के शिशु-सखुए जिस प्रकार लत्तड़ों के कठिन जाल को फाड़कर सबसे ऊँचा सिर उठाना चाहते हैं, उसी प्रकार उद्धत पराक्रम से आज तक वह गाँववालों से लड़ता आया है। लेकिन वह अकेले ही अखण्ड आलोक का भागी होने के लिए ऊपर नहीं उठना चाहता, नीचे की लत्तड़ें उसी के सहारे, उसी के साथ ज्योति के राज्य के अभियान को आकाश की ओर चलें, यह है उसकी आकांक्षा। छिरू पाल की दौलत और उसकी पशुता से वह अन्तर से घृणा करता है। जगन का दिखाऊ देश-प्रेम और आभिजात्य का दम्भ उसके लिए जैसा हास्यास्पद है, वैसा ही असह्य भी। हरीश मण्डल के परम्परागत पंच के दावे को भी वह नहीं मानना चाहता। भवेश और मुकुन्द उम्र के बड़प्पन से पण्डिताई की बात करते हैं, यह भी उसे बरदाश्त नहीं।

देबू के मन में यह उपेक्षा बेशक अहेतुक या महज अहं से ही नहीं उपजी है। अपने गाँव को वह प्राणों से प्यार करता है। उसे वह अपनी आँखों के सामने दिन-दिन अवनति की ओर लुढ़कते देख रहा है; और पैसे और लाठी की ताकत से छिरू मनमानी कर रहा है। और सिर्फ छिरू ही क्यों, गाँव का कोई भी किसी को नहीं मानता। सामाजिक आचार-व्यवहार सब खत्म हो चला है। गाँव में कोई मरता है तो उसकी लाश निकलने में मुश्किल पड़ती है; सामाजिक भोज में गरीब-अमीर का एक ही पंक्ति में भेद दिखाई पड़ता है। लुहार, बढ़ई, बजनिये ने काम छोड़ दिया है, दाई-नाऊ सनातन नियमों को तोड़ने पर उतारू हैं। जिसे महज पाँच रुपये की मासिक आय है, वह दस खर्च करके बाबू बन बैठा है। कर्ज से खेत बिकता जा रहा

है, मगर तो भी शौकीनी का कपड़ा जरूरी है, घर-घर में लालटेन चाहिए ही। छोकरों की जेब में बीड़ी-माचिस पहुँच रही है, जंक्शन शहर में गये तो दो-एक पैसे की सिगरेट खरीदे बिना नहीं मानते। तम्बाखू और चकमकी गायब हो रही है। जिनमें इन सबके प्रतिकार की जुर्रत नहीं है। वे प्रधान क्यों होना चाहते हैं? किस बूते पर? ऐसे प्रश्न जिनका सिरदर्द बने रहते हैं, देबू उन्हीं लोगों में से है।

पाठशाला में लड़कों को पढ़ाते-पढ़ाते देबू इस तरह की बातें बहुत-कुछ सोचता। गाँव के अन्य लोगों से बहुत हद तक अपने को अलग रखते हुए अपने भाव औरों के आगे रखता, साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने की भी अथक चेष्टा करता है। इसका कोई सामान्य अवसर भी वह हाथ से जाने न देता। इसीलिए जब जगन डॉक्टर ने यूनियन बोर्ड के खिलाफ आवाज उठायी तो उसके आभिजात्य के दम्भ से नफ़रत करने के बावजूद उससे मिलने में उसे हिचक नहीं हुई।

देवनाथ और जगन ने एक साथ मिलकर उत्साहपूर्वक काम शुरू कर दिया। दरख्वास्त भेज दी गयी। दोनों ने मिल-जुलकर नवान्न के दिन एक उत्सव का भी आयोजन किया। शाम को चण्डीमण्डप में 'मनसा-भसान' का गीत होगा। इस गीत के दल को इधर बिहुला का दल कहते हैं। बाउरियों की एक पार्टी थी। उसी को ठीक किया गया। चन्दे में चावल वसूला गया और उसी से पार्टीवालों के लिए शराब का इन्तजाम किया गया। इतने से ही वे लोग बेहद खुश थे। 'मनसा-भसान' के इन्तजाम का एक खास मतलब और भी था। नवान्न के दिन छिरू पाल के यहाँ अन्नपूर्णा की पूजा होती है, और उसी बहाने साँझ को गाँव के सारे ही लोग वहाँ जुट जाते हैं। तम्बाखू पीते हैं, गपशप होती है, खोल[1] बजाकर थोड़ा-बहुत कीर्तन गाते हैं। इस बार छिरू ने शायद कुछ विशेष आयोजन किया है। रात को लोगों को खिलाने-पिलाने का इन्तजाम, और एक यात्रा पार्टी को भी शायद बयाना दे रखा है। छिरू की माँ के गाली-गलौज में कम-से-कम इन दो लक्ष्यों का पता चला है। गाँव के लोग जिसमें छिरू के यहाँ न जाएँ, देबू और जगन ने इसीलिए यह सब प्रबन्ध किया था। गाँव को संघबद्ध करने की कोशिश की यह पहली भूमिका थी।

खेतिहरों के गाँव में नवान्न की धूम ज्यादा होती है, यही वास्तव में एक सार्वजनिक उत्सव है। खेती की असली फसल, अगहनी धान, पक चुका था। अब कटनी शुरू होने को थी। कार्तिक 'संकरान्त' को मंगल मनाकर ढाई मुट्ठी धान काटकर लक्ष्मीपूजा की जा चुकी थी। आज अब उसी धान के चावल से तरह-तरह की चीजें तैयार करके देव और पितृलोक को भोग दिया जाएगा। साथ ही घर-घर धानलक्ष्मी की पूजा होगी। गाँव के तमाम बच्चे आज सबेरे ही नहा चुके हैं। अगहन

---

1. मृदंग-जैसा एक खास साज।

के तीसरे ही हफ्ते में सर्दी खासी हो आयी; फिर भी नवान्न की उमंग में लड़के पोखर पानी को खूँदकर ही निकले! अभी वे चण्डीमण्डप के प्रांगण में धूप में खड़े होकर लँगड़े पुरोहित के हड्डियों के ढाँचे-सरीखे घोड़े के पीछे हो-हल्ला मचानें में मशगूल थे। बूढ़े शिव और भग्नकाली का भोग लगे बिना नवान्न नहीं होगा। कुमारी-किशोरी लड़कियाँ पीठ पर गीले केश पसारे नये कटोरे में नया चावल, चीनी, दूध, केला, ईख की टिकली, अदरख और मूली के टुकड़े सजाकर दक्षिणा सहित मन्दिर के बरामदे में रख रही थीं। अधिकतर तो दक्षिणा में चार पैसे ही रख रही थीं, कोई-कोई दो पैसे और कोई एक ही पैसा। दो-चार लड़कियों ने दो-दो आने भी रखे। जिनके यहाँ कुमारी लड़कियाँ नहीं हैं, वहाँ से बड़ी-बूढ़ियाँ भोग की सामग्री लेकर आ रही थीं। गाँव का पुरोहित, लँगड़ा चक्रवर्ती, सामग्री ले-लेकर ठाकुर के सामने रख रहा था और दक्षिणा को अण्टी में लगाता जाता था। बीच-बीच में उन लड़कों को डाँट भी बता रहा था—"ऐ! अबे ओ लड़के! बड़े बदमाश हैं ये तो। अरे, घोड़े के पीछे मत जा, कहीं झाड़ दी एक दुलत्ती तो आँत निकल आएगी!"

यानी घोड़े की दुलत्ती से प्लीहा फट जाएगा। लँगड़ा चक्रवर्ती इसी घोड़े पर गाँव-गाँव यजमानी करता फिरता है। लौटते वक्त घोड़े की पीठ पर वह खुद होता है और उसके माथे पर होता है चावल-केले का बोझा। घोड़ा काफी होशियार है, चक्रवर्ती बिना लगाम थामे दोनों हाथों सिर के बोझ को सहारा देकर मजे में चलता है। हाँ, इतना जरूर है कि चाहे तो वह अपना पाँव जमीन पर टेक सकता है। धरती से ज्यादा-से-ज्यादा एक ही फुट ऊँचे उसके पाँव लटकते रहते हैं।

लड़कों में से कितने ही दूर से ढेले पर ढेला मारकर घोड़े को तंग कर रहे थे। कुछ जो जरा साहसी थे वे सण्टी लेकर उसे पीछे से मार रहे थे। चक्रवर्ती बेहद खफा हो गया। मगर उसे कोई उपाय न सूझा। लड़के जैसे उसकी बात पर कान ही नहीं देंगे, इस तरह सब तुले हुए थे। एक प्रौढ़ा विधवा भोग की सामग्री लिए आयी और उसी ने पुरोहित का उपाय कर दिया। बोली, "अरे, तुम सबने मिलकर उस घोड़े को छुआ है? मलेछ कहीं के! जाओ, सब फिर से नहाओ।"

पुरोहित ने कहा, "जरा इन लड़कों की करनी देखो। दुलत्ती झाड़ेगा तो 'पिलहा' फाड़ डालेगा। तब दोष मढ़ा जाएगा मेरे मत्थे।"

लेकिन विधवा ने उसकी बात नहीं मानी। कहा, "तुम भी क्या कहते हो पुरोहितजी, बकरी-सा घोड़ा है, वह क्या 'पिलहा' फाड़ डालेगा? तुम्हारी भी बात खूब होती है! बच्चों को क्या कहूँ, आचार-विचार तो भाई तुम्हें भी नहीं है। सामने के दोनों पैर बाँधकर छोड़ देते हो और यह दुनिया-भर का कूड़ा, जूठे पत्तल, गोबर और गन्दगी रौंदता फिरता रहता है। उस रोज क्या देखती हूँ कि हमारे यहाँ के नये पोखर के बाँध पर—राम-राम, कहते हुए भी जी मिचलाता है—घास चर रहा है! और, तुम हो कि उसी घोड़े पर आकर ठाकुर-पूजा करते हो!"

पुरोहित ने कहा, "गंगाजल छिड़कता हूँ फूआ, गंगाजल! रोज साँझ को घर लौटने पर पहले गंगाजल छिड़कता हूँ, फिर बाँधता हूँ उसे। और मैं तो गंगाजल का स्पर्श करता ही हूँ।"

"यह सब झूठ कहते हो तुम।"

"भगवान कसम! जनेऊ छूकर कहता हूँ। गंगाजल छिड़के बिना हरगिज घर में नहीं जाता। बाहर खड़ा माटी में पैर ठोंकता रहेगा और हिनहिनाता रहेगा।"

फूआ जाने क्या कहने जा रही थी कि हड़बड़ाकर जरा आगे हट पलटकर खड़ी हुई—"कौन है री? देखो जरा, हनहनाती चली आ रही है।"—पीछे से किसी की लम्बी काया का माथा अपने पाँव पर पड़ते ही छू जाने के भय से झट हटकर उसने पूछा, "कौन है?"

कोई बहू थी। लम्बी-सी। घूँघट से ढँका चेहरा! उसने जवाब नहीं दिया। भोग-सामग्री चुपचाप पुरोहित के सामने रख दी।

"ओ, लुहार-बहू हो! मैंने सोचा, जाने कौन है!" फूआ ने कहा।

ठीक इसी समय डॉक्टर और गुरुजी आ पहुँचे। देबू गुरुजी ने कहा, "पुरोहितजी, आप अनिरुद्ध लुहार की पूजा गाँव के साथ न करें, हम लोग यह न होने देंगे।"

जगन और देबू इसी मौके की ताक में कहीं पास ही खड़े थे। पद्म को चण्डीमण्डप आते देख वे भी तुरत आ पहुँचे।

पुरोहित कुछ देर देबू के मुँह की ओर ताकता रहा। फिर बोला—"यह कैसी बात है! पूजा गाँव के साथ नहीं तो और कैसे होगी?"

"हम यह नहीं जानते। लुहार खुद जैसा समझेगा, करेगा। जब उसने गाँव के नियम को तोड़ा है तो हम उसे गाँव के क्रिया-कर्म में साथ क्यों लें?"

पद्म उसी तरह घूँघट काढ़े स्थिर खड़ी रही। उसमें जरा भी चंचलता नहीं थी। पुरोहित ने उसकी ओर ताकते हुए बिलकुल निरुपाय-जैसा होकर कहा, "तो मैं क्या करूँ बिटिया!"

देवनाथ ने पद्म से कहा, "तुम भोग लौटा ले जाओ। अनिरुद्ध से कह देना कि गाँववालों ने भोग नहीं चढ़ाने दिया।"

पद्म धीरे-धीरे चली गयी, मगर पूजा का पात्र उठाकर नहीं ले गयी। पात्र और दक्षिणा के पैसे वहीं पड़े रहे।

तब पुरोहित ने कहा, "अरी! पूजा का पात्र तो लेती जाओ बिटिया!"

देबू ने फिर कहा, "रहने दीजिए। लुहार तो अभी आएगा ही। हाँ, जो भी हो, आज कोई निबटारा हो जाएगा!" देबू के मन के कोने में अनिरुद्ध के लिए अभी तक थोड़ी-सी सहानुभूति थी। अनिरुद्ध उसका सहपाठी है, और फिर गलती भी सिर्फ उसी की नहीं है और न ही उसने पहले अन्याय किया है। पहले अन्याय तो गाँववालों ने ही किया है। यह बात भी उसके मन में काँटे की तरह टीस रही थी।

पुरोहित ने मामले को ठीक से समझा नहीं था और वास्तव में समझने की उसे वैसी जरूरत भी न थी। फिलहाल एक घर की पूजा-सामग्री छूट रही है, उसके लिए विशेष चिन्ता की बात यही थी। उसकी भँवें सिकुड़ गयीं, बोला, "अरे भई डॉक्टर और गुरुजी..."

जगन ने बीच में ही टोककर सख्त आदेश के ढंग से कहा, "गिरीश बढ़ई और तारा हजाम की भी पूजा नहीं होगी, पुरोहितजी!—यह आपसे कहे देता हूँ। हममें से कोई न कोई अन्त तक रहेंगे जरूर, हो सकता है, तब तक मैं न रहूँ, इसीलिए पहले से कहे देता हूँ।"

ठीक इसी समय छिरू पाल ने आकर पुकारा, "पुरोहितजी!"

छिरू ने गरद की धोती और रेशमी चादर पहन रखी थी। भावभंगी से वह आज कुछ और ही दिखाई दे रहा था।

व्यस्त होकर पुरोहित ने कहा, "बस, आया भैया! बहुत लगेगा तो आधा घण्टा। और भई, गुरुजी, डॉक्टर, ये लोग क्यों नहीं आ रहे हैं?"

गम्भीर होकर जगन डॉक्टर ने कहा, "इतनी जल्दबाजी करने से तो होगा नहीं पुरोहितजी, आ रहे हैं सब। एक-एक करके सभी आ रहे हैं। एक जजमान के लिए दस को परेशान करना तो अच्छा नहीं होता।"

छिरू बोला, "ठीक है, ठीक है। दस का काम करके ही आइए। मैं एक बार तकाजा किये जा रहा हूँ।" छिरू ने अपने बदसूरत चेहरे को भरसक कोमल और नम्र बनाते हुए कहा, "डॉक्टर, कृपा करके आइएगा जरूर। देबू, तुम, भाई जरा देख-भाल कर देना आकर..."

उसकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि अनिरुद्ध की गरज से सारा चण्डीमण्डप अचानक चौंक उठा :

"कौन है? कौन है? किसके दस सिर हुए हैं? किस नवाब-बादशाह ने मेरी पूजा वन्द की है, सुनूँ तो जरा?"

अनिरुद्ध ने रौद्र-रूप धारण कर रखा था।

चक्रवर्ती हक्का-वक्का हो गया। देवनाथ सीधा खड़ा हो गया और जगन डॉक्टर वुजुर्गों की तरह दिलासा देते हुए थोड़ा आगे बढ़ा; लेकिन छिरू जहाँ का तहाँ स्थिर ही खड़ा रहा।

डॉक्टर बोला, "ठहरो, चिल्लाओ मत अनिरुद्ध!"

व्यंग्य और घृणा-भरी नजर छिरू पाल से लेकर डॉक्टर तक सब पर डालते अनिरुद्ध ने मन्दिर के बरामदे से पद्म के छोड़े हुए पूजा-पात्र को उठा लिया और उसे दोनों हाथों थोड़ा ऊपर उठाकर मानो देवता को दिखाते हुए कहने लगा, "हे शिवजी महाराज, हे काली मैया, आओ और विचार करो, तुम्हीं लोग विचार करो!"—और इतना कहकर वह पलटा।

डॉक्टर की आँखों से मानो चिनगारी छूट रही थी, लेकिन अनिरुद्ध को पकड़कर उसे दण्ड देने का कोई उपाय नहीं था।

किन्तु थोड़ा आगे जाकर अनिरुद्ध लौटा और दक्षिणावाले पैसे अण्टी में खोंसते हुए एकाएक ध्यान जाने पर उसे दिखाई पड़ा कि देबू और जगन डॉक्टर के पास ही तख्त पर छिरू पाल खड़ा है। छिरू को देखते ही उसका गुस्सा पल-भर में जैसे पागलपन में बदल गया। वह चीख उठा, "बड़े के माथे पर मैं झाड़ू मारता हूँ, विद्वान् के माथे पर झाड़ू मारता हूँ। मैं किसी साले को नहीं मानता। देखता हूँ, कोई साला मेरा क्या कर लेता है!"

लमहे-भर के लिए वह छिरू की तरफ मुड़कर छाती फुलाकर खड़ा हो गया जैसे द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकार रहा हो।

लँगड़ा पुरोहित और फूआ कोई दुर्घटना हो जाने की आशंका से काँप उठे। इतने पर तो छिरू पाल को बाघ की तरह अनिरुद्ध पर टूट पड़ना चाहिए था। लेकिन आश्चर्य कि उसने अनिरुद्ध से हँसकर कहा, "मुझे नाहक ही इसमें लपेट रहे हो अनिरुद्ध, मैं इन बातों में नहीं हूँ। मैं तो पुरोहित को बुलाने के लिए आया था।"

अनिरुद्ध अब वहाँ नहीं रुका। जिस तरह हनहनाते हुए वह आया था, उसी तरह चला गया। जाते-जाते भी कहता गया—"मैं सब सालों को जानता हूँ। धर्मात्मा हैं! हुँः! रातों-रात धर्मात्मा बन गये हैं सब!"

छिरू अटूट धीरज के साथ चुपचाप चण्डीमण्डप से उतरकर घर की ओर चल पड़ा। वास्तव में छिरू के चरित्र की यही एक विशेषता है। जब वह अपने इष्ट को स्मरण करता है, धरम-करम या पूजा-पाठ में लगा रहता है, उस समय वह कुछ और ही हो जाता है! उस दिन वह किसी से विरोध नहीं करता, किसी की बुराई नहीं करता; इस दुनिया के सब-कुछ से अलग एक दूसरी ही दुनिया का आदमी बन जाता है। वैसे भी आज सारे हिन्दू समाज का जीवन ही ऐसे दो भागों में बँट गया है। कर्म-जीवन और धर्म-जीवन बिलकुल अलग-अलग दो बातें हैं—दोनों में जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं। देवता की याद करते हुए जिसकी आँखों में आँसू बह आता है, वही आदमी पूजा के तुरन्त बाद आँखें पोंछते हुए विषय के आसन पर बैठकर जाल-फरेब करने लगता है। केवल हिन्दूसमाज में ही क्यों? दुनिया के सभी देशों, सभी समाजों में जीवन की धारा कमोबेश ऐसे ही दो हिस्सों में बँट गयी है। दुनिया की बात रहने दीजिए, छिरू के ही जीवन में यह विभाजन बड़ा साफ है—काफी स्पष्ट है। आज का छिरू और ही है—यह छिरू व्यभिचारी, पाखण्डी छिरू के प्रचण्ड भार को ठेलकर देवता के पूजा के समय कैसे प्रकट हो जाता है, यह एक अजीब बात है। पाखण्डी छिरू को अन्याय या पाप की कोई परवा नहीं और देवपूजक छिरू को भी पाप काटने की कोई हाजत नहीं। है केवल परलोक पाने के लिए एक निष्ठा-भरी तपस्या—निश्छल विश्वास! दिन और रात के समान परस्पर विरोधी इन दो छिरुओं

का कभी आमना-सामना नहीं होता, मगर कोई विरोध भी नहीं है। फिर भी छिरू के दिन, मतलब कि जीवन का प्रकाश-भरा हिस्सा, सर्दी के दिनों-सा है, उसकी आयु बड़ी छोटी होती है!... छिरू के व्यवहार में आज कुछ और भी नयापन था। उसकी आज की बातें न केवल मीठी थीं, बल्कि अभिजात जनों-जैसी थीं, भद्र और साधु। पिछले देवपूजक छिरू से आज का देवपूजक छिरू और भी अलग था, और नया!

कुछ ही देर बाद चण्डीमण्डप के रास्ते में बाउरी, डोम, मोचियों के झुण्ड के झुण्ड औरत-मर्द पाँत बाँधकर जाने कहाँ जा रहे थे। किसी के हाथ में थाली, किसी के मिट्टी का कुण्डा, और किसी के कोई और बरतन-पात्र। जगन डॉक्टर ने पूछा, "तुम लोग कहाँ जा रहे हो?"

"जी, घोष बाबू के यहाँ। अन्नपूर्णा का प्रसाद पाने के लिए बुलाया है।"

"किसने? यह घोष कौन? छिरू? यह छिरू घोष कब से हो गया!"

कई भद्दी-भद्दी गालियाँ देकर डॉक्टर ने छिरू के लिए कहा, "ओः, वाह रे साधु! देखता हूँ बड़ा भला बन बैठा है!"

देबू स्तब्ध होकर सोच रहा था!

ग्यारह

उक्त घटना के कुछ दिनों बाद देबू स्तब्ध होकर बहुत-सी बातें सोच रहा था। गाँव की पाठशाला चण्डीमण्डप में ही चलती है। पाठशाला की स्थापना के बाद से ही चण्डीमण्डप उसका निश्चित स्थान है। यह बात बहुत पहले की है। उन दिनों न डिस्ट्रिक्ट बोर्ड था, न यूनियन बोर्ड। पाठशाला गाँव की थी, गाँव के लोगों की। लोग पण्डितजी को महीने में सीधा देते और लड़के-बच्चे चण्डीमण्डप में पढ़ते। उन दिनो काली और शिव की रोज पूजा होती थी और वही पुजारी पाठशाला का पण्डित होता था। बाद में पता नहीं पुजारी की देवोत्तर जमीन कैसे और कहाँ गायब हो गयी! लोग तो कहते हैं कि जमींदार के पहले के किसी गुमाश्ते ने नाममात्र की लगान पर बन्दोबस्त लेकर अपनी जोत में मिला ली थी। उसने मिलायी भी इस चालाकी से थी कि उद्धार का अब कोई उपाय नहीं था! यहाँ तक कि निशान किये खेतों को काटकर इस खूबी से बदल दिया कि उसे खोजकर निकालना भी कठिन है। उसके बाद भी बहुत दिनों तक एक ब्राह्मण गाँव की पुरोहिताई, देव-सेवा और

पाठशाला के सहारे यहाँ रहा था। दो-एक साल पहले वह भी चले जाने को विवश हुआ। शिक्षा-विभाग के नये नियम के अनुसार अयोग्यता के कारण उसे बर्खास्त करके नया प्रबन्ध किया गया। बहरहाल पाठशाला का भार तीन साल से देबू पर है।

कभी देबू भी इसी पाठशाला के पुरोहित-पण्डित से पढ़ा है। एक ओर पण्डित पूजा करता होता—जयन्ती मंगला काली—और अचानक मन्त्र का पढ़ना बन्द करके चीख उठता, "ऐ अरे ऐ, चण्डी, तेरह पचे पचहत्तर नहीं, पैंसठ। तेरह छके अठहत्तर! हाँ!"

यह अनिरुद्ध भी तब उसके साथ पढ़ता था। पण्डित उससे कहा करता, "इस देश के लोहे से चिकना काम नहीं होता है बेटे! अनिरुद्ध, तुम विलायत जाओ। वहाँ कल-कारखाने का कारोबार है, सुई-आलपीन बनती है लोहे से। विलायती पण्डित के सिवा तुम्हें पढ़ाना किसी के बस का नहीं।"

छिरू देबू का रिश्तेदार है। भतीजा लगता है। मगर उम्र में काफी बड़ा है। पहले छिरू देबू से कई दरजा ऊँचा था। अन्त में एक-एक दरजे में दो-तीन साल का विश्राम ले-लेकर जिस रोज उसने देबू को अपना सहपाठी पाया, उसी दिन से उसने पाठशाला को सदा के लिए प्रणाम कर लिया। उसके बाद ही ब्याह करके वह दुनियादार बन गया और धीरे-धीरे दुनियादारी की सूझ-बूझ से पाँच-पाँच गाँवों के लोगों को हैरत में डाल दिया। आज वह जाना-माना आदमी है, गाँव का मातबर।

अनिरुद्ध और छिरू पाल—इन दो व्यक्तियों ने गाँव की सारी शृंखला तोड़ दी। गिरीश बढ़ई और तारा हजाम भी साथ हैं। देबू चकित होकर सोच रहा था, सामाजिक नियम की अवहेलना करके अनिरुद्ध जो इस प्रकार घमण्ड के साथ चण्डीमण्डप से भोग उठा ले गया, उसका समाज के किसी भी जन ने तो प्रतिकार नहीं किया! क्या इसका कोई प्रतिकार नहीं है? वह खुद इधर कई दिन लोगों के दरवाजे-दरवाजे घूमता रहा; गाँव के लोग उसे मानते हैं, बहुतेरे उसपर श्रद्धा रखते हैं, लेकिन इस मामले में हर किसी ने एक ही बात कही, "इसका तुम करोगे भी क्या देबू? उपाय क्या है? बताओ कुछ हो तो। जो हो, तुम करो! लेकिन समझते हो कि नहीं, वह होने का नहीं। समाज-समाज क्या करते हो? समाज है कहाँ?"

समाज नहीं है यह देबू ने भी समझा है। उस जमाने में जिन लोगों ने समाज बनाया था वे ही उसपर शासन भी करते थे; वे समाज को ठीक से समझते-पहचानते थे। उस तरह के लोग आज नहीं हैं। आज के लोग और ही तरह के हैं। न वह शिक्षा है अब, न वैसे शिक्षक ही रहे। मानव के नाम पर ये अमानव हैं।

जगन डॉक्टर ने उस दिन कहा था, "कम्बख्त लुहार को खूँटे से बाँधकर लगाओ मार।"

जगन के इस प्रस्ताव पर देबू हामी नहीं भर सका। छिः! मनुष्य को शिक्षा

देने का अधिकार है, अवसर-विशेष में मनुष्य के लायक शासन करने के अधिकार को भी वह मानता है, लेकिन अत्याचार ही तो मात्र शासन नहीं है। जीवन में इसके अलावा आकांक्षा है, पर उस आकांक्षा को पूरा करने के लिए बुरे दाँव, पीड़न और अन्याय का सहारा वह नहीं लेना चाहता। जीवन में उसे एक आदर्श-बोध भी है। पढ़ते समय अपने भावी जीवन को गढ़ने के लिए उस बोध को देबू ने कायम किया था। उसका यह आदर्श-बोध महापुरुषों के उदाहरण के अनुरूप अपनी छोटी-छोटी अभिज्ञताओं और चिन्तन के मेल से बना था। छुटपन की कुछ घटनाओं के चलते उसकी कुछ धारणाएँ बँध गयी थीं। निरपेक्ष विचारों की बार-बार चोट खाकर भी उसकी वे धारणाएँ आज तक धुल नहीं सकी थीं।

जमींदार को, धनी महाजन को वह घृणा करता है। उसके हर काम में दोष ढूँढ़ना मानो उसका स्वभाव हो गया है। उनके अत्यन्त उदार दान-पुण्य और धर्म को भी वह गुप्त गोवध का स्वेच्छाकृत चान्द्रायण प्रायश्चित्त समझता है।

जब वह छोटा था, तब एक बार बाकी लगान के लिए जमींदार बाबुओं ने उसके पिता को सारा दिन कचहरी में रोक रखा था। भयभीत देबू तीन बार बाबुओं की कचहरी में जाकर खड़ा-खड़ा रोता रहा था। दो बार दरबान की डाँट खाकर भाग भी आया था। आखिरी बार उसे देखकर बाबू ने कहा था, "अगर अबकी बार तू आया छोरे, तो जेल में बन्द कर दूँगा।" चपरासी ने खींचकर उसे एक अँधेरा कमरा दिखा भी दिया था। कैदखाने के नाम पर अवश्य ही बाबुओं के स्वर्ग या वैकुण्ठ जैसा कोई कमरा था नहीं कभी। निहायत छोटे जमींदार थे वे, देबू को महज डराने के लिए ही उन्होंने ऐसा कहा था। यह बात देबू आज समझता है। लेकिन उसकी यह धारणा हरगिज नहीं गयी कि जमींदार जुल्मी होते हैं।

जमींदार का बाकी लगान चुकाने के लिए देबू के पिता ने कंकना के बाबुओं से क़र्ज लिया था। तीन साल के बाद हैण्डनोट की नालिश करके कुर्की का परवाना लाकर उसके गाय-बछड़े, थाली-गिलास तथा और-और सामान घसीटकर बाहर रास्ते पर फेंक दिया था, उस अपमान को देबू भूल नहीं सकता। हाँ, डिगरी के रुपयों का तमस्सुक लिख देने के वायदे पर बाबुओं ने सामान छोड़ दिया था। वे रुपये पिता के मरने के बाद देबू ने चुकाये। हालाँकि ये बाबू लोग गैरकानूनी काम कभी नहीं करते। हिसाब से एक पैसा भी ज्यादा नहीं लेते। लोग कहा भी करते हैं कि मुखर्जी बाबुओं जैसा महाजन मिलना मुश्किल है। वसूली के लिए जोरजुल्म नहीं, अपमान नहीं, सूद चुकाते जाओ तो कभी नालिश नहीं करते। लोगों की जायदाद का उन्हें लोभ नहीं। नीलाम करा लेने के बाद भी रुपये दे दो तो सम्पत्ति लौटा देते हैं। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। मगर तो भी देबू महाजन को माफ नहीं कर सकता।

उसके मन में इन सबों पर और भी एक कटु अभिज्ञता बस गयी है। स्कूल

में वह सबसे अच्छे दो लड़कों में से एक था। उसके नीचे के क्लास में पढ़ता था महाग्राम के महामहोपाध्याय न्यायरत्न का पोता विश्वनाथ। वह दूसरा अच्छा लड़का था। शिक्षकों को उम्मीद थी कि ये दोनों लड़के स्कूल का मुँह उज्ज्वल करेंगे। लेकिन देबू इस बात को आज भी नहीं भूल सकता कि वह शिक्षकों के स्नेह-करुणा का पात्र था; न्यायरत्न के पोते को स्नेह के साथ श्रद्धा मिलती थी। और, कंकना के बाबुओं के मध्यम कोटि के कुछ लड़कों को मिला करता था स्नेह के साथ सम्मान। और-तो-और, इस छिरू की भी स्कूल के हेड पण्डित खुशामद किया करते थे। जरूरत पड़ने पर छिरू के बाप से कभी ताड़ का पेड़ तो कभी जामुन का पेड़ और क्रिया-कर्म के समय दस-पन्द्रह सेर मछली भी माँग लिया करते थे। चावल-दाल, घी-गुड़ की भेंट तो हमेशा मिला ही करती थी।

उस पण्डित के बेहया लालच की बात याद आते ही देबू के मन में घृणा उबलने लगी। बीस साल की उम्र में जब छिरू पाँचवें दरजे से बिदा हुआ तो उस पण्डित ने उसके बाप से कहा, "मण्डल, इसको संस्कृत पढ़ाओ।"

छिरू का बाप व्रजवल्लभ क्षमतावाला खेतिहर था। अपनी मेहनत से उसने लक्ष्मी की कृपा पायी थी। लेकिन था वह मूर्ख। इसीलिए उसे यह बड़ी ख्वाहिश थी कि बेटा पढ़ा-लिखा हो। बीस साल की अवस्था में छिरू का स्वभाव जब जानवर-सा हो गया तो उसके अफसोस की हद न रही। पण्डित के कहने से उसने छिरू को उसी का शिष्य बना दिया। छिरू ने पहले कोई एतराज नहीं किया। पण्डितजी पढ़ाने आया करते तो उसे किस्से सुनाते। ख़ासतौर से विवाहित वयस्क छात्रों को शृंगार-सम्बन्धी संस्कृत श्लोकों का अर्थ बताकर और वैसी ही कहानियाँ सुनाकर पण्डितजी चारेक साल तक नियमित वेतन लेते रहे थे—बड़ी खुशी-खुशी पूरे मान-गौरव के साथ, किसी तरह की ग्लानि अनुभव किये बिना। यह अवश्य कि वेतन बहुत नहीं—केवल दो रुपये था। चार साल के बाद छिरू ने फिर विद्रोह किया। लेकिन छिरू का बाप भी ना-छोड़ बन्दा था। पण्डित से पिण्ड छुड़ाने के लिए ही शायद छिरू ने आखिर यह राग अलापा कि संस्कृत पढ़कर क्या होगा? पढ़ना ही है तो वह अँगरेजी पढेगा।

लेकिन अँगरेजी पढ़ानेवाले मास्टर ने दूने वेतन की माँग की। लाचार छिरू ने कहा, "मैं स्कूल में ही पढ़ूँगा।" चौबीस साल की उम्र में वह फिर पाँचवें दरजे में दाखिल हो गया। देबू भी पाँचवें में पहुँच चुका था। हठात् छिरू की नजर देबू पर पड़ी। देबू की बगल में अनिरुद्ध लुहार था। छिरू ने जब स्कूल में पढ़ने का प्रस्ताव किया था तब उसे इस बात का खयाल न था। उसकी कल्पना और ही कुछ थी। सोचा था, स्कूल जाने के बहाने वह कंकना या अपने ही गाँव की छोटी जातिवालों के टोले में दिन बिता दिया करेगा। देबू और अनिरुद्ध को अपने वर्ग में देखकर वह दिमाग को सही नहीं रख सका। उसी समय किताब-बही लेकर कक्षा

से निकल गया। घर नहीं लौटा। वहाँ से सीधे अपने ननिहाल चला गया। वहीं उसने अपने जीवन के आदर्श गुरु त्रिपुरा सिंह को पाया। जो जीवन में राह दिखाता है, वही गुरु है! अपने नाना के मालिक त्रिपुरा सिंह को मन-ही-मन गुरु मानकर उसने जीवन के कर्म-पथ पर चलना शुरू कर दिया। लेकिन चौबीस साल की उम्र में जिस दिन छिरू जाकर कक्षा में बैठा था, पण्डितजी ने उस रोज भी सबसे कहा था, "खबरदार, छिरू को देखकर कोई हँसना मत।" पण्डितजी की इस बात में व्यंग्य नहीं, सम्मान था—देबू को आज भी यह याद है।

स्कूल में सबसे ज्यादा सम्मान का पात्र था कंकना के मुखर्जी का वह गँवार लड़का। घर में तीन-तीन शिक्षकों के होते हुए भी वह किसी विषय में चालीस नम्बर तक कभी न ला सका। एक बार अपने साथियों से देबू ने मजाक में ही कहा था, "भई, पीटने से गधा कभी घोड़ा नहीं होता।" देबू की यह बात जब उस लड़के के कानों पहुँची, तो उसने ऐसा हो-हल्ला मचाया कि शिक्षक-गण तक काँप उठे। हेड-मास्टर ने देबू को दफ्तर में बुलाकर माफी मँगवायी थी। एक शिक्षक ने कहा था, "अबे, गधा नहीं हाथी है। हाथी का बच्चा! हाथी की चाल जरा धीमी होती है। यह बात आज नहीं बाद में समझेगा।"

देबू आज उस बात को खूब समझ रहा है। मुखर्जी का वह लड़का दो-एक बार फेल हुआ, फिर थर्ड डिवीजन में मैट्रिक पास करके आज लोकल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य है, यूनियन बोर्ड का प्रेसिडेण्ट है, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट है। हर महीने स्कूल की मदद के लिए देबू को उसके सामने हाथ पसारकर खड़ा होना पड़ता है। फिलहाल छिरू पाल भी यूनियन बोर्ड का मेम्बर हुआ है। बीच-बीच में वह भी आकर पूछ जाता है, "क्यों भई, स्कूल कैसा चल रहा है?"

देबू के दिमाग में आग लग जाती है।...

उस रोज उसने लड़कों की एक किताब में लिखा देखा, 'पढ़-लिख पण्डित होता है जो, गाड़ी-घोड़ा चलता है सो।' देबू ने बार-बार कलम चलाकर इन पंक्तियों को काट दिया। और, बोर्ड पर खली से लिख दिया—'पढ़-लिख पण्डित होता है जो, महत् पुरुष हो जाता है सो।' उसके बाद उसने विद्यासागर की कहानी शुरू कर दी।

कभी-कभी उसके जी में आता, मैं यदि यूनियन बोर्ड के अध्यक्ष के आसन पर बैठ पाता, तो दिखा देता कि उस आसन की कितनी मर्यादा है। न जाने कितना काम करता! वह असंख्य पक्की सड़कों की सोचता। गाँव-गाँव से लाल रोड़ी की सड़क आकर यूनियन बोर्ड के गाँव से मिल गयी है एक केन्द्र में और वहाँ से एक चौड़ा राजपथ जंक्शन शहर तक चला गया है। उस सड़क से धान-चावल-भरी गाड़ियों की पाँत चल रही है, सामान बेचकर लोग रुपया लिए लौट रहे हैं, लड़के उसी से होकर

स्कूल जा रहे हैं। गाँव की जंगल-झाड़ियाँ साफ हो गयी हैं, गड्ढे भर गये हैं और चारों तरफ सफाई है। हर जगह चीरामीरा के फूल, चीरामीरा के बाद गेंदा! फूलों से गाँव के गाँव हँस उठे हैं। हर गाँव के हर टोले में एक-एक इनारा। किसी पोखरे में नाम की भी गन्दगी नहीं। काला पानी झलमल कर रहा है... आस-पास खिले हैं भेंट के फूल। कचहरी बैठने पर सभी अन्यायों का उचित फैसला होता है—सख्त होकर वह अन्याय और उत्पीड़न को मिटा दे रहा है। ...इन सबको वह सम्भव कर दे सकता है, मौका मिले तो... मौका मिले तो वह साबित कर दे सकता है कि मोटा और धीमी चाल का चौपाया होने से ही वह हाथी नहीं होता; वह सोने से मढ़े खुरवाला मोटा गधा है महज!

कुढ़न के आवेग और काम की प्रेरणा से अधीर होकर वह तेजी से चलने लगता, बीच-बीच में हाथ भाँजकर मुट्ठी सख्त करके पेशियों को फुला देता। अपने सर्वांग में मानो वह शक्ति का आलोडन अनुभव करता।

उसकी स्त्री बड़ी भली औरत है। साफ रंग, चिपटी नाक, कोमल चेहरा। आँखों की नजर बड़ी मीठी, कद की छोटी, सिर में पीठ तक झूलते बाल। मन बड़ा सरल, बड़ा भला है। तिस पर देबू-जैसे व्यक्तित्ववाले आदमी के संसर्ग में आकर अपने को वह बिलकुल खो बैठी है। समय-समय पर देबू को इस रूप में देखकर अचरज में वह पूछती, "आपके मन को यह क्या हो रहा है जी?"

देबू हँसकर कहता, "सोचता हूँ, मैं अगर राजा होता!"

"राजा होते!"

"हाँ! तो तुम रानी होतीं!"

"हाँ?..." उसके अचरज की सीमा नहीं रहती।

"मगर रानी होने पर भी तुम्हारे गहने नहीं होते।"

अभिभूत होकर वह स्तब्ध रह जाती।

देबू हँसकर कहता, "उस राजा का राज्य तो है, लेकिन लगान नहीं मिलता। यूनियन बोर्ड का प्रेसिडेण्ट—समझी..."

मन में भली आकांक्षा और ऊँची कल्पना रहने से ही वह पूरी नहीं होती। संसार में पारिपार्श्विक अवस्था ही बड़ी शक्ति होती है—देबू ने बार-बार कोशिश करके यह समझा है। जाड़े के दिनों में बारिश भी हो तो धान की खेती असम्भव है। वर्षा के दिनों में एक खासी ऊँची जमीन पर देबू ने आलू बोये थे। लेकिन बीज के अंकुर निकलकर सूख गये। और जो दो-चार पौधे हुए, उनमें जो आलू लगे, वे भी मटर-जितने बड़े। सारी आशाओं-आकांक्षाओं को मन में दबाकर वह पाठशाला में काम करता जाता। अपने गाँव के भावी रूप को माँ के पेट के भ्रूण-जैसा, विधाता की कल्पना से गढ़ने की कोशिश करता। गाँव के छोटे-मोटे सभी आन्दोलनों से अपने को अलग रखना चाहता। लेकिन उसकी सारी कोशिशों को नाकाम करके उसकी

आकांक्षा-कल्पना इसी तरह आन्दोलन-उत्तेजना के स्पर्श-मात्र से नाचकर बाहर निकल जाती।

गाँव का अभाव-अभियोग, खामी-कमी सब कण्ठाग्र-से थे उसे। उसके सामाजिक इतिहास को उसने आविष्कार की नाईं संग्रह किया था। गाँव के लुहार, बढ़ई, नाई, पुरोहित, दाई, चौकीदार, धोबी आदि का क्या काम है, क्या वृत्ति है, उनकी दी गयी जमीनें कहाँ थीं—ये बातें जितनी वह जानता है, और कोई नहीं जानता। पिछली पाँच पुश्तों की अवधि में गाँव की पंचायत के कर्म-कुकर्म का पूरा इतिहास उसे याद है।

चण्डीमण्डप में बैठकर पढ़ाते हुए देबू चण्डीमण्डप की सोचता। यह चण्डीमण्डप कभी गाँव का हृदय था; जीवन-शक्ति का केन्द्र। पूजा-पाठ, आनन्द-उत्सव, विवाह-श्राद्ध सब यहीं होता था। गाँव में जोर-जुल्म, अन्याय-अविचार दिखाई पड़ता तो यहीं पंचायत बैठा करती थी : यहीं फैसला होता था और यहीं से सब दूर किया जाता था। चण्डीमण्डप गाँव के बीचोंबीच है। वहाँ से हाँक लगाने पर सारे गाँव में वह आवाज सुनाई पड़ती थी। उस हाँक की उपेक्षा करने की सामर्थ्य किसी में न थी। उसे यह आज भी याद है कि चण्डीमण्डप के सामने से जितनी भी बार वह गुजरता था, प्रणाम करके जाता था। आजकल लोग प्रणाम भी नहीं करते। कभी-कभी उसे ऐसा लगता कि देवता की, ईश्वर की उपेक्षा करने से ही उनकी यह दशा हो रही है। देबू रोज तीन बार चण्डीमण्डप को प्रणाम करता है। धर्म का खुद आचरण करके वह लोगों को सिखाना चाहता है।

नास्तिकता के परिणाम की एक घटना का उसके हृदय पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। अवश्य, यह कहानी उसकी सुनी हुई है। वह घटी तो उसके जीवन में ही थी, परन्तु तब वह निरा नन्हा था। उसके बचपन का साथी विश्वनाथ महाग्राम के महामहोपाध्याय न्यायरत्न का पोता था। यह कहानी उसके पिता शशिशेखर की है। पण्डित शशिशेखर अपने ऋषितुल्य पिता न्यायरत्न की इच्छा के विरुद्ध अँगरेजी पढ़कर नास्तिक हो गये थे। यहाँ की ब्राह्मण-सभा के उद्योक्ता वही थे। उस अधिवेशन में पारायण-शिला की स्थापना करके अर्चना न करने के कारण न्यायरत्न ने उनका विरोध किया। नास्तिक शशिशेखर ने नास्तिक मन से अपने बाप से विवाद किया। नतीजा यह हुआ कि सभा टूट गयी। यही नहीं, शशिशेखर की अपमृत्यु हुई—वे इच्छा से इंजन के नीचे आकर कट मरे। इसे एक घटना ही कहिए, लेकिन देबू की दृष्टि में यह कर्मफल का अलंघ्य विधान था। देबू को सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि इस परिणाम को जानते हुए भी न्यायरत्न का पोता विश्वनाथ भी नास्तिक हो उठा है। वह अभी कलकत्ते में एम.ए. में पढ़ रहा है। जब आता है तो देबू से मिलता है। एम.ए. का छात्र होते हुए भी विश्वनाथ अभी तक देबू का मित्र है। उम्र में देबू से पाँच-छह साल का छोटा है, फिर भी दोस्त है उसका। स्कूल

में दोनों अच्छे लड़के थे, इसलिए दोनों में घनिष्ठता थी। उस समय विश्वनाथ उसे देबू दा कहता था। उम्र के साथ अपनी और विश्वनाथ की सामाजिक पृथक्ता को समझकर उसने कहा था, "भाई, तुम मुझे दादा न कहा करो। मुझे अपराध लगता है।" तव से विशू देबू को देबू भाई कहता है! अब वह उसका दोस्त है—सही मानी में दोस्त। उसके सामने श्रेष्ठता की तेज नोक की चुभन वह कभी महसूस नहीं करता। यही विश्वनाथ सन्ध्या तक नहीं करता, चण्डीमण्डप में आकर भी देवता को कभी प्रणाम नहीं करता।

कुछ दिन पहले देबू ने चण्डीमण्डप के बारे में अपना खयाल विश्वनाथ को वताया था। उससे पूछा था कि इसके गये गौरव को कैसे लौटाया जा सकता है। विश्वनाथ ने हँसकर जवाब दिया था, "यह होने का नहीं देबू भाई! चण्डीमण्डप बूढ़ा हो चुका है, अब यह मरेगा।"

"बूढ़ा हो चुका? मरेगा? मतलब?"

"मतलब कि उम्र होने से आदमी बूढ़ा होता है। यह चण्डीमण्डप कितने दिनों का है, कहो तो? बूढ़ा नहीं होगा?"

उसकी छौनी की तरफ देखकर देबू ने कहा था, "इसे नया वनाने को कहते हो?"

विश्वनाथ हँसा था। कहा था, "रंगीन कपड़े से ही बूढ़ा नन्हा-मुन्ना नहीं हो जाता देबू भाई? इस जमाने में अब यह चण्डीमण्डप नहीं चलेगा। कोऑपरेटिव बैंक कर सकते हो? करो न, वही कोऑपरेटिव बैंक। देखना, रात-दिन वहाँ लोग आते रहेंगे। धरना दिये पड़े रहेंगे।"

इसके वाद बहुत-सी दलीलें देकर उसने देबू को समझाना चाहा था कि रुपया ही सब-कुछ है; उस युग में धर्म, सम्मान, सामाजिक व्यवस्था के अन्दर की भित्ति रुपया ही रहा। उस भित्ति के रुपयों का भण्डार चूँकि आज खाली हो गया है, इसलिए यह दशा है।

देबू ने बारम्वार प्रतिवाद करते हुए कहा था, "नहीं—नहीं—नहीं।"

विश्वनाथ हँसा था।

देबू ने अधिक तीव्रता से प्रतिवाद करते हुए कहा था, "छिः छिः, विशू भाई! तुम न्यायरत्न के पोते हो। तुम्हारे मुँह से यह बात नहीं सोहाती। तुम्हें इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

विश्वनाथ फिर कुछ देर हँसा था। हँसकर उसने कहा था, "मैं तुम्हें कुछ कितावें भेज दूँगा देबू भाई, पढ़कर देखना।"

"न! वैसी किताबें छूना भी पाप है। वैसी किताबें मत भेजना।"

वह जी-जान से अपने संस्कार को जकड़े हुए है। उसे वह फिर से प्रतिष्ठित करना चाहता है। इसीलिए नवान्न के दिन अनिरुद्ध को चण्डीमण्डप की पूजा के

अधिकार से वंचित करके उसे सामाजिक सजा देने के लिए वह जगन के साथ मिलकर खड़ा हुआ था। लेकिन ताज्जुब तो यह है कि प्रतिवाद न करने के बावजूद दूसरा कोई भी उन लोगों के पास आकर खड़ा नहीं हुआ। आखिर अनिरुद्ध भी बेझिझक भोग की थाली उठाकर चला गया जबकि अनिरुद्ध के बाप-दादों की भी यह मजाल न थी।

देबू दिशाहीन-सा लगातार कई दिनों से सोच रहा है। बीच-बीच में उसे ऐसा लगता है कि कभी देवता ही अपनी महिमा से जाग खड़े होंगे, अन्याय का अन्त करके फिर से न्याय की प्रतिष्ठा करेंगे। वह शास्त्रों की वाणी का स्मरण करता लेकिन कुछ ही देर में हताश हो जाता।

लड़कों को छुट्टी देने के बाद भी देबू चण्डीमण्डप में अकेले बैठकर यही सब बातें सोच रहा था कि किसी ने रास्ते से आवाज दी, "अजी ओ, गुरुजी!"

"कौन?"

"हाय राम! बैठे-बैठे इतना क्या सोच रहे हो?"—पातू की बहन दुर्गा दूध बेचने जा रही थी। उसी ने रास्ते से टोककर बात की।

भँवें सिकोड़कर देबू ने कहा, "उससे तुझे क्या मतलब?"

दुर्गा को देबू फूटी आँखों भी नहीं देख सकता था। बदचलन है वह, गयी बीती, पापिन! खास करके वह उस छिरू से गहरा सम्बन्ध रखती है। उससे देबू घृणा करता है।

दुर्गा ने हँसकर कहा, "मतलब मुझे नहीं, तुम्हारी बहू को है। दरवाजे पर खड़ी विलू दीदी रास्ता निहार रही हैं।"

अरे हाँ, ठीक तो! देबू को अब खयाल आया। वह झटपट उठा। ओह, काफी वक्त हो गया। वह जल्दी-जल्दी भागकर घर पहुँचा।

"चलो"—बहू ने घर पहुँचते ही कहा, "रसोई तैयार है, नहा लो।"

देबू के जीवन में यही एक बहुत बड़ी दौलत है कि घर में कोई कलह नहीं, अशान्ति नहीं। शायद इसीलिए बाहर सारे गाँव में कलह-अशान्ति ढूँढ़ते फिरने में भी उसे थकावट नहीं होती।

देबू के चले जाने के बाद भी दुर्गा देर तक खड़ी रही। देबू जिधर से गया उधर ही खड़ी-खड़ी ताकती रही। देबू उसे अच्छा लगता है, बहुत अच्छा। छिरू को अब वह घृणा करती है। आग लगानेवाली बात उसने किसी से कही नहीं, पर घृणा के कारण उससे संसर्ग नहीं रखती। लेकिन छिरू से जब उसकी घनिष्ठता थी, तब भी उसे देबू अच्छा लगता था। छिरू से कहीं ज्यादा अच्छा लगता। मगर अचरज

तो यह था कि इस अच्छा लगने में कोई द्वन्द्व नहीं था। आज देबू मानो उसे पहले से भी ज्यादा अच्छा लगा।

बारह

अगहन संक्रान्ति पर इतूलक्ष्मी का त्यौहार आ गया। और-और प्रदेशों में—बंगाल के खास-खास अंचल में कार्तिक संक्रान्ति से ही इतू या मित्रव्रत आरम्भ होता है। और खत्म होता है अगहन संक्रान्ति पर। कहते हैं, रबी की फसल के लिए सूरज की उपासना से इस व्रत का उद्‌भव हुआ है। लेकिन देबू के हलके में महीने-भर तक इस पूजा का रिवाज नहीं है। इधर रबी की फसल भी नहीं होती। धान इधर की प्रधान खेती है। इतू पर्व को इधर इतूलक्ष्मी का पर्व कहते हैं। धान पीटने-ओसाने के आरम्भ का त्यौहार है यह। खेतिहरों के अपने-अपने खलिहान में यह होता है। खलिहान के ठीक बीच में बाँस का एक खूँटा गाड़ा जाता है। उसी खूँटे के नीचे अल्पना बनाकर वहीं लक्ष्मी का पूजा-भोग होता है। उसी खूँटे में बैलों को बाँधकर नीचे धान फैलाकर दौनी की जाती है। बैल खूँटे से लगे गोलाकार घूमते रहते हैं और उनके खुरों के दबाव से धान झड़ता जाता है।

इस त्यौहार से चण्डीमण्डप का खास सम्बन्ध नहीं है। हाँ, इतना है कि स्त्रियाँ सवेरे स्नान करके चण्डीमण्डप में प्रणाम किये बिना लक्ष्मी को नहीं बैठातीं। पहले थोड़ा और भी सम्बन्ध था। देबू को याद है, आज से पन्द्रह साल पहले भी पूजा हो जाने के बाद गाँव की सभी स्त्रियाँ यहाँ जमा होतीं और हाथ में सुपारी लिए कथा सुना करती थीं। गाँव की कोई बड़ी-बूढ़ी कथा कहती थी। आजकल यह रिवाज उठ गया है। अब दो-तीन घर की स्त्रियाँ किसी एक के यहाँ जुटकर कथा सुन लेती हैं। देबू के यहाँ भी कथा होती है। पाठशाला में लड़कों को पढ़ाते हुए देबू आज यही सब सोच रहा था। उस दिन से उसके मन में आहत और क्षुब्ध होकर प्रेरणा-शक्ति उसे हरदम तंग कर रही थी। किसी भी मौके का सहारा लेकर वह फिर से खड़ा होना चाहता है। जगन से उसका मेल-जोल स्वाभाविक नियम से फिर ढीला हो आया था। जगन डॉक्टर के दरख्वास्त देने के उस तरीके को वह मन से कबूल नहीं कर सका। दरख्वास्त के नाम से उसे हँसी आती, वह जल उठता।

साहित्य पढ़ा रहा था देबू—

महल नहीं है मुझे, नहीं है दास न दासी।
तो क्या हुआ, नहीं हूँ मैं वह सुख-प्रत्याशी।
चाह एक है लिए बड़ा मन छोटे घर में,
अन्न दुःखों का अपने खाऊँ खुश होकर मैं।
संचित किये पराये धन से हो करके धनवान।
रह सकता मैं भला कहो तो बनकर पशू समान?

कि उसने देखा, घूँघट काढ़े एक लम्बी-सी औरत ने रास्ते पर से ही चण्डीमण्डप के ठाकुर को प्रणाम किया। शायद चाहकर भी वह चण्डीमण्डप में नहीं आयी, क्योंकि उसकी चाल में वैसा कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। देबू ने उसे पहचाना। वह अनिरुद्ध की पत्नी थी। समझ गया कि नवान्न के दिन जो घटना हुई थी, उसी के कारण वह यहाँ नहीं आयी। देबू का मन कैसा तो हो गया। अनिरुद्ध की स्त्री रास्ते पर से ही चुपचाप प्रणाम करके जो यों चली गयी, देबू को लगा, उसकी प्रत्येक भंगिमा मानो घुटी हुई व्यथा से व्यथित और उदास हो। वह अकेली चली गयी। मानो यह कहती गयी कि अकेले मैं ही क्या दोषी हूँ। जिधर से वह गयी देबू उसी राह की ओर देखता रहा। उसका धीमा कदम उसे थका-थका-सा लगा। बरबस उसके एक लम्बा निःश्वास निकल आया। सचमुच ही अन्याय हो गया है। अपने विचार और बुद्धि की भूल इस वक्त उसे माननी पड़ी। अनिरुद्ध ने धान न मिलने से काम बन्द किया है। पंचायत में पहले छिरू ने उसका अपमान किया था, वह उसके बाद उठा था। जब अनिरुद्ध के चार बीघे का धान चुरा लेने का प्रतिकार कोई नहीं कर सका तो अनिरुद्ध को सजा देने का अधिकार किसे है? अकस्मात् वह अचरज से चौंक उठा—उसकी चिन्ताधारा में बाधा पड़ गयी। अरे! अनिरुद्ध की स्त्री मेरे ही घर की ओर क्यों जा रही है?

गुरुजी को अनमना देखकर पाठशाला के लड़कों में से किसी एक ने कहा, "गुरुजी, आज इतू-पूजा है। आज आधा दिन स्कूल होता है। घड़ी में नौ बज गये हैं।"

देबू के सामने ही एक टाइमपीस रखी रहती है। घड़ी की तरफ देखकर देबू ने फिर पढ़ाना शुरू किया—

शैशव बीता नहीं कि खेतों में सीखा है काज—
अपना गौरव यही, भला इसमें है कैसी लाज?

धीरे-धीरे पूरी कविता खत्म करके देबू ने कहा, "कल इस पद्य का अर्थ लिखकर ले आना। अर्थ का मतलब शब्दों का नहीं, जो समझा है, वह लिख लाना।"

छुट्टी दे दी और वह तुरन्त अपने घर गया। आँगन में उसकी स्त्री के सामने पद्म बैठी थी, कुछ हटकर बैठी थी दुर्गा। उसकी स्त्री इतू की व्रतकथा कह रही थी। देबू की स्त्री कथा बहुत अच्छी कहती है। इस टोले की कथा देबू के ही यहाँ होती

है। वह तो हो चुकी थी। यह शायद दूसरी बार थी। पद्म देबू के नन्हे बच्चे को गोद में लिए बैठी थी। देबू को देखकर उसने घूँघट खींच लिया। देबू की स्त्री भी घूँघट को थोड़ा खींचकर हँसी। दुर्गा कपड़े-लत्ते सँभालकर खासे विन्यास के साथ बैठी थी। उसके भी चेहरे पर हँसी फूट उठी। लेकिन उस ओर ध्यान देने की मनोदशा नहीं थी देबू की। उसकी स्त्री कथा अच्छी कहती है, बहुत अच्छी कहती है, टोले की सारी स्त्रियाँ उसके यहाँ कथा सुनने के लिए आती हैं। लेकिन आज अनिरुद्ध की स्त्री का उसके यहाँ आना जितना अस्वाभाविक था, उतना ही आश्चर्यजनक।

नवान्न के दिन देबू ने लुहार-बहू को कठोरता के साथ भोग लौटा ले जाने को कहा था। कुछ ही क्षण पहले पद्म ने रास्ते से ही देवता को प्रणाम किया, चण्डीमण्डप पर नहीं आयी; लेकिन व्रतकथा सुनने के लिए उसी के यहाँ आयी—बात यह वास्तव में हैरत की है। देबू ठिठक गया। पद्म से कुछ पूछते नहीं बना, सो उसने दुर्गा से पूछा, "क्या री दुर्गा?"

दुर्गा के होठों पर मीठी हँसी खेल गयी। हँसकर वह बोली, "कथा सुनने के लिए आयी हूँ दीदी के पास। ऐसी कथा और कोई नहीं कह सकती। आखिर गुरुजी की ही तो स्त्री ठहरीं!"

भँवों पर बल देकर देबू ने कहा, "दीदी?"—इस बात से उसे चोट लगी।

"जी हाँ! दीदी! तुम्हारी स्त्री से दीदी का नाता जोड़ा है। तुम मेरे जीजाजी हुए।"

देबू के सारे बदन में आग लग गयी। रूखे स्वर में ही बोला, "मतलब... वह तेरी दीदी कैसे हुई?"

दुर्गा ने आँखें बड़ी करके कहा, "हाय राम! मेरा ननिहाल जो तुम्हारी ससुराल के ही गाँव में पड़ता है। मेरे मामा वगैरह दीदी के ही यहाँ खाकर पले हैं... पुराने नौकर हैं, दीदी मेरे मामा को चाचा कहती हैं, तो फिर यह मेरी दीदी नहीं हुई?"

अच्छा न लगने पर भी इस प्रसंग पर उसे चुप हो जाना पड़ा। बोला, "हुं!"—उसके बाद अपनी स्त्री से पूछा, "वह अपने अनिरुद्ध की स्त्री है न?"

पद्म ने लम्बे घूँघट को जरा और बढ़ा दिया। देबू की स्त्री ने धीमे से कहा, "हाँ।"

तुरन्त दुर्गा ने बात शुरू कर दी—"लुहार-बहू ने कथा नहीं सुनी। मैं उसके घर गयी तो देखा, बेचारी मायूस-सी सोच में पड़ी है। उस टोले की कथा पाल के यहाँ यानी छिरू पाल के यहाँ होती है। लुहार-बहू उसके यहाँ नहीं जाती, सो मैंने ही कहा, चलो मेरी दीदी के यहाँ चलो।"

देबू चुप रहा।

दुर्गा ने आगे कहा, "बेचारी डर रही थी कि गुरुजी कहीं कुछ कहें न। उस दिन चण्डीमण्डप में शायद तुमने..."

बीच में ही टोककर देबू ने कहा, "अनिरुद्ध ने बड़ा अन्याय जो किया है।"

दुर्गा ने बेझिझक कहा, "यह कहना तुम्हारे-जैसे आदमी के योग्य नहीं गुरुजी! तुम्हीं कहो, अन्याय क्या अकेले अनिरुद्ध का है?"

जरा चुप रहकर देबू ने कहा, "हाँ, यह ठीक है। समझने में मुझसे गलती कुछ हुई थी।"—मौका पाकर बिना किसी दुविधा के दुर्गा के सामने भी कबूल करके उसने हलका होना चाहा।

देबू की स्त्री ने दबी जबान से कहा, "रोओ मत बहन, लुहार-बहू, रोओ मत।"

पद्म घूँघट से बार-बार आँखें पोंछ रही थी—यह उसने देख लिया था।

देबू ने व्यस्त होकर कहा, "न-न, तुम रोओ मत। अनिरुद्ध मेरा बचपन का साथी है। पाठशाला में साथ पढ़ा है। उससे कहना, मैं आऊँगा। मैं खुद उसके पास आऊँगा।"

पद्म को लक्ष्य करके दुर्गा बोल उठी, "मैंने कहा था न तुमसे! जगन डॉक्टर के पाले पड़कर हमारे जीजाजी ने ऐसा किया है।"

"न-न, नाहक ही दूसरे को दोष मत दे दुर्गा! भूल मेरी है, मेरी समझ की थी।"—इस आन्तरिकता के सुर में निश्छल भाव से देबू ने यह कबूल किया कि दुर्गा तक दंग रह गयी।

देबू ने ही फिर से कहा, "सुनती हो, अनिरुद्ध की स्त्री को जलपान करा के तब जाने देना, हाँ।"

"और मैं?"—दुर्गा झनझना-सी उठी—"अच्छा, मैं बाद पड़ गयी! खूब जीजाजी हुए!"

उस स्वैरिणी के बोलने का ढंग, अपनत्व का सुर इतना मीठा, इतना जी चुरानेवाला है कि उसपर किसी भी प्रकार से रंज होना मुश्किल है। उसकी बात पर देबू की स्त्री हँसी, पद्म हँसी, देबू से भी हँसे बिना न रहा गया। हँसकर बोला, "तेरी फिकर मुझे नहीं है, तेरी फिकर करेगी तेरी दीदी! किसी अपने के होने से पराया जतन थोड़े ही अच्छा लगता है?"

"मूल से उसका सूद ज्यादा मीठा होता है—दीदी से दीदी के दुलहे का जतन मीठा होता है। मगर अपना नसीब!"

देबू ने हँसते हुए ही कहा, "रहने भी दे, शरारत छोड़। काम कर अपना, कथा सुन।"

"गरीब ब्राह्मण को पकवान खाने की इच्छा हुई।"

देबू की स्त्री कथा कह रही थी—"ब्राह्मण मन-ही-मन सोचने लगे, चावल का पकवान, सनचिकली, मूँग का छिलका, नारियल के पूर, सकरकन्द का पकवान—सोचते-सोचते उनके मुँह में पानी आ जाता।"

कमरे में बैठा देबू मन-ही-मन हँसा। पानी उसके मुँह में आ रहा था, शायद हो कि खुद कथा कहते और सुननेवालों के भी मुँह में भर आया हो!

"मगर महज इच्छा से तो कुछ होता नहीं, उसके लिए समरथ भी होनी चाहिए। गरीब ब्राह्मण, न जमीन, न जायदाद, न नौकरी थी, न यजमानी, आज जुटा तो कल के लाले—चावल, उड़द, नारियल, गुड़, सकरक़न्द आये तो कहाँ से? ब्राह्मण होकर चोरी तो कर सकते नहीं।"

ब्राह्मण की सचाई की तारीफ किये बिना न रह सका देबू।

"आखिर ब्राह्मण का दिमाग ठहरा। उन्होंने एक चाल सोची। अगहन बीत रहा था। खेतों से गृहस्थों का धान गाड़ियों पर लदा जा रहा था, आलू जा रहा था, उड़द जा रहा था। गाड़ी के पहियों से माटी चूर-चूर होकर घुटने-भर धूल जमा हो गयी थी। शाम के बाद ब्राह्मण ने अपने ही घर के सामने रास्ते में गड्ढा खोद दिया—ऊपर से घड़ा भर-भरकर पानी उलछा। दूसरे दिन जो भी गाड़ी उधर से जाती, उस गड्ढे में गिर पड़ती। ब्राह्मण सबकी गाड़ी उठाने में मदद देने लगे और मदद माँगने लगे। किसी से धान, किसी से उड़द, किसी से गुड़ वसूल करके जमा किया और स्त्री से कहा—पकवान बनाओ।"

देबू ठठाकर हँस पड़ा। ब्राह्मण की बुद्धि पर मुग्ध हो गया। उसकी हँसी से कथा बन्द हो गयी। बाहर से दुर्गा ने पूछा, "आप हँस क्यों रहे हैं गुरुजी?"

देबू ने बाहर निकलकर कहा, "पण्डित की चालाकी पर।"

देबू की स्त्री ने हलके हँसकर घूँघट को जरा और खींच लिया। बोली, "समाप्त भी करने दो कथा!"

"अच्छा, अच्छा।" कहते-कहते देबू बाहर चला गया।

सन्तुष्ट मन लिए देबू रास्ते पर आकर खड़ा हुआ। गँवई गाँव में जलपान की वेला हुई। खेतिहर बैहार से घर लौट रहे थे। मजूरे खेतों में ही जलपान करते, उन सबके कलेवे लिए औरतें बैहार की ओर जा रही थीं। सिर पर अँगोछे में बँधा कलेवा का बरतन, बगल में टोकरी, हाथ में पानी का लोटा। पुरुषों को कलेवा करा के वे बिखरी धान की बालियाँ बीनतीं, जंगल-झाड़ से जलाने के लिए सूखी लकड़ियाँ चुनतीं।

धान लदी दो-चार गाड़ियाँ भी खेतों से आ रही थीं। अगहन की 'संकरान्त' है। इस बीच गाँव के रास्ते पिसान-सा धूल-से भर गये थे। हेमन्त का अन्त—धूल के रंग में बूढ़े के फीके रंग-जैसी सर्दी की पीली-सी छाप। गाड़ी के पहियों से उड़ रही धूल से वह धूप भी धूसर हो रही थी। चण्डीमण्डप के एक ओर बूढ़े मौलसिरी-पेड़ के गाढ़े सब्ज पत्तों पर अभी ही धूल की एक परत चढ़ चुकी थी।

देवू अनमना-सा फिर चण्डीमण्डप में आ बैठा। चण्डीमण्डप में भी धूल जम गयी थी। इस जगह से मानो उसका गहरा सम्बन्ध हो।

"क्यों पोते, पूछती हूँ, पाठशाला खत्म हो चुकी तुम्हारी? सन्नाटा-सा लगता है!"—रास्ते से एक जर्जर बुढ़िया की आवाज।

"आओ-आओ रांगा दीदी। आज इतू-पूजा है। आधे दिन की छुट्टी।"—देबू ने जरा अस्वाभाविक ऊँचे स्वर में कहा।

एक बुढ़िया—गाँव की रांगा दीदी। बड़े-बूढ़ों की भली-फूआ। तेल लगाये थी। हाथ में झाड़ू लिए चण्डीमण्डप में आयी। बुढ़िया इसी गाँव की लड़की है। बाल-बच्चे नहीं हैं। बाल-बच्चे ही नहीं, अपना कहने को भी कोई नहीं है। आँख से ठीक देख नहीं पाती, कान से भी कम सुनती है, मगर शरीर में शक्ति अच्छी है। सत्तर से ज्यादा उमर होते हुए भी सीधी है। रांगा दीदी नाम उसका निरर्थक नहीं। रंग अभी भी उसका गोरा है और उसमें एक चमक-सी है। लोग कहते हैं, तेल और हलदी से बुढ़िया ने शरीर को बना लिया है। दो शामों में पाव-भर के लगभग तेल लगाती है और फिर बीच-बीच में हलदी भी मलती है। कहती है, तुम लोग साबुन लगाते हो, मैं हलदी भी न मलूँ? नहाने से पहले बुढ़िया चण्डीमण्डप को बुहार जाती है। यह उसका नित्यकर्म है।

"इतू-पूजा में आधे दिन की छुट्टी? ठीक ही किया है।"—कहकर वह झाड़ू लगाने लगी। "यहाँ कितनी बार गाना सुना है भैया, कह नहीं सकती! नीलकण्ठ, नटवर, योगीन्दरा। मोती राय भी एक बार आया था। बड़ी भारी यात्रापार्टी। कीरतन, पांचाली... जाने कितना क्या होता था! तूने क्या देखा! अब न वह राम रहा न वह अयोध्या! उस समय चण्डीमण्डप लीपने के लिए वेतनवाला आदमी था... झकमक करता रहता था।"

अपने-आप ही बक-बक करती जाती बुढ़िया। जीवन के सारे सुख-समारोहों की स्मृति उसने इसी जगह से सँजोयी है। यहाँ आने पर उसे सारी बातें याद आ जाती हैं। रोज ही वह यही बातें कहती—"बड़ी-बड़ी मजलिस बैठती थी भैया! गाँव के जाने-माने लोग बैठते थे, विचार होता था, भले-बुरे पर राय-मशविरा होता था। लेकिन उस समय औरतों को कदम बढ़ाने की जुर्रत न थी। बाप रे! क्या हेकड़ी थी मण्डलों की!"

देबू ने एक उसाँस लेकर कहा, "दीदी, तुम्हारे मरते तो चण्डीमण्डप में झाड़ू भी नहीं लगेगा।"

बुढ़िया का झाड़ू जरा देर के लिए रुक गया। उदास होकर बोली, "काली मैया और बूढ़े बाबा अपना इन्तजाम करा लेंगे भैया!" कुछ देर स्तब्ध रहकर वह फिर बोली, "मेरे मरने पर तुम लोग धर-पकड़कर इस बुढ़िया को यहाँ लाकर सुला देना भैया!"

देबू बोला, "सो करूँगा लेकिन तुम अपने जमा रुपये में से कुछ हमें दे जाना, चण्डीमण्डप की मरम्मत के लिए।"

और कोई यह बात कहता तो बुढ़िया उसका एक नहीं बाकी रखती, उससे गाली-गलौज करके रोने लग जाती। पर देबू मानो इस गाँव के और लोगों से एक अलग आदमी है। बुढ़िया ने उसे गाली नहीं दी। कहा, "अच्छा भैया, आखिर तूने भी वही बात कही। अरे, गोबर चुनकर गोंयठा बेचकर पेट चलाने के बाद रुपया जमा किया जा सकता है? तू ही बता!"

अब बुढ़िया भरसक जल्दी-जल्दी झाड़ू लगाने लगी। रुपये की बात को वह ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहती। रुपये की चर्चा से उसे डर लगता—किसी दिन रात को कोई उसे मारकर उसका सरबस ले जाएगा। सच ही बुढ़िया के पास कुछ रुपये हैं—दो-तीन जगह माटी के नीचे गाड़ रखे हैं। कुल मिलाकर दस कोड़ी पाँच रुपये।

धीमा, आवेगहीन गँवई जीवन! इसी बीच रास्तों पर लोगों की आवाजाई हो रही थी। बीच-बीच में खेतों से धान लदी गाड़ियाँ आ रही थीं। केंच-केंचकें—खिंचती हुई-सी उठ रही थी एक करुण आवाज। पूस का महीना बीत जाएगा, खेतों की फसल खलिहान में आ जाएगी तो इन गाड़ियों का आना-जाना भी बन्द हो जाएगा। उस बार विशु ने एक बात कही थी, "अपने गाँवों की यह बैलगाड़ीवाली जीवन-यात्रा न बदली। गाँव बैलगाड़ियों पर चलते हैं, इसीलिए इतने पीछे पडे हैं। जिन्दगी ही ढीलमढाल हो गयी है। दूसरे देशों में कल से खेती हो रही है—मोटर, ट्रैक्टर।"

देबू अवश्य विश्वनाथ का कहना नहीं स्वीकार करता। लेकिन यह बात झूठ नहीं कि यहाँ का जीवन बैलगाड़ी पर चढ़कर चल रहा है। धीरे-सुस्त किसी तरह लुढ़क रहा है -उन पहियों सा कराहता हुआ।

भूपाल चौकीदार प्रणाम करके खड़ा हो गया—"पा लागी गुरुजी!" भूपाल के पीछे घूँघट काढ़े एक औरत थी। उसके हाथ में भी हाँड़ी थी।

देबू ने अनमना-सा ही हँसकर पुकारा—"भूपाल?"

"जी हाँ, चण्डीमण्डप को एक बार लिपवा-पुतवा दूँ! अरे, उस छोर से शुरू करो!"

उस औरत के हाथ की हाँड़ी में घोली हुई गोबर-माटी थी। उसने लीपना शुरू कर दिया। भूपाल सरकारी चौकीदार है, जमींदार का फरमाबरदार भी। क्वार, पूस और चैत—इन तीन किस्तों के आरम्भ में उसे चण्डीमण्डप लिपाना पड़ता है। उसकी पाँच जिम्मेदारियों में यह भी एक है।

देबू ने सजग होकर हँसते हुए कहा, "यह तो हरिठाकुर का पूजा कराना हो रहा है भूपाल! हरिठाकुर पुजारी है—पाँच गाँवों में पूजा करता है। एक दिन एक

गाँव में पाँच दिन की पूजा एक ही बार कर देता है, फिर पाँच दिन के बाद जाता है। पूस की किस्त के तो अभी काफी दिन हैं।"

देबू की बात पर भूपाल से हँसे बिना न रहा गया। बोला, "हमारा युधिष्ठिर थानेदार (चौकीदार) भी यही करता है। साँझ को निकलता है, रात में तीन बार हाँक लगानी चाहिए—वह एक ही बार में तीन हाँक लगाकर घर जाकर सो जाता है।"

देबू जोर से हँस पड़ा।

भूपाल ने कहा, "मगर मैं ऐसा नहीं करता हूँ गुरुजी! आज गुमाश्ताजी आ गये हैं।"

"आ गये? इतना सवेरे?"

"ज़ी हाँ, सवेरे-सवेरे ही 'सितलमिण्ट' वाला आ गया है न।"

"सेटलमेण्ट कैम्प?"

"जी, धूम-धाम की न पूछिए। तम्बू-कनात ले-देकर बीस-पचीस गाड़ियाँ! सुना है, पूस माह की सातवीं मिति से खानापूरी शुरू होगी। आज ही शाम को शायद ढिंढोरा पिटेगा। मुझे खा-पीकर चल देना पड़ेगा।"

"सेटलमेण्ट की खानापूरी? खेतों में पके धान लगे हैं, उसी के ऊपर से जंजीर खींचकर, बूटों से फसल रौंदकर खानापूरी?"

भूपाल ने कहा, "धान की पिटाई इस बार खेत में ही होगी।"

देबू भौंहें सिकोड़कर खड़ा हो गया—"यह अन्याय है, ज़ुल्म है।"

तेरह

"जो इतू-पूजा करती हैं, उनका भाग्य कथा की ईशानी-जैसा होता है। धान, उड़द, चना, मूँग, गेहूँ, जौ, सरसों, तीसी—तरह-तरह की फसल से खेत लहलहाते हैं, अनाज गाड़ियों से ढो-ढोकर ले जाने पर भी खाली होने में नहीं आते। खलिहान में अन्न समाता नहीं, एक मुट्ठी उठाओ तो दो होता है। उनके खेत-खलिहान और भण्डार में माँ लक्ष्मी अचला होकर वास करती हैं। बाल-बच्चों से घर भरा-पूरा होता है, गुहाल भर जाता है गाय-बछड़ों से, उनके पेड़ फलों से लदे होते हैं, पोखरे मछलियों से भरे, अंग सोना-चाँदी से झलमलाता रहता है। बहू-बेटों, नाती-पोतों से घिरी पति की गोदी में सोयी गले-भर गंगाजल में उनका मरण होता है।"

'हुलूध्वनि' देकर कथा शेष करके देबू की स्त्री ने प्रणाम किया। साथ ही साथ दुर्गा और पद्म ने भी 'लू-लू' करके प्रणाम किया। दुर्गा की आवाज जितनी तेज है, वैसी ही चपल-चंचल है उसकी जीभ। उसकी 'हुलूध्वनि' से सारा घर गूँज उठा। प्रणाम करके हाथ की सुपारी देबू की स्त्री के सामने रखकर जोर से हँसते हुए कहा, "बिलू दीदी, बहन लुहार-बहू, मेरे मरण-काल में तुममें से कोई अपना पति मुझको उधार देना लेकिन।"

देबू की स्त्री का नाम है बिल्ववासिनी। पुकार में बिलू। बिलू हँसी। अपने पति को वह जानती है। वह नाराज न हुई। और कोई होती तो इस बात पर झगड़ ही पड़ती। यह खूबसूरत स्वैरिणी औरत जब मीठी बाँकी हँसी हँसते हुए रात में निकलती है तो इस इलाके की हर बहू खौफ खा जाती है। उसे न लाज है न भय। पुरुष को देखा नहीं कि उससे हँसी-मजाक की दो-चार बातें करके बदन झमकाकर चली जाती है।

पद्म ने भी गुस्सा नहीं किया। इधर कई दिनों से दुर्गा ने उसके यहाँ आना-जाना शुरू किया है। अनिरुद्ध को उसने एक दाव बनाने के लिए दिया है। उसी की खोज-पूछ के लिए दोनों वक्त जाती है, अनिरुद्ध से हँसी-मजाक करती है, हँसकर लोट-पोट हो जाती है। कभी-कभी पद्म के बदन में आग-सी लग जाती है, मगर खरीदार को कुछ कहा नहीं जा सकना। इसके सिवा भी, आजकल पद्म मानो अकस्मात् बदल गयी है। अचानक उसके जीवन में एक सकरुण उदासीनता ने आकर उसे आच्छन्न कर दिया है। घर नहीं सुहाता, काम नहीं अच्छा लगता, अनिरुद्ध के लिए उसकी सर्वग्रासी आसक्ति भी मानो चेतनहीन बाहुबन्धन-सी धीरे-धीरे शिथिल हो पड़ी है। अनिरुद्ध और दुर्गा की इस रहस्य-लीला को अपनी आँखों देखकर भी कुछ नहीं कहती, कहने को जी नहीं चाहता। आज भी उसने गुस्सा नहीं किया। एक लम्बा निःश्वास छोड़कर देबू के मुन्ने को अपनी गोद से बिलू की गोद में देती हुई बोली, "अपनी तो बहन उतनी ही पूँजी है। उसके बाद गाय-बछड़ा, बहू-बेटा, कहावत है—जिसे सिर नहीं, उसे सिर-दर्द—पोता-पोती।" कहकर वह जरा हँसी। हँसकर बोली, "न हो तो वह भी तू ले लेना।" और वह उठी। बोली, "गुरुआनीजी, मैं चलती हूँ।"

बिलू ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "तुम्हारे पति का दोस्त जलपान का न्योता दे गया है। जरा मुँह मीठा तो कर लो।"

बिलू की गोदी के बच्चे की ओर झुककर बार-बार उसे चूमते हुए पद्म ने कहा, "मुन्ने के चुम्मा से पेट भर गया। इससे भी कोई मीठी चीज होती है क्या?"

"नहीं-नहीं, सो नहीं हो सकता।"

"अच्छा तो दो। गाँठ में बाँधकर ले जाऊँगी। इतू का प्रसाद मुँह में डाले बिना भोजन कैसे करूँ, कहो! गुरुजी चाहे इसे न जानें, गुरुआनीजी को तो बताने की जरूरत नहीं।"

रास्ते में दुर्गा ने कहा, “मेरी बिलू दीदी बड़ी भली है, जैसे गुरुजी वैसी ही बिलू दीदी।”

पद्म ने कहा, “मुझे बहन, छिरू पाल का दरवाजा पार करा दो।”

“हाय राम! इतना डर काहे का? दिन-दहाड़े पकड़कर खा लेगा क्या?”—दुर्गा मुँह टेढ़ा करके हँसी, लेकिन यह बात कहने के बावजूद वह पद्म के साथ-साथ चली।

पद्म ने कहा, “भागमान इसे कहते हैं। बड़ा आदमी न हो चाहे, सुथरी गिरस्थी है, वैसा ही पति और वच्चा। जैसे फूल हो कमल का। जैसा मुलायम वैसा ही ठण्डा बदन। उसे गोद लिया कि शरीर जुड़ा गया मेरा।—माँ सुन्दरी है, फिर बाप कैसा सुन्दर है—लड़का सुन्दर नहीं होगा!”

पद्म ने लम्बा निःश्वास छोड़ा। कुछ बोली नहीं। रास्ते में छह-सात साल का एक लड़का मारे खुशी के रास्ते की धूल पर बैठा मैदे-सी मुट्ठी-मुट्ठी धूल अपने माथे पर डालते हुए हँस रहा था। दुर्गा ने कहा, “यह देख लो, जैसा कपाल, वैसा गोपाल। माँ-बाप जैसे अभागे हैं, वैसी ही करतूत है बेटे की।”

वह लड़का सद्गोप वंश के तारिणीचरण का था। तारिणीचरण सर्वस्व गँवा बैठा है। बकाया लगान के दावे में उसका सब-कुछ नीलाम हो गया। अब वह बाउरी-डोम मजूरों की तरह खट-खटकर रोजी चलाता है। तारिणी की स्त्री भी योग्य, सहधर्मिणी है। सारा दिन बाउरी-डोम औरतों की तरह ही टोकरी लिए गाँव के बाग-बैहार-जंगल में लकड़ी चुनती है, साग खोंटती है, ताल-तलैयों का पानी खँदोल-खँदोल मछली पकड़ती है। लेकिन यह सब उसका ढोंग है, असल में तो वह चोरी की घात लगाती फिरती है। आम-कटहल, खीरा-केला, लौकी-कोंहड़ा कहाँ है, जिसके यहाँ है—सब उसके नखदर्पण में रहता है। साग और लकड़ी इकट्ठी करने के बहाने वह ताक-झाँक लगाती फिरती है और सुयोग पाते ही हाथ मारकर सटक जाती है। और यह लड़का इसी तरह कहीं भी रास्ते में बैठा धूल में लोटता रहता है, रिरियाता रहता है। रोते-रोते थककर वह आप ही जहाँ का तहाँ सो भी जाता है—घर के छाजनहीन ओसारे में या कहीं पेड़ तले। किसी-किसी दिन दूर भी निकल जाता है। माँ-वाप खोजते नहीं, चिन्तित भी नहीं होते। लड़का फिर आप ही लौट आता है।

“हट रे लड़के, हट तो! देख धूल मत लगा देना। कल ही धुला कपड़ा पहना है।” दुर्गा ने तिरस्कृत स्वर में उसे सावधान किया।

“हँः!...” शरारत-भरी हँसी हँसकर वह मुट्ठी में धूल लेकर उठ खड़ा हुआ।

“गरदन मरोड़ दूँगी।”—दुर्गा ने डाँटा। सफेद कपड़े पर गर्द लगना उसे हरगिज बरदाश्त नहीं।

“मिठाई दूँ बेटे, खाओगे?” पद्म ने स्नेह से कहा।

धूल-भरी मुट्ठीवाले हाथ को नीचे करते हुए लड़का बोला, “झूठ।”

पद्म ने कपड़े की कोर में बँधी बिलू की दी हुई मिठाई खोलकर कहा, "यह देखो, धूल को फेंक दो।"

"पहले तू मिठाई वहाँ गिरा दे।"

"छिः, धूल लग जाएगी। हाथ में लो।"

"हिं, तू मारेगी पकड़कर।"

"नहीं-नहीं, मारने क्यों लगी?"

"न, गिरा दे तू।"

"गिरा दो बाबा! धूल ही तो लगेगी। अरे, यह तो घूरे पर से जूठे पत्ते उठा-उठाकर खाता है। धूल!"—दुर्गा तुनककर बोली। उसे खीज चढ़ रही थी—बाँझ तो वह भी है किन्तु यह इसे इतने दुलार से बेटा-बेटा कर रही है!

पद्म से लेकिन गिराते न बना। एक साफ-सुथरी जगह में चुपचाप रखकर लड़के की ओर देखकर जरा हँसी। उसके बाद चुपचाप आगे बढ़ी।

"लुहार-बहू!" कौतुक से दुर्गा ने आवाज दी।

लम्बा घूँघट काढ़कर नीचे देखते हुए चलने का पद्म का अभ्यास था। इसी तरह वह जा रही थी। सिर उठाये बिना ही पूछा, "क्या?"

"वह देखो!"

"क्या? कहाँ? कौन?"

"वह सामने छाजन में!"—दुर्गा खी-खी करके हँस पड़ी।

घूँघट को जरा-सा हटाकर चारों तरफ नजर दौड़ा झट उसने फिर घूँघट खींच लिया। सामने ही छिरू पाल का खलिहान। दरवाजे पर ही मोढ़ा डाले वह बैठा था। और अकेला नहीं, बगल में एक कोई और भी था। इस आदमी की गोल-गोल बड़ी आँखें थीं, कुछ ललाई लिये हुए, चपटी-सी नाक और नाक की सीध में घनी बहारदार मूँछें जो उसके चेहरे को रोबीला बनाये हुए थीं। छिरू और यह आदमी दोनों इन्हीं दोनों की ओर देख रहे थे। पद्म उस आदमी को भी पहचानती थी—वह जमींदार का गुमाश्ता है। जल्दी-जल्दी वह वहाँ से आगे निकल गयी। लेकिन दुर्गा अपनी उसी मन्थर चाल से चलती रही।

गुमाश्ते ने एक बार दुर्गा की ओर घूरा, फिर छिरू पाल की ओर ताका। पूछा, "दुर्गा के साथ वह कौन है पाल?"

"अनिरुद्ध की स्त्री।"

"हुँ! दुर्गा के साथ यों गाँठ बाँधे क्यों घूमती है भई?"

"पराया जी अँधेरी कोठरी! क्या बताऊँ, आप ही कहिए?"

"दुर्गा क्या कहती है? पीती है?"

छिरू ने गम्भीर होकर कहा—"मैंने वह सब छोड़ दिया है, दास बाबू! दुर्गा से मैं बात तक नहीं करता।"

अचरज से आँखें फाड़ दास बोला, "ऐं, कहते क्या हो!" और उसकी रोबीली मूँछें हलके से हिल उठीं, उसमें यह एक टेव पड़ गयी थी।

"जी हाँ!"

"अच्छा! बात क्या है?"

"अँहँ, नीचों की संगत ठीक नहीं, दासजी! समाज घृणा करता है, छोटे लोग हँसते हैं। अपनी इज्जत-आबरू भी नहीं रहती।"

घर में आग लगाने की बात को लेकर दुर्गा के साथ छिरू का कलह हुआ था। इतना ही नहीं भीतर-भीतर उसे एक झुँझलाहट भी थी। उसे लगता मानो सोनेवाले कमरे में वह एक साँप लेकर रहता हो। हाँ, साँप नहीं साँपिनी : यही दुर्गा।

दास ने हँसकर कहा, "खैर! मगर लुहारिन तो नीच नहीं, बेटा लुहार को जब सबक सिखाना ही है, तो घर की हाँड़ी तक को जूठा कर दो न!"

छिरू चुप रहा। यह इच्छा उसके कलेजे में ज्वालामुखी की आग-सी रुँधे-मुँह दबी पड़ी है। झकझोरा खाकर वह छिपी लौ भीतर-भीतर जाग उठती है।

दास फे-फे करके हँसने लगा।

साथ ही छिरू की तेज आँखें मानो जल उठीं। उस धधकते साँवले रंगवाली लम्बे कद की बहू के प्रति उसके हृदय में नंगी कामना की एक गहरी आसक्ति है। उसे पोखरे पर खड़ी पद्म के घूँघट में ढँके चेहरे की याद आयी। बड़ी-बड़ी आँखें, छोटे कपाल को घेरे घने काले बाल, जरा-सी झुकी नाक, गाल के पास एक बड़ा-सा तिल, हाथ में पजाया हुआ दाव। निष्ठुर कौतुक की हलकी हँसी से खुले उसके छोटे-छोटे सुन्दर दाँतों की पाँत तक उसके अन्तर में झिलमिला गयी।

दास ने हँसी रोककर कहा, "तुम्हारा क्या, तुम नसीबवाले हो। तुम नहीं मजा लोगे तो कौन लेगा ढोंढाई-मँगरू?"

बड़ी देर के बाद अजगर की तरह एक निःश्वास छोड़कर छिरू बोला, "यह सब छोड़िए, दासजी! अभी मैंने जो कहा, उसका क्या कर रहे हैं?"

"उसका क्या करना है! अरे 'पाल' काटकर 'घोष' बनाने में क्या देर लगती है? जमींदारी-सिरिश्ते के मामलों का नियम तो जानते ही हो—खर्च करो, काम बनाओ। कुछ दस्तूरी दो; फिर बाद को हम सबकी दावत तो करनी ही होगी।"—छिरू पाल की ओर देखते हुए दास ने कहा, "अच्छा सुनो, शराब भी छोड़ दी क्या? अजीब हाल है तुम्हारा?"—दास जरा बाँकी हँसी हँसा।

छिरू ने हँसकर कहा, "न-न, वह तो होगा ही। मगर बात यह है कि वह सब ढिंढोरा पीटकर नहीं करना है! छिपकर आपके घर में कभी-कभी—!"

"बेशक, भले आदमी की तरह।"

दास ने बार-बार गरदन हिलाकर छिरू की युक्ति मानकर कहा, "हजार बार। मैंने पहले तुम्हें कितनी बार मना किया, याद है? कितनी बार कहा, पाल, ऐसा करना

तुम्हें शोभा नहीं देता। खैर, अन्त में तुम सँभल गये, ठीक ही है।"

दास की बात को छिरू ने भी स्वीकार किया, "हाँ-हाँ, मैंने खूब समझ लिया दासजी कि मान-सम्मान ऐसे नहीं मिलता। वह जमाना अब नहीं रहा।"

दासजी जमींदारी-सिरिश्ते के अनुभवोंवाला विलक्षण कर्मचारी ठहरा। हँसकर बोला, "कभी नहीं मिलता था भैया, कभी नहीं। तुम त्रिपुरा सिंह को कहते हो, उसे लोग आज भी डकैत कहते हैं। यह भी कोई मान-सम्मान है? कंकना के इन बाबुओं को देखो—धनी हो गये, मगर तो भी कोई बाबू कहने को तैयार न हुआ। उसके बाद स्कूल बनवाया, अस्पताल खोला, ठाकुर की प्रतिष्ठा की कि लोग धन्य-धन्य कर उठे। बाबू तो एकबारगी बड़ा बाबू—बड़े घर के बड़े बाबू का खिताब मिल गया।"

"अबकी चण्डीमण्डप को मैं पक्का करवा दूँगा, दासजी! और उसी के पास एक कुआँ खुदवा दूँगा!"

"बस, बस, पक्का कराके कुएँ की जगत और चण्डीमण्डप के फर्श पर खुदवा दो—'सेवक श्रीहरि घोष ने बनवाया।' उसके बाद तो तुम्हारी घोष उपाधि बिलकुल पक्की हो जाएगी।"

"लेकिन आप उसे कर ही दीजिए। सेटलमेण्ट के परचे में भी घोष लिखाऊँगा मैं।"

"कल। कल। कल ही कटा लो न तुम।"

श्रीहरि की वंश-प्रचलित उपाधि है पाल। वह उसे बदलना चाहता है। खुद वह बहुत दिनों से घोष लिखता है, मगर यह अदालत में नहीं चलता। इसीलिए जमींदारी सिरिश्ते में पाल की जगह घोष कराना चाहता है। उधर सरकार नया सर्वे करा रही है। उसकी रेकर्ड ऑफ राइट्स के दफ्तर में भी घोष उपाधि पक्की हो जाएगी। पाल उपाधि सम्मान-जनक नहीं है—जो लोग अपने हाथों खेती करते हैं, उन लोगों की, यानी खेतिहरों की है यह उपाधि।

दासजी ने फिर पूछा, "और उस बारे में क्या कर रहे हो?"

"किस बारे में? लुहारिन के बारे में?"

हो-हो कर हँसते हुए दास ने कहा, "अरे, वह तो होगा ही। उसमें कुछ पूछना है भला! मैं कह रहा था गुमाश्तागिरी वाली बात।"

छिरू शर्मिन्दा हो गया था। बिलकुल औचक वह पकड़ा गया। अप्रतिभ-सा होकर बोला, "अच्छा सोचूँगा।"

ठीक उसी वक्त बगल में किसवत दबाये आ पहुँचा ताराचरण परामाणिक। बड़े भक्ति-भाव के साथ उसने मीठी-सी हँसी हँसते हुए प्रणाम किया—"गोड़ लागी।"

माथे के ऊपर तक आँखें बढ़ाकर ताराचरण की ओर देखते हुए दासजी ने कहा, "आओ तारा, आओ। क्या खबर है?"

सर खुजाते हुए तारा ने कहा, "जी कंकना गया था। घर लौटा कि सुना—माँ ने बताया—गुमाश्ताजी आये हैं। सुनना था कि मैं भागा-भागा आया।—" वह नाहक ही हँसने लगा।

ताराचरण की यह हँसी उसके रोजगार के तजुर्बे और बुद्धि का दान है। जिसकी भी बुलाहट पर वह पहले नहीं जाता, वही खफा हो उठता। इसीलिए सबकी खुशी के लिए वह ऐसी मीठी हँसी-हँसा करता। इससे तिरस्कार में भी हँसता। उसने एक और भी सत्य का आविष्कार किया है, उसे भी वह अपने काम में लाता। पड़ोसी का भेद जानने का एक अजीब कौतूहल होता है लोगों में। सुबह से दोपहर तक वह गाँव-गाँव जाने कितनों के यहाँ जाता। सो राम के घर की बात वह श्याम को और श्याम के घर की जद्दू को बताता और यदुनाथ की बात मधु को कहके उसकी खीज मिटाकर उसे खुश कर देता। उसी मौके से वह उसके घर की कुछ भेद-भरी बातें जान लेता।

हजामतवाले कटोरे में पानी डालते हुए उसने शुरू कर दिया—"कंकना में धूम मच गयी है। जी, समझ में आया कि नहीं! कोई आठ-दस तो खड़े हैं खीमे, गाड़ियों जमा हुआ है कागज!"

"हूँ! सेटलमेण्ट कैम्प आया है।"

चतुर ताराचरण ने भाँप लिया—इस खबर से गुमाश्ताजी का जी खुश नहीं होगा। झट उसने श्रीहरि की ओर ताका। उसका भी चेहरा गम्भीर। सो तुरन्त उसने प्रसंग बदल दिया। कहा, "अब दुर्गा-टुर्गा की चल निकलेगी। दोनों हाथों रुपये लूटेगी। अमीनों की जैसी जमात देखी मैंने! फैशनदार बालोंवाले! समझे भाई पाल!"

गुमाश्ता ने डाँट बतायी—" 'पाल' क्या रे? 'भाई पाल' कैसे कहा तूने? तू 'भाई पाल' कहने लायक है? 'समझे आप' नहीं बोल सकता?"

"जी?"

" 'घोष बाबू' बोल। पाल वे लोग होते हैं जो अपने हाथों खेती करते हैं; श्रीहरि तो इस गाँव के चोटी के आदमी हैं।"

ताराचरण सब चुपचाप सुनने लगा। बहुत-सी बातें सुनीं उसने। यहाँ तक कि इस गाँव की गुमाश्तागिरी भी श्रीहरि घोष ले रहे हैं, हाव-भाव से उसने इसका भी अन्दाज कर लिया। उसने छूटते ही कहा, "सौ बार, हजार बार; घोष बाबू-जैसा आदमी इन कई गाँवों में है कौन?" गुमाश्ता के गाल पर उस्तरा चलाते हुए दवे गले से कहा, "ये चाहें तो दुर्गा-जैसी बीस बाँदियाँ रख सकते हैं।" हाथ के इशारे से उस्तरा चलाने को मना करते हुए दासजी ने मीठे से पूछा, "अनिरुद्ध लुहार की बहू दुर्गा के साथ क्यों घूमा करती है रे? माजरा क्या है?"

"अच्छा? ठहरिए, आज ही पता लगाता हूँ। लेकिन हाँ, अनिरुद्ध से आजकल दुर्गा का जरा..."—वह हँसा।

"हाँ?"

"जी!"

श्रीहरि चुप बैठा था। पद्म के बारे में ऐसी बातचीत उसे अच्छी नहीं लग रही थी। उस लम्बी देहवाली देवी के प्रति उसकी आसक्ति प्रचण्ड थी, उसकी कामना बड़ी गहरी थी; ऐसी आसक्ति और कामना कि जिसके होने पर एक मानुष मानुषी को, पुरुष नारी को एकान्त अपने लिए, सम्पूर्ण रूप से अपनी करके प्राप्त करना चाहे; जिसे किसी निर्जन—सूने में वह चोर की सम्पदा की नाईं रखना चाहे; किसी अँधेरी गुफा के घेर-घुमावों में छिपी सर्प की सर्पिणी के समान—सौ नागपाशों के बन्धनों में बँधी-जकड़ी!

दुर्गा पद्म के घर पहुँची तो क्या देखती है कि वह फिर से नहाने जाने की तैयारी कर रही है। पद्म तो जल्दी-जल्दी चली आयी थी। दुर्गा उसके बाद कुछ देर तक एक गली की आड़ में खड़ी थी। गुमाश्ते को वह खूब पहचानती है। श्रीहरि की तो एड़ी-चोटी उसके नख-दर्पण में है। वह उन दोनों की बातें सुनने के लिए ही छिपकर खड़ी थी। गुमाश्ता की बातों पर वह हँसी और श्रीहरि की बातों के हाव-भाव पर चकित हुई। तारा हजाम आया कि वह चली आयी। पद्म उस समय अँगोछा कन्धे पर रख घर से निकल रही थी। दुर्गा ने पूछा, "अरे फिर स्नान?"

"हाँ।"

"छुआ गयी किसी चीज से क्या? ये पाँच हाथ लम्बा तो घूँघट है! कुछ छू जाए तो आश्चर्य क्या!"

अप्रतिभ-सी हँसकर पद्म बोली, "नहीं-नहीं, छुआयी नहीं।"

"फिर?"

"बच्चे ने कपड़ा गन्दा कर दिया।"

"यही तो एक रोग है तुम्हें, बच्चे को देखा नहीं कि गोदी में उठा लिया। अपना है नहीं। पराये बच्चे को लेकर इतनी झंझट बढ़ाने की कौन जरूरत, बोलो तो? किसके बच्चे को उठा लिया था?" इतने में बड़ी अप्रतिभ होकर पद्म जरा हँसी—"छिरू पाल के बच्चे को।" दुर्गा अवाक् रह गयी।

पद्म ने कहा, "गली के मोड़ पर खड़ी उसकी बहू बेचारी रो रही थी। गोदी में नन्हा रो रहा था और बड़ा गोदी चढ़ने के लिए माँ का कपड़ा खींचकर एकाकार कर रहा था और चीख रहा था। घर के अन्दर सास कोस रही थी : 'कोख-खौकी, सबको खा गयी तो यही दो क्यों? इन्हें भी खा और खाकर तू भी जा, मैं जी जाऊँ!' ... इसीलिए नन्हे को ले लिया जरा। माँ ने बड़े को चुप कराया।" पद्म जरा चुप रहकर

बोली, "पाल की बहू लेकिन औरत बड़ी भली है।" उसे उस रोज की बात याद हो आयी।

श्रीहरि की बहू के खिलाफ दुर्गा को कोई शिकायत नहीं, बल्कि उसके सामने तो भीतर-भीतर वह अपने को अपराधी समझती है। इस गाँव की सभी बहुएँ उसे सरापती हैं, बुरा-भला कहती हैं—उसे मालूम है। सिर्फ दो बहुओं के लिए उसकी यह शिकायत नहीं : एक देबू की स्त्री बिलू दीदी और दूसरी यह छिरू पाल की स्त्री। देबू की स्त्री को तो कहने की गुंजाइश ही नहीं, उसे अपने पति पर किसी तरह का सन्देह नहीं, साधु आदमी है वह। लेकिन छिरू के साथ खुलेआम घनिष्ठ सम्बन्ध रहते हुए भी छिरू की स्त्री ने कभी उसे कड़वी बात नहीं कही, कभी गाली-सराप नहीं दिया। छिरू की स्त्री से आँख मिलाने में सच ही उसे शरम आती।

कुछ देर चुपचाप रास्ता चलते, जैसे अचानक ही श्रीहरि की स्त्री के प्रसंग से छुटकारा पाने के लिए ही उसने दूसरी बात छेड़ी—"क्या जाने बहन, नन्हे बच्चे को देखने से मेरा तो जी घिनघिन करने लगता है! माँ री!"

पद्म ने टक बाँधे एक आँख उसकी तरफ देखा।

दुर्गा ने यह देखा ही नहीं। देखती भी तो परवा न करती। हिकारत-भरी बाँकी हँसी के तीखे बाण से उसके टुकड़े-टुकड़े करके धूल-मिट्टी कर देती। उसी अपेक्षा के भाव से वह कहती गयी, "मेरी भौजी को बुढ़ापे में फिर लड़का-बच्चा होनेवाला है। मैं तो भाई अभी से सोच में पड़ गयी हूँ। वही टें-टें करके रोएगा, चिड़िया के बच्चे की तरह हरदम कपड़ा-बिछौना गन्दा करेगा। छिः!"

पलक मारते पद्म में अजीब-सा परिवर्तन हो गया। उसने पूछा, "तुम्हारी भौजी ने किस देवता की मन्नत मानी थी?"

"देवता? अरे, देवता ने तो बहुतों पर दया की।"—उसके बाद फिर से हँसकर बोली, "अन्त में वही घोषाल के..."

"घोषाल भी कवच देता है क्या?"

"हाय राम! अरे, अब भौजी को हरेन घोषाल से आसनाई हुई है। बाँझ तो वह है नहीं। सो बाल-बच्चा होगा।"

पद्म अपलक आँखों उसे देखती रह गयी।

दुर्गा ने कहा, "अरी, बाँझ सिर्फ औरत ही नहीं होती, मर्द भी होता है। नहीं जानती तुम?" उसने दृष्टान्त देना शुरू किया—आस-पास के गाँवों के बहुतेरे उदाहरण उसे मालूम हैं। इस जीवन की, इस राह के राहगीरों की हर बात वह जानती है, हर-एक को पहचानती है। वे शायद अँधेरे में ही चलना चाहते हैं—लेकिन वह तो घूँघट उठाकर अकुण्ठित दृष्टि से देखती राह पर बैठी है खानाबदोश-जैसी, रास्ते पर ही डेरा डाला है उसने तो।

जाड़ों के दिन—पानी की कनकनी सुई-सी चुभाती। सवेरे-सवेरे दो बार नहाने से पद्म अनमनी-सी हो गयी। दिन-भर में भी उसकी तबीयत सँभली नहीं। रसोईघर की गरमी में भी उसे आराम नहीं मिला। सब बना चुकी, मगर खाया कुछ नहीं। ढाँककर अनिरुद्ध के लिए रख दिया। अनिरुद्ध सवेरे ही कलेवा लेकर मयूराक्षी के उस पार अपनी नयी दूकान को चल दिया था।

तीसरे पहर वह लौटा। पद्म चुपचाप दीवार के सहारे बैठी थी। उसके सारे शरीर में अस्वस्थता की साफ झलक थी। अनिरुद्ध एक तो थका हुआ था, फिर आते में दुर्गा के यहाँ उसने थोड़ी-सी पीली थी। पद्म का हाव-भाव देखकर वह जल-भुन उठा। बड़े गुस्से से कुछ देर पद्म को घूरकर एकाएक वह चिल्ला उठा—"आखिर तुझे हुआ क्या है?"

पद्म ने अब जाकर अनिरुद्ध की तरफ ताका। अनिरुद्ध फिर चिल्ला उठा—"हुआ क्या तुझे?"

शान्त स्वर में पद्म ने जवाब दिया, "होगा क्या? कुछ भी नहीं।" तबीयत खराब होने की बात अनिरुद्ध को कहने की इच्छा न हुई, अच्छी भी नहीं लगी। पत्थर के आगे दुःखड़ा रोकर क्या होगा? सिर्फ एक हलकी हँसी, उदास-सी, खेल गयी होंठों पर।

दाँत पीसकर अनिरुद्ध ने कहा, "फिर? फिर उदास राधिका-सी बैठी छप्पर की ओर ताक क्या रही हो?"

लमहे में पद्म मानो लहक उठी। उसके शिथिल शरीर के अंग-अंग में एक अधीर चंचलता-सी खेल गयी, बड़ी-बड़ी आँखें क्रोध से लाल और विस्फारित हो उठीं। अनिरुद्ध को लगा, लुहारखाने की आग में मानो लोहे के दो टुकड़े आग से भी तेज और गरम होकर गलने को हैं। उसकी देह तक जलते अंगारे-सा दुस्सह ताप बिखेर रही थी। पद्म का यह बिलकुल अजाना रूप था। अनिरुद्ध डर गया जाने वह क्या कहेगी, क्या करेगी—इस आशंका से अधीर हो उठा।

लेकिन पद्म मुँह से कुछ न बोली। किसी पात्र में पड़ी जलती हुई धातु की तरह उसका गुस्सा उसकी नजर और देह की चेष्टा में ही सीमित रहा। केवल एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर वह उठ खड़ी हुई। अनिरुद्ध ने देखा—पद्म काँप रही है। घबराकर उसने जाकर उसका हाथ पकड़ा—"क्या हुआ पद्म? पद्म!"

शरीर को समेटकर पद्म ने मानो अनिरुद्ध के पास से हट जाना चाहा, लेकिन न हट सकी, काँपते-काँपते वह दीवाल के सहारे धीरे-धीरे नीचे को बैठी और फिर धरती पर लुढ़क गयी।

अनिरुद्ध जगन डॉक्टर के पास दौड़ा।

रास्ते में चण्डीमण्डप में डॉक्टर की आवाज सुनाई पड़ी। वह वहीं गया, उस समय वहाँ गाँव के सभी लोग इकट्ठे हुए थे। और डॉक्टर, केवल यही कहता जा रहा था—दरख्वास्त दूँगा। कमिश्नर को तार दूँगा।

वरदी-पेटीवाला एक सरकारी चपरासी चण्डीमण्डप की दीवार पर एक नोटिस चिपका रहा था : "अगली पूस से इस गाँव में 'सर्वे सेटलमेण्ट' की खानापूरी होगी। लोगों को आदेश दिया जाता है कि वे अपने-अपने खेतों पर मौजूद रहें और अपनी चौहद्दी दिखा दें। ऐसा न करने पर उनपर कानूनी कार्रवाई की जाएगी।"

गाँव के लोग चिन्तित होकर बुदबुदा रहे थे।

छिरू पाल और गुमाश्ता हाकिम के पेशकार से बातें कर रहे थे।

"मछली—हाँ, बड़ी-सी।"

देबू एक किनारे चुपचाप खड़ा था। अनिरुद्ध लपककर उसी के पास पहुँचा। जंक्शन बाजार से लौटते वक़्त दुर्गा से उसने सारी बातें सुनी थीं। देबू को वह सदा से चाहता है, उसपर श्रद्धा करता है। उस रोज भी वह उसपर ठीक नाराज नहीं हुआ था, बल्कि रूठा था। आज भी दुर्गा से जो सुना सो उसका वह रूठना जाता रहा और गाढ़े स्नेह से जी भर गया।

आवेश से काँपती हुई आवाज में बोला—"देबू भाई!"

"क्या है अन्ने भाई, बात क्या है?"

अनिरुद्ध रो पड़ा।

देबू ने ही जगन डॉक्टर को बुलाया—"जरा जल्दी चलो, अनिरुद्ध की स्त्री मूर्च्छित हो गयी है।"

जगन ने गुस्सा-भरी निगाहों एक बार अनिरुद्ध की ओर ताका, फिर आप ही आगे बढ़कर बोला, "चलो।"

सेटलमेण्ट के बारे में उसका भाषण बहरहाल स्थगित हो गया। रास्ते में उसने गाँववालों की एहसान-फरामोशी पर भाषण शुरू कर दिया—

"जो हो चाहे, अपना कर्तव्य मैं करता जाऊँगा। डॉक्टर हूँ तो बुलाने पर मुझे जाना ही पड़ेगा, जाऊँगा। तीन पुश्त से गाँव में किसी ने फीस नहीं दी। फीस मैं भी नहीं लूँगा।" डॉक्टर हँसा—"दवा का ही दाम कोई नहीं देता तो फीस...!"

देबू ने जेब से बीड़ी निकाली—"लो डॉक्टर, पीओ!"

"दो!"—बीड़ी को दाँतों से दबाकर डॉक्टर ने कहा, "मैं तुम्हें हिसाब-बही दिखाऊँगा देबू, दस हजार! हमारे दस हजार रुपये डुबा दिये लोगों ने, लेकिन इज्जतदार कौन हुआ, वो महाजन जो सूद लेता है, कंकना के बाबू, छिरू पाल!"

वे लोग जगन के दवाखाने के पास पहुँच गये थे। वहाँ से एक शीशी लेकर

डॉक्टर ने कहा, "चलो, एक मिनट, बस एक मिनट में होश आ जाएगा। डरने की बात नहीं है।"

चौदह

आसमान में सुबह की किरण भी ठीक से नहीं फूटती कि देबू बिस्तर छोड़ देता। उसकी यह आदत छुटपन से ही है। अकेले देबू ही नहीं गाँव के ज्यादातर लोग दिन शुरू होने के पहले से ही अपनी जीवन-यात्रा शुरू कर देते हैं। औरतें जगकर दरवाजे पर पानी छिड़कती हैं, घर-द्वार बुहारती हैं, लीपती हैं, गाय-बछड़ों को चारा देती हैं और फिर जिसके यहाँ जब कोई अतिरिक्त काम होता है—जैसे धान कूटने का ही काम—तब उसके यहाँ रात के आखिरी पहर से ही हलचल शुरू हो जाती है। रात के अन्तिम पहर की निस्तब्धता में एक बँधी ताल पर ढेंकी की आवाज होती है—दुम्-दुम्-दुम्। धीमी-धीमी बातचीत का आभास मिलता है, ढिबरी की जोत जगती है। इन दिनों इस नये धान के समय गाँव के बहुतेरे घरों से ढेंकी की आवाज जरूर ही उठती है लेकिन आज किसी के घर से आवाज नहीं उठी। आज इतू-पूजा है—अनाज पर ढेंकी की चोट नहीं पड़नी चाहिए। आज संचय का दिन है।

देबू ने अपनी स्त्री से कहा, "सुनो, आज आँगन भी लीपना है। गुमाश्ता आया है। कुछ रोज पाठशाला यहीं चलेगी।"

चण्डीमण्डप में अभी गुमाश्ते की कचहरी बैठेगी। देवोत्तर सम्पत्ति के सेवायत के नाते चण्डीमण्डप के मालिक हैं जमींदार। लेकिन जगह वह सार्वजनिक है, इसलिए आम लोगों को उसे काम में लाने का अधिकार है। उसी अधिकार से गाँव के लोग उसका व्यवहार करते हैं, उसी जिम्मेदारी से उसकी देख-रेख भी वे ही करते हैं, वे ही चन्दा जमा करके छौनी-छप्पर करते हैं, और जरूरत पड़ने पर वे ही टूट-फूट की मरम्मत कराते हैं, यहां तक कि एक दिन उन्होंने ही आपस में चन्दा जमा करके चण्डीमण्डप को बनाकर खड़ा किया था। यह बात बहुत दिनों की है। मालिक के नाते जमींदार ने राय दी थी—सिर्फ राय! और उससे अधिक दिये थे ताड़ के कुल दो पेड़—छाजन की लकड़ी के लिए।

चण्डीमण्डप में प्रणाम करके देबू बैहार की ओर निकल गया। गाँव के बड़े-बूढ़े उस समय मण्डप के द्वार पर जल छिड़ककर प्रणाम कर रहे थे। लगातार पानी पड़ते

रहने से चौखट के नीचे की लकड़ी सड़कर गल गयी थी और दरवाजे का एक हिस्सा घिस गया था। अबकी अगर उसकी मरम्मत नहीं की गयी तो पूजा के समय भोग की गन्ध से बिल्ली तो घुसेगी ही, कुत्ता भी घुस जाए तो अचरज नहीं। लँगड़ा पुरोहित कहता, "इतना ज्यादा पानी मत दो माताओ, थोड़ा-थोड़ा दो। तुम्हीं लोगों के परलोक का पथ किचकिच होगा—फिसलन होगी। आखिर रथ का चक्का उसमें धँस जाएगा तो नहीं निकलेगा।"

मण्डल फूआ अपना-सा जवाब देती, "रथ का घोड़ा आखिर तुम्हारे तीन टाँगवाले वातग्रस्त घोड़े-सा थोड़े ही है! इसकी फिक्र तुम्हें नहीं करनी होगी।"

पुरोहित हँसकर कहता, "मेरा घोड़ा उस रथ के ही घोड़े का बच्चा है, फूआ! इसके तो खैर तीन टाँग हैं, इसके माँ-बाप के महज दो ही हैं। सुना नहीं है—'दायाँ पाँव लटर-पटर टूटा बायाँ गोड़ा, बाबा बैजनाथ का घोड़ा'।"

जगन डॉक्टर और रूखी, और भी सख्त बात कहता। वह कहता, "कोई चोर है तो कोई बटमार, कोई छिनाल; पटगरू, फरेबी और मक्कार तो सभी हैं। मगर सवेरे सब आते हैं पुण्य कमाने। ऐसा नियम बना दो कि देवता के द्वार पर जो जल ढालेगा, उसे रोज एक पैसा देना पड़ेगा। देख लेना, कोई नहीं आएगा। देखो तो सही! पोखरे का पानी घड़ों में भरकर लाते हैं और ढालते हैं!"

देबू कुछ कहता ही नहीं। जगन बेशक झूठ नहीं कहता, उसकी बात ज्यादा सच ही है, लेकिन नियम से रोज पहले सुबह जब वह उन्हें देखता है तो उनके आँख-मुँह, हाव-भाव में इन परिचयों की कोई झलक ही उसे नहीं दिखाई देती। बिलकुल दूसरे ही लोगों को देखता है वह। उस समय इनमें से हरेक मानो एक-एक कल्पलोक का यात्री हो! काश, ये लोग सदा ऐसे ही आदमी रहते! लेकिन चण्डीमण्डप से बाहर निकलकर अपने घर पर पाँव रखते न रखते एक-एक आदमी फिर अपना रूप धारण कर लेता है। कोई अपने दुःख-कष्ट के लिए भगवान को सौ मुँह से गालियाँ देता है, कोई घाट से किसी और का बरतन गायब कर देता है, तो कोई रास्ते पर खड़ा पैकार यानी गैया-गोरू के दलाल का इन्तजार करता है कि अपनी बूढ़ी गैया को बेच ले। बूढ़ी गाय को ले जाकर दलाल क्या करते हैं—यह सब लोग जानते हैं, परन्तु उस समय उन चन्द सिक्कों का लोभ भी इनसे छोड़ते नहीं बनता। इनसान सचमुच अजीब है, इनसान विचित्र है!—लम्बी उसाँस लेकर देबू चण्डीमण्डप से रास्ते पर उतर आया।

खेत-मजूरे खेतों की ओर जा रहे थे—बाउरी, डोम, मोची आदि खेत-मजूरे। तन पर मोटा कपड़ा, सिर पर गमछे की पगड़ी। ऊपर से धोती को ही चादर की तरह लपेटे हुक्का पीते हुए चले जा रहे थे। उनके हाथ में हँसिया। कटनी का समय। गाँव के दूसरे खेतिहर भी अधिकांश अपने ही हाथों खेती-गिरस्ती करते, वे भी हँसिया ले-लेकर चले जा रहे थे। 'खटे-खटाये दूना पाये।' यानी खेती में जो खुद भी काम

करते हैं, मजूरों से भी कराते हैं, उन्हें दूनी उपज मिलती है। इस प्रवाद को वे लोग अभी भी मानते हैं, दो-तीन-चार जने ऐसे हैं, जो खुद से काम नहीं करते। हरेन्द्र घोषाल ब्राह्मण ही ठहरे, जगन घोष एक तो जाति का ब्राह्मण तिस पर डॉक्टर, देबू घोष गुरुजी और श्रीहरि फिलहाल कुलीन सद्गोप तथा काफी धन-जायदाद का मालिक—यही कुछ लोग खुद से नहीं खटते।

सतीश बाउरी अपनी जाति का मातबर आदमी है। उसका अपना हल-बैल है। जमीन जरूर उसकी अपनी नहीं, बटाई पर दूसरे का खेत जोतता है, विज्ञ-जैसी बातें करता है। देबू को झुककर प्रणाम करते हुए बोला, "पालागों गुरुजी!" साथ के दूसरे लोगों ने भी प्रणाम किया।

प्रति-नमस्कार करके देबू ने कहा, "खेत जा रहे हो?"

"जी!..." सतीश ने अपने साथियों से कहा, "गुरुजी-जैसा आदमी मैंने और नहीं देखा। प्रणाम करने पर बहुतेरे महानुभाव तो बोलते नहीं। गुरुजी का लेकिन कपाल मे हाथ जरूर लगता है। उनके मुँह में से मैंने कभी ते-रे-बे नहीं सुना।"

देबू ने कुछ कहा नहीं। वह तेजी से आगे निकल जाना चाहता था। लेकिन सतीश बोला, "गुरुजी, यह होगा क्या, कहिए तो?"

"किस बात का क्या होगा? हुआ क्या?"

"जी, केवल अपना नहीं समूचे गाँव का। मैं सितलमिण्ट की बात कह रहा हूँ। कहता है कि सात दिन के बाद ही शुरू हो जाएगा। तो क्या तमाम दिन मौजूद रहना पड़ेगा, जंजीर खींचनी पड़ेगी! ऐसे में कटनी कैसे होगी और पक्की फसल पर जंजीर खींचने से धान ही कैसे बचेगा?"

"गुमाश्ता ने क्या कहा? पाल ने क्या कहा?"

"जी, घोष बाबू कहिए!"

"घोष बाबू?"

"जी हाँ! अब वे श्रीहरि घोष हैं। घोष कहने का हुकुम हुआ है। अब जमींदार की बही में, अदालत तक में 'पाल' के बदले 'घोष' करा लिया है।"

"अच्छा! तो उन लोगों ने क्या कहा, कल तो तुम लोग गये थे?"

"जी, बुलाहट हुई थी। कहा, दिन-रात काम करके सात दिन के अन्दर फसल काट लो। भला, यह भी हो सकता है, आप ही कहिए गुरुजी!"

देबू चुप रहा। कोई जवाब नहीं दिया। कल तमाम रात वह यही सोचता रहा है, लेकिन कोई उपाय नहीं निकाल सका।

सतीश ने कहा, "जब वहाँ से लौटा तो देखता हूँ कि डॉक्टर बाबू टोले में आये हैं। वह कह रहे हैं कि अँगूठे का निशान लगाओ, दरखास्त भेजनी है मगर आप भी बतायें, दरखास्त से क्या होता है? अगलगी की दरखास्त भेजी गयी थी,

क्या हुआ? और फिर दरखास्त देने से सितलमिण्ट का हाकिम नहीं नाराज हो जाएगा!"

बंगाल में सन् 1873 में जब इस्तिमरारी बन्दोबस्ती हुई, उस समय जमीन की नाप-जोख नहीं हुई थी। लिहाजा सीमा-चौहद्दी के लिए लड़ाई-झगड़े और मामले-मुकदमे का अन्त नहीं रहा। सन् 1840 में सरकार की ओर से पैंतीस साल की नाप-जोख के बाद केवल गाँवों की ही चौहद्दी तय की गयी। सन् 1875 में 'जरीब' कानून पास होने के बाद बंगाल में नये सिरे से जरीब की परिकल्पना हुई। एक-एक टुकड़ा जमीन का ब्यौरा, उसकी मिल्कियत तय करने के लिए ही ऐसा इन्तजाम किया गया। वह जरीब अब सन् 1926 में गाँवों में पहुँचा। गाँव के लोग विभीषिका से त्रस्त हो उठे।

जरीव के समय थोड़ी-सी चूक होती कि हाकिम बेंत मारता, हथकड़ी डालकर जेल भिजवा देता—इस तरह की अफवाहों से सारा इलाका भयभीत हो उठा था।

इतना ही नहीं, 'जरीब' के बाद रियाया को 'जरीब' की लागत का हिस्सा देना होगा। न देने से सामान कुर्क किया जाएगा—जायदाद जब्त होगी।

सब हो-हवा जाने के बाद जमींदार लगान बढ़ाएँगे। रुपये में चार आना, आठ आना, रुपये का दो रुपया भी हो सकता है—हाईकोर्ट की नजीर है। ला-खराज जब्त कर लिया जाएगा। रहेगा तो उसपर सेस देना होगा, उस सेस का परिमाण लगान के ही लगभग होगा—उससे कम नहीं। ऐसा ही और भी बहुत कुछ होगा।

लौटते समय देबू ने देखा, इसी बीच गाँव के कुछ खास लोग चण्डीमण्डप पहुँच चुके हैं। उसी का इन्तजार है। देबू वहीं रुक गया। हरीश से पूछा, "हो गया?"

रात में एक दरखास्त लिख रखने की बात थी। लेकिन देबू लिख नहीं पाया था। दरखास्त पर उसे आस्था नहीं। दरखास्त के प्रसंग में कुछ कड़वी घटनाओं की याद आ गयी थी। किसी समय उसने कई दरखास्तें भेजी थीं—उनके भेजने का नतीजा याद आ गया।

बाप के मरने के बाद देबू पढ़ाई छोड़कर अपने से खेती करता था। उस रोज वह खुद ही खेत जोत रहा था। खाकी पोशाक, माथे पर टोपवाले पुलिस के सब-इन्सपेक्टर ने उसे बुलाकर कहा, "अरे, सुन!"

उसके इस अभद्र व्यवहार से रंज होकर देबू ने जवाब नहीं दिया।

"अबे ए, उल्लू!"

देबू ने इस बार भी जवाब नहीं दिया। उसी बार उसने पहली दरखास्त दी थी। दरखास्त पुलिस-साहब के पास भेजी थी। कई महीने बाद जाँच-पड़ताल हुई। जाँच के लिए इन्सपेक्टर आये।

देबू की शिकायत सुनकर उन्होंने मीठी बातों से मामले को मेटमाट कर दिया। कहा, "देखो भैया, जमींदार तुम्हारे बाप की उमर का है, उसके 'तू' कहने से भी तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिए। हाँ, उल्लू कहना गलत हुआ है, बशर्ते कि उन्होंने कहा हो।"

देबू ने कहा, "जी, उन्होंने कहा है।"

"माना। मगर गवाह कौन है उसका?"

गवाह कोई था नहीं। इन्सपेक्टर ने कहा, "खैर घर जाओ। कुछ खयाल मत करना।"

देबू का क्षोभ लेकिन गया नहीं।

दूसरी दरखास्त का अनुभव अजीब है। वैशाख महीने में जमींदार ने खास पोखर से मछली मारने का इन्तजाम किया था। पीने के पानी का बस वही एक पोखर था, कम ही पानी था, उसी में से कुछ पानी निकाल करके मछली मारने की बात तय पायी। गाँव के लोग काँप उठे। उतने-से पानी को निकालने के बाद रहेगा क्या? फिर मछली मारने में एकदम कीचड़ हो जाएगा, हम सब पिएँगे क्या?

गुमाश्ता ने कहा, "जमींदार के यहाँ काम है। इसके बिना उन्हें ही मछली कहाँ मिलेगी?"

रैयत लोग अपने से जमींदार के पास गये। जमींदार ने कहा, "तुम लोग मछली ला दो या मछली का दाम दो।"

जवान देबू ने मजिस्ट्रेट के पास एक दरखास्त भेजी। कोई नतीजा न निकला। जमींदार के लोग जुलूस बनाकर आये और मछली मारकर पोखरे के पानी को छींटकर रख दिया। देबू के क्षोभ की सीमा न रही। सात दिन के बाद अचानक दरोगा-सिपाही चौकीदार के साथ आ पहुँचने से गाँव थर्रा गया। उन सबके साथ साहबी पोशाक में एक कम उम्र के भले आदमी थे। दरोगा ने आकर देबू को बुलाया। कहा, "मजिस्ट्रेट साहब बहादुर तुम्हें बुला रहे हैं।"

देबू अवाक् रह गया। साहब आये हैं खुद से, लेकिन अब आने से लाभ क्या? साहब को सलाम करके वह खड़ा हुआ। साहब ने प्रति-नमस्कार किया। साहब की बात से वह हैरान हो गया।

"आप देवदास घोष हैं?"

"जी!"

दरोगा ने कहा, " 'जी हाँ हुजूर' कहना चाहिए।"

साहब ने हँसकर कहा, "रहने दो।" उन्होंने सब सुना। पोखरे को देखा। उसके बाँध पर खड़े होकर पानी की दशा देख वे दंग रह गये। देबू को आज भी याद है, उनकी आँखों स आँसू की दो-एक बूँद भी टपक पड़ी थी, रूमाल से आँखें पोंछकर साहब ने कहा, "देबू बाबू, आकर भी कुछ नहीं कर पाया मैं!"

देबू ने कहा, "मैंने तो हुजूर, पाँच दिन पहले दरखास्त भेजी थी।"

"डाक में एक दिन लगा। पेश होने में भी कारणवश देरी हो गयी। उसकी मैं जाँच करूँगा।"—उसके बाद कुछ देर चुप रहकर साहब ने कहा था, "देवनाथ बाबू, ऐसे मौकों पर दरखास्त मत दिया कीजिए। खुद जाइए—मिलकर हमें बताइए।"—'दरखास्त' शब्द का उच्चारण करते-करते वे हँसे।

साहब ने गाँव के लिए एक इनारे की मंजूरी दे दी थी। मगर गाँव को उसका लाभ पहुँचा नहीं। कारण साहब की बदली हो गयी और यूनियन बोर्ड के प्रेसीडेण्ट कंकना के बाबू ने वह इनारा दूसरे गाँव को दे दिया। इस गाँव के श्रीहरि ने भी वोट दी थी। देवनाथ ने जमींदार की मछली पकड़ने के लिए दरखास्त की थी—इसी के खातिर सजा पूरे गाँव को भोगनी पड़ी।

दरखास्त! एक कहानी याद आयी उसे। किसी राजा के यहाँ आग लगी थी। राजा दार्जिलिंग में थे। चूँकि आग बुझाने के लिए घड़ा-बाल्टी खरीदने की मंजूरी न थी, इसलिए राजा को तार दिया गया। हुकुम भी तार से ही आया लेकिन आया चौबीस घण्टे के बाद। तब तक सब कुछ भस्म करके आग अपने-आप ठण्डी हो चुकी थी। दरखास्त के प्रसंग में इस बात की याद आ जाने से एक तीखी हँसी उसके चेहरे पर फूट उठी। साथ ही साथ उसे साहब का वह कहना याद आ गया। मिस्टर ए.के. हाजरा, आई.सी.एस.। देबू उन्हें श्रद्धा करता है।

देबू ने जवाब दिया, "लिख तो नहीं पाया, हरीश चाचा!"

दरखास्त नहीं लिखी गयी सुनकर हरीश, भवेश आदि प्रवीण लोग सभी असन्तुष्ट हुए। हरीश ने कहा, "तुमने भार लिया कि लिख रखेंगे, जलपान करके गाँव के लोग आ-आकर दस्तखत करेंगे। अब इस समय कह रहे हो कि नहीं लिख पाया। यह कैसी बात है? पहले कह देते तो डॉक्टर ही लिख देता।"

भवेश ने कहा, "बेशक, साफ कह देना अच्छा था। कोई और इन्तजाम कर लिया जाता!"

देबू हँसा। बोला, "दरखास्त तो खैर मैं अभी लिख देता हूँ भवेश भैया, मगर दरखास्त से ही होगा क्या, यह बतलाओ।"

सभी चुप रहे। कुछ देर बाद हरीश ने कहा, "फिर क्या करने को कहते हो? आखिर कुछ करना तो होगा; इस तरह—यों समझो—अपने को ही भरोसा कैसे दूँ?"

"एक काम कीजिएगा?"

"कौन-सा काम, कहो!"

"पाँच गाँव के लोगों को बुलाइए और चलिए सब मिलकर सदर में मजिस्ट्रेट के पास।"

"इससे कुछ होगा, कहते हो?"

"दरखास्त के मुकाबले बेशक ज्यादा होगा।"

सब लोग फिर आपस में बुदबुदाने लगे।

इस बीच पाठशाला के बच्चे वहीं हाजिर हो गये थे। देबू ने कहा, "तुम लोग यहीं आ गये? खैर, आज यहीं पढ़ो। बैठ जाओ। कल जिस पद्य का अर्थ लिखने को कहा था, लिखकर ले आये हो तो? वही ले आओ...रखो यहाँ।"

हरीश ने पुकारा—"देबू!"

"जी, कहिए!"

"चलो, चला ही जाए। क्यों भई, तुम लोगों की क्या राय है?"—हरीश ने जिज्ञासा-भरी आँखों से सबकी ओर ताका।

भवेश ने उत्साहित होकर कहा, "भगवान का नाम लेकर जाया ही जाए। आखिर साहब खा तो नहीं जाएँगे! मैं तैयार हूँ। तुम लोग देख लो, अपनी-अपनी कहो सभी।"

मन में हरेक ने एक उत्तेजना का अनुभव किया। हरीश घोषाल सबसे ज्यादा उत्तेजित हो उठा था। वह साथ के साथ उठ खड़ा हुआ और सीने पर हाथ रखकर बोला—"आई एम रेडी! चाहे इस पार, चाहे उस पार—होना होगा सो होगा।"

"तो कल सवेरे ही चलो।"

"हाँ! हाँ-हाँ!"—अबकी सबकी समवेत सम्मति एक स्वर-सी सुनाई पड़ी।

"लेकिन!" भवेश को एक बात याद आ गयी।

"लेकिन क्या?" हरीश ने कहा, "अब लेकिन क्यों कर रहे हो?"

"जरा पत्रा नहीं देख लोगे? दिन-तिथि कैसी है?"

"हाँ, बात तो सही है!"

पल ही भर में सबने हामी भर दी।

देबू ने रूखे स्वर में कहा, "आप सब मानते है, पर राजा का काम तो पत्रे को नहीं मानता। कहीं दस रोज तक अच्छी साइत न हो, तो?"

घोषाल ने उत्तेजित होकर कहा, "डैम योर पत्रा। (पत्रे की ऐसी-तैसी) बोगस है वह सब।"

देबू ने कहा, "मुकदमे की तारीख होती हैं तो मघा में भी जाना पड़ता है।"

हरीश ने जरा सोचकर कहा, "बात सही है। राजा के यहाँ पोथी-पत्रा नहीं चलता।"

देबू ने कहा, "खूब सवेरे निकल पड़ें तो दस बजते-बजते ठीक कचहरी के समय ही पहुँच जाएँगे। खाने का सामान चूड़ा-गुड़, जिनसे जो बने, साथ रख लेंगे। एक दिन की तो बात है।"

ठीक इसी वक्त वहाँ आ पहुँचे गुमाश्ता दासजी, श्रीहरि घोष, भूपाल चौकीदार तथा और भी कई जने। उनमें से एक था खोकन वैरागी—जो इस अंचल में राजमिस्त्री का काम करता है।

दासजी ने हँसते हुए कहा, "क्यों भाई, आप सबने फिर से देबू की पाठशाला में नाम लिखाया है क्या, मामला क्या है?"

क्यों का कोई क्या जवाब देता पता नहीं, किन्तु उस भार से सबको छुटकारा देकर हरेन घोषाल तुरन्त कह उठा—"वी आर गोइंग टु दि डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट—कल हम सब मजिस्ट्रेट साहब के पास जा रहे हैं—कटनी जबतक हो नहीं जाती खानापूरी 'स्टाप्ड'—बन्द रहेगी।"

भौंहें नचाकर दासजी ने पूछा, "घोषालजी के हाथ कै हैं? दो या चार?"

उसने ये बातें कुछ इस ढंग से कहीं कि कुछ देर के लिए हक्का-बक्का होकर घोषाल चुप हो गया। उसके बाद वह चिल्ला उठा—"तुम ब्राह्मण को इतनी बड़ी बात कहते हो।"

दासजी ने इस बात का जवाब नहीं दिया। श्रीहरि के हाथ में एक अखबार था। उसे खींचकर बोला, "लो देखो, ज्यादा उछल-कूद मत करो। जितेन्द्रलाल बन्द्योपाध्याय गिरफ्तार। सेटलमेण्ट के काम में बाधा देने के अपराध में जितेन्द्रलाल बन्द्योपाध्याय गिरफ्तार हो गये। लो पढ़ लो।" उसने अखबार को मजलिस के बीच जोर से फेंक दिया।

घोषाल ने ही अखबार को उठाया और शीर्षकों पर नजर दौड़ाते हुए कह उठा—"माई गाड!" फीके पड़े चेहरे से उसने अखबार देबू की ओर बढ़ा दिया। देबू उसे पढ़ने लगा।

श्रीहरि ने कहा, "आप लोग तो मुझे छोड़कर ही सब-कुछ कर रहे हैं, मगर मैं आप लोगों की सोचे बिना नहीं रह सकता। यह सब मत करें, पत्थर से सर सख्त नहीं होता। उससे तो अच्छा है, चलिए उस वेला सेटलमेण्ट हाकिम के पास चलें। दासजी चलेंगे, मैं भी चलूँगा, आप लोग भी कुछ जाने-माने लोग चलें। अच्छी-सी भेंट भी ले चलें। मछली एक खासी मिल गयी है। समझ गये हरीश चाचा, पूरी बारह सेर!"

कहते-ही-कहते उसे शायद कोई बात याद आ गयी। दास से कहा, "दासजी, ...वह...यानी मुर्गी के लिए आदमी भेज दिया गया है न? मिल-जुलकर हाकिम को धर-पकड़कर कुछ किया जाएगा। लेकिन यह खिलाफ में दरखास्त देना या सीधे मजिस्ट्रेट के पास फरियाद करना—यह एक प्रकार से सरकार का विरोध करना है। इससे हमारी मुसीबत बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं। क्यों भाई?" श्रीहरि ने पूछा गुमाश्ता दासजी से।

देबू ने अखबार दास को ही लौटा दिया और फिर मजलिस की तरफ से मुँह घुमा मन लगाकर बच्चों को पढ़ाना शुरू कर दिया। इन लोगों को वह जानता है, इसी बीच इनके संकल्प ताश के पत्तों के घर की तरह भहरा पड़े हैं। वह उठा और खड़िया लेकर मुँह से बोलते हुए उसने बोर्ड पर लिखा—'अगर एक मन दूध का दाम पाँच रुपया दस आना हो...'

उधर मजलिस में फिर राय-मशविरे की बुदबुदाहट शुरू हुई। हरेन घोषाल की ही दबी आवाज सुनाई पड़ रही थी—"यह वहुत नाइस होगा। वेरी गुड सलाह है।"

दासजी ने खोकन मिस्त्री से कहा, "ले, रस्सी निकाल। और भूपाल, एक छोर तू पकड़।"

साबै की एक रस्सी लिए खोकन मिस्त्री आगे बढ़ आया। सबसे पहले उसने जमीन पर लम्बे पड़कर देवी-देवता को प्रणाम किया, उसके बाद हाथ जोड़कर बोला, "तो शुरू करें?"

दासजी ने कहा, "जै दुर्गा कहकर शुरू कर, इसमें पूछता क्या है? सुना तुमने हरीश मण्डल, भवेश पाल! चण्डीमण्डप को पक्का बनवाया जा रहा है। आप लोग भी अनुमति दें!"

"बनवाया जा रहा है! पक्का?"—मजलिस के सभी लोग अवाक् हो गये।

"हाँ, एक कुआँ भी खुदवाया जाएगा—उधर चण्डीतला में। घोष बाबू, यानी अपने श्रीहरि घोष गाँव की भलाई के लिए यह सब वनवा दे रहे हैं।"

श्रीहरि ने हाथ जोड़कर विनय के साथ कहा, "आप लोग अनुमति दें!"

हरीश ने कहा, "जुग-जुग जियो भैया! ऐसा ही तो चाहिए। मगर माँ षष्ठी को ही धूल-माटी में क्यों रख रहे हो? चण्डीतला को भी बनवा दो।"

श्रीहरि ने कहा, "ठीक तो है। वह भी हो जाएगा। मुझे उसकी याद ही नहीं थी।"

हरीश ने मजलिस की ओर देखकर कहा, "तो अब सेटलमेण्ट के बारे में श्रीहरि और दासजी जो कह रहे हैं वही ठीक रहा। क्यों भई?" श्रीहरि की इतनी बड़ी उदारता से सबने उसी की बात मान ली।

श्रीहरि का चाचा भवेश भतीजे के इस गौरव पर भावावेग से प्रायः रो पड़ा। उठकर श्रीहरि के माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, "तेरा मंगल होगा बेटे, मंगल होगा!"

श्रीहरि ने चाचा को प्रणाम किया।

घोषाल ने चुपचाप कहा, "ही विल डाई—छिरू अब मरेगा। एकाएक इतना वड़ा साधु हो गया? लच्छन यह अच्छा नहीं। मतिभ्रम है—दिस इज मतिभ्रम।"

मजलिस भंग हो गयी। सब कोई घर चले गये। उधर मजूरों को जलखई का वक्त हुआ। धूप मन्दिर के शिखर से खिसककर आठचाला[1] में पहुँच गयी थी। लड़कों को छुट्टी देकर देबू ने कहा, "पाठशाला कल से मेरे घर पर होगी, समझ गये? सब वहीं आना।"

"पक्का बन जाने पर तो फिर यहीं होगी न गुरुजी?"

---

1. मन्दिर के बाहर बना सभामण्डप जहाँ लोग जमा हुआ करते हैं।

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं, जाओ, आज छुट्टी।"

वह उठा। उठते-उठते उसकी नजर पड़ी कि बूढ़े द्वारका चौधरी अब कहीं ठुक-ठुक करते चण्डीमण्डप में आ रहे थे। उसने कहा, "चौधरीजी, इतनी देर करके?"

"हाँ, जरा देर हो गयी, सवेरे न आ सका। दरखास्त पर सही करने की बुलाहट थी!"

देबू ने हँसकर बताया, "बस तकलीफ ही हुई आपको। दरखास्त नहीं दी गयी।"

चौधरी ने हँसकर कहा, "आते हुए रास्ते में सब सुना। सदर जाने की राय हुई थी, यह भी सुना, फिर यह नया हुक्म भी सुना कि शाम को फिर आना होगा। खैर शाम को सही, देखें क्या होता है!"

"मैं नहीं जाऊँगा, चौधरीजी!"

बूढ़े ने देबू की तरफ देखते हुए कहा, "पाँच जने जो भला समझें, करें, आप जी छोटा न करें गुरुजी!"

देबू जबरदस्ती जरा हँसा।

"चलिए गुरुजी, आपके यहाँ जरा पानी पीऊँगा।"

"चलिए, चलिए!"—तत्परतापूर्वक देबू आगे बढ़ा।

चलते-चलते बूढ़े ने कहा, "वह सब हो-हवाएगा कुछ नहीं, गुरुजी! एक समय था कि मेरे भी अच्छे दिन थे—और उन दिनों भेंट देना तो हरिलूट-जैसा था। इन्हीं दिनों बल्कि कुछ कम हो गया है। सो मैंने देखा कि होता-हवाता कुछ नहीं है। इससे तो मिल-मिलाकर सब चले गये होते तो...।" 'कुछ होता' यह बात भी भरोसे के साथ वे न कह सके।

गहरा निःश्वास छोड़ते हुए देबू ने कहा, "थोड़ी हिम्मत नहीं, बात की स्थिरता नहीं, ये सब आदमी नहीं हैं चौधरीजी!" देबू अपने को और जब्त नहीं कर सका, उसकी आँखों से आँसू बह निकले। आँखें पोंछकर हँसते हुए उसने फिर कहा, "जानते हैं, पाँच गाँव के लोग एक होकर अगर सदर जाते—मैं कहता हूँ चौधरीजी, काम जरूर बनता। साहब जरूर बात सुनते! प्रजा का दुःख सुनेंगे क्यों नहीं? हाजरा साहब मजिस्ट्रेट ने मुझसे ही उस बार कहा था। मुझे याद है।"

बूढ़े चौधरी हँसे—"आप नाहक ही दुःख करते हैं, गुरुजी!"

"दुःख तो होता है।"

"मैं एक कहानी सुनाऊँगा, चलिए।"

पानी पी चुकने के बाद केले के हुक्के में तम्बाखू पीते हुए चौधरी ने कहा, "बहुत दिन हुए, महाग्राम के ठाकुरजी के साथ कुम्भ नहाने के लिए प्रयाग गया था। वहाँ

प्रकार-प्रकार के संन्यासी देखकर दंग रह गया। नागा संन्यासी देखा—सब नंग-धड़ंग बैठे। किसी ने छाती तक अपना बदन बालू में गाड़ दिया है तो कोई ऊर्ध्वबाहु, कोई कीलों के आसन पर बैठा है, कोई चारों तरफ आग जलाये बैठा है। अवाक् हो गया देखकर। मैंने कहा, 'स्वर्ग इन लोगों की मुट्ठी में है।' मेरी यह बात सुनकर ठाकुर बोले, "चौधरी, तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ।"

"सतयुग का आरम्भ। तुरन्त-तुरन्त सृष्टि हुई थी मनुष्यों की। सभी उस समय साधु। सतयुग जो था—जंगल में कुटिया बनाकर रहते, फल-फूल खाते, भगवान का नाम लिया करते और दिन बड़े आनन्द से कटता। लक्ष्मी उस समय वैकुण्ठ में थीं, अन्नपूर्णा कैलास में—मतलब कि सोना-रूपा, यहाँ तक कि अन्न का भी चलन नहीं हुआ था दुनिया में। खैर, इस तरह से पुश्त बीता। उस समय अकाल मृत्यु नहीं थी, इसीलिए हजार साल के बाद एक ही साथ एक पुश्त के मरने का समय हो आया! सो लोगों ने यह तय किया—चलो; हम लोग सशरीर स्वर्ग चलें। जैसा संकल्प था वैसा ही काज। निकल पड़े सब लोग।

वदरिकाश्रम पार करके हिमालय की ओर चींटी-सी लम्बी कतार चली जा रही थी मनुष्यों की। स्वर्ग के फाटक पर जो पहरेदार था, उसने देखा कि करोड़ों-करोड़ लोग कलरव करते हुए उसी ओर चले आ रहे हैं। भय से घबराकर वह देवराज इन्द्र के पास दौड़ा, 'देवराज, बड़ी विपत्ति आ पड़ी है।'

'कैसी विपत्ति?'

'करोड़ों की तादाद में जाने कौन चींटी की पाँत से स्वर्ग की तरफ चले आ रहे हैं। शायद दैत्यों की सेना है!'

'दैत्यों की सेना? यह कह क्या रहे हो?'

तैयार होने की हड़बड़ी पड़ गयी। इतने में आये नारदजी। उन्होंने कहा, 'दैत्य नहीं, आदमी हैं।'

'आदमी?'

'जी हाँ, आदमी! आपके हथियारों से उनका कुछ नहीं होगा, क्योंकि उनके तन में पाप की छूत नहीं। देव-अस्त्र वहाँ बेकार हैं। उनके बदन से छूते ही हथियार फूलमाला बन जाएँगे।'

'तो उपाय? इतने-इतने लोग अगर जीते जी स्वर्ग में जाएँगे तो...?' इन्द्र से और वोलते नहीं बना। हर कोई शायद उन्हीं के सिंहासन का दावा करेगा!

अन्त में बोले, 'चलो-चलो, नारायण के पास चलो।'

नारायण सुनकर हँसे। कहा, 'अच्छा चलो, देखें।' पहले उन्होंने माँ अन्नपूर्णा को भेजा।

अन्नपूर्णा ने रास्ते में एक पुरी का निर्माण कर दिया। एक भण्डार को अन्न, पायस, व्यंजन से पूर्ण कर रखा। उसके बाद आदमियों की जमात के वहाँ पहुँचते

ही बोली 'चलते-चलते तुम लोग बहुत थक गये हो। आज मेरा आतिथ्य स्वीकार करो।'

लोगों ने एक-दूसरे का मुँह ताका। रसोई की खुशबू से मुग्ध हो गये सब। कुछ ने उस मोह को झटककर कहा—स्वर्ग की राह में आराम करना ही नहीं चाहिए। वे चले गये। जो रह गये, वे भरपूर खाकर वहीं लेट गये। कहा, 'माँ, हम लोग अगर यहीं रह जाएँ तो रोज इसी तरह से खाने को दोगी न?'

माँ ने कहा, 'जरूर!'—लोग वहीं रह गये।

जो लोग रुके नहीं, वे बढ़ते गये। तब नारायण ने लक्ष्मी को भेज दिया। लक्ष्मी की नगरी—सोने की। सोने का रास्ता, सोने की खाट, नगरी की धूल सोने की। देखकर मनुष्यों की आँखें चौंधिया गयीं।

माँ ने कहा, 'बेटे, यह सारा कुछ तुम लोगों के लिए है। जाओ, नगर के अन्दर जाओ।'

एक दल दाखिल हो गया अन्दर।

रास्ते में एक नगरी तब तक और तैयार हो चुकी थी। चारों तरफ फुलबगिया, कोयल कूक रही है, भुवन-मोहिनी तान की गूँज और एक अनोखी सुगन्ध आ रही है। दरवाजे पर खड़ी अप्सराएँ। उनके एक हाथ में अपूर्व फूलों की माला, दूसरे में सोने का पानपात्र। उन्होंने कहा, 'आइए, विश्राम कीजिए! हम सब आपकी दासी हैं, आपकी सेवा के लिए खड़ी हैं, आप प्यासे हैं—लीजिए, यह पीजिए!'

पीने की वह चीज स्वर्ग की सुरा थी। दल के दल लोग पिल पड़े।

नारायण ने कहा, 'देखो तो इन्द्र, और कोई आ रहा है?'

इन्द्र ने निश्चिन्तता की साँस लेकर कहा, 'जी नहीं!'

'अच्छी तरह से देखा?'

'कुछ हिल तो रहा है। शायद कोई आदमी है।'

नारायण ने कहा, 'स्वर्ग का दरवाजा खोल दो और तुम स्वयं हाथ में पारिजात की माला लेकर खड़े रहो। उसे मेरे-जैसा सम्मान देकर स्वर्ग में ले आओ। उसके चरणों की धूल से स्वर्ग पवित्र हुआ'।"

हँसकर चौधरी ने कहा, "समझे गुरुजी! यह किस्सा खत्म करके ठाकुरजी ने कहा था, 'चौधरी, कोई भक्त रसीली वस्तु से भूलेगा, कोई महन्त होकर सोना-चाँदी से भूलेगा, कोई देवदासियों के दल से स्त्रियों पर आसक्त होगा। स्वर्ग करोड़ों-करोड़ में से कोई एक ही जाएगा'। खेद मत मानो गुरुजी, मनुष्य से कदम-कदम पर भूल-चूक होती है। आप इसपर अफसोस कर रहे हैं कि वे आदमी नहीं हैं। आदमी होना क्या कोई मामूली बात है? खैर, मैं चलूँ। डॉक्टर आ रहे हैं। वे आ जाएँगे तो काफी देर हो जाएगी। चलता हूँ।"

चौधरीजी जल्दी-जल्दी रास्ते पर उतर गये।

कहानी देबू को बड़ी अच्छी लगी। बिलू को सुना देनी होगी। अजीब खूबी है उसमें—एक बार सुनते ही याद कर लेती है।

डॉक्टर ने आकर बिना भूमिका के ही कहा—"मैंने सब सुन लिया।"

देबू हँसा। बोला, "सवेरे से तुम रहे कहाँ आज?"

"अनिरुद्ध के यहाँ। लुहार-बहू को आज फिर 'फिट' पड़ा था।"

"फिट?"

"हाँ, भयंकर फिट। घर में न कोई औरत न मर्द। अजीब मुसीबत। गनीमत कहो कि दुर्गा थी। थोड़ी-बहुत मदद मिली। लगता है उसे मृगी की बीमारी हो गयी। अनिरुद्ध कुछ और ही कह रहा है। कहता है, किसी ने टोना कर दिया है।"

"टोना कर दिया है?"

"हाँ, वह छिरू पाल का नाम लेता है। खैर, जाने दो। इधर यह जो हुआ, ठीक ही हुआ देबू, बाद में सारा दोष मेरे-तुम्हारे मत्थे पड़ता। जितेन्द्रपाल बनर्जी की गिरफ्तारी के बारे में मालूम हुआ न? शायद हो कि हमें भी गिरफ्तार किया जाता—और ये सब साले अपने-अपने दरबे में दुबक जाते। अच्छा, मैं भी चलता हूँ। सवेरे से ही रोगी राह देख रहे हैं। दवा देनी होगी।"

डॉक्टर जल्दी में चला गया। देबू जरा हँसा। डॉक्टर की इस व्यस्तता का आधा तो सही है, बाकी दिखावा। रोगियों के लिए उसे दिली दर्द है, डॉक्टर के फर्ज़ के बारे में वह सचमुच ही सचेत है। दोस्त हो चाहे दुश्मन, समय हो कि असमय—बुलाते ही वह चला आता है, यत्नपूर्वक स्वयं ही तैयार करके दवा देता है। लेकिन उसकी आज की व्यस्तता कुछ ज्यादा है, कुछ अस्वाभाविक। बनर्जी की गिरफ्तारी के समाचार से डॉक्टर काफी डर गया है—सचमुच तो इस चर्चा से वह डराना चाहता है।

"अजी ऽऽ गुरुजी!" अन्दर से किसी ने आवाज दी।

गुरुजी ने पीछे मुड़कर देखा—बिलू खड़ी हँस रही है। आवाज उसी ने दी थी।

गुस्से का भान करके देबू ने कहा, "अरी ओ शैतान लड़की, हँस क्यों रही है? सबक याद किया है?" बिलू खिलखिलाकर हँस पड़ी। देबू आया। आकर बोला, "आज एक बड़ी अच्छी कहानी सुनी है। तुम्हें सुनाऊँगा। एक ही बार सुनकर याद कर लेना होगा लेकिन!"

बिलू ने कहा, "तुम मुन्ने के पास रहो। मैं जरा लुहार-बहू को देख आती हूँ।"

पन्द्रह

पद्म की मूर्च्छा बाकायदा एक रोग हो गयी। लगभग एक महीने तो वह रोज ही मूर्च्छित हो जाती। परिणाम यह कि उतने में ही बाँझ पद्म का बलिष्ठ शरीर कमजोर और दुबला हो गया। वह कुछ लम्बी है, दुबली हो जाने से वह और भी लम्बी लगने लगी। कमजोर भी ज्यादा नजर आती। कमजोरी से चलते-फिरते जब वह किसी चीज का सहारा लेकर अपने को सँभालती तो लगता, मानो वह काँप रही है थर-थर। सबल और तेज चलनेवाली उस पद्म के हर कदम में अब रुकावट झलक उठी है। धीमी और धीर गति से चलने में भी उसके पाँव जैसे लड़खड़ाते हों। केवल उसकी निगाह अस्वाभाविक तौर पर तेज हो उठती है। उसके कमजोर और पीले पड़े चेहरे पर बड़ी-बड़ी आँखें पीतल की आँखों-सी झकझक करती हैं। स्त्री की उन आँखों को देखकर अनिरुद्ध सिहर उठता है।

अभावों के दुःख पर यह दुश्चिन्ता! अनिरुद्ध कहीं पागल न हो जाए! जगन डॉक्टर की सलाह से उस रोज वह कंकना के अस्पताल के डॉक्टर को बुला लाया।

जगन ने 'मिरगी' बतायी थी।

अस्पताल के डॉक्टर ने बताया, "यह एक प्रकार की मूर्च्छा है। खासकर बाँझ औरतों को, जिन्हें बाल-बच्चे नहीं होते, यह बीमारी ज्यादा होती है। हिस्टीरिया है।"

लेकिन प्रायः सभी पड़ोसी उसे देवरोग बताते। कारण भी ढूँढ़ निकालने में देर नहीं लगी। भला, बाबा बूढ़े शिव और भग्न काली की उपेक्षा करके कभी किसी ने पार पाया है! देवस्थली से भोग की चीज उठा ले जाना कोई मामूली कसूर तो है नहीं! अनिरुद्ध के पाप से उसकी स्त्री को यह रोग हुआ है। लेकिन अनिरुद्ध ने इसे नहीं माना। उसकी राय किसी से नहीं मिलती। उसका खयाल है, किसी ने कोई टोटका कर दिया है। आज भी मुल्क में डाइन-विद्या में माहिर बहुत हैं। वे बान मारकर आदमी को पत्थर-जैसा पंगु बना सकते हैं। पद्म की एक बात उसके मन में हर पल जगती है।

पद्म को जिस दिन पहली बार मूर्च्छा आयी और जगन डॉक्टर ने उसे तोड़ा—उसी रात को अन्तिम पहर में वह सोते में जोरों से चीखकर फिर बेहोश हो गयी थी। उस सुनसान रात में अनिरुद्ध जगन को फिर से बुला नहीं सका और मूर्च्छित पड़ी पद्म को अकेली छोड़कर जाने का कोई उपाय भी नहीं था। बड़े कष्ट से जब उसे होश आया, तो निरी असहाय-सी अनिरुद्ध से लिपटकर उसने कहा था, "मुझे बड़ा डर लगता है!"

"डर लगता है? काहे का डर?"

"मैंने सपना देखा।"

"क्या, क्या सपना देखा? इस तरह से तुम चीख क्यों उठीं?"

"सपना देखा कि एक बहुत बड़े काले गेहुँअन ने मुझे लपेटना शुरू किया है।"

"साँप ने?"

"हाँ, साँप ने! और..."

"और?"

"साँप को उसी मुँहजरू ने छोड़ा है–"

"किसने? किस मुँहजरू ने?"

"उसी दुश्मन–छिरू ने! साँप छोड़कर हमारे सदर दरवाजे के ओसारे में खड़ा-खड़ा वह हँस रहा है।"

थर-थर काँपती हुई पद्म ने उसे जकड़ लिया था।

यह बात अनिरुद्ध को याद है। पद्म की बीमारी का खयाल आते ही उसे वही बात याद आ जाती है। जब डॉक्टरों का इलाज चल रहा था, तब याद होते हुए भी उसने इस बात की परवाह नहीं की। लेकिन दिन-दिन उसकी यह धारणा दृढ़ ही होती गयी। अब वह किसी ओझा की सोचता है या किसी देवी-देवता के स्थान की!

अनिरुद्ध के इस खयाल को खास कोई नहीं जानता। उसने यह बात पद्म से भी नहीं कही। महज अपने मितवा से कही है, गिरीश बढ़ई से। दोनों जब जंक्शन शहर को जाते हैं, तो आपस में सुख-दुःख की बहुत-सी बातें होती हैं। बहुत-बहुत कल्पनाएँ करते हैं दोनों। अभी लगभग सारा गाँव एक तरफ हो गया है। उन्हें सबक सिखाने की लगातार कोशिशें भी चल रही हैं। अनिरुद्ध और गिरीश के साथ एक आदमी और है–पातू मोची। छिरू को श्रीहरि घोष के रूप में गाँव का प्रधान बनाकर गुमाश्ता दासजी बैठे ही बैठे बटन दबा रहा है। गाँववालों के साथ नहीं हैं तो सिर्फ देबू गुरु, जगन घोष और तारा हजाम। देबू किसी का पक्ष नहीं लेता। उसके स्नेह-प्रेम पर अनिरुद्ध को भरोसा है। लेकिन इन बातों के लिए हर समय उसे तंग करने में भी अनिरुद्ध को संकोच होता। जगन डॉक्टर रात-दिन छिरू को गाली ही दिया करता। लेकिन उतना ही। उससे और ज्यादा की उम्मीद करना भूल है। तारा हजाम पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उससे गाँववालों का झमेला चुक गया है। चुकाने को गाँववाले ही मजबूर हुए, इसलिए कि सामाजिक क्रिया-कर्म में नाई की जरूरत बहुत ज्यादा है। जात-कर्म से लेकर श्राद्ध तक–सब काम में नाई का होना जरूरी है। ताराचरण अब नकद पैसे लेकर ही काम करता है, दर बेशक बाजार दर की आधी। दाढ़ी-मूँछ बनाने के लिए एक पैसा, बाल काटने का दो पैसा और एक साथ बाल-दाढ़ी का तीन पैसा।

दूसरी ओर सामाजिक क्रिया-कर्म में नाई का पावना भी घट गया है : नकद के सिवा चावल-दाल आदि जो कुछ भी मिलता था, उसका दावा नाई ने छोड़ दिया है। तारा नाई खास किसी दल का नहीं है, वह निरपेक्ष है। अनिरुद्ध और गिरीश

पूछते तो वह गाँववालों के बहुत-से मनसूबे बता देता। और जब गाँव के लोग अनिरुद्ध-गिरीश के बारे में पूछते तो हाँ-ना करते हुए दो-चार बातें वह उनसे भी कुछ-कुछ बता देता। जो भी हो, लेकिन तारा नाई का आकर्षण अनिरुद्ध-गिरीश की ही तरफ ज्यादा है। पातू से उसका कोई वास्ता नहीं। इन्हीं लोगों को वह कुछ ज्यादा बातें बताता, किन्तु बिना पूछे वह देबू को ही सारी खबरें बताया करता। देबू को वह मानता है। और थोड़ा-बहुत बताता जगन डॉक्टर को भी है। वह डॉक्टर को चुन-चुनकर उत्तेजित करनेवाली खबरें बताता। डॉक्टर जोर-जोर से गाली-गलौज करता, तारा नाई को उससे खुशी होती। वह दाँत निपोरकर हँसता। लेकिन चालाक तारा नाई कभी भी खुलकर अनिरुद्ध-गिरीश के प्रति घनिष्ठता नहीं दिखाता। उनसे उसकी जो भी बातचीत होती, सब जंक्शन की हाट में होती। जंक्शन की हाट में एक पेड़ के नीचे आजकल उसने भी किसवत लेकर बैठना शुरू कर दिया है। उसके यजमान शिवकालीपुर, देखुड़िया, कुसुमपुर, महूग्राम, कंकना इन्हीं पाँच गाँवों में हैं, मगर उनमें से दो गाँवों का काम उसने बिलकुल छोड़ दिया है। अपने गाँव, महूग्राम और कंकना में ही वह काम करता है। महूग्राम के ठाकुरजी महाग्राम कहते हैं। इन शिवशेखर न्यायरत्न ठाकुर के जीते-जी उस गाँव का काम छोड़ना असम्भव है। न्यायरत्न महोदय देवता हैं। इन दो गाँवों में दो दिन, हफ्ते के बाकी पाँच दिन वह अनिरुद्ध और गिरीश की तरह सवेरे जंक्शन जाता है। हाट में अनिरुद्ध के लुहारखाने के पास ही एक बरगद के नीचे दो-चार ईंट डालकर बैठता है। वही उसका हेयर कटिंग सैलून है। उसके मन में एक बाकायदा सैलून की भी कल्पना है। अनिरुद्ध से वहीं उसकी बातें होती हैं। कंकना उसे बहुत नहीं जाना पड़ता। बड़े लोगों का गाँव है, बाबू लोगों ने अपने-अपने उस्तरे खरीद लिए हैं। वहाँ जाना पड़ता है क्रिया-कर्म और पूजा-पाठ होने पर। इसमें तो उसका लाभ ही होता है।

गोकि पद्म की बीमारी के बारे में अपने खयाल की बात अनिरुद्ध ने गिरीश से कही है, तारा से नहीं, और दरअसल तारा का वह पूरा विश्वास भी नहीं करता, लेकिन ताराचरण खोज-खबर बहुत रखता है। अच्छे ओझों की, देव-दानवों के स्थानों की—इन बातों की खोज वह दे सकता है। अनिरुद्ध सोच रहा था—तारा से वह कहे या नहीं।

उस रोज आवेश में उसने यह बात तारा के बदले जगन डॉक्टर से कह दी। दोपहर को जंक्शन के लुहारखाने से लौटने पर देखा, पद्म मूर्च्छित पड़ी है। उसे मूर्च्छा रोग होने के बाद से वह दोपहर को घर आ जाता है। उस दिन आकर पद्म को मूर्च्छित देख कई बार हिलाया-डुलाया, पर कोई उत्तर नहीं मिला। कब मूर्च्छा आयी है, कौन जाने! मुँह में, आँखों में पानी के छींटे देने पर भी होश नहीं आया। लुहारखाने से जल-भुनकर लौटा था। मिजाज ठीक नहीं था। खीझ और गुस्से से वह आपे से बाहर हो गया। पानी का लोटा उसने फेंक दिया और पद्म का झोंटा

पकड़कर बेरहमी से खींचा। मगर पद्म अचेत। उसका बाल छोड़कर उसकी तरफ देखते-देखते अनिरुद्ध का कलेजा रुलाई के आवेग से थर-थर काँप उठा। वह पागल-सा दौड़ा और जाकर जगन डॉक्टर को बुला लाया। जगन की दवा की तेज झाँस से पद्म ने बेहोशी की हालत में ही दो-एक बार अपना मुँह हटा लिया और अन्त में एक गहरी साँस छोड़कर आँखें खोल दीं।

डॉक्टर ने कहा, "होश आ गया, लो! रो क्यों रहे हो?"

अनिरुद्ध की आँखों से झर-झर आँसू बह रहा था। रुलाई-रुँधे स्वर में ही उसने कहा, "मेरा नसीब देखिए डॉक्टर! आग में जल-झुलसकर एक-डेढ़ कोस चलकर आया और यहाँ यह हाल है!"

डॉक्टर ने कहा, "करोगे भी क्या आखिर! बीमारी पर तो किसी का कोई बस नहीं है। मनुष्य ने तो यह कुछ कर नहीं दिया है!"

आज अनिरुद्ध से अपने को जब्त करते नहीं बना। बोला, "यह मनुष्य का ही किया हुआ है, डॉक्टर! मुझे इसमें अब जरा भी सन्देह नहीं रहा। बीमारी होती तो इतनी दवा-दारू करने पर कुछ तो असर होता! यह बीमारी नहीं, यह मनुष्य की ही करतूत है।"

डॉक्टर होते हुए भी जगन पुराना संस्कार बिलकुल भूल नहीं सका था। रोगी को मकरध्वज और सूई देने के बाद भी देवता के पादोदक पर भरोसा रखता था। अनिरुद्ध की ओर देखते हुए उसने कहा, "ऐसा हो ही नहीं सकता, यह बात नहीं है। डाइन-डाकिन देश से एकबारगी उठ नहीं गयी हैं। लेकिन अपना डॉक्टरी-शास्त्र तो इसका विश्वास नहीं करता। उसका कहना है..."

टोककर अनिरुद्ध बोला, "अब साफ-साफ ही कह दूँ—यह करतूत उस हरामजादे छिरू की है।" मारे क्रोध के वह फूल उठा।

ताज्जुब से जगन ने पूछा, "छिरू की है?"

"हाँ, छिरू की!" क्रोधावेश में अनिरुद्ध ने पद्म के उस सपने का सारा हाल डॉक्टर को बताया और अन्त में कहा, "वह जो चन्दर गराई है न, वह साला छिरू का जिगरी दोस्त है। वह डाकिनी-विद्या जानता है। जोगी गराई की बेवा बिटिया को उस कमबख्त ने कैसा वशीकरण करके निकाल लिया, देखा तो है आपने! छिरू ने उसी से यह सब कराया है। मैं यह निश्चय के साथ कह सकता हूँ।"

जगन गहरे सोच में डूब गया। कुछ देर के बाद दो-एक बार गरदन हिलाकर कहा, "हुँः!"

गुस्से से अनिरुद्ध के दोनों होठ थर-थर काँप रहे थे। इन दोनों की बातचीत के बीच ही पद्म उठ बैठी थी। दीवाल के सहारे टिकी हाँफ रही थी वह। अनिरुद्ध की यह धारणा सुनकर स्तब्ध हो गयी।

जगन ने कहा, "तुम वही करो अनिरुद्ध! कोई जन्तर या ताबीज हो तो ठीक

रहे!... लेकिन एक बात मेरे मन में आ रही है, देख लेना, जरूर फलेगा! कमबख्त अपने से आप ही मारा जाएगा।"

अचरज से अनिरुद्ध जगन की ओर ताकता रह गया। जगन बोला, "साँप का सपना देखने से क्या होता है, जानते हो?"

"क्या होता है?"

"वंश बढ़ता है। बाल-बच्चे होते हैं। तुम लोगों के भाग में बच्चा नहीं है, लेकिन छिरू ने खुद ही जब साँप छोड़ा है, तो उस कमबख्त का बेटा मरकर तुम्हारे घर जनम लेगा। तुम्हारे है नहीं, उसी ने अपने से दिया है।"

अनिरुद्ध को इस अनोखी व्याख्या से अवाक् हो जाना पड़ा। उसकी आँखें विस्फारित हो आयीं। वह डॉक्टर की ओर देखता रह गया।

पद्म के सर पर से घूँघट थोड़ा सरक गया था, वह भी थिर और एक अजीब निगाह से सामने की ओर ताक रही थी। उसे छिरू की गोरी और दुबली स्त्री की याद आ गयी। याद आ गयी उसकी आँखों की वह करुण विनती, उसके वे शब्द—'मेरे दोनों बेटों को गाली मत देना बहन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ने आयी हूँ!'

जगन और अनिरुद्ध बातें करते हुए बाहर निकल गये। जगन ने कहा, "इलाज इसका वैसा कुछ है नहीं। तब ऐसा कुछ करते रहना चाहिए कि दिमाग जरा ठण्डा रहे! बल्कि न हो तो तुम सावग्राम के शिवतल्ले एक बार घूम ही आओ। बड़ी शोहरत है वहाँ की।"

शिवतल्ले का वह सारा मामला निरा भौतिक है। अपनी माँ के लगातार शोकक्रन्दन से विचलित होकर मरे हुए बेटे की प्रेतात्मा रोज साँझ को उसके पास आती है। माँ अँधेरे में खाना परोसकर रख देती है और आसन बिछा देती है। बेटे की प्रेतात्मा आकर वहाँ बैठती है, माँ से बात करती है। उस समय जगह-जगह के लोग वहाँ आकर अपने-अपने रोग-दुःख की बात प्रेतात्मा से कहते हैं और मिन्नत करते हैं। प्रेतात्मा उनके प्रतिकार का उपाय कर देती है। किसी को ताबीज देती है, किसी को गण्डा, किसी को जड़ी-बूटी, और किसी को कुछ और।

अनिरुद्ध ने कहा, "अच्छा वही करता हूँ।"

"वही करता हूँ नहीं, वहीं जाओ तुम! देखो तो सही, क्या कहता है?"

एक गहरा निःश्वास छोड़कर अनिरुद्ध जरा हँसा, फीकी हँसी। बोला, "मगर पीठ तो इधर दीवार से जा सटी है, आगे बढ़ूँ तो कैसे!"

डॉक्टर ने अनिरुद्ध की ओर ताका। अनिरुद्ध ने कहा, "पूँजी चुक गयी डॉक्टर बाबू, बरसात आते-आते भोजन भी न नसीब हो शायद! खेत का कुल धान तो चोरी चला गया। गाँववालों ने धान दिया नहीं, मैं भी माँगने नहीं गया। और तिस पर इस औरत की बीमारी में क्या खर्च हो रहा है, आप तो जानते ही हैं! सुना है, शिवतल्ले की 'माँग' बहुत बड़ी है।"

प्रेत-देवता शिवनाथ रोग-दुःख का उपाय तो करता, पर बदले में उसकी माँ को उसका दाम देना पड़ता और वह भी देना पड़ता पहले ही।

जगन ने कहा, "पाँच-सात रुपये की बात होती, तो मैं ही कोई उपाय कर देखता, लेकिन ज्यादा की तो..."

अनिरुद्ध उच्छ्वसित हो उठा—डॉक्टर की अधूरी बात के जवाब में वह बोला, "उतने से ही हो जाएगा डॉक्टर बाबू, उतने से ही हो जाएगा! और कुछ मैं उधार-पैंचा कर लूँगा। कुछ देबू से, और कुछ अगर दुर्गा से..."

भँवें सिकोड़कर डॉक्टर ने कहा, "दुर्गा?"

अनिरुद्ध फिक् करके हँस पड़ा। सर खुजाते हुए जरा शर्मिन्दा-सा होकर बोला, "पातू मोची की बहन, जी!"

आँखें जरा बड़ी करके डॉक्टर भी हँसा—"ओ! तो उस छोरी के पास रुपया-पैसा है, क्यों?"

"जी हाँ, है! साले छिरू के काफी रुपये ऐंठे हैं उसने। और फिर कंकना के बाबुओं से भी अच्छा पैसा मिल जाता है उसे। पाँच रुपये से कम में तो कदम ही नहीं बढ़ाती।"

"मैंने तो सुना—छिरू से बिलकुल कुट्टी हो गयी है उसकी?"

अनिरुद्ध ने आँखें फाड़कर कहा, "उसने मुझसे एक दाव बनवा लिया है, कहती है, पगले कुत्ते का विश्वास नहीं। रात को उस दाव को पास रखकर सोती है।"

"ऐं?"

"जी हाँ!"

"मगर तुमसे इतना मेल-जोल? आशनाई है क्या?"

सिर खुजलाकर अनिरुद्ध बोला, "जी, वैसी बात नहीं।... लेकिन है वह भली औरत! मैं आता-जाता हूँ, गपशप करता हूँ।"

"शराब-वराब चलती है न?"

"जी... कभी-कभार..."

शरमाकर अनिरुद्ध हँसा।

सड़क पर खड़े होकर उसने बिना कुछ छिपाये-दुराये डॉक्टर से सारी बातें खोलकर कह दीं।

दुर्गा से अनिरुद्ध की घनिष्ठता सच ही बड़ी हार्दिक हो चली है। दुर्गा आजकल श्रीहरि से हेलमेल छोड़कर अपने जीवन को नया रूप और भाव देने की कोशिश कर रही है। आजकल दुर्गा दूध पहुँचाने के लिए रोज ही जंक्शन जाती है। लौटते

हुए अनिरुद्ध के लुहारखाने में बीड़ी या सिगरेट पीकर, हँसी-खुशी की बातें करती, कुछ समय बिताकर लौटती है। अनिरुद्ध भी जंक्शन सवेरे-दोपहर-शाम जाते-आते दुर्गा के घर के सामने से होकर ही जाता-आता है; दुर्गा भी उसे एक बीड़ी पिलाती है, खड़े-खड़े दो-चार बातें हो जाती हैं। उस दाव के चलते थोड़े ही दिनों में दोनों की हार्दिकता काफी गहरी हो आयी है। बीच में एक दिन लोहा खरीदना बहुत जरूरी था। लेकिन पैसे नहीं थे। अनिरुद्ध अपने लुहारखाने में चिन्तित बैठा था। दुर्गा ने आकर पूछा, "यों गुमसुम क्यों बैठे हो?"

अनिरुद्ध ने दुर्गा को बीड़ी दी। खुद भी सुलगायी। बातों के सिलसिले में उसने रुपये की बात दुर्गा से कही। दुर्गा ने तुरन्त गाँठ से दो रुपये निकालकर उसे दिये। कहा, "मगर चार दिन में वापस दे देना होगा!"

अनिरुद्ध ने चार ही दिन में रुपये लौटा दिये थे। दुर्गा बोली थी—"अरे वाह, सोने के चाँद-से खातक मेरे!"

दुर्गा को अनिरुद्ध बड़ा भला लगता। बड़ा ही तेज आदमी। किसी की परवाह नहीं करता। मगर स्वभाव कितना मीठा! सबसे अच्छा लगता उसे अनिरुद्ध का चेहरा! खासा लम्बा आदमी! पत्थर तराशकर गढ़ा गया हो जैसे! उतने बड़े हथौड़े से जब वह लोहे पर चोट पर चोट मारता रहता है, तो दुर्गा डर से सिहर उठती है; लेकिन फिर भी अच्छा लगता, एक भी चोट गलत नहीं पड़ती!

डॉक्टर को विदा कर अनिरुद्ध घर लौटा तो पद्म चुपचाप बैठी थी। रसोई-पानी की बू-बास भी नहीं। पद्म से उसने कुछ कहा नहीं। थोड़ी-सी लकड़ी-काठी लाकर चूल्हा सुलगाने बैठ गया। रसोई करके फिर जंक्शन जाना होगा। दुनिया-भर का काम बाकी पड़ गया है।

पद्म ने किसी को डाँट बतायी—"जा!"

अनिरुद्ध ने मुड़कर देखा, कहीं कोई नहीं था। कौआ या कुत्ता या कि बिल्ली, कहीं कुछ भी नहीं। भँवें सिकोड़कर उसने पूछा, "क्या है?"

जवाब में पद्म ने सवाल किया, "क्या है?"

अनिरुद्ध बेहद गुस्सा गया। बोला, "पागल तो नहीं हुई है तू? कहीं कुछ है नहीं और डाँट बता रही है!"

पद्म अबकी लजा गयी। लजा ही नहीं गयी, जरा ज्यादा सचेत हो धीरे-धीरे चूल्हे के पास आ बैठी—"हटो तुम! मैं अब कर लूँगी। तुम जाओ!"

जरा देर उसके मुँह की ओर देखते रहकर वह उठ गया। उससे और बन नहीं रहा था। लेकिन उसकी गैरहाजिरी में पद्म कहीं मूर्च्छित न हो जाए! दुविधा में वह ठिठक गया। हो जाए तो हो, मुझसे अब नहीं होता। वह बाहर निकल गया।

पद्म ने रसोई चढ़ा दी। चावल में कुछ आलू और कपड़े के एक टुकड़े में बाँधकर मसूर की थोड़ी-सी दाल हँड़ी में डाल दी और चुप बैठी रही।

अनिरुद्ध बाहर गया है। घर में कोई नहीं। सूने घर में एकदम अकेली पद्म। आज उसे बार-बार उस सपने की याद आने लगी, याद आने लगीं डॉक्टर की बातें, उस रोज की। छिरू पाल का बड़ा बेटा अपनी माँ को कितना प्यार करता है! वही...वही आएगा क्या?

तभी उसे लगा, उस लड़के की गोरी और दुबली-पतली माँ पिछले दरवाजे के पास ही आधी रोशनी आधे अँधेरे में वैसी ही मिन्नत-भरी आँखों देखती हुई खड़ी है। उसने एक कातर निःश्वास छोड़ा। बार-बार वह मन-ही-मन में बुदबुदाती रही—"नहीं-नहीं, तुम्हारे कलेजे के टुकड़े को मैं नहीं छीनना चाहती! नहीं! नहीं!!"

चूल्हे में लकड़ियाँ लहक उठी थीं। हँड़ी-कड़ाही सामने ही पड़ी थी—रसोई चढ़ा देनी थी। लेकिन उसने चढ़ाई नहीं। चुप बैठी रही। रह-रहकर उसके अन्तर में अचानक अधीर और अतृप्त कोई बेरहमी से कह-कह उठता था—'मरे, मरे!' उसके मन की आँखों में पाल-वहू का बेटा तिर-तिर आता है। भय-भरी चंचलता से सिहरकर वह चुपचाप ही कह रही थी—"नहीं-नहीं-नहीं!"

पाल-बहू के आठ बच्चे हुए थे, जिनमें से दो ही बच रहे हैं। शायद फिर से बच्चा होनेवाला है उसे। उसका बच्चा मरता है, तो फिर से उसे होता है। क्या हर्ज है, उसका एक वच्चा और जाए!

चूल्हे की आग जोरों से जल उठी, तो भी उसने और लकड़ियाँ चूल्हे के अन्दर अकारण ही ठेल दीं। वह बुदबुदा उठी—"आः, छिः छिः!" धिक्कारा उसने अपने मन की भावना को।

और तव उसने पोसी हुई बिलैया को आवाज दी—"आ पुस्सी, आ!"

वच्चा न हो तो स्त्रियों का जीवन किसलिए। बच्चा न हो तो यह घर-गिरस्ती! बच्चा सारे संसार का कूड़ा-कर्कट बिखेरेगा—पत्ता, कागज, धूल, मिट्टी, लकड़ी, पत्थर—जाने क्या-क्या! माँ वकझक करेगी और साफ-सुथरा करेगी; डाँट खाकर बच्चा रोएगा, तो वह उसे छाती से चिपकाकर दुलराएगी। दुलार पाकर वह मुट्ठी की धूल को मुँह के पास ले जाकर खाना चाहेगा। रोएगा, बकबक करेगा, जिद पकड़ेगा। तब पद्म भी उसे डाँटेगी और फिर झट से एक चपत जड़ देगी। रोते-रोते बच्चा गोदी में सो जाएगा। उसका बदन और सिर सहलाकर, चुपचाप दोनों गालों का चुम्मा लेकर उसे लिए हुए समूचे आँगन में घूमती फिरेगी और चन्दा मामा को पुकारेगी : 'चन्दा मामा आओ, मेरे चन्दा के माथे पर टीप दे जाओ! चन्दा मामा आओ!'

यह सब कल्पना करते-करते उसकी आँखों से आँसू की धारा झरने लगी। अपना तो उसे है नहीं, पालने के लिए भी कोई एक शिशु देता उसे! कोई मातृहीन शिशु! वच्चे की कोई माँ मरती नहीं! यह पाल-बहू नहीं मरती! देबू गुरु की स्त्री

नहीं मरती! और नहीं तो फिर खुद उसी की मौत क्यों नहीं होती? वह मर जाए तो सारी जलन ही जुड़ा जाए!

बाहर अनिरुद्ध की आवाज सुनाई पड़ी—"चण्डीमण्डप से मेरा कोई नाता नहीं। मैं नहीं जाता। पूस-परब मैं अपने दरवाजे पर ही कर लूँगा।"

पद्म के मन में अचानक एक दुरन्त क्रोध हो आया। उसके जी में आया कि चूल्हे की जलती लकड़ी उठाकर घर के चारों ओर लगा दे। सब-कुछ जल जाए, राख हो जाए! अनिरुद्ध भी जाए! और, दूसरे ही क्षण उसने चूल्हे पर हाँड़ी चढ़ा दी; हाँड़ी में पानी डाला और चावल धोने लगी।

कल लक्ष्मी-पूजा है, पूस-लक्ष्मी।

लक्ष्मी! उसके लिए लक्ष्मी क्या! किसके लिए, कैसी लक्ष्मी?

सोलह

पूस की संक्रान्ति के दिन पूस-लक्ष्मी यानी पूस-पर्व। नवान्न के डेढ़ेक महीने बाद गाँववालों के जीवन में एक और सार्वजनीन उत्सव आया। जिस जनजीवन में सुबह से साँझ तक बारह घण्टे का आधा समय हल खींचनेवाले कुबड़े बैलों की बेहद धीमी चाल के पीछे-पीछे या घर जितनी ऊँची धान और पुआल-लदी गाड़ियों का पहिया ठेलते या धान का बोझा सिर पर उठाये दमे के रोगी-जैसा असह्य पीड़ा से दम फूलते हुए बीतता है, वहाँ दो महीने का समय बेशक बड़ा लम्बा है!

बीच में इतू-पूजा बीती, लेकिन इतू-लक्ष्मी में नियम है, पालन है—पर्व नहीं है, समारोह नहीं होता। पूस में घर-घर धूम होती है। पकवान का पर्व है। अगहन की संकरान्त में खलिहान में लक्ष्मी को चूड़ा, मूढ़ी, मूढ़ी का लड्डू, आदि की पूजा दी गयी थी। और पूस की संकरान्त में लक्ष्मी का आसन घर में बिछाकर धान और कौड़ी से सजाकर दोनों तरफ लकड़ी के दो उल्लू रखकर पूजा की जाएगी। एक अन्न पचास व्यंजन से लक्ष्मी के साथ और-और देवताओं को भोग दिया जाएगा। ढेंकी में कूटकर चावल के पिसान का ढेर लगा है, उसी पिसान के पकवान बनेंगे तरह-तरह के। चीनी का शीरा तैयार है। नारियल-गुड़, तिल-गुड़ की मिठाई बनी है, खोजा तैयार किया गया है—लोग भरपेट प्रसाद पाएँगे।

लेकिन अनिरुद्ध की कोई तैयारी नहीं हुई। एक तो पद्म बीमार, तिस पर हाथ

बिलकुल खाली। पूस का पूरा महीना ही उसका लुहारखाना बन्द रहा। लोहे का काम इस समय ज्यादा तो नहीं, लेकिन कुछ होता है। हँसिया पजाये बिना, गाड़ी के पहियों के खुले हाल चढ़ाये बिना किसानों का काम नहीं चलता। लेकिन अवसर के अभाव में अनिरुद्ध उतना भी नहीं कर सका। अवसर पाएगा कहाँ, कैसे? पद्म की बीमारी ने उसका माथा खराब कर रखा है। आज यहाँ गया, कल वहाँ। शिवनाथतला के किसी मुसलमान उस्ताद के घर तक वह गया। कुछ भी उसने उठा नहीं रखा। कर्ज काढ़-काढ़कर सब-कुछ किया है। ग्राहकों तक का पैसा लगाकर। इधर पाँच बीघे का धान तो उसका मुसल्लम गायब हो गया, बाकी खेत के धान के लिए वह बटाईदार के साथ मजदूर की तरह मेहनत कर रहा था, कन्धे पर ढो-ढोकर धान घर ला रहा था। मगर धान भी कितना! वही थोड़ा-सा धान ले आना अभी तक नहीं हो पाया है।

इधर सरकारी सेटलमेण्ट आया है। नोटिस दी गयी है कि अपनी-अपनी जमीन की मिल्कियत और हकूक के सबूत के साथ हाजिर रहना पड़ेगा। नहीं तो सेटलमेण्ट के कानून के मुताबिक दण्ड दिया जाएगा। एक टुकड़ा जमीन के लिए कानूनगो और अमीनों के साथ सुबह से तीसरा पहर हो जाता; पके धान के खेतों से जंजीर खींचते हुए उस जमीन तक पहुँचने में चार-पाँच दिन लग जाते। उस टुकड़े के बाद चार-पाँच दिन फिर कुछ नहीं, उसके बाद ही कहीं दूसरा टुकड़ा। अनिरुद्ध की ही नहीं सारे गाँव के लोगों की जिल्लत-जहमत का अन्त नहीं था। पूस की संकरान्त पर घर में लक्ष्मी का सिंहासन बिठाने की तैयारी चल रही थी, लेकिन लक्ष्मी तो अभी खेतों में ही थी। गाँव की 'दौनी' नहीं आयी। यह एक हंगामा रह ही गया है। कटनी के आखिरी दिन 'दौनी' आती है—अनिरुद्ध को धान का आखिरी गुच्छा तो खुद काटना ही होगा, कटे धान की जड़ में पानी डालकर धान के गुच्छे को सर पर उठाकर लाना भी होगा। अनिरुद्ध के पास मजूरा भी नहीं है, बटाईदार को खीर पकाकर खिलाना होगा। और-और साल लक्ष्मी के साथ ही वह पर्व खत्म हो जाता था—अबकी सेटलमेण्ट के चलते पड़ रह गया।

भात की हाँड़ी उतारकर पद्म ने माँड़ निकाल दिया। खोजकर हाँड़ी में से एक छोटी-सी पोटली निकाली। उसी पोटली में थोड़ी-सी मसूर की दाल, दो-चार आलू, एक टुकड़ा कोंहड़ा था। इन सबका भुरता बनाकर मछली की तलाश करनी होगी। मछली के बिना अनिरुद्ध को कौर नहीं धँसेगा। इसीलिए पिछवाड़े की गड़हिया के किनारे-किनारे पानी में कुछ गड्ढे खोद रखे गये हैं--कीचड़ में रहनेवाली मछलियाँ उनमें बैठती हैं; होशियारी के साथ झट पकड लो तो पकड़ने में आ जाती हैं। पद्म ने खीझ-भरी निगाह से बाहर की ओर ताका। यह काम भी तो वह कर लेता! गये कहाँ नवाब? एक बार वही जो दरवाजे के बाहर सुनाई पड़ी थी उसकी आवाज—'चण्डीमण्डप से कोई सरोकार नहीं'—चिल्ला रहा था, उसके बाद कोई पता नहीं। चण्डीमण्डप से कोई वास्ता नहीं! तभी तो काली मैया और महादेव बाबा के

बैंगन की क्यारी पानी में डूब गयी, पौधे सड़ने से उनका बड़ा नुकसान हो गया। ऐसी मति न हो तो ऐसी दुर्गति क्यों हो, भला!

"अरे ओ भई कर्मकार, हो? कर्मकार? अरे ओ कर्मकार?"

है कौन यह? जवाब नहीं मिलता फिर भी पुकारता ही जा रहा है।

"ओ कर्मकार—अभी-अभी दुर्गा ने बताया कि कर्मकार घर गया और तुम जवाब नहीं दे रहे हो! कर्मकार?"

अनिरुद्ध तब दुर्गा के यहाँ था। रूप है उसके, इसलिए मोची के यहाँ...? छि-छि-छि! लक्ष्मी? ऐसे के घर लक्ष्मी रह सकती है? या कि ऐसे के वंश चलता है? पद्म मानो पागल हो उठी। उसने चूल्हे से एक जलती हुई लकड़ी निकाली। आग लगा देगी—घर-गिरस्ती को आग लगा देगी। लेकिन ठीक इसी मौके से अन्दर आ धमका भूपाल चौकीदार।

"तुम भी क्या आदमी हो अनिरुद्ध? पुकारते-पुकारते मेरा गला बैठ गया। कहाँ हो, कर्मकार?"

अन्दर अनिरुद्ध को न पाकर भूपाल जरा अप्रतिभ हुआ। और फिर पद्म को ही लक्ष्य करके बोला, "देखो, तुम जरा अनिरुद्ध से कह देना कि मैं आया था। मेरी तो अजीब मुसीबत है। बुलाओ तो लोग जाते नहीं और गुमाश्ता कहेगा...साला, तुझे बैठे-बैठे खाने को तनखा दिया करता हूँ।"

"कौन है रे? कर्मकार से कौन क्या कहेगा? कर्मकार ने क्या किसी का क़र्ज खाया है?" दरवाजे के बाहर से ही बोलते हुए अनिरुद्ध अन्दर आया।

"लो, आ ही गये!" भूपाल की जान में जान आयी।—"भैया, जरा चलो! गुमाश्ता मेरा सर खा रहा है।"

अनिरुद्ध ने खप् से उसकी कलाई थाम ली—"अबे ऐ, तू घर के अन्दर क्यों आया?"

उसकी ओर देखकर भूपाल ने नाराजगी से कहा, "हाथ छोड़ दो!"

"तू अन्दर क्यों आया? लगान का तकाजा करना था तो बाहर से करता। जमींदार का नौकर, छछून्दर का गुलाम चमगादड़।"

उमेठकर अपना हाथ छुड़ाकर भूपाल गरज उठा, "खबरदार, जबान सँभालकर बोलो। दो साल से लगान बाकी है, दिया क्यों नहीं? जरूर घर में घुसूँगा। यूनियन बोर्ड का टैक्स, वह भी नहीं दिया!" आखिर भूपाल भी बागदी का बेटा था, छाती तानकर खड़ा हो गया।

लगान! यूनियन बोर्ड का टैक्स! अनिरुद्ध चंचल हो उठा। मगर ज्यादा बढ़ने की हिम्मत नहीं की उसने। सो उन बातों पर ध्यान न देकर वह अपनी ही शिकायत ले बैठा—"मैं घर में होता तब तू घुसता, तो एक बात थी। घर में कोई मर्द नहीं, फिर तू अन्दर क्यों आया?"

भूपाल ने कहा, "चलो तुम, गुमाश्ताजी बुला रहे हैं।"

"जा, जा, कह दे उनसे। मैं किसी के बुलाये नहीं जाता।"

"लगान के बारे में क्या कहते हो?"

"जाकर कह दे, लगान मैं नहीं दूँगा।"

"ठीक है।" कहकर भूपाल बाहर चला गया। साफ-साफ जवाब देकर अनिरुद्ध भी फुफकारने लगा—"अदालत है, वकील है, कानून है—नालिश कर जाकर। घर में क्यों घुसेगा। इतनी मजाल!"

अचानक वह रोनी-सी आवाज में बोल उठा, "हम गरीब हैं, इसलिए हमारी इज्जत-आबरू नहीं है! हम आदमी नहीं हैं!"

पद्म अब तक एक शब्द भी नहीं बोली थी। उबली हुई चीजों में नमक मिला रही थी चुपचाप। और अब बोली भी तो यही कि "अच्छा, मछली का क्या होगा?"

"मछली? नहीं चाहिए मछली। मैं कुछ नहीं खाऊँगा, जा! खाने से अरुचि हो गयी है।"

पद्म और कुछ न बोली। भात परोसने लगी।

अनिरुद्ध चीख उठा, "तूने घर से लक्ष्मी को भगाया!"

"मैंने?"

"हाँ, तूने! बीमार होकर रात-दिन पड़ी है घर में, साँझ-बत्ती नहीं, धूप नहीं। ऐसे घर में भी लक्ष्मी रहती है? मैं पूछता हूँ, कल है लक्ष्मी-पूजा, तूने कौन-सी तैयारी की है?" क्रोध और क्षोभ से अधीर होकर वह चला गया।

पद्म चुप बैठी रही। उसके मन के क्षोभ का पागलपन इस बीच एक अजीब ढंग से उदासीनता में बदल गया। अनिरुद्ध के इस अपमान और क्षोभ से उसे तृप्ति हुई थी या नहीं, कौन जाने; लेकिन उसके अपने क्षोभ की उन्मत्तता—जिस उन्मत्तता से कुछ ही देर पहले वह घर को आग लगा रही थी—शान्त हो गयी। आँचल बिछाकर वहीं लेट गयी। उसके सीने में जैसे ढेर-सी रुलाई निथरा आयी थी।

पद्म चुपचाप रो रही थी। उसकी आँखों से बहकर आँसू उसके गालों को भिगोता हुआ माटी पर चू रहा था। हँसने-रोने से उसके भीतर का गहरी यन्त्रणा देनेवाला आवेग कम हो गया। रोने से कुछ देर में उसे तृप्ति का अनुभव हुआ, इसके बाद एक आनन्द मिला।

"कहाँ हो कर्मकार की बहू? कहाँ हो?"

कौन पुकारती है?... पद्म ने चुपके-से साड़ी के छोर से आँसू पोंछ लिया। लेकिन जवाब नहीं दिया—जवाब देने की इच्छा नहीं हुई।

"लुहार-बहू! हाय राम, यह तीसरे पहर चूल्हे के पास क्यों सोयी हो?"

यह कहती हुई जो आयी वह थी दुर्गा। उसे देखकर पद्म का सर्वांग जल उठा। *मोचिन की जुर्रत देखो! पुकारने का ढंग है यह?* बहुत नाखुश-सी बोली, "क्यों, जरूरत क्या है?"

हँसकर दुर्गा ने कहा, "तुमसे एक बात कहनी है।"

"मुझसे? कौन-सी बात कहनी है? काहे की बात?"

"कहती हूँ, तुम उठो भी तो।"

"मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।"

शंका-भरे स्वर में दुर्गा बोली, "तबीयत खराब है? आऊँ बरामदे पर?"

विजली जैसे छू गयी हो, इस ढंग से पद्म उठ बैठी—"नहीं।"

उसकी ओर ताककर दुर्गा हँसते हुए बोली, "हाय राम, रो रही थी? क्या हुआ? लुहार से झगड़ा हुआ है, क्यों?" वह ही-ही करके हँसने लगी।

"यह सब जानकर तुम क्या करोगी? कहना क्या है, सो कहो। एः, इतनी खोजबीन, जैसे कितनी अपनी है मेरी!"

"अपनी तो हूँ ही बहन! हूँ या नहीं, तुम्हीं कहो?"

"तू मेरी अपनी है?" पद्म क्रोध से इस बार तू सम्बोधन कर बैठी।

लेकिन दुर्गा इतने पर भी नाराज न हुई। हँसी। हँसकर बोली, "हाँ भई, हाँ! और क्या यह कहूँ कि मैं सौतिन हूँ तुम्हारी! तुम्हारा पति मुझे चाहता है!"

पद्म अब आपे से बाहर हो गयी। उसने रसोई से झाड़ू उठा ली।

हँसकर दुर्गा थोड़ा खिसक गयी। बोली, "छू जाओगी तो इस असमय में नहाना पड़ जाएगा। पहले मेरी बात तो सुन लो बहन; फिर न हो.तो झाड़ू फेंककर मारना।"

पद्म अवाक् हो गयी।

दुर्गा ने कहा, "रुक जाओ जरा, बाहर का दरवाजा पहले बन्द कर दूँ। जाने कब कौन आ पड़े!"

पद्म अभी भी शान्त नहीं हो सकी थी। झुँझलाहट-भरी आवाज में बोली, "दरवाजा बन्द करके क्या होगा। मेरे दर्जनों यार तो हैं नहीं!"

दुर्गा फिर हँस उठी। बोली, "मेरे तो हैं! कहीं मेरी बू पाकर वही आ पहुँचें!"

"मेरे यहाँ आएँगे तो मारे झाड़ू के होश नहीं ठिकाने कर दूँगी मैं!"

दुर्गा ने इस बीच दरवाजा बन्द कर दिया। लौटी, तो उससे छू न जाए, इतनी दूर से बोली, "दूसरे को झाड़ू लगा सकती हो, लेकिन अपने पति को? वह भी तो मेरा है, जैसा तुमने कहा! खैर, जाने दो। मजाक नहीं।—ये चीजें सहेज लो।" और उसने अपनी कमर पर से एक टोकरी उतारी जो कपड़े से छिपी थी। उसमें से लोटे में दूध, एक मटके में गुड़, दो छिले हुए नारियल, सेर-भर तिल, एक डिब्बे में पाव-भर तेल—और भी कुछ चीजें निकालीं। बोली, "लक्ष्मी-पूजा का इन्तजाम करो बहन।

अरवा चावल तो अपने पास नहीं है, और मेरे चावल-पिसान से काम भी न चलेगा। यह मैंने तुम्हारे पति-देवता से ही सुना है।"

पद्म का तन-बदन जल उठा। जी में आया, लात मारकर सारी चीजों को बिखेर दे। यही वह करती। लेकिन ऐन वक्त पर किसी ने दरवाजे में धक्का दिया। शायद अनिरुद्ध हो। ठीक है, आये वह। उसी के सामने लात मारकर बिखेर दूँगी!

जल्दी-जल्दी उसने खुद ही जाकर दरवाजा खोल दिया। मगर आनेवाला अनिरुद्ध नहीं था। थी बुढ़िया रांगा दीदी!

पद्म ने शान्त भाव से कहा, "रांगा दीदी!"

"हाँ, नतन-बहू!" कहते-कहते बुढ़िया की नजर दुर्गा पर पड़ी—"हाय राम, वह... कौन बैठी है, वह?"

"मैं हूँ!" अपनी आवाज ऊँची करके दुर्गा ने कहा, "मैं हूँ रांगा दीदी, दुर्गा! वर्जानियों के यहाँ की दुर्गा!"

"दुर्गा! अरी, तेरे लिए क्या कोई भट्टी बाद नहीं। अभी यहाँ तो अभी वहाँ! एकवारगी उस मुलुक में। कंकना, जंक्शन—कहाँ नहीं जाती है तू? खैर! यहाँ क्या कर रही है? यह सब क्या है?"

"लुहार-बहू ने जंक्शन से सामान लाने के लिए रुपये दिये थे, वही लायी हूँ।"

"मुझे नहीं बताना था? आज बस्ती में ही चार आने का बाजार किया, एक रुपये का चावल बेचा। जंक्शन में चार आने में भी एक पैसा बच जाता, चावल में भी दो पैसे ज्यादा मिल जाते। मेरे तो हट्टा-कट्टा खसम नहीं है, मेरा उपकार भला क्यों करने लगी?"

दुर्गा ने हँसकर कहा, "अब कभी देना दीदी, ला दूँगी।"

"अच्छा ला देना। औरत तो तू भली है, मगर है बड़ी वाहियात। मगर तुझे जो करना है, कर! मेरा क्या!"

दुर्गा जोर से हँस पड़ी, "बेशक! तुम्हारे तो बुड्ढा है नहीं। डर काहे का, चिन्ता काहे की? खैर, सामान मैं ला दूँगी।"

बुढ़िया बोली, "मगर इसमें हँसने का क्या है?"

"खैर, नहीं हँसती! क्या कहना है, कहो?"

"हाय राम! तुझे कौन कह रहा है? मैं तो नतन-बहू से कह रही हूँ। अरी ओ नतन-बहू, इस बार मेरे यहाँ चावल कूटने नहीं गयी?"

रांगा दीदी के यहाँ ढेंकी है। पद्म सदा वहीं जाकर पकवान के लिए चावल कूटा करती थी। अबकी नहीं गयी। बुढ़िया इसीलिए आयी थी।

"मैं पूछती हूँ—मैंने कभी कुछ कहा है क्या तुझसे? तू ही बता, कहा है क्या?" किसे कब क्या कहा, बुढ़िया को यह स्वयं ध्यान नहीं पड़ता।

फीकी हँसी हँसकर पद्म ने कहा, "कहने की बात नहीं—इस बार चावल ही नहीं कुटाया है।"

"कुटाया ही नहीं! अरे, कह क्या रही है?"

"हाँ, नहीं कुटाया है।"

"हाय राम! तो फिर कूटेगी कब? रात बीतते ही तो..."

पद्म चुप रही। बीच में दुर्गा ने कहा, "नतन-बहू बीमार है, जानती तो हो। बीमारी में करे क्या बेचारी!"

"तो? लक्ष्मी-पूजा कैसे होगी? तेरा वह भकोल मूसल मरदुआ कहाँ गया? अनिरुद्ध? वह नहीं कर सकता?"

दुर्गा ने ही जवाब दिया—"हो जाएगा किसी न किसी तरह। अनिरुद्ध को आने दो। दूकान से खरीद लाएगा।"

"खरीद लाएगा? नहीं-नहीं। कल के कूटे चावल से लक्ष्मी-पूजा होगी? तू एक काम कर नतन-बहू, थोड़ा-सा पिसान मेरे यहाँ से ले आ। दो-ढाई सेर तक दे दूँगी। अच्छा, मैं ही दे जाऊँगी। भला कहो तो, यह भी कोई बात है! अभी दे जाती हूँ मैं।"

जाते-जाते बुढ़िया दरवाजे के पास रुककर बोली, "जरा ईदू शेख की करतूत तो देखो दुर्गा, बुढ़िया गाय का चार रुपया कह रहा है। आखिरी दाम पाँच रुपया। तेरे टोले में दूसरा कोई पैकार आये तो भेज देना जरा।"

दुर्गा भी टोकरी लेकर उठ खड़ी हुई। बोली, "लोटा-कटोरा कल आकर ले जाऊँगी। अभी चलती हूँ!"

"कल यहीं खाना!"

"अच्छा!" दुर्गा हँसती हुई चली गयी।

एकाएक क्या-से-क्या हो गया! रांगा दीदी से बात करते हुए कैसे तो उसके जी की सारी जलन जुड़ा गयी—फिर सब ठीक लगने लगा। दुर्गा की चीजों को उसने लौटाया नहीं, लात मारकर बिखेरा भी नहीं। दुर्गा की वह झूठी बात उसे बड़ी अच्छी लगी—उसने रांगा दीदी से कहा न कि लुहार-बहू ने जंक्शन से सामान लाने के लिए रुपये दिये थे। वही लेकर आयी।

वह रांगा दीदी के चावल-पिसान के इन्तजार में रही। घर में अरवा चावल नहीं था। पिसान को सिलौटी पर पीसकर अल्पना आँकनी होगी—दरवाजे से लेकर घर के अन्दर तक। खलिहान में, मोरियों के नीचे गौशाले तक। चण्डीमण्डप में पूस अगोरने की अल्पना। याद आया, 'आउरी-बाउरी' चाहिए। कार्तिक संक्रान्ति की 'मूठ लक्ष्मी' के धान की बिचाली की डोरी बटकर उसी रस्सी से भण्डार के प्रत्येक आधार को बाँधना होगा। घर में बक्सा-पिटारा, जो कुछ भी है, सबमें लक्ष्मी का बन्धन पड़ेगा। घर के छप्पर तक पर 'आउरी-बाउरी' का बन्धन पड़ेगा, तभी बैसाख के अन्धड़ में वह टिक पाएगा।

पुराने युग में एक बालक चरवाहा था। जंगल के किनारे खुले मैदान में वह अपनी गायों को चराया करता था। गरमी की धूप, बरसात का पानी, जाड़े की हवा उसपर से गुजरा करती। कभी-कभी दुःख-तकलीफ में वह आँसू बहाया करता और ऊपर आँखें करके ईश्वर को पुकारता—भगवन्, अब नहीं सहा जाता; मेरा कष्ट दूर करो, मुझे बचाओ!

एक दिन आकाश-मार्ग से लक्ष्मी-नारायण जा रहे थे। रखवाले बालक का वह रोना उनके कानों पहुँचा। लक्ष्मी का कोमल कलेजा दुःख गया। बोलीं, "भगवन्, इस बेचारे बालक के दुःख को दूर करो।"

नारायण हँसे। बोले, "इसका दुःख दूर करने की शक्ति तो मुझमें नहीं है लक्ष्मी, तुम कर सकती हो!"

लक्ष्मी ने कहा, "तुम मुझे अनुमति दो!"

नारायण की अनुमति मिल गयी। लक्ष्मी धरती पर आयीं। चारों ओर सोने की चमक हँस उठी, देवी के दिव्य अंगों की अपरूप गन्ध से वायु भर उठी! चरवाहा बालक अवाक् हो गया। लक्ष्मी उसके पास गयीं। कहा, "तुम्हारा दुःख दूर हो जाएगा, तुम मेरा कहा करो। यह लो धान के बीज। बरसात के दिनों इन्हें खेत में बो देना। इन बीजों से पौधे होंगे। जब उन पौधों का रंग मेरी देह के रंग-सा हो जाए, उनमें से मेरी देह-गन्ध-सी खुशबू निकलने लगे तो उनको काटकर घर में सहेजना!"

चरवाहे बालक ने लक्ष्मी को प्रणाम किया। बरसात में उसने बैहार में धान के बीज बिखेर दिये, देखते ही देखते बैहार धान के हरे पौधों से विहँस उठा। धीरे-धीरे बरसात बीती। धान के पौधों पर शस्य की बालियाँ निकलीं। चरवाहे ने छू-छूकर देखा। उँ हुँ, अभी इसका रंग देवी की देह के रंग-जैसा नहीं हुआ। वह खुशबू भी नहीं आती अभी। वह इन्तजार करने लगा। हेमन्त के अन्त में एक दिन जब वह घर में सोया ही था कि उसे वह खुशबू मिली। भोर होते ही वह दौड़ा गया खेतों की ओर। अवाक् रह गया। सोने के रंग से सारा बैहार चमक उठा था। मीठी खुशबू से अकास-बतास मँहमहा रहा था। उस सुनहले रंग और भीनी महक से खिंचे कीटपतंग आसमान में मँडरा रहे थे। चारों तरफ जुट गये थे मवेशी मानो उसके दुःख से कातर हो स्वयं देवी ही अपने अंग बिखेरे बैहार में लेटी हों! चरवाहे ने धान काटकर घर में सहेजा।

देश के राजा को खबर मिली। वे आये। सोने से धान को खरीदना चाहा। राजा के भण्डार का सोना समाप्त हो गया, मगर चरवाहे का धान जस का तस ही बना रहा। राजा के अचरज का अन्त न रहा। तब उन्होंने अपनी पुत्री चरवाहे को दान दी। सामने ही पूस की संकरान्त थी। चरवाहे ने उस दिन लक्ष्मी की पूजा की। उस धान को ही सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया, सिन्दूर-काजल और वसन-भूषण से उसे बड़े सुन्दर ढंग से सजाया; सामने स्थापित किया जल-भरा घट; और घट के

ऊपर डाभ और आम के पत्ते रखे। राजकन्या ने धान छाँटकर चावल किये, और चावल से फिर नाना प्रकार के खाद्य-पदार्थ बने। चरवाहे और राजकुमारी ने पंचपुष्प, धूप-दीप और चन्दन से देवी की पूजा की, भोग लगाया। पूजा के बाद प्रसाद पाया। सबसे पहले किसान और रखवाले को दिया—अपने स्वामी और घर के लोगों को—उसके बाद दिया पास-पड़ोस में, गाय-बकरी को, यहाँ तक कि सबकी जूठन खानेवाले गली के कुत्ते तक को दिया।

लक्ष्मी प्रकट हुईं। दर्शन दिये। अपना परिचय बताया। वरदान दिया कि जो लोग पूस की संक्रान्ति पर तुम्हारी ही तरह मेरी पूजा करेंगे, मैं उनके घर स्थिर होकर रहूँगी। दुनिया में उन्हें कोई दुःख न रहेगा, कोई कमी नहीं रहेगी। परलोक में उन्हें वैकुण्ठ मिलेगा।

इस व्रत-कथा को मन-ही-मन याद करते हुए आशा-आकांक्षा से जी को भरोसा देकर सन्तुष्ट मन से पद्म ने लक्ष्मी-पूजा की तैयारी शुरू की। घर-द्वार, खलिहान-गुहाल को अल्पना से चित्रित किया। द्वार से आँगन तक अल्पना में चरण के चिह्न आँके। उन्हीं चरण-चिह्नों पर पैर रखकर लक्ष्मी आएँगी। घर के बीचोंबीच सिंहासन के सामने बड़ा-सा एक कमल आँका। अनूठा कारुकार्य। आकर माँ वहीं विश्राम करेंगी। शंख को धोया, प्रदीप को माँजा, धूप निकाला, सिन्दूर रखा, काजल बनाया। इधर का सब-कुछ हो जाए तो गुड़-नारियल, गुड़-तिल की मिठाई बनाएगी, दूध औंटकर गाढ़ा करेगी। उफ् कितना काम पड़ा है! अन्त भी है काम का! उसे अगर कोई छोटी लड़की रही होती, तो वही ये सामान जुटाती! एकाएक उसे याद आया कि अल्पना के काम में एक छूट हो गयी है : चण्डीमण्डप में पूस अगोरने की अल्पना नहीं आँकी गयी।

एक क्षण ठिठककर उसने सोच लिया। अनिरुद्ध उस समय कह रहा था—चण्डीमण्डप में उसके यहाँ से कोई नहीं जाएगा। पूस-अगोरना अपने दरवाजे पर ही होगा।

"न, यह नहीं होने का। पद्म यह नहीं होने देगी। काली मैया और बूढ़े शिव बाबा के चरण—उस चण्डीमण्डप को छोड़कर—न, यह नहीं होगा।" अल्पना के घोलवाले कटोरे को लेकर पद्म चण्डीमण्डप की ओर चल पड़ी।

चण्डीमण्डप के सामने पहुँचने पर उसके अचरज का ठिकाना न रहा। वही चण्डीमण्डप है यह? जाने किस जादूगर के जादू की छड़ी के छू जाने से वह एकबारगी बदल गया और ऐसी अनोखी शोभा लिए हँस-सा रहा है! यह तो सब पक्का हो गया! रास्ते से चण्डीमण्डप पर चढ़ने की सीढ़ी के दोनों किनारे हाथी के दो सूँड़ सीढ़ियों को मानो थामे हुए हैं : बकुल के पेड़ के नीचे पक्का चौतरा बना है।

चण्डीमण्डप का फर्श पक्का हो गया है, सीमेण्ट की चिकनी पॉलिश झकझका रही है। भट्टी के पायों पर नये स्तूप पर पलस्तर किया जा रहा है, उसपर चूने की सफेदी चढ़ायी जा रही है। इधर एक कुआँ खुद रहा है। पद्म को याद आ गया, यह सब श्रीहरि घोष की कीर्ति है। एक लम्बी साँस लेकर वह अल्पना आँकने बैठी। 'पूस रे पूस, घर के अन्दर घुस'—एक बड़ा-सा घर बनाना होगा। मोरियाँ आँकने होंगी। 'आओ पूस आओ। छोड़ कभी मत जाओ।' पूस तो असल में श्रीहरि-जैसों का है अपना पूस क्या!

"कौन? देखो, दुनिया-भर की अल्पना मत आँक देना। मुट्ठी-मुट्ठी रुपया खरच करके किसी ने पक्का बनवा दिया और तुम लोग अपने मंगल के लिए चावल का घोला हुआ पिसान पोत रही हो! इसके बाद धोये-पोंछेगा कौन?"

पद्म ने पलटकर देखा, श्रीहरि की माँ चिल्ला रही हैं। घूँघट काढ़कर वह एक ओर को सरक गयी। उससे प्रतिवाद नहीं किया जा सका। श्रीहरि की माँ को यह कहने का बेशक अधिकार है। किसी प्रकार से आँक-ऊँककर वह लौट आयी।

घर में पाँव रखते ही देखा, देबू उसी के यहाँ से निकल रहा है। देबू के पीछे घर के दरवाजे पर अनिरुद्ध खड़ा था। देबू ने हँसकर पद्म से ही कहा, "तो कल गुरुआनी के पास कथा सुनने के लिए जाना मितनी, उसने कहला भेजा है।"

घूँघट काढ़े ही पद्म ने इशारे से कह दिया—"जाऊँगी।"

देबू चला गया।

अनिरुद्ध ने कहा, "गुरुजी मुझे दो रुपये दे गये। किसी से उन्होंने सुना कि मेरे यहाँ लक्ष्मी-पूजा का सामान नहीं हो सका है। ऐसा आदमी मुश्किल से मिलता है।"—कुछ देर वह चुप रहा और फिर लम्बा निःश्वास छोड़कर बोला, "लेकिन दुनिया में उनकी तो तरक्की नहीं होगी, तरक्की होगी छिरू की!!"

पद्म चुप रही। उसने भी एक लम्बा निःश्वास छोड़ा। अनिरुद्ध ने पूछा, "और कुछ मंगवाना हो तो बताओ।"

"कुछ नहीं।"

"तो फिर सब काम कर-करा ले। हाँ, जरा पहले एक चिलम तम्बाखू चढ़ा ला।"

अनिरुद्ध को हुक्का देकर उसने कढ़ाही चढ़ायी। गुड़-नारियल का पाक। उसका जी दुःख और आक्षेप के आवेग से फिर भर गया। देबू गुरु की तो बात ही छोड़ दो, वह तो सच में ही देवता है। लेकिन यह दुर्गा—उसके भी दया-धरम है, प्रेम-प्यार है! रांगा दीदी-जैसी कजूस, वह भी पुण्यकाज करती है! श्रीहरि घोष की कीर्ति देखकर अवाक् हो गयी है वह! लेकिन हमारे जीवन में क्या हुआ?

दुःख उसे अपने लिए है, लेकिन आज उसने किसी पर ईर्ष्या नहीं की। बल्कि सब पर श्रद्धा प्रकट की। और, बार-बार यह कामना की—"ऐ माता, हमारे दुःख

दूर करो। दूध-पूत से हमारा घर भर दो। मैं षोडशोपचार से तुम्हारी पूजा करूँगी, अपनी उँगली काटकर तुम्हारे प्रदीप की बाती बनाऊँगी, अपने बालों के चँवर डुलाऊँगी तुम पर, अपनी छाती चीरकर उसी लहू से महावर लगा दूँगी पैरों में। तुम्हारी पूजा में पंच-शब्द के बाजे बजवाऊँगी, टसर के कपड़े की चाँदनी टँगवाऊँगी। चाँदी के सिंहासन पर सोने के छत्र की छाया में तुम्हें बिठाऊँगी। अपने-बिराने, पुरा-पड़ोसी, गरीब-दुखिया, पशु-पंछी में तुम्हारा प्रसाद बाँटूँगी—एक अन्न, पचास व्यंजन!"

घर से बाहर होते ही अनिरुद्ध ने बड़े घबराये हुए पुकारा—"पद्म! ओ पद्म!"

पद्म चौंक उठी—"अब क्या हो गया?"

अनिरुद्ध अन्दर गया। बोला, "कड़ाही उतारकर जरा मेरे साथ तो आ।"

"क्यों?"

"गुरुजी को पकड़ ले गया। जरा उनके यहाँ चलूँगा।"

"पकड़ ले गये? कौन?"

"सेटलमेण्ट के हाकिम ने परवाना भेजा था। थाने से लोग आकर पकड़ ले गये।"

सेटलमेण्ट! सेटलमेण्ट! ओह, जाने कहाँ से ये कमबख्त आये और झोंटा पकड़कर झकझोरते हुए अंग-प्रत्यंग नाड़ी-तन्त्र, गाँव के सबको अवश कर दिया। रोज नयी नोटिस, रोज नया हुकुम! बिल्लेवाले प्यादों की आवाजाई का अन्त नहीं। घाट-बाट में साइकिल और साइकिल! मगर हाय, यह क्या हो गया? देबू गुरु-जैसे आदमी को भी पकड़ ले गये लोग!

सत्रह

देबू घोष पर इलजाम एक नहीं था। सरकारी जरीब के काम में रुकावट डालने और सर्वे विभाग के अमीन को पीटने के जुर्म का मुजरिम। स्थानीय सेटलमेण्ट ऑफिसर के निर्देश पर यहाँ के थाने से एक सब-इन्सपेक्टर और सिपाही आया था। गाँव का चौकीदार भूपाल भी उनके साथ था। वे चण्डीमण्डप में इन्तजार कर रहे थे।

अनिरुद्ध के घर से बाहर आते ही उसे गिरफ्तार कर लिया गया। अब हाथ में देबू को हथकड़ी पहनाकर ले जाया जाएगा। आज रात में वह हवालात में रहेगा। सवेरे उसे सेटलमेण्ट अफसर के सामने पेश किया जाएगा। उनकी इच्छा होगी तो जमानत देंगे या विचाराधीन कैदी के हिसाब से उसे सदर जेल में भेज दिया जाएगा। या इच्छा होगी, तो तुरन्त फैसले का दिन तय करके स्वयं विचार करेंगे। वे देबू को लेकर चण्डीमण्डप में ही बैठे रहे।

देबू भी चुपचाप सिर झुकाये बैठा था। दिमाग शून्य-सा हो गया था। कैसे क्या हो गया—इतना भी सोचने की शक्ति नहीं थी उसमें। इतना ही सोच सका वह कि जो किया है, अच्छा ही किया है; अब जो होना है, हो।

देखते-देखते गाँव के प्रायः सभी लोग जुट आये थे। श्रीहरि और गुमाश्ता दासजी दरोगा के पास ही बैठे थे। बीच-बीच में उन तीनों में धीमे-धीमे बात भी होती थी। हरीश आया था, भवेश आया था, हरेन्द्र घोषाल, मुकुन्द घोष, कीर्तिवास मण्डल, नटवर पाल और गाँव का दूकानदार वृन्दावन, रामनारायण घोष, यहाँ तक कि जाड़े की इस शाम में बूढ़े द्वारका चौधरी भी आये थे। जगन डॉक्टर देबू के पास बैठा था। सदा का बातूनी जगन भी आज स्तब्ध था, उदास। ऐसी आकस्मिक और अयाचित घटना से वह हक्का-बक्का हो गया था। एक तरफ गाँव के हरिजन लोग खड़े थे। सतीश, पातू—सभी आये थे। षष्ठी तले के पास बैठी थी दुर्गा—अकेली, चुपचाप, माटी के खिलौने-सी। चीख रही थी केवल रांगा दीदी। चण्डीमण्डप के उस ओर गाँव के बूढ़े-पुरनिये तक आकर खड़े थे। उनके सामने खड़ी होकर रांगा दीदी कह रही थी, "यह हुआ जोर की लाठी सिर पर! दरोगा! दरोगा हुआ तो मानो साँप के पाँच पैर देखे। मैं कहती हूँ, दरोगाजी! चोरी की है कि जुआचोरी कि डकैती, कि इस साँझ को—रात बीतते ही लक्ष्मी-पूजा के समय तुम बच्चे को हथकड़ी डालने आये!"

हरीश ने कहा, "रांगा फुआ. तुम चुप रहो।"

"क्यों? चुप क्यों रहूँ? मैं देखूँगी, कितना बड़ा मर्द है यह दरोगा!"

डपटकर श्रीहरि ने कहा, "रांगा दीदी, तुम चुप रहो। कहना जो है, हम कह रहे हैं। तुम औरत..."

"औरत? साढ़े तीन बीसी उमर हुई हमारी, मैं औरत हूँ तो क्या। मैं तो हजार बार कहूँगी, लाख बार कहूँगी...मेरा कौन क्या कर लेगा? बाँधना है, तो बाँध। गुरुजी-जैसे आदमी को हथकड़ी लगा रहा है, मुझे भी लगा। ले लगा! हाँ, गुरुजी-जैसा आदमी! देबू-जैसा लड़का।" बुढ़िया अचानक रो पड़ी।

स्नेह से उसके माथे पर हाथ फेरती हुई बोली, "मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ भाई, देखते ही साहब तुझे छोड़ देगा। कुरसी पर बिठलाकर कहेगा, तुम गुरुजी हो, तुम्हें भला कैद दे सकता हूँ?"

देबू हँसा।

उधर मामले को दबाकर चालाकी से उसे छुड़ाने की बात हो रही थी। अगुआ इसका श्रीहरि था, साथ था जमींदार का गुमाश्ता दासजी। छोटा दरोगा श्रीहरि का दोस्त था। श्रीहरि ने उसी से पैरवी की। प्रत्यक्ष न सही परोक्ष भाव से देबू श्रीहरि के विरोधी पक्ष का था। मन-ही-मन देबू उसे घृणा करता है—श्रीहरि को यह मालूम है। लेकिन गाँव के प्रधान के नाते आज श्रीहरि को देबू की तरफदारी करनी ही थी। उसके होते हुए उसके गाँव के आदमी को, खासकर उसके अपने एक जन को, हथकड़ी डालकर ले जाने से लोग क्या कहेंगे! वह छोटे दरोगा को खुश करके कोई उपाय निकालने की कोशिश कर रहा था।

छोटे दरोगा ने कहा, "पेशकार के पास जाओ। उसे पकड़ो, कोई रास्ता निकल आएगा। जिस अमीन-कानूनगो से लड़ाई हुई है, उन्हीं को खुश करो। देबू उनसे नम्रतापूर्वक माफी माँग ले, बस सब निपट जाएगा।"

श्रीहरि ने कहा, "यही तो मुसीबत है! मेरे चाचा का दिमाग भी तो बड़ा गरम है। मैंने पहले ही दिन सुनकर कहला भेजा था कि चाचा, कानूनगो से मिलकर मामला सलटा लो। सरकारी कर्मचारी है, बात बढ़ाने से अच्छा नहीं होगा!"

तुरन्त भवेश बोल उठा—"बेशक! बदन पर फोले तो नहीं पड़े।"

श्रीहरि ने कहा, "मामला जब हुआ था, मुझे उसी वक्त मालूम हो गया होता तो मैं इस लहर को उसी समय ठण्डा कर देता। मुझे तो बहुत बाद में मालूम हुआ।"

घटना यों घट गयी। तुम-ताम पर बात।

देबू अपने दरवाजे पर बैठा था। बारह बजे का वक्त रहा होगा। सामने से साइकिल पर एक कानूनगो जा रहा था। शायद वह बड़ी दूर से आ रहा था। जाड़े के दिन में भी पसीना-पसीना हो रहा था। धूल-पसीने से एकाकार बहुत थका हुआ था भला आदमी। साइकिल से उतरकर देबू से कहा, "अरे ऐ, सुन तो।"

यह सुनते ही देबू बिगड़ उठा। बीती हुई एक कठोर बात याद आ गयी। फिर भी उस आदमी के माथे पर टोपी, सादी कमीज, खाकी पैण्ट और साइकिल देखकर उसे सरकारी आदमी समझकर वह चुप हो रहा।

"ए इडियट! सुनता है?"

अबकी भँवें सिकोड़कर देबू ने उसकी तरफ ताका। इच्छा हुई कि जवाब दिये बिना ही घर के अन्दर चला जाए। लेकिन उठते-उठते उस आदमी की ओर एक बार ताके बिना उससे रहा न गया।

उससे नजर मिलते ही कानूनगो ने कहा, "एक गिलास पानी तो ले आ। ठण्डा पानी। खूब साफ, समझा?"

देबू मुसीबत में पड़ा। प्यास के लिए पानी देने का यह अभद्र आवेदन! मगर, उससे 'ना' कहते नहीं बना। क्रोध आया पर उसने फिर भी जबान से कुछ कहा

नहीं, घर के अन्दर से एक मोढ़ा लाकर रखा; गत्ते का बना एक पंखा लाकर दिया। इन्हीं चीजों के द्वारा मौन स्वागत जताकर वह अन्दर चला गया। थोड़ी ही देर में एक साफ माँजी हुई झकमक थाली में बड़ा-सा एक कदमा[1] और गिलास में पानी, दूसरे हाथ में पानी-भरा लोटा और एक साफ-सुथरा तौलिया लेकर हाजिर हुआ।

कानूनगो ने हाथ-मुँह धोया। देबू ने तौलिया बढ़ाया तो बायें हाथ से उसे हटाकर उसने अपने रूमाल से मुँह-हाथ पोंछा। उसके बाद कदमा का टुकड़ा तोड़कर मुँह में डाला, शायद चखकर देखा। कदमा ताजा था। अच्छा ही लगना चाहिए था। शायद लगा भी अच्छा ही। क्योंकि पूरा का पूरा खाकर एक गिलास पानी पीकर कानूनगो ने तृप्ति की साँस ली—आः!

देबू इस बीच अन्दर चला गया। पान-सुपारी ले आना भूल गया था। बिलू से बोला, "थोड़ी लौंग-सुपारी और दो खिल्ली पान दो ना! जल्दी!"

पान लगा ही हुआ था। केले के साफ पत्ते के एक टुकड़े पर लौंग-सुपारी और पान रखकर उसने पति को दिया।

ठीक इसी समय बाहर से आवाज आयी—"अरे, ए छोकरे!" देबू से और न सहा गया। पानवाले पत्तल को वहीं फेंककर वह बाहर आया और बोला, "क्यों रे, क्या कहता है?"

ऐसे अयाचित रूखे जवाब के लिए कानूनगो तैयार नहीं था। अचरज और गुस्से से पहले तो कुछ क्षण वह अवाक् हो रहा। उसके बाद बोला, "व्हाट? तू मुझे तुम-ताम करेगा? पता है..."

निडर होकर देबू ने कहा, "सो तो तूने ही शुरू किया है।"

"अपना नाम तो बता, देखता हूँ, तुझे मैं।"

देबू ने उसकी तरफ देखा और निडर होकर कहा, "मेरा नाम है श्री देवनाथ घोष!" इसके बाद उसकी ओर बढ़कर कहा, "क्या करोगे, करो!"

कानूनगो ने और कुछ नहीं कहा। चला गया।

उधर श्रीहरि वगैरह ने जो जरीब स्थगित करने की पैरवी की, उसका कोई नतीजा नहीं निकला। धानकटनी के लिए महज और सात दिन का समय मिला। मगर पूस के चौदह दिन में इतनी बड़ी बैहार का कुल धान काटकर उठा लेना असम्भव था। असम्भव हरगिज सम्भव नहीं हुआ, हुआ सिर्फ श्रीहरि और दूसरे दो-तीन जनों का—हरीश, दूकानदार वृन्दावन दत्त और कंजूस हेलाराम का। उनके पैसा था, नकद पैसे से काफी मजदूर रखकर उन्होंने अपना काम खत्म कर लिया। दूसरे लोगों की पकी फसल पर ही नाप-जोख होने लगी। सरकार की ओर से बेशक यह निर्देश था कि मेड़ों पर से खूब होशियारी के साथ धान बचाकर काम किया जाए।

---

1. चीनी की एक मिठाई।

देबू पहले दिन खेतों पर गया तो देखा, सर्वे-टेबुल के पास वही कानूनगो खड़ा है। कानूनगो ने भी देबू को देखा। दोनों का मिजाज कड़वा हो उठा। कानूनगो आदमी चिड़चिड़े स्वभाव का था। लोगों से रूखा व्यवहार करने की आदत थी उसे। देबू सावधानी से उससे बचकर चलने लगा। लेकिन जल्दी ही कुछ छोटी-मोटी बातों को लेकर कानूनगो ने उसे कैम्प में हाजिर होने की नोटिस भिजवायी।

तीखे मिजाज से देबू बहुत नाराज हो उठा। उसने तय कर लिया, चाहे जो भी हो, मैं कानूनगो के सामने हाथ जोड़कर हरगिज नहीं हाजिर होने का।

मौका पाकर उसकी गैरहाजिरी की रिपोर्ट कानूनगो ने सेटलमेण्ट डिप्टी से की। नोटिस देखकर डिप्टी साहब कुछ हैरान हुए। इस मामूली कारण से नोटिस दी गयी है? डिप्टी साहब इस कानूनगो के स्वभाव से भी परिचित थे। फिर भी उन्होंने कानून के मुताबिक देबू के नाम नोटिस निकाला। देबू ने इस नोटिस को भी नहीं माना। इसके बाद नियमतः वारण्ट निकलना था। इसी समय इधर एक घटना घट गयी।

देबू के एक खेत की नापी के समय कानूनगो से उसकी बतकही हो गयी। विवाद का कारण था कि देबू जमीन की रसीद नहीं ले आया था। वह जवाब ही दे रहा था कि एकाएक उसकी नजर पड़ी, उसके खेत के ठीक बीच में पके धान से जंजीर खींची जा रही है। उसने समझा, कानूनगो ने यह जान-बूझकर ही किया है। मगर असल में यह कानूनगो ने जानकर नहीं किया था। देबू की जमीन की बनावट ही कुछ ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी थी कि बीच की चौड़ाई की नाप लिए बिना चारा न था। गुस्से से गलत समझकर देबू एक अनर्थ कर बैठा। उसने जरीब की जंजीर खींचकर अलग फेंक दी। फेंकना था कि नक्शा और ज़ंजीर लेकर कानूनगो डिप्टी साहब के पास गया और रिपोर्ट कर दी।

डिप्टी साहब वास्तव में भलेमानस थे। उन्हें खेतिहरों की निरीह प्रवृत्ति का पता था। वे भी आखिर इसी मुल्क के रहनेवाले थे। वे अवाक् हो गये। लेकिन कानूनगो का दोस्त पेशकार जो था, वह बड़ा धुरन्धर था। उसने डिप्टी साहब को साफ समझा दिया कि यह आदमी उसी जी.एल. बनर्जी का शिष्य है। इस बात के बाद डिप्टी से इस घटना की उपेक्षा करते नहीं बना।

उसी का यह नतीजा हुआ। एकबारगी गिरफ्तारी का वारण्ट। श्रीहरि ने बात ठीक ही कही। उसने कई बार अनुरोध किया कि "चाचा, तुम चलो, मैं साथ चल सकता हूँ। कानूनगो को मैं नरम कर आया हूँ, तुम सिर्फ चले चलो, मामला चुक जाएगा।"

मगर देबू ने कहा, "नहीं।"

जगन ने कहा, "गुरुजी, तुम भी दरखास्त दो। सी.ओ. को सब समझाकर लिखो—डी.एल.आर. को भी दरखास्त दो।"

देबू ने कहा, "छोड़ो, रहने दो।"

बिलू ने शंका और उद्वेग से पूछा, "अच्छा, क्या होगा?"

देबू ने हँसकर कह दिया, "जो होना होगा, होगा।"

सो, जो होने का था, हो गया।

श्रीहरि ने आकर देबू से कहा, "छोटे दरोगा को राजी कर लिया है, चाचा! पहले हम कानूनगो के कैम्प में जाएँगे, वहाँ मामला तय कर लेंगे, उसके बाद कानूनगो की चिट्ठी लेकर सर्किल डिप्टी के पास जाएँगे। केस खारिज हो जाएगा—हम लोग लौट आएँगे।"

देबू बोला, "नहीं।"

"नहीं क्यों?"

"नहीं। मैं नहीं जाऊँगा, छिरू!"

"नतीजा क्या होगा, कुछ सोचते हो?"

"जो होना होगा सो होगा।" देबू इस बार भी हँसा।

गहरे दुःख से एक लम्बी उसाँस लेकर भी श्रीहरि खीझ को जब्त न कर सका। कहा, "काम तुम ठीक नहीं कर रहो हो, चाचा!"

दासजी ने कहा, "मगर अब हम क्या कर सकते हैं, कहो!"

फिर सभी ने एक स्वर से कहा, "हम क्या कर सकते हैं?"

सबके साथ अगर हामी नहीं भरी तो सिर्फ तीन जन—जगन डॉक्टर, अनिरुद्ध और हरेन घोषाल ने। हरेन घोषाल की आदत है सबसे पहले बोलने की, लेकिन आज उसने कुछ भी नहीं कहा और उठकर तेजी से चला गया।

जगन ने कहा, "फिक्र न करो देबू भाई! कल मुकदमा न करके हाजती असामी बनाकर अगर जेल भेज दे तो सदर से मुख्तार बुलाकर हम लड़ेंगे। और अगर कल ही फैसला करके जेल की सजा देगा, तो सदर में अपील करेंगे। उसी वक्त जमानत हो जाएगी।"

देबू ने कहा, "डाकघर में मेरे सौ रुपये पड़े हैं। बिलू के पास सही करके रुपये निकालने का फॉर्म रख दिया है। जैसी जरूरत हो, रुपये निकाल लेना। मुकदमे से कुछ होगा नहीं, यह मैं जानता हूँ, मगर मैं जिरह में सब पोल खोल देना चाहता हूँ।"

अनिरुद्ध ने कातर होकर कहा, "देबू भाई, अच्छा हो कि मेट-माट कर लो तुम!"

हँसकर देबू ने कहा, "तुम जरा होशियारी से रहना अन्नी भाई। डॉक्टर, तुम उसका खयाल रखना।"

छोटे दरोगा ने कहा, "साँझ हो गयी। क्या तय हुआ आप लोगों का?"

देबू उठकर खड़ा हो गया—"चलिए, मैं तैयार हूँ।"

छोटे दरोगा ने पुकारा—"भूपाल! रामकिरण!"

"जरा रुक जाएँ दरोगा बाबू!"—जाने कहाँ से दौड़ी आयी दुर्गा।

हाथ जोड़कर देबू से बोली, "जरा बिलू दीदी से भेंट करके जाओ गुरुजी!"

दरोगा ने कहा, "जाइए, भेंट कर आइए।"

बोलती ही रहनेवाली दुर्गा आज देबू के आगे-आगे बिलकुल चुपचाप चल रही थी।

देबू ने कहा, "लेकिन दुर्गा, तू इन लोगों की खोज-खबर रखना।"

आगे-आगे चलनेवाली दुर्गा ने सिर्फ गरदन हिलाकर हाँ किया।

बिलू रो रही थी। देबू ने उसकी आँखें पोंछ दीं। उसके बाद उसने केवल काम की एक बात कही, "डाकघर से रुपये निकालकर अपने पास रखना। मुकदमे के लिए डॉक्टर जो माँगे, देना। होशियारी से रहना। धान-पान ठीक हिसाब से लेना। अपने से हिसाब करके लेना। तुम तो हिसाब जानती ही हो। जी मत छोटा करो। मुन्ने का भार तुमपर है—घर-द्वार सब। तुम मेरे घर की लक्ष्मी हो, तुम घबराओगी तो कैसे चलेगा? तुम्हें स्थिर रहना होगा।"

बिलू एक भी शब्द नहीं कह सकी।

अन्त में हँसकर देबू ने उसे खींचकर अपनी छाती से लगा लिया और गाढ़े आवेश से उसे एक बार चूमकर घर से निकल गया।

बाहर दुर्गा और पद्म खड़ी थीं। देबू ने कहा, "मितनी, तुम हो, दुर्गा है—तुम लोग जरा बिलू को देखना।" और फिर चण्डीमण्डप पहुँचकर देबू बोला, "चलिए!"

"ग्रेट!"—नाटकीय ढंग से चण्डीमण्डप में प्रवेश किया हरेन घोषाल ने। उसके हाथ में गेंदा के फूलों की एक अच्छी माला थी। देबू के गले में माला पहनाकर वह उत्तेजित स्वर में चिल्ला उठा, "जय! देबू घोष की जय!"

क्षण-भर में ही मामले की शक्ल बदल गयी।

दरोगा जाने के लिए उतावला हो उठा। फूल की माला और जयकार से देबू की एड़ी-चोटी में एक अजीब सिहरन दौड़ गयी। उसके कलेजे में दुर्बलता का जो क्षीणतम आवेग काँप रहा था, वह भी जाता रहा।...साथ के साथ वहाँ खड़ी जनता की भीड़ ने दरोगा-कान्स्टेबिल की उपस्थिति की परवाह न कर एक स्वर से प्रतिध्वनि की : "जय! देबू घोष की जय!"

धीर और लम्बा डग बढ़ाता हुआ वह आगे बढ़ा।

लक्ष्मी-पूजा की तैयारी करने में बिलू का हाथ नहीं उठ रहा था। एक अन्न, पचास व्यंजन से माँ लक्ष्मी की पूजा—अपने कलेजे में ऐसी पीड़ा लेकर यह आयोजन

वह किस तरह, कैसे करे? किसके लिए लक्ष्मी की पूजा? लक्ष्मी का वास है पुरुष को आश्रय करके। नारायण की बगल में लक्ष्मी का आसन! जब देबू ही आज नहीं, तो...! बार-बार उसकी आँखों से आँसू निकल आते।

लेकिन रांगा दीदी ने आकर कहा, "तू फिकर मत कर, देबू भैया आज ही लौट आएगा। और फिर मेरी ओर जरा नजर उठाकर देख। मेरे तीन कुल में कोई नहीं, मगर फिर भी तो करती हूँ पूजा। तेरी गोदी में सोने का चाँद है, और देबू भी लौट आएगा। तू पूजा न करे, भला यह कैसे हो सकता है? बल्कि मैं लक्ष्मी बिठा जाती हूँ तेरी। चारों तरफ शंख बज रहा है, लक्ष्मी बैठ चुकीं।"

रांगा दीदी ने बड़ी धूम से अपने निपुण हाथों लक्ष्मी बिठायी। लाल रंग के रेशमी कपड़े में कुछ इस ढंग से धान और कौड़ी को ढँका है कि लगता है, सिंहासन पर जैसे कोई वधू बैठी हुई हो।

पद्म तीन बार आयी। दुर्गा तो सवेरे से यहीं बैठी थी। श्रीहरि की माँ और बहू भी आयी थीं।

माँ तो जबानी खोज-पूछ कर गयी। श्रीहरि की बहू अपने साथ एक मर्तबान केला, केले का मोघा ले आयी थी। यह सब श्रीहरि के नये पोखरे के बाँध पर हुए थे। मटर की थोड़ी-सी छीमी और एक गोभी भी लायी थी वह—ये चीजें श्रीहरि लक्ष्मी-पूजा के लिए शहर से लाया था। बहू कह गयी, "सासजी, तुम सोच न करना। वे हाकिम से मिलने गये हैं। ससुरजी को लेकर वे आज ही लौट आएँगे।"

लगभग सभी घर की औरतें आ-आकर बिलू का हाल पूछ गयीं। जगन डॉक्टर की स्त्री पाँच बार आयी। एक-एक करके हरिजन लोग आये। खजूर गुड़ का महालवाला गुड़ दे गया। सतीश से लेकर हर किसी ने छोटे-बड़े लोटे में दूध ला दिया। अब जरूरत नहीं है—यह कहने पर भी किसी ने नहीं सुना, नहीं माना। उत्तर में उदास होकर वे कह देते, "भला हमने कौन-सा कसूर किया है?"

दुर्गा ने कहा, "बिलू दीदी, दूध को गाढ़ा औंटा लो।"

बिलू बोली, "क्या होगा, भला! खराब न हो जाएगा?"

"खराब क्यों होगा? तुम देखना तो भला, गुरुजी ठीक लौटेंगे।"

कई घरों की कुछ कुमारी लड़कियाँ आकर बोलीं, "भाभी घड़े दो। पानी भरकर ला दें।"

नाते में ये सब बिलू की ननद होती थीं। मीठी मुस्कराहट के साथ बिलू ने कहा, "पानी मैं ले आयी हूँ, बहन!...बैठो। जलपान कर लो।"

"नहीं, हम तो काम करने आयी हैं।"

उनकी यह अकपट आत्मीयता बिलू को बड़ी भली लगी। इतने-इतने अपने लोग हैं उसके! इतने अच्छे हैं आदमी!

जब चण्डीमण्डप में तिलकुट भोग का ढाक बजा तो वे लड़कियाँ चली गयीं।

आज काली मैया और महादेव बाबा को तिलकुट का भोग लगेगा। वहाँ भोग लग चुकने के बाद ही घर-घर भोग लगेगा। एक टुकड़ा तिलकुट के लिए बाउरी, डोम, मोची के बच्चे चण्डीमण्डप में भीड़ लगाये बैठे थे। इसके बाद घर-घर पकवान!

बस्ती के लोगों में से बहुतेरे देबू के लिए सेटलमेण्ट कैम्प में गये थे। वे लोग करीब एक बजे लौटे। सभी गम्भीर, चिन्तित थे। अभी तक फैसला नहीं हुआ। लेकिन पता सब चल गया था। अब करें क्या वे! सबसे गम्भीर था श्रीहरि। अमीन ने श्रीहरि को बुलाकर साफ-साफ कह दिया कि देबू की ओर से जो गवाही देगा, उससे बाद में निबटेंगे। कारण, देबू किसी तरह भी क्षमा माँगने को राजी नहीं हुआ।

बुजुर्गों ने राय-मशविरा करके यह तय किया कि किसी भी तरफ से गवाही नहीं देंगे।

कुछ ही लोग घर नहीं लौटे—जगन डॉक्टर, अनिरुद्ध, हरेन घोषाल, द्वारका चौधरी, तारा हजाम। वे लोग प्रायः शाम को घर लौटे—उदास मन, धीरे-धीरे। दुर्गा रास्ते पर खड़ी थी। पूछा, "क्या हुआ डॉक्टर बाबू? क्या बात है चौधरीजी?"

जगन ने कहा, "तमाम दिन बैठाये रखा, शाम को तारीख देकर सदर चालान कर दिया। शरारत की है सबों ने।"

"चालान कर दिया?"

"हाँ! मैं कल ही जाऊँगा। जमानत पर देबू को छुड़ा लाऊँगा।"

बात झूठी थी। देबू को एक साल तीन महीने यानी पन्द्रह महीने की सजा हो गयी थी। जगन कल अपील करने के लिए सदर जाएगा। लेकिन देबू ने अपील की मनाही कर दी है। गवाह की हालत देखकर उसने अपील के नतीजे को भी भाँप लिया था।

जगन ने गाँववालों को भला-बुरा कहा था। द्वारका चौधरी तक अपने को जब्त नहीं कर सके। पोपले मुँह से काँपते होंठों बूढ़े ने कहा, "भगवान इसका विचार करेंगे।"

देबू ने हँसकर कहा, "आपने उस दिन जो कहानी कही थी, उसे भूल गये चौधरीजी? मनुष्य से कदम-कदम पर भूल-चूक होती है। एक बात और है, इन लोगों ने मेरी ओर से गवाही न दी तो विपक्ष की ओर से भी तो न दी!"

अनिरुद्ध चीख उठा था—"देते तो माथे पर बज्जर गिरता!"

जेल की बात वे दबा गये; और ऐसा उन्होंने देबू की स्त्री को ध्यान में रखकर किया था। दुर्गा ने आकर खबर दी—"बिलू दीदी, तुम्हारे पास मेरी माँ सोएगी।"

बिलू ने कहा, "तू ही रह दुर्गा। दोनों जनें गपशप करेंगे। मैं अन्दर सोऊँगी, तू बरामदे पर दरवाजे के पास सो जाना।"

दुर्गा बोली, "नहीं, बिलू दीदी!"

"क्यों?"

"मुझे अपने बिस्तर के सिवा नींद नहीं आती।"

बिलू ने फिर अनुरोध नहीं किया। वह समझ गयी। जरा हँसी, नाराज नहीं हुई। मरने से भी शायद आदमी का स्वभाव नहीं जाता।

दिन तो निकल गया, लेकिन साँझ के बाद समय नहीं कट रहा था। बिलू चुपचाप बैठी सोच रही थी : 'वह' जेल में है। साँझ को तमाम गाँव में शंख बज उठे तो उसे होश आया! घर में माँ लक्ष्मी हैं। धूप-दीप देना होगा! शीतलभोग की तैयारी करनी होगी। अभी किया नहीं है। जाते वक्त दुर्गा घर के चरवाहे को जगा गयी थी। छोरा भरपूर पकवान खाकर एक ओर कपड़ा ओढ़े बेहोश सो रहा था। पेट फूलकर छाती से भी ऊँचा हो गया था, हसफस कर रहा था। अगल-बगल की शंख-ध्वनि से वह भी जागकर बोला, "लगता है, साँझ हो गयी। मालकिन, शंख बजाओ। धूप-दीप दो।"

लम्बा निःश्वास छोड़कर बिलू उठी। छोरा बैठा-बैठा अपने-आप बोलता जा रहा था—सब अपने मालिक देबू की ही बात!

"मालिक बैठे-बैठे हमारी ही बात सोच रहे होंगे, है न मालकिन?"

बिलू ने आँखें पोंछीं।

"अच्छा मालकिन, जेल में क्या लोहे की जंजीर से बाँधकर रखा जाता है? तो भला मालिक सोएँगे कैसे?"

आर्तस्वर में बिलू ने कहा, "अब चुप भी रह। बक-बक मत कर।"

छोरा अप्रतिभ होकर चुप हो गया।

सन्ध्यादीप, धूप, शीतलभोग सजाकर बिलू ने कहा, "मेरे साथ चल; मैं खलिहान में गुहाल में जाऊँगी।"—कहते ही कहते उसे सोये मुन्ने की याद आ गयी। उसके पास कौन रहेगा? और दिन इस समय, 'वह' रहता था। बिलू अकेली ही खलिहान, गुहाल, मोरी के नीचे पानी डालकर साँझ दिखा आती थी। आज चूँकि वह नहीं है, इसलिए नाहक ही डर लग रहा था। उसकी आकस्मिक और असहाय दशा प्रतिपल उसे अभिभूत कर रही थी।

छोरा उठ खड़ा हुआ—"चलो!"

"लेकिन मुन्नें के पास कौन रहेगा?"

"मैं रहता हूँ।"—कहकर वह लेट गया—"इतना डर काहे का? जाओ न, खेतमजूरे सब खलिहान में हैं।"

"खेतमजूरे सब हैं?"

"नहीं? मैं तो यहीं हूँ, गौओं को उन्हीं लोगों ने तो गुहाल में पहुँचाया। रात में एक आदमी यहाँ सोएगा। बारी-बारी से रोज एक आदमी यहाँ रहेगा। मालिक

नहीं हैं...मैं भी रहूँगा मालकिन, मगर रोज एक कहानी कहनी होगी!"

बिलू दीया-बत्ती दिखा आयी। साथ में दो हलवाहे आये। लक्ष्मी के सिंहासन के पास धूप-दीप, शीतलभोग रखकर बिलू ने प्रणाम किया। कामना की—"उन्हें छुटकारा दिला दो, माँ! मंगल करो उनका। मेरे घर स्थिर होकर वास करो!"

छोरे ने कहा, "मालकिन, वह खोयेवाला पीठा और है क्या?"

बिलू ने मुस्कराकर कहा, "है!"

"थोड़ा-सा दो न!"

दोपहर को एक-एक ने भीम-भोजन किया। इन्हें खिलाना बिलू को बड़ा भला लगता। देबू खुद इन्हें खिलाता था। बिलू सामान ले जाती, देबू परोसता।

'आँउरी-बाँउरी' से सब-कुछ बाँधना था। मूठ-लक्ष्मी की रस्सी से सब सामग्री बाँधनी थी। आज का धन रहे, कल का धन आये, पुराने-नये से संचय बढ़े। लक्ष्मी की कृपा से पुराने अन्न और नये वस्त्र से जीवन निश्चिन्त और बेफिक्र कट जाए। तुम अचला होकर रहो माँ, अचला होकर रहो।

रात के अन्तिम पहर में पूस अगोरने की बारी! पूस महीना जब बिदा होकर पश्चिम क्षितिज की ओर कदम बढ़ाता है, पूरब क्षितिज की आभा के पीछे मकर राशि में अवस्थित सूर्य के रथ के साथ उगता है माघ का पहला दिन—और तब, कृषक-वधुएँ वन्दना करके पूस से अनुरोध करती हैं : पूस, तुम मत जाओ, सदा यहीं रहो।

चण्डीमण्डप की चौखण्डी में पूस अगोरा जाता है।

तड़के ही घर-घर में लोग जाग गये। सारे गाँव में चहल-पहल हो गयी। शंख भी बजने लगे।...बिलू भी जगी। मुन्ना भी जग गया। उसे कपड़ा ओढ़ाकर चरवाहे की गोदी में देकर बिलू पूजा की तैयारी करने लगी।

"अरी ओ गुरुआनी, तुम्हारा सब हो गया? आओ!"—पद्म पुकार रही थी।

बिलू ने दरवाजा खोल दिया। बोली, "बस हो गया। धूप के लिए आग हो जाने-भर की देर है।"

चूल्हे में लकड़ियाँ जल रही थीं। पद्म खड़ी रही। बिलू ने धूपदानी में आग लेकर कहा, "चलो।"

चरवाहे बालक ने लालटेन ली। घर में हलवाहे रहे। दुर्गा की माँ सोयी ही रही, उठी नहीं। घर से बाहर होते ही चरवाहा बालक चौंक उठा—"कौन?"

"कौन है रे?"—पद्म ने पूछा।

छोरे ने रोशनी उठायी। कहा, "दुर्गा दीदी है।"

लालटेन की पूरी रोशनी दुर्गा पर पड़ी। ताँत की कत्थई साड़ी पहनावे में, बालों का विन्यास भी बहुत सुन्दर; माथे पर बिन्दी। लेकिन सब जैसे उजड़ा-उजड़ा, बिखरा-बिखरा। वह हाँफ रही थी, आँखों की दृष्टि जैसे उद्‌भ्रान्त।

रोशनी की तरफ मुँह करके खड़ी हुई, लज्जा का लेश तक नहीं। बोली, "झूठ है, बिलू दीदी! झूठ है। गुरुजी को पन्द्रह महीने की सजा हो गयी है।" कहते-कहते वह फफककर रोने लगी।

बिलू अवाक् होकर पत्थर-सी खड़ी रही।

दुर्गा नैश-अभिसार में सेटलमेण्ट कैम्प में कंकना गयी थी। अमीन, चपरासी, यहाँ तक कि कानूनगो में से भी एकाध जने दुर्गा-जैसी औरतों पर छिपकर कृपा किया करते। इस बात में पेशकार तो सबसे तेज था। दुर्गा के पास उसने कई बार बुलावा भेजा था, मगर दुर्गा नहीं गयी! आज वह अपने से गयी थी। वहाँ जाकर बोली, "देखो, हाकिम से कह-सुनकर देबू गुरु को छुड़ा देना होगा।"

पेशकार ने कहा था, "अच्छा कल सवेरे।"

सुबह लौटते समय दुर्गा की कृपा चाहनेवाले पेशकार के ईर्ष्यालु एक चपरासी ने दुर्गा को उसकी भूल बता दी।

दुर्गा रुकी नहीं। चली गयी। वह मन-ही-मन अपनी जाति के बीच एक ऐसी औरत को ढूँढ़ने लगी, जो बाहर से तो देखने में सुन्दर हो, पर रोगवाली हो। और उधर उस समय चण्डीमण्डप में एक स्वर में स्त्रियों के गले से गूँज रही थी—पूस की वन्दना, पूस-बन्धन का गीत।

> पूस—पूस—सोने का पूस।
> आओ पूस आओ; जनम-जनम छोड़कर न जाओ।
> छोड़कर मत जाना पूस, छोड़कर मत जाना,
> पति पूत के साथ भात भर-भर के दोना खाना।
> पूस—पूस—सोने का पूस,
> बैठ फर्श पर घर में घुस,
> सोने का पूस।

पद्म ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "आओ बहन!"

स्वप्न से जागी हुई-सी बिलू बोली, "चलो!"

क्या करे वह? उपाय क्या था? जाते समय वह कह जो गया है, मुन्ने का भार तुम पर रहा और रहा घर-द्वार, मोरी-गाय-गोरू, धान-जमीन—सब-कुछ का भार! तुम मेरे घर की लक्ष्मी हो, तुम घबराओगी तो काम कैसे चलेगा! हर हालत में तुम्हें अचला होकर रहना होगा! बिलू वैसी ही रहेगी, वही रहेगी। उसके घर से सोने का पूस चला जा रहा है—पूजा करके उसे रोकना होगा। पूस, मत जाना, छोड़कर मत जाना। पन्द्रह महीने के बाद तो वह लौट ही आएगा। तब तुम्हें पचास व्यंजन से कटोरा भरकर अन्न दूँगी।

अठारह

देखते-देखते एक साल बीत गया। एक पूस की संकरान्त से दूसरे पूस की संकरान्त। एक साल पूरा हो गया। माघ-फागुन के दो महीने और। उस रोज चैत की पाँच तारीख थी। देबू घोष जंक्शन स्टेशन पर उतरा। चैत की दुबली-पतली मयूराक्षी नदी को पार करके शिवकालीपुर के घाट पर वह जरा खड़ा हुआ। एक साल तीन महीने की लम्बी सजा काटकर वह घर लौट रहा था। पन्द्रह महीने की सजा में कुछ दिनों की छूट मिली थी। अपने गाँव की सीमा पर पहुँचकर अब उसने मुक्ति की साँस ली थी, खुलापन अनुभव किया था।

वह रहा उसका गाँव—शिवकालीपुर। उसके बाद ही महाग्राम, पच्छिम तरफ शेखपाड़ा कुसुमपुर और उसके भी पच्छिम कोठों और पक्के मकानोंवाला कंकना। एकदम पूरब में है देखुड़िया। और दक्खिन में मयूराक्षी के उस पार जंक्शन। शेखपाड़ा कुसुमपुर की मस्जिद के सफेद ऊँचे पाये हरे-भरे पेड़-पौधों की फाँक में से दिखाई दे रहे थे। शिवकालीपुर के पूरब वह रहा महाग्राम—न्यायरत्नजी का घर। महाग्राम के पूरब देखुड़िया। देखुड़िया से जरा पूरब हटकर मयूराक्षी ने मोड़ लिया है। चैत का महीना। दस से ज्यादा बज चुके थे। इतने में ही खासी गरमी हो आयी थी। पूरी की पूरी फसलवाली बैहार अभी लगभग खाली थी। कहीं-कहीं सिर्फ तिल, कुछ आलू और कुछ हरी तरकारी। इस समय की खास फसल तिल ही है। गहरे हरे रंग के पुष्ट पौधे। अब उनमें फूल आएँगे। देबू की चैत-लक्ष्मी का स्मरण हो आया। लक्ष्मी माता ने तिल के फूलों का करणफूल पहना था। इसीलिए, तिल के फूलों का कर्ज चुकाने के लिए उन्हें खेतिहारों के यहाँ आना पड़ा था। तिल के बैंगनी फूलों की अनोखी बनावट याद आयी—'तिल फूल जिनि नासा!'

देबू साल-भर से भी ज्यादा जेल में रहा। वहाँ सौभाग्य से उसे कुछ दिनों के लिए कुछ राजबन्दियों का सम्पर्क मिल गया। उसी सम्पर्क की कृपा से उसका बन्दी जीवन बड़े सुख से न सही, तो आनन्द में जरूर बीता। वह दुबला जरूर हो गया, लगभग सात सेर वजन घटा उसका, लेकिन मन नहीं टूटा। छूटने पर अपने गाँव के पास पहुँचकर भी वह आम लोगों की तरह अधीर आनन्द से दौड़कर या तेजी से नहीं चल रहा था। क्षण-भर को वह रुका। अच्छी तरह चारों ओर देख लिया। शिवकालीपुर साफ नजर आ रहा था। आम, कटहल, जामुन, इमली के पेड़ों की फुनगी नीले आकाश-पट पर चित्र-सी लग रही थी! बाँस की फुनगियाँ ही केवल हिल रही थीं। धीमे-धीमे डोलते हुए उन्हीं बाँसों के पीछे देबू का घर पड़ता था। गाछों की फाँक में से कुछ और घर भी दिखाई दे रहे थे। इधर बाउरी और बजनियों का टोला। वह जो बड़ा-सा गाछ दिखाई दे रहा है, वह है धर्मराजतला का बकुल गाछ। दुर्गा! अहा, बड़ी अच्छी औरत है वह। पहले

वह दुर्गा से घृणा करता था, उसके ठिठोलेपन से खीझ होती थी। बहुत बार उसे उसने रूखी बात भी कह दी थी। लेकिन उसके बुरे दिन में, विपद की घड़ी में दुर्गा नये रूप में प्रकट हुई। इसका पहला आभास जेल जाने के दिन मिला। उसके बाद बिलू की चिट्ठी से बहुत-बहुत बातें मालूम हुईं। हर घड़ी—सुबह से साँझ तक दुर्गा विलू के पास रहती है, दासी-सी सेवा करती है, भरसक बिलू को कोई काम नहीं करने देती। मुन्ने को अपनी छाती से लगाये रहती है। उस स्वैरिणी, स्वेच्छाचारिणी में यह रूप कहाँ था, किस प्रकार से छिपा हुआ था?

वह, वह जो बड़े-से घर के ऊपर का हिस्सा दिखाई दे रहा है, वह हरीश चाचा का घर है। उसी के बाद है भवेश भैया का घर, लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता। और उस तरफ टिन का जो छप्पर धूप में झकमका रहा है, वह है श्रीहरि का घर। श्रीहरि के बाद सब तरह से स्वाहा हुए बेचारे तारिणी का टूटा घर है। उसके बाद रास्ते के एक ओर बस्ती के बीचोंबीच चण्डीमण्डप। उसके बाद हरेन घोषाल का मकान—नहीं, मकान नहीं, हरेन उसे कहता है, 'घोषाल हाउस'! घोषाल भी अजीब ही है। उसके घर के बाहरी दरवाजे पर लिखा है—'पार्लर', एक कमरे में लिखा है—'स्टडी'। देबू हरेन की उस गेंद-माला की बात जीवन में कभी नहीं भूल सकता। घोषाल का पूरा परिचय वह जानता है। मैट्रिक पास किया है मगर मूर्ख के सिवा है वह कुछ नहीं, डरपोक, कायर। ब्राह्मण होते हुए भी वह पातू मोची की बीवी पर आसक्त है। लेकिन उस रोज घोषाल उसे वास्तविक ब्राह्मण-सा लगा था। उसकी माला को उसने पवित्र आशीर्वाद की तरह लिया था, उसी माला ने उसे जाने के समय अनोखी शक्ति दी थी और शायद उसी आशीर्वाद से उसने जेल में उन राजबन्दी बन्धुओं को पाया था।

बन्धु कौन नहीं है? बिलू के पत्र से उसे मालूम हुआ कि उसके गाँव का एक-एक आदमी देवता है। उसे एक गँवई कहावत का मतलब याद आया—*गाँव और माँ समान होते हैं। हाँ, माँ—यह गाँव ही माँ है।* झुककर उसने राह की धूल को अपने माथे से लगाया।

कुछ दूर और बढ़ा तो देखा, टेसू के फूल खिले हैं। लाल टकटक फूल! एक-एक घर में सहजन फला है—बेशुमार। गाँव के उत्तर तरफ पोखरे के बाँध पर पत्तों से सूने सेमल पर भी लाल रंग का समारोह। उसी के पास एक ऊँचे ताड़ पर एक गिद्ध बैठा है। अब साफ नजर आ रहा है—जगन डॉक्टर की खिड़की के पास जो बाँस है उसकी झुकी हुई एक डाल पर हरियलों की पाँत बैठी है। हरे और पीले की मिलावट से अनोखा ही रंग उन चिड़ियों का है, उतनी ही मीठी बोली भी उनकी है--जलतरंग की ध्वनि-जैसी। हवा में आम की मंजरी की महक आ रही थी—चैत में आम के सभी पेड़ों में फल लग गये थे—सिर्फ चौधरी परिवार के खास बगीचे के पेड़ों में चैत में मंजरी आती है! मंजरी की यह गन्ध उस बगीचे से आ रही है।

"गुरुजी!"

किशोर-कण्ठ की अचरज-भरी खुशी की आवाज सुनकर देबू ने उलटकर देखा, पास ही एक मेड़ पर से कालीपुर का सुधीर जा रहा है, द्वारका चौधरी का पोता—बड़े लड़के का लड़का। उसका छात्र था वह।

देबू ने हँसते हुए स्नेह से पूछा, "सुधीर? अच्छे हो?"

सुधीर जल्दी-से नजदीक आया। प्रणाम करके बोला, "जी! आप अच्छे थे सर? अभी आ ही रहे हैं?"

"हाँ, बस चला ही आ रहा हूँ। तुम शायद स्कूल जा रहे हो?"

"जी! आपके घर के सब लोग अच्छे हैं। मुन्ना अब काफी बोलता है। हम लोग प्रायः शाम को वहाँ जाया करते हैं। मुन्ने के साथ खेलते हैं।"

देबू गहरे आनन्द से अभिभूत हो गया मानो। ये लड़के उसे इतना चाहते हैं!

"पाठशाला का नया भवन बना है, सर!"

"अच्छा?"

"जी! अच्छा बना है। तीन कमरे। पॉलिश की हुई मेज-कुरसियाँ।" फिर जरा झिझक के साथ बोला, "आप तो अब स्कूल में नहीं पढ़ाएँगे सर?"

देबू ने एक लम्बी उसाँस ली—"नहीं सुधीर, मैं अब नहीं पढ़ाऊँगा। नये मास्टर कौन आये?"

"कंकना के बाबुओं के नायब के लड़के। मैट्रिक पास हैं। गुरु ट्रेनिंग भी पास की है। लेकिन आप..."

सुधीर की बात खत्म होने से पहले ही एक बहुत ही कम उम्र के भले आदमी ने उधर से सुधीर को पुकारा—"स्कूल जा रहे हो सुधीर? जरा अपनी कॉपी-पेन्सिल तो देना।"

सुधीर ने कॉपी और पेन्सिल निकालकर दी। यह लड़का—हाँ, भलेमानस के बजाय इसे लड़का कहना ही ज्यादा ठीक है—कौन है? उम्र अट्ठारह-उन्नीस की होगी। आँखों पर ऐनक। बदन पर सफेद कुरता। यहाँ का आदमी जरूर नहीं है। खूबसूरत ओजस्वी चेहरा। सुधीर बेशक उसे जानता है। लेकिन उसके सामने ही देबू सुधीर से उसका परिचय नहीं पूछ सका। दूसरा ही प्रसंग उठाया—"चौधरीजी तुम्हारे दादाजी, अच्छे हैं न?"

"जी! वे आपकी कितनी याद करते हैं!"

देबू हँसा। चौधरीजी को वह सदा श्रद्धा करता है। बड़े अच्छे आदमी हैं। वे देबू की याद करते हैं। देबू को खुशी हुई। उसने फिर पूछा, "घर के और-और लोग?"

"सभी सकुशल हैं। सिर्फ मेरी एक छोटी बहन गुजर गयी।"

"गुजर गयी?"

"जी! ज्यादा बड़ी नहीं। एक महीने की थी।"

उस भले आदमी ने सुधीर को कॉपी और पेन्सिल लौटा दी। हँसकर कहा, "बताओ तो, यह संख्या कितनी है?"

संख्या की ओर देखकर सुधीर मुश्किल में पड़ गया।

देबू ने भी देखा—बड़ी लम्बी एक संख्या, कई लाख या हजार करोड़।

भले आदमी ने खुद ही हँसकर कहा, "नहीं बता सके? बाईस हजार आठ सौ छियानबे करोड़, चौंसठ लाख, निन्यानवे हजार।"

अचरज से सुधीर ने पूछा, "क्या?"

"रुपया!"

"रुपया?"

"हाँ! संयुक्त राज्य अमेरिका की खानों और कारखानों से साल में जो उत्पन्न होता है, उसकी कीमत।"

सुधीर हक्का-बक्का रह गया। विमूढ़ की नाईं मुँह ताकता रहा। देबू भी हैरान था—यह अजीब लड़का कौन है?

उस सज्जन ने सुधीर की पीठ पर दो-एक थप्पड़ लगाकर कहा, "अच्छा जाओ! स्कूल जाने में देर हो रही है।"...उसके बाद देबू की ओर ताककर कहा, "आप शायद इसके यहाँ जाएँगे? चौधरीजी के यहाँ?"

देबू को और भी हैरानी हुई—ये तो चौधरीजी को भी पहचानते हैं। कहा, "नहीं, मैं शिवपुर जाऊँगा।"

"शिवपुर में किसके यहाँ?"

"आप क्या सबको पहचानते हैं? देबू घोष को जानते हैं?"

सम्भ्रम के साथ उस युवक ने कहा, "उनका मकान मैं जानता हूँ, उनके छोटे मुन्ने को भी पहचानता हूँ, मगर उनको अभी तक नहीं देखा है। मेरे आने के पहले ही वे जेल चले गये थे। अब आने ही वाले हैं।"

सुधीर ने कहा, "जी, यही तो हमारे गुरुजी हैं।"

"आप!"—युवक की दोनों आँखें आनन्द की उत्तेजना से दमक उठीं, दोनों हाथ फैलाकर वह सादर देबू से लिपट गया। बोला, "ओः देबू बाबू हैं आप! आइए, चलिए, घर चलिए।"

देबू ने पूछा, "आप? आपका परिचय तो..."

सुधीर ने आँखें बड़ी-बड़ी करके सम्भ्रम के साथ कहा, "ये यहाँ नजरबन्द हैं सर!"

"मुझे यहाँ रखा है। अनिरुद्ध कर्मकार के यहाँ बाहरवाले कमरे में रहता हूँ। सुधीर, फौरन भागकर जाओ; इनके यहाँ खबर दो, गाँव में कह दो। एक, दो, तीन! समझो—डाकगाड़ी—तूफान मेल से जा रहे हो!"

सुधीर तीर की तरह निकल गया।

हँसकर उस युवक ने कहा, "शायद समझ गये हैं कि मैं यहाँ नजरबन्दी में हूँ।"

गाँव में प्रवेश करते ही एक छोटी-सी भीड़ से भेंट हो गयी। जगन, हरेन, अनिरुद्ध, तारिणी, गणेश—और भी कई लोग। चण्डीमण्डप में बहुत-से लोग थे। श्रीहरि, हरीश, भवेश आदि बड़े लोग वहाँ थे। सबने उसकी सादर अभ्यर्थना की—"आओ, आओ देवू, बैठो!" देबू ने चण्डीमण्डप में प्रणाम किया। आज श्रीहरि तक ने उसकी खातिर की। रिश्ते में देबू उसका चाचा जरूर है, लेकिन श्रीहरि उम्र में उससे बहुत बड़ा है। तिस पर सम्पन्न होने के नाते श्रीहरि प्रणाम शायद ही किसी को करता है। श्रीहरि ने भी उसे प्रणाम किया।

चण्डीमण्डप से कुछ ही फासले पर उसका घर है। बरामदे के पास ही हरसिंगार का वह पेड़। दरवाजे पर भीड़ लगाये जाने कौन-कौन खड़े हैं।

उसके दरवाजे पर गाँव की औरतें खड़ी थीं। दो कुमारी लड़कियों की कमर पर जल-भरे घट थे। देबू अभिभूत हो गया। उसके स्वागत-अभिनन्दन के लिए गाँववालों में कितना गाढ़ा आग्रह है—कैसा आदर-भरा आयोजन! अचानक शंखध्वनि हुई। देबू ने देखा, एक लम्बी-सी औरत शंख फूँक रही है। देबू ने उसे पहचाना—वह पद्म थी।

घर में दाखिल होते ही मुन्ने को उसके कदमों के पास उतारकर दुर्गा ने उसे प्रणाम किया।

घूँघट काढ़े दरवाजे के बाजू से टिकी खड़ी थी बिलू। मुन्ने को गोदी में उठाकर देबू ने बिलू की तरफ देखा। बुढ़िया रांगा दीदी ने उसका हाथ पकड़कर खींचा—"छोरे को जरा भी अक्ल नहीं। खाक गुरुजी बना है! अरे, पहले इधर आ। अरसिक कहीं का!"

"रांगा दीदी, छोड़ो! प्रणाम कर लूँ।"

"प्रणाम करने की जरूरत नहीं है—चल तू!"—बुढ़िया उसे खींचती हुई अन्दर ले गयी। उसके बाद वह बिलू को खींच लायी—"यह ले!"

उसके वाद बुढ़िया ने वहाँ खड़ी सभी स्त्रियों से कहा, "भई, अब सब घर चलो अभी। चलो, नहीं तो मैं गाली दूँगी!"

स्त्रियाँ हँसती हुई चली गयीं। देबू ने बिलू का हाथ पकड़कर स्नेह से पुकारा—"बिलू!"

बिलू के चेहरे पर आँसू के दाग थे, आँखें बोझिल हो रही थीं। आँखें पोंछकर उसने कहा, "रुको, प्रणाम कर लूँ।"

"मालिक!"—कान तक फैली हँसी हँसकर वह चरवाहा बालक सामने आ खड़ा हुआ। वह हाँफ रहा था—"बैहार में था। सुना तो भागकर आ गया।"—उसने देबू को प्रणाम किया।

"गुरुजी कहाँ हैं?"—अबकी सतीश बाउरी आया। उसके साथ उसके टोले के लोग थे।

"कहाँ हो भई गुरुजी?"

आवाज सुनते ही देबू व्यस्त हो उठा। यह गला था द्वारका चौधरी का।

देबू के जीवन में यह एक अनोखा दिन था। दुःख और गरीबी से जर्जर, नीचता और दीनता से भरे इस गाँव के किस अस्थि-पंजर की ओट में छिपी थी ऐसी सुन्दर, उदार स्नेह-ममता! उसने बिलू से कहा, "जरा बाहर से हो आऊँ। चौधरीजी आये हैं। आदमी को सुख में नहीं पहचाना जाता बिलू, उसे ठीक-ठीक पहचाना जा सकता है दुःख में। पहले मुझे लगता था कि ऐसा स्वार्थी और नीच गाँव दूसरा नहीं है।"

बिलू ने हँसकर कहा, "तुम आदमी कितने बड़े हो, प्यार नहीं करेंगे लोग! पता है तुम्हें—तुम्हारे जेल जाने के बाद जरीब के अमीन, कानूनगो, हाकिम—किसी ने भी किसी को कोई कड़ी बात नहीं कही। 'आप' के सिवा 'तुम' का नाम नहीं। आस-पास के सभी गाँव के लोगों ने तुम्हारी तारीफ की, सबने तुम्हें आशीर्वाद दिया।"

साल-भर में बहुत-कुछ हो गया है। गाँव के एक-एक आदमी आ-आकर एक ही शाम में सब बता गये। जगन ने खबर दी और साथ ही साथ हरेन घोषाल ने हामी भरी—साथ के साथ कुछ-कुछ सुधार-संशोधन भी करता गया।

गाँव में प्रजा-समिति कायम हुई है। कांग्रेस-कमेटी भी बनी है। जगन उसका अध्यक्ष है और हरेन सेक्रेटरी।

हरेन ने कहा, "पहले से ही तय है, लौटने पर तुम इन दो में से एक के अध्यक्ष हो, जिसके भी चाहो। मैं कहता हूँ, तुम कांग्रेस-कमेटी के प्रेसिडेण्ट बनो। लेकिन नजरबन्द यतीन बाबू का कहना है, देबू बाबू प्रजा-समिति के प्रेसिडेण्ट होंगे।

"छिरू पाल अब गण्यमान्य व्यक्ति बन गया है। एक गड़गड़ा खरीदा है; चण्डीमण्डप में दरी-मसनद बिछाकर बैठता है। कमबख्त गाँव का गुमाश्ता भी बन गया है, गुमाश्तागीरी ले रखी है। महाजन तो था ही, ऊपर से गुमाश्ता बन बैठा। गाँव का सत्यानाश कर दिया।

"जमींदार की हालत इस समय खराब है। श्रीहरि के पास रुपये हैं। वसूली हो या न हो, श्रीहरि सारे रुपये देगा—इसी शर्त पर जमींदार ने श्रीहरि को गुमाश्तागीरी दी है। श्रीहरि आजकल एक ढेले से दो चिड़ियों का शिकार करता है। बकाया लगान के लिए नालिश का मौका है। लोगों की जमीन नीलाम पर चढ़ाकर सूद-मूल सहित अपना पावना वसूल कर लेता है। सूद-मूल की वसूली के सिवा भी उसे और मोटा लाभ रहता है।

"गणेश पाल की जोत नीलाम हो गयी। उसे खरीदा श्रीहरि ने। बेचारे गणेश के पास अब सिर्फ कुछ बीघे जमीन रह गयी है।

"गरीब तारिणी का घर भी श्रीहरि ने खरीद लिया, वह अब उसके गुहाल में शामिल हो गया है। तारिणी की स्त्री सेट्लमेण्ट के एक चपरासी के साथ भाग गयी। तारिणी मजदूरी करता है, उसका लड़का जंक्शन स्टेशन पर भीख माँगता है।

"पातू मोची की देवोत्तर जमीन जाती रही। उसके लिए नालिश-फौजदारी की जरूरत नहीं हुई। सेटलमेण्ट में ही वह जमीन जमींदार के खतियान में चढ़ गयी। पातू ने खुद ही यह बात मान ली थी कि अब बाजा नहीं बजाता, बजाना भी नहीं चाहता।

"अनिरुद्ध की जमीन नीलाम पर चढ़ गयी है। अनिरुद्ध अब शराब पीकर भटकता चलता है। कभी-कभी दुर्गा के यहाँ भी जाता है। उसकी बीवी भी पागल-सी हो गयी थी। अब कुछ अच्छी है। दुर्गा के सहारे ही दरोगा ने नजरबन्द को रखने के लिए अनिरुद्ध का कमरा किराये पर लिया है। उसी किराये की आय से उसकी गिरस्ती चलती है।"

देबू ने कहा, "लुहार-बहू को आज मैंने देखा। शंख फूँक रही थी।"

जगन ने कहा, "हाँ, अब कुछ अच्छी है। कुछ क्यों, यतीन बाबू के आ जाने के बाद से ही बहुत अच्छी है।"—होठ टेढ़ा करके वह जरा हँसा।

हरेन ने दबी आवाज में कहा, "मेनी मेन से—समझा—यतीन बाबू एण्ड लुहार-बहू..."

देबू यकीन नहीं कर सका। झिड़ककर बोला, "छिः हरेन! क्या कह रहे हो!"

"यस! मैं भी वही कहता हूँ कि यह नहीं हो सकता। यतीन बाबू लुहार-बहू को माँ कहता है।"

उसके बाद फिर बोला, "लेकिन यतीन बाबू है बहुत गहरा आदमी। लाख कोशिश की लेकिन बमवाला फार्मूला उससे नहीं ले सका।"

हरीश और भवेश के आ जाने से उन लोगों की बातचीत बन्द हो गयी। जरा देर में वह उठकर चला गया।

हरीश ने कहा, "भैया देबू, शाम को एक बार चण्डीमण्डप में आना। हम लोग आज-कल वहीं आते हैं। दस-पाँच के साथ श्रीहरि भी बैठता है। रोशनी, तम्बाखू, पान—सब-कुछ का इन्तजाम है। श्रीहरि अब बिलकुल नया आदमी है। समझ गये?"

भवेश ने कहा, "हाँ, हम लोगों के लिए दोनों शाम चाय तक का बन्दोबस्त कर रखा है श्रीहरि ने! समझे?"

देबू ने उनसे भी बहुत-सी बातें सुनीं।

गाँव के पाँच-जन के साथ उठने-बैठने की सुविधा के लिए ही श्रीहरि ने पाठशाला के लिए अलग जगह की व्यवस्था कर दी है। जगह उसने जमींदार से दिलवा दी है। वह यूनियन बोर्ड का मेम्बर है, दीवार के खर्च की उसने मंजूरी करा

दी है—खुद नकद पचीस रुपये दिये हैं। इसके सिवा श्रीहरि ने लकड़ी, पुआल, दरवाजा, खिड़की के लिए भी लकड़ी दी है।

अब दोनों शाम चण्डीमण्डप में मजलिस जमने लगी है, यह देखकर श्रीहरि के विरोधी दलवाले कुढ़न से जल गये। वे उसकी निन्दा करते फिरते हैं। लेकिन उससे श्रीहरि का कुछ होता-जाता नहीं। उसकी गुमाश्तागीरी पर आँच लाने के लिए ही लोगों ने प्रजा-समिति, कांग्रेस-कमेटी खड़ी की है, जिसमें देबू उन सबों में शामिल न हो।

तारा हजाम ने और भी भेद की खबर बतलायी—"जमींदार यह सोच रहे हैं कि इस गाँव का बन्दोबस्त करें या नहीं। श्रीहरि इसे निगलने के लिए 'हाँ' किये बैठा है। अगर बन्दोबस्ती कायम हो गयी तो श्रीहरि बाबा शिव के अधवने मन्दिर को पक्का बनवा देगा—चण्डीमण्डप के अठपलिए पर पक्का नाट्यमन्दिर बनवाएगा। श्रीहरि के यहाँ अब रसोइया है, लड़का खेलाने के लिए नौकर है।"

और अन्त में तारा ने कहा, "हरिहर की दो लड़कियाँ—जो दाई का काम करने के लिए कलकत्ते गयी थीं, वही दोनों हैं। यानी मतलब समझा आपने? बदस्तूर बड़े आदमी की बात है—छिरू ने उन दोनों को रख लिया। समझ गये, बिलकुल अमीरी ठाठ! जब छोटी लड़की आयी तो बेहद दुबली, मरी-मरी-सी, सन के फूल-जैसा रंग! धीरे-धीरे पता चला—कलकत्ते में!—समझ गये?

"मतलब कि उस लड़की ने गर्भपात करवाया था। इसलिए गाँव के समाज ने उन लोगों को निकाल दिया। श्रीहरि ने दया करके उन्हें पनाह दी, उसी के अनुरोध से समाज ने उन लोगों की भूल-चूक माफ कर दी। कहा, आखिर दो-दो लड़कियों को रोटी-कपड़ा, शौक की चीजें...कोई आसान बात नहीं देबू भाई।"

बूढ़े चौधरी ने केवल अपना कुशल-क्षेम कहा, देबू से जेल के सुख-दुःख की खबर पूछी। अन्त में आशीर्वाद दिया, "गुरुजी, तुम दीर्घजीवी होओ! देखो, अगर बन सके तो श्रीहरि से डॉक्टर का, खासकर अनिरुद्ध का मेलमिलाप करा दो। बेचारा अनिरुद्ध तो बरबाद हो गया। इसके बाद सर्वनाश हो जाएगा।"

इस बात का अर्थ व्यापक है। रामनारायण ने आकर कहा, "कुशल से हो देबू भाई? मेरी माँ चल बसीं।"

वृन्दावन ने आकर बताया, "चावल के कारबार ने काफी रुपये का नुकसान दिया देबू भाई! जिन लोगों ने चावल का कारबार किया था उन सभी ने नुकसान उठाया। जंक्शन के रामलाल भगत ने तो लाल बत्ती जला दी।"

बूढ़ा मुकुन्द एक नन्हे बच्चे को गोदी में ले दिखाने आया था। कहा, "यह हरेन्द्र का बच्चा है!"

मुकुन्द का लड़का गोविन्द, गोविन्द का बेटा हरेन्द्र, मतलब कि हरेन्द्र का बेटा मुकुन्द का परपोता हुआ।

साँझ को श्रीहरि स्वयं आया। अब श्रीहरि सम्भ्रान्त व्यक्ति है। लम्बा-तगड़ा मजबूत पेशियोंवाला जो खेतिहर नंगे बदन हाथ में कुदाल लिये घूमता फिरता था—अपनी दैहिक शक्ति की दुर्दान्तता से इठलाता फिरता था, मामूली-सी बात पर बल प्रयोग करता था, जबरदस्ती दूसरे की जमीन का थोड़ा-सा हिस्सा हड़प लेता था और भोंड़े स्वर से ऐलान करता था—वही अब गाँव का प्रधान व्यक्ति है, उससे बड़ा दूसरा नहीं। उस छिरू पाल से इस श्रीहरि की कोई समानता नहीं। श्रीहरि बिलकुल अलग आदमी है। पैरों में अच्छी-सी जूती, बदन पर फतुही, फतुही पर चादर, गम्भीर संयत मुद्रा। आज वह गाँव का गुमाश्ता है—महाजन। दूसरे शब्दों में कहें तो आज वह गाँव का अधिपति है।

"देबू चाचा हो!"—हँसता हुआ आकर खड़ा हुआ श्रीहरि।

"आओ श्रीहरि, आओ!" देबू ने आदर से उसका स्वागत किया। वह निकलना ही चाह रहा था। अनिरुद्ध के यहाँ जाने की इच्छा थी। नजरबन्द यतीन बाबू उसे चण्डीमण्डप तक पहुँचाकर ही लौट गया था, उससे मिलने के लिए देबू उतावला हो उठा था। अनिरुद्ध भी झलक दिखाकर चला गया था। वह घोर शराबी बन गया है। दुर्गा के यहाँ रात बिताता है। उसके यहाँ के भोजन से भी अरुचि नहीं होती—इधर जगह-जमीन नीलाम पर चढ़ चुकी है।

अन्नी भाई के लिए दुःख होता है। हो क्या गया बेचारा! देबू को एक बात याद आयी, चौधरीजी ने ही कही थी—"गुरुजी, माँ लक्ष्मी का ही नाम श्री है। जिसके घर लक्ष्मी है उसीके श्री है, जिसके मन में, चेहरे पर, स्वभाव में बल है—वही श्रीमान्। श्रीहरि में तो परिवर्तन होगा ही। और फिर अभाव से ही देखो अनिरुद्ध की यह दशा है। तिस पर स्त्री की ऐसी बीमारी से वह और भी ऐसा हो गया।"

श्रीहरि ने उसे पुकारकर कहा, "तुम्हें बुलाने आया हूँ। चलो चाचा, चण्डीमण्डप में चलो। आज-कल वहीं बैठा करता हूँ। चाय तैयार है। चलो।"

देबू 'ना' नहीं कह सका। चण्डीमण्डप में बैठकर श्रीहरि बहुत-सी बातें कह गया—"यहाँ बैठने के लिए ही गाँव का स्कूल का अलग भवन बनाया गया है। स्कूल, भवन का फर्श, बरामदा—सबको पक्का बनवा देने का इरादा है। एक डॉक्टर से बातचीत हुई है। उसे लाकर गाँव में जमाना है। जगन से अब काम नहीं चलता। उसके पास दवा नहीं है, सब पानी, सब धोखा।"

देबू चुप रहा।

सेटलमेण्ट की 'खानापुरी' और 'बुझारत'—ये दो तो खत्म हुए। फिर कोई झमेला नहीं हुआ। श्रीहरि ने अस्वीकार नहीं किया कि जो कुछ हुआ, देबू की ही वजह से हुआ। वह बोला, "समझे चाचा, अन्त में ऐसा हुआ कि अमीन और कानूनगो 'आप' के सिवा बात ही नहीं करते! हम सब तुम्हारा नाम लिया करते थे। अब रही धारा तीन और धारा पाँच।"

श्रीहरि ने यह भी बताया कि उसने देबू की जमीन-जायदाद सब ठीक से सेटलमेण्ट में रिकॉर्ड करा दी है। यहाँ तक कि जमीन के जिस टुकड़े को कंकना के जमींदार का कारिन्दा हड़प गया था, उसे भी निकाल लिया।

"उसे भी निकाल लिया!" देबू अचम्भे में पड़ गया।

"क्यों नहीं निकालता! जमींदारी सिरिश्ते का कागज-पत्तर तो हमारे ही हाथ है और उसपर गुमाश्ताजी का पक्का दिमाग।"

मैंने दासजी से कहा, "देबू चाचा ने इलाके-भर की भलाई की, बाघ का दाँत तोड़ गया वह और उसकी जमीन कुत्ते खाएँ यह नहीं होगा। हम उसका इतना भी न करें, यह नहीं होने का। और फिर..."

"और फिर"—श्रीहरि ने आसमान की ओर नजर करते हाथ जोड़कर प्रणाम किया—"भगवान ने जब मनुष्य का जनम दिया है, तो उपकार के सिवा किसी का अपकार नहीं करूँगा, चाचा! देखो न, हरिहर की दोनों लड़कियों के लिए कैसा घिनौना सब हुआ! कलकत्ते में तो उन्होंने रजिस्टर में नाम लिखाया था। अन्त में एक काली करतूत करके लौटीं। गाँववालों ने उन्हें समाज से निकाल दिया। मैंने समझा-बुझाकर उन्हें अपने ही यहाँ जगह दी। लोग-बाग तरह-तरह की बातें कहते फिरते हैं। सो मैं झूठ नहीं कहूँगा, तुम महज मेरे चाचा ही नहीं, मित्र भी हो। एक ही साथ हम पढ़े हैं। जिन लोगों ने बाजार के रजिस्टर में नाम लिखाया था, उनको मैंने अगर उसी काम के लिए रखा है, तो कौन-सी गलती की है, कहो?"

गड़गड़े का नरचा देबू की ओर बढ़ाते हुए श्रीहरि ने कहा, "पियो चाचा!"

"मैंने जेल में बीड़ी-तम्बाखू सब छोड़ दिया है!"

"अच्छा किया!"

श्रीहरि की बात खत्म ही नहीं होना चाह रही थी। किसके विपद के समय, किसकी भलाई के लिए उसने कितना रुपया दिया और वह अब किस प्रकार देने का ही नाम नहीं लेगा—अब उसने इस तरह के किस्से कहने प्रारम्भ किये।

श्रीहरि को दोष नहीं दिया जा सकता। रुपया रहना न तो पाप है, और न ही गैरकानूनी। विपत्ति के समय किसी को रुपया देने से वह आदमी उपकार ही मानता है, मगर जब सूद-सहित अदायगी का वक्त आता है, तो उसका भौंड़ा रूप जाहिर होता है, यह देखकर कर्जदार आतंकित होता है। महाजन अपने क्षेत्र-विशेष

में संकुचित होने पर भी सभी क्षेत्र में नहीं होता। मगर इसका जिम्मेदार कौन है, यह कहना कठिन है। सूद के लिए महाजन को इनकमटैक्स देना पड़ता है, पावने की वसूली के लिए अदालत में फीस देनी पड़ती है, यूनियन को चौकीदारी टैक्स देना पड़ता है। श्रीहरि वह सब कैसे छोड़ दे?

देबू ने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा। श्रीहरि को सोचते-सोचते उसे बचपन की एक बात याद आ गयी—कर्ज के लिए कंकना के बाबुओं ने जायदाद कुर्क करायी थी। वह सिहर उठा। कर्जदार की दशा देबू की आँखों में तैरने लगी। जमीन गयी, पोखर-बगीचा गया, खेत-खलिहान गया, इसके बाद उसके ढोर-डंगर गये। फिर बरतन-भाँड़ों की बारी आयी। इसके बाद सब साफ मैदान। कोई आधार नहीं, कोई सहारा नहीं, बस उपवास। तीन बरस के अन्तर-अन्तराल में हैण्डनोट बदल-बदलकर एक सौ रुपये अनायास ही कई हजार की रकम हो गये—वह भी कानून-सम्मत। जब कानून-सम्मत है, तब वही न्याय है। यही अगर न्याय है तो संसार का आशय क्या?

उसकी चिन्ता को तोड़ते हुए श्रीहरि ने कहा, "अब देखो, सेटलमेण्ट की धारा तीन और धारा पाँच का कोर्ट आ रहा है। और इधर प्रजा-समिति कायम करके डॉक्टर ने नारा लगा दिया है—इस गाँव की सारी जमीन मुकर्ररी जमा है। इस मौजे में कभी भी लगान नहीं बढ़ा। मैं तुम्हें कागज दिखाऊँगा, बारह सौ सत्तर साल का कागज—हर जमा में बढ़ोतरी का दावा है। एक भी जमा मुकर्ररी नहीं साबित होगा। जमींदार ज्यादा का दावा करेगा, शायद हो कि वे लोग हंगामा भी करें। मुकदमा होगा। कानूनन जमींदार का जो पावना है वह उसे मिलेगा ही। और कानूनन जब उसका पावना है, तो उसका कसूर क्या है, बताओ भला! पचास वर्षों में फसल की कीमत तीन गुनी बढ़ गयी है। फिर जमींदार को क्यों नहीं मिलेगा?"

देबू से इस बात का कोई जवाब देते नहीं बना। फसल का दाम सचमुच ही बढ़ गया है। लेकिन उससे रैयत की आय नहीं बढ़ी, उसे बढ़ी हुई बाजार दरें खा गयीं। बढ़ा सबके लिए तो अभाव ही; और उसके ऊपर से लगान की बढ़ोतरी।

श्रीहरि ने कहा, "सुनो चाचा, देव के लिए काफी कष्ट उठा चुके। अब तुम उस रास्ते में न जाओ; खाओ-पीओ, काम-काज करो, लोगों की भलाई करो। लोग तुमसे बड़ी-बड़ी उम्मीदें रखते हैं, हम भी रखते हैं। आज दरोगा ने मुझसे यही कहा। कहा, घोष, तुम गुरुजी को मना कर दो, यह सब काम न करें। सो तुम एक बाण्ड पर सही कर दो, वे तुमको सभी झमेले से निकाल देंगे। स्कूल की नौकरी—वह तो तुम्हारी ही है। बाण्ड लिख देने पर मिल जाएगी। और हाँ, उस नजरबन्द छोरे से तुम मिला-जुला मत करना! समझ गये?"

अबकी देबू ने हँसकर कहा, "सब समझ गया!"

"तो फिर कल ही चलो मेरे साथ!"

"नहीं, यह मुझसे न होगा छिरू! मैंने कुछ अन्याय थोड़े ही किया है?"

"मगर तुम यह ठीक नहीं कर रहे हो चाचा! खैर, दो दिन सोच देखो।"

"अच्छा!"—हँसते हुए देबू उठकर चला आया। चण्डीमण्डप से रास्ते पर उतरते ही झुककर नमस्कार करके कुछ लोग उसके सामने खड़े हो गये।

"सतीश?"

"जी हाँ!"

"क्या बात है?"

"जी, आपको एक बार हमारे टोले में पधारना ही होगा।"

"क्यों, बात क्या है? घेंटू-गान? आज रहने दो सतीश, फिर कभी।"

"जी, आपको ही सुनाने के लिए तो हमने इन्तजाम किया है!"—फिर फुसफुसाकर कहा, "नजरबन्द बाबू भी बैठे हैं, डॉक्टर बाबू भी हैं!"

"नजरबन्द बाबू भी हैं?"

"जी!"

"अच्छा! तो चलो।"

चैत महीने में घण्टाकर्ण की पूजा। घेंटू-पूजा पंजिकावाली घण्टाकर्ण-पूजा नहीं है। पंजिका में जिस घण्टाकर्ण की पूजा दी जाती है, वह चेचक-निवारक महाबली घण्टाकर्ण की पूजा है। यह घण्टाकर्ण या घेंटू-पूजा गाजन का एक अंग है। घण्टाकर्ण एक पिशाच था—शिव का भक्त और विष्णु का विरोधी। साधना द्वारा सिद्धि-लाभ करके उसने शिव और विष्णु दोनों की ही कृपा प्राप्त की थी। इसी आधार पर पिशाच घण्टाकर्ण की पूजा बंगाल की नीच जाति के लोग करते हैं। पूरे महीने द्वार-द्वार घेंटू-गान गाते फिरते हैं; दाल-चावल माँगकर गाजन के समय समारोह करते हैं।

चैत की साँझ। धर्मराज की वेदी, बकुल पेड़ के नीचे महफिल लगी। बकुल की गन्ध से वह जगह महमहा रही थी। आसमान में चाँद था—अँजोरिया पाख की द्वादशी। एक तरफ औरतें, दूसरी तरफ पुरुषों का जमघट। दोनों के बीचोंबीच बैठे थे नजरबन्द बाबू, गुरुजी, डॉक्टर बाबू, हरेन घोषाल। चार मोढ़ों का इन्तजाम कर लिया था उन लोगों ने। बसन्त की साँझ की चाँदनी—आकाश से धरती तक मानो स्वप्न कुहेलिका का एक जाल-सा बिछा था!

देबू को याद आया, बचपन में वे सब यहाँ घेंटू-गान सुनने को आया करते थे। ऐसी ही चाँदनी में महफिल जमती थी। जाते समय मौलसिरी के फूल चुनकर ले जाते थे सब। उस समय सतीश आदि की नयी जवानी—वही सब गाते थे। बाकी लोग दुहारी देते, नाचते। उन दिनों घेंटू की महफिल जमती खूब थी। कितने लोग

होते थे। उसके मुकाबले यह महफिल बहुत छोटी थी। खास करके पुरुषों की जमात छोटी थी। देबू ने कहा, "मगर सतीश, तब-जैसी महफिल नहीं है तुम लोगों की!"

सतीश ने कहा, "जी, टोले के चौथाई लोग भी अभी नहीं आये हैं।"

"क्यों? कहाँ गये हैं लोग?"

"रोटी-रोजी के लिए! गाँव में मजूरी नहीं मिलती; गिरस्तों की हालत यह नहीं रही, लोग मजूर नहीं रख सकते। हम लोगों के भी बाल-बच्चे बढ़ गये हैं। अब दूसरे गाँवों में भी नौकरी करनी पड़ती है। काम-काज करके लौटने में एक पहर रात हो जाती है। ऐसे में घेंटू-गान कब गाएँ, कब सुनें, कहिए?"

जगन ने कहा, "तुम लोगों के पेट में आग ही आग लग गयी है। कम्बख्त पेट किसी तरह भरता ही नहीं!"

सतीश ने हाथ जोड़कर कहा, "आप ठीक ही कह रहे हैं डॉक्टर बाबू, पेट में आग ही लगी है। औरतें तक रोज मेहनत-मजूरी करने जाया करती हैं। क्या करें, कहिए? पंचायत बैठायी, मनाही की। मगर कौन सुनता है? दौड़ रहे हैं सब! और अभाव जो हुआ है—!"

बीच में टोककर यतीन ने कहा, "लो, शुरू करो!"

गाने-बजानेवाले तो तैयार थे ही। शुरू कर दिया उन्होंने।

ढोलक के साथ मजीरा ठनक उठा—

शिव-शिव राम-राम!

ताली बजाकर नाचते हुए बच्चों ने दुहराया—

शिव-शिव राम-राम।

गायक गाने लगे—

एक घेंटू के बेटे सात।
सात बेटों की क्या है बात।
एक बेटा महन्त जी।
ओ महन्त जी सुनो।
चलो—चलो, फूल चुनो।
जितने फूल लाएँगे।
घेंटू को सजाएँगे।

लड़के ताली बजा-बजाकर नाचते हुए हर पंक्ति के बाद दुहराते गये—

शिव-शिव राम-राम।

इसके बाद दूसरा गीत शुरू हुआ। यहीं की खास घटना पर इन्हीं के द्वारा रचा गया गीत। मयूराक्षी की बाढ़ पर—

यह पानी था छिपा कहाँ तो!
हाय, पूरा बंगाल उस पानी में बह गया—लो!

बहुत दिन पहले, जब रेल की पटरियाँ बिछी थीं, तब का गीत—

साहब ने राह बिछायी रे,
छह माह की राह कल की गाड़ी
पल में तै करे।

सूखा पड़ा था कभी, उसका गीत—

ईसान कोण में मेघ घिरा है, किया दैव ने सुक्खा।
एक चिलम तम्बाखू दो भई, साथ मेरे है हुक्का।

उसके बाद उन लोगों ने शुरू किया—

देश में आया हाय, जरीब।
राजा काँपे, परजा काँपे बालक वृद्ध गरीब।

लड़कों ने गाया—

हाय रे हाय, इसका कौन उपाय?
प्राण जाय तो फिर भी जानूँ, मान बचाना दाय!

गायक गाने लगे—

आये पिउन अमीन अनेकों, आया कानूनगो
महादेव बाबा की सब मिल मन्नत मानो, लो!
मान अब रहना मुश्किल।

लड़कों ने गाना शुरू किया—

हाय बाबा, करें क्या उपाय?
घोड़ा चढ़कर हाकिम आया, साथ लगा पेशकार,
उड़ा प्राण-पंछी पिंजड़े से छाती के लाचार।
मान अब रहना मुश्किल।
तम्बू आया, कुरसी आयी, कागज गाड़ी-गाड़ी।
चालीस मन जंजीर भूत की होवे जैसे नाड़ी
धान अब बचना मुश्किल।
तीन टाँग की मेज के ऊपर लगी हुई दुरबीन,
यहाँ-वहाँ गाड़े चलता चीना माटी का पीन,
प्राण अब बचना मुश्किल।
लाल गोल आँखें, घूमें रह-रहकर जैसे तारे

दाँत कटाकट करके बोले, ऐ बे उल्लू, जा रे।
कली में धँसे न धरती।
देबू घोष गुरुजी ठहरे ओजस्वी विद्वान
उन्हें जान से कहीं अधिक प्यारा है अपना मान
शान किसकी क्या करती।
कानूनगो कर बैठा उनको जैसे ही तुम-ताम
दिया उन्होंने रे-बे से झट उसका दूना दाम
उन्हें परवा न किसी की।
देबू के खेतों में सीकड़ भारी चालीस मन,
खींचे लिए अमीन चला झन-झन-झन-झन-झन-झन।
खीस से जला उसी को।

देबू हँसा। बोला, "यह सब बनाया किसने सतीश?"

यतीन मुग्ध होकर सुन रहा था। गायकों ने उसके बाद की घटना का भी हूबहू वर्णन किया। गाया—

गिरफ्तार कर लिया दरोगा ने देबू को आकर
बोला, कानूनगो से माफी अभी माँग लो जाकर
कह दिया देबू ने 'ना'।
पड़ी रही घर सोने की प्रतिमा-सी प्यारी नारी,
खिले फूल-से कोमल मुन्ने की न सुनी किलकारी
नहीं की कुछ भी परवा।

आँखें पोंछते हुए दुर्गा ने कहा, "तुम पत्थर हो गुरुजी! उफ्, वह भी क्या दिन था!"—न केवल दुर्गा, बल्कि जितनी स्त्रियाँ वहाँ थीं, सब आँचल से आँखें पोंछने लगीं। उस दिन की याद उन्हें थी।

गायक गाने लगे—

पहन फूल की माला देबू जेल चले हँस-हँसकर,
अधम सतीश झुका आ के उनके पावन पद तल पर,
देवता ही तो हैं वे।

गीत खत्म हो गया। सतीश ने आकर देबू को प्रणाम किया। देबू का हृदय भी उच्छ्वसित हो उठा। वह बोल नहीं पाया, स्नेह से सतीश को पकड़कर उठा लिया।

जगन ने कहा, "तुझे मैं एक मेडल दूँगा, सतीश!"

हरेन ने कहा, "अरे हाँ सतीश, माला तो मैंने दी थी, लेकिन तेरे गीत में यह बात तो छूट ही गयी? माला है, गला है—मैं ही नहीं? वाह रे वा!"

जैसे सपने से आच्छन्न हो, यतीन इस तरह उठ खड़ा हुआ। उसे सारा आयोजन ही अनोखा लगा। मन-ही-मन उसने सतीश को नमस्कार किया। कहा, "अपने गीत मुझे लिख दोगे सतीश?"

"जी," सतीश अप्रतिभ-सा हँसने लगा—"आप लिख लीजिएगा?"

"हाँ!"

"सच कह रहे हैं, बाबू?"

"हाँ-हाँ, सच!"

चुपचाप खेल गयी हँसी से सतीश का मुँह भर गया। वह निहाल हो गया।

देबू ने कहा, "आज तो आपसे बातें नहीं हो सकीं। कल..."

यतीन ने कहा, "बात तो हो चुकी है। आलोचना अभी बाकी है। कल मैं ही आपके घर आऊँगा।"

उन्नीस

एक ही दिन। सिर्फ एक दिन के लिए देबू, केवल देबू ने शिवकालीपुर का एक अनोखा रूप देखा। और, रूप ही नहीं, उसका स्पर्श, उसका स्वाद. एक दिन के लिए देबू के सामने सब-कुछ मधुमय हो उठा। लेकिन दूसरे ही दिन से फिर वही पुराना शिवकालीपुर। वैसे ही दीन-हीन हिंसा-जर्जर लोग, रोग-दुःख, गरीबी से घिरा गाँव। कल ही गाँव के पेड़-पौधों, लता-पत्ता, फल-फूलों में देबू को जो एक सर्वथा नयी माधुरी दिखाई दी थी, देर से फलनेवाली आम्र-मंजरी की सुगन्ध से उसने जिस तृप्ति का अनुभव किया था, आज उसका कुछ भी नहीं था।

अपने बरामदे में बैठा वह इधर-उधर की बिखरी-बिखरी बहुत-सी बातें सोच रहा था। देखा, गाँव में सब कहीं धूल ही धूल भरी है, जिस रास्ते सब कोई जाते-आते हैं वहाँ तो टखने-टखने तक हो गयी है! गाँव में इतनी धूल? पोखर सूख आया है, पानी सड़ रहा है! गाँव में पानी की कमी हो आयी। जेठ-बैसाख में गाय-गोरू, पेड़-पौधों के लिए कष्ट की सीमा नहीं रहेगी। घर में बहुत-से पौधे हैं, रोज-रोज पानी चाहिए!—और, पेड़-पौधे लगाने से लाभ भी क्या? दीवार पर कोंहड़े की जो लतर फैली है, उसमें कई कोंहड़े लगे थे। कल रात को तीन कोंहड़े कोई तोड़ ले भागा! घर के चरवाहे ने वह लतर लगायी थी—वह अजाने चोर को जोर से गालियाँ देने लगा।

वह छोरा अपनी तनखाह और कपड़े के लिए उतावला हो गया है। बिलू की साड़ी भी फट गयी है। खुद के लिए भी कपड़ा चाहिए। जैसे भी पहनो, कपड़ा चैत में फटेगा ही—यह कहावत यों ही नहीं है। किया क्या जाए? डाकघर में जो रुपये जमा थे, चुक गये। मन में उठते विचारों का तार टूट गया; कहीं कुछ शोर हो रहा था।

अरे, यह क्या? कहीं लोग गाली-गलौज कर रहे हैं, झगड़ रहे हैं। उनमें एक आवाज तो शायद रांगा दीदी की है। बुढ़िया को किससे क्या हो गया? उसने बिलू ही से पूछा, "यह रांगा दीदी किससे उलझ पड़ी?"

बिलू ने हँसकर कहा, "किसी से उलझी नहीं है। बुढ़िया अपने बाप को और देवता को गाली दे रही है। आजकल रोज ही सवेरे इसी तरह गाली दिया करती है। बुड्ढी हो गयी—अकेले काम-काज करने में तकलीफ होती है, इसीलिए सवेरे उठते ही रोज गाली देती है। बाप को कहती है—राच्क्षस, जमीन-जायदाद सब भकोस गया; और देवता को कहती है—नजरखौका, अन्धे हो जाओ!"

देबू हँसा। बोला, "और भी तो कोई गाली बक रही है! काँसे-सी टन्‌टन् आवाज!"

"वह पद्म है। अनिरुद्ध की बहू।"

"अनिरुद्ध की बहू?"

"हाँ, वह शायद हमारे जेठ के बेटे यानी श्रीहरि घोष को गाली दे रही है। बीच-बीच में देती है इसी तरह। शायद आज भी दे रही है। बीच में तो पागल-सी हो गयी थी। अब कुछ अच्छी है। अनिरुद्ध तो एक प्रकार से निकम्मा ही हो गया। ओह, कभी-कभी जब पीकर वह लोहे का डण्डा लिए घूमता है—चीखता है, खून कर देंगे। जिस-तिसके घर खाता है।"

"जिस-तिसके माने दुर्गा के यहाँ न?"

"हाँ!"

"छिः! छिः! छिः! दुर्गा का यह दुर्गुण नहीं गया। इसी एक दोष से उसके सारे गुण जाते रहे!"

बिलू ने कहा, "पीकर नशे में चूर हो 'खाने को दे' 'खाने को दे' करता है। खाने के लिए हंगामा मचाने से भला दुर्गा क्या करेगी, तुम्हीं कहो? अनिरुद्ध कुछ दिन तक रात वहीं बिताता जरूर था। लेकिन आज-कल दुर्गा उसे रात को अपने यहाँ नहीं घुसने देती। मगर फिर भी वह कभी उसके आँगन में, कभी बगीचे में, कभी रास्ते में, कभी और कहीं पड़ा रहता है।"

"क्यों नहीं, अब तो अनिरुद्ध के गाँठ में पैसे नहीं हैं! अब दुर्गा..."

"न, न, ऐसा न कहो! दुर्गा ने अनिरुद्ध से कभी पैसा नहीं लिया है। बल्कि उसने समय-समय पर दो-चार रुपये दिये हैं। उसने रुपये मेरे ही हाथ से दिये हैं।

कहा था—बिलू दीदी, ये रुपये लुहार-बहू को दे देना। मुझसे तो वह लेगी नहीं।"

"छिः, तुम इन घिनौनी बातों में पड़ी थीं?"

बिलू जरा देर सिर झुकाये रही। फिर बोली, "क्या करती, कहो? पद्म पागल-सी हो गयी थी! घर में हँड़िया नहीं चढ़ती। खाने को कुछ न था—न पद्म के लिए न अनिरुद्ध के लिए। मेरे पास भी कुछ नहीं था कि दे देती। एक दिन दुर्गा आकर बहुत गिड़गिड़ाने लगी। फिर मैं भला करती भी क्या?"

"हुँः!" देबू को एक बात याद आ गयी—दरोगा से कहकर दुर्गा ने ही तो नजरबन्द के लिए अनिरुद्ध का कमरा किराये पर लगा दिया है।

"यह तो बाद की बात है।" थोड़ी देर चुप रहकर वह बोला।

"हाँ! यह नजरबन्द छोकरा जो है, है बड़ा भला। पद्म को माँ कहता है। गाँव के लड़के भी उसे घेरे बैठे रहते हैं!"

"अच्छा, तुम बैठो। मैं जरा यतीन बाबू से ही मिल आऊँ।"

रास्ते में चण्डीमण्डप से श्रीहरि ने आवाज दी। वहाँ पर छोटी-सी भीड़ भी बटुरी थी। देबू ने अन्दाज किया, लगान वसूली चल रही है। चैत की बारहवीं-तेरहवीं तारीख; अँगरेजी अट्ठाईस मार्च को सरकारी खजाना दाखिल करने का आखिरी दिन। और फिर चैत की किस्त—अन्तिम।

देबू ने कहा, "भतीजे, उस वेला आऊँगा।"

लेकिन श्रीहरि ने कहा, "बस, पाँच मिनिट! जरा गाँव का रवैया देख जाओ। लगता है जैसे अराजकता हो गयी है!"

देबू मण्डप पर गया। देखा—वैरागी छोरा नलिन हाथ जोड़े खड़ा है। एक तरफ खड़ी उसकी माँ रो रही है।

श्रीहरि ने कहा, "जरा इस छोकरे की हरकत देख लो!"—श्रीहरि ने हाथ के इशारे से मण्डप का पुता हुआ एक पाया दिखाया। चूना पुते हुए पाये की सफेद जमीन पर कोयले से एक चित्र बना था—काली की तसवीर।

देबू ने उससे पूछा, "क्यों रे, यह तसवीर तूने बनायी है?"

नलिन ने गरदन हिलाकर हाँ किया।

श्रीहरि ने कहा, "पोताई की क्या गत कर दी है, देखो!" फिर नलिन से कहा, "पोताई का खर्चा यहाँ रख दे और तब जा।"

देबू तबतक भी तसवीर को देख रहा था। अच्छा बनाया है! उस छोरे से पूछा, "तसवीर बनाना किससे सीखा?"

रुंधे गले से उसने जवाब दिया, "जी अपने-आप।"

श्रीहरि बोल उठा, "हाँ-हाँ! इस कम्बख्त की यही हरकत है, लोगों की दीवारों पर, सीमेण्ट के आँगन में, और तो और बड़े-बड़े पेड़ों तक पर कोयले से तसवीर बनाता फिरता है। उस नजरबन्दी जवान ने इसका सिर चटखारा है! अनिरुद्ध के

बाहरवाले कमरे में रहता है, देखो तो जरा, सारी दीवार तसवीरों से भरी पड़ी है। अब चण्डीमण्डप पर पड़ गया है। यह उसने कल दोपहर को किया है।"

देबू ने हँसकर कहा, "काम इसने जरूर गलत किया है, मगर आँका है बड़ा अच्छा! काली की तसवीर अच्छी बनायी है।"

"नमस्कार घोष बाबू!" सीढ़ियों से ऊपर आया नजरबन्द यतीन।

देबू को देखकर बोला, "अरे, आप भी हैं! आप ही के यहाँ जा रहा था।"

"मैं भी आपके यहाँ जा रहा था।"

"ठहरिए जरा, यहाँ का काम खत्म कर लें तब चलें। घोष बाबू, इस पाये की पोताई में क्या खर्च लगेगा?"

श्रीहरि ने कहा, "खर्च तो थोड़ा लग ही जाएगा। मगर बात वह तो नहीं है। बात है नलिन को शासन करने की।"

हँसकर यतीन बोला, "मैंने दो आदमियों से पूछा। उन्होंने बताया, चार आने का चूना, एक मिस्त्री की आधे दिन की मजूरी चार आने और एक मजूरे की आधे दिन की मजूरी दो आने। कुल दस आने।"

"हाँ, कूँची वनाने के लिए थोड़ा सन भी लगेगा।"

"खैर, उसका भी दो आना रख लीजिए। बारह आने।"—यतीन ने एक रुपया निकालकर श्रीहरि के सामने रख दिया और कहा, "जो बचे, मुझे भिजवा देंगे।"

वह उठ खड़ा हुआ। साथ-साथ देबू भी उठा। यतीन फिर हँसकर बोला, "मेरे ही यहां चलिए देबू बाबू; नलिन की बनायी बहुत-सी तसवीरें हैं, देखिएगा! चलो नलिन, चलो!"

श्रीहरि ने पुकारा, "चाचा, एक बात है।"

देबू उलटकर खड़ा हो गया, "कहो!"

"जरा इधर आओ। हर बात क्या हर-एक के सामने कही जाती है?"

श्रीहरि हँसा। पष्ठीतले के एकान्त में ले जाकर श्रीहरि ने कहा, "पिछले चैत से ही तुम्हारे यहाँ लगान बाकी पड़ा है। अबकी किस्त से पहले ही कोई उपाय करना।"

देबू के चेहरे पर क्षण-भर के लिए नाराजी उभर आयी। उसे कल की बात याद हो आयी। लगा, श्रीहरि उसे धमकी दे रहा है। उसने संयत स्वर में ही कहा, "ठीक है, दूँगा, समय पर ही दूँगा।"

सन् 1924 में विशेष अधिकार पर अँगरेज सरकार द्वारा बनाया गया नजरबन्दी कानून। राजनीतिक अपराध के सन्देह में खास-खास थाने के पास के गाँव में बंगाली युवकों को नजरबन्द रखने की व्यवस्था की गयी थी। यतीन बंगाल सरकार के उसी

कानून का बन्दी था। यतीन की उम्र ज्यादा न थी; सत्रह-अट्ठारह साल का किशोर–जवानी की दहलीज पर कदम रखा ही था। साँवला रंग, रूखे बड़े-बड़े बाल। छरहरा बदन। शरीर में एक कमनीय लावण्य। झकमकाती आँखें–ऐनक के अन्दर से वे और भी अनोखी दीखतीं।

अनिरुद्ध के बाहरवाले कमरे के बरामदे पर एक चौकी डालकर उसी पर उसका अड्डा जमता। गाँव के लड़के तो वहीं पड़े रहते। वयस्क भी आते–तारा हजाम, गिरीश बढ़ई, गँजेड़ी गदाई पाल, बूढ़े द्वारका चौधरी भी। साँझ के बाद अपनी दूकान बन्द करके वृन्दावन दत्त भी आता। बेचारा तारिणी किसी प्रकार मजदूरी करके जी रहा था। वह भी आकर चुपचाप बैठा रहता। कभी-कभी उधर से गुजरते हुए श्रीहरि भी एकाध बार आकर बैठ जाता। बाउरी टोला और मोची टोले के लोग भी आते; गाँव की बहू-बेटियाँ दूर से उसे देखा करतीं। बुढ़िया रांगा दीदी कभी-कभी उससे बातें करती; कभी लड्डू, कभी केला तो कभी और कुछ लाकर देती और उसे देखकर आप ही आप पांचाली की वह पंक्ति दुहराती, जिसका आशय है–संगदिल अक्रूर ने सोने के कन्हैया को लेकर यशोदा मैया की गोद सूनी कर दी।

यतीन भी कभी-कभी रवीन्द्रनाथ की कविता गुनगुनाता। इस आशय की दो पंक्तियाँ सदा उसके मन में घुमड़ती रहतीं कि–हर जगह मेरा घर है और घर-घर में मेरा परम आत्मीय है।

इस छोटी-सी बस्ती के छोटे आकार में मानो सारा बंगाल रूपायित होकर उसकी आँखों में प्रकट हुआ है। यहाँ आते ही पल-भर में सारा गाँव उसका अपना घर बन गया है। यहाँ का एक-एक आदमी उसका घनिष्ठतम प्रियजन, परम आत्मीय है। उसे हैरानी होती कि ऐसा हुआ कैसे! शहर का लड़का, घर उसका कलकत्ता है। जीवन में उसने गाँव कभी देखा नहीं था। नजरबन्दी कानून में गिरफ्तार होकर पहले कुछ दिन जेल में था, उसके बाद कुछ दिनों तक विभिन्न जिलों के सदर में या महकमे में रहा। वे महकमे भी अजीब थे। गाँव की भी थोड़ी-बहुत झलक, घाट-वाट। खेती आज भी वहाँ की मुख्य या गौण जीविका है। छोटा-छोटा समाज भी है। समाज ठीक नहीं, उसे दल ही कहना चाहिए। समाज टूटकर–शिक्षा, सम्मान और अर्थबल की भिन्नता से अलग-अलग दल बन गये हैं। संकीर्ण दल, स्वार्थकेन्द्रित, ईर्ष्यापरायण। वहाँ गाँव का वैसा ही आभास रह गया है, जैसा कि तैलचित्र में रंग पड़ने से छिपे कपड़े का होता है–धुँधला इशारा-भर है, प्रभाव नहीं है, प्रकाश नहीं है।

इसीलिए घोर गँवई गाँव में नजरबन्दी के आदेश से वह एक अजानी आशंका से विचलित हो उठा। लेकिन गाँव को साक्षात् देखकर वह आश्वस्त हुआ; हर जगह उसे एक अनोखे स्नेह-स्पर्श का अनुभव हुआ। लेकिन यहाँ की गरीबी, यहाँ की हीनता, यहाँ की कदर्यता भी उसकी नजर से परे नहीं रही। अशिक्षा तो यहाँ साफ

जाहिर है। लेकिन तो भी अच्छा लगा है। यहाँ के लोग अशिक्षित हैं, मगर शिक्षा के प्रभाव से रहित अमानुष नहीं हैं। अशिक्षा की दीनता से वे सकुचाये हुए हैं, कुशिक्षा अथवा अशिक्षा के दम्भ से दम्भी नहीं हैं। यहाँ के लोगों में शिक्षा चाहे न हो, जीर्ण-शीर्ण पुरानी संस्कृति आज भी है, गोकि मरती हुई-सी ही किसी तरह टिकी हुई है। मगर उसकी भी एक आन्तरिकता है।

शहर को वह प्यार करता है, श्रद्धा करता है। मनुष्य की जययात्रा वहीं तो हो रही है। मगर वैसा शहर नहीं, जहाँ वकील-मुख्तार अमले ही हों, पान-बीड़ी और मनिहारी के कुछ दूकानदार हों, चावल की छोटी मिलवाला, तम्बाखू की आढ़तवाला और कपड़ावाला हो, ऐसे दलों का छोटा शहर नहीं। वह शहर जहाँ कल-कारखानों की सैकड़ों चिमनियाँ खड़ी हैं—ऊर्ध्वबाहु तपस्वी की नाईं अपरिमेय और अविश्वसनीय है शक्ति उनकी; बन्दी दानवों-जैसी यन्त्र-शक्ति से काम करते हैं—उत्पादन करते हैं विपुल सम्पदा! लेकिन अरमराता हुआ तन्मय गाँव उसे भला लगा है। बीते युग का मरता हुआ प्राचीन, जिससे नये युग का बड़ा फर्क है,—उसी मुमूर्षु प्राचीन की करुणा-भरी विदा-वाणी मानो नवीन को अभिभूत करती है, ठीक उसी तरह मरणासन्न प्राचीन संस्कृति की परितृप्ति उसके लिए जैसी मार्मिक, वैसी ही मधुर लगती है।

यतीन ने देबू को अनिरुद्ध के बरामदे में बिछी चौकी पर बिठाया—"बैठिए! आपसे परिचय के लिए तो मैं उतावला हो गया हूँ।"

देबू ने हँसकर कहा, "कल तो कहा आपने कि परिचय हो चुका है!"

"बात तो सही है। अब बातें होंगी। ठहरिए, पहले जरा चाय बनाऊँ।" और उसने अनिरुद्ध के घर के दरवाजे पर खड़े होकर आवाज दी—"माँ!"

माँ उसकी है पद्म। यह माँ उसके जीवन में अमृत और विष की बनी अनूठी दौलत है। उसके जहर की ज्वाला और अमृत की मिठास इतनी तीखी है कि उसे बरदाश्त करने में यतीन हाँफ उठता है। उम्र में भी उससे ज्यादा का फर्क नहीं, शायद पाँच-सात साल का ही। फिर भी वह उसकी माँ है। कभी-कभी यतीन को अपने बचपन की बात याद आ जाती है। खेल में उसकी दीदी माँ बनती थी, वह बनता था बेटा। उम्र बढ़ने पर उसी खेल की मानों अब पुनरावृत्ति हो रही हो। यतीन जब यहाँ आया, तो पद्म प्रायः उन्माद की हालत में थी। मूर्च्छा से होश में आने पर कभी-कभी आँगन में, धूल-माटी में अस्त-व्यस्त हालत में पड़ी रहती। अनिरुद्ध उसके पहले से ही जहाँ-तहाँ गायब रहता था, घर नहीं आता था। यतीन को ही पद्म की उस हालत में ज्यादातर आँख-मुँह में पानी के छींटे देने पड़ते। तभी से यतीन उसे माँ कहकर पुकारता है। माँ के सिवा दूसरा सम्बोधन उसे ढूँढ़े नहीं मिला। एक दिन जब पद्म आपे में आयी, तो इसी सम्बोधन पर उसने यतीन को बेटा कहा। यह

घरौंदा तभी से बना है। पद्म अब बहुत-कुछ ठीक है। हर घड़ी अपने बेटे के लिए परेशान रहती है। अनिरुद्ध की मानो चिन्ता ही नहीं करती। यदा-कदा आ भी जाता है वह तो उसका खास जतन भी नहीं करती।

घर के अन्दर उस समय शोरगुल मचा था। बहुत-से लड़के उछल-कूद करते हुए हल्ला कर रहे थे। एक लड़के की आँखें अँगोछे से दबाये पद्म कह रही थी, "भात करे क्या?"

"टग्बग!" लड़के ने जवाब दिया।

"मछली करती क्या?"

"छुँक-छुँक!"

"हाट में बिकता क्या?"

"अदरक!"

"तो भैया को घर ला झटपट!"

लुक्का-चोरी चल रही थी। यतीन के पास लड़कों की जमात जुटती थी। जब यतीन नहीं होता तो बच्चे पद्म को घेरते। पद्म भी यतीन की गैरहाजिरी में बच्चों के खेल में बुढ़िया बनती।

यतीन ने फिर पुकारा—"माँ!"

पद्म उठी—"क्या है? चाँद चाहनेवाले मेरे बेटे का हुक्म क्या है?"

"चाय का पानी जरा फिर चढ़ा दो!"

"नहीं! अब नहीं! आखिर कितनी बार कोई चाय पीता है?"

"देबू बाबू आये हैं! उन्हें चाय नहीं पिलाएँ?"

"गुरुजी?"

"हाँ।"

पद्म ने एक हाथ से घूँघट काढ़ लिया। धीमे से बोली, "चढ़ा देती हूँ।"

यतीन ने हँसकर कहा, "गुरुजी तो बाहर हैं, घूँघट किसे देखकर काढ़ लिया तुमने?"

"अरे हाँ, ठीक ही तो कहते हो!" घूँघट हटाकर वह अप्रतिभ-सी हो जरा-सा हँस दी।

बाहर आकर यतीन ने देबू से कहा, "मैं आपके नाम से एक वी.पी. मँगवाऊँगा।"

देबू जरा उलझन में पड़ा। दूसरे के नाम से वी.पी.! जाने काहे की है! बोला, "वी.पी.?"

"हाँ! तसवीरों की कुछ किताबें, रंगों का एक बक्स। नलिन के लिए। पुलिस के मारफत मंगाने में बड़ा झमेला है। नलिन चित्रकारी सीखे, बड़ा अच्छा हाथ है इसका।"

"हाँ, ठीक है। लेकिन बेहतर तो यह होगा नलिन कि तू पटुओं से सीख। मूरत बनाना सीख, रंग भरना सीख।"

नलिन अजीब शरमीला लड़का है। बहुत थोड़े शब्दों में बोलता है। जमीन की ओर ताकते हुए बोला, "पटुओं ने नहीं सिखाया। पैसे माँगते हैं वे।"

यतीन ने कहा, "पैसे मैं दूँगा, तुम सीखो।"

"महीने में दो रुपये!"

देबू ने कहा, "ठीक है, मैं द्विजपदो पटुआ से कह दूँगा। मैं परसों जाऊँगा महाग्राम! मेरे साथ चलना।"

गरदन हिलाकर नलिन बोला, "अच्छा!"

जरा देर चुप रहकर फिर बोला, "आपने कहा था, पैसा देंगे!"

यतीन ने एक चवन्नी निकालकर उसे दी। कहा, "तो तुम गुरुजी के साथ जाना, हाँ!"

नलिन ने गरदन हिलाकर 'हाँ' जताया और चुपचाप उठकर चला गया।

यतीन अब देबू की ओर मुखातिब होकर बोला, "अब आपसे बातें करूँ! एक बात मैंने बहुतों से पूछी है, कोई जवाब नहीं दे सका। और जिन्होंने दिया भी कम से कम उनके जवाब मुझे सन्तोषजनक नहीं लगे।"

"कौन-सी बात, कहिए?"

"आप लोगों का वह चण्डीमण्डप किसका है?"

"सर्वसाधारण का—सभी का!"

"फिर यह कैसे कहते हैं कि उसका मालिक ज़मींदार है?"

"मालिक नहीं। जमींदार हैं देवोत्तर के सेवायत, इसीलिए उसकी देखभाल करते हैं।"

"मुझे जहाँ तक मालूम हो सका है, देखभाल तो गाँव के लोग ही करते हैं।"

"हाँ-हाँ, सो तो करते हैं, फिर भी ऐसा ही होता आया है न! वह जमींदार का सम्मान है! इसके सिवा गाँव शूद्रों का है। ब्राह्मण जमींदार ही सेवायत हैं। यह भी बात है कि गाँव में झगड़ा-झंझट होता है, दलबन्दी होती है, इसीलिए जमींदार को ही देवोत्तर का मालिक माना जाता रहा है। लेकिन हक गाँव के लोगों का ही है।"

"तो फिर प्रजा-समिति की बैठक में जमींदार ने बाधा क्यों दी?"

"वाधा दी है?"

"हाँ, बैठक नहीं करने दी।"

देबू ने जरा देर सोचकर कहा, "हो सकता है, प्रजा-समिति चूँकि जमींदार की विरोधी है, इसलिए नहीं करने दी हो!"

"प्रजा-समिति प्रजा के कल्याण के लिए है। प्रजा के कल्याण का मतलब

जमींदार का विरोध नहीं होता। किसी-किसी बात में विरोध आता है, लेकिन अधिकांश बातों में नहीं। और चण्डीमण्डप तो जनता का ही बनाया हुआ है, जमींदार ने नहीं बनवाया। सिर्फ जगह जमींदार की है। जगह तो रास्ते की भी जमींदार की ही है। तो क्या प्रजा-समिति का जुलूस उस रास्ते से नहीं निकल सकता? यह भी है कि यदि धरम-करम को छोड़कर और कामों का अधिकार नहीं है, तो जमींदार के लगान की वसूली वहाँ कैसे होती है? जब दरोगा या हाकिम आते हैं, तो वहाँ जमघट क्यों होता है?"

देबू हैरान रह गया। इतने ही दिनों में इस युवक ने इतनी खोज-बीन कर रखी है! साथ ही साथ उसके मन में एक सन्देह भी जागा। वह यह कि चण्डीमण्डप का स्वत्वाधिकार वास्तव में एक समस्या है। वह जरा देर चुप रहा। बोला, "मैं आज आपकी बात का जवाब नहीं दे पाया।"

अन्दर से कुण्डी खटखटाने की खुट्-खुट् आवाज हुई। यतीन समझ गया, माँ बुला रही है। उसने कहा, "माँ, मैं अभी नहीं आ सकता। तुम्हीं दे जाओ।"

पद्म खीज गयी—अजीब लड़का है यह!

देबू ने हँसकर कहा, "मुझसे शरम लग रही है मितनी?"

इसके बाद तो गये बिना चारा न रहा। लम्बा घूँघट काढ़कर पद्म आयी और चाय के दो प्याले रखकर चली गयी।

यतीन ने फिर अपनी बात को आगे बढ़ाया—"जो भी चण्डीमण्डप में जाता है, सबको कहा जाता है—यह मत करो, वह मत करो! लोग मान लेते हैं। बेचारे गरीब समझते नहीं! अपने पैसे से श्रीहरि घोष ने पक्का फर्श बनवा दिया है, इससे सर्वसाधारण का अधिकार तो बिक नहीं गया!"

देबू देर तक चुप रहकर बोला, "आखिर उपाय इसका क्या है, बताइए? श्रीहरि धनी आदमी है। इस समय वह सारे गाँव का शासक बन बैठा है। जमींदार तक ने उसे गुमाश्तागीरी दे रखी है। आप कर क्या सकते हैं?"

यतीन हँसकर बोला, "मुझे क्या करना! मेरे तो करने की बात भी नहीं है। करना आपको होगा देबू बाबू! नहीं तो इस उतावली से आखिर मैं आपका इन्तजार क्यों कर रहा था?"

देबू स्थिर आँखों यतीन को देखता रहा। यतीन भी सामने की तरफ ताकता हुआ चुप हो रहा।

अचानक किसी ने पुकारा—"बाबू!"

"कौन?" यतीन और देबू ने पलटकर देखा, अन्दर के दरवाजे पर दुर्गा खड़ी थी।

देबू ने हँसकर कहा, "दुर्गा?"

"हाँ!"

"क्या खबर है?"

"लुहार-बहू पूछ रही है, चूल्हा सुलगायें या नहीं। रसोई-बसोई..."

यतीन ने कहा, "हाँ-हाँ, चूल्हा सुलगाने को कह दो!"

"क्या बनेगा?"

"कुछ भी बनाने को कह दो।"

अचरज से दुर्गा बोली, "बनाने को किसे कहूँ?"

"माँ से कहो। या फिर तुम्हीं कुछ चढ़ा दो।"

मुँह में कपड़ा डालकर दुर्गा हँसते-हँसते बेहाल हो गयी—"आप कुछ पागल हैं बाबू!"

"क्यों, इसमें बुराई क्या है? जो साफ-सुथरा रहता है, उसके हाथ का खाने में कोई दोष नहीं। गुरुजी से पूछ देखो। ठीक है न गुरुजी?"

देवू ने हँसकर कहा, "जेल में जो हम लोगों की रसोई पकाता था, वह जाति का हाड़ी था!" यतीन की तरफ देखते हुए बोला, "नाम अजीब था उसका—गान्धारी हाड़ी।"

यतीन ने कहा, "द्रौपदी होता तो ठीक था। चलिए, नदी नहाने चलें!" कुरता उतारकर उसने अँगोछा खींच लिया।

देबू ने मन-ही-मन तय कर लिया था कि दस के झमेले में अब नहीं पड़ूँगा। जेल से यही संकल्प करके निकला था। लेकिन यह यतीन उसके सब संकल्प उलट-पुलट देने को तैयार है।

घर जाकर उसने तेल लगाया, गमछा लिया और यतीन के साथ चुपचाप चल पड़ा। चण्डीमण्डप के निकट पहुँचते ही बूढ़े द्वारका चौधरी से भेंट हो गयी। हाथ की लाठी ठुक-ठुक करते हुए वे चण्डीमण्डप से ही उतर आये और यतीन की ओर देखकर पूछा, "नहाने चले?"

यतीन ने हँसकर कहा, "जी हाँ!"

"मैंने सुना है, आप तेल नहीं लगाते हैं?"

"जी नहीं!"

"अच्छा नमस्कार!" थोड़ा झुककर बूढ़े ने नमस्कार किया।

यतीन हड़बड़ा-सा गया। बोला, "न, न! यह क्या? आपको मैंने कितनी बार मना किया है। उम्र में आप मुझसे..."

बीच में ही चौधरी धीमे-से हँसकर बोले, "शालिग्राम की बटिया जैसी छोटी वैसी बड़ी! भैया, आप ब्राह्मण हैं!"

"नहीं-नहीं! यह सब आप लोगों के उस जमाने में चलता था। वह जमाना अब लद गया।"

चौधरी के होठों से हँसी लगी ही रहती है। हँसकर उन्होंने फिर कहा, "अब का जमाना बेशक नया है भैया! उस जमाने का अब कुछ भी न रहा। लेकिन मुसीबत तो यह है कि उस जमाने के हम कै जने इस जमाने में रह गये हैं।"

बूढ़े की यह बात यतीन को बड़ी भली लगी। बोला, "अपने उस जमाने की कहानी कहिए!"

"कहानी? हाँ, उस जमाने की बात आज कहानी ही तो है! फिर उस पार जाकर जब बुजुर्गों से भेंट होगी और आज जो देखकर जा रहे हैं, यह उनसे कहेंगे, तो उनके लिए वह कहानी ही होगी। उस समय गाय के बियाने पर दूध बाँटा करते थे, मछली पकड़ते तो मछली बाँटते थे, और पेड़ों पर फल पकते तो फल बाँटते: क्रिया-करम में बरतन बाँटते थे, देवता की प्रतिष्ठा करते थे, राह के किनारे आम-कटहल का वगीचा लगाते थे, तालाब-पोखरा खुदवाते थे, गुरु-ब्राह्मण को प्रणाम करते थे, महापुरुष लोग ईश्वर के दर्शन करते थे—यह सब आप लोगों के लिए कहानी है। और आज आसमान में हवाई जहाज, पानी के नीचे पनडुब्बी, बेतार से खबर का आना, रुपये में दो सेर चावल, नयी-नयी बीमारी, देव-कीर्ति का लोप—तब के लोगों के लिए भी कहानी ही है।"

"आपने पोखरा खुदवाया है चौधरीजी?"

"मेरा नसीब फूटा भैया! मेरे सामने पिताजी ने खुदवाया था, मैं तब छोटा था, याद है मुझे। एक टोकरी माटी ढोने की मजूरी दस गण्डा कौड़ी। एक आदमी कौड़ी लेकर बैठा रहता था, टोकरी गिन-गिनकर कौड़ी देता। शाम को वही कौड़ी गिनकर पैसा देता!"

"धेला टोकरी कहिए!"

"हाँ!" हँसकर चौधरी ने कहा, "हमारी बात तो आप फिर भी समझ लेते हैं, आप लोगों की बात तो मैं समझ ही नहीं पाता! अच्छा भैया, यह इतना हंगामा स्वदेशी का, बन्दूक-पिस्तौल, यह सब क्यों करते हैं? अँगरेजों के राज को तो हम सदा से रामराज कहते आये हैं!"

पल में एक प्रदीप्त आभा से यतीन की आँखें टार्च-सी जल उठीं, लेकिन वह चमक दूसरे ही क्षण बुझ गयी। हँसकर कहा, "बम-पिस्तौल मैंने नहीं देखी है—लेकिन हंगामा क्यों हो रहा है, जानते हैं? इसलिए कि तालाब-पोखरा खुदानेवाले आप लोगों के उस जमाने को वे लोग नष्ट कर रहे हैं।"

वृद्ध कुछ देर चुप रहकर बोले, "ठीक समझ नहीं पाया! हाँ भई गुरुजी, आप ऐसे चुपचाप क्यों हैं?"

चिन्तित-सा ही हँसकर देबू ने कहा, "यों ही।"

वृद्ध फिर कुछ देर चुप रहे। उसके बाद देबू से बोले, "शाम को एक बार आपके पास आऊँगा।"

"मेरे पास?"

"हाँ! कुछ बात है। आपके सिवा कहूँ भी किससे?"

"असुविधा न हो तो अभी ही कहिए! इसी के लिए फिर कष्ट करके आएँगे?" उत्कण्ठित होकर देबू ने कहा।

यतीन ने कहा, "न हो तो मैं अलग हो जाता हूँ जरा!"

"न, न!" चौधरी ने कहा, "देर हो गयी है, इसलिए कह रहा था। इस उम्र में अब मुझे छिपाने की क्या बात है?" चौधरी हँस उठे—"आपने शायद सुना है पण्डित?"

"क्या, कहिए तो?"

"गाजन की बात।"

"नहीं, कुछ तो नहीं सुना है!"

"गाजन के भक्त लोग कहते हैं अबकी वे शिव नहीं बिठाएँगे।"

"नहीं बिठाएँगे? क्यों?"

"अरे हाँ, आप तो पिछली बार थे नहीं। उसी बार से इसकी शुरुआत हुई है। पिछली बार ठीक इसी गाजन के समय ही सेटलमेण्ट की खानापूरी में शिव की जमीन खो गयी।"

"खो गयी!"

"जमींदार का नायब-गुमाश्ता उसे निकाल नहीं सका। निकाले भी क्या, पुरोहित की जमीन खुद ही बन्दोबस्त कर ली है। इसके अलावा शिव की पूजा का खर्च मुकुन्द मण्डल के जिम्मे था। शिवोत्तर जमीन का उपभोग वही करता था। अब मुकुन्द के बाप ने उस जमीन को अपनी बताकर पता नहीं कब बेच दिया। लगान ख़ारिज के शुल्क में जमींदार ने भी उसे देवोत्तर सम्पति मान लिया। मुकुन्द को इतना कुछ मालूम नहीं था, वह बराबर शिव-पूजा का खर्चा जुगाता आता था। अब जरीब के समय जव पता चला कि शिव के नाम की जमीन ही नहीं है, तो उसने कहा, जब जमीन ही नहीं है, तो मैं खर्च भी नहीं देने का। पिछले साल चन्दा करके किसी तरह पूजा हुई। अबकी गाजन के भक्त कह रहे हैं, ऐसे माँग-जाँचकर पूजा हम नहीं करते। इसीलिए मैं श्रीहरि के पास यह जानने के लिए आया था कि पूजा का हो क्या रहा है? मैं अभी तक जिन्दा हूँ। मेरे जीते-जी ही गाजन बन्द हो जाएगा क्या भैया!"

"श्रीहरि ने क्या कहा?"

"जमींदार का पत्र दिखाया। जमींदार खर्च नहीं देंगे, पूजा वन्द हो तो हो।"

"हूँऽ!"

चौधरी ने कहा, "पिछले साल पातू ने ढाक नहीं बजाया—उसने जमीन छोड़ दी है—लेकिन बजनिया होगा। अनिरुद्ध ने बलि नहीं की। कहा, बकरी की महज टँगड़ी लेकर मैं वह काम नहीं करूँगा। अन्त में उसी लँगड़े पुरोहित ने बलि की। अबकी उसने कह दिया है बलि करने की दक्षिणा लूँगा। बहुत तरह का झमेला खड़ा हो गया है। सबका उपाय रास्ता चलते तो नहीं होगा। इसीलिए शाम को आने को कह रहा था।"

देबू जैसे हाँफ उठा था। बोला, "मगर मैं इनका क्या कर सकता हूँ?"

"यह बात आपके योग्य नहीं हुई गुरुजी! आप-जैसा विद्वान् अगर नहीं करेगा, तो कौन करेगा?"

देबू स्तब्ध हो गया।

चौधरी कालीपुर की तरफ चल पड़े। और देबू और यतीन बेहार पार करके मयूराक्षी नदी में उतरे। देबू चुपचाप ही नहाता रहा, चुपचाप ही लौटा। यतीन ने दो-एक बात कही भी, मगर जवाब नहीं मिला तो कविता गुनगुनाने लगा—

पास पड़े जो खोकर उनको फिरता प्राण गगन में
मुझे बुलाते ऐसे क्यों तो बतला दूँ कैसे मैं
लगता मानो उस रजतल में
युगों-युगों में था तृणदल में—

लौटकर यतीन बड़ी आफत में पड़ा। मूर्च्छित होकर पद्म पानी-काँदों में पड़ी थी आँगन में। सिर के पास बैठी दुर्गा अकेली हवा कर रही थी। उसके भी सारे बदन में कीचड़ लग गयी थी। उस कमरे के बरामदे में नशे में चूर अनिरुद्ध बैठा था। सिर छानी पर झुक आया था; मन-ही-मन बुदबुदा रहा था। रसोई का कोई लक्षण ही नहीं था।

दुर्गा ने कहा, "आप लोग निकले कि लुहार-बहू ने पागल-सी होकर मुझे कहा—निकल, मेरे घर से निकल जा तू! मुझसे कुछ बाताबाती हो गयी। मैं घर जाने के लिए इधर निकली कि धड़ाम से आवाज हुई। पलटकर मैंने देखा, तो यही हालत! पानी के छींटे दिये, हवा की, कोई लाभ नहीं हुआ। जरा देर में अचानक अनिरुद्ध आया। थोड़ा-बहुत शोर मचाया और बैठ गया। अब तो सिर लुढ़क आया है!"

देबू ने अनिरुद्ध को हिलाकर कहा, "अनिरुद्ध!"

गरजकर अनिरुद्ध ने आँखें खोलीं—"ऐ!" लेकिन देबू को पहचानकर विनय के साथ कहा, "ओ, गुरुजी!"

"हाँ, सुनते हो?"

"अलबत्! हजार बार सुनूँगा।" दूसरे ही क्षण वह हो-हो करके रो पड़ा—"मेरा

नसीब देखो गुरुजी, तुम मित्र हो, अच्छे आदमी हो, गाँव के सिरताज हो, प्रातः स्मरणीय हो तुम—मेरी गत देखो! मैं राह का भिखारी हूँ! और उधर पद्म की हालत देख लो!"

"जगन को बुला लाओ अनिरुद्ध! डॉक्टर को बुलाओ!"

बड़ी कठिन आवाज में अनिरुद्ध ने कहा, "डॉक्टर क्या करेगा भैया, यह साले छिरू की करतूत है। मेरी गुप्ती कहाँ है? मैं साले का खून करूँगा। और उस दुर्गा का! पद्म का! दुर्गा मुझे अपने घर नहीं जाने देती है गुरुजी! ठीक से मुझसे बात नहीं करती।..."

उसके बाद उसने भद्दी गालियाँ बकनी शुरू कर दीं। दुर्गा सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

देबू ने कहा, "यतीन बाबू, चलिए! मेरे ही यहाँ थोड़ा-सा भोजन कर लीजिएगा। न होगा, हम लोग ही जगन को बुला देंगे!"

देबू और यतीन के चले जाते ही अनिरुद्ध ने जोर से कहना शुरू कर दिया—"और उस नजरबन्द छोकरे को काटूँगा। उसी को पहले काटूँगा। उसी कम्बख्त ने मेरे घर को..."

दुर्गा इस बार तमक उठी—"सुनो कर्मकार, अच्छा नहीं होगा—कहे देती हूँ!"

अनिरुद्ध ने चौकठ के ऊपर बेरहमी से सिर पीटना शुरू किया—"ले, यह ले।"

दुर्गा ने उसे मना तक नहीं किया।

बीस

फागुन आठ, चैत का आठ।
फिर तो तिल दाव से काट।

फागुन के दूसरे सप्ताह से चैत के पहले सप्ताह तक में तिल पकने पर फसल जोरों की होती है, वह फसल दाव के सिवा हँसिया से नहीं काटी जा सकती। इस बार तिल देर से लगा, अभी-अभी फुलाना शुरू किया है, वैशाख का पहला हफ्ता हो जाएगा पकते-पकते। लिहाजा फसल होगी नहीं।

देबू सवेरे धरती-खेत की देखभाल कर घूमता हुआ लौट रहा था। इस साल माघ से ही बारिश नहीं हुई। बारिश नहीं होने से कोई ऊख नहीं लगा सका। मयूराक्षी

की धारा बिलकुल दुबली होकर जंक्शन शहर से सटकर उस पार बह रही थी। बाँध बनाकर पानी इधर लाया जा सकता तो खेती हो सकती थी। लेकिन यह बाँध बाँधना बड़ा कष्टकर है। मयूराक्षी के फाट में इस पार से उस पार तक बाँध बाँधना होगा। कम-से-कम चार-पाँच हाथ ऊँचा हुए बिना काम नहीं चलेगा। इतना ऊँचा कौन करेगा? चार-पाँच गाँव के लोगों के जुटे बिना यह सम्भव नहीं। इस समय ऊख लग जाने से अक्षय हो जाता, वर्षा आते-आते दो हाथ न सही, डेढ़ हाथ तक ऊँचा तो हो जाता वह। परवल भी नहीं रोपा गया। 'परवल रोपे फगुना, फल लगता है दुगुना।' लेकिन श्रीहरि ने सब-कुछ लगा लिया। उसने दो-तीन कच्चे कुएँ खुदवा लिए और लाठा चलाकर सिंचाई का इन्तजाम किया। उसी के कुएँ से पानी लेकर भवेश-हरीश ने भी काम चला लिया।

देबू एक कुआँ खुदवाने की सोच रहा था। परवल न सही, ऊख लगाये बिना काम कैसे चलेगा? घर में गुड़ नहीं रहने से चलता है भला? मयूराक्षी के चौर में थोड़ा ही खोदने से पानी मिलेगा, आठ-दस हाथ खोदने से ही काम बन जाएगा। पन्द्रह-एक रुपये का खर्च है। लेकिन इधर बिलू के पास की सारी पूँजी चुक गयी है। बल्कि कर्ज हो गया है। श्रीहरि की स्त्री ने छिपाकर उधार दिया है। दुर्गा की मार्फत दूकान का भी कुछ उधार हो गया है! धान की फसल इस बार अच्छी नहीं हुई। जो मौजूद है, उसे बेचने की हिम्मत नहीं होती; वर्षा आ रही है, खेती का खर्चा है, गृहस्थी का खर्चा—बहुत भार है! जौ-गेहूँ भी अच्छा नहीं हुआ। गेहूँ डेढ़ मन है, जौ महज तीस सेर। उड़द जितनी है, उससे घर-खर्च ही चलेगा। स्कूल की नौकरी रही नहीं, महीने-महीने नकद का जो ठिकाना था वह भी नहीं रहा। अब करे तो क्या? मगर सारा गाँव हजारों समस्याएँ लेकर उसी को खींच रहा है। यतीन की बात याद आयी, चौधरी की बात का स्मरण हो आया।

गाँव में घुसते ही भूपाल से मुलाकात हो गयी। कन्धे पर चौकीदारवाली पेटी रखकर वह सवेरे ही निकला था। भूपाल ने प्रणाम किया—"पा लागी!"

प्रति-नमस्कार करके देबू चला जा रहा था। भूपाल ने विनय के साथ कहा, "गुरुजी!"

"मुझसे कुछ कह रहे हो?"

"जी! घर पर गया था। लौटा आ रहा हूँ।"

"क्या कहना है, कहो!"

"जी, लगान और यूनियन बोड का टैक्स!"

"दे दूँगा!"

भूपाल ने खुश होकर कहा, "यह रही आदमी-जैसी बात! सो नहीं, डॉक्टर बाबू तो मुझे मारने दौड़े! घोषाल बाबू ने कह दिया, जा, नहीं देता! दूसरे सब घर में छिप गये, औरत-बच्चों ने कह दिया, घर में नहीं हैं। और इधर मैं गाली सुनता हूँ।"

देबू ने कहा, "नहीं रहने पर ही आदमी को चोर बनना पड़ता है, भूपाल!"

"यह तो आपने बिलकुल सही कहा बाबूजी!"

भूपाल ने दीर्घ निःश्वास के साथ कहा, "किसी के घर में अब क्या है? सारी बैहार की फसल तो घोष बाबू के यहाँ चली आयी। बरसात का लिया धान देने में ही तो सब फाँक हो गया। कोई दे तो कैसे? मगर मैं ही क्या करूँ? मेरी नौकरी ही मौत की है।"

घर लौटने पर देबू ने देखा—बिलू उसके लिए चाय तैयार करके बैठी है। वह चकित हो गया! यह क्या!

बिलू ने शरमाकर कहा, "देखो तो, बनी या नहीं। लुहार-बहू से पूछ आयी। वह नजरबन्द की चाय बनाती है न!"

"वह तो हुआ। मगर चाय बनाने को किसने कहा?"

"तुमने ही तो कहा, जेल में नजरबन्दों के साथ रोज चाय पीते थे।"

"हाँ, सो तो पीता था; मगर इसीलिए अभी भी पीनी होगी, इसके क्या मानी? न, ज्यादा खर्च अब मत बढ़ाओ बिलू!"

"अच्छा! एक पैकेट मँगवाया है, उसे खत्म कर लो, फिर मत पीना।"

"एक पैकेट मँगवाया है!"

"कल शाम को दुर्गा ने ला दिया है।"

देबू के जी में आया, चाय का प्याला लुढ़का दे। लेकिन बिलू को चोट पहुँचेगी, यह सोचकर वैसा नहीं किया। कहा, "आज तो बना ली, लेकिन कल से मत बनाना। चाय के इस पैकेट को रहने दो, अच्छी तरह से लपेटकर रख दो, कभी कोई सज्जन आएँ-जाएँ तो, या पानी-बूँदी-सर्दी होने पर, काम आएगी।"

"नहीं!'

देबू ने हैरत में आकर पूछा, "मतलब?"

"तुम्हें तकलीफ होगी।"

"मुझे तकलीफ नहीं होगी।"

"होगी, मैं जानती हूँ।"

"अजीब है!" खीझ और विस्मय से देबू ने कहा, "मुझे तकलीफ होगी कि नहीं यह मैं नहीं जानूँगा, तुम जानोगी?"

"ठीक है! नहीं बनाऊँगी!" क्षण-भर में बिलू की दोनों आँखें भर आयीं। और तुरत वह मुँह फेरकर चली गयी।

देबू ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। उन दोनों के जीवन में शायद यही पहला द्वन्द्व था। बिलू के मन को दुःखाने का दुःख देबू के मन में बहुत गहरा हुआ।

"मालिक!" देबू का हलवाहा आकर खड़ा हुआ।

"क्या है रे?"

"जी, अब तो एक कुदाली हुए बिना नहीं चलेगा।"

"नयी चाहिए! मरम्मत कराने से नहीं होगा?"

"जी नहीं। पिछले ही साल चाहिए थी। आप थे नहीं, इसलिए लोहा चढ़ाकर किसी तरह काम चलाया। घिसकर इत्ती-सी हो गयी है! खाद भी पलटायी नहीं जा रही है।"

"खाद काट रहे हो? पानी दे रहे हो. न? चलो देखूँ तो!"

खाद तैयार करने के गढ़े में, चैत में, ऊपर के नये कूड़े-कचरे को नीचे डालकर, नीचे के सड़े कचरे को, जो खाद बन चुका होता है, ऊपर कर देने का नियम है। ऊपर से घड़ा-घड़ा पानी देना पड़ता है। देबू के यहाँ की खाद किसी तरह पलटी गयी थी। हलवाहे ने उसे कुदाली दिखाई! सच ही वह घिसकर छोटी हो गयी थी। उससे खेती का काम नहीं हो सकता। खेती के लिए वजनी और बड़ी कुदाली चाहिए। उस समय के मजबूत खेतिहर जो कुदाली चलाया करते थे, उसका वजन पांच सेर से कम नहीं होता; सात-आठ सेर के वजन की कुदाली चलानेवाले किसान भी अनेक थे।

देबू ने कहा, "खैर कुदाली बनवा लोगे कि खरीदोगे?"

"खरीदी हुई कुदाली ठीक नहीं होती, सस्ती जरूर होगी।"

"मगर बनानेवाला लुहार कहाँ है? अनिरुद्ध ने तो काम ही छोड़ दिया है। दूसरे जिस लुहार को भी दोगे, कल देने की कहकर भी दो महीने लगा देगा।"

"तो फिर खरीद ही लूँगा। सन चाहिए हल की जोत के लिए। घोरई कह रहा था—गैयों की पगहिया भी टूट गयी हैं।"

एक काम मिल गया, इससे देबू को खुशी हुई। सन से डोरी बनाने का काम। गांव भर में यह निकम्मों का काम है। बूढ़ों का काम! वह उसी वक्त सन ले आया। डोरी बटते हुए सोचने लगा, "करें क्या?"

कुछ देर बाद हलवाहा फिर आकर खड़ा हुआ—"एक बात और कहनी थी मालिक!"

"क्या, कहो?"

"मुहल्ले के लोग आपके पास आएँगे। उन्होंने मुझसे कहा है, आपको पहले कह रखूँ मैं।"

"क्यों, बात क्या है?"

"जी, बात यों है कि चण्डीमण्डप की छौनी में हम सब बेगार देते हैं। सो, इस बार डॉक्टर बाबू, घोषाल—सबने मिलकर समिति बनायी है। वे कहते हैं, तुम लोग मजदूरी लेना। बेगार क्यों दोगे? चण्डीमण्डप जमींदार का है, जमींदार को पैसा देना होगा।"

देबू चुप ही रहा। घर का धन्धा लिए वह डोरी बटता हुआ अपने भविष्य

की सोच रहा था। सोच रहा था कि एक दूकान करूँगा, साथ ही अच्छी तरह से खेतीबारी भी। और जरूरत पड़ने पर हल लेकर स्वयं जुताई भी करूँगा, कुछ किये बिना गिरस्ती चलेगी कैसे?

हलवाहे ने फिर कहा, "हम लोग वही सोच रहे हैं। डॉक्टर बाबू ने बेजा नहीं कहा कि चण्डीमण्डप में जमींदार की कचहरी बैठती है, भले लोगों की बैठकी जमती है—तुम लोगों से चण्डीमण्डप का क्या सम्बन्ध? मुफ्त में क्यों खटोगे तुम? और उधर घोष बाबू लगातार आदमी भेज रहे हैं कि कब से बेगार दे रहे हो। घोष बाबू गाँव के सिरमौर हैं, फिर अब तो गुमाश्ता भी बन गये हैं। उनकी बात कैसे टाली जाए! और फिर ग्राम-देवता की बात! इसीलिए सबने आपके पास आने की सोची है—गुरुजी जो कहेंगे, वह सिर-आँखों पर!"

देबू का जी ठीक कल की तरह हाँफ उठा।

जरा देर इन्तजार करके हलवाहे ने कहा, "मालिक!"

"मैं अभी कोई जवाब नहीं दे पा रहा हूँ, लोटन!"

"आप जो भी कहेंगे, हम लोग वही करेंगे—यह हम लोगों ने तय कर लिया है।"

वह चला गया। देबू का ढेरा हाथ में अचल हो गया। वह सामने की ओर ताकता रह गया।

चण्डीमण्डप में हलचल थी। लगान की वसूली चल रही थी। साथ ही श्रीहरि का बकाया भी वसूला जा रहा था : आखिरी किस्त। साल का अन्त। तमादीवालों पर नालिश होगी। श्रीहरि के धान का बकाया चुकाने के बाद जो बचेगा, वह अगले साल तक चलेगा। जिसकी वसूली नहीं होगी उसका मूल-सूद दोनों मिलाकर अगले साल के लिए असल होगा।

श्रीहरि के गुहालों की छौनी चल रही थी। छप्पर पर छौनीवाले मजूरे काम कर रहे थे। खेतिहरों का छौनी-छप्पर लगभग हो चुका था। वे सब अपने-अपने हलवाहे-चरवाहे से यह काम करा लेते। देबू के लिए भी यह काम अजाना न था। मगर गुरुगिरी शुरू करने के बाद से उसने यह काम नहीं किया। लेकिन अबकी करना होगा। उसके घर छप्पर अभी तक छवाया नहीं गया था। उसने एक लम्बी उसाँस ली।

"सलाम गुरुजी!" दो-तीन जनों के साथ पैकार इच्छू शेख उधर से जा रहा था। देबू को देखकर सलाम करके खड़ा हो गया था। उसके साथियों ने भी सलाम किया।

"सलाम! कुशल से तो हो शेख? और तुम लोग अच्छे हो?"

"जी! और आप तो खैरियत से रहे?"

"हाँ!"

"हम सबने तो हजार बार आपको सलाम किया है। मर्द हैं आप! मसजिद में बराबर आपका जिक्र आता है। मन्नू मियाँ, खालिक साहब, गुलाम मिरजा एक दिन आपसे मुलाकात करने आएँगे।"

देबू ने प्रसंग बदल दिया—"किधर चले थे?"

"यहीं आया था। किस्त का वक्त है न! कुछ लोग गाय-बकरी बेचेंगे। यह मेरा खरीद-बिक्री का गाँव है। रुपये-पैसे लेकर आया था। खरीदना तो अब लगभग उठ ही गया है। खरीदनेवाले रहे नहीं। आपका तो एक बैल बूढ़ा हो गया है गुरुजी—आप एक बैल खरीदिए न!"

"अबकी तो मुश्किल है भाई!"

"आप लीजिए तो सही। बूढ़ा बैल मुझे दे दीजिए। जो पैसे बाकी रह जाएँगे, मुझे बाद में दे दीजिएगा। वह न हो, तो कुछ धान दे दीजिए। धान लेनेवाले मेरे साथ हैं।"

देबू हँसा—"अभी रहने दो।"

"खैर, छोड़िए!"

इच्छू और उसके साथी सलाम करके चले गये। इच्छू पक्का व्यापारी है। लोगों को जब रुपये की जरूरत होती है, तब वह रुपये लेकर पहुँच ही जाता है। किसके यहाँ कौन-सी कीमती चीज है, इसका उसे खूब पता होता है। लेकिन यह मन्नू मियाँ, खालिक साहब, गुलाम मिरजा उससे क्यों मिलने आएँगे? मन-ही-मन उसे थोड़ी परेशानी-सी हुई। ये सभी सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं—बड़े खेतिहर, व्यापारी हैं।

चरवाहा लड़का मुन्ने को लाकर देबू के पास बैठाते हुए बोला, "आप इसे जरा सँभालें मालिक! छोड़ ही नहीं रहा है। मेरे साथ गोरू चराने जाएगा।"

छोकरा ही-ही करके हँसकर मुन्ने से बोला, "बाबूजी के पास पढ़ो-लिखो। गोरू चराने नहीं जाते। छिः!"

देबू ने आग्रह के साथ मुन्ने को गोदी में उठा लिया। मुन्ना भी वैसा ही था, बिलू ने उसे अच्छी तालीम दी है। उसने गम्भीर होकर बोलना शुरू कर दिया—"क—ल, कल। क—ल कल!"

"क्या हो रहा है गुरुजी?" कहते हुए अनिरुद्ध आकर बैठ गया। अभी वह आपे में था। मुँह से शराब की थोड़ी-बहुत बू आ रही थी, मगर नशे में नहीं था। हाथ में लोहे का फरसा था एक।

हँसकर देबू ने कहा, "होश आ गया अन्नी भाई!"

अनिरुद्ध ने कोई शरम नहीं महसूस की। हँसकर बोला, "कल जरा ज्यादा हो गयी थी।"

देबू ने कहा, "छिः अन्नी भाई! छिः!"

अनिरुद्ध कुछ देर तक चुप हो रहा। उसके बाद अकस्मात् जरा हँसकर बोला, "वह तुम क्या समझोगे देबू भाई! उसका रस तुम्हें नहीं मिला है—तुम नहीं समझोगे!"

देबू ने झिड़ककर कहा, "तुम्हारी जमीन नीलाम पर चढ़ी है या नीलाम हो गयी, घर में स्त्री बीमार और तुम शराब पीते हो, पैसे बरबाद करते हो!"

"पैसा अब ज्यादा बरबाद नहीं करता मैं, अब हँड़िया[1] चलता है। अभी मैं तुमसे जमीन नीलामी की बात ही कहने आया हूँ। स्त्री की बीमारी और कितनी भोगूँ—कहो?"

"ऐसे तो तुम थे नहीं अन्नी भाई?"

"क्या मालूम? शराब तो मैं बराबर थोड़ी-बहुत पीता हूँ। इसमें अन्याय तो कुछ नहीं समझता!"

"नहीं समझते! मौरूसी पेशा बन्द कर दिया। नीचों की तरह हँड़िया पीना शुरू कर दिया है। जहाँ-तहाँ पीते हो, पड़े रहते हो!"

"आखिर करूँ भी तो क्या? अन्नी लुहार का दाव, उस्तरा, गुप्ती खरीदता कौन है? कुदाली, कुल्हाड़ी, फाल भी अब बाजार में मिलते हैं—सस्ते मिलते हैं। गाँव में काम करो तो साले धान नहीं देते! क्या करूँ? और हँड़िया की कहते हो? पैसे नहीं हैं तो क्या करूँ?"

"क्या करोगे? तुम्हारी समझ भी जाती रही है अन्नी भाई?"

"क्या जाने!"

"तुम दुर्गा के यहाँ खाते हो? वहीं रात बिताते हो?"

"दुर्गा का नाम न लो गुरुजी! नमक हराम है वह, पाजी है शैतान की बच्ची! मुझे अब अपने घर नहीं जाने देती।"

अनिरुद्ध की इस निर्लज्ज स्वीकारोक्ति से देबू चुप हो गया। अनिरुद्ध कहता ही गया—"मालूम है गुरुजी, दुर्गा के लिए मैं अपनी जान तक दे सकता था। अभी भी दे सकता हूँ। उसी ने मुझे अपने से बुलाया था। उस समय मेरी स्त्री पागल हो गयी थी। झूठ नहीं कहूँगा, उस समय दुर्गा ने मेरी स्त्री की सेवा भी की थी, रुपये-पैसे भी दिये थे। दरोगा से कभी उसे आशनाई थी। उससे कहकर उसने मेरे कमरे को किराये पर लगवा दिया। महीने में दस रुपया। किन्तु सब उसकी नजर का नशा है। जब जो जँच जाए। अब उस नजरबन्द पर उसकी निगाह है।"

"छिः अनिरुद्ध, छिः!"

---

1. भात सड़ाकर बननेवाली शराब।

"मैं यतीन बाबू को दोष नहीं देता। भले घर का है, भला है। पद्म को माँ कहता है। मैंने परखा-देखा है। पर जाने दो इस बात को। दुर्गा भाड़ में जाए। अभी मैं जो कहने आया हूँ, सुनो। बकाया लगान की डिग्री हो गयी है, मेरी जमीन अब नीलाम होगी। इस झंझट को मैं अब रखूँगा भी नहीं। बेचकर जो भी मिल जाए। तुम्हें भैया, देख-जाँचकर इसे बेच देना है।"

"बेच दोगे?" देबू के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"हाँ! लगान चुकाकर जो मिले।"

"उसके बाद?"

"सो जो होगा, करूँगा। छिरू गुमाश्ता को मैं लगान नहीं दूँगा।"

"पागलपन मत करो अन्नी भाई!"

"पागल! तो फिर रहे; सेंत-मेंत ही नीलाम हो जाए। मेरे किये कुछ न होगा।"

"किसी तरह बाकी लगान की रकम जुटा लो। या कि लगान के रुपये के परिमाण-भर जमीन बेच डालो, या कहीं से उधार मिल सके, तो वैसी कोशिश करो।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद अनिरुद्ध ने कहा, "देबू भाई, बाप-दादों की जमीन छोड़ दूँगा—यह सोचकर कलेजा फट जाता है। जानते हो गुरुजी, वह चार बीघा जो घोघर है, मेरे दादा के समय में इसके सात टुकड़े थे—दादा ने काट-कूटकर इसके तीन खेत बनाये थे। पिताजी ने तीन के दो बनाये। साढ़े तीन बीघा घोघर और दस कट्ठे का एक टुकड़ा। और उन दो को काटकर मैंने एक घोघर बनाया।"

उसकी आँखों से टपटप करके आँसू की कुछ बड़ी-बड़ी बूँदें टपक पड़ीं।

उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए देबू ने कहा, "रोओ मत, अन्नी भाई! तुम समर्थ हो, मर्द हो! मन लगाकर काम करो तो तुम्हें कोई कमी न रहेगी!"

अजीब ढंग से हँसकर अनिरुद्ध ने कहा, "हजार मन लगाकर काम करने पर भी लुहार का काम करके अब अभाव दूर नहीं होगा गुरुजी! एक ही उपाय है—मशीन पर काम करना। अब वही देखूँगा। दुर्गा ने एक बार मुझसे कहा था, मैंने ध्यान नहीं दिया। केशव लुहार का बेटा, हितू लुहार का पोता—मैं कारखाने का कुली बनूँगा? किसी न किसी जाति के मिस्त्रियों का ताबेदार बनूँगा? जानते हो देबू, मैं ऐसा दाव बना सकता हूँ कि एक ही चोट में बाघ की गरदन कट गिरे!"

अनिरुद्ध को शान्त करने की ही नीयत से देबू ने मजाक करके कहा, "यही तो तुम्हारी भूल है अन्नी भाई! वह दाव लेकर कोई करेगा क्या—कहो? बाघ को काटने कौन जाएगा?"

अनिरुद्ध अबकी हँस पड़ा।

देबू ने कहा, "मिले तो रुपये उधार ले लो अन्नी भाई! जमीन को बचाना ही पड़ेगा। उसके बाद मन लगाकर काम-काज करो। कारखाना—तो वही काम करो फिलहाल! हर्ज क्या है?"

बड़ी देर तक चुप रहकर अनिरुद्ध ने कहा, "तुम कह रहे हो यह!" फिर थोड़ी देर चुप रहकर बोला, "अच्छा, वही देखता हूँ।"

अनिरुद्ध निकला। लेकिन घर नहीं गया। घर उसे अच्छा नहीं लगता। पद्म उसे नहीं चाहती, वह भी पद्म को नहीं चाहता। चरित्रवान तो वह कभी नहीं रहा, लेकिन पद्म के लिए प्यार की कभी उसमें कमी नहीं थी। चरित्रहीनता का व्यभिचार उसकी वासना-तृप्ति का एक मार्ग-भर था—उन्मत्त देह-लालसा की आग से निवृत्ति के लिए कीचड़ में नहाने-जैसा! अचानक कहीं से जीवन में एक दुर्योग आया, उसने सब बिगाड़ दिया। उसी दुर्दिन में दुर्गा मोहिनी बनकर सामने आयी, केवल मोहिनी बनकर ही नहीं, उसने अपार प्यार भी दिया था। सेवा-जतन, यहाँ तक कि अपनी पार्थिव सम्पत्ति भी उसने उँड़ेल देनी चाही थी, कुछ दी भी थी।

इसके सिवा साथ का जो सुख दुर्गा ने दिया, अपना तन्दुरुस्त शरीर, परिपूर्ण यौवन लेकर भी पद्म वह सुख नहीं दे सकी। उसकी छाती पर लटका है एक बोझा तावीज; उससे अनिरुद्ध को सदा कष्ट होता रहा है। आचार-विचार, तीज-त्यौहार सब पालने के झोंक में, पवित्रता का जरूरत से ज्यादा खयाल! अनिरुद्ध को पद्म ने सदा अछूता-सा दूर-दूर रखा। उसके प्यार के आदर की अधिकता, ममता की अबलता ने अनिरुद्ध को पीड़ा पहुँचायी। संकोचहीन अधीरता से वह दुर्गा की नाईं उसके कलेजे में कूद नहीं सकी कभी। तमाम दिन जलती भट्ठी के सामने सारा बदन झुलसाकर घर लौटने पर थोड़ी-थोड़ी शराब वह पीता था, पर वैसा तन-मन लिये पद्म के सामने खड़े होते ही उसका सारा नशा ठण्डा पड़ जाता था।

दुर्गा में आग-पानी दोनों है। एक ही साथ जलाने और जुड़ाने का उपादान! उसकी जवानी में है आवेगमयी नारी का गरम स्वाद!—उसने अनिरुद्ध को पागल कर दिया है। उसके प्यार में सब-कुछ स्वाहा कर देने की एक उद्दाम लालसा है। अपना लुहारखाना ठप पड़ जाने पर निकम्मे अनिरुद्ध ने उस भयंकर अलस-उदासी से बचने के लिए जब सस्ती शराब की लत पकड़ी, तभी दुर्गा आक्रोश-भरे मन से छिरू को छोड़कर आग्रहपूर्वक अनिरुद्ध के साथ हो गयी थी। अनिरुद्ध ने भी सम्पूर्णतया अपने को उसके हाथों सौंप दिया। लेकिन दुर्गा सहसा एक दिन उसे छोड़कर खिसक गयी—नये के मोह से। वह आग और मरीचिका दोनों है—पाषाणी, विश्वासघातिनी, मायाविनी!

एकाएक वह चौंका—यह क्या—अनमना-सा चलते-चलते वह मोचीटोले में दुर्गा के घर के सामने आ पहुँचा था। दुर्गा आँगन में दूध नाप रही थी, रोज जहाँ देती है, वहाँ देने जाएगी।

वह लौट आया। जल्दी से टोले को पार करके वह बैहार के किनारे जा खड़ा हुआ। दुर्गा ने जब उसे छोड़ दिया है, तो वही उसके पीछे क्यों डोलता फिरेगा? वह भी उसे छोड़ देगा। देबू ने उससे ठीक ही कहा है। अब वह समझ रहा है कि उसमें

कितना परिवर्तन आ गया है। छिः छिः! केशव लुहार का बेटा, हितू लुहार का पोता, वह क्या महज एक जूठी काया को चाटने के लालच में और दो-चार रुपये मिलने की आशा में एक मोची स्त्री के घर पड़ा रहेगा! छिः वह समरथ मर्द है न! एक नामी कारीगर!!

दूसरे ही क्षण वह हँसा। लुहार-कारीगर का न तो अब मान रहा, न नाम। चार आने की विलायती छुरी से ही नाम की गरदन चाक हो गयी। उसने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा। खैर, नाम जाए, मान भी जाए, जान-भर बच पाए; चावल की मिल, तेलमिल में नट-बोल्टू कसकर, हथौड़ा ठोंककर, मिस्त्री होकर ही जिन्दा रहेगा। जमीन को भी बचाना पड़ेगा। दादा ने एड़ी-चोटी का पसीना एक करके अपने हाथों तैयार की थी वह जमीन, पिताजी की बनायी हुई, अपने हाथों काटकर बनाया था वह खेत उन्होंने—सोने का खेत, लक्ष्मी है, अन्नपूर्णा!

खुद-ब-खुद सूनी बैहार से होती हुई उसकी आँखें अपनी चार बीघा घोघर जमीन पर आ अटकीं। वह चलने लगा, आकर अपने खेत की मेड़ पर बैठा। मेड़ पर कैथा का एक पेड़ था। इस पेड़ को उसके दादा ने लगाया था। बचपन में उसका बाप खेती करता था—वह अपने बाप और हलवाहे के लिए कलेवा लेकर आता था, आकर इसी पेड़ के नीचे बैठता था। बुखार के बाद जाने कितनी बार यहाँ आकर उसने नमक के साथ कैथा खाया है। लक्ष्मी-पूजा में, पर्व-त्यौहार में इसी के धान के चावल का अन्न हुआ है, गुड़ और नमक मिलाकर इसी कैथे की चटनी बनी है। बड़ी देर तक अनिरुद्ध बैठा रहा, फिर संकल्प के साथ उठा : खेत को वह जरूर बचाएगा।

वह अँकुलिया गाँव के काबुली चौधरी के पास चला। फेलाराम चौधरी, कंकना स्कूल का मास्टर, वह सूद पर रुपये लगाया करता था। चूँकि सूद की दर ऊँची और तगादा बेहद कड़ा था, इसलिए बहुत-से लोग उसे काबुली कहते थे। बहुतेरे उसे अजगर कहते। उसके ग्रास में पड़ जाने पर छूटना मुश्किल होता है। बहुतेरे 'खूनी' कहते। एक बार एक चोर को पकड़कर चौधरी ने उसका खून कर दिया था। धरती-जमीन के लिए चौधरी की भूख प्रचण्ड थी। जायदाद अच्छी होने पर चौधरी जरूर रुपया देगा। वह उसी के पास चला। चौधरी पढ़ा-लिखा आदमी है—बी.ए. पास। इधर संस्कृत का भी कोई इम्तहान दिया है। स्कूल में हेड पण्डित है। मगर दरअसल है अव्वल दर्जे का हिसाबी। सूद जोड़ने के लिए उसे कागज-कलम की जरूरत नहीं पड़ती। चक्रवृद्धि दर से दस-बीस साल का ब्याज वह जबानी ही जोड़ देता है। लेकिन ब्याज को असल में बदलकर वसूली के समय बातचीत में संस्कृत के दो-चार श्लोक सुनाकर आँकड़ों को रसमय या पारमार्थिक तत्त्व से मण्डित कर देता है।

अनिरुद्ध ने कहा, "मैं समय पर कर्ज चुका दूँगा चौधरीजी! मैं धोखेबाज नहीं हूँ कि भागता फिरूँ, भेंट नहीं करूँ! मेरा ऐसा स्वभाव नहीं है।"

चौधरी हँसा—"धोखा देने का उपाय नहीं है भैया! और भागकर जाएगा भी कहाँ?" इतना कहकर उसने एक श्लोक पढ़ दिया—'गिरौ कलापी गगने च मेघो, लक्षान्तरेऽर्कः सलिले च पद्मम्'। समझा अनिरुद्ध, मेघ रहता है आसमान में और मोर रहता है पहाड़ पर, बहुत दूर। लेकिन मेघ के निकलते ही मोर को आकर पूँछ उठाकर नाचना ही पड़ता है। और सूरज रहता है आकाश में, पानी में रहती है कमल की कली। सूरज उगा नहीं कि कमल को पंखड़ियाँ बिखेरनी ही पड़ती हैं। महाजन और कर्जदार का सम्बन्ध हो जाने पर कहीं क्यों न रहे, हाजिर होना ही पड़ेगा। भागेगा कहाँ?

अनिरुद्ध ने अच्छी तरह से समझा नहीं, चुपचाप दाँत निपोरकर हँसा सिर्फ़। उनकी बातें बड़ी रसीली थीं।

चौधरी ने जबानी हिसाब लगाया—"बीघा पीछे चालीस रुपये देने से तीन साल में चालीस के साठ हो जाएँगे। ऊपर से अगर नालिश का खर्चा जोड़ा जाय तो महाजन का क्या रहेगा, बता? और कहीं कर्जदार लगान बाकी रखता जाय, तब तो मुझे राजा रघु की तरह मटके से पानी पीना पड़ेगा!"

अनिरुद्ध ने उसका पाँव पकड़कर कहा, "जी, आपके पैर छूकर कहता हूँ, एक ही साल में मैं सब रुपये चुका दूँगा।"

अपना पैर खींचकर चौधरी ने कहा, "मेरा पैर मत पकड़ अनिरुद्ध, पैरों की बिवाई से तेरा हाथ-मुँह नछोर जाएगा, छोड़।" चौधरी ने झूठ नहीं कहा। चौधरी के काले कर्कश चमड़े में चाहे किसी रोग से हो, चाहे किसी तत्त्व की कमी से, बारहों महीने बिवाई पड़ी रहती है। सर्दियों में वे लाल हो उठती हैं। सबसे भयंकर है तलवे की बिवाई। सूखा सख्त चमड़ा छुरी-सा पैना है। चौधरी ने पैर छुड़ाकर दिलासा देकर कहा, "मगर साल ही भर में चुका देना है तो चार के बदले दस ही बीघे बन्धक रखने में क्या उज्र है? महज कागज में लिखा रहेगा, और क्या।"

अनिरुद्ध चुप रहा। वह शरीर की गति की सोच रहा था, देवता की गति यानी बारिश-सूखे की सोच रहा था।

"डर मत!"—उसके मन के भाव को भाँपकर चौधरी ने कहा, "साल-भर में चुका, चाहे पाँच साल में, मैं तुझे मरने नहीं दूँगा। ब्याज मैं बाकी नहीं छोड़ता, छोड़ूँगा भी नहीं। बाकी रहेगा तो मूल ही। उसमें बेईमानी करेगा तो ब्राह्मण का गण्डुश!" चौधरी हँसने लगा।

अनिरुद्ध ने कहा, "सूद आपको हर महीने मिलेगा।"

"ठीक?"

"आपके पाँव छूकर तीन सत्य करता हूँ!"

"तो तू तीन दिन के बाद आना। मैं जरा खोज-पूछ कर लूँ।"

"खोज-पूछ? खोज-पूछ क्या करेंगे?"

"यही कि और तो कहीं बन्धक-वन्धक नहीं रखा है।"

"आपके चरण छूकर कहता हूँ..."

चौधरी ने कहा, "अब इन चरणों को मुझे छींके पर रख देना होगा। उसमें तुम्हारा ही बुरा होगा। रजिस्ट्री ऑफिस नहीं जा सकूँगा और तुझे भी रुपया नहीं मिलेगा। खोज-पूछ किये बिना मैं किसी को रुपया नहीं देता, दूँगा भी नहीं।"

अनिरुद्ध फिर भी नहीं उठा। थके-माँदे परदेशी को अचानक प्रियजन की याद पड़ जाने से घर लौटने की जैसी बेकली जगती है, अनिरुद्ध की आज वैसी ही व्याकुलता जागी थी—फिर से अपने उसी संयत सुखी गृहस्थ जीवन में लौट जाने की। लौटने का पाथेय चाहिए उसे। चार साल का बाकी लगान सालाना पचीस रुपया दस आना के हिसाब से कुल एक सौ दो रुपये आठ आने; चवन्नी ब्याज, पचीस रुपया दस आना—कुल एक सौ अट्ठाईस रुपया दो आना। खर्चा जोड़कर एक सौ चालीस या पैंतालीस। डेढ़ सौ ही रख लो। एक सौ और चाहिए। एक जोड़ा बैल खरीदेगा। खेती बटाई पर न देकर एक हलवाहा रखकर बाप-दादे की तरह खुद ही खेती करेगा। जमीन है तेरह बीघा। उसके साथ किसी और का भी बीघा पाँचेक बटाई पर कर सकता है। साथ ही जंक्शन में किसी तेल-कल या चावल की मिल में कोई नौकरी करेगा। रात रहते ही जग जाएगा, बैलों को अपने हाथों सानी-पानी करेगा। हलवाहा हल लेकर निकलेगा और उसके साथ दिन-भर के लिए तैयार होकर वह भी निकलेगा। खेत-पथार देख-सुनकर उसी तरफ से नौकरी पर जंक्शन चला जाएगा। लौटते वक्त फिर एक बार खेतों का चक्कर काटकर घर आएगा। शराब चाहिए—थोड़ी-सी पिये बिना जी नहीं सकेगा। बोतल खरीदकर रख देगा—पद्म नापकर ढाल देगी, बस! आठ आने रोज के हिसाब से चार इतवार बाद देकर तनखाह मिलेगी—तेरह रुपये। साल-भर में एक सौ छप्पन रुपये। नकद आमदनी! धान, उड़द, गुड़, गेहूँ, जौ, तोसी, सरसों होगा ही। नजरबन्द से किराये का माहवार दस रुपये। यह अवश्य स्थायी आय नहीं है। इसके सिवा घर में फिर से लुहारखाना खोलेगा। रात में जो बनेगा, जितना करते बनेगा, करेगा। रोजाना दो आने का भी रोजगार करेगा तो उससे नमक-तेल का खर्चा निकल जाएगा। कर्जा चुकने में कितने दिन लगेंगे? कर्जा चुकाकर रुपये जोड़ेगा, जोड़कर शुरू करेगा ब्याज का कारबार। रुक्का तमस्सुक पर नहीं, बन्धकी कारबार। इसमें न घाटा है, न डूबने का डर। साल में एक या दो ही होगा। इसपर घोघर जमीन से आधा हाथ मिट्टी अगर और निकाल सके, तो कभी सूखे का डर ही नहीं रहेगा। खेत की मिट्टी खोदकर उसमें गाड़ी-गाड़ी गोबर और सूखे पोखर की पाक डालेगा। फसल दूनी होगी।

चौधरी ने कहा, "यों बैठे रहने से तो रुपया नहीं मिलेगा, अनिरुद्ध! मुझे जाँच-पड़ताल कर लेने दो, उसके बाद। इधर बज भी तो गये दस! मुझे स्कूल भी जाना है।"

अनिरुद्ध ने कहा, "खैर, आज ही कंकना चलिए। रजिस्ट्री ऑफिस में जाँच-पड़ताल कर लीजिए।"

हँसकर चौधरी ने कहा, "आज ही? देखता हूँ तेरा घोड़ा तो पक्षिराज से भी तेज है! थमना ही नहीं चाहता! खैर जरा रुक जा। मैं नहाकर थोड़ा-सा खा लूँ। मेरे साथ चल। टिफिन के समय खोज-पूछ करूँगा।"

टिफिन में भी खोज-पूछ खत्म नहीं हुई। चौधरी ने कहा, "अब अन्तिम घण्टी में—तीन बजकर दस मिनिट के बाद फुरसत मिलेगी, बैठ!"

आखिरी घण्टी में हेड पण्डित का क्लास था धर्म का। उस समय चौधरी लड़कों को प्रायः धर्म-चर्चा की आजादी देकर रजिस्ट्री ऑफिस का काम निबटाया करता। दस्तावेज निकालता, किसने कहाँ क्या खरीदा, क्या बेचा, किसने क्या गिरवी रखा—इन तथ्यों का संग्रह करता।

अनिरुद्ध इन्तजार में बैठ गया। तमाम दिन भोजन नसीब नहीं हुआ। दो वताशे या एक टुकड़ा गुड़ की उम्मीद में उसने परान हलवाई की दूकान में बैठकर खुशामद करनी शुरू की। बताशा या गुड़ तो नसीब नहीं हुआ, लेकिन भूख-प्यास वह भूल बैठा। दूकान पर परान की विधवा भानजी बैठती है। उससे वह खूब घुल-मिल गया। एक से तीन तक—ये दो घण्टे उस औरत की हँसी में ही उड़ गये।

चौधरी ने आकर कहा, "मैंने देख लिया अनिरुद्ध, समझा!"

"हो गया तो?"

"हाँ, मैंने तुझे बुलाया नहीं। देखा, गप में खूब मशगूल हो गये हो। रस-भंग करना पाप है। शास्त्र की मनाही है न!"

अनिरुद्ध जरा शरमाया।

"मैं तुम्हें रुपये दूँगा।"

"दीजिएगा?" उत्साह से अनिरुद्ध उठ खड़ा हुआ।

"हाँ! लेकिन आज दिन-भर तुझे खाना तो नहीं नसीब हुआ?"

"अब घर जाकर...कोस-भर तो है...तो कब..." आनन्द के आवेग से अनिरुद्ध कोई बात ही पूरी नहीं कर सका।

"परसों आना। तो तू जल्दी से घर लौट जा। बदली घिर रही है। लगता है, आँधी-पानी आएगा।"—कहकर चौधरी चला गया।

उस स्त्री ने कहा, "तुमने खाया नहीं है अभी तक?"

"कोई हर्ज नहीं। देर भी क्या लगेगी? सों-सों करके चला जाऊँगा।"

"ये वताशे खाकर पानी पी लो। खाया नहीं है तो कहना चाहिए था।"

बताशा भिगोकर पानी पी करके जैसे जान में जान आयी। कुल्हाड़ी हाथ में लेकर राह पर उतरा और हनहनाता हुआ चला। लेकिन कंकना पहुँचते न पहुँचते आँधी आ गयी। पूस के बाद से बारिश नहीं हुई। चारों तरफ सूखा हो गया था।

चैत में ही वैशाख की झलक आ पड़ी थी। असमय में ही वैशाखी आँधी उठी। देखते ही देखते चारों तरफ अँधेरा हो गया—आँधी के भयानक जोर से धरती-आसमान धूसर धूल से भर गया। ऊपर से घुमड़ते हुए दल के दल घने बादल घिर आये। धूल और बादल से एक अजीब पिंगल आया। क्या जोर-शोर आँधी का है।

अनिरुद्ध ने एक पेड़ के नीचे पनाह ली। ओले पड़ सकते हैं, गाज गिर सकती है! मगर उपाय क्या था? ऐसी बुरी साइत में दौड़कर अभी कौन घर जाए! और फिर मरना तो एक ही बार है।

सों-सों आवाज करती भयंकर आँधी। छप्पर उड़ने लगे, पेड़ों की डालें टूटकर गिरने लगीं। विकट आवाज के साथ जाने किसके टिन का छप्पर उड़ गया। जरा ही देर में शुरू हो गया झमाझम पानी। देखते ही देखते चारों तरफ घटाटोप करके मूसलाधार बारिश शुरू हो गयी। आह, धरती जी गयी जैसे। ठण्डी हवा के झोंकों में माटी की सोंधी-सोंधी सुगन्ध आने लगी। वैशाख के पहले अकाल वैशाखी का आना ठीक नहीं। चैत में कथर-पथर, वैशाख में आँधी-पत्थर, जेठ में माटी दरके तो जानो कि वर्षा होगी। नसीब अच्छा था, ओले नहीं पड़े। एक उपकार तो यह हुआ कि खेतों में हल लगेगा। इस समय की एक जोताई पाँच गाड़ी खाद डालने के बराबर है। कटे धान की जड़े उलट जाएँगी, सड़कर उन्हीं की खाद बनेगी। हवा-धूप में माटी पोली और नरम होगी। छूते ही भभर पड़ेगी—लाड़ली लड़की-जैसी।

आँधी-पानी थमने में शाम हो गयी। अँधेरी रात—कोस-भर का रास्ता, बैहार में कीचड़ हो गयी, गड्ढों में पानी जम गया। पानी के बहाव से जगह-जगह कूड़ा-कतवार का ढेर लग गया था। चारों तरफ पानी की आवाज और स्वाद से मेढ़क मुखर हो उठे थे। कहीं-कहीं विषैले साँपों की आवाज—लम्बा शरीर लिए सरसराते हुए निकल जाते थे। लेकिन अनिरुद्ध को किसी बात की चिन्ता नहीं थी। हाथ में कुल्हाड़ी लिये उसने गाना शुरू किया। साँप! साँप को अपनी जान का डर नहीं है? ऊँचे स्वर का गाना महज उसके मन के आनन्द की ही अभिव्यक्ति न था, बल्कि साँपों को हट जाने का नोटिस भी था वह। इस नोटिस के बावजूद अगर किसी की मति मारी ही जाए, फन उठाकर फुँफकारे, तो हाथ में कुल्हाड़ी है। साँप! वह हँसा। जिस साल उसने दो खेत काटकर एक खेत बनाया था, उस बार एक पुराना अड्डा काटते समय बारह विषैले साँपों को मारा था। उनमें से पाँच तो चार-चार हाथ के थे। साँप को क्या, वह किसी जानवर से नहीं डरता। डर उसे आदमी से लगता है। पहले वह छिरू की परवाह नहीं करता था, अब तो श्रीहरि जहरीला गेहुँअन है। चौधरी भी भयंकर जीव है।

आँधी ने गाँव को तहस-नहस कर दिया। पेड़ों की डालें टूट गिरीं, पत्ते और

पुआल के मारे राह चलना मुश्किल है। चण्डीमण्डप के बकुल की बड़ी डाल ही टूट गयी। कुछ-न-कुछ पुआल हर किसी के छप्पर का उड़ गया। हरेन्द्र घोषाल ने एक गुम्बजनुमा घर बनवाया था, ऊँचाई में मझोले कद के ताड़ के समान। उस घर के छप्पर को उठाकर एकबारगी हरीश मण्डल के तालाब में डाल दिया। मोची टोला और बाउरी टोले की दुर्गत हो गयी। ताड़ के पत्ते और पुआल के छप्परों का कहीं पता नहीं था। तिस पर बारिश से दीवाल भीग गयी, फर्श गीला होकर किचकिच हो गया।

खैर, देबू भाई का कुछ नहीं बिगड़ा। अहा, बड़ा अच्छा आदमी है देबू भाई! जगन के दवाखाने के बरामदे का छप्पर आधा उलट गया था। ताज्जुब कि कमबख़्त श्रीहरि का कोई नुकसान नहीं हुआ। टिन के छप्पर पर उसने लोहे के तार की मढ़ाई की है! रात ही में घर का कूड़ा-कचरा साफ करती हुई रांगा दीदी ठाकुर को गाली दे रही थी।

अनिरुद्ध अपने घर के पास आकर खड़ा हुआ।

बरामदे पर बैठा यतीन किताब पढ़ रहा था। पूछा, "कौन?"

"मैं—अनिरुद्ध हूँ!"

"तमाम दिन कहाँ रहे?"

"काम से निकला था बाबू!" कहकर अँधेरे में भी अनिरुद्ध ने तीखी नजर से अपने छप्पर को देखा। यतीन हैरान रह गया, अनिरुद्ध आज होशोहवास से बातें कर रहा है। अनिरुद्ध के लिए यह हालत अस्वाभाविक थी। उसने फिर पूछा, "तबीयत तो ठीक है न? देख क्या रहे हैं?"

"छप्पर की हालत देख रहा हूँ। नहीं, कुछ उड़ा नहीं है। सिर्फ कोठे के पच्छिम तरफ छप्पर के पुआल डरे हुए साहिल के काँटे-से खड़े हो गये हैं!...अभी आया। बहुत-सी बातें करनी हैं।"—कहकर वह अन्दर चला गया। पेट जल रहा था।

इसी बीच पद्म ने आँगन, रास्ता, सब साफ-सुथरा कर लिया था। वह जो उधर के बरामदे में बैठा है वह कौन है? एक लड़का! कौन? ओ, ढपोल तारिणी का वही लड़का। जंक्शन में भीख माँगते-माँगते यहाँ कैसे आ पहुँचा? पद्म के पास जाकर पूछा, "यह यहाँ कैसे आ गया?"

अनिरुद्ध को आपे में पाकर पद्म भी अवाक् हो गयी। अनिरुद्ध ने उस लड़के से कहा, "क्यों रे, यहाँ कहाँ आ गया तू?"

हँसकर पद्म ने कहा, "नजरबन्द बाबू साथ ले आये हैं। नौकरी में रखेंगे।"

"हुँः! जितने मुरदे, सब घाट पर इकट्ठे! ला, खाने को दे! क्या है घर में?"

पद्म सुनते ही उठी। जाते-जाते बोली, "जंक्शन पर जाने किसका क्या चुरा लिया था। लोग पकड़कर पीट रहे थे। नजरबन्द बाबू छुड़ाकर ले आये हैं।"

अनिरुद्ध खीझ उठा। कभी उसका या नजरबन्द बाबू का कुछ चुराकर न

भागे! उसने रूखे स्वर से कहा, "छोकरे, किसका क्या चुराया था तूने? कहाँ?"

छोकरा डरा हुआ, लेकिन बिगड़े जानवर-सा सिर झुकाकर कनखी से उसकी ओर ताकता रहा। कुछ बोला नहीं।

पद्म ने कहा, "तुम भी क्या अजीब आदमी हो। इसे ले आया है और कोई, तुम्हारे यहाँ तो नहीं आया है यह। तुम बकझक क्यों कर रहे हो? और फिर लड़का है, अनाथ है, उसका क्या कसूर है? जा बेटे, तू उठकर बाहर जा।"

लेकिन छोकरा उसी तरह से वहीं बैठा रहा, हिला-डुला नहीं।

इक्कीस

खेती और घास—गाँव के जीवन के दो भाग हैं। बैहार और घर—इन्हीं दो क्षेत्रों में यहाँ की जिन्दगी का सारा आयोजन, सारी साधना! असाढ़ से भादों—गाँववालों के ये तीन महीने खेती के लिए खेतों में कटते हैं। क्वार से पूस तक फसल काटकर घर ले जाते हैं और रबी लगाते हैं। इस समय भी गाँव के जीवन का बारह आना समय खेती में ही कटता है। माघ से चैत तक कटता है घर में। अनाज तैयार करके, देना-पावना चुकाकर आगे की खेती की तैयारी। घर का अन्दर-बाहर सहेजते हैं, जरूरत होने पर नया घर बनाते हैं, पुराने घरों में छौनी-छप्पर करते हैं, मरम्मत करते हैं। खाद पलटकर पानी डालते हैं, सन की डोरी बाटते हैं। गाना-बजाना, गप-शप, मजलिस-महफिल। आँखें मूँदे हरदम तम्बाखू पीते हैं, बरसात के लिए तम्बाखू कूटकर गुड़ मिलाकर हाँड़ी में डाल सड़ने के लिए जमीन में गाड़ते हैं। खेतिहरों के घर जितना भी विवाह होता है, इसी समय होता है। माघ और फागुन, बहुत तो वैशाख तक। हरिजनों को चैत में भी रोक नहीं। पूस से चैत तक में विवाह का काम चुका लेते हैं।

अकाल में—चैत मास के बीचोंबीच अकाल—काल-वैशाखी आँधी से उस बँधे-बँधाये जीवन को एक धक्का लगा। सुबह सन की डोरी बाटना छोड़कर लोग खेतों में जुटे। बुजुर्गों में से सबके हाथ में हुक्का। कम उम्रवालों में से हर किसी की कमर या जेब में बीड़ी-दियासलाई। कानों पर अधजली बीड़ी। हर कोई अपने खेतों की मेड़ों पर घूमने लगा। ऊँची जमीन पर कुछ ने आज ही हल चलाना शुरू कर दिया। नीचे खेतों में अभी भी पानी था। दो-चार दिन सूखे बिना हल चलने

योग्य नहीं होंगे। मयूराक्षी के चौर में शाक-सब्जी के पौधे माता के स्तन-वंचित शिशु-से दुबले बने आज तक किसी तरह जिन्दा थे—अब अहिरावण के बेटे महिरावण की तरह दस दिन में दस मूर्ति हो उठेंगे। तिल में फूल आ रहे हैं, इस पानी से तिल को लाभ होगा। मगर नुकसान भी कुछ हो गया। जो फूल अभी खिले थे, बारिश से उनका मधु धुल गया, उनमें अब फल नहीं लगेंगे। अब ईख लगायी जा सकेगी। इस पानी से लाभ बहुत हुआ। लेकिन गाँव में घरों की बहुत क्षति हुई है, मगर उसका क्या किया जाए!

गाँव की औरतें आँधी से अस्त-व्यस्त हुए घरों की सफाई में लगीं। कमर में अँचरे का फेंटा बाँधकर, कूड़ा-करकट बटोर-बटोरकर खादवाले गड्ढे में डाल रही थीं। बच्चों की जमात तड़के ही आम के बगीचे की ओर दौड़ पड़ी टिकोले चुनने। हरिजन स्त्रियाँ कन्धे पर टोकरी लिए राह-बाट में पड़े हुए डाल-पत्ते बटोरकर भारी बोझा उठाये अपने-अपने घर जा रही थीं। जलावन होगा। उनके अपने घर-द्वारों की सफाई अभी नहीं हो सकी थी। मर्द-सूरतें अपने-अपने काम पर निकल गयी थीं। कोई गृहस्थें के यहाँ की नौकरी पर, कोई जंक्शन की मिल में और कोई दूसरे गाँव मजूरी करने।

दुर्गा अपने घर में बैठी थी। उसका बँधा-बँधाया काम, जिसके बाहर वह नहीं जाती। वह डाल-पत्ता बीनने कभी नहीं जाती। जलावन वह खरीदती है। सुबह गाय दुहवाकर वह नजरवन्द बाबू को दूध पहुँचा आयी है। रास्ते में थोड़ा बहुत बिलू दीदी को देकर वहीं चाय पी और घर लौटकर बैठी है। पहले कुछ दिनों तक वह लुहार-बहू के यहाँ चाय पीया करती थी। वह नजरबन्द बाबू के लिए चाय बनाया करती थी। उसे देकर बाकी दुर्गा और वह खुद पीती थीं। लेकिन उस दिन जो पद्म ने वैसी कड़ी बात कही, सो तब से वह उसके यहाँ नहीं जाती। बाहर-बाहर ही नजरबन्द बाबू को दूध देकर, उसके कुछ काम-धाम करके लौट आती है। नजरबन्द बाबू ने भी कई दिनों से उसे कुछ नहीं कहा है। वह बैठी-बैठी सोच रही थी, कल से वह खुद दूध देने नहीं जाएगी। माँ से भिजवा दिया करेगी। जो खुद नहीं बात करता, अपने से, उससे बात करने की उसे आदत नहीं थी।

दुर्गा की माँ आँगन साफ कर रही थी और बहू डाल-पत्ते बीनने गयी थी। वच्चे को लेकर पातू बरामदे में बैठा था। लोग तो कहते हैं कि बच्चा देखने में बहुत-कुछ हरेन घोषाल-सरीखा हो गया है! लेकिन फिर भी पातू बच्चे को प्यार बहुत करता है। साल-भर में ही उसके भीतर अनोखा परिवर्तन आ गया है—अवस्था और स्वभाव दोनों में। पहले पातू मोची खासा मातबर आदमी था। आचार और व्यवहार में उसके घमण्ड साफ दिखता था। उस समय उसका चाल-चलन देखकर लोग उससे ईर्ष्या करते थे। मरे पशुओं की खाल से ही उसे बड़ी आमदनी होती थी। खाल वह बेचा करता था। कुछ को तो साफ करके ढोल, तबला, बाँचा में चमड़ा चढ़ाता था।

हाँ, उसके मढ़े हुए तबलों में ठनक भी खूब होती थी। उसकी बारह आना आमदनी पशुओं की खाल से होती थी, शेष चार आना चाकरी और ढोल-ढाक बजाने से होती थी। मवेशी-मसान अब मोचियों के हाथ से निकल गया है। जमींदार ने उसका बन्दोबस्त अलग कर दिया है। बन्दोबस्त लिया है मालेपुर के रहमत शेख और कंकना के रमेन्द्र चटर्जी ने। जमीन जो मिली हुई थी, वह भी जमींदार के खास खतियान में चली गयी। उस जमीन को पातू ने खुद ही छोड़ दिया। छोड़ने के अलावा और कोई दूसरा उपाय भी क्या था। तीन बीघे जमीन के बदले बारहों महीने पर्व-त्यौहार पर ढाक बजाकर क्या होगा? जब भी बजाना होगा, सारा दिन यों ही बजाएगा। उससे तो यही अच्छा होगा कि नकद पैसे लेकर जहाँ-तहाँ ही बजा आता है। कहीं का बयाना रहता है तो पातू साफ कपड़े पर चादर लपेटता है और ढाक को कन्धे पर रखकर निकल पड़ता है। दो-एक रुपया लेकर लौटता है; ऊपर से दो-एक पुराने कुरते भी मिल जाते हैं। अभी वह लगभग बारहों महीने बेकार है। मजदूरी भी नहीं कर सकता। बजनिये के रूप में उसका कुछ मान है, फिर भला मजदूरी भी वह कैसे करे? कुछ और न होगा तो जहाँ मरे ढोर फेंके जाते हैं, उस मवेशी-मसान के बन्दोबस्त का ही ठेका ले लेगा। उन्हीं का जातिभाई नीलू बजनिया (अब नीलू दास!)—चमड़े के व्यापार से लखपति बन गया है। अब वह कलकत्ते में रहता है। चमड़े का बहुत बड़ा कारबार है उसका। बड़ा भारी मकान बनवाया है, उसमें ठाकुरजी की मूर्ति प्रतिष्ठित की है और...एम.ए., बी.एल. पास एक हाकिम सरकारी नौकरी छोड़कर उसकी मैनेजरी करता है। विशाल मकान है, ठाकुरबाड़ी, हवागाड़ी है, अपने गाँव में उसने कंकना के बाबुओं की ही तरह स्कूल और अस्पताल बनवा दिया है। उसका लड़का शायद लाट साहब का मेम्बर है। पातू चमड़े के कारबार व मवेशी-मसान की बन्दोबस्ती की कल्पना करता और ऐसे ही ऐश्वर्य का सपना देखा करता!

साल-भर की जीविका का जुगाड़ उसकी स्त्री और दुर्गा करतीं। जिस पातू ने कभी छिरू पाल से नाता रखने के कारण मारे गुस्से के दुर्गा की लानत-मलानत की थी, वही पातू हरेन घोषाल से अपने बेटे के चेहरे की समानता होते हुए भी उसे प्यार करता है, दिन-रात दुलारा करता है! बीच-बीच में वह घोषाल के पास जाता है। बड़े लाड़ से कहता है, "आज तो चार आने पैसे देने होंगे घोषाल बाबू!"

दुर्गा रात को अभिसार में जाती—कंकना, जंक्शन। इन्तजार करता हुआ आदमी पूछता, "साथ में वह कौन है?" अँधेरे में वह छायामूर्ति खिसक पड़ती। दुर्गा कहती. "वह मेरे साथ आया है।"

"कौन है?"

"मेरा भाई!"

छायामूर्ति झुककर चुपचाप नमस्कार करती।

दुर्गा कहती, "उसे एक सिगरेट दीजिए। बैठकर पिएगा तब तक।"

बाबुओं के बागमहल के किसी पेड़-तले या बरामदे में सिगरेट की आग की चमक में पातू को पहचाना जा सकता है। लौटते वक्त उसे इनाम मिलता—चार आना, आठ आना। दुर्गा उसे दे देती।

उस दिन अपना इरादा पक्का करके पातू बार-बार दुर्गा से कहने लगा, "कुल पचीस रुपये की तो बात है! दे-दे न रुपये दुर्गा, मवेशी-मसान का बन्दोबस्त ले लूँ!"

दुर्गा ने कहा, "हो जाएगा। आज अभी ताड़ के कुछ पत्ते तो काट ला! घर को तो ढँकना होगा!"

यही उनका बराबर का हाल है। उड़ने या जल जाने से इन्हें घर की फिकर नहीं होती। जल जाने पर तो फिर भी बाँस-लकड़ी की चिन्ता होती है, लेकिन उड़ने की परवा ही नहीं करते। बैहार में खास खलिहानवाले पोखरे के बाँध पर या सरकारी नदी के किनारे जो ताड़ के पेड़ हैं, उन्हीं के पत्ते काट लाते हैं और घर की छौनी कर लेते हैं। महज मर्दों के घर लौटने-भर की देर रहती है—काम से लौट आने पर वे पेड़ पर चढ़कर पत्ते काट देते हैं और औरतें सिर पर ढोकर घर ले आती हैं। दो-चार औरतें भी ऐसी हैं जो पेड़ पर चढ़कर पत्ते काट लेती हैं। दुर्गा भी कभी ताड़ के पेड़ पर चढ़ सकती थी। लेकिन अब नहीं चढ़ती। जरूरत भी नहीं रही चढ़ने की। उसके कोठा घर का छप्पर पुआल से मोटा छाया हुआ है, मजबूत बन्धन से बँधा है। उसके छप्पर का पुआल कुछ इधर-उधर बिखरा जरूर है, पर छप्पर नहीं उड़ा। उसे ठीक-ठाक करने के लिए सिर्फ दो-एक मजूरों की जरूरत होगी। यह काम पातू से ही हो जाएगा—बल्कि उसी को दो दिन की मजूरी दे दी जाएगी।

दुर्गा के कहने पर पातू ने कहा, "हुँः!"

"हुँः क्या, उठ!"

"वहू को आ लेने दे।"

"बहू आएगी तो भेज दूँगी—माँ को भी। तू जा तो सही! पत्ते काट ला!" दुर्गा की माँ आँगन बुहार रही थी। बोली, "माँ से नहीं होगा। तुम खिलाती हो तो, तुम्हारे कहने पर खटती हूँ। अब बेटे के लिए मैं नहीं खट सकती। आखिर क्यों खटूँ? किस लिए? माँ के नाते दो गण्डा पैसा भी देता है कभी? कि एक टुकड़ा कपड़ा देता है? उसके लिए मैं क्यों खटूँ?"

पातू गरज उठा, "आखिर हम नहीं देते हैं, तो तेरा कौन बाप आकर दे जाता है, सुनूँ जरा?"

"सुन ली, दुर्गा, इस कमीने की बात सुन लो?"

दुर्गा ने बीच में टोकते हुए कहा, "रुक भी बाबा! तेरे जाने की भी जरूरत नहीं और इस शोरगुल की भी दरकार नहीं। बहू आ जाए—हमीं दो जने जाएँगे। भैया, तू पहले चला जा।"

कमर में कटार खोंसकर पातू नदी किनारे पहुँचा। मयूराक्षी का बाढ़-रोधी बाँध नदी के वहाव के साथ-साथ पूरब से पश्चिम की ओर बढ़ता चला गया था। इसी वाँध पर अनगिनत ताड़ के पेड़ों और सरकण्डों की लम्बी पाँत है। जिसमें अच्छे पत्ते थे, ऐसा एक पेड़ देखकर पातू चढ़ गया।

करीब के ही एक पेड़ पर राखोहरी बाउरी पत्ता काट रहा था। उसके बगल के पेड़ पर वह कौन है? मर्द नहीं, औरत। राखोहरी की स्त्री—परी। इधरवाले इस पेड़ पर कौन? पहचान नहीं सका, इसलिए पातू ने पुकारा, "कौन है रे वहाँ?"

"मैं गन्ना हूँ!...गणपति!"

"और कौन है?"

"मेरे पास है बाँका। वहाँ पर छिदाम। और उधर मोतीलाल।"

पेड़ पर ही सबकी बातें हो रही थीं। एकाएक राखोहरी चीख उठा, "हुइ, हुस्! हुह! अरे वाप रे! मार डालेदा, लदता है! हिश्, चोंच सखत कित्ता है। बाप रे!" राखोहरी की जीभ कुछ-कुछ लटपटाती है। साफ-साफ नहीं बोल सकता।

राखोहरी पर दो कौओं ने हमला कर दिया था। काँव-काँव करके माथे पर मँडरा रहे थे और चोंच की ठोकरें मारते थे। पेड़ पर बसेरा था कौओं का। उधर से परी पति को गालियाँ दे रही थी—"कलमुँहे को मना किया कि उसपर कौओं का घोंसला है, मत चढ़ उसपर! अब कैसा मजा आ रहा है!" कहते-कहते राखोहरी की दुर्गत देखकर वह खिलखिलाकर बेहाल हो गयी।

कुछ दूर पर धम्म से आवाज हुई! सर्वनाश! भादों के पके ताड़-सा कौन गिरा? जान तो नहीं गयी? नः, हिल रहा है। खैर, उठकर बैठ गया। बाप रे! कैसी कठोर जान है! नदी-तट की गीली माटी रही, तभी बच गया। मगर है कौन? कौन है रे?

वह आदमी उठकर खड़ा हो गया। बोला, "साँप!"

"साँप?"

"हाँ, खरीश! इधर के डमखोले पर चढ़ ही रहा था कि साला फोंस करके फन फैलाकर उधर के पत्ते पर चढ़ गया। क्या करता, कूद पड़ा।"

यह था फोडिंग बाउरी। छोकरा बड़ा सख़्त है आज खूब बचा! साँप अण्डे के लोभ से पेड़ पर चढ़ गया था।

अरे बाप रे! पातू को भी कम आफत नहीं थी। एक पत्ता काटा कि बेशुमार चींटों ने उसकी सारी देह को छा लिया। गमछा निकालकर पातू उन्हें झाड़कर फेंकने लगा। भाग साले, भाग! धत्! धत्!

दुर्गा आईना लिए नहरनी से दाँत साफ कर रही थी। सफाई का झख है उसे। दाँतों का शंख की तरह चकमक रहना जरूरी है। कभी-कभी दाँतों में पान की लाली चढ़ जाती है। भली तरह दाँत माँजने पर भी नहीं जाती। वैसी हालत में नहरनी से उस दाग को खुरच देती है। बहू लौटे तो उसे साथ लेकर वह पत्ता ढोने जाएगी।

यह पत्त ढोना भी बड़ा झमेला है! सिर में, बाल में धूल लगेगी, सारा बदन गर्द से भर जाएगा, यह कपड़ा फिर पहनते नहीं बनेगा। मगर तो भी उपाय क्या है? सहोदर ठहरा!

माँ ने कहा, "बहू कमाती है, कभी फूटी पाई भी देती है मुझे? सास कहकर 'सरधा' करती है?"

दुर्गा ने हँसकर कहा, "रहने भी दे माँ, मत बोल! भला वह पैसा तुझे छूना चाहिए?"

अबकी माँ झल्ला उठी, "हाय रे मेरी सीता की बेटी साबितरी!" और उसने सारा पुराना पचड़ा उठाया, अपनी माँ-सास के जमाने की कथा, अपने युग की बात, आज की बहू-बेटियों की आँखों-देखी कहानी। अन्त में बोली, "उस समय हरामजादी बहू साबितरी का फन कैसा फैलता था? मैंने बहुतेरा कहा, मगर नाक सिकोड़कर कहती—छिः! अब तो वही 'छिः' गरम भात का घी बनी है! उसी कमाई से पेट पलता है, तन ढँकता है!"

टोले से कोई गाली बकती हुई जा रही थी। दुर्गा ने कहा, "सबर भी कर माँ, रुक जा।...कोई आ रही है।"

गाली रांगा दीदी बक रही थी—"होगी नहीं दुर्गत? और भी होगी। इसके बाद तो बिना आँधी के ही उड़ जाएगा, बिना आग के ही जल जाएगा। धान के अन्दर चावल के दाने ही नहीं होंगे, खखरी होगी।"

दुर्गा ने हँसकर पूछा, "क्या हुआ रांगा दीदी?"

रांगा दीदी उसी लहजे में बोली, "अरी बिटिया, धरम को सब पकाकर खा गये! 'पिरथी' पर तो धरम नाम का अब कुछ नहीं रहा।"

दुर्गा ने जोर देकर पूछा, "हुआ क्या आखिर, किसने क्या किया?"

"अरे वही मरदुआ गोविन्द! अब तक देता आया है और आज कह रहा है नहीं!"

"क्या?"

"क्या क्या? तू क्या विलायत से आयी है? टोले के लोग जानते हैं, गाँववाले जानते हैं, तुझे नहीं मालूम? मैं पूछती हूँ, तू है कौन री छोरी!... एक तो आँख से ठीक देख नहीं पाती, ऊपर से मुँहजले सूरज की धूप की छटा। पहचान नहीं पायी तू कौन है?"

"मैं दुर्गा हूँ, दुर्गा!"

"दुर्गा! हाय मेरी मौत! बस अपनी ही धुन में लगी है? दूसरों की बात क्यों नहीं सुनती? गोविन्द के बाप ने मुझसे छह रुपये उधार लिये थे—नहीं जानती? बुड्ढा हर महीने दो आना ब्याज दे जाया करता था। और, जब कभी बुलाती थी, आ जाता था। छप्पर की मरम्मत कर दी, नाले में पानी जमा था, वो निकाल दिया। वह मरा

तो गोविन्द दस-बारह साल तक हर महीने दो आने देता रहा, बुलाने पर आता रहा। आज बुलाने गयी तो कहता है—नहीं, काफी दे चुका हूँ, अब न सूद दूँगा न असल, न बेगार ही! मैं देबू के पास जा रही हूँ। घोर कलजुग आ गया। अब अगर सब लोग यही जवाब दें तो मेरी कौन गत होगी?"

बुढ़िया के ऐसे कर्जदार बहुत-से हैं। कम से कम दस-बारह। दो कोड़ी से ज्यादा रुपये लगे हैं। पुश्त-दर-पुश्त वे सूद भरते जाते हैं; बुढ़िया कभी मूल नहीं माँगती, वे लोग भी नहीं देते। उन्हें यह भरोसा है कि बुढ़िया मर जाएगी तो असल से पिण्ड छूट जाएगा। लेकिन ऐसे महाजन गाँव में और भी कई हैं। सभी प्रायः औरतें और उनके वारिस हैं। असल में इनके कर्ज-कानून का ढंग ही यही है।

जाते-जाते बुढ़िया रुक गयी—"अरी दुर्गा, सुन!"

"क्या है, कहो!"

"एक जोड़ा करनफूल है, लेगी? सोने का है!"

"करनफूल? किसका है?"

"चल मेरे साथ। बड़ी अच्छी चीज है। एक आदमी की है, लेकिन अब वह लेगा नहीं। और मैं करनफूल का क्या करूँगी? तू लेना चाहे, तो देख ले!"

"आज नहीं, दीदी! अभी ताड़ का पत्ता लाने जाना है।"

"हाय मेरी मौत, तुझे ताड़ के पत्ते का क्या करना?"

"भैया के लिए, अपने लिए नहीं।"

"हाय रे भैया की भक्तिन! भैया के लिए सोचते-सोचते तो मर गयी।"—अपने ही आप बकबक करती हुई बुढ़िया चल पड़ी। जरा दूर चलकर एक गड्ढे में पाँव पड़ गया। सो उसने मेघ को गालियाँ दीं। यूनियन बोर्ड के टैक्स वसूलनेवाले को गाली दी। कुछ लड़के कीचड़ से खेल रहे थे, उनके चौदह पुरखों को गाली दी। उसके बाद जगन डॉक्टर के दवाखाने के सामने दवा की बू से नाक पर कपड़ा रखकर दवा को गाली दी, डॉक्टर को गाली दी, रोग और रोगी को गाली दी। रुपये डूब जाने की आशंका से बुढ़िया आज पगला गयी थी। देबू के घर के सामने आकर आवाज दी—"देबू गुरुजी!"

किसी ने जवाब नहीं दिया। खीजकर बुढ़िया अन्दर गयी—"मैं पूछती हूँ, कान का सिर खा बैठे हो क्या? ...ओ, देबू?"

बिलू बाहर निकली—"रांगा दीदी?"

"मेरी तरह कान का सिर खाया है, आँखों का माथा खाया है? सुनती नहीं? देख नहीं रही है?"

बिलू होठों में जरा हँसी। कोई जवाब नहीं दिया। समझ गयी कि रांगा दीदी आज बहुत बिगड़ी हुई है।

"अरे, यह देबा कहाँ है, देबा?"

"वह तो घर पर नहीं हैं, रांगा दीदी!"

"घर पर नहीं है? जोर से बोल जरा, गया कहाँ?"

"चण्डीमण्डप में गये हैं।"

"चण्डीमण्डप में?"

"हाँ।"

"अच्छा, मैं वही जाती हूँ। देखती हूँ, न्याय होता है या नहीं। अच्छा ही हुआ, वहाँ देबू भी है और छिरू भी है। कान पकड़कर मँगवा पठाऊँगी हरामजादे को। ऐसी मजाल! धरम नहीं, न्याय नहीं!" बकबक करती हुई बुढ़िया चण्डीमण्डप की तरफ चल दी।

वहाँ जोरों से बैठक जमी थी।

भूपाल बागची हाथ में लाठी लिये खड़ा था। बकुल के पेड़-तले सिर थामे हुए बैठे थे—पातू, राखोहरी, परी, बाँका, छिदाम, फड़िंग—और भी कई लोग। बगल में ताड़ के पत्तों के कुछ बोझे पड़े थे। मयूराक्षी का बाँध जमींदार की जायदाद है। वहाँ के ताड़ भी जमींदार के हैं। उन पेड़ों से पत्ते काटने के कसूर में भूपाल सबको लाया था। श्रीहरि गम्भीर होकर गड़गड़े में दम लगा रहे थे। एक ओर देबू चुपचाप बैठा था। उसे पातू वगैरह की ओर से बुला लाया था। हरेन घोषाल आप ही आया था। वह प्रजा-समिति का सेक्रेटरी है। चिल्ला वही रहा था। "ये सदा से पत्ता काटते आये हैं, बाप-दादे के जमाने से। अब उनका स्वत्व हो गया है।"

घोषाल की बात का श्रीहरि ने जवाब ही नहीं दिया।

पातू जो बहुत दिनों से मन-ही-मन श्रीहरि के ख़िलाफ विरोध पाल रहा था, जरा गरम होकर बोला, "पत्ता तो सदा से काटा जा रहा है, आज कोई नयी बात नहीं है।"

"सदा अन्याय करते आये थे, इसलिए आज भी जबरदस्ती अन्याय करोगे? जो काटते हो, चुराकर काटते हो।"

देबू ने इतनी देर के बाद कहा, "इसे चोरी नहीं कहा जा सकता है श्रीहरि! पहले जमींदार एतराज नहीं करता था, वे लोग काटते थे। अब तुम गुमाश्ता बनकर एतराज करते हो! खैर, आइन्दा से नहीं काटा करेंगे। अब से अगर बिना जताये काटें, तो चोरी कहना।"

घोषाल ने कहा, "नो! नेवर! तुम यह गलत कह रहे हो देबू, गाछ का पत्ता काटने का हक इन्हें है। तीन पुश्त से काटते आ रहे हैं। तीन साल तक घाट-बाट में चलने के बाद कोई घाट-बाट बन्द कर सकता है?"

हँसकर श्रीहरि बोला, "वह पेड़ है घोषाल, तालाब नहीं है, और न रास्ता ही है।"

"येस् गाछ इज गाछ एण्ड रास्ता इज रास्ता, बट मैन इज मैन आफ्टर आल!"

"कल को अगर जमींदार उन पेड़ों को बेच दे या कि काट ले तो पत्ता काटने

का अधिकार कहाँ रहेगा? नाहक मत बको। खास-खलिहान के ही नहीं, माल-जमीन के पेड़ भी जमींदार के हैं। फल प्रजा खा सकती है, काट नहीं सकती।"

देबू ने एक लम्बी उसाँस ली। पल में उसके मन में एक भूला हुआ क्षोभ जाग उठा। उसके पिछवाड़ेवाली गड़ही के किनारे कटहल का एक पेड़ था। अवश्य कटहल उसमें पकता नहीं था, मगर फलता बेहद था। उसे धुँधली याद है। अपना असबाब बनाने के लिए जमींदार ने उसे काट दिया था। कुछ कीमत शायद दी थी, लेकिन शुरू में जब उसके पिता ने एतराज किया था तो इसी कानून के बल पर जबरदस्ती ही काट लिया था। जाने कितनी बार देबू का पिता कहा करता था, आह, कच्चा कटहल पेड़ का खसी है! और उसमें स्वाद भी क्या!

देबू ने कहा, "तो फिर वही करो श्रीहरि! पेड़ों को कटवा डालो। रैयत फल ही खाएँगे।"

श्रीहरि हँसा—"तुम नाहक ही नाराज हो रहे हो, चाचा! वह तो मैंने बातों के सिलसिले में कानून की बात कही। जमींदार ऐसा क्यों करने लगे? लेकिन रैयत अगर जमींदार का विरोध करें, तो जमींदार को कानून के हिसाब से चलने में दोष क्या है? गैरकानूनी या अन्याय तो नहीं चल सकता।"

"लेकिन इन गरीबों ने क्या विरोध किया, सुनूँ मैं? एकाएक इन्हें यों पकड़वा मँगाने का मतलब?"

"उन्हीं से पूछो। प्रजा-समिति के सेक्रेटरी से पूछो।"—उसके बाद हरिजनों की ओर ताककर श्रीहरि ने कहा, "क्यों रे, चण्डीमण्डप की छौनी का तुम लोग पैसा नहीं लोगे?"

इतनी देर के बाद बात साफ हुई। सभी सन्न रह गये। लेकिन भीतर से सबने एक जलन महसूस की। यह जलन सबसे ज्यादा महसूस की देबू ने। ताड़ के पत्ते की कीमत और चण्डीमण्डप में छौनी की मजूदरी की असंगति इसका कारण नहीं था, कारण तो इस पूरे मामले में श्रीहरि का ढंग था।

रांगा दीदी कुछ पहले वहाँ पहुँची थी और वहाँ का रवैया देख-सुनकर अवाक् खड़ी थी। कान से पूरा सुनाई नहीं पड़ता, सो कुछ देर खड़ी रहकर मामले को समझती रही। उसके बाद बोली, "अरे छोकरे, तुम लोग चण्डीमण्डप की छौनी करोगे? मजाल देखो इनकी; हाय मेरी मैया, कहाँ जाऊँ मैं!"

मौका पाकर हरेन घोषाल ने रांगा दीदी को डाँट बतायी—"जिसे तुम समझती नहीं उसपर बोला मत करो रांगा दीदी! चण्डीमण्डप अभी है किसका? वह रहा न रहा, उनका क्या? उनका तो उनका, गाँववालों का ही उसपर कौन-सा अधिकार है? चण्डीमण्डप जमींदार का है। यह चण्डीमण्डप नहीं, अब यह जमींदार की कचहरी है।"

"जो राजा का है, वही प्रजा का है। राजा का हुआ तो प्रजा का हुआ।"

देबू ने हँसकर जरा तेज गले से ही कहा, "यह तो इस ताड़ के पत्ते के मामले में ही देख रही हो रांगा दीदी!"

"कौन, देबू?"

"हाँ।"

"ठीक कहते हो भैया! अरे ओ श्रीहरि, ताड़ के पत्ते की तो बात है! वह भी अगर ये जमींदार का नहीं लेंगे, तो कहाँ पाएँगे?"

श्रीहरि ने बड़ी रुखाई से डपटकर कहा, "जाओ-जाओ, तुम घर जाओ। इन मामलों में तुम्हें बोलने के लिए किसी ने नहीं बुलाया! जाओ!"

रांगा दीदी आगे और साहस नहीं कर सकी। गाँव के किसी से वह नहीं डरती, मगर श्रीहरि से फिलहाल डरने लगी है। ठुक्-ठुक् करके बुढ़िया चली गयी। जाते-जाते कहा, "देबू, घर चलो! तुम्हारा मुन्ना रो रहा है।" झूठ ही कहकर उसने देबू को बुलाया। जिस तरह का आदमी है वह—जाने फिर श्रीहरि के साथ कौन-सा हंगामा कर बैठेगा। यह लड़का दिन-पर-दिन जितना ही उत्पात करता है उतना ही वह मानो उसे अधिक प्यार करने लगी है।

देबू ने रांगा दीदी की वह पुकार सुनी नहीं। उसने श्रीहरि से कहा, "अच्छा श्रीहरि, तुम अब करना क्या चाहते हो, सुनूँ?"

"मतलब?"

"मतलब कि चोरी में इन्हें चालान करना चाहते हो, तो करो। और अगर ताड़ के पत्तों का दाम लेना चाहते हो, तो लो। डोम बीस ताड़ के पत्तों पर एक चटाई देते हैं। उसकी कीमत होती है दो पैसे। वही बीस पत्तों का एक आने के हिसाब से दाम दे देंगे ये।"

"तो तुम लोग झगड़ने को ही तैयार हो—क्यों?" श्रीहरि ने हरिजनों से पूछा।

"जी!"—हरिजनों ने कहा।

देबू ने कहा, "किसके कितने पत्ते हैं, गिन दे।"

सबने पत्ते गिनने शुरू कर दिये।

पल-भर में श्रीहरि भयंकर हो उठा। हिंसक की नाईं गरजकर कह उठा, "बैठो! रख दो पत्ते।"

उसके अचानक ऐसे क्रोधित स्वर की प्रचण्डता से सब चौंक उठे। हरिजन पत्ते छोड़कर अलग हो गये। केवल पातू पत्ता छोड़कर वहीं खड़ा रहा। भवेश और हरीश श्रीहरि के पास ही बैठे थे। वे चौंक उठे। हरेन घोषाल तो अचकचा उठा था। वह कई कदम हटकर आँखें फाड़कर श्रीहरि को देखने लगा। देबू भी चौंक उठा था। पर अपने को सँभालकर वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ। बाउरी और मोचियों की ओर बढ़कर उसने दृढ़ स्वर में कहा, "छोड़ दो पत्ते! उठ आओ वहाँ से! मैं कहता हूँ, उठ आओ!"

सबने उसकी शक्ल देखी। उसके दुबले चेहरे पर अजीब दीप्ति थी। नस तेज

में मानो उन्हें अभय देखने को मिला। वे उसी दम चण्डीमण्डप से उतरने लगे।

श्रीहरि ने डपटकर कहा, "भूपाल, इन कमबख्तों को रोको।"

देबू उसकी ओर देखकर धीरे-से हँसा और पातू वगैरह से बोला, "जिसे जहाँ जाना है, चला जाए। मेरे बदन पर हाथ लगाये बिना कोई तुम सबको छू भी नहीं सकता।"

हरेन घोषाल सबसे आगे बढ़कर बोला, "चले आओ!"

सबसे अन्त में चण्डीमण्डप से उतरा देबू।

ठीक इसी समय रास्ते पर से व्यंग्य करते हुए किसी ने तीखे कण्ठ से कहा, "हरि-हरि बोल, भाई हरि-हरि बोल!" और फिर हो-हो करके तेज हँसी हँसकर मानो सब बहा दिया।

यह अनिरुद्ध था। अनिरुद्ध ताली बजा-बजाकर जोर से हँसते हुए जैसे नाचने लगा। श्रीहरि के इस अपमान से उसके आनन्द की सीमा नहीं रही।

श्रीहरि जरा देर चुप रहा। गुस्से में भरा हुआ एक लम्बा निःश्वास छोड़ा। भवेश, हरीश आदि बुजुर्ग लोग, जो उसके अनुगत हैं—वे भी इस घटना से दंग रह गये थे। कुछ देर के बाद भवेश ही पहले बोला, "घोर कलयुग आ गया, समझ गये हरीश चाचा!"

श्रीहरि ने कहा, "मगर अब आप लोग मुझको मत दोष दीजिएगा।"

हरीश ने कहा, "भला अब दोष दे सकता हूँ? सब-कुछ तो अपनी आँखों से देख रहा हूँ।"

"भूपाल!"—श्रीहरि ने भूपाल को बुलाया।

"जी!"

"तुमसे नौकरी नहीं चलेगी भैया!"

"जी!"—भूपाल सिर खुजाने लगा।

भवेश ने कहा, "इतने लोगों के आगे भूपाल कर क्या सकता था श्रीहरि! उस बेचारे की क्या गलती है?"

"और मैं चौकीदार ठहरा सरकार, फौजदारी कैसे कर सकता हूँ? आप यूनियन बोर्ड के मेम्बर हैं। आप ही कहें हुजूर!"

श्रीहरि ने कहा, "तू जरा कंकना जा। बनर्जी बाबू के बूढ़े चपरासी नादिर शेख के पास जाना। जाकर कहना, अपने बेटे कालू शेख को घोष बाबू के पास भेज दो। घोष बाबू उसे रखेंगे।"

"कालू शेख?" भवेश ने भय और अचरज से पूछा।

"हाँ, कालू शेख!"

नादिर शेख अपने जमाने का नामी लठैत था। कालू उसका लायक लड़का है। जवान, बलवान्, चालाक, दुर्दम साहसी। दंगा करके एक बार जेल की सजा काट

चुका है। उसके बाद एक बार डकैती के सन्देह में गिरफ़्तार हुआ लेकिन सबूत नहीं मिलने से छूट गया। कालू शेख बड़ा भयंकर जीव हैं।

श्रीहरि ने कहा, "मैं अन्याय नहीं करूँगा, भवेश भैया! किसी का बुरा भी मैं नहीं करना चाहता। लेकिन जो मेरे सिर पर पाँव रखेगा उसका मैं खात्मा कर दूँगा, इसमें चाहे अन्याय हो, चाहे अधर्म।"—जरा देर चुप रहकर फिर बोला, "ये नीच लोग, बरसात के दिनों मैं धान देता हूँ, तब तो ये खाते हैं—और आज ये मेरी न मानकर उठकर चले गये!"

"यह देबू घोष, सेटलमेण्ट के समय मैंने उसकी जगह-जमीन को निष्कण्टक कर दिया था। उसके बाल-बच्चे की दोनों शाम खोज-खबर लेता रहा। जानते हो हरीश भैया, फिर से जिसमें उसका स्कूलवाला काम हो जाए, इसकी भी कोशिश कर रहा था! प्रेसिडेण्ट से भी कहा।"

भवेश ने कहा, "कलजुग में किसी का भला नहीं करना चाहिए बेटा!"

"सबका मूल है, वह नजरबन्द छोकरा। उसी की यह सब करतूत है। लुहार-बहू के साथ ठिठोली करता है। और वह साला कर्मकार...!"

कहते-कहते श्रीहरि कठोर हो उठा—"नमक हराम गाँव! कभी-कभी जी में आता है, इसका सत्यानाश कर दूँ!"

हरीश ने कहा, "ऐसा कहने से कैसे चलेगा भाई! भगवान ने तुम्हें बड़ा बनाया है, तुम्हारा भण्डार भर दिया है, तुम्हें करना ही होगा। ऐसा कहना तुम्हें नहीं सोहता।"

कुछ देर चुप रहकर श्रीहरि ने सहज स्वर में ही कहा, "हरीश भैया, षष्ठी काका से कहिए कि काम अब शुरू कर दें। ईंट तो तुम्हारी पकी-पकायी है। स्कूल का फर्श न हो तो दस दिन के बाद होगा, अच्छी तरह से पानी पड़ जाए, नहीं तो फट जाएगा। मगर पुलिया अब नहीं बनेगी तो कब बनाओगे? फिर वह काम मेरा नहीं है, मैंने दस रुपये जरूर दिये हैं, मगर यूनियन बोर्ड को दिये हैं पुलिया बनवाने के लिए। यूनियन बोर्ड से मैं क्या कहूँगा।"

हरीश का लड़का षष्ठी श्रीहरि की मदद से आजकल ठेकेदारी करता है। यूनियन बोर्ड की तरफ से शिवकालीपुर के रास्ते में एक पुलिया बनेगी। श्रीहरि स्कूल का फर्श पक्का बनवा देगा। इन सबका ठेकेदार षष्ठीचरण है।

हरीश ने कहा, "वह तो तुम्हारे ही काम में व्यस्त है, भाई। खाता-पत्तर लेकर सवेरे बैठता है, उठता है रात ही को। तमादी का हिसाब, वह भी तो कुछ कम नहीं है।"

षष्ठी श्रीहरि की गुमाश्तागिरी का कागज-पत्तर भी लिखता है। चैत का महीना। बाकी-बकाये का हिसाब-किताब हो रहा है। जिन पर चार साल का बाकी पड़ा है, उनपर नालिश की जाएगी। श्रीहरि के अपने धान-पान का हिसाब है। तीन साल में तमादी। वह हिसाब भी हो रहा है।

भूपाल जा चुका था। हुकुम तामील करनेवाला कोई न था। लाचार भवेश खुद ही चिलम भरने लगा। षष्ठीतल्ला के पास आग की धूनी जलती है—वहाँ बैठकर चिलम में आग रखते हुए उसने जाने किसको पुकारा—"कौन है रे? ऐ छोरे!"

एक लड़का लाल फूलों का एक गुच्छा हाथ में लिये जा रहा था। पुकारने पर वह ठिठक गया।

"कौन है रे? कौन-सा फूल है हाथ में? अशोक?"

वह लड़का वैरागी परिवार का नलिन था। वह महाग्राम गया था—पटवा के यहाँ। ठाकुरों के बगीचे में अशोक के फूल थे, वहीं से एक गुलदस्ता बनाकर ले आया था, नजरबन्द बाबू को देने के लिए। कुछ कलियाँ भी तोड़ लाया था, गुरुजी के यहाँ, पड़ोसियों के यहाँ बाँटने के लिए। दो दिन के बाद ही अशोक-षष्ठी है। अशोक की कली चाहिए। अपनी आदत के अनुसार बिना बोले गरदन हिलाकर बता दिया कि हाँ, अशोक की कली है।

"दिये जा तो बेटे! एक टहनी दिये तो जा!"

नलिन ने कुछ फूल रख दिये और चला गया।

श्रीहरि ने कहा, "अपने पोखरे के बाँध पर मैंने भी अशोक का पौधा लगाया है।"

उसने एक पोखरा खुदवाया है। उसके बाँध पर शौक से तरह-तरह के पेड़ लगाये हैं। सभी लगभग अच्छी किस्म के पेड़ हैं।

बाईस

अशोक-षष्ठी। जो लोग यह षष्ठी करते हैं, कहते हैं, उनके संसार में कभी शोक का प्रवेश नहीं होता। 'जिये मरा, पाये जो खोये'—यानी कोई उनका मरे, तो जी जाता है; कुछ खो जाए तो फिर मिल जाता है। स्त्रियाँ सुबह से ही उपवास किये हुए हैं। षष्ठी देवी की पूजा करेंगी, कथा सुनेंगी, अशोक की आठ कलियाँ खाएँगी—लड़कों के ललाट पर दही-हल्दी का टीका लगाएँगी। उसके बाद मामूली-सा खान-पान। अन्न तो निषेध है।

बारह महीने में तेरह षष्ठी। महीने-महीने षष्ठी देवी की नाव स्वर्ग से उतरती है, बारह महीने में वे तेरह रूपों में मर्त्यलोक में आती हैं धरती की सन्तानों के

कल्याण के लिए। उनकी माँग में दग्-दग् करता है सिन्दूर, हाथ में झलमलाती हैं शंख की चूड़ियाँ, सारे शरीर में हल्दी का प्रसाधन, बड़ी-बड़ी आँखों में काजल! दूसरों के सात पूत को रखती हैं गोद में, अपने सात पूत रहते हैं पीठ पर। वैशाख में चन्दन-षष्ठी, जेठ में अरण्य-षष्ठी, आषाढ़ में बाँस-षष्ठी, सावन में लोटन-षष्ठी, भादों में चर्पटा अर्थात् चपेड़ा-षष्ठी, आश्विन में दुर्गा-षष्ठी, कार्तिक में काल-षष्ठी, अगहन में अखण्ड-षष्ठी—संसार को अखण्ड और परिपूर्ण कर देती है। पूस में मूल-षष्ठी, माघ में शीतला-षष्ठी, फागुन में गोविन्द-षष्ठी और चैत में जब फूलों की शोभा से अशोक गदरा जाते हैं तो दुनिया का सारा दुःख-शोक पोंछ डालने के लिए आती है अशोक-षष्ठी! उनके मंगल-परस से फूलों-भरे अशोक-तरु की तरह ही संसार सुख और आनन्द से भर जाता है। अशोक के बाद नील-षष्ठी। गाजन की संकरान्त के पहले दिन। तिथि में षष्ठी हो या नहीं, उस दिन नील-षष्ठी होती है।

पद्म सवेरे से ही घर के काम-धन्धे चुका लेने में जुट गयी थी। काम-धन्धा करके नहाना, नहाने के बाद कथा सुनने के लिए बिलू के यहाँ जाना है। उसके बाद अशोक की कली खानी पड़ेगी। अशोक की कली खाने का भी मन्त्र है। और ऐसे व्यस्त दिन में अनिरुद्ध ने काम का झमेला बढ़ा दिया था। वह अपने लुहारखाने की मरम्मत में लग गया था। हापर, निहाई, हथोड़ा, सँडसी आदि को लेकर खींच-तान शुरू कर दी थी। इतने दिनों की जमी धूल-कालिख की झाड़-पोंछ जरा देर का काम नहीं। तिस पर कोयले में मिले हुए हैं, लोहे के टुकड़े। बढ़ई की छिली हुई लकड़ी के बारीक छिलकों-जैसे मुड़े-सिकुड़े वे लोहे के छिलके ऐसे खतरनाक होते हैं कि चुभ जाते हैं। झाड़ से झाड़-पोंछकर फिर गोबर-माटी से लीपना। पद्म के साथ तारिणी का वह लड़का भी काम कर रहा था, खाना उसे यतीन देता है। दो-एक काम-काज वह कर जरूर देता है, पर रहता है हरदम पद्म के पास। अनिरुद्ध डाँट-डपट भी करता तो वह खास कुछ नहीं बोलता। मुसीबत तब आती जब वह बाहर जाता। बाहर जाने पर जल्दी लौटता ही नहीं। यतीन उससे देबू को कुछ कहला भेजता, तो देबू तो आ जाता, पर वह छोकरा लापता रहता। और अन्त में एक पहर कहीं गँवाकर खाने के वक्त लौटता। कभी-कभी हरिजन टोले या किसी जंगल-झाड़ी से उसे ढूँढ़कर लाना पड़ता। पद्म ही ढूँढ़ लाती।

अनिरुद्ध नये सिरे से काम शुरू करना चाहता था, उसे काबुली चौधरी से रुपये भी मिल गये थे। लेकिन ढाई सौ रुपये के बदले चौधरी उसकी सारी जोत लिखवाये बिना न माना। अनिरुद्ध ने लिख भी दी। उसका मन जरा कुनमुना रहा था, पर रुपये मिल जाने के बाद सारी मायूसी भूलकर उत्साह के साथ उसने काम शुरू कर दिया। लगान के बाकी रुपये अदालत में देने होंगे—आपसी तसफिये का भरोसा नहीं। और वैसे वह दे भी क्यों? माचुन्दी के मवेशी-हाट से बैल खरीदने हैं। हलवाहा उसने रख भी लिया। दुर्गा का भाई पातू ही उसे पसन्द था। उसे उसने

लुहारखाने में नौकर रख लिया। और पातू को वह प्यार भी करता था। अनिरुद्ध के लिए पातू ने दुर्गा से बड़ी पैरवी भी की थी। पातू अनिरुद्ध के साथ लुहारखाने में भी काम कर रहा था। लोहे की मोटी-मोटी चीजें धर-पकड़कर दोनों जने निकाल रहे थे। कामों के बीच ही खेती की बातें कर रहे थे। बैल की बात--कि कैसा बैल खरीदा जाए।

पातू का खयाल है, दुर्गावाला बछड़ा ही खरीद लेना ठीक है। हाट से उसका जोड़ा खरीद लाया जाएगा। बड़ा अच्छा रहेगा। अनिरुद्ध ने कहा, "दुर्गा के बछड़े का दाम भी तो बेहिसाब है!"

"पैकारों ने सौ तक कहा है! दुर्गा ने रोक रखा है--और पचीस रुपया! मगर तुम्हें सस्ता दे देगी। और फिर मैं भी हूँ।"

हँसकर अनिरुद्ध बोला, "कुल सौ की तो पूँजी है अपनी! यह सौदा न होगा। दो बछड़े खरीद लूँगा। जमीन भी तो ज्यादा नहीं है। काम चल जाएगा।"

"लेकिन दधि-मुख बैल लेना भैया। वह बड़ा लच्छनवाला होता है।"

"चलो न, दोनों ही जन तो चलेंगे हाट!"

पद्म ने तारिणी के छोरे से कहा, "अरे, फिर लोहे का टुकड़ा चुनने लगा? यही काम कर रहा है तू?"

छोरे ने जवाब नहीं दिया।

पातू ने कहा, "अबे ऐ! यह तो खूब लड़का है भाई! अबे छोरे!"

उसने दाँत बिचकाकर पातू को मुँह बिराया।

"लो, यह तो मुँह बिराने लगा। बलिहारी रे छोरे!"

अनिरुद्ध ने कहा, "पकड़ ला तो उसे पातू! कान पकड़कर ले आ!"

पद्म हाँ-हाँ कर उठी--"मत पकड़ो, काट लेगा!"

छोरे की बड़ी बुरी लत थी। किसी ने पकड़ा नहीं कि काट खाया। और दाँत भी कम्बख्त के उस्तरे-से पैने हैं। अचानक दाँत जमाकर हमलावर को हैरान करके अपने को छुड़ा लेता है। यही उसका युद्ध-कौशल है। लेकिन आज पातू के पकड़ने से पहले ही वह चम्पत हो गया।

पद्म परेशान-सी हो उठी--"अरे ओ फतिंगा... कहीं चल मत देना, हाँ!"

फतिंगा छोरे को पुकारने का नाम था। एक अच्छा-सा नाम भी माँ-बाप ने रखा था, पर वह नाम उसके माँ-बाप ही जानते थे, छोरे को भी मालूम था। लेकिन फतिंगे ने पद्म की बात पर कान नहीं दिया। मगर भरोसा था तो इतना ही कि भागा वह घर के अन्दर को था। पद्म भी अन्दर चली गयी।

अनिरुद्ध ने पूछा, "कहाँ चली!"

"देखूँ जरा, वह गया कहाँ?"

"मरने दे उसे, तेरा क्या! तू अपना काम कर।"

"आज षष्ठी है, जबान पर लगाम नहीं तुम्हें!" और बड़ी-बड़ी आँखों की जलती हुई दृष्टि से अनिरुद्ध का मौन तिरस्कार करके पद्म चली ही गयी।

दाँत पीसते हुए अनिरुद्ध पद्म को देखता रहा। लेकिन पद्म ने पलटकर भी नहीं ताका, वह अन्दर चली गयी। लम्बा निःश्वास छोड़कर अनिरुद्ध भी काम करने लगा।...

खैर, फतिंगा कहीं भागा नहीं था। यतीन की बैठक में जा बैठा था वह। यतीन की आवाज से पद्म को फतिंगा के वहाँ होने का अन्दाज लग गया।

यतीन ने पूछा, "माँ कहाँ है रे?"

"लुहारखाने में।"

"लो, मेरी ही खोज हो रही है!"—पद्म हँसी। क्यों? माँ की खोज किसलिए? पता नहीं, क्या हुक्म हो? अन्दर के दरवाजे की जंजीर हिलाकर उसने जता दिया कि माँ है, मर नहीं गयी। यतीन के कमरे के बरामदे पर भरपूर मजलिस बैठी थी। देबू, जगन, हरेन, गिरीश, गदाई—बहुतेरे आये थे। जंजीर की आवाज से यतीन हँसता हुआ बरामदे से कमरे में होता हुआ अन्दर के दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ।

धूल-कालिख लगे अपने बदन और फटे-मैले कपड़े की तरफ देखकर पद्म सकुचाकर छिप गयी—"न, अन्दर मत आओ!"

"नहीं आऊँ?"

"न, मैं भूत बनी खड़ी हूँ।"

हँसकर यतीन ने कहा, "भूत बनी?"

"हाँ, देख लो" दरवाजे की फाँक से, उसने अपने कालिख-लगे हाथ बढ़ा दिये—"आना मत, भूतनी बुढ़िया... डर जाओगे।" एक नये आनन्द-पुलक से वह खिलखिला उठी।

यतीन ने हँसकर कहा, "मगर भूतनी माँ, चाय की जो जरूरत है! हाथ धो डालो झटपट!"

पद्म बुदबुदाने लगी—"चाय आखिर दिन में कोई कै बार पीता है! नसीब तो मेरा खोटा है, अनिरुद्ध शराबी, यतीन चायखोर और यह कमबख्त फतिंगा यह भी दँतैल!"

यतीन बैठक में लौट गया। चाय बैठक का अन्यतम आकर्षण है। हरेन ने इसी बीच दो बार याद दिलायी।

"चाय कहाँ है? मामला जम जो नहीं रहा है!"

बैठक में आज जगन बंगाल के राजनीतिक इतिहास पर भाषण दे रहा था। प्रजा के अधिकार-सम्बन्धी कानून के संशोधन की सम्भावना पर चर्चा चल रही थी। बंगाल की विधान-सभा में इसपर जोरों की बहस चल रही थी। यह बात इसलिए उठी थी कि उस रोज श्रीहरि पाल ने शासन-वाक्य के रूप में कहा था—"प्रजास्वत्ववाली

जमीन के पेड़ों से प्रजा को महज फल लेने के सिवाय और कोई हक नहीं है। पेड़ जमींदार के होते हैं।"

जगन कह रहा था, "प्रजा के अधिकारवाले कानून से वह स्वत्व प्रजा का होगा। जमींदार के जहर के दाँत अब टूटे हैं। उस दिन अखबार में सब छपा था कि कैसे और क्या-क्या परिवर्तन होगा। मैंने जतन से अखबार की कतरन रखी है। यह कानून पास होकर ही रहेगा। उफ्, स्वराज पार्टी ने क्या-क्या दलीलें दीं! आग फैला दी!"

गदाई ने पूछा, "कैसा क्या होगा डॉक्टर?"

हरेन अखबार का केवल शीर्षक पढ़ा करता और पढ़ा करता कानून-कचहरी की बात। विस्तार से पढ़ने का धैर्य उसमें नहीं है—फिर भी उसने कहा, "बहुत-बहुत बातें हैं। इत्ती बड़ी पोथी हो जाएगी!"—कहते-कहते दोनों हाथ फैलाकर उसने आकार का आभास दिया। फिर बोला, "मूर्ख की तरह मुँह से ही पूछता है, कैसे क्या होगा डॉक्टर!"

जगन को भी सब याद नहीं था। सब-कुछ वह समझ भी नहीं सका, फिर भी कुछ-कुछ बताया। कहा, "पेड़ों पर प्रजा का हक कायम होगा।"

"हस्तान्तरण कानून से प्रजा को उठा देनेवाली जमींदार की क्षमता नहीं रहेगी।"

"खारिज की फीस तय कर दी जाएगी और वह फीस प्रजा रजिस्ट्री के दफ्तर में दाखिल करेगी।"

"रियाया माल-जमीन पर भी पक्का घर बनवा सकेगी।"

"सारांश यह कि जमीन प्रजा की है।"

गदाई ने कहा, "सुना, कोफी का भी हकूक होगा, बँटाई का भी।"

जगन ने कहा, "हाँ, हाँ! वह हकूक हो जाने से किसी का फिर रहेगा क्या? जा, नाक में तेल डालकर सो जा। बँटाई की सारी जमीन तेरी हो जाएगी।"

अपने स्वभाव के मुताबिक देबू चुप बैठा था। आज कई दिनों से उसके मन में एक अशान्ति-सी है। वह उस दिन की बात सोच रहा था। उसकी बात पर बाउरी-मोची वगैरह श्रीहरि की उपेक्षा करके चले आये थे। अचानक किसी न किसी ओर से श्रीहरि का कठोर शासन-दण्ड उनके सिर पर आ टूटेगा। उन लोगों को उस आघात से बचाना है और बचाना उसी को होगा। न्याय के नाते उनको बचाने की जिम्मेदारी उसकी है। लेकिन...उसने एक उसाँस भरी। बिलू, मुन्ना, जगह-जायदाद के बारे में सोचने की उसे फुरसत नहीं। कभी-कभी एक सामयिक दुश्चिन्ता की तरह उनकी याद भर आ जाती है।

जगन भाषण दिये ही चला जा रहा था, "आज अगर देशबन्धु चित्तरंजनदास जीवित होते, तो सोचना ही नहीं था।..."

उस नाम से मजलिस के सारे लोगों के बदन रोमांचित हो उठे। देशबन्धु का नाम सबने सुना है, उनके बारे में सभी जानते हैं, उनकी तसवीर भी सबने देखी है। देबू की आँखों में उनकी तसवीर नाच उठी। मृत्युशय्या की उनकी जो तसवीर ली गयी थी उसकी एक प्रति फ्रेम करके उसने घर में टाँग रखी है। उस तसवीर के नीचे महाकवि रवीन्द्रनाथ ने लिख दिया है :

'साथ तुम लाये थे मृत्युहीन प्राण, मरण पर वही तुम कर गये दान!'

यतीन ने भीतर से बुलाया, "फतिंगे!"—वह चाय की खोज में भीतर गया था।

बैठक में लोगों के बीच फतिंगे को मनमानी शरारत करने का मौका नहीं मिल रहा था, कुछ देर तक रास्ते के उस ओर झाड़ियों में एक गिरगिट का शिकार देख रहा था। देखते-देखते जरा शान्त-स्थिर हुआ कि सो गया। बेचारा!

हरेन ने डपटकर कहा, "अबे ऐ छोरे! ऐ!"

देबू ने कहा, "छोड़ दो! लड़का है, सो गया है।" कहकर वह खुद ही उठकर अन्दर गया। यतीन से कहा, "क्या करना है, कहिए?"

यतीन ने कहा, "चाय के कटोरे सबको दे दीजिए!"

देबू ने सबको चाय दी। चाय पीते-पीते जगन ने शुरू किया महात्मा गान्धी के बारे में। मोतीलाल, जवाहरलाल, यतीन्द्रमोहन, सुभाषचन्द्र के बारे में। चाय पीकर सब चले गये। सबसे अन्त में गया देबू, गोकि जाने के लिए सबसे पहले खड़ा हुआ था वही। लेकिन यतीन ने उससे कहा, "आपसे कुछ बातें जो करनी थीं देबू बाबू।"

देबू रुक गया। सबके चले जाने के बाद यतीन बोला, "अब देर मत करें देबू बाबू, समिति का काम स्वीकार लें।"

समिति यानी प्रजा-समिति! यतीन देबू से उसका भार लेने को कह रहा था।

देबू चुप रहा।

"आपके विना यह सब नहीं होने का, नहीं चलने का। सभी आपको चाहते हैं शायद इससे मन-ही-मन डॉक्टर जरा असन्तुष्ट भी हो। हो तो हो, लेकिन अब एक चीज बन गयी है, तो उसे बिगड़ने नहीं दिया जा सकता।"

देबू ने कहा, "अच्छा, इसका जवाब मैं आपको कल दूँगा।"

यतीन हँसा, "जवाब का क्या है, भार आपको लेना ही पड़ेगा।"

देबू चला गया। यतीन स्तब्ध होकर बैठा रहा।

छात्र-जीवन में उसने बंगाल के गाँवों की दुर्दशा बहुत पढ़ी है, बहुत सुनी है। बहुत-से सरकारी आँकड़ों और पुस्तक-पत्रिकाओं में भी पढ़ी, मगर उसके ऐसे वास्तव रूप की कल्पना नहीं की थी! अभी तो चैत ही है, उपज का अन्न अभी तक खेतों से खलिहान में भी पूरा नहीं आ पाया है और इसी बीच लोगों का भण्डार खाली हो गया है। धान श्रीहरि के घर गया, जंक्शन की मिलों में पहुँचा। गेहूँ, जौ, उड़द, आलू तक बेच दिया लोगों ने। तिल खेत में है, पर उसपर भी पैकार पेशगी दे चुके

हैं। श्रीहरि के खलिहान में इसी बीच एक भीड़ हो गयी। उसने उधार लगाना शुरू कर दिया धान। गाँव की बैहार का सारा कुछ महाजन के पास बन्धक है। महाजनों में सबसे बड़े हैं श्रीहरि। यानी ज्यादा से ज्यादा श्रीहरि के पास। गाँव का एक-एक घर जर्जर, श्रीहीन है। लोग मूक हैं और मवेशी कमजोर। चारों ओर जंगल ही जंगल, टीलेखन्दकों से गाँव की बाट बीहड़। उस दिन की बारिश से सारा रास्ता किचकिच हो गया। नहाने और पीने के पानी के तालाबों को देखकर सिहर उठना पड़ता है। विशाल जलाशय, लेकिन पानी है मुश्किल से थोड़ी-सी जगह में, गहराई महज हाथ-डेढ़ हाथ! उस रोज उसने किसी को पलुओं से उसमें मछली मारते देखा था। कीच-पानी में उसकी कमर तक भी ठीक से नहीं डूबी।

ताज्जुब है, इस हालत में लोग जिन्दा हैं!

विशेषज्ञों का कहना है, यह जीना प्रेत का जीना है। या कि क्षय के रोगी की तरह दिन गिनना है। निश्चेष्ट आत्मसमर्पण से तिल-तिल मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं सब। बिलकुल निरुद्यम होकर सबने अपने को मृत्यु के हाथों सौंप दिया है।

यहाँ प्रजा-समिति टिकेगी? जमा-पूँजी नदारद। बेसहारे खेतिहरों के सामने खेती का समय—कठिन गरमी, विपद्संकुल वर्षा। आँखों के सामने श्रीहरि के खलिहान में ढेर का ढेर धान। ऐसी जगह में प्रजा-समिति बचेगी कि किसी को बचा सकेगी? समिति का प्रथम और प्रत्यक्ष संघर्ष तो श्रीहरि से होगा। और होगा क्या, शुरू तो हो ही गया!

सामने बरामदे पर फतिंगा सो रहा था।

गाँव का भावी पुरुष वही है! नितान्त गरीब, बेचारा, बेसहारा! स्वजनहीन, आत्मसर्वस्व। जिस बसेरे को बसाने के लिए लोग श्री यानी लक्ष्मी की तपस्या करके उसे हासिल करना चाहते हैं, वही बसेरा इसका उजड़ चुका है।

एकाएक पद्म की ऊँची आवाज उसके कानों तक पहुँची। वह उसे डाँट रही थी। उसकी झनझनाहट से उसकी विचारलीनता टूट गयी। षष्ठी-पूजा की थाली हाथ में लिए पद्म बकझक करती हुई सामने आ खड़ी हुई। स्नान कर चुकी थी, पहनावे में एक पुराना शुद्ध कपड़ा। बोली, "तुम भी कैसे लड़के हो? पचास बार तो जंजीर बजायी, सुन नहीं पाते? खैर, फिर भी मेरा भाग्य कहो कि दल-बादल सब गया। लो, उठो। टीका लगा लो।"

यतीन हँसता हुआ खड़ा हो गया। शुचिस्मिता पद्म उसके माथे पर दही-हल्दी का टीका लगाकर बोली, "तुम्हारी माँ आज द्वार के चौखटे पर तुम्हें टीका लगाएगी।"

यतीन को टीका लगाकर उसने पुकारा, "फतिंगे! अरे ओ फतिंगे!..जरा नींद तो देखो छोरे की कुवेला में! फतिंगे!"

फतिंगा इस बीच मजे की नींद सो चुका था। भूख लगने का समय भी हो गया था, इसी से दो-तीन बार आवाज देते ही जग पड़ा।

"उठ, खड़ा हो जा! टीका लगा दूँ बेटे! उठ!"

फतिंगा ने खड़ा होते ही पहले हाथ पसार दिया—"प्रसाद! प्रसाद दो!"

पद्म हँस पड़ी, "ठहर, पहले टीका लगा दूँ!"

फतिंगा बड़े भले लड़के-सा खड़ा हो गया। माथा आगे करके टीका लगवा लिया।

यतीन ने कहा, "ऐ फतिंगे, प्रणाम कर! प्रणाम करना चाहिए। ठहरो, मैं भी प्रणाम कर लूँ, माँ!"

"बाप रे, मुझे नरक भेजे बिना नहीं मानोगे तुम!"

और पद्म झट फतिंगे को गोद उठाकर एक प्रकार से भागकर ही अन्दर चली गयी।

चैत की दोपहर। बरामदे की चौकी पर यतीन अलसाया पड़ा था। चारों तरफ धूप तप रही थी। गरम हवा बहकती हुई जोरों से ही बह रही थी। बरगद, पीपल, शिरीष के बड़े-बड़े पेड़ कोंपलों से लदे। ताप से कोमल पत्ते मुरझा गये थे। उसदिन जो बारिश हुई तो उससे खेतों में हल चलने लगे थे।...हल-बैल लिए हलवाहे खेतों से लौट रहे थे। सारा बदन पसीने से तर; स्वेदसिंचा काला चमड़ा धूप से लोहे के पत्तर-सा चमक रहा था। बाउरी-मोची औरतें गोबर, लकड़ी-काठी बीनकर लौट रही थीं। ठीक सामने—रास्ते की ओर उधर, एक शिरीष के पेड़ से लिपटी कोई लता थी—लता में लुथनी फूल। उस पर मँडराती हुई मधुमाछी गुनगुना रही थी—जैसे एक ऐक्य-संगीत का स्वरजाल बुन रही हो। एक-दो फुलसुंघी चिड़ियाँ नाचती हुई इस डाल से उस डाल पर आ जा रही थीं। कहीं दूर पर दो कोयलें होड़ लगाकर कूक रही थीं। 'पी कहाँ' की आज बोलती बन्द थी। कहाँ गयी, पता नहीं। कई टोलियों में ऊपर बनसुग्गे उड़ रहे थे—तिल की फसल की ताक में। अनगिनत रंग-बिरंगी तितलियाँ देवलोक की हवा से उड़ते हुए फूलों-सी मँडरा रही थीं।

गन्ध, गीत और रंगों की छटा में गाँव का यह एक अनिन्द्य रूप! इस गन्ध, गीत और रंग में कवि के गीतों-जैसी एक मादकता हो मानो! यतीन उसी इशारे पर जैसे मन्त्रमुग्ध होकर सहसा उठा और चल पड़ा। करीब ही किसी पेड़ पर कोई चिड़िया बोल रही थी। बड़ी मीठी बोली। बोली ही नहीं, उसकी बोली में मानो संगीत की एक पूर्णता हो—वह मानो किसी गीत की पूरी एक कड़ी गा रही हो! उस चिड़िया की ताक में यतीन झाड़ी में घुस गया। जरा ही दूर गया कि उसे एक बहुत ही तेज नशीली महक मिली। वह उस आवाज और गन्ध के उत्स की खोज में आगे बढ़ा। अजीब है। यह चिड़िया और ये फूल उससे आँख-मिचौनी खेल रहे हैं। क्या? उनकी खोज में वह जितना ही आगे बढ़ने लगा, वे उतना ही आगे खिसकते जाते। जहाँ

वह चिड़िया बोल रही थी उस पेड़ के पास पहुँचा कि चिड़िया चुप हो गयी, फूल छिप गये! फिर कुछ दूर आगे से बोल उठी वह चिड़िया!—उत्स जैसे और आगे हो। मोहग्रस्त-सा यतीन और आगे बढ़ता चला।...

"बाबू!"—किसी ने पुकारा। किसी स्त्री की आवाज।

यतीन ने नजर घुमायी। देखा, एक पेड़ की जड़ पर दुर्गा बैठी है। यहाँ क्या कर रही है यह?

"दुर्गा?"

"जी!" कमर में फेंटा कसे बैठी-बैठी कुछ चुन रही थी वह।

"क्या है? क्या चुन रही हो तुम?"

दुर्गा ने एक अँजुरी उठाकर उसके सामने कर दिया। स्फटिक के दाने-से ये क्या हैं? यह नशीली महक तो इसी की है। इसी की माला बनाकर दुर्गा पहने हुई थी। उस विलासिनी की ओर यतीन अवाक् देखता रहा। बनावट में, आँख-मुँह के लोनेपन में, रूखे बालों में—उसके सर्वांग में एक अनोखा रूप है, जो आज एक नये ही ढंग से उसकी नजर में आया।

दुर्गा ने हँसकर कहा, "महुए के फूल हैं।"

"महुए के फूल?"

"जी!"

यतीन फूलों को अपनी नाक के पास ले गया। एक तीखी नशीली गन्ध। दिमाग में जाने कैसा होने लगा, सर्वांग सिहर उठा।

"चुनकर रख दूँगी, गाय-बैल खाएँगे। गाय ज्यादा दूध देगी।" वह हँसने लगी।

"और क्या करोगी?"

"और जो करूँगी, सो आपके सुनने योग्य नहीं।"

"क्यों, कहने में एतराज क्या है?"

"और हम शराब बनाते हैं इसकी!"

"शराब!"

"जी।" पीछे मुड़कर दुर्गा हँसने लगी। फिर बोली, "कच्चे भी खाती हूँ। बड़े मीठे लगते हैं।"

यतीन ने एक फूल टप् से अपने मुँह में डाल दिया। सच ही बड़ा मीठा लगा। लेकिन उस मिठास में भी वही मादकता। एक और खाया। फिर एक। कुछ ही देर में उसकी कनपटी जैसे गरम हो गयी। साँस उग्र और तप्त-सी...किन्तु बड़ा मीठा रस।

जाते-जाते दुर्गा पलटकर खड़ी हो गयी। हँसकर बोली, "महुआ और मत खाइए बाबू, नशा होगा।"

"क्या होगा?"

"नशा!"—और दुर्गा चली गयी।

नशा! ठीक तो है, सिर जैसे झिमझिम करने लगा। सारे बदन में जलन-सी हो आयी। देह का ताप भी बढ़ गया हो—ऐसा जान पड़ने लगा।

"बाबू! बाबू!"

फिर किसने पुकारा? कौन है? झाड़ियों में फतिंगा आया।

"गाँव में बड़ी हलचल हो गयी बाबू! कालू शेख बाउरियों और मोचियों के गाय-गोरू पकड़ ले गया।"

"गाय-गोरू पकड़ ले गया? कौन है ये कालू शेख? क्यों ले गया?"

"कालू छिरू घोष का प्यादा है। चलिए न आप! लोग आपको बुला रहे हैं।"

यतीन जल्दी-जल्दी लौटा। फतिंगा महुए के पेड़ पर चढ़ गया। बिलकुल फुनगी पर चढ़कर महुआ खाने लगा।

श्रीहरि अपमान भूला नहीं था। भूलने की बात भी न थी। इस गाँव की शासन-शृंखला की जिम्मेदारी सब प्रकार से उसी की है। इस दायित्व को श्रीहरि हर पल महसूस करता है। आपद्-विपद् में वह लोगों की रक्षा करेगा, शासन-शृंखला तोड़ने पर सजा देगा, बगावत को कठोर हाथों दबाएगा। यह बात वह मानता है कि जब वह जुल्मी था, तो उसे यह अधिकार नहीं था। लेकिन आज तो वह कोई जुल्म नहीं करता, उसकी धर्मपरायणता, कर्तव्यपरायणता आज सारे गाँव में महिमान्वित होकर चमक उठी है। चण्डीमण्डप, षष्ठी-तल्ला, कुआँ, स्कूल सब कहीं उसी का नाम जगमग-जगमग कर रहा है। उसने सब अपने ही बनवा दिया है। रास्ते का वह नाला सदा से एक अलंघ्य बाधा रहा है; आज वह स्वयं उस बाधा को हटा देने के लिए तत्पर हुआ है। शिवकालीपुर की सारी व्यवस्था को वह सुचारु करने के जतन में लगा है। उस व्यवस्था को बिगाड़ने के लिए जो विद्रोह हो रहा है, उस विद्रोह को दबाने का न केवल उसका अधिकार है, बल्कि यह उसका कर्तव्य है। लेकिन वह शुरू ही में कठोर दण्ड देना नहीं चाहता। जो लोग चण्डीमण्डप की छौनी करने के लिए मजदूरी माँगते हैं, कहते हैं कि वह जमींदार का है, हम बिना मजूरी लिए क्यों काम करें—ऐसों को वह बता देना चाहता है कि बिना कुछ दिये वे जमींदार का कितना लेते हैं। जमींदार का महज कुछ पत्ता ही वे नहीं लेते, बल्कि जमींदार की जो जमीन परती पड़ी है, एकमात्र वही उन लोगों की गोचरभूमि है। जमींदार के निजी पोखर में वे नहाते हैं, वहीं से पीने के लिए पानी लेते हैं, और उसी की परती पड़ी जमीन पर से उन लोगों के जाने-आने का रास्ता है। चण्डीमण्डप भी उसी के अधिकार में होने के कारण बिना मजूरी लिये उसकी छौनी वे नहीं करेंगे क्या? इसीलिए उसने अपने नये प्यादे कालू शेख को यह हुक्म दे रखा है कि बाउरी-मोची

के मवेशी जैसे ही जमींदार के बाँध पर या परती जमीन में घुसें, उन्हें हँकाकर सीधे कंकना के अड़गड़े में ले जाकर चालान कर दे। नया बहाल हुआ कालू अपने मालिक को अपना काम दिखाने के लिए उतावला है और फिर यह काम कुछ लाभ का भी है। अड़गड़ावाले ऐसे में फी मवेशी कुछ घूस देते हैं। कालू ने झुककर मालिक को सलाम ठोंका और उसका हुकुम बजाने चल पड़ा। भूपाल ने उसे पहचान करा दी कि कौन-कौन जानवर श्रीहरि के अनुगत लोगों के हैं। बाकी को कालू हँका ले गया।

श्रीहरि के गाँव-शासन का यह दूसरा दौर था। अगर लोग इसपर भी न समझें तो और भी उपाय है। अवश्य, एकबारगी सख्त सजा वह नहीं देगा। अधर्म नहीं करेगा। लक्ष्मी ने उसपर कृपा की है। यह उसके पिछले जन्म के सुकर्म का फल है। उसका अपव्यय वह नहीं करेगा। दान के समान पुण्य नहीं, दया से बड़ा धर्म नहीं—सजा देते वक्त भी वह इस बात को नहीं भूलेगा। उसकी इच्छा थी कि जानवरों को अपने ही यहाँ पकड़वा मँगाये। लोग आ-आकर जब रोएँ-धोएँगे, तो उन्हें अच्छी तरह से उनकी गलती समझा देगा। ऐसे में उन्हें अड़गड़े के पैसे नहीं देने पड़ेंगे। पैसे भी तो कुछ कम नहीं देने पड़ते हैं। चार आने फी जानवर। इस तरह चालीस-पचास जानवरों के दस-बारह रुपये भरने पड़ जाएँगे। और यदि कहीं जरा देर हो गयी, तो अड़गड़ावाला फी जानवर एक आने के हिसाब से खुराकी वसूलेगा, यद्यपि खुराक के नाम पर एक बिचाली भी नहीं देता, जानवर यों ही रहते हैं। खुराकी के भी ढाई रुपये के लगभग लग जाएँगे। मगर वह करता क्या? यही कानून है। कुछ गैर-कानूनी करो तो देबू और जगन उसे आफत में डालने के लिए मामला चला सकते हैं, दरख्वास्त दे सकते हैं। चण्डीमण्डप में अधलेटे अपना गड़गड़ा पीते हुए वह अलसायी आँखों गाँव के हितुओं का पुरुषार्थ देख रहा था। मगर इतनी जल्दी यह खबर फैलायी किसने?

खबर ले आया था तारा हजाम! कालू शेख ने जानवरों को घेरा तो चरवाहों ने पाँव पकड़कर उसकी आरजू-मिन्नत की, "भई शेखजी, आपके पाँवों पड़ते हैं, छोड़ दीजिए, आज-भर माफ कीजिए।"

ऐन वक्त पर इधर से मयूराक्षी के बाँध पर से ताराचरण भण्डारी आ रहा था। वह ठिठक गया। चरवाहे शेख की डाँट से डरकर कुछ हट जरूर गये थे, मगर जानवरों का साथ नहीं छोड़ सके। दो-एक चरवाहे तो जोर-जोर से रो पड़े।

कालू ने कहा, "अबे उल्लू, बेवकूफ! अपने घर जाकर कह रे छछूँदर! यहाँ मत चिल्ला।"

लेकिन चरवाहों ने यह न समझा। वे उन जानवरों की ममता से खिंचे पीछे-पीछे चलने लगे। उनका रोना थम नहीं रहा था। हाय-हाय, क्या करें!

शेख ने उनको खदेड़ा, "भाग, कह रहा हूँ!"

चरवाहे जरा भागे। मगर शेख ज्यों ही आगे बढ़ा, वे लोग फिर पीछे हो लिये।

ताराचरण समझ गया कि माजरा क्या है। कल जब वह श्रीहरि के पाँव के नाखून काट रहा था, तो उसे इसका थोड़ा-सा आभास भी मिला था। ताराचरण झट गाँव लौटा। देबू के पीछे के दरवाजे से चुपचाप उसे बताकर चला गया। बोला, "जानवरों को छुड़ाने का जल्दी इन्तजाम कराओ भैया, वरना नाहक ही एक आना करके खुराकी भी लग जाएगी। वह भी ढाई-तीन रुपया हो जाएगा। और कहीं छह बज गये, तो आज छोड़ेगा भी नहीं। कल फी जानवर दो आने के हिसाब से अदा करना होगा।"

ताराचरण पीछे के ही दरवाजे से निकला। बेशक उसे पता था कि श्रीहरि जरूर अभी चण्डीमण्डप में ही बैठा होगा। और उसे कहीं देबू के यहाँ से निकलते देख ले तो शुबहा करेगा। उसने झाड़ियों की आड़ से चण्डीमण्डप की ओर उझककर देखा—उसका अनुमान एकदम ठीक था। उसके मुँह पर एक झलक हँसी खेल गयी।

देबू कुछ देर माटी पर नजर गड़ाये खड़ा रहा। उसे कई दिनों से जिस प्रकार की आशंका थी, वह प्रहार आज पड़ गया। इसकी सारी जिम्मेदारी उसी पर है, इस बात को वह कभी एक पल के लिए भी अस्वीकार नहीं कर सका। सो इस प्रकार के आते ही बेकसूर गरीबों को बचाने के लिए वह सजग होकर सोचने लगा।

ये गरीब पैसे भी कहाँ से लाएँगे? ताराचरण बता गया, फी जानवर एक आना ज्यादा लगेगा—यानी ढाई-तीन रुपये ज्यादा। इसका मतलब कि जानवर चालीस-पचास के करीब होंगे। उसने मन-ही-मन हिसाब लगाकर देखा, दस-पन्द्रह रुपये भरने होंगे। ये रुपये कहाँ से लाएँगे वे? न तो घर है न द्वार; जमीन-जायदाद भी नहीं। सहारे को सिर्फ टूटा मकान है और ये गाय-बकरियाँ हैं। गाय का दूध बेचते हैं, गोबर के गोंयठे बेचते हैं, गाय-बैल-बकरियाँ बेचते हैं। यही उनके एकमात्र अवलम्ब हैं। ऐसे मौके पर शेख रुपये तो दे सकता है, मगर वसूल एक के दो करेगा। और फिर उन बेचारों की इस मुसीबत का एकमात्र कारण देबू ही है। देबू समझता है कि श्रीहरि के सामने झुक जाने से ताड़ के पत्ते का मामला सहज ही चुक जाता। लेकिन अन्याय को नहीं मानने के लिए उसी ने तो लोगों को उकसाया। आज जब अपने ऊपर आन पड़ी है, तो न्याय और धर्म को सिर-आँखों उठाये बिना कैसे चलेगा!

कुछ क्षण और सोचने के बाद उसने अपना सिर ऊँचा किया। आवाज दी—"बिलू!"

ताराचरण के आते ही बिलू भी आकर ओट में खड़ी हो गयी थी। उसके चले जाने के बाद भी वह देबू के सामने नहीं आयी, चुपचाप आड़ में खड़ी रही। उन्हीं गरीबों के बारे में सोच रही थी। हाय, बेचारे! उनपर भी ऐसा जुल्म किया जाता है कहीं! सुनसान दोपहरी में हरिजन टोले की औरतों का रोना सुनाई पड़ रहा था।

बिलू को भी रोना आ गया। वह भी रोने लगी। देबू ने आवाज दी, तो वह झट आँखें पोंछकर सामने आ खड़ी हुई।

देबू ने बिलू के अंग-अंग पर गौर किया। कहीं भी सोने का कोई टुकड़ा न था। खेतिहरों के यहाँ सोने का खास चलन नहीं—बहुत हुआ तो नाक की कील, करनफूल, गले में सिकड़ी, हाथ में सोना-बँधी शंख की चूड़ियाँ। बिलू के सारे के सारे खत्म हो चुके थे।

बिलू ने पूछा, "क्या कह रहे हो?"

"और कुछ भी नहीं है?"

"क्या?"

"ऐसा कुछ, जिसे बन्धक रखकर पन्द्रह रुपये तक मिल सकें?"

कुछ क्षण सोचकर बिलू ने शायद मन-ही-मन अपने सारे भण्डार की तलाशी ली। उसके बाद वह अन्दर गयी और एक जोड़ा पतली बालियाँ लिये बाहर निकली।

देबू दो कदम पीछे हट गया—"मुन्ने की बालियाँ?"

"हाँ।"

ये बालियाँ बिलू के बाप ने दी थीं। देबू की लम्बी अनुपस्थिति में हजार कष्ट होने पर भी बिलू इन बालियों को बचाये रही थी। बोली, "लो!"

"मुन्ने की बालियाँ लूँ?"

"क्यों नहीं? जब तुम्हारे पास होगा, बनवा देना।"

"और न हो पाया, न बनवा सका तो क्या होगा?"

"तो क्या, मुन्ना नहीं पहनेगा।"

देबू ने अब झिझक नहीं की। बालियाँ लीं, कुरता पहना और तेजी से निकल पड़ा।

जानवरों को अड़गड़े से छुड़ाकर वह शाम को लौटा। आधे दिन तक धूप में चक्कर काटता रहा, कपड़े पसीने से तर थे। ऊपर से इतने जानवरों की खुरों से उड़ती हुई धूल। बदन किचकिच हो गया। उस समय यतीन के पास खासी एक मजलिस जमा थी।

प्रायः सबने एक ही साथ पूछा, "क्या हुआ?"

"जानवर छुड़ा लिये गये!" देबू तृप्ति की हँसी हँसा।

"कितने लगे?"

देबू ने इस बात का जवाब नहीं दिया। कहा, "यतीन बाबू!"

"कहिए!"

"आपसे एक बात कहनी है।"

"ठहरिए! आप बड़े थके-थके दीख रहे हैं। पहले आपके लिए जरा चाय बना लाऊँ।"

"छोड़िए! मैं घर जाऊँगा। बात कहकर ही जाऊँ।"

यतीन देबू को लेकर अन्दर चला गया।

देबू ने धीमे पर दृढ़ता के साथ कहा, "प्रजा-समिति का भार मैं लूँगा।"

"रुकिए! चाय पीने के बाद ही आपको जाने दूँगा।"

उसने अन्दर आवाज दी, "माँ!"

किसी ने जवाब नहीं दिया।

पद्म घर में नहीं थी। वह फतिंगे की ख़ोज में निकली थी। वह अभी तक लौटा नहीं था। उसी को ढूँढ़ने गयी थी।

यतीन ने खुद चाय का पानी चढ़ा दिया।

तेईस

हरेन घोषाल का जोश—वह एक अजीब चीज है! उसने गाँव की गली-गली में ऐलान कर दिया, प्रजा-समिति की बैठक है। प्रजा-समिति की बैठक! जगह बताना वह भूल ही गया। तय था कि बैठक बाउरी-टोले के धर्मराज-स्थान में होगी। लेकिन चूँकि घोषाल जगह बताना भूल गया, इसलिए लोग-बाग नजरबन्द बाबू के घर के सामने आ जुटे, क्योंकि प्रजा-समिति के सारे उत्साह का मूल वहीं पर था। हरेन ने कहा, "तो बैठक अब यहीं हो जाए। यहाँ से अब वहाँ क्या जाना। इसके सिवा जरूरत होने पर यहाँ चाय बनेगी। कुरसी-मेज है। यहीं हो!"

और यह कहते ही वह यतीन की मेज-कुरसी बाहर खींच लाया। बदस्तूर सभा मंच तैयार कर दिया। इसी बीच उसने दो मालाएँ भी गूँथ ली थीं। उसमें भूल नहीं होती उससे।

काफी लोग जुट गये। बाउरी-मोची लगभग सभी आये। गाँव के खेतिहर भी आये। खास करके आज जानवरों को अड़गड़े में चालान करनेवाली बात से सभी खासे उत्तेजित हो उठे थे। मयूराक्षी का बाँध भले ही जमींदार के खास खतियान के अन्तर्गत हो, उसे बाँधा तो रैयतों ने ही है। वहाँ लोग सदा से मवेशी चराते आये हैं। और गाँव की परती जमीन का उपयोग भी लोग सदा से चरोखर की तरह करते आये हैं। वहाँ गाय-गोरू चराने का अधिकार नहीं है, इस बात ने सबको जोश में ला दिया था। आज वह ज़ुल्म बाउरी-मोचियों पर ढाया गया, कल यह कानून सब

पर लागू नहीं होगा, यह कौन कह सकता है? बाउरी-मोची लोगों ने उतना समझा नहीं। उन लोगों ने यही सुना कि देबू गुरुजी समिति के अगुआ होंगे। इसलिए वे एहसानमन्द से आये। गुरुजी ने आज उन लोगों के लिए जो किया है, इसकी कल्पना वे सपने में भी नहीं कर सकते थे। ऐसा कभी कोई नहीं करता। वे कृतज्ञ होकर आये, निर्भय होकर आये।

उनके टोले में आज घर-घर गुरुजी की चर्चा थी। यहाँ तक कि दुर्गा की माँ भी खुले दिल से आशीर्वाद दे रही थी—"सिर के बाल जितने परमायु हो, सोने की दावात-कलम हो गुरुजी की! बेटे पर बेटा हो, लक्ष्मी की अपार कृपा हो! गुरुजी सोने का आदमी है, यह जमाई हमारा सचमुच सोने का आदमी है!"

साँझ को अपने घर तकिये पर छाती टिकाये खिड़की से बाहर की तरफ ताकती हुई दुर्गा भी यही सोच रही थी कि—गुरुजी सोने का आदमी है, सोने का! बिलू दीदी भगवती है! दुर्गा की आँखों में आज वह नजरबन्द बाबू भी फीका पड़ गया था। उसके जी में एक बार बैठक में जाने की बात आयी—चलकर जरा देख आये कि बैठक में दस जनों के बीच गुरुजी सिर ऊँचा किये कैसे बैठे हैं। फिर सोचा, नहीं। बैठक हो ले, तब वह बिलू दीदी के यहाँ आएगी। जाकर गुरुजी से थोड़ा हँसी-मजाक करेगी और उसके जवाब में थोड़ी-कुछ डाँट-धमक खा आएगी। सोचने लगी, बात शुरू कैसे की जाएगी गुरुजी से!

और उधर नजरबन्द बाबू से भी बतियाने के लिए बहुत-सी बातें उसके मन में घुमड़ने लगी थीं।

"महुए का रस कैसा लगा बाबू?"

दुर्गा अपने ही मन में हँसी। बाबू की आँखों में दौड़ती हुई लाली उसने अपनी आँखों देखी थी। मगर गुरुजी से क्या कहेगी?

दुर्गा के कोठे के सामने है अमरकुण्डा का बैहार, उसके बाद मयूराक्षी का बाँध। बाँध पर से एक रोशनी आती दीखी। रोशनी बैहार में उतरी।

"गुरुजी बड़े गम्भीर आदमी हैं।"—उसने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। उसके बाद एकाएक वह खुशी से चंचल हो उठी। गुरुजी से बात करने का बहाना मिल गया था।

"गुरुजी, आप भई, फिर से पाठशाला खोलो!"

"पढ़ेगा कौन?"

"कोई पढ़े न पढ़े, मैं लिखना-पढ़ना सीखूँगी।"

अरे, रोशनी उसी के गाँव की तरफ आ रही है। हाथ में झूलती हुई लालटेन की रोशनी में चलते हुए आदमी के दोनों पाँव साफ दीख रहे है। कौन? कौन हैं ये? एक तो लालटेन लिये है, उसके पीछे एक कोई और है। एक नहीं, दो जने। मोचीटोले के किनारे से ही गाँव में आने का सीधा रास्ता है। आनेवाले वहाँ पहुँच गये थे।

"अरे!"—दुर्गा चौंक पड़ी। यह तो हाथ में रोशनी लिये भूपाल चौकीदार है।

उसके पीछे है जमादार और जमादार के पीछे वह सिपाही। ये जरूर छिरू पाल के यहाँ जा रहे हैं। छिरू पाल के न्योते पर रात को जमादार का आना यों कोई नयी बात नहीं। पहले ऐसे जशन में दुर्गा का भी नियमित न्योता रहता था। लेकिन पाल के न्योते में जमादार के साथ सिपाही के होने की तो बात नहीं! और जमादार की पोशाक ही आज ऐसी क्यों है? आज तो वह जमादार की पूरी वरदी-पेटी में है। सिपाही के सिर पर मुरैठा है। और छिरू का वैसा जशन तो कभी रात के पहले पहर में नहीं होता है। वह होता है आधी रात में—रात के बारह बजे। दुर्गा एकाएक जरा चौंकी। अचानक उसे नजरबन्द बाबू की याद आ गयी, गुरुजी की याद आ गयी। पता नहीं, क्यों। लेकिन याद उन दोनों को आयी। वह उतरी और राह पर निकली। अँजोरिया की छठी का चाँद डूब चुका था। अँधेरे की ओट ले दुर्गा ने झाड़ियों की राह उन सबका पीछा किया।

चण्डीमण्डप पर आज अँधेरा था। आज छिरू वहाँ नहीं बैठा था। घोष बाबू के खलिहान-घर के बैठके में रोशनी जल रही थी। भूपाल की रोशनी जाकर वहीं रुकी। जशन ही है। चण्डीमण्डप देवस्थान ठहरा, वहाँ ऐसा नहीं होता। मगर श्रीहरि आजकल क्या तो...याद आते ही दुर्गा की हँसी रोके नहीं रुकी।

कोई-कोई गोरू रात को रस्सी तोड़कर खेत चरता है जाकर। जिसे इसका स्वाद एक बार मिल गया, वह फिर कभी भूल नहीं सकता। उसे जंजीर से ही क्यों न बाँधो, खूँटा उखाड़कर रात को खेत में पहुँच जाएगा। छिरू पाल शायद साधु बन गया है। दुर्गा इसी पर हँसी। लेकिन यह नयी औरत कौन है? कोई न कोई होगी। मगर कौन? दुर्गा कौतूहल को रोक नहीं सकी। श्रीहरि के घर के हर गुप्त रास्ते का उसे पता है—जाने कितनी रातों में वह वहाँ जा चुकी है। उसने कलाई की चूड़ियों को ऊपर खींच लिया और श्रीहरि के घर के पिछवाड़े जाकर चुपचाप खड़ी हो गयी। भीतर की बातें साफ सुनाई दे रही थीं। उसने कान लगाया।

जमादार कह रहा था, "बेदाग दो साल ठोंक दूँगा।"

श्रीहरि ने कहा, "तो फिर चलिए। कमिटी की बैठक जोरों से जमी है। जगन डॉक्टर, साला हरेन घोषाल, गिरीश बढ़ई और अनिरुद्ध लुहार तो हैं ही। देबू, नजरबन्द बाबू को ही घेरकर सब बैठे हैं।"

जमादार ने कहा, "जल्दी से चाय मँगाओ। चाय मैंने नहीं पी है।"

खबर श्रीहरि ने ही भिजवायी थी। नजरबन्द बाबू के यहाँ प्रजा-समिति की बैठक है। जमादार को सलामी का इशारा करते हुए सलाम भेजा गया था। जमादार को अपने लाभ की भी आशा थी। नजरबन्द बाबू को वह कानून-भंग, षड्यन्त्र, या ऐसे किसी मामले में फँसा सके, तो उसकी तरक्की होगी या पुरस्कार मिलेगा। कुछ भी न हो तो विभाग से सर्टिफिकेट तो जरूर मिलेगा। और श्रीहरि की सलामी सेंतमेत में।

दुर्गा सिहर उठी। चुपचाप तेज चाल से वह घर के पिछवाड़े से रास्ते पर आ गयी और कुछ क्षण सोचती रही। फिर मजे में चूड़ियाँ झनकाती हुई रास्ते पर चलने लगी। दूसरे ही क्षण किसी ने टोका, "कौन? कौन जा रही है।"

"मैं हूँ!"

"मैं कौन?"

"मैं मोची टोले की दुर्गादासी हूँ।"

"ओ, दुर्गा! सुन! सुन जा!"

"नहीं आती।"

अबकी भूपाल आया। बोला, "जमादार बाबू बुला रहे हैं।"

भरमुँह हँसती हुई दुर्गा अन्दर चली गयी। बोली, "हाय राम! जभी तो लग रहा था कि आवाज पहचानी-सी लग रही है, और पहचान नहीं पा रही हूँ। जमादार बाबू! खुशनसीबी अपनी। आज जाने किसका मुँह देखकर जगी थी।"

जमादार ने हँसकर कहा, "माजरा क्या है, बता तो सही। सुना, आजकल प्रेम में पड़ गयी है? पहले तो अन्नो लुहार के, और अब सुन रहा हूँ—नजरबन्द बाबू के!"

दुर्गा ने हँसकर कहा, "कहा तो आपके नेक दोस्त पाल ने ही होगा!" दूसरे ही क्षण बोली, "अब तो शायद गुमाश्ता बाबू कहना होगा? गुमाश्ताजी ने गलत कहा है, गुस्से से कहा है।"

जमादार ने टोका, "गुस्से से? गुस्सा तो खैर हो ही सकता है। तूने पुराने मितवा को छोड़ा क्यों?"

दुर्गा ने कहा, "जी आपके मीत ने तो सारे मोची टोले को आग लगाकर फूँक दिया। मैंने घर को टिन से छवाने के लिए रुपये माँगे, तो आपके दोस्त हजरत ने साफ अँगूठा दिखा दिया। झूठ कह रही हूँ कि सच, उसी से पूछिए। घर को उसने आग लगायी थी या नहीं, जरा वह बताये तो!"

श्रीहरि की शक्ल बदरंग हो गयी। जमादार ने उसकी ओर देखकर कहा, "यह दुर्गा क्या कह रही है पाल बाबू!" जमादार का कण्ठस्वर पल-भर में बदल गया।

दुर्गा ने अन्दाज से समझा, समझौते का मौका आ गया है। उसने कहा, "घाट से हो आती हूँ जमादार बाबू!"

जमादार ने दुर्गा की बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह स्थिर दृष्टि से श्रीहरि की ओर देख रहा था। उस दृष्टि का मतलब दुर्गा भलीभाँति जानती है। यह है जुर्माना वसूलने का पूर्वराग। यह अध्याय समाप्त होने में कुछ समय लगेगा। घाट जाने के लिए निकली तो मगर तुरन्त पलटकर दुर्गा ने अपनी देह की लीलायित भंगिमा से लहराकर कहा, "लेकिन आज माल चाहिए दरोगा बाबू! खाँटी माल!" और फिर वह घाट की तरफ चली गयी।

श्रीहरि के पिछवाड़े के पोखरे का बाँध जंगल-झाड़ से भरा है। वशविट्टी है।

इमली-शिरीष के पेड़ कुछ इस कदर घने हो गये हैं कि दिन में भी वहाँ कभी धूप नहीं पैठती। नीचे घनी कँटीली झाड़ियाँ उग आयी हैं। चारों तरफ दीमक के वल्मीक हैं। उनके भीतर खौफनाक साँपों का डेरा है। श्रीहरि के पिछवाड़े का पोखरा साँप के लिए मशहूर है। खास करके चन्द्रबोड़ा साँप के लिए। शाम से ही उस साँप की सीटी सुनाई पड़ती है। पोखरे के पास जाकर दुर्गा पानी में नहीं उतरी, वह जंगल में धँस गयी। निशाचरी की नाईं निर्भय चुपचाप चलकर वह जंगल पार करके जल्दी-जल्दी इस पार आ निकली। यहाँ से अनिरुद्ध का घर करीब ही था। बैठक की रोशनी वहीं तो दिखाई पड़ रही है! दौड़कर दुर्गा अनिरुद्ध के पिछवाड़े की खिड़की से कूदकर अन्दर घुस गयी।

प्रजा-समिति के सभापति का चुनाव हो चुका था। अनिरुद्ध चाय चला रहा था। जगन सोच रहा था—विदा होनेवाले सभापति की हैसियत से वह एक जोशीला भाषण देगा। और देबू अपने नये उत्तरदायित्व की सोच रहा था। अचानक एक छायामूर्ति को जल्दी से अनिरुद्ध के पिछवाड़े की ओर जाते देखकर सभी चौंक उठे। एड़ी चोटी सफेद कपड़े से लिपटी—तेज किन्तु लघुपद की चाल में गहनों की रुनझुन!—

कौन है यह? कौन गयी?

अनिरुद्ध तेजी से घर के अन्दर गया, पद्म थी? इस तरह से वह कहाँ से दौड़ी आयी? कहाँ गयी थी?

"लुहार?"

"कौन है?"

"दुर्गा!"—दुर्गा का कण्ठस्वर! क्रोध और खीज से अधीर होकर अनिरुद्ध दुर्गा के सामने गया—"क्या है?"

दुर्गा ने बड़े संक्षेप में श्रीहरि के घर जमादार के आने का समाचार दिया और जैसे आयी थी वैसे ही तेजी से गहनों की रुनझुन बजाती हुई गायब होनेवाले रहस्य की तरह देखते ही देखते ओझल हो गयी। दौड़कर वह फिर उसी पोखरे की घनी झाड़ियों में जा पहुँची।

घाट में हाथ-मुँह धोकर जब वह श्रीहरि के कमरे में पहुँची तो अगलग्गीवाले मामले का कोई किनारा हो चुका था। जमादार की नजर प्रसन्न थी। दुर्गा की ओर देखकर उसने पूछा—"हाँफ क्यों रही है?"

आतंक से आँखें फाड़कर दुर्गा ने कहा, "साँप!"

"साँप? कहाँ?"

"घाट पर! इत्ता बड़ा चन्द्रबोड़ा। यह देखिए जमादार साहब!" यह कहकर उसने अपना दायाँ पाँव रोशनी में बढ़ाया। एक जगह से ताजा लहू बह रहा था।

जमादार और श्रीहरि दोनों डर गये। सर्वनाश! जमादार बोला, "बाँधो, रस्सी से बाँधो जल्दी। पाल, रस्सी ले आओ।"

रस्सी के लिए अन्दर जाते हुए खीझ से श्रीहरि बोला, "अजीब आफत है! कहाँ से यह बला आयी!" श्रीहरि रस्सी ले आया। भूपाल को थमाते हुए बोला, "बाँध इसे। जमादार साहब, चलिए, इतने में हम उधर का काम कर लें!"

दुर्गा ने विवर्ण और करुण आँखों से जमादार की ओर देखते हुए कहा, "क्या होगा जमादार साहब?" उसकी आँखों में पानी छलक आया।

जमादार ने दिलासा दिया—"डरने की बात नहीं।" भूपाल के हाथ से रस्सी लेकर वह खुद ही बाँधने बैठ गया। भूपाल से कहा, "जल्दी थाने जा। भागकर रेक्सिन लेता आ। और, ओझा को फौरन बुला।"

दुर्गा बोली, "मुझे घर भिजवा दीजिए। मैं अपनी माँ की गोद में मरूँगी।"

श्रीहरि ने कहा, "हाँ, यही ठीक है। भूपाल, इसे घर पहुँचाकर दीनू ओझा और मीता गराई को बुला दे। भागकर जाना और भागकर आना। चलिए, जमादार साहब!"

अनिरुद्ध के बरामदे में तख्त पर यतीन अकेला बैठा था, उसने जमादार की अगवानी की, "इतनी रात को किधर छोटे दरोगा साहब?"

जमादार जरा देर चुप रहकर बोला, "गया था एक गाँव में। लौटते वक्त सोचा, जरा आपकी मजलिस भी देखता चलूँ। मगर कहाँ, यहाँ तो कोई नहीं है!"

यतीन ने कहा, "आप आये हैं, घोष बाबू आये हैं, बैठ जाए मजलिस! अबे ओ फतिंगे, जरा चाय का पानी चढ़ा।"

भूपाल ने दुर्गा को घर पहुँचा दिया और दवा तथा ओझा के लिए चला गया। दुर्गा की माँ ने चीख-पुकार शुरू कर दी। उसकी चीख से टोले के लोग जुट गये। पातू की बहू ने करुणा-भरी ममता से बार-बार पूछा, "कौन-सा साँप था ननदजी? साँप को देखा?"

दुर्गा बड़े ही कातर स्वर में बोली, "बाबा रे, तुम लोग भीड़ हटा दो।" वह छटपटाने लगी। इस मुहल्ले का सतीश काम का आदमी है। तरह-तरह की दवा-पत्तर रखता है। साँप की भी दो-चार दवा वह जानता है। वह दवा की खोज में लगभग दौड़ता हुआ ही निकला। कुछ देर में लौटा। एक जड़ी दुर्गा को देकर बोला, "इसे चबाकर देखो तो, कड़वी लगती है या मीठी!"

दुर्गा ने जड़ी मुँह में ले ली। तुरन्त थूक दिया—"थू-थू।"

सतीश ने भरोसा पाकर कहा, "कड़वी लगी—तो डरने की कोई बात नहीं है।"

दुर्गा जमीन में लोटती हुई बोली, "मिठास से उबकाई आ रही है रे! बाबा रे! वह देखो, कौन आ रहा है? ओझा तो नहीं?"

ओझा नहीं था। जगन डॉक्टर, हरेन घोषाल, अनिरुद्ध तथा और भी कई जने थे।

जगन ने आकर झट दुर्गा का पैर खींचा—"वह, साफ दाँत का दाग है।"

पातू की आँखों से आँसू बह रहे थे। वह बोला, "क्या होगा डॉक्टर बाबू?"

जगन ने जेब से छुरी निकाली। कहा, "मैं देता हूँ दवा। अनिरुद्ध, तुम परमैगनेट पोटाश को सँभालो तो जरा, मैं नश्तर लगाता हूँ, तुम दवा डाल देना।"

दुर्गा ने पैर खींच लिया, "नहीं, नहीं! छोड़ो!"

"नहीं क्या?"

"नहीं! मरे को अब और मार मत लगाओ।"

"घोषाल! पकड़ो तो इसका पैर।"

घोषाल चौंक उठा। मौका पाकर पातू की बीवी से आँखें लड़ाते हुए वह हँस रहा था।

दुर्गा ने फिर दृढ़ स्वर में कहा, "नहीं-नहीं-नहीं।"

जगन ने खीझकर कहा, "तो मर तू!"

दुर्गा औंधी पड़कर चुपचाप रोकर टूट गयी मानो। उसका सारा शरीर रुलाई के आवेग से थर-थर काँप रहा था।

अनिरुद्ध की भी आँखों में आँसू आ रहे थे। किसी तरह अपने को जब्त करके वह बोला, "दुरगा! ओ दुरगा! डॉक्टर जो कह रहा है, उसे मान जा।"

दुर्गा का कम्पित शरीर नकारने की भंगिमा से काँप उठा।

जगन नाराज होकर चला गया। अनिरुद्ध ओझे की तलाश में निकल गया। कुसुमपुर में एक नामी ओझा है। हरेन ने एक बीड़ी सुलगायी।

पास ही एक रोशनी आकर रुकी। उस रोशनी के पीछे जमादार और श्रीहरि थे। अब घोषाल भी खिसक पड़ा।

जमादार ने सतीश से पूछा, "अब कैसी है?"

"जी, अच्छी नहीं है। छटपटा रही है।"

"गराई नहीं आया है?"

"जी नहीं!"

"घोष बाबू, आप और किसी को भेज दीजिए। मैं थाने से रिक्सन भिजवाता हूँ, आइए!"—जमादार और श्रीहरि चले गये।

कुछ देर और छटपटाकर दुर्गा कुछ सँभली। बोली, "सतीश, भैया आपकी दवा अच्छी है। मुझे अब अच्छा लग रहा है।" और थोड़ी देर के बाद वह उठ बैठी।

सतीश ने कहा, "मेरी दवा अचूक है।"

दुर्गा बोली, "बहू, मुझे ऊपर ले चलो!"

ऊपर दुर्गा बिस्तर पर बैठी। अपने जूड़े से एक काँटी निकालकर उसकी नोक को घुमा-फिराकर देखा।

पातू की बहू ने पूछा, "तुमने साँप देखा? कौन-सा साँप था?"

दुर्गा ने कहा, "काला साँप था!" उसके होंठों पर बड़ी छिपी-सी हँसी की एक रेखा खेल गयी। उसे साँप ने नहीं काटा था। अनिरुद्ध के घर से लौटते वक्त ही उसने माथे की काँटी से पैर में लहू-लुहान चिह्न बना लिया था। नहीं तो क्या बैठक से सब लोग भागने का मौका पाते या कि जमादार ही उसे छुटकारा देता? शराब पीने पर जमादार की जो शक्ल होती—स्मरण करके दुर्गा सिहर उठी। दुर्गा के मन में भय था कि अनिरुद्ध के घर पर उसके जाने की बात लोग कह देंगे, पर सौभाग्य से किसी को भी उसकी याद न थी।

लेकिन नजरबन्द बाबू, देबू गुरुजी उसकी ऐसी हालत सुनकर भी उसे जरा देखने नहीं आये?

सच क्या है, इसका तो किसी को पता नहीं, फिर भी नहीं आये ये? नजरबन्द बाबू को तो खैर रात में निकलने की इजाजत नहीं है। जमादार यहीं था, छिरू पाल तो है ही। सो नजरबन्द बाबू न आये, एक बात है। लेकिन गुरुजी? गुरुजी क्यों नहीं आये?

मान से उसकी आँखों में आँसू आ गये। जगन डॉक्टर आया था, अनिरुद्ध आया था, हरेन घोषाल आया था, गुरुजी नहीं आये!

पातू की बहू ने पूछा, "ननदजी, और जलन है?"

"जा बहू, तू जा। मैं जरा सोऊँगी।"

"नहीं। आज तुम्हें सोने नहीं दिया जाएगा।"

दुर्गा अब गुस्से से अधीर हो गयी—"नहीं सोऊँगी, नहीं सोऊँगी। मेरी मौत नहीं आने की। मैं मरूँगी नहीं। तू जा यहाँ से।"

पातू की बहू दुःखी होकर चली गयी। दुर्गा तकिये में मुँह गाड़कर पड़ी रही।

कौन? नीचे कौन पुकार रहा है? 'पातू, दुर्गा कैसी है रे?'—हाँ, गुरुजी की ही तो आवाज है। हाँ-हाँ, जीने पर पैरों की आहट।

"कैसी है अब दुर्गा?" पातू के साथ देबू अन्दर आया।

दुर्गा ने जवाब नहीं दिया।

"दुर्गा!"

अबकी दुर्गा बोली, "अब तक अगर मर गयी होती गुरुजी?"

देबू ने कहा, "मैंने खोज-पूछ की थी। पता चल गया था कि तू अब अच्छी है। वह चरवाहा छोरा देख गया था आकर।"

दुर्गा ने फिर तकिये में मुँह गाड़ लिया—"कम्बख्त चरवाहा छोरा खोज कर गया। मौत मेरी!"

देबू ने कहा, "घर जाकर बैठा ही था कि महाग्राम के ठाकुर पधारे। करता क्या, अब उन्हें बिदा देकर आ रहा हूँ!"

"महाग्राम के ठाकुर?" दुर्गा के अचरज की सीमा नहीं रही।

महाग्राम के ठाकुर? महामहोपाध्याय शिवशेखर न्यायरत्न? साक्षात् देवता! जो राजा के भी यहाँ नहीं जाते, वह!

न्यायरत्न देबू के घर पर आये थे। इसपर खुद देबू के भी अचरज की सीमा नहीं थी। बिलकुल अचानक ही वह आ पहुँचे थे। हुआ इस तरह—

यतीन के यहाँ से लौटा तो वह दुर्गा की ही सोच रहा था। दुर्गा अजीब है, दुर्गा अनोखी है, दुर्गा की तुलना नहीं हो सकती! बिलू ने सारा कुछ सुन लिया था, सो वह दुर्गा की तारीफ में पंचमुख हो रही थी।...कहानी की लाख-हीरा-जैसी...देख लेना तुम...अगले जनम में उसका जनम किसी अच्छे घर में होगा। वह जिसकी कामना करके मरेगी, वही उसको पति मिलेगा।

ठीक इसी समय किसी ने दरवाजे पर आवाज दी—"मण्डलजी घर पर हैं?" आवाज से देबू समझ नहीं सका कि कौन है। लेकिन आवाज सम्भ्रमपूर्ण थी। उसने विस्मय से पूछा, "कौन?" और कहते-कहते ही वह बाहर निकला।

"मैं हूँ!" रोशनी लिये एक आदमी आगे था, उसके पीछे से उत्तर आया—"मैं ...विश्वनाथ का दादा!"

अचरज और सम्भ्रम से देबू की बोली खो गयी। उसके रोंगटे खड़े हो गये। विश्वनाथ के दादा—महामहोपाध्याय शिवशेखर न्यायरत्न! उसका शरीर काँप उठा। उसी क्षण अपने को सँभालकर उसने उनको साष्टांग प्रणाम किया।

"मैं तुम्हें आशीर्वाद देने के लिए आया हूँ। मंगल हो तुम्हारा...धर्म तुम्हें कभी त्याग न करे। जयोऽस्तु! तुम्हारी जय हो।"—कहते हुए उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा। फिर बोले, "अपना कमरा खोलो, कुछ देर बैठूँ।"

इतनी देर के बाद देबू को खयाल आया। उसने झटपट कमरा खोल दिया। दरवाजे पर खड़ी बिलू ने सब देखा था, सब सुन लिया था। उसने अन्दर की ओर बैठक में आकर अपने घर में जो सबसे अच्छा आसन था; लाकर बिछा दिया, उसके बाद हाथ में लोटा लिये खड़ी हुई आकर।

न्यायरत्न ने कहा, "पाँव धुलाओगी बिटिया? जरूरत तो नहीं थी!"

बिलू खड़ी रही। आखिर न्यायरत्न ने पाँव बढ़ाया, "लो!"

बिलू ने उनके चरण धोये और सिल्क के कपड़े से जतन से पोंछा। बैठते हुए न्यायरत्न बोले, "अपने बच्चे को लाओ, आशीर्वाद दूँ।"

देबू के चारों तरफ अचरज का जैसे मोहजाल फैल गया था। किसी अजानी

खुशकिस्मती से उसके यहाँ रात के इस अँधेरे में एकाएक स्वर्ग के देवता उतर आये हैं।...कल्याण का आशीर्वाद लिये उसका घर भर देने को आये हैं।

बिलू ने सो रहे शिशु को लाकर न्यायरत्न के चरणों पर रख दिया।

न्यायरत्न ने बच्चे को देखकर कहा, "विश्वनाथ का बच्चा इससे छोटा है। अभी-अभी तो इसको खीर खिलायी गयी है। आठ महीने का है।" फिर मुन्ने के माथे पर हाथ रखकर बोले, "यह दीर्घायु हो, भाग्य इसपर प्रसन्न हो!"—कहने के बाद ओढ़ी हुई चादर के अन्दर से गाँठ खोलकर उन्होंने दो बालियाँ निकालीं। कहा, "लो!"

देबू और बिलू—दोनों अवाक् रह गये। वे बालियाँ वही मुन्नेवाली थीं। आज ही तो गिरवी रखी गयी थीं।

"लो! मेरी बात गिरानी नहीं चाहिए बिटिया! लो, सँभालो।"

बिलू ने बालियाँ लीं। उसके हाथ काँप रहे थे।

"बच्चे को पहना दो बिटिया! आज अशोक-षष्ठी है, तुम्हारी दुनिया शोकहीन आनन्द से परिपूर्ण हो।" उसके बाद हँसकर बोले, "मेरी राझी शकुन्तला ने आकर मुझे खबर दी। बाउरी-मोचियों की गाएँ अड़गड़ा भिजवाने का पता मुझे था। सोच रहा था, किसी को भिजवाकर उनकी गायों को छुड़वा दूँ। गाएँ माता हैं, भगवती हैं, भूखी रहेंगी। और उन गरीबों का सर्वस्व चला जाएगा जुरमाना भरने में। इसी बीच समाचार मिला, तुम गायों को छुड़ा ले आये, भरोसा हुआ। मन-ही-मन मैंने तुम्हें आशीर्वाद दिया। मुझे लगा, अब हम सब जिएँगे। मुझे वह कहानी याद आयी। मन-ही-मन संकल्प कर लिया, कभी तुम्हें बुलाकर आशीर्वाद दूँगा। शाम को विश्वनाथ की बहू ने मुझसे कहा—दादाजी, जरा शिवकालीपुर के गुरुजी का तो मजा देखिए! आज षष्ठी है और उन्होंने अपने बच्चे की बालियाँ अपने यहाँ के चटर्जी बाबू की बहू के हाथ गिरवी रखी हैं। चटर्जी की बीवी ने मुझे बालियाँ दिखायीं। दिखाकर कहा, देखो तो बहू, पूछा—पन्द्रह रुपये बेजा है? मण्डल, मेरा मन अपार आनन्द से भर उठा। मैंने बारम्बार तुम्हें आशीर्वाद दिया। तो भी मन कुनमुन करता रहा। षष्ठी का दिन और गहने मुन्ने के! हो सकता है उनके लिए मुन्ना रोया हो। मैंने बालियाँ उसी समय छुड़वा मँगायीं। किसी के मार्फत भेजने को जी न चाहा। खुद ही आया हूँ। आया हूँ तुम्हें आशीर्वाद देने। तुम दीर्घजीवी हो—कल्याण हो तुम्हारा! कर्म के बन्धन में तुम धर्म को बाँधकर रखो! तुम्हारी जय हो...बिटिया, मुन्ने को बालियाँ पहना दो। तुम्हें जब रुपया हो मण्डल, मुझे दे आना। तुम्हारे धर्म, तुम्हारे पुण्य पर मैं आँच नहीं आने देना चाहता।"

देबू की आँखों से झर-झर करके आँसू चू पड़े।

बिलू की आँखों से भी आँसू झर रहे थे। उसने बालियाँ मुन्ने को पहना दीं।

न्यायरत्न ने कहा, "रोओ मत, एक कहानी कहता हूँ, सुनो!"

इसी समय यतीन आ पहुँचा—"देबू बाबू!"

"आइए यतीन बाबू, आइए!"

न्यायरत्न ने हँसकर पूछा, "इन्हें नहीं पहचानता।"

देबू ने यतीन से परिचय कराया। वह कुछ देर तक न्यायरत्न को देखता रहा, फिर उन्हें प्रणाम करके बोला, "आपके पोते विश्वनाथ बाबू को मैं जानता हूँ।"

न्यायरत्न ने पहले तो यतीन को प्रतिनमस्कार किया। उसके बाद आशीर्वाद दिया। पूछा, "उसे पहचानते हैं? आप लोगों के साथ समगोत्रीय है शायद?"

इस प्रश्न से यतीन पहले जरा हैरान हुआ, फिर भाव समझकर हँसते हुए बोला, "गोत्र एक है, गोष्ठी अलग।"

न्यायरत्न चुप रहे। कोई जवाब नहीं दिया।

यतीन ने कहा, "मुझे तारा हजाम ने बताया। सुनते ही मैं दौड़ा आया हूँ आपके दर्शन के लिए।"

"देखने की, दर्शन करने की क्या रही! न देश में रही, न लोगों में। विशाल अट्टालिका, विराट् बरगद जनमा और फटकर चौचीर हो गयी। देख ही तो रहे हैं।" वे हँसे और बोले, "इसीलिए कभी-कभी दारुण दुर्योग में उस अट्टालिका के किसी हिस्से को वज्र की मार को बेकार करते देख बड़ी खुशी होती है। आज देबू ने मुझे वही खुशी दी है।"

देबू ने यह प्रसंग बदलने के खयाल से ही कहा, "आप एक कहानी सुना रहे थे न!"

"कहानी? अच्छा, सुनो!—एक थे ब्राह्मण। बड़े कामकाजी। बड़े पुण्यवान्। चमकता हुआ ललाट। उस ललाट में सौभाग्य-लक्ष्मी ने स्वयं आश्रय लिया था। उनका हर काम महत् होता था और हरेक के पीछे सफलता होती थी। क्योंकि उनकी कर्मशक्ति में यश की लक्ष्मी ने बसेरा लिया था। कुल उनका निष्कलंक था; और पत्नी-पुत्र-कन्या-वधू के गौरव से वह निष्कलंक कुल उज्ज्वलतर हो उठा था। इसलिए कि कुल-लक्ष्मी उनके यहाँ बसती थी। ईर्ष्या से अकुलाया पाप ब्राह्मण के घर के चारों ओर अधीर हो-होकर चक्कर काटता। उसे सहन नहीं हो रहा था। बहुत सोच-विचार के बाद एक दिन वह अलक्ष्मी को अपने साथ लाया। बाहर से ब्राह्मण को पुकारा।

ब्राह्मण ने पूछा, 'कहिए?'

पाप ने कहा, 'मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरे कष्टों की सीमा नहीं। आपसे प्रार्थना है कि मेरी संगिनी को कुछ दिन के लिए अपने यहाँ आश्रय दें।'

ब्राह्मण ने कहा, 'मैं गृहस्थ हूँ। आश्रय माँगनेवाले लाचार को आश्रय देना मेरा धर्म है! ठीक है, ये रहें यहाँ। बहू-बेटी के समान ही मैं इनका जतन करूँगा। और चाहो, तो जब तक तुम्हारे दुर्दिन का अन्त न हो, तुम भी यहाँ रह सकते हो। स्वागत है।'

लेकिन बुलाने पर भी पाप आने का साहस न कर सका, क्योंकि ब्राह्मण के आश्रय में धर्म था।

खैर! अलक्ष्मी को आश्रय देते ही अजीब परिवर्तन हो गया। फले पेड़ों के फल नीरस-से हो गये, फूल मुरझा गये।

रात को ब्राह्मण जप कर रहे थे। उसी समय उन्होंने किसी का रोना सुना। ताज्जुब हुआ– जैसे कोई बिलख-बिलखकर रो रहा था। जप पूरा करके उठे कि देखा, उन्हीं के ललाट से एक ज्योति निकली। वह ज्योति धीरे-धीरे एक अनोखी नारी-मूर्ति बन गयी। अब तक वही रो रही थी। ब्राह्मण ने पूछा, 'कौन हो माँ तुम?'

उस नारी-मूर्ति ने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारी सौभाग्यलक्ष्मी हूँ। अब तक तुम्हारे ललाट में रहती आयी। आज छोड़कर जाना पड़ रहा है, इसीलिए रो रही हूँ।'

ब्राह्मण कुछ देर चुप रहे। बोले, 'एक बात मैं पूछ सकता हूँ माँ? मुझसे कौन-सा अपराध हुआ?'

'तुमने आज अलक्ष्मी को आश्रय दिया है। वह जो स्त्री है, वह अलक्ष्मी है। अलक्ष्मी और मैं–दोनों साथ तो नहीं रह सकतीं।'

ब्राह्मण ने निःश्वास छोड़ा। भाग्य-लक्ष्मी को उन्होंने प्रणाम किया, कुछ बोले नहीं। वह चली गयीं।

सवेरे उन्होंने देखा, पेड़ों के फल गिर गये, फूल सूख गये। सरोवर में छेद हो गया, उस छेद से होकर पानी निकल गया। जमीन में फसल नहीं, गायों को दूध नहीं। घर श्री-हीन।

रात फिर वैसा ही रोना उठा। ब्राह्मण के शरीर से फिर दिव्यांगना प्रकट हुई। उसने कहा, 'मैं तुम्हारी यश-लक्ष्मी हूँ, तुमने अलक्ष्मी को जगह दी, भाग्यलक्ष्मी ने तुम्हें छोड़ दिया, इसलिए मैं भी अब जा रही हूँ।'

ब्राह्मण ने चुपचाप उन्हें प्रणाम किया। वह भी चली गयीं।

दूसरे ही दिन निन्दा हुई–यह ब्राह्मण जो है, बडा लम्पट है। इसने जिस औरत को अपने घर आश्रय दिया है, उसपर इसकी बुरी नजर है। ब्राह्मण ने इस बात का प्रतिवाद नहीं किया।

उस दिन रात को फिर एक नारी-मूर्ति ब्राह्मण के शरीर से निकल आयी। ये थीं कुल-लक्ष्मी। बोलीं, 'घर में अलक्ष्मी के आगमन से भाग्य-लक्ष्मी चली गयीं, यश-लक्ष्मी गयीं। लोग तुम्हारी कलंक-कहानी कह रहे हैं। मैं कुल-लक्ष्मी हूँ, ऐसे में तुम्हारे यहाँ कैसे रह सकती हूँ मैं?'–और वह भी चली गयीं।

दूसरे दिन ब्राह्मण की देह से एक और मूर्ति निकली। नारी नहीं, पुरुष-मूर्ति दिव्य विशाल शरीर, अनोखी दमक। ब्राह्मण ने पूछा, 'आप?'

दिव्यकान्ति पुरुष ने कहा, 'मैं धर्म हूँ।'

'धर्म? लेकिन आप मुझको किस अपराध के लिए छोड़ रहे हैं?'

'तुमने अलक्ष्मी को अपने यहाँ आश्रय दिया है।'

'तो क्या मैंने अधर्म किया है?'

धर्म ने सोचकर कहा, 'नहीं।'

'फिर?'

'भाग्य-लक्ष्मी तुम्हें छोड़ गयीं।'

'आश्रय माँगनेवाले को आश्रय देना जब अधर्म नहीं है, तो निश्चय ही उन्होंने मेरे अधर्म के नाते मेरा त्याग नहीं किया है। उन्होंने मुझे छोड़ा है इसलिए कि उन्हें अलक्ष्मी का संस्पर्श सह्य नहीं।'

'हाँ।'

'भाग्य-लक्ष्मी का अनुसरण किया यश-लक्ष्मी ने। उनके पीछे कुल-लक्ष्मी गयीं। मैंने चूँ नहीं की। क्योंकि यही उनकी रीति है। एक के पीछे दूसरी आती हैं और जाती भी हैं एक के पीछे दूसरी। लेकिन आप मुझे किस अपराध के लिए छोड़ेंगे?'

धर्म ठक्-से खड़े रहे।

ब्राह्मण ने कहा, 'मैं आपको हरगिज नहीं जाने दूँगा, क्योंकि आप ही के सहारे तो मैं जीवित हूँ। और जबतक मैं आपको जाने नहीं देता, तबतक आपको जाने का अधिकार नहीं है। मैं ही आपका अस्तित्व हूँ।'

धर्म स्तम्भित रह गये। अपनी भूल उन्होंने समझी। उसके बाद बोले, 'तथास्तु! तुम्हारी जय हो!'—इतना कहकर धर्म ने फिर ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश किया।"

न्यायरत्न के कहानी कहने का ढंग अनोखा था! आरम्भिक जीवन में वे भागवत की कथा सुनाया करते थे। उनके कथा-वर्णन, स्वर की माधुरी, अदायगी से मोह का जाल-सा बिछ गया था। वे चुप हो गये।

कुछ देर के बाद यतीन ने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

"फिर?"—न्यायरत्न हँसे। कहा, "उसके बाद की कहानी बड़ी मुख्तसर है। धर्म के प्रभाव से उसी रात फिर एक रोने की आवाज उठी। ब्राह्मण ने देखा उस अलक्ष्मी स्त्री ने आकर कहा, 'मैं जाती हूँ।'

ब्राह्मण ने पूछा, 'अपनी इच्छा से विदा माँग रही हो?'

'हाँ अपनी इच्छा से।' और वह ओझल हो गयी।

उसी रात सौभाग्य-लक्ष्मी लौटीं, उनके पीछे-पीछे आयीं यश-लक्ष्मी, कुल-लक्ष्मी।"

यतीन ने कहा, "खूब है! लक्ष्मी ही यश देनेवाली है, वही कुल को पवित्र करती है। इसीलिए लक्ष्मी के लिए इतनी छीना-झपटी है। लक्ष्मी ही सब कुछ है।"

"नहीं!" न्यायरत्न बोले, "धर्म सब कुछ है। तुमने उसी धर्म को आश्रय दिया है देबू, मैं इसी खुशी से दौड़ा-दौड़ा आया हूँ।...अच्छा, आज अब चलता हूँ।"

इसी समय यह खबर मिली कि दुर्गा को साँप ने काट खाया है। उस चरवाहे छोरे ने यह भी बताया कि अब वह ठीक है, उठकर बैठी है।

देवू न्यायरत्न के साथ कुछ दूर तक गया। रास्ते से यतीन विदा हुआ। वह अपने बरामदे की चौकी पर जाकर गुमसुम बैठ गया।

चौबीस

यतीन के मन की हालत अजीब हो गयी। गँवई-गाँव के किसी एक सूने कोने में रहते हैं ये बूढ़े—चारों ओर ढहता हुआ परिवेश : अज्ञान, अशिक्षा, गरीबी, हीनता। कठोर जीवन-संग्राम भयंकर अजगर की तरह, श्वासरोधी पकड़ से क्रमशः पीसता जा रहा है। इसी परिवेश में यह प्रशान्त, अविचल-चित्त, सौम्यदर्शन वृद्ध अपनी निर्मल दृष्टि ऊपर की ओर पसारे किस प्रकार परमानन्द के भाव में बैठे हैं! असीम ज्ञान का अपार भण्डार लिए, खारे जल के सागर में अपने गर्भ में मोती को धारण किये हुए सीप की तरह! इस समय यह बात एक आश्चर्य-जैसी लगी।

दण्ड-पहर पार करती हुई रात धीरे-धीरे घनी गाढ़ी होती जा रही थी। दूसरे पहर का स्यार बोल गया, उल्लू भी बोल गया। किसी पेड़ पर बैठा एक उल्लू अभी भी बोल रहा था। यह बोलना उसका और ही किस्म का था—पहर की घोषणा करता हुआ-सा नहीं। पहरवाली पुकार में घोषणा का स्वर साफ होता है। कोटर से अपरिणत कण्ठ की दबी सीटी-सा शब्द निकालते हुए बोलते जा रहे थे उल्लू के बच्चे। वन-जंगल, घाट-बाट, घर-द्वार—चारों ओर अविराम ध्वनि—असंख्य कीट-पतंगों की। अँधेरे शून्य में जोरों से अपने पंख फड़फड़ाते हुए उड़े जा रहे थे चमगादड़—एक के बाद दूसरा, फिर एक साथ तीन, फिर एक। उस दिन बारिश हुई थी, इसलिए आसमान अभी भी निर्मल नील था, तारे खासे चमक रहे थे। चैत की झिरमिर बहती हवा में भुरभुराती फूलों की महक—अनोखा-अदेखा ऐश्वर्य! अन्तिम पहर में हवा में ठण्डक क्रमशः बढ़ रही थी।

बूढ़े से एक बात पूछनी रह गयी। कहानी यतीन को बड़ी भली लगी। उस बूढ़े और इस कहानी में आज उसे ग्राम-जीवन का आभास मिल रहा था। युग-युग से ये बूढ़े ही ऐसी कहानियाँ सुनाते आये हैं। कहानी सचमुच ही अच्छी है; अच्छी ही नहीं, उसे सच-सी लगी। सिर्फ एक जगह खटका रह गया। अलक्ष्मी के आने से सौभाग्यलक्ष्मी का अन्तर्धान होना ठीक है। भाग्य-लक्ष्मी के न रहने से कर्म की शक्ति जाती रहती है, यश की लक्ष्मी नहीं रहती, लक्ष्मीविहीन अकर्मण्यता से कुल

का गौरव नष्ट होता है। फतिंगा की माँ सेटलमेण्ट कैम्प के 'पीउन' के साथ चली गयी। लेकिन धर्म से बूड़े का क्या मतलब है?—यह पूछना रह गया। बहुत सोचने के बाद भी वह ऐसा कोई उत्तर इसका न ढूँढ़ सका, जिससे दुनिया के नये उपलब्ध सत्य से इसका समन्वय हो सके। थके दिमाग से वह रात के गाँव की ओर ताकता रहा।

गाढ़े और नजर न धँसनेवाले अँधेरे में सारा गाँव मानो खो गया था। अन्दाज से ही यह कहा जा सकता है कि सामने राह के उस पार वह गड्ढा है। रात-भर में सिर्फ शाम को ही एक बार घाट पर ढिबरी की रोशनी दिखाई पड़ती, दो औरतें हाथ में ढिबरी लिए बरतन धो जातीं। ढिबरी के प्रकाश में यतीन उनका चेहरा साफ देख पाता। घाट से जाते ही वे अपना दरवाजा लगा लेतीं। गाँव के अधिकांश घरों में शाम को ही द्वार बन्द हो जाता। श्रीहरि या जगन डॉक्टर या खुद उसी के यहाँ छोटी-मोटी बैठक जमती है, मगर वह भी कब तक? दस बजते न बजते बस्ती में घोर सन्नाटा छा जाता। यतीन ने एक बार अच्छी तरह से गाँव की तरफ देखा। गाढ़े अँधेरे में सोयी हुई बस्ती में असहाय शिशु के आत्मसमर्पण का ढंग साफ फूट उठा था।

सहसा उसे अपने जन्म-स्थान—कलकत्ता महानगरी—की याद आ गयी। कलकत्ते को यतीन बहुत चाहता है। कलकत्ता संसार की श्रेष्ठ नगरियों में अन्यतम है। दिन के प्रकाश और रात के अँधेरे का प्रभाव वहाँ है कितना? दिन में वहाँ रोशनी जलती है। रात को राह की रोशनी में झलमल! मनुष्य के तप की दमकती आँखों के आगे रात का अँधेरा महानगरी के दरवाजे पर बेबस-सा असहाय आँखों खड़ा ताकता रहता है। हर मोड़ पर के खड़े पहरेदार जागती आँखों से खड़े-खड़े ऐलान करते हैं—हम जाग रहे हैं। गवेषणागार में वैज्ञानिक तीखी निगाहों अपनी गवेषणा की वस्तु देख रहे हैं। चलती हुई मशीन के डण्डे को थामे खड़ा है मशीनमैन—मशीन चल रही है, अविराम उत्पादन हो रहा है। पानी को उमड़ाता हुआ चल रहा है जहाज, पोर्टकमिश्नर लाइन पर चल रही है गाड़ी; साइडिंग में शर्टिंग। रास्तों पर गरजकर जा रही हैं मोटरें—बीच-बीच में रोमांचक आवेग जगाती हुई सुनाई पड़ जाती है घोड़ों की टाप। महानगरी चल रही है—और चल रही है। उसके चलने का कभी विराम नहीं। इस जाने-आने, तोड़-फोड़ हँसी-रुदन में नित्य उसके नये रूपों की अभिनव अभिव्यक्ति है। एक पहलू उसका अन्धकार का भी है पर उसे जाने दो।

लेकिन गाँव का वही एक रूप! खासकर इस देश के गाँव समाज-संगठन के आदिकाल से ठीक एक ही जगह अनन्त परमायु पुरुष की तरह बैठे हुए हैं। 'भारतीय अर्थशास्त्र' की एक बात उसे याद आ गयी। सर चार्ल्स मेटकाफ कह गये हैं—"दे सीम्स टु लास्ट हेयर नथिंग एल्स लास्ट।"—अजीब है! "डायनेस्टी ऑफ्टर डायनेस्टी ट्रेवल्स डाउन; रिवोल्युशन सकसीड्स रिवोल्युशन; हिन्दू, पठान, मोगल, मराठा, सिख,

इंगलिश आर मास्टर्स इन टर्न, बट द विलेज कम्युनिटी रिमेन्स द सेम।"

यह क्या कभी नहीं हिले-डुलेगा? बीसवीं सदी की दुनिया में बड़े हेर-फेर हो रहे हैं। तमाम नये विधानों का शोर है। इस देश के गाँवों के जीर्ण-पुरातन का क्या परिवर्तन नहीं होगा?

क्रान्तिकारी युवक—उसकी कल्पना की आँखों में अनागत काल की नवीनता का सपना! न्यायरत्न कह गये—बरगद की जड़ के दबाव से विशाल अट्टालिका चौचीर हो गयी। वह उसी टूटन पर चोट करने को तैयार है। उसी धर्म में वह जहाँ जरा-सा द्वन्द्व देखता है, वहीं उस द्वन्द्व को उत्साहित कर देता है।

अन्दर से दरवाजे पर दस्तक पड़ी।

यतीन ने पूछा, "कौन? माँ?"

"हाँ।"—पद्म ने झिड़की दी—"आज सोओगे नहीं क्या? देखती हूँ—बीमार पड़े बिना न मानोगे!"

"बस, आ रहा हूँ।"—यतीन हँसा।

"आ रहा हूँ नहीं, आओ। मैं बल्कि पंखा झल देती हूँ! आओ!"

"तुम जाकर सो रहो। मैं तुरन्त आता हूँ।"

"नहीं, तुम अभी चलो, नहीं तो मैं सिर पीट लूँगी।"

आखिर यतीन को जाना ही पड़ा। जाने पर भी छुटकारा नहीं। पद्म ने कहा, "इधर का दरवाजा खोल दो। पंखा झल दूँ।"

"उसकी जरूरत नहीं।"

"है जरूरत।"

यतीन ने दरवाजा खोल दिया। पद्म पंखा लेकर उसके सिरहाने बैठती हुई बोली, "एक जने तो निकले हैं इसलिए कि दुर्गा को साँप ने काटा है, लौटने का नाम नहीं ले रहे हैं! और तुम?"

"अनिरुद्ध बाबू अभी लौटे नहीं?"

"नहीं। पहले दुर्गा को मर लेने दो, तब वह रोता-पीटता लौटेगा। दुनिया में इतने लोग मरते हैं, वही हरामजादी नहीं मरती।"

यतीन सिहरा। पद्म की भाषा में कितना पैना आक्रोश है! उसाँस खींचकर उसने आँखें बन्द कर लीं। कुछ ही देर में उसके कानों में दूर से आती हुई कोई जोर की आवाज जागी जैसे। वह आवाज तेजी के साथ करीब आने लगी। घर-द्वार में एक कँपकँपी दौड़ गयी। वह उठ बैठा—"भूकम्प!"

हँसकर पद्म बोली, "उफ्, कैसा लड़का है, हाय राम! आसमान सिर पर उठा लेता है जैसे! अरे, यह भूकम्प नहीं है, डाकगाड़ी जा रही है! सो जाओ!"

"डाकगाड़ी? मेल ट्रेन है?"

"हाँ, हाँ! सोओ!"

सीटी बजाती हुई गाड़ी मयूराक्षी के पुल पर जा रही थी। चारों तरफ का वातावरण घरघराहट से गूँज उठा। घर-द्वार थर-थर काँप रहे थे। जंक्शन स्टेशन में रोशनी जल रही थी। वहाँ की मीलों में रात में भी काम चलता है। मयूराक्षी के उस पार है जंक्शन। यतीन को मानो अकस्मात् आशा की किरण दिखी। गाँव काँप रहा है। जंक्शन तक पृथ्वी के नये जीवन की आहट पहुँच गयी है। किसी दिन वह मयूराक्षी के उस पार जाएगा। कोई कम्पनी शायद मयूराक्षी के बाँध से सटी सड़क पर बस सर्विस खोलने की सोच रही है।

कुछ देर के बाद पंखा रखकर पाँव दबाये पद्म वहाँ से चली गयी। खैर, सो गया। मसहरी ठीक नहीं कर दी—फतिंगा को मच्छर खा गया होगा!

यतीन के कमरे से निकलकर वह हैरान रह गयी। जाने कब ऊपर से फतिंगा नीचे उतर आया था। तीन पहर रात गये वह अकेले ही बैठा आँगन में कौड़ियाँ खेल रहा था।

रात के अन्तिम पहर में सोया था इसलिए यतीन की नींद टूटने में देर हुई। पद्म ने उसे जगाया—"उठो, जाओ!"

यतीन उठ बैठा—"काफी दिन निकल आया है, न?"

"और उधर सर्वनाश जो हो गया!"

"सर्वनाश हो गया!"

"लठैत ले जाकर छिरू पाल पेड़ काट रहा है। सब लोग दौड़ गये हैं, उधर कहीं दंगा न हो जाए!"

"कौन गये हैं दौड़कर? अनिरुद्ध बाबू?"

"सभी गये—गुरुजी, जगन डॉक्टर, घोषाल—बहुत-से लोग।"

यतीन खुश हो उठा। बोला, "जरा खासी कड़ी चाय बनाओ तो माँ!"

"लेकिन तुम वहाँ मत चले जाना।"

"तो फिर मुझे बुलाया क्यों?"

पद्म कुछ क्षण चुप रहकर बोली, "नहीं कह सकती!" और सच ही वह यतीन को बुलाने का कारण नहीं ढूँढ़ पायी। बोली, "मुँह-हाथ धो लो। चाय बनाती हूँ।"

"फतिंगा कहाँ है?"

"वह तो आँधी के आने की धूल है! दौड़ा गया है देखने।"

श्रीहरि ने कल के अपमान का बदला लिया। बाउरी-मोचियों के सामने उसका सिर नीचा हुआ है। न केवल अपमान हुआ है, बल्कि उसकी राय में यह गाँव की शृंखला को तोड़ने की एक कोशिश है। तिस पर दुर्गा ने उन लोगों को जिस तरह से धोखा दिया, दो-एक घण्टे बाद ही उस बात को मन-ही-मन समझकर वह

आग-बबूला हो गया था। और जो-जो लोग उसमें सम्मिलित थे उन्हें दण्ड देने का प्रबन्ध भी उसने कल रात ही कर लिया था। कालू शेख के जरिये उसने लठैत बुलवाये और जमींदार के गुमाश्ते के नाते आज सवेरे उसने देबू, जगन, हरेन, अनिरुद्ध के पेड़ काटने शुरू किये। ये पेड़ जमींदार की परती जमीन पर हैं। पहले रियाया इसी तरह पेड़ लगाया करती थी। उसका लाभ उठाया करती थी—जमींदार की ओर से कोई आपत्ति नहीं की जाती थी। जरूरत होती तो लोगों से मीठी बातें करके जमींदार उनके फल भी तोड़ लेता था। लेकिन इस तरह से उजाड़ता कभी नहीं था! उजाड़ता तो बहुत पहले, सौ साल पहले, रैयत-जमींदार में दंगा होता। पचास साल के बाद वह जमाना पलटा। तब प्रजा जमींदार के हाथ-गोड़ पड़ती, पेड़ों की ममता से घर बैठी रोती। अचानक आज फिर यह नज्जारा सामने आया कि सब के सब लोग दौड़ पड़े।

यतीन समाचार के लिए अकुला रहा था। वहाँ अगर खून-खराबी हो गयी तो बड़ा बुरा होगा। विचलित-सा होकर वह सोच रहा था, उसका जाना ठीक होगा क्या? नहीं। कहीं उसे इस मामले में लपेट लें, तो सारी घटना का रंग ही बदल जाएगा।

पद्म ने इस बीच तीन बार उझककर देखा कि वह घर में है या नहीं। अन्तिम बार यतीन ने कहा, "मैं गया नहीं हूँ माँ, यहीं हूँ।"

"तुम्हारा विश्वास क्या? भयंकर लड़के हो तुम!"

यतीन हँसा।

"हँसो मत, हाँ"—बोलते-बोलते रास्ते की तरफ देखकर वह बोली, "वह देखो, नलिन आ रहा है। दो अब पैसे!"

वही चित्रकार लड़का, बैरागी परिवार का नलिन। वह पैसे की जरूरत होने से ही आता, यों नहीं। आता और चुपचाप बैठा रहता। बिना पूछे अपनी कोई बात वह बताता भी नहीं। मगर उठकर जाता भी नहीं। बैठा ही रहता। पूछो तो मुख्तसर जवाब—पैसा। माँग भी कोई खास नहीं—बस चार पैसे से चार आने तक। लेकिन आज कुछ उत्तेजित था नलिन। चेहरे का गोरा रंग लला उठा था। आँखों की पुतलियाँ थिर थीं। आज वह आकर बैठा नहीं, खड़ा ही रहा।

"क्यों नलिन? पैसे चाहिए?"

"गुरुजी का सिर फट गया!"

"किसका? देबू बाबू का?"

"हाँ! और कालीपुर के चौधरीजी का!"

"द्वारका चौधरीजी का?"

"हाँ! गुरुजी का आम का पेड़ कट रहा था। गुरुजी बिलकुल कुल्हाड़ी के सामने जाकर खड़े हो गये।"

"फिर?"

"लठैतों से गुरुजी की धक्कमधुक्की हुई। चौधरीजी छुड़ाने गये। लठैतों ने दोनों को धक्के मारकर गिरा दिया।"

"गिरा दिया?"

"जी! गाछ काट रहा था। उसी के तने में लगकर दोनों के सिर फट गये।"

"उसके बाद?"

"खून बहुत बह रहा है। सब लोग सँभालकर ला रहे हैं।"

"और दूसरे लोग क्या कर रहे थे?"

"सभी खड़े थे। कोई भी आगे नहीं बढ़ा। केवल अनिरुद्ध एक लठैत को लाठी जमाकर चम्पत हो गया है।"

"जगन डॉक्टर कहाँ है?"

"वह पुलिस को खबर देने के लिए जंक्शन गया है।"

यतीन तार लिखने बैठा। एक डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के पास, दूसरा एस.डी.ओ. के पास। साथ ही यहाँ की जिला-कांग्रेस कमेटी के पास एक चिट्ठी। यह छिपाकर भेजनी होगी।

तार लगाने के लिए डॉक्टर को भेजना होगा। लेकिन यह चिट्ठी जगन के हाथ नहीं भेजनी है। देवू बाबू ठीक होते, उन्हीं को सदर भेजना सबसे अच्छा होता। उसने कुछ सोचकर नलिन से पूछा, "एक काम कर सकोगे?"

गरदन हिलाकर वह बोला, "जरूर!"

"जंक्शन के डाकखाने में एक चिट्ठी लगानी है। चार पैसे का एक टिकट लगाकर चिट्ठी में चिपका देना और डाल देना।"

नलिन ने फिर वही गरदन हिलाकर हामी भरी।

"मगर किसी को दिखाना मत।"

नलिन की फिर वही मौन हामी।

"लो, चार पैसे का टिकट लेना और इन चार पैसों का तुम जलपान कर लेना!"

नलिन ने पत्र को कमर में रखा। उस पर होशियारी से फेंटा बाँध लिया कसकर। इकन्नियों को गाँठ में बाँधा। उसके बाद सिर झुकाकर भरसक तेजी से चल पड़ा। सारी बस्ती हंगामे से भर उठी।

देबू और चौधरीजी को जगन के दवाखाने में लाया गया। देबू चलकर ही आया। उसे वैसी गहरी चोट नहीं थी और फिर जवान आदमी! उत्तेजना भी काफी बढ़ गयी थी। खून कुछ ज्यादा बहने पर भी वह उतना उदास या भीत नहीं हुआ था। लेकिन बूढ़े चौधरी कातर हो गये थे। चोट भी उन्हें ज्यादा लगी थी। पहले तो वे बेहोश हो गये थे। फिर होश तो आया, पर उन्हें ढोकर ही लाना पड़ा। वे आँखें बन्द किये पड़े थे। देबू दीवाल से टिका चुप बैठा था। धो देने पर भी लाल

पानी की धार माथे से चू रही थी। लगभग सारी बस्ती के लोग जगन के दवाखाने के सामने जुट गये थे।

टिंचर, रुई, गरम पानी और बैण्डेज लिए जगन व्यस्त था। हरेन उसकी मदद कर रहा था। बीच-बीच में बोलता जा रहा था—"हटो, भीड़ छोड़ो!"

रांगा दीदी एक पेड़ के नीचे बैठकर रो रही थी। दुर्गा दाँत से दाँत दबाये अपलक आँखों खड़ी थी। इतने में वहाँ यतीन आया।

जगन ने कहा, "पेड़ों पर रोक लगवा दी है। पुलिस ने आकर नोटिस जारी कर दी—दोनों पक्षों में से कोई भी पेड़ के पास नहीं जा सकेगा। मैं मना कर गया था कि मेरे आने तक कोई कुछ मत करना। काटने दो पेड़। लौटकर देखता क्या हूँ कि देवू ने यह हरकत कर दी है। अनिरुद्ध एक को एक लाठी जमाकर लापता है।"

भीड़ में से आगे निकलकर अनिरुद्ध ने कहा, "अनिरुद्ध ने ठीक ही किया है। वह कोई औरत नहीं है, मर्द है।" उसके हाथ में उस समय भी कुल्हाड़ी थी। बोला, "उस समय कुल्हाड़ी मिली नहीं, वरना आज कुछ होकर ही रहता!"

यतीन ने कहा, "खैर, वह सब जो करना होगा, पीछे कीजिएगा, पहले इनका बैण्डेज तो कर दें जल्दी से।"

वृढ़े द्वारका चौधरी ने अब आँखें खोलीं। हलकी मुसकराहट के साथ बोले, "नमस्कार!"

यतीन ने प्रतिनमस्कार किया—"अब कैसा लग रहा है?"

"अच्छा है!" थोड़ा रुककर चौधरी बोला, "सोचा, बीच-बचाव कर दूँगा। देबू आकर कुल्हाड़ी के सामने तन गया। उससे रहा नहीं गया।"

सभी चुप थे। जवाब देने को कुछ था नहीं।

वृढ़े ने कहा, "पण्डित प्रणाम करने योग्य आदमी हैं। ये पण्डित ही नहीं, वीर हैं। मेरी उम्र काफी हुई, मगर अभी भी मैं चश्मा नहीं लगाता। हे भगवान! तनी हुई कुल्हाड़ी के सामने जाकर जब गुरुजी खड़े हो गये, तो उस वक्त की अपनी मूर्ति शायद गुरुजी ने भी कभी आईने में नहीं देखी है! वीर!"

जगन ने कहा, "यह गँवारपना है। नतीजा क्या हुआ? नाराज मत होना देबू भाई!"

हँसकर बूढ़े ने कहा, "सबका पेड़ काट डाला। खड़ा अभी तक केवल देबू का ही पेड़ है डॉक्टर बाबू!"

जगन ने हरेन घोषाल को जोर से डाँट बतायी—"किधर ताकते हुए काम कर रहे हो घोषाल?"

हरेन चौंक उठा।

देबू हँसा। डॉक्टर बूढ़े पर नाराज हुआ, झेलना पड़ा हरेन को।

पुलिस की जाँच हुई।

श्रीहरि ने कुछ भी अस्वीकार नहीं किया। श्रीहरि की ओर से जो भी कहना था, वह सब दासजी ने कहा। अब दासजी जमींदार के सदर का कर्मचारी है, पहले यहाँ का गुमाश्ता था। चतुर, तजुर्बेकार और विषय-बुद्धि-सम्पन्न आदमी। प्रजास्वत्व कानून, फौजदारी कानून में वह साधारण वकील-मुख्तार से ज्यादा होशियार है। खबर भेजकर श्रीहरि ने उसे बुलवा लिया था। आखिर बात तो अब गाँववालों और श्रीहरि तक में ही सीमित नहीं रह गयी थी। और चूँकि यह काम उसने जमींदार के गुमाश्ते की हैसियत से किया, इसलिए जिम्मेदारी जमींदार पर भी आ पड़ी।

जमींदार उम्र का नया। आज के बंगाल का जमींदार लड़का। अँगरेजी पढ़ा-लिखा है। जमींदारी खास पसन्द नहीं करता। कई बार व्यापार की कोशिश की, मगर नुकसान उठाकर लाचार जमींदारी से ही लिपटा पड़ा है। जमींदारी में कानून के मुताबिक चलने की प्रथा चलाने का हिमायती है, पुराने जमींदारों की तरह जोर-जबरदस्ती वह बिलकुल नहीं पसन्द करता। पहले के जमींदार-जैसा व्यक्तित्व भी नहीं है उसका। लिहाजा उसकी साधु चेष्टा फलवती भी नहीं होती। जब कलकत्ता जाने के लिए रुपये की कमी पड़ती तो नायब-गुमाश्ता की राय से ही राय मिलाने को बाध्य होना पड़ता। कलकत्ते में सिनेमा देखता, थियेटर देखता, थोड़ी-बहुत शराब भी पीता, दर्शक होकर राजनीतिक सभा-समिति में शामिल होता। यूनियन-बोर्ड का सदस्य है। लोकल बोर्ड के लिए खड़ा हुआ था, हार गया। अगली बार कांग्रेस से टिकट पाने की कोशिश में लगा है। अबकी यानी सन् 1928 में कांग्रेस का जो अधिवेशन होनेवाला है, अभी से उसका डेलीगेट होने की भी चेष्टा कर रहा है।

लेकिन यह खबर सुनकर जमींदार ने इसे पसन्द नहीं किया था। कहा, "जब हमने ऐसा हुक्म नहीं दिया है, तो अपनी जिम्मेदारी से हम इनकार करें! श्रीहरि ही समझे अपना।"

दासजी ने हँसकर कहा, "मगर श्रीहरि-जैसा गुमाश्ता पाएँगे कहाँ—यह भी तो सोचिए! गाँववालों से उसका झगड़ा हुआ है। गुमाश्ता के हिसाब से काम उसने बेजा किया है। लेकिन वह आदमी वसूली हो या न हो, आपका लगान-पावना पाई-पाई चुका जाता है। इसके अलावा एक साल के अन्दर उसने हैण्डनोट पर भी दो हजार के करीब रुपये दिये हैं। सेटलमेण्ट का खर्चा वसूलने का भी अब समय आ गया है। एक शिवकालीपुर में ही आपके हजार रुपये से ऊपर लगेंगे। इसके अलावा, और मदों की भी रकम मोटी है। इस समय अगर उसे छुड़ा दें, तो क्या यह अच्छा होगा?"

जमींदार मीटिंग में दो-चार बातें बोल सकता है, बन्धु-बान्धवों में उसके स्पष्टवक्ता होने की ख्याति है। मगर जब यह दासजी इसी तरह से चबा-चबाकर बात करता है, तो ठीक उसी तरह वह हाथ बढ़ाकर आत्मसमर्पण भी कर देता है, जैसे कोई डूबता हुआ आदमी!

दासजी ने कहा, "तो हुजूर, एक काम क्यों न किया जाए—शिवकालीपुर श्रीहरि को बन्दोबस्त दे दें!"

"बन्दोबस्त?"

"हाँ! यों समझिए कि श्रीहरि दो हजार से ज्यादा पाएगा। और, सेटलमेण्ट का खर्चा लगेगा पाँचेक हजार। श्रीहरि को गुमाश्ता रखने का विरोध तो होगा ही। श्रीहरि लेगा भी गरज से ही!"

"नहीं-नहीं, वह सब नहीं, खरीदना चाहे, तो देखिए!"

जमींदारी हटाने में जमींदार को उज्र नहीं है। वह खुद ही कहा करता है—यह जमींदारी क्या है, जमादारी है!

जाँच-पड़ताल के समय दासजी ने झुककर सब स्वीकार कर लिया—"जी हाँ, पेड़ काटने का हुक्म हमने जमींदार की ओर से दिया है। श्रीहरि घोष ने हमारे गुमाश्ता के नाते ही पेड़ काटने के लिए लोगों को लगाया था। वैशाख के महीने में हम हिन्दू लोग पेड़ नहीं काटते, इसीलिए चैत में काटना पड़ता है। साल-भर की लकड़ी इसी समय काटकर रखी जाती है।"

जगन ने कहा, "सो काटें वे, अपना गाछ काटें! जमींदार..."

बीच में ही टोककर दासजी बोले, "अपना ही तो है। वह सारा ही पेड़ तो जमींदार का है।"

"जमींदार का?"

"आप ही लोग बताएँ, जमींदार का है या नहीं?"

"नहीं पेड़ हम लोगों का है।"

"आप लोगों का है? ठीक है, आपने कभी डाल काटी है पेड़ की?"

"नहीं काटी है, पर पेड़ों पर दखल तो सदा से हमारा है।"

"हाँ, फल आप ही भोगते है। किन्तु वह तो आप जमींदार के ही पेड़ का ताड़ लेते हैं, पत्ते तोड़ते हैं! सेमल की रुई लेते हैं आप लोग। सरकारी पोखरे में लोग पलुई से मछली मारते हैं। पोखरों तक का गाँववालों ने एक बँटवारा कर रखा है—इस पोखरे की मछली राम, श्याम, यदु मारेगा; इसकी काली, कन्हाई, हरी; इसकी भवेश, देवेश, योगेश। अब इन ताड़ के पेड़ों और पोखरों की मिल्कियत क्या आप लोगों की है?"

इतनी देर के बाद देबू बोला, "अच्छी बात है दासजी! ये पेड़ अगर आपके हैं, तो आपने इतने लठैत क्यों भेजे थे? जबरदस्ती दखली का प्रश्न कहाँ आता है? जहाँ अपना दखल नहीं हो, वहाँ या फिर जहाँ बेदखल का खतरा हो, वहाँ। यानी जहाँ भी दखल सन्देहजनक है।"

दास ने हँसकर कहा, "नहीं, लठैत नहीं, हमने प्यादे भेजे थे। उनके हाथों में लाठी होती है। असल में जिसका जैसा ब्याह, उसका वैसा बाजा! हमारे-आपके यहाँ शादी होती है, महज एक ढोल बजता है; बहुत हुआ तो शहनाई बजी। जमींदार के यहाँ शादी होगी, तो तरह-तरह के बाजे बजेंगे। सो समझिए कि गाछ काटने आये जमींदार की ओर से; पाँच-सात गाछ काटने थे। तीस-पैंतीस मजूरे थे, उनके साथ आठ-दस प्यादे आये तो क्या अनर्थ हो गया? अगर मालूम होता कि आप ऐसा गैरकानूनी दंगा करेंगे तो हम कम-से-कम पचास लठैत भेजते। और निश्चय ही पहले से थाने को शान्ति-भंग की आशंका की सूचना भेजते। फिर आप तो कानून खूब जानते हैं, देबू बाबू, कहिए न, पेड़ किसका है?"

आज पड़ताल में दरोगा खुद आये थे। दरोगा आदमी भला है, अपनी क्षमता का दुरुपयोग नहीं करता; भद्र भी है। उसने कहा, "कहने को जो कहें दासजी, काम यह अच्छा नहीं हुआ है। आदमी के मन को चोट नहीं पहुँचनी चाहिए। इतना ही है कि कानून आपके पक्ष में है। खैर, इसमें हमारे करने का कुछ नहीं है। यह हकूक का मामला है। हमने नोटिस दे दी है। जबानी भी दोनों पक्षों को मना कर रहे हैं कि अदालत से फैसला हो जाने तक कोई पक्ष पेड़ के पास न जाए। गये तो फौजदारी होगी और हम गिरफ्तारी करेंगे। वादी होकर पुलिस मामला करेगी।"

उठते हुए दरोगा ने कहा, "प्रजास्वत्व कानून में संशोधन हो रहा है, मालूम है न दासजी।"

"जी, मालूम है!" दास हँसा—"हो जाए तो हम जी जाएँ दरोगा साहब!"

दरोगा को विदा करके श्रीहरि दासजी को अपने बैठके में ले गया। उसने नया बैठका बनवाया है। है तो फूस का ही, मगर सीढ़ी, बरामदा, फर्श पक्का है। दास ने तारीफ करते हुए कहा, "वाह! वाह यह तो पक्का बनवा लिया। मगर अपने नीलकण्ठ का वह गाना याद है?—'करना हो जो पक्का घर, तो पहले जमींदारी कर!' "

चौकी पर की दरी को झाड़कर श्रीहरि ने कहा, "बैठिए!"

दास बैठ गया, बोला, "जमींदारी खरीदोगे श्रीहरि?"

"जमींदारी?"—श्रीहरि चौंक उठा। जमींदारी की कल्पना उसने साफ-साफ कभी नहीं की।

उसने पूछा, "कौन-सा मौजा? पास-पड़ोस में है?"

"खास शिवकालीपुर! खरीदोगे?"

अजीब सन्देह की निगाह से श्रीहरि ने दासजी की ओर ताका। शिवकालीपुर! गाँव का एक-एक आदमी उसका रैयत होगा! श्रीहरि सबका मालिक होगा! हुजूर, सरकार! क्षण-भर में उसका अधीर मन तरह-तरह की कल्पनाओं से चंचल हो उठा। गाँव में हाट लगाएगा! नहानेवाला जो तालाब भर गया है, उसे खुदवा देगा।

चण्डीमण्डप में नया मन्दिर बनवाएगा, उसकी अठचलिया तुड़वाकर नाट्य-मन्दिर बनवा देगा! निम्न प्राथमिक स्कूल के बदले माध्यमिक विद्यालय नाम होगा—'श्रीहरि माध्यमिक विद्यालय'। यूनियन-बोर्ड से लोकल बोर्ड के लिए खड़ा होगा।

दासजी ने कहा, "खरीद लो घोष! तुम्हारे पास पैसा है। जमींदारी अक्षय सम्पत्ति होती है। फिर एक बात यह भी है कि आज गाँव के लोग तुम्हारे दुश्मन हैं, एक ही दिन में पैरों पर आ गिरेंगे। मगर सेटलमेण्ट के फाइनल पब्लिकेशन के पहले ही खरीद लो। दरख्वास्त देकर नाम बदलवा लो। फाइनल पब्लिकेशन के बाद पाँच तरह का दण्ड भोगना होगा। रुपये में चार आने की बढ़ोतरी तो होगी ही। आठ आने की नजीर हाईकोर्ट से लेकर रखी है। मैं रास्ते में तय कर दूँगा। हाँ जरा दरवाजा बन्द कर लो तो!"

श्रीहरि ने दरवाजा बन्द कर लिया।

बड़ी देर तक बातचीत करके दोनों हँसते-हँसते ही बाहर निकले। दासजी ने कहा, "अरे वह नोटिस तो यों ही है, एकदम बेकार! तुम अगर वहाँ गये और शान्ति भंग हुई, तो यह होगा, वह होगा। यही न?"

फिर मुँह के पास मुँह लाकर एक अजीब-सी मुद्रा बनाते हुए कहा, "लेकिन शान्ति भंग न हो तो?"—दास होठ दबाकर हँसा।

श्रीहरि ने कहा, "तो मैं बेफिक्र कर सकता हूँ?"

"बेशक! लेकिन होशियार, कोई जान न पाए। कोई हंगामा न हो जाए।"

"और गाजन का क्या करूँ?"

"जो भी हो, करो।"

"तो फिर चण्डीमण्डप जैसा है, वैसा ही रहे?"

"देखो घोष, यह काम तो न करो मैं मना करता हूँ। चण्डीमण्डप का सेवायत जमींदार है, मगर अधिकार गाँववालों का है। पक्का नाट्य-मन्दिर, और मन्दिर—यह सब अपने घर में करो। सम्पत्ति रहती भी है, जाती भी है। अगर किसी दिन सम्पत्ति हाथ से निकल ही जाए तो तुम्हारा हक नहीं रहेगा।"

दास श्रीहरि को चण्डीमण्डप के लिए खर्च करने से रोक रहा था—"क्या जमाना आया है! सर्वसाधारण की सम्पत्ति पर खर्च करना महज मूर्खता है!"

दूसरे दिन सवेरे गाँव में फिर हलचल हुई।

देबू घोष के अधकटे पेड़ को रात ही कोई काट ले गया। कौन—फिर कौन? श्रीहरि ले गया है। चूँकि शान्ति-भंग नहीं हुई, इसलिए कानून के खिलाफ भी नहीं हुआ! ताजे कटे पेड़ की जड़ के ऊपर चारेक अंगुल का तना केवल बचा पड़ा था। कटे पेड़ का बचा-खुचा कुछ भी कहीं नहीं था। कुछ पत्ते और कच्चे आम जहाँ-तहाँ बिखरे

पड़े थे, उँगली-जैसी पतली-पतली कुछ टहनियाँ, कुछ जड़ों के चूरे इधर-उधर रह गये थे। गीली मिट्टी पर पड़े पहियों के दाग, बैलों के खुरों के चिह्न में पिछली रात की कहानी सांकेतिक भाषा में लिखी पड़ी थी।

घोपाल चीखता फिरा, "साफ चोरी का मामला है। ही इज ए थीफ! ही इज ए थीफ! हथकड़ी पहनाकर चालान करवा दूँगा।"

देबू ने मना किया—"छोड़ो! वह सब मत बोलो घोषाल!"

जगन ने कहा, "दोपहर की गाड़ी से ही चलो, मुकदमा कर आएँ।"

उस पर भी देबू बोला, "नहीं।"

देबू धीरे-धीरे यतीन के पास जाकर बैठा।

यतीन बोला, "सुना, रातों-रात पेड़ काट ले गया?"

देबू जरा फीकी हँसी हँसा।

जगन ने कहा, "नालिश करने को कहता हूँ, लेकिन देबू राजी नहीं हो रहा है।"

"नालिश करके क्या होगा? कानूनन तो पेड़ जमींदार का है। नाहक ही पैसे बरबाद करने से क्या फायदा?"

"इतने ही में थक गये देबू बाबू"

"हाँ, थक ही गया हूँ यतीन बाबू! अब और नहीं बनता।"

"ठहरिए, चाय बनाता हूँ। फतिंगा! अरे फतिंगा!" और फिर फतिंगा ही नहीं, साथ में एक बच्चा और आ पहुँचा।

"माँ से कहो, चाय बनाये।"

हरेन ने कहा, "यह और कहाँ से आ जुटा? एक राम से ही खैर नहीं, ऊपर से सुग्रीव।"

यतीन ने हंसकर जवाब दिया, "यह फतिंगा का दोस्त है, जंक्शन का। कल पुलिस के पीछे-पीछे आ गया था पेड़ काटने का हंगामा देखने के लिए। वहाँ जंगल के और पिंजड़े के पंछी का मिलन हुआ। फतिंगा उसे ले आया है।"

"नन्दी-भृंगी के साथ मजे में हैं आप! ऐसे सब आपके ही पास जुटते हैं आकर।"

"मेरे पास नहीं, फतिंगा उसे माँ के पास ले आया है।"

"यानी? लुहार-बहू के पास?"

हँसकर यतीन ने कहा, "हाँ।"

"अनिरुद्ध उसे मारकर निकाल बाहर करेगा।"

"कल समझौता हो गया है। अनिरुद्ध बाबू भगाना चाह रहे थे। माँ ने कहा, यह गोरू चराएगा, खाएगा-पीएगा, रहेगा। अनिरुद्ध बाबू ने बैल खरीदे हैं न! और लुहारखाने की धौंकनी खींचेगा।"

इसी बीच फतिंगा आकर बोला, "चाय लीजिए बाबू!"

उधर ढाक बज उठा। फतिंगा जल्दी में आधी चाय छलकाकर चाय के कटोरे रखकर एक ही छलाँग में सड़क पर जा रहा : "डेंग डेंग डेंग! नेरांग, डेरांग! अरे गोबरा, चल-चल! शिवजी बैठेंगे, चल देख आएँ!"

गाजन का ढाक बज रहा था। पूरे एक बरस के बाद शिवजी को आज पोखर के पानी से निकाला जाएगा। भक्त लोग दोल में बिठाकर ले आवेंगे!

जगन बोला, "भक्त कौन-कौन हुआ, जानते हो घोषाल?"

हरेन ने कहा, "ओनली फाइव!" उसने एक हाथ की अँगुलियाँ फैलाकर दिखा दीं।

"चलो, जरा देखे आएँ।"

"चलो।"

जगन और हरेन चले गये।

यतीन ने कहा, "देबू बाबू?"

"कहिए?"

"क्या सोच रहे हैं?"

"सोच रहा हूँ"—देबू हँसा—"देखेंगे आप?"

"क्या?"

"चलिए मेरे साथ।"

थोड़ी ही दूर पर श्रीहरि का मकान। मकान के बाद खलिहान। रास्ते पर से ही खलिहान दिखाई पड़ता। वहाँ एक विशाल भीड़ जमा थी। खलिहान के बीच में सुनहले धानों का बड़ा-सा ढेर। पास ही बाँस के तिपाये पर वजन का काँटा। एक पेड़ के नीचे कुरसी पर बैठा था श्रीहरि। कई जने देबू और यतीन को देखकर ओट में हो गये। उधर काँटे पर वजन चल रहा था—दस, दस, दसे राम; ग्यारहजी ग्यारह।

देबू ने कहा, "देख लिया?"

यतीन ने हँसकर कहा, "यदि तेरी पुकार सुनकर कोई न आये तो अकेला चल!"

"मैं क्या सोच रहा हूँ, समझे आप? मैं अकेला पड़ गया हूँ!"

जरा देर के बाद यतीन ने कहा, "तो आप कोई मेटमाट कर लीजिए देबू बाबू। सच ही बड़ी झंझट में पड़ेंगे आप!"

देबू हँसा। बोला, "मैं उसकी फिक्र नहीं करता। सोचता हूँ, इतने दिनों का यह गाजन; गाजन में यहाँ कितनी धूम होती थी। सारे गाँव के लोग जी-जान से खटते थे। दूसरे गाँव से धूमधाम की होड़ चलती थी। वह सब-कुछ उठ जाएगा। या फिर यह उत्सव अकेले श्रीहरि के हाथ चला जाएगा। देवता पर हम लोगों का अधिकार नहीं रहेगा, भगवान पर हम लोगों का अधिकार नहीं रहेगा! हमारे भगवान को भी छीन लेगा!"

नलिन आकर खड़ा हुआ।

यतीन ने कहा, "क्या खबर है नलिन?"

"आठ आना पैसा। अबकी गाजन में घोष बाबू मेला लगाएँगे। मैं खिलौने बनाकर बेचूँगा। रंग खरीदना है।"

"श्रीहरि मेला लगाएगा?" देबू उठ बैठा।

नलिन को रुखसत करके यतीन बोला, "लड़के का हाथ बड़ा अच्छा है।"

देबू ने कहा, "उसका नाना नामी कारीगर था—कुम्हार।"

"कुम्हार? नलिन तो वैरागी है!"

"हाँ! काँच के खिलौनों का प्रचलन हो गया। बुढ़ापे में बेचारे ने भीख की शरण ली। वैरागी हो गया। इसके सिवा विधवा बिटिया के ब्याह के लिए भी बनना पड़ा।" कुछ देर चुप रहकर देबू ने कहा, "तो देख रहा हूँ, श्रीहरि अबकी धूम-धाम से गाजन करेगा!"

पचीस

ढाक की आवाज से भोर में ही, भोर क्या, कुछ रात बाकी थी तभी यतीन की नींद खुल गयी। गाजन का ढाक। पहले तो चैत के पहले ही दिन से गाजन का ढाक बजा करता था। पिछली बार से पातू ने देवोत्तर नौकरान जमीन छोड़ दी—तब से बीस तारीख से बजता है। नकद पैसे पर दूसरे गाँव के बजनिये को ठीक कर लिया गया है। रात के अन्तिम पहर में ढाक के बोल यतीन को अच्छे लगे। ढाक में एक गुरुगम्भीरता है—प्रचण्डता की। रात के अन्तिम पहर के सन्नाटे में प्रचण्ड गम्भीर शब्द में उसे एक पवित्रता के आभास का अनुभव हुआ। दरवाजा खोलकर वह बाहर निकला।

चकित रह गया वह। रात के अन्तिम पहर में ही बस्ती में जागरण की लहर दौड़ गयी है। ढेंकी चलने लगी। औरतें इसी बीच रास्ते पर निकल आयीं। हाथ में पानी-भरा लोटा, चण्डीमण्डप में छिड़काव के लिए जा रही हैं। रांगा दीदी बड़बड़ाती हुई तैंतीस कोटि देवताओं का नाम ले रही थी—और वह यहीं से सुनाई पड़ रहा था। गाजन के कई भक्त नहाकर लौट रहे थे। वे ध्वनि कर रहे थे—"शिवो—शिवोऽहं! हर-हर बम!"

यतीन उठता सदा सवेरे ही है, लेकिन रात के आखिरी पहर में कभी नहीं जगा। वस्ती का यह रूप उसके लिए नया है। वह जब जगता है, तब रांगा दीदी भगवान और अपने पुरखों को गालियाँ देती होती है। औरतों का काम-धन्धा शुरू हो जाता पूजा-अर्चन के बाद।

अनिरुद्ध के पिछवाड़े की खिड़की खुल गयी। धुँधले अँधेरे में छाया-मूर्ति-से फतिंगा और गोवरा निकल गये। उनके पीछे-पीछे निकली पद्म। उसके भी हाथ में लोटा था।

चूँ-चरमर करती हुई खाद-लदी एक गाड़ी चली गयी। रात रहते ही खेतों का काम शुरू हो गया। खाद डालने का काम चल रहा था। खादवाली गाड़ी पर ही हल पड़ा था। खाद डालने के बाद जोताई चलेगी। खेतों में अभी रस है। धूप से माटी का लसलसापन जाता रहा है और वह खेती के लिए बड़े मजे की हो गयी है। छेने के लोंदे के नीचे जैसे छुरी चलती है, उसी आसानी से गले तक माटी में डूबकर चीरता हुए चलेगा हल का फाल। बड़े-बड़े ढेले फाल के दोनों ओर निकलते चले जाएँगे और फाल में जरा भी माटी नहीं लगेगी। मामूली ठोकर से ही ढेले चूर-चूर हो जाएँगे। वैल-भैंस उस पर लापरवाही से चलेंगे। ऐसी जोताई में हलवाहों को बड़ा आनन्द आता है। मन-ही-मन मानो आनन्द का रस झरता हो!

एक कतार में जैसे जुलूस निकला हो— छह हल गये; उनके पीछे खाद भरी हुई चार गाड़ियाँ। हल के तन्दुरुस्त और बलिष्ठ बैलों को देखकर आँखें जुड़ा जातीं। ये सारे ही हल-बैल श्रीहरि के हैं। घोष के दस हल हैं...बीस हलवाले बैल! घोष की सारी सम्पत्ति पर प्रसन्न भाग्यलक्ष्मी का प्रतिबिम्ब स्पष्ट है।

कुरता पहनकर यतीन घर से निकल पड़ा। गाँव से निकलकर बैहार में जा पहुँचा। दिगन्त तक फैली बैहार! बैहार के छोर पर मयूराक्षी का बाँध। बाँध पर कोमल हरे सरपत का जंगल। उन्हीं के अन्दर से निकलकर खड़े हैं ताड़ के पेड़। बीच-बीच में सेमल, शिरीष, इमली के पेड़। पेड़ों के ऊपर अस्पष्ट प्रकाश में झाँकती हुई जंक्शन शहर की चिमनियाँ। मिलों के भोंपू बज रहे थे—एक साथ चार पाँच। शायद चार बजे हैं।

बैहार पार करके वह बाँध पर पहुँचा। बाँध से उतरा मयूराक्षी के चौर पर। पानी पड़ जाने से चौर की घास गाढ़ी हरी हो उठी थी। उसी के बीच जतन से जोती हुई जमीन की गेरुआ माटी। बहुत ही अच्छी दिखाई दे रही थी। उसमें सब्जी के पौधे साँप के फन-सी फुनगी उठाये लतरने लगे हैं। सुबह-सुबह तीतरों का झुण्ड चारे की खोज में निकल पड़ा है। यतीन की आहट पाकर कुछ तीतर फुर्र-फुर्र उड़कर जंगल में जा छिपे।

आसमान लाल हो उठा। यतीन नदी की बालू पर जाकर खड़ा हुआ। मयूराक्षी के बालू-भरे पाट और आसमान के मिलन-केन्द्र पर पूरब में सूरज उगने लगा। कुछ

दिन बाद ही महाविषुव संक्रान्ति है। मयूराक्षी यहाँ से ठीक पूरब को बह गयी है।

मयूराक्षी को पार करके वह जंक्शन के घाट पर पहुँचा। हफ्ते में दो दिन उसे थाने जाकर हाजिरी देनी पड़ती। और-और दिन वह चाय पीकर थाना जाता था। आज जब प्रातःकाल के नशे में इतनी दूर निकल ही आया, तो तय कर लिया कि हाजिरीवाला काम खत्म करके ही लौटेगा।

गाँव के रास्ते पर पैर रखते ही यतीन को फिर हंगामे की खबर मिली। कितने दिनों से हंगामों के मारे गाँव की धीमी जीवन-यात्रा का जैसे ताल-भंग हो गया है। आज जाने किसने या किन्होंने श्रीहरि के बगीचे का पेड़ काटकर तहस-नहस कर दिया है। अफवाहों से, भीड़-भाड़ से, जोश से गाँव चंचल हो उठा है। चण्डीमण्डप में मारे दुःख और गुस्से से श्रीहरि अपना बाल नोचता हुआ चहलकदमी कर रहा है। आज एक-ब-एक उसके अन्दर से पुराना बेहूदा छिरू पाल निकल आया है।

गाँव से कुछ हटकर उत्तरी बैहार में, यानी जिधर मयूराक्षी नदी है उसके ठीक उलटे जो बाढ़ के खतरे से खाली जमीन है, उसमें एक पोखरा था, जो भर गया था। उसी की मिट्टी कटवाकर उसके चारों तरफ शौक से श्रीहरि ने बगीचा लगवाया था। पहले के खेतिहर छिरू की रचनात्मकता और आज के आभिजात्य कामी श्रीहरि की कल्पना के मेल से वह बगीचा बना था। श्रीहरि ने कलम के अनेक कीमती चारे मँगवाकर लगाये थे। मालदह, मुर्शिदाबाद से आम की, कलकत्ते से लीची-जम्बूफल की और विभिन्न जगहों से कन्हाईवंशी, अमृतसागर, काबुली आदि केले की कलमें और पौधे उसने जुटाये थे। फल ही नहीं, उसे फूलों का भी शौक था—सो अशोक, चम्पा, गुलाब, गन्धराज, बकुल के पेड़ भी बहुतेरे रोपे थे।

श्रीहरि के और भी बहुत-से सपने थे। बगीचे में सजे-सजाये दो कमरों का एक बँगला, बँगले के सामने पोखरे की ओर पक्के चौतरे से घाट तक बँधी होंगी सीढ़ियाँ। उसी कल्पना से उसने कच्चे घाट के दोनों तरफ कनकचम्पा के दो पेड़ लगाये थे। अशोक का चारा बगीचे के द्वार पर ही लगाया था। इच्छा थी कि पेड़ जरा बड़े हो लें तो उनके नीचे बैठने के चौतरे बनवाये। साँझ को दोस्तों के साथ वहाँ जाएगा। जी में आया तो रात वहाँ खुशियाँ मनाया करेगा, मौज-मजे करेगा। कंकना के बाबुओं की तरह गाना-बजाना, खान-पान।

बीती रात जाने किसने या किन लोगों ने उसके उस बगीचे को बरबाद कर दिया। श्रीहरि चीख रहा था, चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, "मैं भी उनकी गरदन पर वार करूँगा!"

उसका खयाल है, यह करतूत उन्हीं लोगों की है, जिनके पेड़ उसने काटे हैं। पाँचों पाण्डवों पर कुढ़कर आक्रोश से अश्वत्थामा ने जैसे अँधेरे में छिपकर पाण्डवों

के शिशुओं की हत्या की थी—इन कायर दुश्मनों ने वैसी ही चिढ़ से इन पौधों को बरबाद कर दिया है। मगर श्रीहरि छोड़नेवाला आदमी नहीं, अश्वत्थामा की शिरोमणि काटकर इसका बदला चुकाकर रहेगा। थाने में खबर भेज दी गयी है। रास्ते में भूपाल से यतीन की मुलाकात हुई।

हरेन घोषाल बदस्तूर भड़क गया है। उसे श्रीहरि की इस मूर्ति से बेहद डर लगता है। इस रूप में छिरू पाल ने एक बार उसे पानी में गोंत दिया था, गरदन पकड़ कर माटी में मुँह रगड़ दिया था। वह ब्राह्मण के सामने डरता नहीं, भले आदमी की परवाह नहीं करता। यतीन के आते ही हरेन उसके पास बैठा। बोला, "यतीन बाबू, केस इज सीरियस! वेरी सीरियस! छिरू पाल इज फ्यूरियस! ही इज ए डेंजरस मैन!"

जगन इस घटना से बेहतर खुश हुआ है। इसकी उसने सबसे बड़े सूक्ष्म विचारक विधाता के फैसले से तुलना भी की। थर्ड क्लास तक पढ़े हुए जगन ने आज देव-भाषा में इसकी व्याख्या कर दी—"षण्डस्य शत्रुर्व्याघ्रेन निपातितः। यानी साँड़ के शत्रु को बाघ ने मार दिया।"

देबू ने कहा, "नहीं, यह काम बड़ा बुरा हुआ है डॉक्टर!"

"तुम्हारी बात ही अलग है भाई! तुम ठहरे धर्मपुत्र युधिष्ठिर!"

देबू ने कोई जवाब नहीं दिया। नाराज भी नहीं हुआ। वह वास्तव में दुःखी हुआ था। पेड़ों को श्रीहरि ने जतन से लगाया था। फल भी खाता था उनका। श्रीहरि ने उसका पेड़ काटा है, फिर भी उसे ही दुःख हुआ। काम यह बेजा है। पेड़-पौधों से उसकी बड़ी ममता है। वे पेड़ बढ़ते, फल-फूलों से लद जाते हर साल, पुरुषानुक्रम से बढ़ते जाते। आदमी से पेड़ों की आयु ज्यादा होती है। श्रीहरि, श्रीहरि के बाल-बच्चे, उनके भी उत्तराधिकारी, उनके भी बाद के लोग उन पेड़ों के फलफूल से परितृप्त होते। देवता को भोग लगाते, गाँव में बाँटते, लोग तृप्त होते। भला उन पेड़ों को ऐसे नष्ट करना था!

भों की आवाज से दौड़ते हुए आकर फतिंगे ने कहा, "दरोगा आया है।"

हरेन चौंक उठा, "कहाँ?"

फतिंगा तब तक घर के अन्दर दाखिल हो गया था। जवाब दिया गोबरा ने। वह फतिंगा के पीछे था। बोला, "पोखर से होकर गाँव में आ रहा है।"

अबकी जगन भी शंकित हो उठा। बोला, "यतीन बाबू, यह कमबख्त निश्चय ही हम लोगों के खिलाफ बयान देगा। और पुलिस भी शायद हम लोगों का ही चालान करेगी। लेकिन जमानत का इन्तजाम आपको ही करना पड़ेगा। आप कांग्रेस सेक्रेटरी को पत्र लिख रखें।"

दुर्गा आयी—"गुरुजी!"

"दुर्गा!" देबू यतीन की चौकी पर लेटा था। उठ बैठा।

"जी,. घर चलिए!"

"क्यों रे?"

"पुलिस आयी है। घर की तलाशी लेगी। डॉक्टर बाबू, आपके घर के सामने पुलिस खड़ी है।"

हरेन सबसे पहले उठा। बोला, "माई गॉड! मुझे माँ की गीता के लिए परेशानी है।"

एक सिपाही तीनेक चौकीदारों के साथ आया और अनिरुद्ध के तीनों दरवाजों पर पहरा बैठा दिया।

रास्ते पर चलते हुए दुर्गा ने कहा, "गुरुजी!"

"क्या है दुर्गा?"

"घर में कुछ हो तो मुझे दे दीजिएगा। मैं आँचल के नीचे छिपाकर निकल जाऊँगी।"

"मेरे यहाँ क्या होगा दुर्गा? कुछ नहीं है।"

दरवाजे पर खुद सब-इन्सपेक्टर था। उसने कहा, "गुरुजी, हम आपके घर की तलाशी लेंगे। दुर्गा, तू अन्दर मत जा।"

दुर्गा ने कहा, "हाय राम! मेरा दूध का लोटा जो वहाँ रह गया है दरोगा बाबू! आप मुझपर क्यों पड़ गये?"

हँसकर दरोगा ने कहा, "बड़ी बदमाश है तू! कहाँ है तेरा लोटा, बता! चौकीदार ला देगा।"

देबू ने कहा, "चलिए दरोगाजी! दुर्गा, तू यहीं रह! लोटा मैं भिजवाये देता हूँ।"

दरोगा ने कहा, "दुर्गा, तू जरा साफ-सुथरी जगह में बैठ। कहीं साँप-बिच्छू न काट खाये।"

एक चीज के बारे में देबू ने सोचा नहीं था।

पुलिस ने घर को ठीक से देखा। दाव-कुल्हाड़ी की पैनी नजर से निरख-परख की कि उनमें रात को पेड़ काटने का कोई निशान है या नहीं। लेकिन वह सब कुछ नहीं मिला। गीले कपड़ों की जाँच की कि उनमें केले के पौधों का रस तो नहीं लगा है कहीं। लेकिन वह भी नहीं था। पुलिस ने नयी प्रजा-समिति के कागज-पत्तर ले लिए। इनकी देबू को याद नहीं थी? औरों के घर से पुलिस खाली हाथ ही निकली।

श्रीहरि ने यतीन के खिलाफ भी बयान दिया; उसपर भी शक था! श्रीहरि का दोस्त जमादार होता तो क्या होता, पता नहीं, मगर सब-इन्सपेक्टर ने श्रीहरि की इस बात पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। बोला, "घोष बाबू, हर बात की सीमा होती है उससे बाहर न जाएँ।"

इस दुनिया में जो लोग अपने सत्य के विधान को लाँघना चाहते हैं, विधाता

को सबसे ज्यादा वही मानते हैं। विधाता को प्रसन्न करने से विधान तोड़ने के सभी अपराधों का दण्ड हलका हो जाता है, यही विश्वास उनके जीवन का सबसे बड़ा भरोसा होता है। श्रीहरि ने झट कहा, "जी नहीं, नहीं! यह हमारी ही भूल है। आप ठीक कह रहे हैं!"

जो भी हो, देबू के घर की तलाशी के बाद दरोगा ने कहा, "गुरुजी, हम आपको गिरफ्तार कर रहे हैं। आप प्रजा-समिति के अध्यक्ष हैं, हमारा सन्देह है कि यह काम प्रजा-समिति ने ही किया है। यह अवश्य है कि उसकी अभी पड़ताल नहीं हुई। फिर भी हम आपको गिरफ्तार कर रहे हैं। जुर्म जरूर चोरी का है!"

देबू ने कहा, "चोरी? मुझपर चोरी का जुर्म?"

हँसकर दरोगा ने कहा, "पेड़ काटने की बात तो है ही, उसका सम्मन एस. डी.ओ. करेंगे। श्रीहरि की लोहे की दो जाफरी भी चोरी गयी है।"

"मुझे चोरी के अपराध में चालान करेंगे दरोगाजी?" देबू ने बड़े ही मार्मिक आक्षेप से पूछा।

"अर्जुन-जैसे वीर को भी समय के फेर से नपुंसक बनना पड़ा था, पता है न गुरुजी! इसके लिए अफसोस मत करें। वक्त तो काफी हो गया। खाना-पीना खत्म ही कर लीजिए!"

दरोगा की बात से देबू को अजीब सान्त्वना मिली। उसने कहा, "थोड़ा-सा जलपान कर लें आप भी?"

"नौकरी तो पेट ही के लिए है गुरुजी! खाऊँगा जरूर, मगर न तो आपके यहाँ खाऊँगा, न श्रीहरि के यहाँ। अपने यतीन बाबू हैं। वहीं जो थोड़ा-सा बनेगा, ले लूँगा।"

दरोगा, यतीन के यहाँ जाकर बैठा।

गाँव के लोग सिर झुकाये चारों ओर बैठे थे। सभी हैरान हो सोच रहे थे—"यह काम किया किसने!"

औरतें देबू के यहाँ आ जुटीं। बहुतेरियों ने आँगन में भीड़ लगायी, बहुतेरी बरामदे में बैठीं। बिलू तो जैसे पत्थर हो गयी। दुर्गा की आँखों में अविराम आँसू बह रहे थे। रांगा दीदी के विलाप का अन्त न था। पद्म आकर बिलू के पास बैठी थी। बिलू के दुःख से वह भी असीम दुःख का अनुभव कर रही थी। उसे लग रहा था, इस दुःख का वह हिस्सा बँटा पाती तो बिलू का दुःख वह मेट सकती थी! घूँघट के अन्दर से उसकी आँखों से भी आँसू की बूँदें टप-टप चू रही थीं।

हठात् फतिंगा दौड़ा आया। लोगों की भीड़ में चालाकी से सिर धँसाकर वह एकबारगी पद्म के पास पहुँचा—"माँ, जल्दी घर चलो!"

यतीन की देखा-देखी वह भी पद्म को माँ कहता है।

खीझकर पद्म ने सिर हिलाकर पूछा, "किस लिए?"—उसने समझ लिया कि चाय बनाने के लिए यतीन ने बुलवा पठाया है।

"दरोगा कर्मकार को पकड़कर ले जा रहा है!"

पद्म का कलेजा धड़क उठा। उसका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। अनिरुद्ध को पकड़कर ले जा रहा है! यह कैसी बात! अकेली पद्म ही नहीं, बात सुनकर सभी चौंक उठे।

सिर में तेल लगाते-लगाते देबू ने पूछा, "उसने क्या किया?"

"उसने बहादुरी दिखाकर कहा, मुझको पकड़ो मैंने पेड़ काटा है। दरोगा ने पकड़ लिया।" यह कहकर फतिंगा सिर घुमाकर जिस तरह भीड़ के अन्दर आया था उसी तरह बाहर निकल गया।

किसी प्रकार से अपने को जब्त करके पद्म भी स्त्रियों की भीड़ में से ठेलते हुए बाहर निकल आयी।

"लुहार-बहू?"

पद्म ने पलटकर देखा—दुर्गा थी।

"ठहरो, मैं भी चलती हूँ।"

फतिंगा घटना को सुलझाकर नहीं कह पाया था, लेकिन उसने गलत नहीं कहा। ठीक ही कहा। सन्न खड़ी भीड़ में से एकाएक बाहर आँख-मुँह दमकाकर अनिरुद्ध दरोगा के सामने छाती फुलाकर खड़ा हो गया और बोला, "देबू पण्डित के बदले मुझे पकड़ो, उसने नहीं, पेड़ मैंने काटा है।"

दरोगा नजरबन्द यतीन के बरामदे में बैठे थे। सामने लोगों की एक अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गयी थी। दरोगा से लेकर वहाँ खड़ी भीड़ का एक-एक आदमी आकस्मिक विस्मय से उसकी ओर ताकने लगा।

अनिरुद्ध ने कहा, "कल रात मैंने कुल्हाड़ी से सारे पेड़ काट डाले हैं और जाफरी को 'चरखाई' तालाब में डाल दिया है।"

बात झूठ न थी। पैनी कुल्हाड़ी से अनिरुद्ध ने छिरू पाल से अपना पेड़ काटने का बदला चुकाया था। बदला लेने के उन्मत्त आनन्द से वह उसी अँधेरी रात में नाचता-नाचता गया था और बच्चों की तरह अपने मुँह से बलिदानी बाजे का बोल बोलता गया था—खाज्जिं ज्जिं, जिनाक जिजिं; ना जिं जिं जिंनाक जिना। इस बात का किसी को पता नहीं, उसने किसी से कहा नहीं, पद्म तक से नहीं। पद्म इन दिनों उन दोनों लड़कों के साथ अलग पड़ी रहती है। रात को अनिरुद्ध चुपचाप गया और चुपचाप ही लौटा। सुबह से श्रीहरि को बौखलाते देख वह मन-ही-मन खुश होता रहा। पुलिस के आने से भी नहीं डरा, जरा भी नहीं। सुबह अपनी कुल्हाड़ी को आग में तपाकर उसने उसपर से अपराध के सारे दाग पोंछ दिये थे। कपड़े में केले का रस जरूर लगा था, सो उस कपड़े को उसने पोखर में गाड़ दिया था। लेकिन जब

दरोगा ने देबू गुरुजी को गिरफ्तार किया, तो वह चौंक उठा। उसे बड़ी टेस-सी लगी—यह क्या हुआ? गुरुजी को गिरफ्तार किया? देबू को? अभी-अभी तो वह जेल से वापस आया है। बिना कसूर उसको फिर पकड़ लिया? गाँव के सबसे सज्जन, परोपकारी, उसके सहपाठी, मुसीबत के साथी देबू को पकड़ लिया? जगन को नहीं पकड़ा, हरेन को नहीं पकड़ा, उसको नहीं पकड़ा, पकड़ा देबू को! भीड़ में चुपचाप माटी की तरफ निहारता हुआ क्षुब्ध चित्त से वह सोच रहा था। उसके कसूर की सजा भोगने के लिए देबू भाई जेल जाएगा? सभी लोग मौन होकर हाय-हाय कर रहे थे। वह अधीर हो उठा। सोचते-सोचते वह अपने को और नहीं रोक सका। एक विचित्र आवेग के अतिरेक से उसने लमहे-भर में दरोगा के सामने आकर हाथ फैलाकर कहा, "देबू पण्डित के बदले मुझे पकड़ो। उन्होंने पेड़ नहीं काटा, मैंने काटा है।" क्षण-भर को सारी जनता निर्वाक् हो गयी। चारों ओर सन्नाटा छा गया। दरोगा भी अनिरुद्ध की ओर विस्मय से आँखें फाड़े देखने लगा। उसी स्तब्धता और विस्मय के परिवेश में अनिरुद्ध जोर-जोर से अपना अपराध स्वीकार कर रहा था।

उस स्तब्धता को भंग किया सबसे पहले देबू ने। फतिंगे से खबर पाकर वह भागता हुआ आया और अनिरुद्ध को बाँहों में भरते काँपती-सी आवाज में बोला, "अन्नी भाई, अन्नी भाई! तुम फिकर मत करो अन्नी भाई, मैं जान देकर तुम्हें छुड़ाने की कोशिश करूँगा।"

अनिरुद्ध जवाब नहीं दे सका। वह गीली आँखों गहरे आनन्द से बेवकूफ की नाई होठ फैलाकर हँसता हुआ देबू के सामने खड़ा रह गया। एकाएक उसकी आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे। देबू भी रो पड़ा। और लोग भी रोने लगे। यतीन और दरोगा भी आँखें पोंछ रहे थे। साथ-ही-साथ बस्ती के सबने अनिरुद्ध की बड़ाई की—"अनिरुद्ध ने सही आदमी-जैसा काम किया है। बेशक! शाबाश अनिरुद्ध, शाबाश!"

तभी भीड़ के पीछे से एक ऊँची आवाज सुनाई दी—"शाबाश भाई, शाबाश! तुम्हें सौ बार शाबासी!"

विचित्र घटना! यह आवाज थी जो सब-कुछ खो चुका है उस तारिणी पाल की, फतिंगे के पिता की। काला, लम्बा-सा आदमी, बाहर को निकले हुए बड़े-बड़े दाँत, कुछ पागलों-जैसा। अनिरुद्ध के इस कार्य में उसे जाने कैसे एक महोल्लास की खोज मिली।

अन्दर पद्म निर्वाक् खड़ी थी। उसकी आँखों से आँसू झर रहे थे। उसकी बोली खो गयी थी, चिन्ता खो गयी थी। भविष्यत् खो गया था। मात्र वर्तमान में खड़ी वह आँसू बहा रही थी। दुर्गा खड़ी थी जरा दूर पर। फतिंगा और गोबरा पास ही थे। अनिरुद्ध अन्दर आया, तो वे हट गये। गीली आँखों लज्जित-जैसा हँसता हुआ

अनिरुद्ध सबकी ओर देखता हुआ बोला, "तो, चलता हूँ!"

पद्म की रसोई तैयार नहीं थी। यतीन की रसोई में भी देर थी। देबू ने कहा, "मेरे यहाँ रसोई तैयार है अन्नी भाई, चलो, थोड़ा-सा खा लेना!"

देबू के यहाँ खाकर अनिरुद्ध थाने चला गया।

जाते-जाते दरोगा दुर्गा को एक डपट दे गया—"जरा थाने में आ जाना। तेरे खिलाफ भी शिकायत हुई है।"

आज यतीन ने खुद ही रसोई बनायी। जुगाड़ फतिंगा और गोबरा ने कर दिया। दूर से दुर्गा खड़ी बताती रही।

पद्म कुछ देर घर में बैठी रही। उसके बाद पिछवाड़े के घाट पर जा बैठी। वहाँ बैठी-बैठी किसी नामहीन व्यक्ति को जोर-जोर से गाली-सराप देने लगी—

"....घुन लग जाएगा बदन में, कठिन बीमारी होगी। सर्वांग पत्थर का भी होगा तो फूट जाएगा, लोहे का होगा तो गल जाएगा। दारिद्र घुसेगा घर में। लक्ष्मी बनवास लेंगी। आग लग जाएगी घर में, धान की मोरियाँ राख की ढेरी हो जाएँगी!"

मन में सराप की और भी तेज-नुकीली बातें घुमड़ रही थीं—बहू-बेटा मरेंगे, पिण्ड भी नहीं मिलेगा। दोनों बेटे एक ही खाट पर तड़प-तड़पकर दम तोड़ेंगे।—लेकिन इसके साथ ही मन के कोने में एक गोरी-दुबली सुहागवाली स्त्री का करुणा की भीख माँगता हुआ चेहरा झाँक रहा था। थोड़े में ही चुप हो गयी वह।

दुर्गा ने आकर कहा, "लुहार-बहू, चलो बहन, नजरबन्द बाबू रसोई लिए बैठे हैं।"

पद्म ने जवाब नहीं दिया।

"मुँहझौंसी, आती क्यों नहीं? पिण्ड नहीं खाएगी? तेरे लिए हम लोग भी भूखे ही रहेंगे क्या?"

यह मधुर सम्भाषण फतिंगा का था।

पद्म ने जवाब दिया—"तू खा ले न रे हतभागे! मैं नहीं खाती! जा!"

"नजरबन्द बाबू दे तो नहीं रहे हैं! तेरे खाये बिना हम लोगों को नहीं देंगे। खुद भी नहीं खाये हैं। आखिर लुहार मरा थोड़े ही है। उसके लिए इस कदर रोती क्यों है?"

"मुँहजला कहीं का!"—उसे रगेदती हुई पद्म अन्दर आ पहुँची।

चैत की उन्तीस अनिरुद्ध के मुकदमे की तारीख थी। करना कुछ नहीं था, उसने स्वयं सब-कुछ कबूल कर लिया था। पुलिस के सामने भी, हाकिम के सामने भी। वकील-मुख्तार, किसी की सलाह पर अपने बयान को उसने बदला नहीं। एकबारगी

ही सब तरफ से जैसे लापरवाह हो गया था वह। उस दिन जो सबसे शाबाशी मिली उसका एक नशा-जैसा चढ़ गया था उस पर। सजा तो होकर ही रहेगी। देबू कई दिन सदर गया। वकील-मुख्तार सबने एक ही बात कही। सजा दो से छह महीने तक की हो सकती है। पर होगी जरूर।

इस बीच इंस्पेक्टर आकर एक बार जाँच-पड़ताल कर गया। उसकी पड़ताल का उद्देश्य यह जानना था कि इससे प्रजा-समिति का कोई सम्बन्ध है या नहीं। अपना ख्याल उसने गाँववालों को साफ सुना दिया कि प्रजा-समिति ने यह काम करने को कहा नहीं है, यह सही है, लेकिन गाँव में प्रजा-समिति नहीं रही होती तो यह घटना नहीं घटती; इसमें मुझे कोई शक नहीं।

दुर्गा की बुलाहट हुई थी। उसके खिलाफ कोई रिपोर्ट थी शायद। रिपोर्ट किसने की है, यह कहे बिना भी दुर्गा समझ गयी। तीखी नजर से ताककर इन्सपेक्टर ने कहा, "मैंने सुना, जितने भी दागी-बदमाश हैं, तेरा सबसे परिचय है। तू उनके साथ...! बात क्या है, बता तो?"

दुर्गा ने हाथ जोड़कर कहा, "सरकार, मैं बुरी-बिगड़ी हूँ, यह सही है। मगर हुजूर, मैं यह कैसे जान सकती हूँ कि अपने गाँव के छिरू पाल..."—दाँतों तले जीभ दबाकर बोली, "यानी घोष महाशय—श्रीहरि घोष, थाने के जमादार बाबू, यूनियन-बोर्ड के परशीडेंट साहब—ये सब दागी-बदमाश हैं! यह मुझे कैसे मालूम होगा! मेल-मिलाप, जान-पहचान मेरी इन्हीं लोगों के साथ है!"

इन्सपेक्टर ने डाँट बतायी, लेकिन दुर्गा बेपरवाह बनी रही। बोली, "आप बुलवाइए सबको, मैं सबके सामने कहती हूँ। अभी-अभी उसी रात को तो जमादार साहब ने घोष बाबू के बैठके में दिल-बहलाव के लिए मुझे बुलवा भेजा था, मैं गयी थी। उस रात घोष बाबू के पोखरे में मुझे साँप ने काट लिया था; आयु बाकी थी कि जिन्दा रह गयी। रामकिसुन सिपाही था, भूपाल चौकीदार था; सबसे पूछ देखिए। मेरी बात किसी से छिपी तो नहीं है!"

इन्सपेक्टर ने बात नहीं बढ़ायी। कड़ी निगाह से ताककर कहा, "अच्छा जा! होशियार रहना!"

बड़ी भक्ति से प्रणाम करके दुर्गा लौट आयी।

छब्बीस

अब मुसीबत थी पद्म को लेकर। उसके मिजाज का अन्त पाना मुश्किल। अभी कुछ और थी और अब कुछ और है। फतिंगा और गोबरा तक तो हक्का-बक्का हो गये हैं। मगर इतना ही है कि वे दोनों घर में ज्यादा रहते नहीं। बीस तारीख से बज उठा है गाजन का ढाक, पानी से बूढ़े शिव निकल आये हैं। चण्डीमण्डप में शान से विराजमान हैं—वे दोनों नन्दी-भृंगी की नाईं हमेशा चण्डीमण्डप में हाजिर रहते हैं। गाजन के भक्त भीख के लिए गाँव-गाँव में घूमते तो ये दोनों छोकरे भी साथ जाते।

गाँव में इस बार गाजन की बड़ी धूम थी। चण्डीमण्डप में मन्दिर और नाट्य-मन्दिर बनाने के संकल्प को यद्यपि श्रीहरि ने छोड़ दिया, लेकिन अचानक इस घटना के वाद वह गाजन में जी-जान से लग गया। लोग भक्त होना नहीं चाहते थे, इसका कारण भी वह जानता था। वह समझ गया है कि देबू घोष, जगन डॉक्टर और एक दुधमुँहे लड़के ने मिलकर उसके समारोह को नष्ट करने की साजिश की है। इसीलिए वह गाजन में कमर बाँधकर जुट पड़ा था। छोटा-मोटा एक मेला लगाने की भी तैयारी की थी। बोलन गीत की दो पार्टियाँ, एक दल झूमर का, कवि-गान—तरह-तरह का इन्तजाम था। जिन लोगों ने चण्डीमण्डप की छौनी करने से इनकार किया है, वे लोग जिसमें चौबीसों घण्टे इस आनन्द-समारोह के पास कुत्ते की तरह खड़े रहें—इसीलिए इतनी सारी तैयारी थी। भात बिखेर दो तो कुत्ते और कौवे खुद ही आते हैं। जिस रोज वह धान बाँट रहा था, उस रोज लोग उसके घर के आस-पास मँडराते हुए उसका ध्यान खींचने की कोशिश करते रहे। भवेश चाचा वहुतों की पैरवी लेकर पहुँचा। ऐसी बात चल रही थी कि वे लोग कसूर मानकर क्षमा माँग लेंगे; प्रजा-समिति को भी छोड़ देंगे—ऐसा वचन भी दिया है।

गुड़गुड़ी पीते हुए श्रीहरि मन-ही-मन हँसा। मगर इन हरिजनों को माफ नहीं करने का। कुत्ते हैं वे और ठाकुर के सिर पर चढ़ना चाहते हैं?

कल फिर तारीख है अनिरुद्ध की। सदर जाना होगा। श्रीहरि चंचल हो उठा। अनिरुद्ध जेल चला जाए तो पद्म अकेली रहेगी। उसे अन्न के लाले पड़ेंगे, कपड़े की दिक्कत होगी। लम्बी, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, उद्धत और मुखरा लुहार-बहू! देखना है, अबकी वह क्या करती है! उसके बाद अनिरुद्ध का चार बीघा घोघर। उसकी तो पूरी जोत ही नीलाम पर चढ़ चुकी है। शायद इतने दिनों में नीलाम हो भी चुकी हो! जो भी हो।

कालू शेख ने आकर सलाम किया—"हुजूर को माँ जी बुला रही हैं।"

"माँ?—ओ, आज नीलषष्ठी भी तो है!"—वह चला गया।

चैत संकरान्त का पहला दिन नीलषष्ठी। तिथि में षष्ठी हो चाहे न हो, जो औरतें मन्नत मानती हैं, वे उपवास जरूर रखती हैं, पूजा करती हैं; बच्चों को टीका

लगाती हैं। नील यानी नीलकण्ठ ने शायद इसी दिन लीलावती से विवाह किया था। लीलावती की गोद में उज्ज्वल नीलमणि की शोभा। नीलषष्ठी व्रत करने से नीलमणि जैसे बच्चे होते हैं।

पद्म सभी षष्ठी-व्रत करती है। उपवास रखा है। मगर आफत हो गयी है फतिंगा और गोबरा से। आज सुबह से ही उनका कहीं पता नहीं। आज दरअसल ढाक बजाते हुए भक्त गाँवों में घूम रहे थे। एक भक्त लोहे की कीलोंवाले तख्ते पर सोया रहेगा। यह कोई आसान काम है? वे दोनों इसी के पीछे-पीछे डोल रहे थे। पहले भक्तों को यहाँ लोहे के मोटे काँटे चुभाये जाते थे। अब ऐसा नहीं होता।

इन्तजार करते-करते आखिर पद्म खुद चण्डीमण्डप के पास पहुँची। ढाक बज रहा था। शायद् चड़क लौट आया।

चण्डीमण्डप के पास मेला लगा था। बीसेक दूकानें। ज्यादातर मिठाई-पकौड़ी की--बैंगनी, फुलौड़ी, पापड़। बच्चे आते, खरीदते और खाते। चारेक मनिहारिनों की दूकानें थीं। वहाँ युवतियों की भीड़ ही अधिक थी—सब फीता, आलता, टीका, फुलेल खरीद रही थीं। पेड़ के नीचे तीन चूड़ीवालियों ने बिसात बिछायी थीं। एक पेड़-तले वैरागी का नलिन भी कुछ खिलौने लिए बैठा था। अच्छा! इस बुड्ढे ने खिलौने तो खूब बनाये हैं। बुड्ढा तम्बाखू पी रहा है। और गरदन हिला रहा है। वयस्क लोग अलसाये कदमों घूम रहे थे। इन दो दिनों में खेती के काम-काज बन्द हैं। हल जोतना, बैल को जुए में लगाना मना है। दो दिन सब कामों से छुट्टी!

फतिंगा और गोबरा की सूरत नहीं दिखाई पड़ी। इसका मतलब कि चड़क अभी वापस नहीं लौटा है। यह ढाक श्रीहरि घोष् की माँ की ओर से बज रहा है। पद्म को शायद पता नहीं है कि घोष ने इस बार दस ढाक ठीक किये हैं।

पातू किसी और गाँव में बजाने गया है। हालत हर जगह की एक ही है! लगभग सभी जगह दजनियों की नौकरान जमीन ले ली गयी है। यहाँ के ढाक बजाने वाले वहाँ जाते हैं, वहाँ के यहाँ आते हैं। सतीश बाउरी भी अपनी बोलन-पार्टी लेकर दूसरे गाँव गया है।

पद्म लौट आयी। जमीन पर आँचल फैलाकर लेट गयी। दूसरे के बच्चे के लिए यह कैसी विडम्बना है उसकी! जरा देर बाद वह फिर बाहर निकली। अबकी धूल-भरे उन दोनों लड़कों को देखा। पकड़कर उन्हें यतीन के पास ले आयी—"जरा शकल तो देखो इन लोगों की! डाँटो!"

यतीन कुछ बोला नहीं, धीरे से हँसा।

पद्म ने कहा, "तुम हँसो मत! तुम्हारी हँसी से मेरे सर्वांग में आग लग जाती है। अन्दर चलो, टीका दूँगी।"

टीका देकर पद्म ने कहा, "मजाक नहीं, तुम फतिंगा से साफ कह दो कि अगर वह इसी तरह भटका करेगा तो तुम उसे निकाल दोगे, खाना नहीं दोगे। गोबरा बल्कि

अच्छा है। उसे यह फतिंगा ही ले जाता है। कह दो, कल वे कहीं न जाएँ!"

यतीन ने इस बार बनावटी गम्भीरता के साथ कहा, "अच्छी बात है!" उसके बाद फतिंगा को जोरों से और गोबरा को हलके से डाँटा। यानी दोनों के दो तरह से कान ऐंठ दिए।

लेकिन इससे होता क्या है!

गाजन के दिन फतिंगा और गोबरा भला घर रहें, यह कभी हो सकता है? वह रात रहते ही ढाक बजने के साथ-साथ गोबरा को साथ लेकर निकल पड़ा। निकला सो फिर काहे को लौटे! लौटने पर पद्म रोक न ले कहीं।

आज बूढ़े शिव की पूजा है। पूजा, होम, बलिदान। भक्त आज तमाम दिन लेटा रहेगा। उसका काँटोंवाला तख्ता कुछ इस तरह का बना है कि घुमाने पर वह बों-बों करके घूमता रहेगा।

फतिंगा ने गोबरा से कहा, "आज हम लोग शिव का उपवास करेंगे।"

"उपवास?"—गोबरा को भूख जरा ज्यादा लगती है।

"हाँ! बूढ़े शिव का उपवास! सभी करते हैं। नहीं करने से पाप होता है। उपवास करने से ढेरों रुपया मिलता है।"

गोबरा इस बात से इनकार नहीं कर सका कि गाजन का उपवास सभी करते हैं। यह उपवास लगभग सार्वजनीन है। बाउरी-बजनिये से लेकर ऊँची जाति के ब्राह्मण तक आज उपवास करते हैं। देबू उपवास करके ही अनिरुद्ध के मुकदमे की पैरवी में शहर गया है। श्रीहरि का भी उपवास है। लेकिन गोबरा इस बात को नहीं मान सका कि उपवास करने से रुपये मिलते हैं। अगर ऐसा ही होता तो फिर पण्डित गरीब क्यों हैं?

गोबरा की एकान्त अनिच्छा को फतिंगा ने समझा। कहा, "खैर, ज्यादा भूख लगेगी तो चौधरी के बगीचे में जाकर आम खाएँगे। काफी बड़े-बड़े हो गये हैं—समझा? आम तोड़ने से वे कुछ कहेंगे नहीं, पाप भी नहीं होगा।"

इसमें गोबरा को वैसा एतराज न रहा।

"न होगा, तो किसी के यहाँ से माँगकर खा लेंगे।"

"उहूँ! फिर तो माँ मारेगी। कहेगी—निकल जा, भिखमंगा कहीं का!"

"तो चल, हम लोग महाग्राम चलें। वहाँ यहाँ से ज्यादा धूमधाम होती है। और वहाँ माँगकर भी खाएँगे, तो माँ कैसे जानेगी? चल!"

इस प्रस्ताव से गोबरा उत्साहित हो गया।

गाँव के छोर पर एक सूखे तालाब के बाँध पर लंगड़े पुरोहित का तीन टाँगों वाला घोड़ा चर रहा था।

"लताड़ मारेगा!"

"तेरा सिर! पीछे की एक टाँग टूटी हुई है। लताड़ मारने चला कि आप ही

धप से गिर जाएगा। पकड़! इसी पर चढ़कर दोनों जने चलेंगे। अपना कपडा उतार ले। उसी की लगाम बना लेंगे।"

लताड़ वह सच ही नहीं चला सकता; मगर काटता है, जिद्दी कुत्ते की तरह दाँत निकालकर काटने दौड़ता है। फतिंगे को यह बात मालूम नहीं थी। शायद अपने को बचाने के लिए इस घोड़े ने इस साधन का आविष्कार किया था। लाचार फतिंगा को उसपर चढ़ने का संकल्प छोड़ना पड़ा।

साँझ को गाजन की पूजा खत्म हो चुकी थी। चड़क समाप्त हो गया था। आग से भक्तों का फूल-सा खेलना भी हो चुका था। बलि और होम भी शेष हो चुके थे। कपाल पर टीका लगाये हरीश और भवेश चण्डीमण्डप में बैठे थे। श्रीहरि अभी तक सदर से नहीं लौटा था। ढाकवाले बड़ी उमंग से ढाक पर अपनी करामात दिखा रहे थे। बड़े-बड़े ढाक, ढाकों पर डेढ़-डेढ़ हाथ लम्बे पखनों के फूल! इस ढाक की आवाज भी बड़ी प्रचण्ड होती है। भले लोग कहते हैं, ढाक का बजना वन्द होता है तो मीठा लगता है। लेकिन कुशल बजनिये के हाथों से जब ढाक पर रागिनी के अनुरूप बोल निकलते हैं तो आकाश-वातास गूँज जाता है। उसकी गुरु-गम्भीर ध्वनि से कलेजे के अन्दर भी झंकार उठती है। नाच-नाचकर मुँह से बोल दुहराते हुए एक-एक वजनिया क्रम से बजा रहा था और उनके नाच के साथ ढाक पर के पखनों का फूल नाच रहा था। कौओं का काला पखना और सिर के बिलकुल ऊपर बगुले का सफेद पखना।

हरीश अफसोस कर रहा था—"इस बार चौधरी नहीं पहुँच सके। उनके बिना सूना लगता है।"

चौधरी हर साल आते हैं। ढाक के वह एक समझदार श्रोता हैं! ताल पर गरदन हिलती रहती है। बजा लेने के बाद अपनी गठरी खोलकर चौधरी बजनियों को इनाम देते हैं। किसी को पुराना कुरता, किसी को पुरानी चादर, पुरानी धोती। अबकी वह बीमार हैं। माथे में वही जो चोट लगी थी और खाट पकड़ी थी, तब से उठे नहीं। घाव सूख नहीं रहा है; साथ ही थोड़ा-थोड़ा बुखार भी रहता है।

मेले में इस समय भीड़ खासी थी। औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे दल-के-दल घूम रहे थे। शाम के बाद कवि-गान होगा। शोर का अन्त न था। अचानक उस शोर को चीरते हुए कालू शेख का गला सुनाई पड़ा—"ऐ हट जा! हट!"

भीड़ को चीरकर रास्ता बनाता हुआ कालू शेख सामने आया, पीछे-पीछे श्रीहरि। भवेश और हरीश आगे बढ़े।

पोपले मुँह से श्रीहरि ने हँसकर कहा, "शुभ समाचार है—दो महीना सश्रम कारावास।"

भीड़ को ठेलता हुआ देबू घोष भी जा रहा था। उदास चेहरा लिए वह यतीन के यहाँ गया।

यतीन, देबू, जगन और हरेन—साँझ की बैठक में आज चार ही जने थे। समस्या यह थी कि यह खबर पद्म को कौन दे? कैसे?

अन्दर के किवाड़ की जंजीर खनक उठी। पद्म बुला रही थी। यतीन उठकर गया। अनिरुद्ध को सजा हो गयी, यह सुनकर वह बहुत ज्यादा गमगीन नहीं हुआ था। दो महीने की सजा यतीन की राय में कम ही हुई। अनिरुद्ध ने जिस मन से बेकसूर देबू को बचाने के लिए सचाई को साफ स्वीकार किया है, उसका वह मन अगर टिका रह गया तो वह एक नया ही आदमी होकर निकलेगा। और वह मन कहीं वुदबुदा-सा ही क्षणजीवी हो, तो भी दुःख क्या करना? दरिद्रता के रोग से जर्जर हुई मनुष्यता का मरना तो जरूरी ही था। मगर मुसीबत तो थी उसे पद्म के लिए। इस अपढ़ आवेगमयी गँवई स्त्री ने जाने किस माया से उसे इस तरह से जकड़ लिया है कि वह समझ नहीं पाया। वुद्धि से उसका विश्लेषण करके भी वह इसे टाल नहीं सकता। बृहत्तर जीवन और महत्तर स्वार्थ की तुला पर तौल करके भी वह इसके मूल्य को हरगिज तुच्छ नहीं कर पाता। वह माटी में दैवी-रूप की कल्पना नहीं कर सकता, नहीं करता; पानी में डुबाने पर वह मूर्ति गल जाती है, पानी के नीचे पंक-समाधि लेनी है—इस सत्य को स्मरण करके वह हँसता है। किन्तु इस मिटानेवाली माटी ने अक्षय दैवी-रूप कैसे पाया? लगता है, काल-नदी के जल में डुबाने से भी वह नहीं गलेगी। शिक्षा नहीं है, संस्कार नहीं है—अभिमान और कुसंस्कारों से भरी पद्म माटी की मूरत नहीं तो और क्या है? ऐसी सजीव दैवी-मूर्ति वह कैसे वन गयी? किसी मन्त्र-बल से?

रोते-रोते पद्म की दोनों आँखें सूज गयी थीं। आँखों को पोंछते हुए एक म्लान हँसी के साथ बोली, "दो महीने की सजा हुई?"

यतीन हैरत में पड़ गया। इसी बीच उससे किसने यह खबर कह दी? सिर झुकाकर उसने कहा, "हाँ!"

लम्बा निःश्वास छोड़कर पद्म बोली, "खैर, सो हो। भले-भले वह लौट आये। लेकिन उसके पाप का दण्ड गुरुजी को नहीं भोगना पड़ा, उसने सच्ची बात कह दी—यही मेरा सौभाग्य है! नहीं तो उसे अनन्त काल के लिए नरक मिलता, उसके सात पुश्त नरक में जाते।"

यतीन अवाक् हो गया।

पद्म ने कहा, "पानी उबल गया है। चाय तुम बना लो। मैं जरा इन मुँहजले छोकरों को देखूँ। अभी तक नहीं लौटे। दिन-भर खाया नहीं है।"

"खाया तो तुमने भी नहीं है माँ! खा लो!" यतीन को याद आ गया, कल पद्म का षष्ठी का उपवास था और आज उसने दिन-भर गाजन का उपवास किया है।

"खाऊँगी मैं; पहले उन दोनों को पकड़ लाऊँ।"

यतीन और कुछ कहे, इसके पहले ही पद्म जा चुकी थी।

श्रीहरि के पिछवाड़े के घाट पर उसकी माँ जोर-जोर से और विस्तार के साथ अनिरुद्ध की सजा की घोषणा कर रही थी। बहुत पहले से ही कह रही थी, कहना अभी तक खत्म नहीं हुआ था। पुत्र के गर्व से गर्वित बुढ़िया हर पल पास से रोने की एक आवाज की प्रतीक्षा कर रही थी।

आज बातचीत का मौका कम ही मिल रहा था।

चाय पी चुकने के बाद यतीन ने पूछा, "चौधरीजी कैसे हैं डॉक्टर?"

देबू चौंक उठा। अनिरुद्ध के इस झमेले के कारण दो दिन से उनकी खोज-पूछ वह नहीं कर सका था।

जगन ने कहा, "कुछ अच्छे हैं। मगर वह जरा-सा जो घाव है, वह अच्छा ही नहीं हो रहा है। उस जखम से थोड़ा-थोड़ा पीब आता है और थोड़ा-थोड़ा बुखार भी रहता है।"

यतीन ने कहा, "किसी दिन जाऊँगा उन्हें देखने।"

देबू बोला, "कल ही सवेरे चलिए न! मैं भी जाऊँगा।"

"मुझे भी बुला लेना, देबू! तुम्हीं लोगों के साथ चला चलूँगा। मुझे तो जाना ही पड़ेगा। एक साथ ही चला जाऊँगा। हरेन का क्या खयाल है?"

"टुमारो तो नहीं होगा ब्रदर! पहला वैशाख है, खाता-पत्तर बदलने का हंगामा। मुझे इछू शेख के पास जाना होगा—आलेपुर। चारेक रुपये लाने हैं। वरना साले वृन्दावन को तो जानते ही हो, फिर कभी एक पैसा उधार नहीं देगा।"

पहला वैशाख। नया खाता। बात अचानक आ पड़ी। बात देबू को भी याद आयी। उसपर खास कोई कर्ज तो नहीं है। उसकी गैरहाजिरी में दुर्गा की मार्फत जंक्शन की एक दूकान का ग्यारह रुपया दस आना बाकी हुआ है। अनिरुद्ध के इस झमेले की उलझन में उसे इसकी याद ही नहीं आयी। दुर्गा ने भी कोई तकाजा नहीं किया। और रुपये ही कहाँ से आएँगे? जेल से लौटने के बाद अपनी सोचने का तो मौका ही नहीं मिला उसे। मगर बिना सोचे भविष्य का क्या होगा? अचानक कहीं चल बसे वह तो अन्त तक बिलू क्या इस पद्म की नाई, या कि तारिणी की स्त्री की तरह...यह सोचते ही वह सिहर उठा। उसने बार-बार अपने को धिक्कारा—छिः छिः! फिर भी मन से चिन्ता गयी नहीं! बिलू को छोड़कर मुन्ना याद आया। उसका मुन्ना क्या फतिंगा के समान...न, न, न! उसने मन-ही-मन कहा, हरगिज नहीं। कल नये साल की शुरुआत से वह अपनी बात सोचेगा। अब नहीं। बाल-बच्चे की जिम्मेदारी और यह गरीबी रहते हुए उसे पराये की चिन्ता करने का

अधिकार नहीं है। वह अधिकार भगवान ने उसे दिया नहीं है। वह भार, वह अधिकार श्रीहरि का है। गाजन का सारा खर्च उसी ने दिया है। देश-भर के लोगों को उसी ने धान उधार दिया था। यह भार उसी का है।

वह बड़े ही आकस्मिक ढंग से उठ पड़ा।

जगन ने पूछा, "बात क्या है भाई? एकाएक ही कैसे उठ पड़े?"

"एक जरूरी काम भूल गया हूँ।"

वह चला आया। रास्ते में चण्डीमण्डप में जाकर शिव को प्रणाम किया—"हे देवाधिदेव महादेव, इस साल आपने अच्छी तरह बिता दिया। आशीर्वाद दो कि अगला साल भी भले-भले निकल जाए।"

लँगड़े पुरोहित ने उसे प्रसादी-माला दी।

चण्डीमण्डप से उतरकर वह अपने घर नहीं गया; वह गया दुर्गा के यहाँ। उसी ने दूकान से उधार ला दिया था। कल उसी की मार्फत दूकानदार को एक रुपया भेजकर वह महीने-भर की मुहलत माँग लेगा। कुछ ज्यादा ही समय लेना अच्छा है। तीसी, जौ, गेहूँ—जो कुछ भी घर में है, वैशाख के शुरू में ही बेच डालेगा। खाने-भर का आलू रखकर बाकी बेच देगा। सबसे पहले कर्ज चुकाना होगा।

घर में दुर्गा की माँ बैठी थी। अँधेरे में बरामदे पर अकेली बैठी जाने किसे गाली दे रही थी—"राच्छस, पेट में आग लगे, आग लगे पेट में! मरे! मर जाए! और यह हरामजादी, बाढ़ के आगे का तिनका हो जैसे! मैं पूछती हूँ, सबसे पहले तेरे ही जाने की क्या जरूरत थी?"

देबू ने पूछा, "दुर्गा कहाँ है फूफी?"

बिलू दुर्गा की माँ को—इसलिए कि वह उसके मायके के गाँव की थी—फूफी कहा करती थी।

दुर्गा की माँ ने जरा घूँघट खींच लिया। दामाद के सामने सिर पर कपड़ा न हो और वह सिर के बाल देख ले, तो शायद चिता में बाल जलते नहीं हैं। दुर्गा की माँ ने घूँघट खींचकर कहा, "उस हरामजादी की मत पूछो बेटे! बाढ़ के आगे का तिनका है। रूपेन बजनिये को जाने क्या हुआ है, सो सबसे पहले यही गयी है।"

रूपेन यानी उपेन। बूढ़ा उपेन, जिसका अपना-सगा कोई नहीं। बेचारा! दुनिया में कोई नहीं है उसका। लेकिन वह तो यहाँ नहीं रहता। वह तो कंकना में भीख माँगा करता था।

देबू ने पूछा, "उपेन आजकल गाँव लौट आया है क्या?"

"मरने को लौटा है बेटा। गाँव में आग लगाने को लौटा है। कल से यहाँ

गाजन का मेला आया है। आज एक फुलौड़ीवाले ने तीन दिन की बासी कुछ फुलौड़ियाँ फेंक दी थीं—इस डर से कि सनेटरी बाबू आएगा। वह फुलौड़ियाँ उठाकर रूपेन ने गपागप खा लीं। खाते ही शाम से कै-दस्त जारी हो गया। अपनी दुर्गा बीबी यही सुनकर देखने गयी है! अहा, हमदर्दी कितनी है! मैं क्या कहूँ बेटे!"

"सर्वनाश! वैशाख आ रहा है। कहीं पानी की एक बूँद नहीं अब इस समय हैजा!"

वह जल्दी-जल्दी उपेन के यहाँ गया। एक क्षण में ही अपनी सारी बात भूल गया।

आँगन में माटी पर ही पड़ा तड़प रहा था जरा-जर्जर बूढ़ा। "पानी... पानी!"—आवाज अनुनासिक हो उठी थी। कोई कहीं न था, केवल दुर्गा खड़ी थी। उसने छूत बचाकर एक माटी के बरतन में उसे पानी दिया है, पर बूढ़ा पानी के उस बरतन से काफी दूर होकर निस्तेज-सा ही पड़ा है। काँपते हुए हाथ फैलाकर आँखें फाड़-फाड़कर बड़ी व्याकुलता से वह चीख रहा था—"पानी...पानी!"

देवू आगे बढ़ा। बरतन लेकर वह उपेन के पास बैठा और थोड़ा-थोड़ा करके पानी ढालकर उसे देने लगा। दुर्गा से बोला, "दुर्गा, जरा जल्दी से जा। जगन को खबर दे। कहना कि मैं यहीं बैठा हूँ।"

यतीन की भी याद आयी। लेकिन तुरन्त यह खयाल हुआ कि परदेसी है। उसे यहाँ के खतरों में खींचना ठीक नहीं। यहाँ का सब दुःख-कष्ट हमारा है, क्योंकि यह गाँव हमारा है। अतिथि-आगन्तुकों को सुख का हिस्सा देना चाहिए; दुःख बँटाने के लिए किस मुँह से, किस अधिकार से कहा जाए उसे।

सत्ताईस

शुभ नववर्ष—बूढ़े लोग काँप उठे। बड़ा ही अशुभ आरम्भ है। मौत रुद्र के रूप में आयी है—साथ लेकर आयी है महामारी को। चण्डीमण्डप में वर्ष-गणना-पाठ और पत्रा-विचार चल रहा था। विचार कर रहा था लँगड़ा पुरोहित और सुन रहे थे श्रीहरि घोष और गाँव के बड़े-बूढ़े लोग।

पिछली रात के अन्तिम पहर से मोचीटोले में तीन आदमी इसके शिकार हुए, बाउरी टोले में दो जने। उपेन मर गया। श्रीहरि गम्भीर होकर सोच रहा था। सामने

बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ खड़ी हुई। गाँव को बचाना होगा। अभागों ने चूँकि मेरा विरोध किया है, इसलिए इससे विमुख रहना अधर्म होगा। काम उसने अवश्य शुरू कर दिया था। भूपाल चौकीदार को उसने यूनियन बोर्ड में भेजा था। सैनिटरी इन्सपेक्टर को खबर भेजने के लिए सेक्रेटरी को लिखा था। वह आदमी कल सवेरे आया था। बाउरी और मोचीटोले को चावल की मदद देने की भी सोच रखी थी। चण्डीमण्डप के इनारे को हैजे की छूत से बचाने का प्रबन्ध किया था। वहाँ कालू शेख पहरे पर तैनात था।

आज सवेरे रांगा दीदी ने भगवान को गालियाँ नहीं दीं। हाथ जोड़कर जोर-जोर से कहा, "भगवान रक्षा करो प्रभो! दुहाई है बाबा! तुम्हारे सिवा गरीबों का और है कौन दयामय! बाबा बूढ़े शिव, गाँव को बचाओ! हे बाबा भोलेनाथ! हे काली माँ!"

पद्म परेशान हो उठी। फतिंगा और गोबरा का क्या होगा? कैसे बचाया जाए उनको? वह थर-थर काँपने लगी।

यतीन भी चिन्तित हो उठा था। उसे यह मालूम है कि बंगाल में कितने लोग मलेरिया से मरते हैं, कितने भूख से और कितने अधभूखे रहते हैं। नियति को वह नहीं मानता है। वह मानता है कि यह त्रुटि मनुष्य की है, उसकी अज्ञानता और असमर्थता का प्रतिफल। यह दोष मात्र इसी देश तक सीमित नहीं है—मनुष्य के भ्रम, भेद-बुद्धि, अक्षमता से पैदा हुआ यह दोष संसार में सर्वत्र है। रोग एक से दूसरे में नहीं फैला, उसी देश में उत्पन्न हुआ है—अर्थ पिशाचों के कमाने की प्रतिक्रिया-स्वरूप चौर्य की नाई, दान-धर्म की नाई दान-धर्म की प्रतिक्रिया से भीख के व्यवसाय-सा। पुलिस ऐडमिनिस्ट्रेशन में उसने पढ़ा है—भिखमंगे किसी-किसी बच्चे को रात-दिन एक घड़े में बैठाये रखते हैं, बरसों, ताकि उसका आधा अंग बढ़ नहीं पाये। फिर इनके विकलांग की दुहाई से भीख के कारोबार के लिए इनको पुतला बना लेते हैं। हो सकता है, यह दोष इस देश में ज्यादा हो, यहाँ ज्यादा लोग मरते हैं, कुत्ते-बिल्ली की तरह मरते हैं। इसके प्रतिकार की भी कोशिश की जा रही है। शायद हो कि किसी दिन...और फिर उसकी आँखें दप्-दप् जल उठीं—आरती की युगल कपूर-शिखा-जैसी, पल-भर के लिए! दूसरे ही क्षण उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। लेकिन आज वह दृढ़ हृदय से यह नहीं सोच पा रहा था कि ये सब काल के दरवाजे की बलि हैं। पता नहीं कब और कैसे आज सारे गाँव ने ही पद्म की भाँति, उसके हृदय को ममता से भर दिया—वह समझ नहीं पाया। गाँव की इस दुर्घटना, वियोग, शोक में वह नितान्त अपने जन-सा ही विषण्ण और दुःखी हो उठा।

वैशाख का पहला दिन। वही जो आधे चैत में बारिश हुई, उसके बाद से फिर नहीं हुई। आँधी-जैसी हू-हू करती हुई धूल-भरी गरम हवा के झोंके। उस हवा से बदन का खून सूख रहा हो जैसे। माटी तपकर आग हो गयी। चारों ओर मानो एक प्यास का हाहाकार। कहीं किसी आदमी का पता नहीं। एक ही रोज में, एक ही

वेला में, एक ही जन की मौत से मारे डर के सब घर के अन्दर घुस गये—रास्ते पर एक भी आदमी नहीं। केवल देबू और जगन बाहर गये हैं, ये अभी लौटे नहीं। यतीन भी एक बार बाहर निकला था। थोड़ी ही देर पहले लौटा। उसके लौटते ही पद्म जोर से रोकर बोली, "देखो, मेरी हत्या मत करो तुम, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। दुहाई है, जरा सावधानी से रहो।"

यतीन सोच नहीं पाता, इस अबोध माँ को वह क्या कहे।

देबू उपेन के दाह-संस्कार में गया था। सवेरे से वह अकेले ही मानो एक सौ हो उठा। इस अर्ध-शिक्षित गाँव के इस युवक की कार्य-क्षमता और परोपकारिता देखकर यतीन दंग रह गया। उसने एक और नयी चीज देखी है—वह है जगन डॉक्टर का अभिनव रूप। चिकित्सक के कर्तव्य में उससे जरा भी त्रुटि नहीं हुई! आलस नहीं! इस महामारी के परिवेश में एक भयहीन जगन। प्रत्येक व्यक्ति की वह अपनी विद्या-बुद्धि के हिसाब से बेझिझक चिकित्सा करता चला जाता है। गाँव में कभी वह फीस नहीं लेता। ऐसे समय भी—जब कि हैजा-महामारी में डॉक्टरों को ज्यादा कुछ कमाने का मौका मिलता है—जगन ने अपनी रीति नहीं तोड़ी। यह उसकी छिपी हुई महत्ता का आश्चर्यजनक परिचय है। जबान पर कोई कड़ी-खोटी बात नहीं, मीठी बातों से वह सबको अभय देता चला जाता है।

देबू ने डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड को तार भेजा है। तार लगाने के लिए दुर्गा जंक्शन गयी। यूनियन-बोर्ड को भी देबू ने खबर भेजी। वहाँ गया पातू। खुद वह बीमारों के घर-घर घूमता रहा। जो बस्ती छोड़कर जाना चाहते थे, उनकी मदद की। उसके बाद उपेन बजनिये के संस्कार की व्यवस्था में लगा। बजनियों में यहाँ समर्थ तीन ही जने हैं। एक तो भाग गया। बाकी दो ने कहा, केवल दो आदमियों से लाश जानी असम्भव है। पास की बाउरी-बस्ती में बहुत-से लोग हैं सही, पर वे मोची का शव छुएँगे नहीं। फिर भी उनका सरदार सतीश उसके साथ। श्मशान तक का रास्ता भी थोड़ा नहीं। मयूराक्षी के ऊपर श्मशान—डेढ़ मील से ज्यादा! बहुत सोच-विचार के बाद आखिर ग्यारह बजे दिन में वह अपनी गाड़ी ले आया। उसी गाड़ी से ले जाकर उसके संस्कार का इन्तजाम किया।

इन्तजाम करके ही वह निश्चिन्त नहीं हो सका। बाउरी-बजनियों को दायित्व का ज्ञान कम है। हो सकता है, लाश को ये आस-पास ही कहीं डाल दें। इस डर से वह खुद भी मसान तक चलने को तैयार हुआ। और फिर पातू भी उसका साथी ठहरा, हैजे से मरे हुए को महज दो आदमी ले जाने में डर भी रहे थे। देबू ने यह समझा। पूछा, "डर लग रहा है पातू?"

उदास चेहरे से पातू ने कहा, "जी?"

"ले जाने में डर लग रहा है?"

"लग तो रहा है कुछ!" भयभीत शिशु-सा उसने निश्चल भाव से स्वीकार किया।

"तो. चलो, हम तुम्हारे साथ चलते हैं।"

"आप?"

"हाँ, तो क्या हुआ?"

पातू और उसके साथी का चेहरा खिल पड़ा। पातू ने कहा, "आप बाँध पर खड़े रहिएगा केवल। इसी से हो जाएगा।"

"चलो-चलो, मैं मसान तक ही चलूँगा।"

वैशाख की जलती दोपहरी के भयंकर ताप में गाड़ी पर लाश को चढ़ाकर वे निकल पड़े। बैहार सूना था आज। अकसर चरवाहे इन बाउरी-बजनियों के ही बच्चे होते हैं। इतने डर गये थे कि आज गाय-गोरू चराने निकले ही नहीं, गाँव के पास ही ढोरों को अगोरे बैठे रहे। इस तपी दोपहरी में धू-धू जलते बैहार में अगर इन्हें अचानक बीमारी हो जाए तो क्या हो? आग हुई-सी धरती पर प्यास से तड़पकर मर जाएँगे। इस डर से बेतरह डर गये थे वे। जहाँ तक नजर जा रही थी—चारों ओर खाँव-खाँव! बीच में जो बारिश हुई थी एक बार—उसका पानी भी अब कहीं नहीं बच रहा था। माटी का रस तक सूख गया था। सिंचाई के पुराने पोखरे इस कदर भर गये थे, मुहाने का बाँध इस ढंग से टूट गया था कि बूँद-बूँद जो पानी वहाँ सिमटता, वह भी कतई बाहर निकल जाता। गाँव से मयूराक्षी तक बूँद-भर पानी नहीं। आँधी-सी उठती हुई दोपहर की हवा में धूल उड़ रही थी, और उस धूल में मानो आग की जलन थी। गाड़ी धीरे-धीरे जा रही थी। चूँ-चरर-मरर आवाज हो रही थी पहियों की।

पातू ने कहा, "अब हमारी खैर नहीं है गुरुजी! कोई जिन्दा नहीं रहेगा।"

स्नेह-सने स्वर में देबू ने भरोसा दिया—"पागल हो गया है पातू! डर क्या है?"

"डर?"—पातू हँसा—"पहले ही वैशाख को आ पहुँचा हैजा। और लोग कहते हैं, इस बार हम लोगों ने चण्डीमण्डप की छौनी नहीं की, इसीलिए शायद बाबा बूढ़े शिव के कोप से यह सब हुआ है।"

देबू ने भी दीर्घ निःश्वास छोड़ा। देवता-धर्म में उसे विश्वास है। लेकिन बाबा क्या ऐसा अविचार करेंगे? बेकसूरों का कसूर उनके लिए इतना बड़ा होगा! जिन लोगों ने देवोत्तर जमीन हड़प ली है, उनका तो कुछ नहीं हुआ! उसने विश्वास के साथ कहा, "नहीं, नहीं पातू, बाबा के प्रति तुम लोगों से कोई अपराध नहीं हुआ। मैं कहता हूँ।"

पातू ने कहा, "तो ऐसा आखिर क्यों हुआ गुरुजी?"

देबू ने हैजे की वैज्ञानिक व्याख्या करनी शुरू कर दी।

ओफ्, इस दोपहरी में कौन औरत आ रही है इधर? हो सकता है, जंक्शन से लौट रही है। अरे हाँ, यह तो दुर्गा है। तार लगाकर लौट रही है।

उपेन की लाश के साथ देबू को देखकर दुर्गा ठिठक गयी। करीब आकर उसने झिड़की दी, बोली, "यह क्या गुरुजी, आप क्यों आये? आप क्यों जा रहे हैं? लौट जाइए!"

देबू ने जैसे सुना ही नहीं। बात को पलटते हुए बोला, "अब लौट रही है तू? तार लग गया?"

"हाँ, लग गया। मगर आप क्यों जा रहे हैं? लौट चलिए!"

"लौट जाऊँगा। तू जा।"

"नहीं, पहले आप चलें।"

"पागलपन मत कर दुर्गा! तू जा। मैं जल्दी ही लौट आऊँगा।"

वे लोग बढ़ गये! दुर्गा की आँखों से अकारण ही आँसू बहने लगे।

जल्दी ही लौटूँगा—यह कहने के बावजूद जल्दी लौटना न हो सका। लौटने में तीसरा पहर भी ढल गया। मयूराक्षी के घुटने-भर कदोर पानी में ही जैसे-तैसे नहाकर देबू लौटा। घर पहुँचते ही आवाज दी—"बिलू!"

दौड़ा-दौड़ा मुन्ना बाहर निकल आया—"बाबू!"

देबू दो डग पीछे हट गया। बोला, "ऊँ हूँ, मुझे मत छुओ!"

मुन्ने को मजा आया। उसे लुक्का-चोरी का खेल सूझ आया। वह खिलखिला कर हँसता हुआ हाथ फैलाकर और जोर से लपका। मुन्ने के कौतुक की छूत देबू को भी लगी। वह कुछ और पीछे हट आया—"नहीं-नहीं मुन्ने, वहीं खड़े रहो!" इसके बाद बिलू को पुकारा—"बिलू! बिलू!"

बिलू बाहर आयी। आँखों में मान की बहती धारा! उसने कुछ भी न कहा। पति के आदेश के इन्तजार में दरवाजे के पास खड़ी रही। देबू आखिर क्या चाहता है? मेरा सर्वनाश हो जाए! यह जोर की गरमी, उसपर भयंकर महामारी और वह उस महामारी के पीछे पागल हो गया है! यह सब क्या मेरे सर्वनाश के लिए। वह तमाम दोपहर रोती रही। दुर्गा आयी थी। वह बिलू को खूब झिड़क गयी। कह गयी—"दीदी, जरा सख्त होओ! उनकी लगाम जरा मजबूती से पकड़ो। नहीं तो इसके पीछे वह अपनी भूख-नींद हराम करेंगे और हो सकता है, तुम लोगों का अपना सर्वनाश कर बैठें।"

उसकी ओर देखकर देबू ने उसके रूठने का अनुभव किया। कहा, "ओह, अपनी बिलू को गुस्सा आया है! जरा मुन्ने को सँभाल लो बिलू।"

बिलू के आँसू ने बाँध तोड़ दिया। वह जोरों से रो पड़ी। देबू ने कहा, "छिः!

रोओ मत! जल्दी से मुन्ने को पकड़ो। और पुआल जलाकर जरा आग बना दो मेरे लिए! पानी गरम कर दो! उस पानी में हाथ-पाँव भी धो लूँगा, कपड़ों को भी धो डालूँगा।"

बिलू ने कुछ नहीं कहा। खींचकर मुन्ने को गोद में उठा लिया। मुन्ने ने सुबह से ही देबू को नहीं देखा था। उसने चिल्लाना शुरू कर दिया—"बाबू! बाबू!"

बिलू ने उसकी पीठ पर एक चपत लगा दी।—"चुप! कहती हूँ, चुप रह! चु-उ-प!"—फिर भी उसे अड़ा देख उसने धम् से उसे उतार दिया।

देबू से और नहीं सहा गया। बिलू को झिड़कते हुए बोला, "छिः, यह क्या कर रही हो बिलू! कहता हूँ, जल्दी उसे गोदी में उठाओ!"

बिलू आज जैसे पागल हो गयी थी। बोली, "क्यों, मुझे मारोगे क्या? बच्चे को जितना प्यार करते हो, जानती हूँ मैं!"

देबू सन्न रह गया।

बिलू जोरों से रो पड़ी—"यों घुला-घुलाकर मारने से तो बेहतर है कि तुम मेरा खून कर दो! जहर ला दो मुझे!"

देबू ने जवाब देना चाहा। दिलासे के ही शब्द कहना चाहता था, किन्तु बोल नहीं सका। वह चौंक उठा, जैसे साँप से छू गया हो। सिहर उठा—पीछे से मुन्ना दोनों हाथों से उसे पकड़कर खिलखिल हँस रहा था। इस तरह मानो भागते हुए को पकड़ लिया हो। पलटकर देबू ने दोनों हाथों मजबूती से मुन्ने को पकड़ लिया और आर्तस्वर में बिलू से कहा, "जल्दी पानी गरम करो; जल्दी! मुन्ने का हाथ धुलाना पड़ेगा। वही हाथ अपने मुँह में न डाल ले।"

मुन्ना चीख-चिल्लाकर, हाथ-पाँव पटककर परेशान हो गया। उसे ऐसा लगा कि बाबूजी उसको अलग हटा रहे हैं। वह न सिर्फ रोया बल्कि झुककर उसने देबू के हाथ में एक जगह खूब जोरों से दाँत भी काट लिया। और अन्त में उसके गीले कपड़े के कुछ हिस्से को भी दाँत से फाड़ डाला।

इस बात से देबू बहुत ही भयभीत हो उठा। बिलू को वह प्रायः खींचते हुए घर के अन्दर ले आया और बोला, "बिलू, मेरी रानी, मैं तुम्हें बताता हूँ सब! पहले गरम होने को पानी चढ़ा दो। मुन्ने का मुँह धुला दो जल्दी से!"

बिलू का गुस्सा कुछ ही देर में ठण्डा पड़ गया। मुन्ने को देबू की गोद में देखकर वह बेहद खुश हो गयी। बोली, "तुम कितने कठोर हो? मुन्ना तुम्हें मुझसे भी ज्यादा चाहता है और तुम हो कि उसे छोड़कर बाहर ही बाहर रहते हो! लगता है, घर से बाहर कदम रखने पर तुम्हें गिरस्ती की याद ही नहीं रहती। छिः, मुन्ने को भी भूल जाते हो तुम!"

देबू ने कहा, "नहीं, मैं अब नहीं जाऊँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ बिलू, अब नहीं जाऊँगा।"

गरम पानी से हाथ-मुँह धुलाकर और खुद भी धोकर देबू ने मुन्ने को इतनी देर बाद गोदी में लिया। माँ को करीब आते देख उसने बाप की छाती में मुँह छिपा लिया। बिलू हँसी, "जरा मजा देख लो इसका!"

मुन्ना बोल उठा, "न, नहीं दाऊँदा, नहीं।"

बिलू खिलखिलाकर हँसी—"अरे दुष्ट लड़के! माँ के पास नहीं आओगे? बाप की गोद में पहुँचकर भूल गये मुझे! अच्छा, मैं भी दुद्धू नहीं दूँगी।"

माँ का मन रखने के लिए मुन्ना बोला, "बाबू, माँ दाऊँ?"

बिलू ने कहा, "उँहूँ! बाबू को पकड़े रहो। भाग जाएगा।"

देबू को कलेजा रुँधे आवेग से मथने लगा।

बिलू को पता चल गया। शंकित होकर उसने पूछा, "अच्छा, यह बताओ, तबीयत तो तुम्हारी ठीक है न!"

देबू ने हँसने की कोशिश करके कहा, "बहुत थक गया हूँ।"

"चाय बना दूँ, पियोगे?"

"बनाओ!"

चाय पीने के बाद भी वह वैसी ही मौन उदासी के बीच उद्वेग से काँपते हुए मन में कुछ भयंकर कल्पना करता हुआ बैठा रहा। साँझ को बाउरी-मोचियों के टोले में रोना-धोना मचा। कोई जरूर मर गया। मुन्ने को सुलाते हुए देबू अधीर हो उठा।

बिलू बोली, "लगता है, कोई मरा है!"

तीखे स्वर में देबू ने कहा, "मरे! मैं अब खोज-पूछ नहीं करता।"

अवाक् होकर बिलू उसके मुँह की ओर ताकती रही। उसके बाद बोली, "मैंने तुमसे यह थोड़े ही कहा है कि कोई मरे तो तुम खोज-खबर न लो, या कि उनके दुःख-विपद् में सुध न लो। उपेन मोची है, उसके दाह-संस्कार के लिए तुमने अपनी गाड़ी दी, मैंने कुछ कहा? मगर तुम मसान तक साथ क्यों गये? खाना-पीना नदारद और यह वैशाख की धूप। मैंने तो इसलिए कहा था।"

मुन्ना देबू की गोद में सो गया था। बिलू ने उसे देबू की गोद से ले लिया और कहा, "जाओ, खोज-पूछ करके तुरत लौट आना। मैं यह जानती हूँ कि लोग तुम्हारा कितना भरोसा रखते हैं।"

यन्त्र से चलनेवाले खिलौने की तरह देबू बिलू की बात पर घर से बाहर निकल पड़ा। चण्डीमण्डप में संकीर्तन-दल निकालने की तैयारी चल रही थी। मृदंग की ध्वनि से शायद अशुभ भागता है।

उस टोले में धर्मराज की पूजा की तैयारी हो रही थी। उसने सतीश को बुलाया। सतीश ने आकर उसे प्रणाम किया—"हालत तो बड़ी भयंकर हो उठी गुरुजी। तीसरे पहर फिर दो आदमियों को हो गया। अभी-अभी गन्ना की स्त्री गुजर गयी!"

"झटपट लाश को फूँकने का इन्तजाम करो!"

"जी हाँ, कर रहा हूँ।" जरा देर चुप रहकर अपराधी की तरह बोला, "दिन में उपेन की लाश लेकर आपको...क्या करता, कहिए? हमारी जाति का तो नहीं था। हम लोगों के लिए आपको इतनी फिक्र नहीं करनी पड़ेगी।"

देबू कुछ देर चुप रहा। पूछा—"शाम को डॉक्टर आया था?"

"जी, तीसरे पहर घोष बाबू ने भी चावल देने की बात कहला भेजी थी। डॉक्टर बाबू ने कहा, हरगिज मत लेना। सो हम लोग नहीं गये।"

देबू अनमना-सा चुप रहा। उसके मन में धीरे-धीरे एक गहरी उदासीनता मानो गाढ़े कुहरे-सी जाग रही थी। उसका सुख-दुख सारा कुछ जैसे संवेदन-शून्यता से ढँकता जा रहा हो। जिस गहरे उद्वेग को वह सह नहीं पा रहा था, वही उद्वेग मानो पुराणों के नीलकण्ठ का हलाहल हो कि मोह से आच्छन्न किये दे रहा था।

सतीश ने कहा, "गुरुजी!"

"मुझसे कुछ कह रहे हो?"—देबू ने पूछा।

सतीश अवाक् रह गया—"जी!...गुरुजी यहाँ और कौन है? इस नाम से हम और किसको पुकारेंगे?"

"कहो।"

"पूछता हूँ, मगर नाराज तो नहीं होंगे आप?"

"नहीं, नहीं! नाराज क्यों हूँगा?"

"कह रहा था कि घोष बाबू जब चावल दे रहे हैं, तो लेने में क्या हर्ज है? गरीब हैं बेचारे, ऐसे आड़े वक्त में..."

देबू ने प्रसन्नता-भरी सहानुभूति से कहा, "नहीं, नहीं, कोई हर्ज नहीं है। घोष बाबू कुछ दुश्मन तो हैं नहीं तुम्हारे, न ही हमारे। वे जब अपनी इच्छा से देना चाहते है, तो क्यों नहीं लोगे?"

सतीश ने देबू के चरणों की धूल ली—"काश, सब आप-जैसे होते गुरुजी! आप जरा डॉक्टर बाबू से भी कह दीजिएगा, वरना वे नाराज होंगे!"

"अच्छा, मैं कह दूँगा डॉक्टर से।"

"डॉक्टर बाबू नजरबन्द बाबू के पास बैठे हैं।"

देबू लौटा। लेकिन आज अब यतीन के पास जाने की इच्छा नहीं हुई। उसने घर की राह पकड़ी। घर पर दुर्गा आकर बैठी थी।

दुर्गा ने कहा, "मेरे टोले में गये थे गुरुजी? गन्ना की बहू गुजर गयी न!"

"हाँ!" फिर बिलू से पूछा—"मुन्ना कहाँ है?"

"वह तब से ही सो रहा है। जगा नहीं है।"

"सो रहा है!" देबू ने सन्तोष की साँस ली। चार घण्टे हो गये, मुन्ना बेखबर सो रहा है। नींद स्वस्थता की निशानी है। देबू ने दुर्गा से पूछा, "तू अब तक कहाँ थी?"

"जंक्शन गयी थी।"

बिलू ने कहा, "थोड़ा जलपान कर लो। दुर्गा नये खाते की मिठाई ले आयी है।"

"अरे हाँ। दुर्गा, जंक्शन के दूकानदार के आगे तो बड़ा वैसा बनना पड़ा मुझे।"

"वह सब हो-हवा गया। इतनी फिक्र करने की जरूरत नहीं है।" फिर दुर्गा हँसी—"बिलू दीदी-जैसी लक्ष्मी घर में हैं, तो आपको फिक्र किस बात की? दीदी ने मुझे दो रुपये दिये थे। मैं दे आयी। अब आषाढ़ में रथ के दिन कुछ दे दीजिएगा, कुछ क्वार में। दूकानदार मान गया है।"

वड़े आराम की साँस छोड़कर अब वास्तविक खुली हँसी हँसते हुए देबू ने कहा, "बिलू, मैं जरा यतीन बाबू के पास से हो आता हूँ।"

"अब रात को निकलोगे? खैर, जलपान करके जाओ!"

"तुरत लौट आऊँगा। जलपान अभी छोड़ो!"

"खूब भूखे रह सकते हो तुम!" बिलू प्यार से हँसी। देबू चला गया।

यतीन की बैठक में आज केवल यतीन, जगन और चाय के लोभ से आनेवाला गँजेड़ी गदाई था। चित्रकार नलिन भी आया था और अपनी आदत के अनुसार एक किनारे चुप बैठा था। आज वह एक रुपया माँगने के लिए आया था। कुछ दिन के लिए गाँव से कहीं बाहर जाना चाहता था।

जगन बक-बक करता ही जा रहा था। देबू को देखकर उसने कहा, "क्यों भई, बात क्या है? तुम्हारी तो झाँकी ही नहीं दिखाई दी। मैं सोच रहा था, तुम शायद डर गये।"

देबू हँसा।

यतीन ने पूछा, "तबीयत कैसी है देबू बाबू? मैंने सुना, आप मसान गये थे। चार बजे के बाद लौटे हैं।"

"थक बहुत गया हूँ। यों सब ठीक ही है।"

"तुम मोची की शव-यात्रा में शामिल हुए—इसपर क्या हो रहा है, जाकर चण्डीमण्डप में देख आओ।"

देबू ने इसका खयाल ही नहीं किया। कहा, "अच्छा डॉक्टर, हैजे के कीटाणु शरीर में प्रवेश करें तो कितनी देर में बीमारी जाहिर होती है?"

जगन ठठाकर हँस पड़ा—"तुम डर गये हो देबू भाई!"

गदाई ने उधर से संकोच के साथ कहा, "डर किस बात का? उसकी दवा है एक चिलम गाँजा!"

देबू ने और कोई सवाल नहीं किया। उसे अब प्रश्न पूछने में भी डर लग रहा था। कहीं विज्ञान का सत्य उसकी उत्कण्ठा को बढ़ा न दे? बार-बार उसने

मन-ही-मन कहा, "विज्ञान ही एकमात्र सत्य नहीं है। इस दुनिया में और भी एक परम तत्त्व है; वह है पुण्य, धर्म। उसका धर्म, उसका पुण्य ही उसकी रक्षा करेगा! अमृत का वह आवरण मुन्ने को महामारी के जहर से जरूर बचाएगा!"

यतीन ने पूछा, "बात क्या है देबू बाबू! आपने एकाएक यह प्रश्न क्यों किया?"

देबू बोला, "असल में आज मसान जाने पर वहाँ मुझे उपेन की लाश पकड़नी पड़ी थी। मयूराक्षी में नहा तो लिया था। लेकिन घर लौटा तो..." बात बीच में ही रुक गयी। "कौन? दुर्गा है क्या? हाँ दुर्गा ही है!"

हाथ में लालटेन लिए अँधेरे रास्ते पर दुर्गा आ खड़ी हुई। रुँधे गले से उसने कहा, "जी! जल्दी घर चलिए! मुन्ने की तबीयत खराब हो गयी है। एक बार बिलकुल पानी-जैसा..."

विजली छू गयी हो जैसे, देबू अकेले ही उठा और चलते हुए आवाज दी, "डॉक्टर!"

धर्म और विश्वास का गला घोंटकर वैज्ञानिक सत्य ने आखिर उसी के यहाँ रुद्र रूप धरकर अपने को प्रकट किया क्या?

महामारी हैजा मनुष्य के शरीर का सारा रस देखते-ही-देखते सोख लेती है और जीवनी-शक्ति को खत्म कर देती है। वह महामारी आयी और देबू के मन के सारे रस, सारी कोमलता को चूसकर, उसे पत्थर बनाकर उसके घर से चली गयी। एक मुन्ना ही नहीं—मुन्ना और बिलू दोनों हैजे के शिकार हो गये। पहले दिन मुन्ना, दूसरे दिन बिलू। इलाज-जतन में कोई कसर नहीं रखी गयी। जंक्शन से रेलवे का डॉक्टर और कंकना का डॉक्टर—दो-दो बड़े डॉक्टरों को बुलवाया गया था। कंकना का डॉक्टर तो यह सुनकर खुद ही आया था। वह आदमी गुणग्राही है, देबू पर उसे श्रद्धा थी, इसी से वह आया था। रेलवे के डॉक्टर को जगन खुद बुला लाया था। भूखा उनींदा देबू उनकी सेवा करता रहा और ईश्वर के सामने सिर पटकता रहा, मन्नत मानता रहा। दुर्गा भी मदद करती रही। जगन का तो कहना ही क्या—यतीन, सतीश, गदाई, पातू दोनों शाम आ-आकर खोज लेते रहे। लेकिन लाख किये भी कुछ नहीं हुआ। पत्थर-जैसी सूखी आँखों से देबू मौन-निर्वाक् बैठा देखता रहा—छाती फैलाकर यह भयानक चोट वह सह गया!

बिलू का अन्तिम संस्कार शेष होते-होते सूर्योदय हो चुका था। देबू घर लौटा—सूना, सूखा, कड़वा जीवन लेकर। उसके सुख-दुःख की अनुभूति मर गयी, आँसू सूख गये, बोली खो गयी, मन अवश हो गया, आँखें शून्य हो गयीं—होंठ से कलेजे तक रसहीन सूखा—सहारा के रेगिस्तान-सरीखा धू-धू कर रहा था। सबकी

सब चीजें मौजूद थीं—वही घाट-बाट, वही घर-बार, वही पेड़-पौधे—सब; लेकिन देबू की आँखों के आगे सब निरर्थक था, सब अस्तित्वहीन, धुँधला! एक सुनसान पारहीन प्यासा प्रान्तर और वेदनाविधुर पाण्डुर आकाश! उस धूसर विवर्णता में उसका भविष्य खो गया था—निश्चिह्न हो गया था!

सारे गाँव के लोग आये थे। सभी आये थे अपनी निश्छल सहानुभूति दिखाने। लेकिन देबू की इस सूरत के सामने किसी से कुछ कहते न बना। यतीन भी उसे सान्त्वना देने आया था, पर निर्वाक् होकर बैठा रहा। उसे आत्मग्लानि हो रही थी—वह सोच रहा था: देबू को शायद उसी ने इस अंजाम के जबड़े में ढकेला है। जगन भी काठ का मारा-सा हो गया था। श्रीहरि, हरीश और भवेश भी आये थे। वे सब भी मौन ही रहे। देबू के सामने बोलने में श्रीहरि को जाने कैसा—एक संकोच हुआ।

भवेश ने सिर्फ "राम हो, राम हो!" कहा।

मौन खड़े लोगों के एक किनारे से किसी ने पुकारा—"डॉक्टर बाबू!"

खीझकर जगन ने कहा, "कौन है? क्या कहना है?"

"जी, मैं हूँ, गोपेश! दया करके एक बार चलिए!"

"क्यों? क्या हुआ है?"

एक तरफ का होठ टेढ़ा करके म्लान हँसी हँसकर देबू ने कहा, "और क्या होगा? समझते नहीं? जाओ, देख आओ!"

जगन ने और कुछ नहीं कहा। वह उठा तो यतीन बोला, "ठहरिए, मैं भी चलता हूँ।"

लोग एक-एक करके चुपचाप चले गये। देबू घर में अकेला बैठा रहा। अब उसकी जी खोलकर रोने की इच्छा हुई। एक बार तो उसने कोशिश भी की, लेकिन रुलाई आयी नहीं। सोने की कोशिश की। चारों तरफ निगाह दौड़ायी। हजारों स्मृतियाँ बिखरीं। दीवार पर कालिख की लकीरें थीं—मुन्ने की खींची हुई; बिलू के लगाये सिन्दूर के निशान; पान की पीक, मुन्ने का काठ का घोड़ा जिसका रंग चटख गया था, टूटी सीटी, और फटी तसवीर। करवट फेरकर जब वह सोने लगा तो किसी चीज के गड़ने से उसे तकलीफ हुई। जब हाथ से उसे निकाला—मन्ने की बालियाँ थीं। वही दोनों बालियाँ, बिलू की नाक की कील, करनफूल, कलाई की कतरी लोहे की। फटे हुए कलेजे से निकलते निःश्वास को छोड़कर वह सहसा पुकार उठा—"मुन्ने! बिलू!"

अन्दर के दरवाजे की तरफ खड़ी किसी ने पुकारा, "देबू!"

"कौन?" देबू उधर आया—"रांगा दीदी!"

बुढ़िया फुक्का फाड़कर रो पड़ी। उसके साथ और भी कोई था।

रांगा दीदी ही नहीं, दुर्गा भी पास बैठी रो रही थी।

देबू की इच्छा थी, गहरी रात में जब सो जाएँगे सब, विश्व-प्रकृति निस्तब्ध हो जाएगी, तो जी भरकर रो लूँगा एक बार।

शाम से बहुतेरे लोग आये और चले गये। उसके पास सोने के लिए आया जगन, हरेन घोषाल, गँजेड़ी गदाई और फतिंगे का बाप तारिणी। श्रीहरि ने भूपाल चौकीदार को भी भेज दिया था। रात में देबू के बरामदे पर सो रहेगा। जब सब सो गये तो देबू उठा। आँगन में उतरकर वह ऊपर आसमान की तरफ खड़ा हो गया। मुन्ना नहीं है! बिलू नहीं है! इस दुनिया में कहीं नहीं! स्वर्ग-नरक सब झूठ है। पाप-पुण्य झूठे हैं। जाने उसने कौन-सा पाप किया था पूर्व-जन्म का? कौन जाने?...एक बार सतीश के पास जाए? अकेले में बैठकर एक बार मुन्ने और बिलू के बारे में सोचने का मौका उसने ढूँढ़ा था, लेकिन वह भी जैसे अच्छा नहीं लगा। आत्मग्लानि से ही उसका जी भर उठा था। वही तो मौत का जहर अपने साथ ले आया था। उसी ने तो उनकी हत्या की। अब किस लाज से वह रोये?...फिर बाहर आकर वह बरामदे में खड़ा हो गया। दूर रास्ते पर एक रोशनी इधर को आती हुई उसे दिखाई दी।

"इतनी रात गये हाथ में रोशनी लिए कौन आ रहा है? एक नहीं कई जने हैं।"—उसने सोचा।

तभी किसी की आवाज कान में पड़ी—"गुरुजी!" देबू के सामने आकर खड़े हुए न्यायरत्न। साथ-साथ यतीन, उसके पीछे एक आदमी और।

"आप! किन्तु मुझे तो—"

"चलो, अन्दर चलो!"

"मुझे तो प्रणाम भी नहीं करना चाहिए। छूत लगा है!"

स्नेह से न्यायरत्न ने उसके माथे पर हाथ रखा—"छूत?" फिर धीरे से हँसे और बोले, "कुछ ले आओ गुरुजी, यहीं आँगन में बैठें। घर के अन्दर सोये हुए लोगों की साँसों का शब्द सुनाई पड़ रहा है। जो सो रहे हैं, उन्हें सोने दो। तुमसे एकान्त में कुछ बातें करूँगा, इसीलिए इतनी रात को आया हूँ। लोगों की भीड़-भाड़ में आने का जी नहीं हुआ। रात में यतीन साथ हो गये। इन लोगों की निगाहें जागते तपस्वी-सी हैं, बचा न सका। मैंने देखा, आसमान की ओर नजर किये वे तुम्हारी ही तरह बैठे हैं। मुझसे इन्होंने कहा—देबू की इस बदनसीबी का जिम्मेदार मैं हूँ। इनकी आँखें भी छलछला आयीं। इसीलिए इन्हें साथ ले आया हूँ। हमारी सुख-दुःख की बातों के ये भी साझीदार होंगे।..." न्यायरत्न हँसे। यह हँसी सुख की नहीं तो, दुःख की भी नहीं थी; एक अजीब दिव्य हँसी।

देबू भी हँसा। मानो न्यायरत्न की हँसी की प्रतिच्छवि निखरी हो। घर से एक मोढ़ा लाकर बोला, "बैठिए!"

न्यायरत्न बैठ गये। कहा, "मेरे पास बैठो। यतीन, तुम भी बैठो भाई।"

वे लोग जमीन पर ही बैठ गये। देबू ने कहा, "उसी दिन तो, बड़ी श्रद्धा के साथ बिलू ने आपके चरण धोये थे। लेकिन आज, आज कहाँ है वह?"

न्यायरत्न ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, "गुरुजी, मैं उसी दिन समझ गया था कि तुम उसी परिणाम की ओर बढ़ रहे हो। यह बात मैंने तुम्हें देखकर भी समझी थी, तुम्हारी स्त्री को भी देखकर।"

देबू और यतीन, दोनों अचरज से उनकी ओर देखते रहे। न्यायरत्न ने कहा, "उस दिन की कहानी याद है? उस रोज पूरी नहीं कही थी, अब कहता हूँ आज तो अच्छी लगेगी।"

देबू आग्रह के साथ उनकी ओर देखने लगा, "कहिए।"

और फिर यतीन की ओर देखकर न्यायरत्न कहने लगे, "...धर्म के बल से ब्राह्मण फिर अपने सौभाग्य के आसन पर पहुँचे। बेटा-बेटी-दामाद, पोता-पोती-नाती-नतनी से उनका परिवार देववृक्ष के समान हो गया। फल में अमृत का स्वाद और गुण आ गया; फूलों में ऐसी सुगन्ध आ गयी कि अगुरु-चन्दन भी मात! कोई फल समय से पहले नहीं गिरता, कोई फूल असमय से नहीं झरता। भरा-पूरा संसार—सुख, शान्ति, आनन्द से उज्ज्वल हो उठा। बेटे बड़े-बड़े पण्डित; जामाता भी वैसे ही थे। सभी दूर-दूर अच्छे कामों में लगे थे। कोई किसी राजा के पुरोहित, कोई राजपण्डित, कोई किसी संस्कृत पाठशाला के अध्यापक। ब्राह्मण घर पर ही रहते, अपना काम-धन्धा करते। एक रोज वे गये हाट। एक मछेरिन की टोकरी जो देखी, सो अवाक् रह गये। टोकरी में काले रंग का एक सुडौल पत्थर था। पत्थर पर कुछ दाग थे। वह पहचान गये नारायणशिला थी, शालिग्राम। मछेरिन की उस अपवित्र और दुर्गन्ध-भरी टोकरी में पवित्र नारायणशिला! चौंककर उन्होंने मछेरिन से पूछा, 'यह तुम्हें कहाँ मिली?'

मछेरिन ने उन्हें प्रणाम किया। कहा, 'यह नदी में मिल गया बाबा। पूरे पावभर का है। मैंने इसे बटखरा बनाया है। बड़ा सगुनिया है। जब से यह मिला है, तब से मेरी सब तरह तरक्की हो रही है।'

बात सही थी! मछेरिन के बदन में भरे थे सोने के गहने। ब्राह्मण बोले, 'देखो बिटिया, यह है शालिग्राम शिला। इसे तुमने इस आमिष में रखा है अपराध लगेगा।'

मछेरिन तो हँसकर बेहाल हो गयी।

ब्राह्मण ने कहा, 'यह पत्थर तुम मुझे दे दो। बदले में मैं तुम्हें रुपये देता हूँ—पाँच रुपये।'

मछेरिन बोली, 'जी नहीं। मैं इसे नहीं बेचूँगी।'

'खैर! दस रुपये ले लो।'

'नहीं पण्डित बाबा, यह मुझे कई दस दिला देगा।'

'दस न सही, बीस ले लो।'

'मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ, छोड़ दीजिए इसे।'

'पचास ले लो।'

'नहीं!'

'एक सौ!'

'जी, मैंने कह तो दिया, नहीं।'

'एक हजार!'

अबकी मछेरिन अवाक् होकर ब्राह्मण को देखने लगी। कोई जवाब नहीं दिया, जवाब देते न बना।

'पाँच हजार रुपये ले लो।'

मछेरिन से पाँच हजार का लोभ नहीं रोका गया। ब्राह्मण ने मछेरिन को पाँच हजार रुपये गिन दिये और शालिग्राम को ले जाकर अपने घर प्रतिष्ठित किया। लेकिन महा आश्चर्य की बात, तीसरे ही दिन ब्राह्मण ने सपना देखा। देखा कि एक ज्योतिर्मय चंचल किशोर उनके सिरहाने खड़ा उनसे कह रहा है कि तुम मुझे मछेरिन की टोकरी से क्यों ले आये? वहाँ मैं बड़े मजे में था। मुझे तुरत वहीं पहुँचा दो।

ब्राह्मण बहुत हैरान हुए।

दूसरे दिन फिर वही सपना। तीसरे दिन फिर। देखा, आज उस किशोर की मूर्ति भयंकर हो गयी है। मूर्ति बोली, 'फौरन मुझे वहाँ पहुँचा दो, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश होगा।'

सवेरे उन्होंने अपनी स्त्री से सारा हाल कहा। इतने दिन स्वप्न की बात किसी से नहीं कही थी, लेकिन आज बिना कहे उनसे रहा नहीं गया। स्त्री बोली, 'तो क्या हुआ है, इसके लिए नारायण को छोड़ दोगे? होना होगा सो होगा, तुम उसकी चिन्ता मत करो।'

रात को फिर वही सपना। फिर। फिर। इसपर उन्होंने बेटे-दामाद को लिखा। उनकी राय माँगी। जवाब आया। सबकी वही राय, जो ब्राह्मण की स्त्री ने दी थी।

उस रात सपने में ब्राह्मण ने पूछा, 'तुम क्यों नित्य मेरी नींद खराब करते हो? मेरे कर्म, मेरे वचन, मेरे विचार से क्या तुम्हें आज तक जवाब नहीं मिला है? मैं तुम्हें आमिष की टोकरी में नहीं रख सकता!'

दूसरे दिन ब्राह्मण ने पूजा के बाद पोता-पोतियों को प्रसाद के लिए बुलाया। जो सबसे छोटा था वह सबके पीछे दौड़ता हुआ आ रहा था। एकाएक दौड़कर आने में ठोकर खाकर वह गिर पड़ा। ब्राह्मण ने लपककर उसे उठाया। लेकिन तब तक उसका शरीर निष्प्राण हो चुका था। औरतें रो पड़ीं। ब्राह्मण स्थिर होकर सिर्फ जरा हँसे और आकाश की ओर देखते खड़े रह गये।

रात में फिर सपना आया। वही किशोर निर्दयी हँसी हँसते हुए बोला, 'अब भी सोच देखो।'

ब्राह्मण चुपचाप हँसे।

उसके बाद परिवार में महामारी आयी। एक के बाद दूसरा दीया बुझने लगा और रोज रात आने लगा वही सपना। रोज ही ब्राह्मण चुपचाप हँसते।

एक-एक कर उनके संसार का सब शेष हो गया! बाकी रह गये खुद ब्राह्मण और ब्राह्मणी।

फिर सपना आया—'अभी भी सोच देखो। ब्राह्मणी बच रही है।' ब्राह्मण ने कहा, 'छोकरे, बड़े ढीठ हो तुम। बेहद तंग करते हो मुझे।'

दूसरे दिन ब्राह्मणी भी चल बसी। आश्चर्य है, उस रात कोई सपना नहीं आया।

फिर ब्राह्मण ने क्रिया-कर्म किया। एक झोले में शालिग्राम को रखकर झोला गले में झुला लिया और निकल पड़े। एक से दूसरे तीर्थ, एक से दूसरे देश—नद-नदी जंगल-पहाड़ पार करते चले। पूजा की घड़ी आती तो कहीं जमीन को झाड़-पोंछकर बैठ जाते, फूल तोड़कर पूजा करते, फल लाकर भोग लगाते और प्रसाद पाते।

इस प्रकार अन्त में वे पहुँच गये मानसरोवर। स्नान किया। पूजा पर बैठे। आँखे बन्द किये ध्यान लगाया कि एक अपूर्व दिव्य गन्ध से सारी जगह महमहा उठी। आकाश-मण्डल को गूँजती हुई बजने लगी देव-दुन्दुभी। फिर जाने कौन उनके हृदय के भीतर बोल उठा, 'ब्राह्मण, मैं आ गया!'

आँखें वन्द ही किये ब्राह्मण ने पूछा, 'कौन हो तुम?'

'मैं हूँ, नारायण।'

'कैसा है रूप तुम्हारा, बताओ तो भला।'

'क्यों? चतुर्भुज मूर्ति। शंख—चक्र—'

'नः । जाओ। जाओ तुम।'

'क्यों?'

'मैंने तुमको नहीं बुलाया है।'

'फिर किसे बुला रहे हो?'

'वह जो एक ढीठ किशोर है। सपने में रोज मुझे धमकाया करता था, उसको।'

ब्राह्मण को अब उसी स्वप्न के किशोर की आवाज सुनाई पड़ी—'ब्राह्मण, मैं आ गया।'

ब्राह्मण ने आँखें खोलीं—'हाँ, वही तो है।'

हँसकर उस किशोर ने कहा, 'साथ चलो।'

ब्राह्मण ने आपत्ति नहीं की : 'चलो। जरा तुम्हारी ही दौड़ देखूँ।'

एक दिव्य रथ पर चढ़ाकर किशोर ब्राह्मण को एक अपूर्व पुरी में ले गये। कहा, 'यह रही तुम्हारी पुरी। तुम्हारे लिए मैंने बनवायी।' पुरी का द्वार खुल गया;

और द्वार खुलते ही सबसे पहले वही छोटा नाती आया, जो सबसे पहले मरा था। उसके बाद एक-एक करके सब।"

कहानी खत्म करके न्यायरत्न चुप हो गये।

दीर्घ निःश्वास छोड़कर देबू मुँह उठाकर जरा मुसकराया।

यतीन नहीं हँसा। वह इस अजीब ब्राह्मण के बारे में सोचने लगा था। न्यायरत्न ने कहा, "उस रोज तुम्हें और बिलू को देखकर मेरे मन में यही बात आयी थी। उसके बाद जब यह सुना कि तुम उपेन के शव-संस्कार में गये हो, लोगों की सेवा में जुट गये हो, तब मुझे और भी सन्देह नहीं रहा। मैंने प्रत्यक्ष देखा कि तुमने मछेरिन की टोकरी के शालिग्राम की तरफ हाथ बढ़ाया है। आत्मा नारायण है। लेकिन उन बाउरी-मोचियों की पतित दशा की अगर मैं मछेरिन की टोकरी से तुलना करूँ, तो तुम आधुनिक लोग, मुझपर नाराज मत होना।"

तभी देबू की आँखों से आँसू की कुछ बूँदें चू पड़ीं।

अपने कपड़े की कोर से न्यायरत्न ने सस्नेह वह आँसू पोंछ दिये। उसके सिर पर हाथ रखकर बड़ी देर बैठे रहे। उसके बाद बोले, "तो अब मैं चलूँ भैया। तुम्हारी सान्त्वना तुम्हारे ही पास है। उसका उत्स प्राणों के अन्दर ही है। मुझे भागवत कथा अच्छी लगती है। मेरा शशि जिस दिन गुजरा था, मुझे भागवत से ही शान्ति मिली थी इसलिए आज मैं तुम्हें भागवती लीला की एक कहानी सुनाने आया था।"

न्यायरत्न के साथ यतीन भी उठ खड़ा हुआ। रास्ते में उसने कहा, "काश, इन कहानियों को आप इस युग के लिए उपयोगी बना जाते।"

हँसकर न्यायरत्न ने कहा, "अनुपयोगी कहाँ लगी भाई!"

"नाराज तो न होंगे आप?"

"नहीं-नहीं! सत्य की युक्ति के आगे सिर झुकाने को मैं विवश हूँ। नाराज हूँगा भला?"—न्यायरत्न शिशु-से बेझिझक हँस पड़े।

"वही-वही, मछली की टोकरी, चतुर्भुज, शंख-चक्र"—

"भगवान अनन्त रूप हैं। जो रूप जँचे, वही लगा लो। और फिर ब्राह्मण ने तो चतुर्भुज मूर्ति को आँखों देखा नहीं। उन्होंने तो देखी सपनेवाली मूरत—उस अल्हड़ किशोर को।"

यतीन अपने यहाँ पहुँच गया था। रात भी काफी हो गयी थी। बात बढ़ाने का गुंजाइश न थी। न्यायरत्न चले गये।

बैठे-बैठे यतीन को अचानक रवीन्द्रनाथ की कविता की कुछ पंक्तियाँ याद आ गयीं—

> हे ईश्वर, तुमने इस दयाहीन संसार में
> हर युग में बार-बार दूत को भेजा है—
> वे बार-बार कह गये, सबको क्षमा करो

कह गये, सबको प्यार करो।
मन से विद्वेष के विष को निकाल दो।
वे वरणीय हैं, स्मरणीय हैं, लेकिन तो भी
आज दुर्दिन में दरवाजे पर से ही
उन्हें एक अर्थहीन नमस्कार करके लौटा दिया!
नहीं, न्यायरत्न की बात वह नहीं मान सकता।

अट्ठाईस

कोई दो महीने बाद। महामारी रुक चुकी थी।

आषाढ़ महीने का पहला सप्ताह। सात तारीख को अम्बुवाची। धरती शायद उस रोज ऋतुमती होती है। आसमान घटाटोप घटाओं से घिरा। वर्षा आनेवाली लग रही थी। इस वार जो ऊमस गयी, उससे किसानों का अन्दाज है कि वर्षा जल्दी ही उतरेगी। जेठ के अन्त में मृगशिरा नक्षत्र में जिस साल ऐसी ऊमस होती है, उस साल आषाढ़ की शुरुआत में ही वर्षा उतर आती है। और, अम्बुवाची में बारिश होकर कहीं रुकी तो वहुत ही अच्छा लक्षण जानिए। ऋतुमती धरती की माटी भीगकर बेहद उपजाऊ हो जाती है। अम्बुवाची से तीन दिन तक जोताई की मनाही है। गाँव में ढोल वज रहा था। अखाड़े का ढोल।

अम्बुवाची के रोज गाँव में कुश्ती की प्रतियोगिता होती है। कुसुमपुर और आलेपुर में कुश्ती की धूम ज्यादा रहती है। ये दोनों मुसलमानों के गाँव हैं। यह कुश्ती हिन्दू-मुसलमानों में समान उत्साह से होती है। खेती के पहले शायद खेतिहर लोग बल की जाँच करते हैं। इस इलाके में कुश्ती का सबसे बड़ा अखाड़ा भरतपुर में होता है जगह-जगह के नामी और बलवान् खेतिहर, जो अच्छे पहलवान गिने जाते हैं, वहाँ जुटते हैं। भरतपुर में जो विजयी होता है, वह इस इलाके का सबसे बड़ा पहलवान माना जाता है। हाँ, पहलवानी में, बल की होड़ में, आग्रह ज्यादा मुसलमानों में है।

यतीन के कमरे के सामने फतिंगा और गोबरा ने एक अखाड़ा खोदा है। दोनों दिन-भर उसी में लड़ रहे हैं

आज निष्ठावाले खेतिहरों के घर रसोई बन्द है। ऋतुमती धरती की छाती पर

आग नहीं जलेगी। ब्राह्मण और विधवा ये तीन दिन उबाले या पकाये हुए पदार्थ नहीं खाएँगे। देबू ने भी वही व्रत रखा था। अकेला बैठा उदास आँखों मेघ-मेदुर अम्बर को देख रहा था। वर्षा के ओदे बादल, उमड़-घुमड़ रहे थे—दूर-दिगन्त की ओर जा रहे थे उड़-उड़कर! इस दिगन्त से फिर उगते जा रहे थे नये मेघ। जल्दी ही बारिश होगी। अजस्र वर्षण से धरती सुजला हो उठेगी, शस्य-भार से श्यामला हो उठेगी। लोगों की दुःख-तकलीफ दूर होगी। मैदान-खेत हरे-भरे हो जाएँगे। घाट जल से भर उठेंगे। मयूराक्षी की धारा के साथ गेरुए रंग का जल बहता जाएगा। सूने खेत फसल से लहलहा उठेंगे। नील आकाश मेघों से भर गया है। इनके छँटते दिन में सूर्य और रात में चाँद-तारों से जगमगा उठेगा। एक उसी का जीवन शून्य हो गया है, केवल उसी का जीवन! यह अब कभी भरेगा नहीं!—अकेला बैठा वह ऐसी कितनी ही बातें सोचता। जीवन में अचानक जो इतनी बड़ी एक दुर्घटना हो गयी, उसके जीवन में भी एक परिवर्तन आ गया। प्रशान्त, उदासीन, नितान्त अकेला एक आदमी! गाँव का हर कोई उसे प्यार करता, श्रद्धा करता, लेकिन तो भी लोग ज्यादा देर तक उसके पास बैठ नहीं सकते थे। देबू की निरी निर्वाक् उदासीनता से लोग हाँफ उठते।

ज्यादा रात होने पर देबू यतीन के पास जाकर बैठता। उसी समय उसे साथी मिलता। यतीन ने उसे बहुत-सी किताबें दी थीं। बंकिम की ग्रन्थावली देबू के पास थी। यतीन ने उसे रवीन्द्रनाथ की कई पुस्तकें दी थीं, शरत् की ग्रन्थावली और कुछ नये लेखकों की किताबें। अकेलेपन में उन्हीं किताबों के बीच उसका समय निश्चिन्तता में कट जाता। कभी-कभी वह बरामदे में अकेला बैठा ताका करता—ताका करता—बरामदे के ठीक सामने जो हरसिंगार का पेड़ था, उसे। उस हरसिंगार के पेड़ से बिलू की हजारों स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं। बिलू हरसिंगार के फूल बहुत पसन्द करती थी। कितनी बार शरत् की भोर में देबू ने भी बिलू के साथ हरसिंगार के फूल चुने थे!

आज तीसरे पहर उसे आलेपुर जाना था। वहाँ के शेख खेतिहर उसके पास आये थे— उसे कुश्ती के पाँच निर्णायकों में एक रहना पड़ेगा। उसने हँसकर कहा था, "मुझे किस लिए इछू भाई, किसी और को—"

इछू ने जवाब दिया था—"अरे बाप रे! यह भी हो सकता है भला! आप जो कहेंगे, पाँच गाँव के लोग वही मानेंगे।"

देबू वही सोच रहा था : पाँच गाँव के लोग उसे मानें—कभी यही आकांक्षा उसके मन में थी। लेकिन यह उसे किस कीमत पर मिला?

बड़ा अच्छा होता, यदि यतीन उसके साथ आलेपुर जाता। यह राजबन्दी युवक उसे बहुत अच्छा लगता, उसे वह असीम श्रद्धा भी करता था। यतीन कभी-कभी कहता—'अपने यहाँ के लोग शक्ति-चर्चा बिलकुल नहीं करते।' यतीन को कुश्ती

दिखाई जाती। कभी सभी लोग यह करते थे। वह प्रथा आज भी जीवित है—ठीक चण्डीमण्डप की नाईं। अबकी चण्डीमण्डप की छौनी नहीं की गयी। बरसात में गिर जाएगा। गाँववालों ने छौनी नहीं की और श्रीहरि ने भी हाथ नहीं लगाया। श्रीहरि उसे तोड़ना ही चाहता है। इस बार दुर्गा पूजा के बाद सर्वशुद्धा त्रयोदशी के दिन वह वहाँ पर मन्दिर, नाट्यमन्दिर बनवाएगा। चण्डीमण्डप वास्तव में श्रीहरि का है। श्रीहरि ही अब इस गाँव का जमींदार है। शिवकालीपुर की जमींदारी उसी ने खरीद ली है। चण्डीमण्डप उसका अपना है। अनछवाये चण्डीमण्डप की दीवारें इसी बीच वैशाख के आँधी-पानी और काँदों से भर गयी हैं। वसुधारा की उतनी पुरानी रेखाएँ—अब एक भी नजर नहीं आती।

अब श्रीहरि भी प्रायः उसे बुलाया करता—"चाचा, मेरे यहाँ पाँव की धूल देना।" ऐसा वह व्यंग्य से नहीं, श्रद्धा से ही कहता।

लेकिन कहने से क्या होता है। उधर श्रीहरि से गाँव के विवाद की सम्भावना फिर धीरे-धीरे बीज से अंकुर की तरह उगती आ रही थी, सेटलमेण्ट की पाँच धारा का कैम्प आनेवाला है। चूँकि अनाज का दाम बढ़ गया है, इसलिए श्रीहरि लगान बढ़ाना चाहेगा। उसने देबू से उस रोज इसका जिक्र भी किया था। देबू ने कहा, "देख लो कि आसपास के गाँवों का क्या होता है। सब गाँवों में क्या होता है। अगर सभी गाँव के लोग जमींदार को ज्यादा लगान देंगे तो तुम्हें भी मिलेगा।"

सरकारी सर्वे का यह नतीजा हुआ है कि सार्वजनीन त्यौहार की तरह जमींदारों को लगान बढ़ाने का एक सामान्य उपलक्ष मिल गया है। प्रजा चिन्तित हो पड़ी है। गाँव के मातबरों ने इतने में ही उसके यहाँ आवा-जाई शुरू कर दी है। देबू ने बराबर यही कहा है, सोचा भी है कि मैं अब इन मामलों में नहीं पड़ता। मगर लोग फिर भी नहीं मानते। लेकिन लगान-वृद्धि! इसपर भी लगान की बढ़ोतरी? वह सिहर उठता। गाँव की तरफ ताकता। गया-बीता गाँव, महज दो मुट्ठी अन्न और दो टुकड़ा कपड़ा मयस्सर नहीं होता लोगों को। इसपर लगान बढ़ जाय तो मर ही जाएँगे लोग। श्रीहरि खेतिहर का बेटा है, मगर जमींदार होकर सब भूल गया है। लेकिन बीवी-बेटे के मर जाने से संन्यासी हो जाने पर भी देबू इस बात को किसी भी प्रकार से नहीं भूल पाता। पिछले कई दिनों से यतीन से यही चर्चा होती।

क्या करे? जरूरत होगी तो फिर उसके पीछे वह पड़ेगा। कभी-कभी जी में आता—नः। दूसरों की झंझट सिर पर लेने से क्या लाभ? उसे न्यायरत्न की कही कहानी याद आ जाती। धार्मिक-जीवन बिताने की इच्छा होती। मगर किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं होता। यतीन ने उसे उस कहानी का अर्थ दूसरे ढंग से समझाना चाहा, मगर उसे अच्छा न लगा। लेकिन निरा धरम-करम लेकर भी वह नहीं रह सका—यही बात उसे अपने तईं अजीब अचरज की लगी। उसके भीतर यह न जाने कौन है जो उसे इसी तरह, इसी रास्ते पर चला रहा है। शायद वही होगा असल देबू घोष!

जगन और हरेन तो लगान-वृद्धि के खिलाफ अभी से लड़ने का पैंतरा बाँधने लगे थे। हरेन घाट-बाट में निकलता और नाहक ही चिल्ला उठता—"करो हड़ताल! हम लोग हैं पीछे से।"

बंगाल की प्रजा-समाज में हड़ताल पुरानी बात है। यहाँ उसे 'धर्मघट' कहते हैं। नाम में ही उसकी प्राचीनता का परिचय है। पहले तो धर्म को साक्षी रखकर, घट स्थापित करके सर्वसाधारण के जिस किसी काम के लिए शपथ ली जाती थी। वाद में वह जमींदार और रियाया, पूँजीपति और मजदूरों की लड़ाई में ही सीमित हो गयी।

इसमें उन्हें बेहद जोश होता है। संघ-शक्ति की प्रेरणा से असम्भव को सम्भव करने का उत्साह रहता है—अपने संकीर्ण स्वार्थ की अनोखे ढंग से हँसते हुए बलि चढ़ाते हैं। प्रत्येक गाँव के इतिहास की खोज करने से पता चलता है कि गरीब खेतिहरों में से किसी-किसी का पुरखा प्रजा-हड़ताल का अगुआ होकर सब-कुछ गँवा बैठा और अपनी भावी पीढ़ी को कंगाल बना गया। किसी-किसी गाँव में खण्डहर पड़े हैं, जहाँ कभी किसी सम्पन्न खेतिहर का घर था, वह घर इस हड़ताल के चलते तवाह हो गया। घर के लोग पेट पालने की ताड़ना से गाँव छोड़कर चले गये या भुखमरी और बीमारी का शिकार होकर वंश ही लुप्त हो गया।

लेकिन हड़ताल आमतौर से होती नहीं। हड़ताल करने-जैसा सार्वजनीन कारण कम आता है। आता भी है तो प्रेरणा देनेवाले की कमी होती है। जब कि ऐसा ही एक अवसर आया है। इलाके के प्रत्येक गाँव के जमींदार सर्वे के बाद अनाज की कीमत बढ़ जाने के बहाने लगान बढ़ाने की तैयारी कर रहे हैं। प्रजा लगान बढ़ने देना नहीं चाहती। इसे रियाया अन्याय समझती है। उनका मन कोई भी युक्ति मानने को तैयार नहीं। पुश्त-दर-पुश्त वे एड़ी-चोटी का पसीना बहाकर खेत को उपजाऊ वनाते आये हैं। उन खेतों का अनाज उनका है। अबूझ मन कुछ भी समझना नहीं चाहता। गाँव-गाँव में प्रजा सोच-विचार कर रही है। ताज्जुब है कि उसकी हर लहर आकर देबू को चोट करती है।

आलेपुर के मुसलमानों ने आज जो उसे कुश्ती देखने का न्योता दिया है, यह भी वही लहर है। कुश्ती के बाद उसी बात पर राय-मशविरा होगा।

महाग्राम की लहर भी उसके पास पहुँच गयी है। गाँव के लोग न्यायरत्न के पास आये थे। उन्होंने लोगों को देबू के पास भेज दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा—"गुरुजी, मेरे शास्त्र में इसका विधान नहीं है। सोच-विचारकर देखा—तुम कर सकते हो। समझ-बूझकर राय देना।"

न्यायरत्न को उसने मन-ही-मन प्रणाम किया—"आप मेरे कन्धे पर यह भार लाद रहे हैं ठाकुर? ठीक है, लूँगा मैं भार।"—उसके होंठों पर अजीब मुसकान खेल गयी। वही मुस्कान, जो वह उस रोज न्यायरत्न के सामने मुसकराया था। वही सोच

रहा था वह—नाहक ही संघर्ष वह नहीं छेड़ेगा। कानून जब लगान बढ़ाने की गुंजाइश देता है, तो प्रजा को बढ़ा हुआ लगान देना ही पड़ेगा। लेकिन जमींदार को भी उचित लेना चाहिए, प्रजा की संगति का विचार करके लेना चाहिए। रथयात्रा के दिन न्यायरत्न के गृहदेवता की रथयात्रा के अवसर पर जो मेला लगेगा, उस मेले में पाँच-सात गाँव के लोग आएँगे। हर गाँव के जाने-माने लोग न्यायरत्न का आशीर्वाद लेने के लिए आते हैं। न्यायरत्न ने देबू को आमन्त्रित किया है। देबू ने भी तय किया है कि—वहीं लोगों से राय-मशविरा करके जैसा होगा, किया जाएगा।

रेलगाड़ी दौड़ाता हुआ फतिंगा आया। एक क्षण ही रुका। बोला, "नजरबन्द बाबू बुला रहे हैं।" और फिर सीटी बजाकर दौड़ पड़ा...

देबू हँसने लगा।

यतीन ने अनिरुद्ध की बात कही।

"दो महीने तो बीत गये देबू बाबू। अब तक तो उन्हें लौट आना चाहिए था। मैंने हिसाब लगाकर देखा वे दस दिन पहले ही छूट चुके हैं। हिसाब यही कहता है। थाना भी यही बताता है।"

"सच ही तो, अन्नी भाई को अब तक वापस आ जाना चाहिए।"

"मैं यह सोच रहा हूँ, जेल में कोई हंगामा करके फिर तो सजा नहीं हो गयी?"

"ताज्जुब नहीं है। अन्नी भाई का विश्वास नहीं! बदन में बेहद ताकत है। बेहिसाब गुस्सैल है। वह सब कर सकता है।" देबू ने कहा, "लुहार-बहू बहुत परेशान हो रही है क्या?"

यतीन ने कहा, "माँ! देबू बाबू, वह एक अजीब औरत है। देखते नहीं हैं, ये दोनों बौड़म छोकरे अब कहीं नहीं जाते, घर के ही आसपास चक्कर काटा करते हैं दिन-रात, फिर भी माँ इन्हीं दोनों के पीछे परेशान रहती है दिन-रात। उसने महज एक दिन अनिरुद्ध के बारे में पूछा था। बस! फिर कभी खयाल पड़ेगा, तो पूछेगी।"

इस मामूली-से कारण के लिए देबू की आँखों में आँसू आ गया। उस मुन्ने को गोद में लिए खड़ी बिलू का हँसता हुआ मुखड़ा और सदा कामकाज में फँसे दिन याद हो आये।

यतीन ने कहा, "बल्कि दुर्गा ने दो-तीन दिन पूछा था।"

आँखें पोंछकर देबू हँसा। बोला, "दुर्गा आजकल मेरी ओर नहीं जाती। एक दिन मैंने पूछा, तो बोली—गाँववालों को तो आप जानते हैं। अगर मैं ज्यादा आयी-गयी कि लोग कोई किस्सा उड़ा देंगे।"

सही है। दुर्गा देबू के यहाँ विशेष नहीं जाती। लेकिन दूध देने के लिए माँ को भेजती है, दोनों वेला पातू को भेजा करती है। रात को पातू ही देबू के यहाँ सोता है। यह इन्तजाम भी दुर्गा ही का है। इसके सिवा वह खुद भी कैसी तो हो गयी है। अब वैसी लीला-चंचल-तरंगमयी नहीं है। अजीब शान्त हो गयी है। शायद

उसे देबू की छूत लग गयी! यतीन का किशोर तरुण रूप अब उसे विचलित नहीं करता। वह बीच-बीच में देबू को देखा करती—उसी-जैसी उदास दृष्टि से धरती की तरफ निरर्थक ताकती रहती।

कुछ देर के बाद यतीन ने कहा, "मैंने सुना है, श्रीहरि घोष ने दरख्वास्त दी है कि गाँव में हड़ताल की तैयारी हो रही है और उसमें मेरा हाथ है। मुझे यहाँ से हटाने की चेष्टा कर रहे हैं। और मुझे लगता है कि मुझको हटना भी पड़ेगा। लेकिन स्नेह-पागल उस औरत की सोचकर तो मैं व्याकुल हो रहा हूँ। एक ही भरोसा है कि आप हैं। लेकिन वह भी तो एक झंझट है। इसके सिवा, यह विचित्र औरत है देबू बाबू! ऊपर से उन दो छोकरों को जुटा लिया है। खाएगी क्या? गुजारा कैसे होगा? मेरे जाते ही किराये के दस रुपये भी बन्द हो जाएँगे। सुना, जमीन भी नीलाम हो जाएगी। अकुलिया के फेलू चौधरी ने भी श्रीहरि से साजिश करके नालिश कर दी है। बाकी लगान, कर्ज—बहुत रुपये हो जाएँगे! जमीन नहीं रहेगी। आजकल माँ धान कूटती है। कंकना के बाबुओं के यहाँ जाकर भूँजा भूँजती है। लेकिन उतने से क्या उन दो छोकरों सहित गुजारा होगा?"

थोड़ी देर सोचकर देबू ने कहा, "बिना जेल-ऑफिस गये तो अनिरुद्ध का ठीक-ठीक पता नहीं चलेगा। मैं, न होगा तो, कल सदर जाकर पता लगा आऊँगा।"

देबू सदर जो गया, सो दो दिन नहीं लौटा। यतीन इससे और भी चिन्तित हो उठा। दूसरे किसी को कुछ मालूम नहीं। पद्म भी नहीं जानती। तीसरे दिन देबू लौटा। अनिरुद्ध का कोई पता न चला। जेल से वह दस दिन पहले ही निकला। देबू ने बहुत खोजा-ढूँढ़ा। इसीलिए उसे दो दिन लग गये। जेल से निकलने के बाद अनिरुद्ध एक दिन शहर में ही था। दूसरे दिन जंक्शन तक आया था। वहाँ से जाने किसी औरत को साथ लेकर चला गया। इतना ही पता लग सका कि कारखाने में काम करने के लिए वह कलकत्ता या बम्बई या दिल्ली या लाहौर चला गया। कम-से-कम वह यही कह गया है कि जब कारखाने में ही काम करना है, तो यहाँ क्यों करूँगा! किसी बड़े कारखाने में करूँगा। कलकत्ता-बम्बई-दिल्ली-लाहौर—जहाँ भी ज्यादा तनख्वाह मिलेगी वहीं काम करूँगा।

यतीन और देबू ने चौंककर एक-दूसरे की ओर ताका। जंजीर फिर बजी। अबकी यतीन उठा और अपराधी की नाईं सिर झुकाकर पद्म के सामने जाकर खड़ा हो गया।

पद्म ने पूछा, "वह क्या जेल से निकलकर कहीं चला गया है?"

"हाँ!"

"कलकत्ता, बम्बई?"

"हाँ!"

पद्म ने और कुछ नहीं पूछा, लौट गयी। लौटकर दीवार से उठँगकर बैठ गयी : वह चला गया? जाने दो। उसका धरम उसके साथ है!...

उसकी यह शकल देखकर यतीन आज विस्मित नहीं हुआ। पद्म के उस तरह से बैठते ही फतिंगा और गोबरा आकर चुपचाप उसके पास बैठ गये। यतीन बहुत-कुछ आश्वस्त होकर देबू के पास लौट आया।

चारेक दिन बाद। रथयात्रा थी उस दिन।

पिछली रात से नयी बरसात की बारिश शुरू हो गयी थी। आकाश फटकर जैसे पानी पड़ा हो। चारों ओर पानी ही पानी हो गया। जोरों की उस बारिश में किसान माथे पर चटाई की छतरी-सी डाले काम में जुट पड़े थे। टूटी मेंड़ों का मुँह बन्द कर रहे थे, चूहों के बिल बन्द कर रहे थे—पानी को रोककर जो रखना है। पाँव के नीचे की मिट्टी मक्खन-सी मुलायम हो गयी थी। उससे सोंधी गन्ध आ रही थी। बदली के दिन की जोत के पड़ने से पानी-भरे खेत चक-चक कर रहे थे। बीच-बीच में बीज-धान के पौधे घने होकर सब्ज गलीचे-से लग रहे थे। हवा में हिल रहे थे धान के पौधे, मानो अदृश्य लक्ष्मी देवी मेघलोक से उतरकर कोमल चरणों धरती पर आकर विराजेंगी इस भावना से ग्रामीण किसानों ने आसन बिछा रखे हैं।

उसी बारिश में यतीन घर से बाहर रास्ते पर उतरा। उसके साथ दरोगाजी थे। दो-चार चौकीदारों के सिर पर उसका असबाब-पत्तर था। देबू, जगन, हरेन गाँव के सभी लोग उस बारिश में खड़े थे। यतीन का अनुमान सत्य निकला। उसको यहाँ से जाने का आदेश आ गया। अब उसे सदर में अधिकारियों की नजर के सामने रखने का प्रबन्ध किया गया। चौखट पकड़े मलिन मुँह खड़ी थी पद्म, आज उसके सिर पर घूँघट नहीं था। उसकी दोनों आँखों से आँसू बह रहा था। उसके पास खड़े थे फतिंगा और गोबरा—सन्न और उदास!

यतीन पहले तो शंकित था। सोचता था, पद्म कुछ कर न बैठे। यही आशंका ज्यादा थी कि मूर्च्छा रोगवाली पद्म मूर्च्छित हो जाएगी। लेकिन यतीन को इस आशंका से निश्चिन्त रखकर पद्म सिर्फ रोयी। फतिंगा और गोबरा बड़े शान्त थे। पद्म ने उनसे कोई बात नहीं की।

फतिंगा ने पूछा, "तुम चले जाओगे बाबू?"

"हाँ! देख, माँ के पास तू अच्छी तरह से रहना फतिंगा! हाँ? मैं चिट्ठी लिखकर खोज लूँगा।"

सिर हिलाकर हाँ करते हुए फतिंगा ने पूछा, "तुम अब लौटकर नहीं आओगे बाबू?"

गरदन हिलाकर हँसने की कोशिश में यतीन ने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा।

उसके बाद पद्म से बोला, "माँ, जब छूट जाऊँगा, छूटूँगा तो आखिर एक दिन जरूर ही, तो तुम्हारे पास आऊँगा।"

पद्म चुप हो रही।

यतीन ने कहा, "सावधानी से रहना! घर में देखभाल करनेवाला कोई नहीं है।"

मन-ही-मन रोते हुए भी अबकी पद्म ने हँसकर हाथ ऊपर उठाते हुए आसमान की ओर देखा।

यतीन की आँखों में आँसू आ गया था। अपने को छिपा करके बोला, "जब जैसा हो, गुरुजी से कहना, उनकी राय लेना।"

पद्म का चेहरा खिल उठा—"हाँ! गुरुजी तो हैं ही!" फिर आँखें पोंछकर बोली, "तुम ठीक से रहना।"

नलिन, वह चित्रकार का लड़का भी भीड़ में चुपचाप खड़ा था। वह चुपचाप आगे बढ़ा और प्रणाम करके अपनी आदत के अनुसार ही चुपचाप चला गया।

यतीन उसकी ओर देखकर मुसकराया।

हरेन ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "गुडबाई ब्रदर!"

जगन ने कहा, "रिलीज होने पर हमें खबर मिले!"

सतीश बाउरी ने आकर प्रणाम किया। मुड़ा हुआ एक मैला-सा कागज उसे देते हुए बेवकूफ-सी हँसी हँसकर बोला, "यह गीत है हमारा। आप लिख लेना चाहते थे। मैंने बहुत दिन हुए लिखवा रखा था। दे नहीं पाया था।"

यतीन ने कागज को हिफाजत से जेब में रख लिया।

"अजब है! दुर्गा नहीं आयी।"

दरोगा ने कहा, "अब चलिए यतीन बाबू।"

यतीन सख्त कदमों आगे बढ़ा—"चलिए!" देबू भी उसकी बगल से चला। पीछे-पीछे जगन, हरेन, और बहुतेरे। रास्ते में चण्डीमण्डप के किनारे श्रीहरि घोष खड़ा था। मजदूरे चण्डीमण्डप का छप्पर खोल रहे थे। वर्षा से गिर पड़ेगा। उसके बाद वह ठाकुरबाड़ी बनवाएगा। श्रीहरि ने भी मुसकराकर उसे नमस्कार किया।

गाँव से बाहर वे बैहार में पहुँच गये। यतीन ने कहा, "अब आप लोग लौट जाएँ!"

सब लौट गये, केवल देबू ने कहा, "चलिए, मैं बाँध तक चलूँगा। वहाँ से मैं महाग्राम जाऊँगा—न्यायरत्न के यहाँ। उनके यहाँ रथयात्रा है।"

रास्ते में सूने बैहार के पोखरे के किनारे एक पेड़ के नीचे खड़ी थी दुर्गा। उसे किसी ने नहीं देखा। लेकिन वह उसकी ओर ताकती हुई जैसी खड़ी थी वैसी ही खड़ी रही। सभी चुपचाप जा रहे थे। दुःख से सबके शब्द खो गये हों मानो। दरोगाजी तक चुप थे। सबकी पीड़ा ने मानो उनके हृदय को छू लिया था।

यतीन की बहुत सारी बातें याद आ रही थीं, बहुत-बहुत स्मृतियाँ! एक-ब-एक बैहार की ओर निहारकर उसमें भावान्तर आ गया। यह दूर तक फैली हुई बैहार एक दिन हरे पौधों से भर जाएगी—धीरे-धीरे हेमन्त के सुनहले रंग से चमक उठेगी यह। सोने की फसल से किसानों के घर भर जाएँगे।

दूसरे ही क्षण जी में आया—फिर? वह धान पाएगा कहाँ?

उसे अनिरुद्ध की गिरस्ती की छवि याद आयी। और भी बहुतों के घर की याद आयी। टूटा-फूटा घर, सूना आँगन, अभाव से पीड़ित मुखड़े, महामारी, मलेरिया, कर्ज का बोझ, दुबले अधनंगे अबोध शिशुओं का दल! फतिंगा और गोबरा—बंगाल के भावी पुरुष के नमूने!

और फिर याद आया—पद्म उसके माथे पर अशोक षष्ठी का टीका दे रही है!

उसे पढ़ी हुई सांख्यिकी की बात सहसा बड़ी तुच्छ लगी। अधूरा सत्य—महज वस्तुगत हिसाब! लेकिन यह दुनिया मात्र हिसाब से समझने की चीज नहीं है। यह बात उससे एक दिन न्यायरत्न ने कही थी। उनकी अब याद आ गयी। सिर झुकाकर बार-बार मन-ही-मन उन्हें प्रणाम करते हुए उसने स्वीकारा कि संसार और संसार का कोई भी आदमी हिसाब के दायरे में बँधा नहीं है। न्यायरत्न हिसाब से परे हैं—परिमाप से अलग। और उसके पास का यह आदमी—देबू गुरुजी? अधपढ़ा खेतिहर का लड़का, हृदय की उदारता से अपनी कीमत के अंकों को पार कर गया है—कितना, कहाँ तक—इसका लेखा यतीन नहीं लगा सका है। और पार किया कैसे यह भी अंक शास्त्र का एक अतिरिक्त रहस्य है।

हिसाब की इसी भूल के फेरे से तो बची हुई है यह धरती। एक बार एक धूमकेतु की टक्कर से इसके चूर-चूर हो जाने की बात थी। बड़े-बड़े हिसाब लगाकर उस परिणाम की घोषणा की गयी थी। हिसाब में गलती नहीं हुई थी, लेकिन जाने किस रहस्यमय के इशारे से गलती से धरती उस धूमकेतू के बगल से बचकर निकल गयी।

नहीं तो, उस समाज-शृंखला का तो सारा कुछ बिखर गया है। गाँवों की वह सनातन व्यवस्था—नाई, लुहार, कुम्हार, ताँती—आज अपना-अपना काम छोड़ चुके हैं, अपने पेशे से परे हैं। एक गाँव से पाँच गाँव का बन्धन, पंचग्राम से सप्तग्राम, नवग्राम, दसग्राम, बीसग्राम। शत, सहस्र ग्राम के बन्धन की गाँठें बिखर गयी हैं।

महाग्राम का 'महा' विशेषण बिगड़कर महू में बदल गया है। न केवल अर्थ में बल्कि वास्तविक परिणति में भी उसकी महामहिमा खो चुकी है। अट्ठारह टोले का गाँव आज कुछ घरों की बस्ती बन गया है। बूढ़े न्यायरत्न एकान्त में महाप्रयाण के दिन गिनते जा रहे हैं।

नदी के उस पार नया काल नये महाग्राम की रचना कर रहा है। नये काल की उस रचना में जो रूप निखरेगा, उसे यतीन ने अपनी किताबों में पढ़ा है—कलकत्ते

में उसने अपने जन्मस्थान में प्रत्यक्ष देखा है। उसके याद आते ही सिहर उठना पड़ता है, लगता है कि सारी दुनिया की रोशनी गुल हो जाएगी, हवा का प्रवाह थम जाएगा, सारी सृष्टि द्रष्टा द्वारा रौंदी हुई नारी-जैसी सारहीन कंगालिन बन जाएगी। जर्जर सदय, कलेजे में हाहाकार, बाहर चमक-दमक, होठों पर बनावटी हँसी। अभागिन सृष्टि! सांख्यिकी नियम से उसकी परिणति—क्षय रोगी की तरह तिल-तिल करके मृत्यु! लेकिन तो भी आज वह हताश नहीं। सारी सृष्टि में मनुष्य अंकशास्त्र से अलग रहस्य है। धरती के समुद्र तट की बालुका में एक कण के समान ब्रह्माण्ड में व्याप्ति के भीतर यह पृथ्वी, इस पृथ्वी में जो जीवन-रहस्य है, वह रहस्य ब्रह्माण्ड के ग्रह-उपग्रह के रहस्य का अतिक्रम है। एक कण जीवन प्रकृति की प्रतिकूलता मृत्यु की अमोघ शक्ति, सब-कुछ को पार करके सौ, हजार, लाख, करोड़ों-करोड़ धाराओं से युग-युग उच्छ्वसित होकर महाप्रवाह हो बहता जा रहा है। वह सारी बाधाओं को पार करेगा। आनन्दमयी प्राणवान् यह सृष्टि, अपार है उसकी शक्ति—अपने जीवन-विकास की समस्त विरोधी शक्तियों को वह नष्ट करेगी। इसमें उसे कोई सन्देह नहीं। भारत का जीवन-प्रवाह सारे बाधा-विघ्नों को ठेलता हुआ फिर तेजी से दौड़ेगा।

न्यायरत्न जीर्ण हैं। उनका युग बीत चुका है। वे नहीं रहेंगे। लेकिन उनकी याद, उनका आदर्श नया जन्म ग्रहण करेगा। यतीन हँसा। न्यायरत्न के पोते विश्वनाथ की याद आ गयी। वह आएगा। देबू घोष, गाँवों की टूटती हुई शृंखला के युग में, टूटने—बनने के क्रम में श्रीहरि पाल, कंकना के बाबू, थाने के जमादार-दरोगा की लाल आँखों की परवा न करके नये रूप में जाग खड़ा हुआ है—महामारी के हमले को उसने रोका है। देबू की छाती से छाती लगाकर गले मिलते हुए उसने साफ महसूस किया कि उसके हृदय में समय की वाणी उमड़ रही है। सारी बाधा, सारे विघ्न को दूर करके जीवन की सार्थकता के अटूट अदम्य आग्रह की वाणी!

उत्तेजना से विप्लववादी यतीन का शरीर थर-थर कर उठा। यह चिन्ता उसके विप्लव की थी। आनन्द से उसकी आँखों में दमक उठी एक अनोखी जीत! उसे यही खुशी थी, यह सन्तोष था कि उसने अपना कर्तव्य किया। अपने बन्दी जीवन में इस बस्ती में देबू के जागरण में उसने मदद की। कैद उसके अपने जीवन के जागरण, भावप्लावन में बाधा नहीं दे सकी। नये युग के घर्षण की प्रचेष्टा इसी प्रकार से बेकार होगी—मनुष्य जिएगा! भय नहीं! भय नहीं!

बाँध पर खड़े होकर देबू ने कहा, "तो अब विदा यतीन बाबू! नमस्कार!"

यतीन ने भी कहा, "नमस्कार देबू बाबू! विदा!..." उसने देबू के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर उसके मुँह की ओर देखा। सहसा बोल उठा :

"उदयेर पथे सुनि कार वाणी—भय नाइ ओरे भय नाइ।
निःशेषे प्राण कॅरिबे जे दान क्षय नाइ तार क्षय नाइ।"

...उसके बाद अचानक मुँह फेरकर वह तेजी से चलने लगा। देबू उसकी ओर खड़ा देखता रहा। उसकी आँखों से आँसू बहने लगा। वह निरा सूना अकेला जीवन—बिलू और मुन्ने चले गये, जगन, हरेन अब जा-जाकर वैसा ही हल्ला नहीं करते, सारे गाँव से वह कटता-सा जा रहा है! आज यतीन बाबू भी चल दिये! कैसे बीतेंगे दिन उसके? किसे लेकर वह जिन्दा रहेगा?...सहसा उसे न्यायरत्न की कहानी याद आ गयी। कहाँ है, वह शालिग्राम कहाँ है उसका? आसमान की ओर ऊपर ताककर उसने खोये हुए के समान हाथ बढ़ाया—भगवान!

मयूराक्षी के पाट में उतरकर यतीन फिर पलटकर खड़ा हो गया। ऊँचे बाँध पर ऊपर को आँखें और मुँह किये हुए देबू को देखकर आनन्द और तृप्ति से मोहग्रस्त-सा होकर वह देबू को देखता ही रह गया।

दरोगा ने कहा, "यतीन बाबू, चलिए!"

यतीन ने हाथ जमीन से लगाया और उस हाथ को अपने माथे से। फिर प्रणाम करके बोला, "चलिए!"

अकस्मात् दूर पर कहीं ढाक बज उठा।

दूर से आती हुई उस ढाक की आवाज से अचेत होकर देबू ने लम्बा निःश्वास छोड़ा। ढाक बज रहा था। महाग्राम के ढाक की आवाज! न्यायरत्न के यहाँ रथयात्रा है। देवता शायद रथ पर आसीन हुए। रथ शायद चलने लगा। पता नहीं वह रथ जाकर कहाँ रुकेगा?

बाँध पर की राह पकड़कर वह तेजी से चलने लगा।

गणदेवता : खण्ड दो

पंचग्राम

एक

आषाढ़ का महीना। इस महीने की शुक्ला द्वितीया तिथि को जगन्नाथजी की रथयात्रा का त्यौहार; बारह महीने में भगवान विष्णु की बारह यात्राएँ, जिनमें यह रथयात्रा हिन्दुओं का लगभग सार्वजनीन उत्सव है, पुरी की जगन्नाथ-मूर्ति की रथयात्रा ही भारतवर्ष की प्रधान रथयात्रा है। आज के दिन वहाँ भी जगन्नाथजी जाति-वर्ण-निर्विशेष सबके देवता हैं; जाति-वर्ण की यह निर्विशेषता अवश्य ही केवल हिन्दूधर्मवालों तक सीमित है। हिन्दुओं में सभी जाति के लोग आज रथ की रस्सी को छूकर जगन्नाथजी के स्पर्श का पुण्य-लाभ करते हैं। जगन्नाथजी कंगालों के देवता हैं।

रथयात्रा यों पुरी की ही प्रधान होती है, लेकिन हिन्दुओं में सभी जगह, खासकर बंगाल के प्रायः गाँव-गाँव में छोटे-बड़े रूप में रथयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। ऊँचे वर्ण के हिन्दुओं के यहाँ आज पंचगव्य और पंचामृत के साथ जगन्नाथजी को खीर का विशेष भोग लगाया जाता है। आम-कटहल का समय है, इसलिए आम-कटहल भोग का एक अपरिहार्य उपकरण है। जमींदारों में से बहुतों के यहाँ रथ है—लकड़ी का, पीतल का। इस रथ पर शालिग्राम-शिला या घर की प्रतिष्ठित मूर्ति को रखकर पुरी के अनुकरण में रथ खींचा जाता है। वैष्णवों के मठ में रथयात्रा के दिन संकीर्तन समारोह होता है, मेला लगता है। बंगाल के किसानों में ज्यादातर वैष्णव धर्मावलम्बी हैं, वे इस पर्व को बड़े चाव से मनाते हैं। इस दिन हल जोतना बन्द रखकर उन्होंने इस पर्व को अपने जीवन से बड़ा घनिष्ठ कर लिया है। दो-दस गाँवों के फासले पर सम्पन्न किसानों के गाँव में हर साल बाँस-लकड़ी का रथ बनाकर यह उत्सव मनाया जाता है। छोटा-सा मेला लगता है। आस-पास के लोगों की भीड़ हो जाती है। कागज के फूल, रंगीन कागज में लपेटी हुई बाँसुरी, हवा में घूमनेवाले कागज के फूल, ताड़ के पत्ते के बने हाथ-पाँव हिलानेवाले हनुमान, पटाखे, तेल में तले हुए पापड़, बैंगनी पकौड़ी और थोड़ी-बहुत मनिहारी चीजें बिकती हैं।

महाग्राम में न्यायरत्न के यहाँ रथयात्रा का अनुष्ठान बहुत दिनों से चला आ रहा है। उनके चौथे पूर्व-पुरुष ने रथ-प्रतिष्ठा की थी। उनके गृहदेवता लक्ष्मीजनार्दन रथारूढ़ होते हैं। पाँच शिखरवाला काठ का मझोले कद का रथ। मेला भी लगता है। पहले यह मेला अच्छा-खासा होता था। विशेष रूप से हल के लिए बबूल के कुन्दे, सबाई रस्सी, खिड़की-किवाड़ और लोहे के सामान यानी बड़ी-बड़ी कीलें, फाल, कुदाल, कुल्हाड़ी, कटार, खन्ती आदि खरीदने के लिए कई गाँवों के लोग यहाँ भीड़ लगाया करते थे। लेकिन अब उन सब चीजों की खरीद-बिक्री नहीं होती। स्थानीय बढ़ई-लुहार अब मेले में बेचने के लिए ये सब चीजें बनाने की हिम्मत नहीं करते। पूँजी की कमी के कारण भी और इसलिए भी कि लोग-बाग अब ये सब चीजें खरीदते नहीं। केवल हल के लिए बबूल के कुन्दे की ही थोड़ी-बहुत बिक्री होती है और सबाई घास तथा उसकी रस्सी भी अभी कुछ-कुछ बिकती है। यों खरीद-बिक्री कम नहीं हुइ है, दूकानें भी पहले से ज्यादा आती हैं, लोगों की भीड़ भी बढ़ी ही है। सस्ती शौक की मनिहारी चीजों की दृकानें आती हैं। सिले-सिलाये कपड़ों की दूकानें आती हैं, जंक्शन के फजहि शेख की जूते की दूकान भी आती है। बिक्री जो कुछ भी होती है, इन्हीं दूकानों की होती है। लोग भी बहुत आते हैं। कई गाँवों के जाने-माने लोग आज भी आदर मे इस अवसर पर न्यायरत्न के यहाँ आते हैं, बल्कि रथ के करीब पहुँचकर पहले रस्सी को वही लोग पकड़ा करते हैं। जनता ज्यादातर दूकानों पर ही रहती है। अभी भी भीड़ उन्हीं लोगों की ज्यादा होती है, पापड़ खाते हुए, कागज का बाजा बजाते हुए, कठघोड़वे पर घूमते हुए वही लोग मेले को जमा देते हैं।

महाग्राम एक समय—एक समय क्यों, सिर्फ सत्तर-अस्सी साल पहले तक भी—इस इलाके का प्रधान गाँव था। न्यायरत्न ही इस इलाके के समाजपति हैं—बड़े ही निष्ठावान् पण्डितकुल के उत्तराधिकारी। कभी इन्हीं के पुरखे यहाँ के पचीस-ग्रामसमाज के विधान-दाता थे। आज बेशक पचीस-ग्राम-समाज कल्पना के भी परे है, किन्तु एक जमाने में वह था। ग्राम से पंचग्राम, सप्तग्राम, नवग्राम, विंशतिग्राम, पंचविंशति ग्राम—इस प्रकार से ग्राम-समाज का विस्तार था। बहुत-बहुत पहले सौ गाँव, हजार गाँव तक यह बन्धन-सूत्र अटूट था। उन दिनों आवा-जाई की कठिनाई थी। आज आने-जाने की सुविधा है, लेकिन वह सम्बन्ध-सूत्र अजीब ढंग से ढीला पड़ता जा रहा है। आज अवश्य वह सब निरी कपोलकल्पना-सा लगता है, मगर पंचग्राम का बन्धन अभी भी है। महाग्राम आज महज नाम का ही महाग्राम है, केवल न्यायरत्न वंश के मिटते हुए प्रभाव के बचे-खुचे को पकड़े उसका महाविशेषण किसी प्रकार से टिका हुआ है। रथयात्रा-जैसे ही कुछ दूसरे त्यौहारों पर लोग न्यायरत्न के टोल और ठाकुरबाड़ी में आया करते हैं। रथयात्रा, दुर्गापूजा, बासन्तीपूजा—ये तीन त्यौहार आज भी न्यायरत्न के यहाँ खासे समारोह के साथ मनाये जाते हैं।

आज न्यायरत्न के यहाँ रथयात्रा का उत्सव था।

न्यायरत्न स्वयं होम करने बैठे थे। टोले के छात्र लोग काम-काज करते फिर रहे थे। कुछ गाँवों के प्रतिष्ठित लोग अठचलिये में दरी पर बैठे थे। गाँव का चौकीदार तथा और भी एक-दो आदमी चिलम चढ़ा-चढ़ाकर दे रहे थे। मेले में भी लोगों की भीड़ धीरे-धीरे बढ़ रही थी। एक ढाकवाला ढाक पीट-पीटकर दूकानों से पैसा माँगता चल रहा था।

वर्षा का आकाश, घनघोर घटा घिरी थी। शून्यलोक मानो स्तर-स्तर में धरती के निकट उतर आया हो। बीच-बीच में काले-पतले धुएँ-से दो-एक बादल बड़ी तेजी से तैरते जा रहे थे; ऐसा लग रहा था जैसे वे मयूराक्षी के बाढ़-रोधी ऊँचे बाँध पर खड़े बहुत पुराने लम्बे ताड़ों का माथा छूते जा रहे हों!

ढाक की आवाज शून्यलोक के बादलों की परतों से टकराकर दिशा-दिशा में छिटकी पड़ रही थी।

शिवकालीपुर का देबू घोष मयूराक्षी के बाढ़-रोधी बाँध से जल्दी-जल्दी महाग्राम की तरफ चला जा रहा था। ढाक की घनी-गहरी आवाज दिगन्त में गूँज रही थी। ढाक महाग्राम में ही बज रहा था। न्यायरत्न के यहाँ रथयात्रा थी। अब तक गृह-देवता रथ पर चढ़ चुके होंगे। रथ शायद चलने भी लगा हो। देबू तेजी से ही चल रहा था, फिर भी उसने अपनी चाल और तेज करने की कोशिश की।

न्यायरत्नजी का पोता विश्वनाथ देबू का साथी है स्कूल का; साथी ही नहीं स्कूल में दोनों एक-दूसरे के प्रतियोगी थे। विश्वनाथ एम.ए.में पढ़ता है। देबू पाठशाला का गुरुजी है। कभी, यानी अपनी स्त्री और बच्चे के मरने से पहले, इस बात को याद करके तीखे असन्तोष से देबू व्यंग्य की हँसी हँसा करता था। लेकिन अब नहीं हँसता। अब उसे इसका दुःख भी नहीं। इसलिए नहीं कि अदृष्ट अमोघ और अखण्ड है, बल्कि इसलिए कि अब वह इन सब घेरों से बाहर निकल आया है।

इसी के साथ यतीन की याद आ गयी।

नजरबन्द यतीन उसे बहुत-कुछ दे गया। इन सबको जीतने की शक्ति उसे यतीन की ही सहायता ने दी। आज यतीन बाबू यहाँ से चले गये। अभी-अभी कुछ ही देर पहले वह उन्हें मयूराक्षी के घाट तक पहुँचा आया था। उसके इस सूने जीवन का एकमात्र सच्चा साथी नजरबन्द यतीन ही था। आज वह भी चला गया। वर्षा के इस मेघ-घिरे दिन में उसे मयूराक्षी के घाट पर ही किसी एकान्त पेड़-तले चुपचाप बैठने की इच्छा हो रही थी। उसी घाट के पास मयूराक्षी की रेती में उसने अपने मुन्ने और प्यारी बिलू को जलाकर राख किया है। जेठ के झोंके और थोड़ी-बहुत बारिश से वह चिह्न अभी भी कतई धुल-पुँछ नहीं गया है। उसी की बगल से भीगी बालू पर अपने पाँवों की छाप छोड़ता हुआ यतीन चला गया। आज जिस तरह से

उमड़-घुमड़कर घिर आयी हैं घटाएँ, नैर्ऋत्य कोण से बहने लगी है जैसी मन्द-मधुर हवा, उससे लगता है कि पानी में अब देर नहीं। बस्ती-घाट-बाट को डुबाता हुआ मयूराक्षी में पानी का बहाव आएगा—उस बहाव के सोते से मुन्ने और बिलू की चिता के चिह्न, यतीन के पैरों के निशान बिलकुल धुल जाएँगे—उसी धुल जाने को देखने की इच्छा थी उसकी। लेकिन न्यायरत्नजी के बुलावे को वह टाल नहीं सकता। यतीन उसके जीवन में लाया है निश्चित आदर्श और न्यायरत्न ने भी दी है उसे एक परम सान्त्वना। उसकी वह कहानी जो भूलने योग्य नहीं! न्यायरत्न ने आज उसे विशेष रूप से बुलाया है। बुलाने का एक खास कारण है। स्नेह तो खैर है ही, लेकिन जिस कारण का उन्होंने जिक्र किया था देबू उसी की सोच रहा था।

जरीब कानून के मुताबिक इस इलाके का सेटलमेण्ट सर्वे हो चुका। रेकॅर्ड ऑव राइट्स का अन्तिम रूप से प्रकाशन भी हो गया। सेटलमेण्ट की लागत का अपना हिस्सा देकर रेयतों ने परचा ले लिया। अब जमींदार के लगान बढ़ाने की बारी थी। जहाँ देखिए जमींदारों ने एक ही आवाज उठायी थी—लगान बढ़ाएँगे। कानूनन तो हर दस साल पर वे लगान बढ़ाने के हकदार हैं। आज बहुत-से दस साल गुजर जाने के बाद सेटलमेण्ट के खास मौके से वे लगान बढ़ाने पर तुल गये हैं। अनाजों की कीमतें बढ़ गयी हैं—लगान बढ़ाने का यही प्रधान कारण है। राज-सरकार में प्रत्येक भूमि पर जमींदार को शायद उपज का हिस्सा प्राप्य है। चिरस्थायी बन्दोबस्त के जमाने में जमींदारों ने अपनी उसी प्राप्य फसल की जो कीमत उस समय होती थी, उसे रुपया लगान में निश्चित कर लिया था। लिहाजा आज जब फसल का दाम उस समय से बढ़ गया है तो जमींदार भी ज्यादा पाने के हकदार हैं। इसके सिवा भी जमींदारों को एक बहुत बड़ी सुविधा हुई है। सेटलमेण्ट कानून की धारा पाँच के मुताविक जगह-जगह पर सामयिक अदालत बैठेगी। उन अदालतों में सिर्फ लगान बढ़ाने के ही उचित-अनुचित का विचार होगा। खूब कम खर्च में ही ऐसे मुकदमे दायर किये जा सकेंगे और फैसला भी कम ही समय में हो जाएगा। इसलिए छोटे-बड़े सभी जमींदार एक ही साथ लगान बढ़ाने पर आमादा हो गये।

रैयत लोग भी चुप नहीं बैठे थे। उन लोगों ने भी लगान की बढ़ती न देने का जोरदार नारा बुलन्द किया, एक आन्दोलन-सा खड़ा कर दिया। उनकी दलील थी, तर्क भी करते थे वे। उनका कहना था फसल का दाम बढ़ गया है यह सही है, लेकिन हमारी घर-गिरस्ती का खर्च कितना बढ़ गया है, यह भी तो देखो। जमींदारों का जवाब था, वह देखने का जिम्मा हमारा नहीं, हमारा नाता उस उपज-मूल्य से है जो राजा के हिस्से का है। यह महीन बात रियाया समझ नहीं सकती थी, समझना चाहती नहीं थी। वह कहती थी—हम नहीं देंगे। यह 'नहीं देंगे' कहने में उन्हें एक अनोखी तृप्ति का स्वाद मिलता था। कोई अकेला अगर पावनेदार का पावना न देने की कहे तो समाज में उसकी निन्दा होती है, लेकिन वही गोया मनुष्य

के मन की बात हो। न देने से जब अपना बढ़ेगा—कम-से-कम घट जाने के दुःख से बचेंगे—तो नहीं देने का इरादा ही जी में जग पड़ता है। लेकिन यह बात अकेले किसी के कहने से समाज में निन्दा होती है, राजा के दरबार में जाकर पावनादार देनदार से अपना पावना सहज ही वसूल कर लेता है। लेकिन आज जब सारे समाज ने ही नहीं देने का नारा दिया है तो यह निन्दा की बात कहाँ रही? आज उठ आयी है दावे की बात। पावनादार राजा के यहाँ करे नालिश; आज ये बाँस की एक कमची नहीं हैं, कमचियों की गाँठ हैं। पट् से टूट जाने का डर इसका नहीं है। 'डर नहीं है', इस उपलब्धि में जो एक ताकत है, मत्तता है उसी मत्तता से मत्त हो उठे थे। यहाँ के लगभग सभी गाँवों की प्रजा ने हड़ताल करने का संकल्प कर लिया था। उन्हें अब नेता की जरूरत थी। प्रायः हर गाँव से देबू को न्योता आया था। उसके अपने गाँव शिवकालीपुर के लोगों ने उसे परेशान कर रखा था। देबू को इन मामलों में अब पड़ने की इच्छा न थी। उसने बार-बार लोगों को टाल देना चाहा, मगर लोग सुनते न थे। इधर महाग्राम के लोगों ने न्यायरत्न की शरण ली थी। उन्होंने एक चिट्ठी देकर लोगों को देबू के पास भेज दिया था। लिखा था—"गुरुजी, मेरे शास्त्र में इसका कोई विधान नहीं है। सोचकर देखा, तुम विधान दे सकते हो। सोच-विचारकर कोई राह निकालो!"

रथयात्रा के मौके से पंचग्राम के मातबर किसान आज न्यायरत्न के यहाँ इकट्ठे होंगे। महाग्राम के सक्रिय कार्यकर्तागण इसी मौके पर हड़ताल के उद्योग-पर्व की भूमिका समाप्त कर लेना चाहते थे। इसीलिए देबू से आज जरूर से जरूर उपस्थित होने का अनुरोध किया गया था। खुद न्यायरत्न ने भी लिखा था—"गुरुजी को मेरा आशीर्वाद! मेरे देवता का रथ संसार-समुद्र को पार करके परलोक को जाएगा। इहलोक में जिनका रथ सुख और सम्पद्-भरे मौसी के घर जाएगा; वे लोग मुझे खींच-तान रहे हैं। यह जिम्मेदारी तुम लेकर मुझे छुटकारा दो। तुम्हारे हाथों यह भार सौंपने से मैं निश्चिन्त हो सकता हूँ, क्योंकि लोगों की सेवा में तुमने अपना सरबस गँवाया है। तुम्हारे हाथों घटना-चक्र से अगर लाभ के बदले नुकसान भी होगा तो उस नुकसान से अमंगल नहीं होगा, यह मेरा विश्वास है। जरूर आओ और आकर इस विपत्ति से मुझे बचाओ।" देबू इस निमन्त्रण को टाल नहीं सका। इसलिए स्त्री-पुत्र के चिता-चिह्न के प्रबल आकर्षण, मित्र यतीन की विदाई-वेदना के अवसाद—सबको झाड़-फेंककर वह महाग्राम की ओर चला जा रहा था।

मयूराक्षी के बाढ़-रोधी बाँध से वह बैहार की तरफ उत्तर को उतरा। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर महाग्राम। ढाक की आवाज और ऊँची हो रही थी। अपनी चाल को कुछ और तेज करके भीड़ को ठेलता हुआ आखिर वह न्यायरत्न के अठचलिये में जा पहुँचा। जलती हुई होमाग्नि के सामने बैठे-बैठे ही मुसकराकर न्यायरत्न ने स्नेह से चुपचाप उसका स्वागत किया।

देबू ने प्रणाम किया।

जाने-माने किसानों ने भी सादर उसकी अगवानी की—"आओ, आओ गुरुजी, आओ!...यहाँ बैठो, यहाँ!"—उसे जगह देने के लिए सबने अपनी जगह छोड़कर बैठना चाहा। नम्रता से हँसकर देबू एक किनारे ही बैठा। कहा, "मैं यहीं मजे में हूँ।" लेकिन उन लोगों के स्वागत की आन्तरिकता ने उसके हृदय को छू लिया। अपने स्त्री-पुत्र को खोकर वह मानो इस इलाके के सभी लोगों के स्नेह-प्रेम का पात्र बन गया था। उसकी आँखों के कोने में आँसू की दो बूँदें बन आयीं। उसका हृदय असीम कृतज्ञता से भर आया। लोगों का इतना प्रेम!

बहुत-से लोग आये थे। महाग्राम के मुख्य व्यक्ति शिवदास, गोविन्द घोष, माखन मण्डल, गणेश गोप आदि तो आये ही थे, उनके सिवा शिवकालीपुर का हरेन्द्र घोषाल आया था; जगन डॉक्टर भी आएगा। देखुड़िया का तीनकौड़ीदास आया था, साथ में और कई जने। बलियाड़ा का बूढ़ा केनाराम गोपाल और गोकुल को साथ लेकर आया था। केनाराम गाँव की पाठशाला में गुरुगिरी करता था। अब बूढ़ा हो गया है, आँखों से बिलकुल नहीं देख पाता। पुरानी आदत से ही शायद उसने दिखाई न देनेवाली आँखों से इधर-उधर ताका, उसके बाद धीमे से गोपाल को आवाज दी—"गोपाल!"

गोपाल पास ही बैठा था। उसने बूढ़े के कान के पास मुँह पहुँचाया और फुसफुसाकर बोला, "गुरुजी, देबू घोष!"

कुबड़े बूढ़े ने सीधे बैठकर पुकारा—"देबू? कहाँ, देबू कहाँ है?"

अपनी जगह से ही देबू ने जवाब दिया, "जी, आप अच्छे हैं?"

"यहां, यहाँ आओ तुम मेरे पास!"

देबू उनकी बुलाहट की उपेक्षा न कर सका। उठकर बूढ़े के पास गया। पैर पर हाथ रखकर स्पर्श जताते हुए प्रणाम किया—"प्रणाम करता हूँ!"

अपने दोनों हाथों से देबू को चेहरे से छाती तक छूकर बूढ़े ने कहा, "मैं तुम्हें ही देखने आया हूँ।" और फिर हँसकर बोला, "आँखों से अब सूझता नहीं है, नजर नहीं रही। इसीलिए बदन पर हाथ फेरकर देख रहा हूँ।"

देबू ने बूढ़े की बातों की आड़ में जिस समवेदना और प्रशंसा के उच्छ्वास का आभास पाया, उसी उच्छ्वास से कतराने के लिए उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया—"आँखों के छाले को कटवा दें न! यहीं तो बेनागढ़ में पादरियों के अस्पताल से अकसर लोग आँखों का छाला निकलवा आते हैं। वास्तव में वहाँ ऑपरेशन बड़ा अच्छा होता है!"

"ऑपरेशन? नश्तर लगाने को कहते हो?"

"जी हाँ, मामूली ऑपरेशन है। हो जाने से आप साफ-साफ देखने लगेंगे!"

"क्या देखूँगा?"—बूढ़े ने अजीब हँसी हँसकर पूछा, "क्या देखूँगा? तुम्हारा सूना

घर? तुम्हारी आँखों का आँसू? आँखें गयीं—अच्छा ही हुआ है देबू! अकाल मृत्यु से देश भर गया। उस रोज मेरा एक भानजा मर गया, मेरी बहन छाती फाड़कर रोयी, मैंने कानों से सुना, लेकिन उसका मरा हुआ मुखड़ा तो नहीं देखना पड़ा! यह अच्छा है, यह अच्छा है, देबू! अब ये कान भी बहरे हो जाएँ तो यह सब भी सुनना न पड़े।"

बूढ़े की दृष्टिहीन आँखों से आँसू की धारा चेहरे की झुर्रियों को भिगोती हुई माटी पर गिरने लगी। मलिन हँसी हँसता हुआ देबू चुप रहा, कोई जवाब देते न बना उससे। जो लोग इकट्ठे थे, उनकी बातचीत बन्द हो गयी। केवल न्यायरत्न के मन्त्रोच्चारण की ध्वनि एक संगीतमय परिवेश बनाती हुई गूँजती रही।

ठीक इसी वक्त टोल के अटचलिये के प्रांगण में रास्ते से एक आधुनिक सुदर्शन तरुण आया, देबू का हमउम्र। पीछे कुली के सिर पर एक छोटा-सा सूटकेस और फलों की एक टोकरी। देबू आग्रह के साथ उठ खड़ा हुआ—"बिशू भाई!"

देबू का बिशू भाई—विश्वनाथ—न्यायरत्न का पोता था।

न्यायरत्न को अभी बोलने की फुरसत नहीं थी। उनके होठों के कोने में मन्त्र पढ़ने की फाँक में सिर्फ स्नेह की एक हँसी फूट आयी।...

दो

शिवकालीपुर अंचल में—पहले शिवकालीपुर में ही लगान-वृद्धि के विरुद्ध आन्दोलन की आग धधक उठी।

आग के जलते ही प्राकृतिक नियम से वायु के स्तर में प्रवाह जाग उठता है। यही नहीं, आग के आसपास की चीजों के अन्दर की दाहिका शक्ति आग का स्पर्श पाने के लिए जैसे उन्मुख हुई-सी काँपती रहती है। फूस के छप्पर में जब आग लगती है तो बगलवाले घर के छप्पर की फूस उत्ताप से स्त्री-पुष्प के गर्भकेशर की नाईं फूलकर खिल पड़ती है। आग के कण का स्पर्श न पाने के बावजूद उत्ताप को पीते-पीते वह छप्पर भी अचानक दप् से जल उठता है। आग जलती है, उस आग की लपट से आसपास के घरों में भी आग लग जाती है। उसी प्रकार शिवकालीपुर की हड़ताल की लपटें आसपास के सब गाँवों में फैल गयीं। कुछ ही रोज में इलाके के लगभग सभी गाँवों में वही रट शुरू हो गयी—"लगान-वृद्धि नहीं दे सकता, नहीं

दूँगा। यह बढ़ोतरी क्यों? किस लिए?" दूसरी ओर शिवकालीपुर का खेतिहर से जमींदार बना श्रीहरि घोष भी तैयार हो गया। वह पक्का मामलेबाज गुमाश्ता है–सदर के दीवानी कानून के बड़े वकील और प्यादा-लठैतों से लैस होकर उसने ऐलान किया, "मेरे पक्ष में कानून का सप्तसिन्धु लहराता हुआ प्रतीक्षा कर रहा है; रुपयों के जोर से समुद्र के पानी को खरीद लाकर मैं इस तुच्छ शिवकालीपुर को डुबा दूँगा। लगान-वृद्धि के मामले में मैं हाईकोर्ट तक लडूँगा।" आसपास के जमींदार भी आपस में सहानुभूतिशील हो उठे। उन लोगों ने श्रीहरि को भरोसा दिया।

रथयात्रा के दूसरे दिन।

जोरों की बारिश से वैहार पानी से भर गया। खेती का काम शुरू हुआ। रात रहते ही किसान खेतों में जा जुटे। चारों तरफ के गाँवों के बीचोंबीच खेतों में काम करते-करते ही आन्दोलन की चर्चा चल रही थी।

पानी-भरे खेत की मेड़ काटते-काटते थककर शिबू एक बार तम्बाकू पीने के लिए आ बैठा। चकमकी ठोंककर सोले की आग सुलगा चिलम भरते ही आस-पास के कई लोग आ गये। कुसुमपुर के रहम शेख ने ही पहले शुरू किया।

"चाचा, सुना तुम लोगों ने जिहाद बोल दिया?"

शिबूदास विज्ञ की तरह जरा हँसा–"कल न्यायरत्न के यहाँ हड़ताल का ही निश्चय किया गया।"

देबू ने सब कुछ समझा दिया। उसने बार-बार बाधा-विपत्ति, दुःख-कष्ट की बातें बतायीं, तो जरूर ही आएँगे। बीते सौ साल के अन्दर इसी पंचग्राम में जितनी हड़तालें हुईं, उनकी कहानियाँ कहकर बताया कि कितने किसान जमींदार के खिलाफ लड़ने में किस तरह बिलकुल तबाह हो गये। उसने साफ बताया, कानून जहाँ जमींदार के पक्ष में है, वहाँ लगान की बढ़ोतरी न देने को कहना गलत है, आईन के मुताबिक अन्याय है। रैयत और जमींदार के पैसों के जोर की बात तथा कानूनन अधिकार की याद दिलाते हुए प्रकारान्तर से उसने मना ही किया था।

सभी हतोत्साह हो गये थे। लेकिन न्यायरत्न का पोता बिशू वहाँ मौजूद था। उसने हँसकर कहा, "कानून भी बदलता है, देबू भाई! पहले सरकार के मुताबिक जमीन के मालिक जमींदार थे, प्रजा को सिर्फ जोतने-बोने का अधिकार था। जमीन बेचने के लिए जमींदार से खारिज-दाखिल कराकर हुक्म लेना पड़ता था। जमीन पर जो कीमती पेड़ होते थे, उनपर भी रैयत का हक नहीं होता था। लेकिन वह कानून बदल गया। लगान की बढ़ोतरी न देने की अपनी माँग को प्रजा अगर मजबूत और जोरदार बना सके, उसके लिए वाजिब दलील पेश कर सके, तो बढ़ोतरी कानून भी बदल जाएगा।"

इतना कहना था कि सबके मन में एक ही युक्ति फूलकर विन्ध्यपर्वत की नाईं शिखर उठाकर आकाश चूमती-सी हो उठी थी—"कहाँ से देंगे? देने से हमें बच क्या रहेगा? हम क्या खाकर जिएँगे? सरकार का ऐसा कानून न्यायसंगत कैसे हो सकता है?"

अन्धे और बूढ़े पण्डित केनाराम ने हँसकर कहा था, "लेकिन बिशू बाबू, भगवान की मार पड़े तो कौन बचा सकता है?"

बूढ़े के ऐसा कहने पर सारी सभा क्षोभ से भर गयी थी। जीव-जीवन की भौतिक प्रकृति के अनुसार एक व्यक्ति दूसरे को हटाकर शोषण करके अपने को ज्यादा ताकतवर बना लेता है। जो हारता है, शोषित होता है, वह हजारों दुःख-कष्ट झेलते हुए भी मरते-दम तक छुटकारा पाने की कोशिश से बाज नहीं आता। वैसी स्थिति में वह क्षोभ या मान नहीं करता। लेकिन उसके प्रतिकार के लिए वह जिस पर निर्भर करता है, वह भी आकर यदि शोषण करनेवाले की ही मदद करे, जी-जान से छुटकारा पाने की कोशिश के लिए कलेजे पर अपनी शक्ति का दबाव डाल दे, तो शोषितों का आखिरी सहारा होता है आँसू की दो बूँदों से भीगा हुआ हृदय का क्षोभ; केवल क्षोभ ही नहीं मान भी। लोगों में वही क्षोभ, वही अभिमान जाग उठा।

विशू ने उसपर कहा था, "भगवान अगर इन्साफ न करके मारना ही चाहे तो वैसे भगवान को बदलकर हम दूसरे भगवान की पूजा करेंगे।"

देवू सिहरकर बोल उठा था, "यह क्या कहते हो बिशू भाई! नहीं, तुम्हारे मुँह से ऐसी बात नहीं सोहाती।"

देवू ही नहीं, सारी सभा सिहर उठी थी। लेकिन बिशू ने हँसकर कहा था, "मैं गोकुल या गोलोक के मुरलीधर या चक्रधारी भगवान की बात नहीं कर रहा हूँ देवू भाई, वे जैसे हैं, रहें माथे पर। मैं उनकी कह रहा हूँ जो कानून बनाते हैं। जो कानून बनाते हैं वे अगर हम लोगों के दुःख का खयाल न करें तो अगली बार हम उन्हें वोट नहीं देंगे। वोट तो अपने ही हाथ हैं!"

इसी वक्त न्यायरत्न आकर विश्वनाथ को बुला ले गये थे। वे बगल के ही कमरे में थे और सब सुन रहे थे। बोले, "भई, विश्वनाथ को अभी दुनिया का अनुभव नहीं है। तुम लोग उसके कहे पर कान न दो। पाँच जने मिलकर अपना भला-बुरा सोचकर जैसा समझो करो!"

विश्वनाथ के चले जाने के बावजूद घोर तर्क-कोलाहल में आखिर उन सबके हृदय की निश्चल अभिलाषा की ही जीत हुई—लगान की बढ़ोतरी नहीं देंगे।

देबू ने कहा, "तो मुझे छुटकारा दो, मैं इसमें नहीं पड़ता।"

"क्यों?"

"मेरा खयाल है बढ़ोतरी नहीं देंगे यह कहना ठीक न होगा; जो वाजिब है,

उससे ज्यादा नहीं देंगे यही कहना ठीक है। इसके लिए हड़ताल करने की जरूरत पड़े तो मैं तैयार हूँ।"

"लेकिन बिशू बाबू ने जो यह कहा है कि नहीं देने का आन्दोलन करने से कानून पलट जाएगा?"

मुसकराकर देबू ने कहा, "न्यायरत्नजी ने कहा न कि बिशू को दुनिया का अनुभव नहीं है, मेरा भी वही खयाल है। बाल-बच्चेवाली घर-गिरस्ती है अपनी अगर हम शपथ खा बैठे कि बढ़ा हुआ लगान नहीं देंगे तो किसी की चुटकी-भर भी जगह-जमीन नहीं रह पाएगी। हाँ, यह हो सकता है कि उसके बाद कानून बदल जाए।"

जगन ने खड़े होकर कहा, "तुम्हारी यह बात तो डरपोक-जैसी हुई। सभी जब हड़ताल करेंगे तो जमीन खरीदेगा कौन?"

"कौन खरीदेगा?"—हँसते हुए देबू ने कंकना तथा आस-पास के बाबू-भैयों की याद दिला दी, जंक्शन के गद्दीवाले महाजनों की बात बता दी।

इस पर जगन भी चुप होकर बैठ गया।

आखिर सबने देबू की ही बात मानी। लेकिन साथ ही यह भी तय हुआ कि यह बात अन्दर की रही। पहले नहीं देने की ही कही जाएगी।

शिबूदास को उस बाहर-भीतर की बात का पता था, इसलिए वह विज्ञ की तरह जरा हँसा।

"हमारी तो कल जुम्मे की नमाज है। मसजिद में ही तय होगा।"

शिबू ने पूछा, "और दौलत शेख? शेखजी राजी हो गया?"

दौलत शेख चमड़े का व्यापारी था, धनी आदमी। बीते दिनों के अनुभव से दौलत शेख के बारे में शिबू को सन्देह था। उसके अपने गाँव में भी ठीक वही बात हुई। भले लोग हड़ताल में शामिल होने को तैयार नहीं हुए। उनमें से ज्यादातर लोगों ने निजी तौर पर मामला-मुकदमा करने की सोच ली। किसी-किसी ने आपसी तौर पर बढ़ोतरी दे दी या देने का निश्चय कर लिया। भले लोग चूँकि अपने से खेती नहीं करते, इसलिए इन लोगों ने जमींदार की शरण ली। बढ़ोतरी पहले ही दे देने के नाते इनका भद्रता और अनुगतता का दावा भी है। ये सबके सब नौकरी-पेशा, गरीब तथा भले गृहस्थ हैं।

रहम ने हँसकर कहा, "तेल और पानी कभी मिल सकते हैं, चाचा? शेख अलग से मुकदमा लड़ेगा। वह इन बातों में नहीं है।"

कुसुमपुर के पास ही है देखुड़िया! वहाँ का तिनकौड़ी बड़ा जाबिर आदमी है। अपने इसी जाबिरपने के कारण वह करीब-करीब तबाह हो चुका है। और अब दूसरे लोगों का खेत बटाईदारी में जोतता है। शिवकालीपुर में ही कंकना के एक बाबू का खेत जोतने आया था वह। बोला, "हमारे गाँव के साले लोग अभी भी गुजुर-गुजुर

कर रहे हैं। मैंने साफ कह दिया है, देना है सो दे, मैं नहीं देता।"

दूसरे ही क्षण वह हँसकर बोला, "कुल पाँच ही बीघा तो जमीन है। पाँच सौ बीघे जोते रहे, पाँच बीघा बच रहा है। जाए, वह पाँच बीघा भी जाए। उसके बाद बोरिया-बसना समेटकर एक दिन बम-बम करके चल दूँगा!"

रहम ने कहा, "तुम सब दाँव-पेंच से वास्ता नहीं रखते—भेड़ की तरह सींग मारना ही आता है! लड़ाई क्या सिर्फ बदन की ताकत से होती है? दाँव ही असल चीज है। अम्बुवाची के दिन उस बार इत्ते से जनाब अली ने तुम्हारे लगन ग्वाले को किस कदर देखते-ही-देखते दे मारा—देखा था?"

तिनकौड़ी बिगड़ उठा। वह तनकर खड़ा हो गया।

तिनकौड़ी अक्ल का जैसा गँवार है, शरीर से वैसा ही ताकतवर भी है। तिस पर नामी लठैत है वह। रहम के इस श्लेष से वह उखड़ गया। वजह भी थी उखड़ने की। देखुड़ियावालों से कुसुमपुर के आम मुसलमान किसानों की शारीरिक शक्ति की होड़ बहुत दिनों से चली आ रही है। देखुड़िया के बाशिन्दे ज्यादातर भल्लाबागदी हैं। इन भल्लाबागदियों की ताकत बंगाल में विख्यात है। तिनकौड़ी है तो सद्गोप मगर उन भल्लाबागदियों का नेतृत्व वही करता है। इलाके में उसके गाँव की ताकत उसका घमण्ड है। तिनकौड़ी के उस घमण्ड पर रहम ने चोट की। शिबूदास परेशान हो उठा, कहीं दोनों में ठन न जाए। अचानक बायीं तरफ देखकर उसे भरोसा-सा हुआ। बोला, "चुप रहो तिनकौड़ी, चौधरीजी आ रहे हैं।"

अपनी खेती की देख-भाल के लिए उधर से द्वारका चौधरी जा रहा था। सादे कपड़े से डबल किया हुआ छाता खोले हाथ में लाठी लिये इस बूढ़े आदमी को इलाके का हर आदमी दूर से पहचान लेता है। और फिर सभी लोग श्रद्धा और सम्मान देते हैं। दूर से ही उन्हें आते देख शिबू ने तिनकौड़ी से कहा, "चुप रहो, चौधरीजी आ रहे हैं।"

महज एक पीढ़ी पहले तक चौधरी जमींदार था, अब जमींदारी नहीं है। बहरहाल खेती-वारी का ही सहारा लिया है। वृत्ति के लिहाज से किसान ही कहना चाहिए उन्हें। फिर भी चौधरी लोग, खास कर यह बूढ़ा चौधरी आज तक साधारण से कुछ अलगाव रखकर ही चलता है। लोग भी उसे कुछ विशेष सम्मान की नजर से देखते हैं।

नजदीक आकर चौधरी ने अपनी आदत के मुताबिक मुसकराकर कहा, "क्यों भैया, मिल-जुलकर तम्बाकू पी रहे हैं सब?"

अपनी इज्जत बचाते चलने के लिए चौधरी इसी तरह सबकी इज्जत करते थे। 'आप' कहने से जवाब में दुनिया में 'तुम' कोई नहीं कह सकता। शिबूदास ने उठकर नमस्कार किया, "प्रणाम! तो अब चंगे हो गये आप?"

चौधरी ने कहा, "हाँ भैया, हो गया! पाप का भोग अभी बाकी है, चंगा हो

गया।" कुछ दिन पहले शिवकालीपुर के नये जमींदार श्रीहरि घोष की एक पेड़ काटने के बारे में देबू से लड़ाई हुई थी। देबू को दबाने की गरज से श्रीहरि उसके दादा का लगाया हुआ पेड़ काट डालना चाह रहा था। बेपरवा कुल्हाड़ी के सामने तनकर देबू ने बाधा दी। उस दंगे में दोनों पक्षों को रोकते हुए चौधरी श्रीहरि घोष के लठैत की लाठी से घायल होकर कई महीने बिस्तर पर लाचार पड़ा रहा। उस घटना पर सबने हाय-हाय की थी।

शिबूदास ने कहा, "कल की सभा के बारे में सुना?"

चौधरी ने हँसकर कहा, "सुना! जगन डॉक्टर मेरे पास गये थे।"

व्यग्र होकर शिबू ने पूछा, "क्या हुआ?"

चौधरी चुप रहा। जवाब देने की ख्वाहिश नहीं थी। इस प्रसंग को वह टाल जाना चाहता था।

लेकिन शिबू ने फिर टोका, "चौधरीजी?"

चौधरी ने हँसकर कहा, "मैं भैया बूढ़ा आदमी ठहरा—उस युग का! आज के ये रवैये न तो मैं समझता हूँ, न ही मुझे बरदाश्त हैं। मैं इन बातों में नहीं हूँ।"

सुनकर सभी अवाक् हो गये। कुछ क्षण अशोभन मौन के बीत जाने के बाद दूसरा प्रसंग छेड़ने के खयाल से चौधरी ने हँसकर कहा, "बारिश तो इस वार अच्छी है! शुरू में ही पड़नी शुरू हो गयी। अब अन्त तक निबह जाए तो खैर समझूँ।"

रहम शेख बोलने का कोई जरिया ढूँढ़ रहा था। वह मिल गया कि सलाम करके बोला, "सलाम चौधरी चाचा! अन्त तक नहीं निबहेगा, यह पक्की बात जानिए।"

"सलाम! अन्त तक नहीं निबहेगा, यह आप कैसे कह रहे हैं शेखजी?"

"पाप! पाप के लिए कह रहा हूँ! अल्लाह की दुनिया पाप से भर गयी। बड़ों के कदमों में सारी दुनिया के लोग कुत्ते की तरह दुम हिलाते हैं; पाप का कुछ बाकी भी रहा चौधरीजी?"

"बात तो सही है! लेकिन अमीर और गरीब बनाकर तो अल्लाह ही भेजते हैं। शेखजी!"

"सो भेजें। मगर अमीरों के पैर चाटने के लिए तो नहीं कहा अल्ला ने! मसलन अपनी ही लीजिए। कभी आप भी अमीर थे, जमींदार थे। छिरू कम्बख्त ऐसा भूल गया, जैसे उँगली केले का थम्भ हो गयी। उसके डर से आप दस की हड़ताल में साथ नहीं दे रहे हैं। इसपर भला अल्ला का रहम होगा कि अन्त तक निबहेगा?"

चौधरी फिर भी हँसा। लेकिन कोई जवाब नहीं दिया। जरा देर चुपचाप खड़ा रहने के बाद कतराकर बगल से चलते हुए बोला, "खैर, तो मैं चलता हूँ!"

धीरे-धीरे राह चलते हुए उसाँस लेकर चौधरी ने कहा, "हरि-नारायण, पार करो प्रभो!"

उसने यह कामना हृदय से की। यह सही है कि रहम के व्यंग्य ने उसे चोट पहुँचायी मगर वही एकमात्र कारण नहीं। पहले से ही वह जिन्दगी में एक अस्वच्छन्दता का अनुभव कर रहा है। वह अस्वच्छन्दता दिन-दिन जैसे और भी गहरी, और भी प्रबल होती जा रही है। वह अपने को वर्तमान से हरगिज नहीं मिला पा रहा है। तौर-तरीके, मति-गति, आचार-विचार सब बदल गया। उसके पुराने मकान-जैसा सब-कुछ मानो टूटने को तैयार है। मकान का चूना-बालू जिस तरह हर पल भुर-भुराकर झड़ता जा रहा है, वैसे ही पिछले दिनों का सारा कुछ झड़ता जा रहा है। लोग अब परकाल नहीं मानते, गो-ब्राह्मण में भक्ति नहीं रही, बड़े-बूढ़ों की इज्जत नहीं, राजा-जमींदार के प्रति श्रद्धा नहीं, अखाद्य खाने में भी हिचक नहीं। पुरोहित का बेटा साहबी फैशन से बाल बनवाकर चुटिया कटाकर क्या नहीं कर रहा है? कंकना के चटर्जी परिवार का वह लड़का चमड़े का व्यापार करता है। गाँव का कुम्हार भाग गया, लुहार ने कारबार उठा दिया, बजनिये ने ढाक बजाना छोड़ दिया, डोम अब बाँस और ताड़ के पत्ते की चीजें नहीं देता, नाई अब धान के बदले हजामत नहीं बनाता। तेल में मिलावट, घी में चरबी, नमक में से कभी-कभी हड्डी निकल आती है। सबसे बुरी बात यह है कि आदमी से आदमी का मेल नहीं रहा। आज हर आदमी आजाद है, हर आदमी प्रधान है; कोई किसी को नहीं मानना चाहता। रियाया की यह हड़ताल कोई नयी बात नहीं, पहले भी होती रही है, मगर इस बार उसकी जैसी शुरुआत है वह उससे कितनी भिन्न है! पहले जमींदार जुल्म करता था, गैरवाजिब दावा करता था तो हड़ताल होती थी। लेकिन जमींदारों की इस बार की जो माँग है लाख सोचकर भी चौधरी उसे गैरवाजिब कहकर एकबारगी नहीं उड़ा पाया। उसकी अक्ल के मुताबिक एक बढ़ोतरी का हक जमींदार का हो गया है। कानून के अनुसार बीस-बीस साल पर जमींदार को फसल की बढ़ी हुई कीमत के औसत से एक-एक बढ़ोतरी मिलनी चाहिए। अवश्य वह बढ़ोतरी एक हिसाब से होनी जरूरी है। माँग गैरवाजिब हो तो लोग यह जरूर कह सकते हैं कि जो उचित है, उससे ज्यादा नहीं देंगे। लेकिन यह एकदम ही न देने की बात किस धर्म-बुद्धि, किस विचार से कह रहे हैं लोग?

खुद से ही यह सवाल पूछकर चौधरी तुरन्त मन-ही-मन हँसा। धर्म-बुद्धि? उसके पुराने मकान की टूटे पलस्तर में से झाँकती ईंटोंवाली दीवारों के समान धर्मबुद्धि गायब होकर, लोगों में लोभ, भूख और स्वार्थ के ही दाँत प्रधान होकर निकल आये हैं। धर्म-बुद्धि? अगर इस खुदगर्जी और महज पेटपरायणता से पेट ही भरता होता, तो भी गनीमत थी! आज कितनों के घर रोटी चलती है? जमींदार का घर खाली हो गया, खेतिहरों के गोले तक धान नहीं पहुँचता; सारा धान कुछेक महाजनों के यहाँ जा पहुँचा है। छिरू पाल महाजनी करते-करते श्रीहरि घोष बन बैठा, जमींदार का गुमाश्ता बना और जमींदारी का हिस्सेदार हो गया। वह अब इस जमाने

को समझ नहीं पा रहा है। ऐसे समय समझ-बूझकर ही चलना चाहिए। हृदय से भगवान को याद करके चौधरी ने प्रार्थना की; "पार करो, प्रभो!"

चारों तरफ पानी ही पानी हो गया था और ऊँचे खेतों से नीचे खेतों में कल-कल करता हुआ उतर रहा था। आज भी आसमान में घटाएँ घिरी थीं। वीच-वीच में थोड़ा-बहुत पानी बरस जाता था। चौधरी सँभलकर फिसलन-भरी मेड़ पर से चला जा रहा था। अपने खेत पर खड़े होकर उसने देखा, बैलों की पीठ पर मार का मोटी रस्सी-सा निशान पड़ा है। चौधरी को यों सहज ही गुस्सा नहीं आता है। लेकिन बैलों की पीठ पर मार के निशान देखकर आज वह अचानक गुस्से से आग हो उठा। रहम शेख की बातों की जलन और जीवन से विरक्ति—निकलने की एक राह का मौका पाते ही आग की लपट-सी निकल पड़ी। चौधरी पानी-भरे खेत में उतर पड़ा और हलवाहे के हाथ का पैना छीनकर बोला, "देखेगा? देखेगा?"

हलवाहा अवाक् होकर बोला, "हाय राम! क्या है, मैंने किया क्या?"

"दोनों बैलों को इस तरह मारा है?"

चौधरी पैने को उठाये हुए था। किसी ने पीछे से आवाज दी—"हाँ हाँ, चौधरीजी!"

चौधरी ने पलटकर देखा, देवू घोष। साथ में बाईस-तेईस साल का एक युवक। शरमाकर चौधरी ने पैने को फेंक दिया। बोला, "जरा देखो तो भैया, बैलों को किस वेरहमी से मारा है। बेबोल जीव, भगवती हैं ये!"

वह भद्र युवक हँसकर बोला, "लेकिन उस आदमी का बैल से खास कोई अन्तर नहीं है, चौधरीजी! अन्तर है तो सिर्फ इतना ही कि वह बेबोल नहीं है, भगवती नहीं है।"

चौधरी और भी शर्मिन्दा होकर बोला, "सही कहते हैं! सच ही बड़ी गलती होती मुझसे! मगर आपको तो मैं पहचान नहीं सका?"

देवू ने कहा, "महाग्राम के न्यायरत्न के पोते हैं।"

चौधरी ने झट कींदो-किचकिच मेड़ पर ही सर टेककर प्रणाम किया। बोले, "अरे बाप रे बाप!—आज महाभाग्य अपना, आपके ही पुण्य से आज मैं एक महा अन्याय करते-करते बच गया।"

विश्वनाथ कई डग पीछे हट गया। हटकर बोला, "न-न, यह क्या कर रहे हैं आप!"

चौधरी ने अचरज से कहा, "क्यों?"

"आप मेरे दादा की उम्र के हैं! आपके इस तरह से प्रणाम करने से न केवल शर्म आती है बल्कि अपराध भी लगता है।"

"आप ऐसी बात कह रहे हैं?"

"जी हाँ, मैं!—" कहकर विश्वनाथ ने चौधरी को प्रतिनमस्कार किया।

आश्चर्य से चौधरी की बोलती बन्द हो गयी थी। इस इलाके में महागुरु-जैसे पूजे जानेवाले न्यायरत्न के पोते के मुँह से ऐसी बात! कुछ दिन पहले शिवकालीपुर में यतीन बाबू नजरबन्द थे। वे भी ब्राह्मण थे। उन्होंने भी ठीक यही बात कही थी। लेकिन चौधरी उस रोज इस तरह से चकित नही हुआ था, उसके भीतर के संस्कार को इतने दिनों तक ठेस नहीं लगी थी। उस रोज उसने अपने-आपको दिलासा दिया था—यतीन बाबू कलकत्ते के हैं। उनमें म्लेच्छ का स्वभाव अचरज की बात नहीं। लेकिन न्यायरत्न के पोते, जो इस इलाके के भावी महागुरु हैं, अगर वे स्वयं इस तरह से समाज की बागडोर छोड़ दें तो गति क्या होगी समाज की?"

देबू ने आगे आकर कहा, "कल आपके यहाँ आएँगे, चौधरीजी!"

"ऐं?"—चौंककर चौधरी ने पूछा।

"कल हम लोग आपके यहाँ आएँगे!"

"वह अपना सौभाग्य होगा। मगर किस लिए? हड़ताल के बारे में?"

"जी हां!"

"मैं हड़ताल-वड़ताल में नहीं पड़ता भैया! मुझे माफ करो!"—इतना कहकर उसने चलना शुरू कर दिया।

देबू ने पीछे से पुकारा—"चौधरीजी!"

बढ़ते-बढ़ते हाथ हिलाकर चौधरी ने कहा, "नहीं भैया!"

विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "चलो, फिर देखा जाएगा। उनका प्रणाम जो नहीं लिया सो वे बिगड़ उठे हैं।"

देबू ने कहा, "बताओ भला वह बात बोलकर ही तुम्हें क्या लाभ हुआ? और उनका प्रणाम भी क्यों न स्वीकार करोगे? तुम ब्राह्मण हो!"

"मैंने जनेऊ को फेंक दिया है, देबू!"

"जनेऊ फेंक दिया है?"

"फेंक ही दिया है समझो! बक्से में रखता हूँ। जब घर आता हूँ तो निकाल कर पहन लेता हूँ। दादाजी को ठेस नहीं लगाना चाहता।"

"लेकिन यह तो धोखा देना है! छिः!"

विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "वह चर्चा फिर होगी। अभी चलो।"

"नहीं!"—देबू ने दृढ़ता के साथ कहा, "पहले तुमसे इसी बात की मीमांसा हो ले। उसके बाद ही दोनों एक साथ क़दम बढ़ाएँगे। या तो तुम्हीं इस हड़ताल का जिम्मा लो, मैं अलग हट जाता हूँ, या फिर तुम्हीं हट जाओ!"

"यह बात तुम्हीं सोच देखो। तुम जो कहोगे मैं वही करूँगा।" विश्वनाथ अब भी हँस रहा था।

देबू विश्वनाथ की तरफ ताकता हुआ खड़ा रहा, कोई जवाब न दे सका। ऐन वक्त पर उनके पास आकर खड़ा हो गया रहम शेख—"आदाब, देबू बाबू!"

चिन्तित चेहरे से जरा सूखी-सी हँसी हँसकर देबू *ने कहा, "आदाब चाचा!"*

रहम ने कहा, "हल छोड़कर आ नहीं पा रहा था और तुम लोगों ने अच्छा गजर-बजर लगा दिया! खैर, हमारी बस्ती में चल रहे हो?"

"जाऊँगा, चाचा! आज ही जाऊँगा!"

"हाँ, जाना! कल शुक्रवार है, जुम्मा की नमाज। मसजिद में ही सब तय-तमाम हो जाएगा। तुम बल्कि आज ही शाम को आ जाओ। भूलना मत!"

"अच्छा!"—देबू जरा हँसा।

"और हाँ, सुन लो! वह जो न्यायरत्न का पोता है न, उसे मत ले जाना! हम लोगों का तासिर मियाँ—तासिर मियाँ को जानते हो न, कलकत्ते के कॉलेज में पढ़ता है? वह कह रहा था—ठाकुर का पोता स्वदेशी का हिमायती है। इसके सिवा हमारा इरशाद मौलवी कह रहा था—वे बिरहमन ठाकुर हैं। उनको तुम लोग मान सकते हो, हम क्यों मानें?"

"नहीं, नहीं, तुम्हें मालूम नहीं है रहम चाचा, अपना बिशू भाई वैसा नहीं है।"—देबू बड़ा अप्रतिभ हो पड़ा।

रहम बड़ा जबरदस्त रूखा बोलनेवाला है। अन्दाज से बिशू को पहचानकर ही उसने वह बात कही थी। अबकी वह हँसकर बोला, "ओ, शायद तुम ही उनके पोते हो?"

हँसकर विशू बोला, "हाँ!"

"तुम मत जाना ठाकुर, मत जाना!"—कहकर वह अपने खेत की तरफ लौटा।

विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "फैसला हो गया देबू भाई! मैं चला!"

देबू कातर होकर विश्वनाथ की ओर ताकने लगा।

विश्वनाथ ने मुसकराते हुए कहा, "जरूरत पड़ने पर खबर देना, मैं तुरन्त आ जाऊँगा।"

रिमझिम बारिश शुरू हो गयी। उसी बारिश में दोनों एक-दूसरे से थोड़े ही फासले में ओझल हो गये।

रहम ने कटु सत्य को जाहिर करके मन की खुशी से हल जोतते हुए गाना शुरू कर दिया—

> हसन हुसैन यहाँ दो भाई, इस माटी पर जनमे,
> हुआ न उनके जैसा बन्दा, खास खुदा का कोई...

तीन

महूग्राम या महाग्राम कभी बड़ा सम्पन्न गाँव था। ईंट और माटी के बहुतेरे खण्डहर गाँव की प्राचीनता और खुशहाली के प्रमाणस्वरूप आज भी दिखाई देते हैं। आकार में गाँव आज भी बहुत बड़ा है, पर उसकी आबादी इधर-उधर बिखरी हुई है। बीच-बीच में बीस-पचीस, यहाँ तक कि पचास-साठ तक घर बसने लायक खाली जगह पड़ी हुई है। वह परती खजूर, बेर, सिहोड़, अकवन आदि की जंगल-झाड़ी से भर गयी है। यह परती कभी आबादी-भरा टोला थी। आबादी नहीं रही, मगर दो-चार टोलों का नाम अभी भी जिन्दा है। जुलाहा और धोबी टोला में एक भी घर नहीं; पाल टोले में दो घर कुम्हारों के रह गये हैं। खाँ के टोले में एक समय खाँ उपाधि वाले हिन्दू रेशम की दलाली करके धनी बने थे। रेशम के कारोबार के ठप पड़ते ही उनकी दौलत गयी, खाँ लोग भी नहीं रहे; उनके पक्के मकानों की टूटी बुनियादों का चिह्न ही केवल रह गया है। खाँ के टोले को पार करके विश्वनाथ अपने घर पहुँचा।

न्यायरत्न—शिवशेखरेश्वर न्यायरत्न—इस इलाके के बड़े ही मान्य व्यक्ति हैं। महामहोपाध्याय पण्डित। यह खानदान बहुत दिनों से पाण्डित्य और निष्ठा के लिए मशहूर है। देश-देशान्तर से उनके टोले में छात्र आया करते थे। टोल अभी भी हैं, न्यायरत्न-जैसे महामहोपाध्याय गुरु भी हैं, लेकिन आजकल विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम है। घर के पहले ही नारायणशिला का जो कच्चा घर है, उसी के सामने अठचलिये में टोल चलता है। एक तरफ एक लम्बे घर में छात्रों के रहने का इन्तजाम। घर बहुत बड़ा, देखने में सुन्दर और मनोरम न होते हुए भी रहने की कोई असुविधा वहाँ नहीं है। पिछले दिनों इसमें बीस छात्र तक रहते थे। आजकल सिर्फ दो हैं। विश्वनाथ जब उस अठचलिये में पहुँचा तो उन लोगों में से भी कोई नहीं था। न्यायरत्न ने उन दोनों को ही खेती की निगरानी के लिए भेज दिया था। केवल एक कुत्ता न्यायरत्न के बैठने की चौकी पर पोटली बना बैटा बरसात में बड़े आनन्द का उपभोग कर रहा था। यह देखकर विश्वनाथ बड़ा बिगड़ गया। दादाजी पर उसे बड़ी भक्ति थी, और उस दादाजी की कुरसी पर आकर बैठा है एक रोआँ-झड़ा हुआ कुत्ता! इधर-उधर देखा। कुछ न मिला तो हाथ का छाता सँभालकर ही पीछे की ओर से उसकी तरफ बढ़ा। ठीक इसी वक्त अन्दर घर के दरवाजे पर न्यायरत्न की आवाज सुनाई पड़ी—"भो भो राजन् आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः!"

मुँह घुमाकर दादाजी की तरफ देखते हुए विश्वनाथ ने कहा, "यह कमबख्त अगर आपका कृष्णसार आश्रममृग हो तो मैं ऋषिवाक्य को भी न मानूँगा। कमीना कुत्ता!"

हँसकर न्यायरत्न ने कहा, "वह मेरा कंगालीचरण है।"

अपना नाम सुनकर कंगाली ने मुँह उठाया। छत्रपाणि विश्वनाथ को देखकर भी उसने हिलने का नाम न लिया, सूखी लाठी-सी दुम को हिला-हिलाकर चौकी पर पट-पट आवाज करने लगा। न्यायरत्न उसकी तरफ बढ़े तो वह चित हो गया और अपनी चारों टाँगें ऊपर को उठा दीं। अबकी विश्वनाथ से हँसे बिना न रहा गया। न्यायरत्न हँसकर बोले, "एक ही चोट में तो मर जाता—इस ढंग से छाता उठाया था तुमने!"

विश्वनाथ ने मारने के लिए उठाये हुए छाते को उतारकर कहा, "छाता माथा बचाने के लिए है, दादाजी! इसकी सीकें और डण्डा कितने ही मजबूत क्यों न हों, उनसे सिर नहीं तोड़ा जा सकता। इससे उसका सिर नहीं टूटता, मुझे एक छाता जमाना ही चाहिए था। खैर—यह कमबख्त एकाएक आपके पास आया कहाँ से? क्या तो नाम बताया आपने?"

"मैंने उसका नाम कंगालीचरण रखा है। कहाँ से आया और कैसे आया, यह परिचय उसके नाम से ही जुड़ा है। मगर इस बदली में तुम गये कहाँ थे?"

"गया था देबू के साथ बताता हूँ! जरा कुरता-बनियान उतार आऊँ।"

विश्वनाथ अन्दर चला गया।

देबू का नाम सुनते ही न्यायरत्न का चेहरा जरा गम्भीर हो उठा, लेकिन एक पल के ही लिए। दूसरे ही क्षण वे स्वाभाविक प्रसन्न मुद्रा से अन्दर चले गये।

अन्दर जाते ही उन्हें नारी-कण्ठ सुनाई पड़ा, "पूछो मत, इस बुढ़िया से तो मेरी नाक में दम आ गया है। कान की बहरी, बकझक भी करो तो सुनती नहीं। एक बार कपड़े ले जाती है तो पन्द्रह दिन से पहले देने का नाम नहीं। जवाब देते भी माया होती है।"

बिशू ने कहा, "तो क्या इसीलिए ऐसे गन्दे कपड़े पहने रहोगी? छिः!"

"ठीक ही कहते हो। लोगों के सामने आने में शर्म लगती है।"

न्यायरत्न हँसते हुए आकर बोले—

"सरसिजमनुबिदं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

सखि शकुन्तले, मधुराणां आकृतीनां मण्डनं किमिव न! तुम्हारे सुन्दर शरीर पर यह मैला कपड़ा ही अनोखा शोभन हो उठा है। तुम्हारे दुष्यन्त उसी से मुग्ध हुए हैं।"

विश्वनाथ अपनी स्त्री से बात कर रहा था। सुन्दर-से बच्चे को गोदी में लिये तरुणी स्त्री रसोई के बरामदे पर खड़ी थी। वह भी शरमाकर जल्दी-जल्दी रसोई में चली गयी। विश्वनाथ भी हँसते-हँसते बाहर चला गया।

सूने आँगन में खड़े-खड़े न्यायरत्न फिर गम्भीर हो उठे। लेकिन लड़खड़ाते-लड़खड़ाते नन्हा मुन्हा बाहर आया। खूबसूरत बच्चा! अंग-अंग से एक मनोरम लावण्य टपक पड़ता हो मानो। साल-भर का होगा। उसने आकर कहा, "दा जी!"

दा जी यानी दादाजी।

न्यायरत्न ने पोते से भाई का नाता जोड़ा था। उस नाते परपोते का बाबा, बापी कहते थे।

बच्चे ने फिर कहा, "दा जी!"

लमहे में न्यायरत्न का चेहरा हँसी से भर गया। उन्होंने बाँहें फैलाकर मुन्ने को अपनी गोदी में उठा लिया। कहा, "बापी!"

"फिल दाओ फिल!"—मतलब कि फिर से गाओ। न्यायरत्न के श्लोक पढ़ने में जो एक सुर होता है, बच्चे ने सुनते-सुनते उसके माधुर्य को पहचान लिया था। एक बार सुनकर उसे तृप्ति नहीं हुई, इसीलिए उसने कहा, "फिल दाओ।" न्यायरत्न ने बच्चे के आग्रह को टाला नहीं, फिर से श्लोक को पढ़ा। बच्चे का नाम है अजय। अजय ने फिर कहा—"फिल दाओ।"

उन्होंने बच्चे को छाती से कस लिया। आनन्द से उनकी आँखों में आँसू भर आये। उन्हें लगा—यह वही है! खोया हुआ धन लौट आया है।

न्यायरत्न का खोया हुआ—उनका इकलौता बेटा शशिशेखर, विश्वनाथ का बाप। सुडौल सुन्दर कान्तिमान शशिशेखर ऐसे ही प्रखर बुद्धि के थे। उम्र के साथ-साथ दर्शनशास्त्र में उन्होंने गहरी विद्वत्ता प्राप्त की थी। न केवल हिन्दूदर्शन बल्कि बौद्ध-दर्शन—यहाँ तक कि पिताजी से छिपाकर अँगरेजी सीखी और पाश्चात्य दर्शन की भी जानकारी प्राप्त की। लेकिन यही उनके सर्वनाश का कारण हुआ।

उस समय शिवशेखरेश्वर न्यायरत्न आदमी ही दूसरे थे। पुराने युग और सनातन धर्म की रक्षा के लिए महाकाल के तपोवन के पहरेदार शूलधारी नन्दी की नाई सदा त्योरी चढ़ाये और तर्जनी उठाये ही रहते थे। इस नाते वे म्लेच्छ भाषा और विद्या के विरोधी थे। शशिशेखर ने भी अपने अँगरेजी सीखने की बात उनसे छिपा रखी थी। लेकिन एक दिन अकस्मात् कलई खुल गयी। उस समय जिलाधिकारी एक अँगरेज थे। भले आदमी थे तो आई.सी.एस. अफसर, लेकिन राजनीति के बजाय विद्या-अनुशीलन से ही उन्हें ज्यादा अनुराग था। अपने देश के विश्वविद्यालय के वे दर्शन के कृती छात्र थे। भारत आने के बाद वे भारतीय दर्शन की ओर आकृष्ट हुए थे। इस जिले में आये तो उन्होंने महामहोपाध्याय शिवशेखर न्यायरत्न का नाम सुना और एक दिन खुद उनके टोले में आ पहुँचे। साहब के साथ जिला स्कूल के हेडमास्टर थे। दुभाषिये का काम करने के लिए साहब हेडमास्टर

को साथ लेते आये थे। शशिशेखर उसी समय नवद्वीप से दर्शन पढ़कर अपने घर लौटे थे। न्यायरत्न ने साहब के आगत-स्वागत में कोई कमी न रखी। बल्कि शशिशेखर को तो स्वागत की अति अच्छी भी न लगी। मगर वे चुप ही रहे। साहब भी जरा सकुचा-से गये थे। हेडमास्टर साहब बोले, "आप परेशान न हों न्यायरत्नजी, साहब आपके यहाँ जिलाधिकारी की हैसियत से नहीं आये हैं; ये आये हैं आपसे परिचय-बात करने।"

न्यायरत्न ने हँसकर कहा, "परिचय की भूमिका ही स्वागत है। और यह मेरा आतिथ्य धर्म है। राजा के दरबार में जैसा सम्मान पण्डितों को मिलता है पण्डित के यहाँ भी वैसा ही सम्मान राजा या राजपुरुष का होना चाहिए। यह मेरा कर्तव्य है।"

इसके बाद बातचीत शुरू हुई। अन्त में साहब ने खड़े होकर हँसते हुए अँगरेजी में हेडमास्टर से जाने क्या कहा। हेडमास्टर से न्यायरत्न को उसका अनुवाद सुनाये बिना न रहा गया। बोले, "साहब क्या कह रहे हैं मालूम है।"

न्यायरत्न ने कोई आग्रह नहीं दिखाया। सिर्फ मुसकराये।

हेडमास्टर ने कहा, "ग्रीक वीर सिकन्दर ने हमारे यहाँ के एक योगी को देखकर कहा था—मैं अगर सिकन्दर न होता तो भारत का योगी होने की कामना करता। साहब भी ठीक वही बात कह रहे हैं। कह रहे हैं—विलायत में पैदा नहीं हुआ होता, तो मैं शिवशेखरेश्वर-जैसा होकर भारत में जन्म लेने की कामना करता।"

न्यायरत्न ने हँसते हुए कहा, "मेरा जन्म ऐसे ब्राह्मण कुल में न भी हुआ होता तो भी मैं इसी देश में कीड़ा-पतिंगा होकर पैदा होने की कामना करता, और कहीं जन्म लेने की चाह नहीं करता।"

न्यायरत्न की बात का मतलब सुनकर साहब ने हँसते हुए हेडमास्टर से अँगरेजी में कहा, "हीन भावना का यह एक अजीब रूप है! यह मानो भारतीयों के स्वभाव में है।"

हेडमास्टर का चेहरा सुर्ख हो उठा, लेकिन साहब की बात का विरोध करने की उन्हें हिम्मत नहीं हुई। न्यायरत्न ने अँगरेजी नहीं समझी, पर बोलनेवाले के हँसने के ढंग और बात की लय से उन्होंने व्यंग्य के श्लेष का अनुभव किया। फिर भी वे चुप बैठे रहे। लेकिन शशिशेखर दृढ़ स्वर में जरा तीखेपन से अँगरेजी में ही बोल उठे, "नहीं, यह हीन भावना नहीं है। यह उसके और भारतीय मनीषियों के अन्तर का विश्वास है। आपकी पश्चिमी विद्या मन के सिवा और कुछ को नहीं समझती—विश्वास नहीं करती। हम मन की सीमा से परे अन्तर और आत्मा को मानते हैं। मन और चित्त को जीतकर आत्मा को पाने की साधना ही हमारी साधना है। हमारी आत्मा को मन नहीं चलाता है, मन को आत्मा के इशारे पर वाहन की तरह चलना पड़ता है। इसलिए आप लोगों के मनोविश्लेषण से भारत के साधक मनीषियों के कॉम्प्लेक्स का विचार मूढ़ता के सिवा और कुछ नहीं।"

साहब तारीफ-भरी निगाहों से शशि की तरफ ताकने लगे। हेडमास्टर डर गये। राजपुरुष की प्रशंसा की दृष्टि का भी उन्हें भरोसा नहीं। न्यायरत्न अचम्भे में आकर बेटे को देखने लगे—आखिर शशि म्लेच्छ भाषा में बोल गया! शशि के होठ पर म्लेच्छ भाषा!

इसी पर पिता-पुत्र में विवाद हो गया।

न्यायरत्न कालधर्म को शिव के तपोवन के ऋतुचक्र के आवर्तन की नाईं दूर रखते हुए सनातन महाकाल धर्म को जकड़े रहना चाहते थे। लेकिन उन्होंने अचानक ही यह देखा कि जाने कब किस घड़ी अकाल बसन्त की नाईं कालधर्म नें गड़बड़ी पैदा कर दी है। खुद उन्हीं के यहाँ शशि के माध्यम से म्लेच्छ भावधारा सदा से चले आते हुए महाकाल धर्म को आघात करने पर आमादा है! और दूसरी ओर शशिशेखर एकाएक इस तरह से खुल जाने के कारण बेझिझक होकर आत्मविश्वास के साथ अपनी संस्कृति के अनुसार चलने को कमर कसे तैयार हो गये।

परिणाम बड़ा भयंकर हुआ। न्यायरत्न शूलपाणि नन्दी की तरह कठिन और कठोर हो गये। अपनी जीविका स्वयं ही कमाने के लिए शशिशेखर ने घर छोड़ दिया। न्यायरत्न ने रोका नहीं। लेकिन खानदान को कायम रखने के लिए बेटा-पतोहू को नहीं ले जाने दिया। उन्होंने संकल्प किया कि शशि ने संस्कृति की जिस धारा को ठेस पहुँचायी है, अपने पोते को वे सब प्रकार से उसका संस्कार करने योग्य बनाएँगे। इस घटना की चरम परिणति साल-भर बाद घटी। पण्डितों की एक सभा में शास्त्रविचार के सिलसिले में बाप-बेटे में खुला विरोध आरम्भ हो गया। शशिशेखर की वे दमकती आँखें, काँपते होठ और प्रतिभा का स्फुरण न्यायरत्न की नजरो में आज भी तैर जाता है। आँखें गीली हो जाती हैं।

सभा खत्म हुई तो बाप ने बेटे से कहा, "आज से मैं यह समझूँगा कि मैं पुत्रहीन हूँ। जो सनातन धर्म पर चोट पहुँचाने की कोशिश करता है वह धर्महीन है। धर्महीन बेटे की मौत से बढ़कर दूसरी कोई मंगल-कामना मैं नहीं करता।"

शशि की आँखें लहक उठीं। बोले, "इसी से क्या आपके सनातनधर्म की रक्षा होगी?"

"होगी!"

न्यायरत्न उसी रोज पुत्रहीन हो गये। शशिशेखर ने आत्महत्या कर ली।

भौचक्के-से होकर न्यायरत्न कुछ समय के लिए मानो सुध-बुध खो बैठे। मदन को जलाकर महाकाल के गायब हो जाने के बाद जैसी दशा नन्दी की हुई थी—न्यायरत्न की भी ठीक वैसी ही दशा हुई। उसके वाद एक दिन अचानक उन्होंने महाकाल का आविष्कार किया—ठीक नन्दी के गिरिभवन पथ पर वरवेशी महाकाल के आविष्कार करने जैसा ही! मानो उन्होंने काल की परिवर्तनशीलता को महाकाल की लीला के रूप में प्रत्यक्ष किया। उस लीला में सती के पति महाकाल गौरी के

पति हैं। लेकिन वहीं क्या उनकी लीला का अन्त हुआ है? न्यायरत्न कभी यही विश्वास करते थे। लेकिन आज उन्होंने यह अनुभव किया कि सती गौरीरूपी महाशक्ति ने कितने नये रूपों से महाकाल का वरण किया है, लेकिन उस लीला को प्रत्यक्ष कर सकने-जेसी दिव्यदृष्टिवाले व्यासदेव ने प्रकट होकर फिर नये पुराण की रचना नहीं की।

पढ़ने की उम्र होते ही उन्होंने विश्वनाथ से पूछा था, "भैया को कहाँ पढ़ने का मन है? मेरे पास कि कंकना के स्कूल में?"

छह-सात साल के विश्वनाथ ने कहा, "घर में तुम्हारे पास पढ़ूँगा, दादा! और खा-पीकर स्कूल जाऊँगा।"

न्यायरत्न ने वही इन्तजाम किया।...वही विश्वनाथ आज एम.ए. में पढ़ रहा है। न्यायरत्न की स्त्री चल वसी, पतोहू—विश्वनाथ की माँ भी नहीं रही। न्यायरत्न ने विश्वनाथ का व्याह करके गिरस्ती वसायी। और, कालधर्म को प्रणाम करके मुग्ध द्रष्टा की नाई उसके कदमों की तरफ देख रहे हैं।

लेकिन तो भी आज दो-दो वार उनका चेहरा गम्भीर हो उठा, भव सिकुड़ीं। विश्वनाथ यह कर क्या रहा है? यहाँ के इन घरेलू मामलों में अपने को क्यों उलझा रहा है? इस चिन्ता से छुटकारा पाने के लिए ही वे कमरे में जाकर पोथी लिये बैठ गये।

सारी दोपहरी वे सोचते रहे, लेकिन निश्चिन्त और निर्विकार न हो सके। तीसरे पहर पोते के कमरे के सामने जाकर आवाज दी "बिशू!"

अन्दर से नन्हे अजय ने आवाज दिया, "दा जी! दोदी...उवाँ!" यानी गोदी चढ़ाकर बाहर ले चलो—यहाँ!

हँसते हुए न्यायरत्न अन्दर गये। देखा विश्वनाथ नहीं है। अजय को उन्होंने गोदी में उठा लिया। पोते की बहू से पूछा, "राज्ञि शकुन्तले! राजा दुष्यन्त कहाँ गये?"

हँसकर घूँघट को जरा और खींचती हुई जया ने कहा, "क्या पता कहाँ गये!"

अजय को बुलाकर न्यायरत्न ने एक लम्बी उसाँस ली। कहा, "शकुन्तले, पहचान की अंगूठी को जतन से बचाना देवी!" और इतना कहकर अजय को उसकी गोद में देकर वे वहाँ से निकल आये।

नाट्य-मन्दिर के उस ओर से उन्होंने पुकारा, "विश्वनाथ!"

विश्वनाथ नाट्य-मन्दिर में ही था। नाम लेकर पुकारने से वह चौंका। दादाजी उसे भैया या बिशू कहकर पुकारा करते हैं या फिर संस्कृत काव्य-नाटकों के नायकों के रूप में—कभी राजन्, कभी राजा, कभी दुष्यन्त, कभी अग्निमित्र आदि—जब जैसा

उन्हें जंचे। विश्वनाथ कहकर दादाजी ने कभी उसे पुकारा हो, याद नहीं आता। चौंककर उसने अदव के साथ कहा, "जी! मुझे बुला रहे हैं?"

न्यायरत्न वोले, "हाँ, वहुत व्यस्त हो क्या?"

आज न्यायरत्न एकाएक विचलित हो पड़े थे! शशिशेखर के आत्महत्या कर लेने के बाद से वे निरासक्त रहने की कोशिश करते आये हैं। पत्नी की जुदाई पर आँखों से एक बूँद भी आँसू नहीं बहाया, यहाँ तक कि मन के किसी छिपे कोने में भी अपने जानते तिल-भर पीड़ा को जगह उन्होंने नहीं दी। उसके बाद पतोहू चल वसी। उस दिन भी उन्होंने अविचल रहकर ही अपना कर्तव्य किया था। किन्तु आज एकाएक चंचल हो उठे। यहाँ रैयतों में हड़ताल का आन्दोलन हो रहा है—यह खबर उसे कलकत्ते में रहते हुए कैसे मिली? साफ जाहिर है कि वह रथयात्रा के मौके पर तो आया है, मगर उसके आने का मुख्य उद्देश्य यह आन्दोलन है। देश-काल के वारे में वे अनजान नहीं हैं, राजनीतिक आन्दोलनों की जानकारी उन्हें रहती है; देश का क्रान्तिकारी आन्दोलन किस प्रकार से धीरे-धीरे जनसाधारण के बीच फैल रहा है, उन्होंने यह गौर किया है। इसलिए देबू घोष से उसका संग-साथ देखकर वे परेशान हो उठे हैं। अकस्मात् उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि उनकी इतने दिनों की निरासक्ति का मुखौटा मानो खुलकर गिर गया। अन्दर-ही-अन्दर जाने कव आसक्ति के नये चमड़े ने उगकर निरासक्ति के आवरण को पुराना और जर्जर कर दिया है।

न्यायरत्न कुछ देर तक पोते के मुँह की ओर ताकते रहे। उसके बाद धीरे-धीरे पूछा, "टेढ़ी वात कहने से कोई लाभ नहीं भैया, मैं सीधी—साफ बात ही कहना चाहता हूँ। रैयतों की इस हड़ताल से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? देबू घोष के हंगामे की तुम्हें खबर ही किसने दी?"

विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "आजकल तो टेलीग्राफ की कल को यहाँ दवाइए, हजारों मील दूर की वह सब कुछ तुरन्त बताने लगती है। और कलकत्ते के अखबारों में दोनों शाम खबरें छपती हैं। इसके सिवा आप तो जानते ही हैं कि देबू मेरा सहपाठी है।"

"मैंने तो कह ही दिया विश्वनाथ कि सीधी बात कह रहा हूँ। जवाब में तुम्हें भी सीधा ही कहने का अनुरोध कर रहा हूँ। और मेरा खयाल है, कम-से-कम मेरे सामने तुम सत्य को छिपाते नहीं हो।"

न्यायरत्न का स्वर हार्दिकता से गहरा और गम्भीर हो रहा था। विश्वनाथ ने दादाजी की ओर निहारा। देखा, उनका चेहरा तमतमा रहा है। बहुत पहले न्यायरत्न का यह चेहरा देखने से इलाके के लोग भीतर ही भीतर काँप उठते थे। उनके विद्रोही बेटे शशिशेखर तक उनकी ऐसी मूरत के सामने नजर मिलाकर बात नहीं कर सकते थे। उन्होंने पिता से बगावत की, तर्क किया, लेकिन सिर झुकाकर माटी की तरफ

ताकते हुए। उस चेहरे की ओर देखकर विश्वनाथ एक क्षण के लिए हक्का-बक्का हो गया। न्यायरत्न फिर बोले, "मेरी बात का जवाब दो भाई!"

विश्वनाथ ने धीमे से हँसकर कहा, "आपके सामने मैंने कभी झूठ नहीं कहा। झूठ कहूँगा भी नहीं। यहाँ यानी, शिवकालीपुर में एक राजबन्दी था, मालूम है? जिसे कई दिन पहले यहाँ से हटा दिया गया है? यह खबर उसी ने दी थी।"

"उससे तुम्हारी जान-पहचान है?"

"है।"

"तो"—एकटक पोते की ओर जरा देर तक ताकते रहकर न्यायरत्न ने कहा, "मतलब यह कि तुम लोग एक ही दल के हो?"

"कभी था। अब हमने अलग मत, अलग पथ अपनाया है।"

न्यायरत्न देर तक चुप रहे, फिर बोले, "तुम लोगों का मत, तुम लोगों का पथ कौन-सा है, मुझे समझा सकते हो विश्वनाथ?"

उनकी ओर देखते हुए विश्वनाथ ने कहा, "मेरी बात से आपको तकलीफ हुई दादाजी?"

"तकलीफ?"—न्यायरत्न जरा हँसे। फिर बोले, "दुःख-सुख से परे होना सहज साधना का काम नहीं है भाई! तकलीफ कुछ जरूर हुई!"

"आपको तकलीफ हुई दादाजी, मगर मैंने तो कोई अन्याय नहीं किया है! दुनिया में जो लोग खा-पीकर, सोकर जिन्दगी गुजार देते हैं, मैं उन जैसा नहीं होना चाहता, इसके लिए आपको तकलीफ है?"

"दुःख नहीं पाऊँगा, सुख का अनुभव नहीं करूँगा—मैंने यही संकल्प तो शशि के मर जाने के बाद किया था विश्वनाथ! लेकिन तुम्हारा ब्याह करके जया को जिस दिन अपने घर ले आया, आज लगता है, उसी दिन छुटपन की नाईं चुराकर आनन्द का रस पिया था। उसके बाद आया—अज्जो—अजय। आज देख रहा हूँ कि शशि के मरने के दिन का मेरा वह संकल्प टूटकर चूर-चूर हो गया है। आज मुझे जया और अजय के दुःख के लिए चिन्ता और दुःख की सीमा जो नहीं है।"

विश्वनाथ चुप रहा।

न्यायरत्न भी जरा चुप रहे। उसके बाद बोले, "अपने आदर्श की बात तो मुझे नहीं बतायी, भाई।"

"सच ही आप सुनना चाहते हैं दादाजी?"

"हाँ, चाहता हूँ!"

बिशू ने आदर्श की बात कहनी शुरू की। न्यायरत्न चुपचाप सब सुनते गये, एक शब्द भी न कहा। रूस की क्रान्ति और उस देश की आज की अवस्था का वर्णन करते हुए विश्वनाथ ने कहा, "हमारा यही आदर्श है, दादाजी! साम्यवाद!"

[illegible] नहीं है, विश्वनाथ!

जहाँ जीव वहाँ शिव, यह बात तो हमारी ही है, हमारे ही देश की उपलब्धि है!"

विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "मैं आपके साथ काशी गया था, दादाजी! सुना था, काशी शिवमय है। देखा, बात सही है। विश्वनाथजी से लेकर मन्दिर में, मठ में, घाट में, बाट में, ताखे पर शिव का अन्त नहीं। अनन्त शिव! लेकिन व्यवहार में मैंने पाया, विश्वनाथजी के लिए विराट् राजसिक व्यवस्था है—भोग में, शृंगार में, विलास में, प्रसाधन में—विश्वनाथजी की व्यवस्था विश्वनाथ-जैसी ही है। और फिर ताख पर रखे शिव के लिए देखा—दो-चार अरवा चावल, एक बेल पत्ता। अपने यहाँ के जहाँ जीव, वहाँ शिव की व्यवस्था ठीक वैसी ही व्यवस्था है। इसीलिए तो यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े छोटे-मोटे शिवों के साथ विश्वनाथजी के खिलाफ यह अभियान है हमारा!"

"छोड़ो! धर्म का मजाक न करो, उससे अपराध होगा।"

"अंकशास्त्र और अर्थशास्त्र ही हमारा सरबस है दादाजी, धर्म—"

"बोलो मत विश्वनाथ, उच्चारण मत करो!"

न्यायरत्न के कण्ठस्वर से विश्वनाथ अबकी चौंक उठा। उनके तमतमाये चेहरे पर इस वार जैसे आग की दमक फूट उठी थी। बहुत-बहुत दिनों के बन्द ज्वालामुखी की शीतल गहराई से मानो सिर्फ उत्ताप ही नहीं, प्रकाशमय इंगित भी क्षण-क्षण झाँक रहा था।

"नारायण-नारायण!"—कहकर न्यायरत्न उठ खड़े हुए। बहुत दिनों के बाद उनके खड़ाऊँ की आवाज सख्त-सी बजने लगी। ठीक इसी वक्त अजय को गोद में लिये जया घर और नाट्य-मन्दिर के बीचवाले दरवाजे पर आकर बोली, "दादा-पोते में तो खूब गप्पें हो रही हैं! इधर साँझ जो हो आयी!"

चार

पाँच गाँव—महाग्राम, शिवकालीपुर, देखुड़िया, कुसुमपुर और कंकना। इन्हीं पाँचों से एक समय हिन्दू-समाज का पंचग्राम बना था। उसके बाद कब और कैसे सारा का सारा कुसुमपुर एकबारगी मुसलमानों की बस्ती में बदल गया, यह इतिहास अजाना न होते हुए भी यहाँ अवान्तर है। हिन्दू-सामाजिक बन्धन से कुसुमपुर बहुत दिनों

से अलग है, लेकिन तो भी कुसुमपुर के साथ एक गहरा बन्धन था। किसी समय वहाँ के मियाँजी लोग ही इस इलाके के जमींदार थे। कुसुमपुर के मियाँजी लोगों द्वारा प्रदत्त लाखिराज, ब्रह्मोत्तर और देवोत्तर जमीन इधर के बहुतेरे ब्राह्मण और देवालय आज भी भोग रहे हैं। और, कुसुमपुर के एक ओर जो मस्जिद नजर आती है, उसका निचला हिस्सा कभी कोई देव-मन्दिर रहा होगा, यह बात देखते ही समझ में आ जाती है। धर्म-कर्म, पर्व-त्यौहार और बिवाहादि सामाजिक कामकाज में दोनों समाजों में परस्पर न्योतापिहानी और लौकिकता का भी आदान-प्रदान चलता था—विशेष रूप से शादी-ब्याह में दोनों तरफ का काफी सहयोग रहता था। उन दिनों मियाँजी लोगों की चार-पाँच पालकियाँ थीं। इधर के सभी ब्याहों में उन्हीं पालकियों से काम लिया जाता था। दरी, शामियाना उन्हीं लोगों के यहाँ से आया करता था। व्याह में वे लोग चौक-चुमौना दिया करते थे। ब्याहवाले घरों से उन लोगों के यहाँ विशेषतया पान, सुपारी और चीनी का सौगात भेजा जाता था। सम्पन्न हिन्दू परिवारों से सीधा भेजा जाता था—घी, आटा, मिठाई, मछली इत्यादि। मियाँजी लोगों के यहाँ से भी विवाह आदि के मौके पर हिन्दुओं को भेंट आती थी। हिन्दुओं के पूजा-पाठ के अवसर पर जब पूजा हो चुकती तो वे लोग मूर्ति देखने आया करते, प्रतिमा-विसर्जन के जुलूस में शामिल होते। एक समय था कि भसान (प्रतिमा-विसर्जन) का जुलूस मियाँ साहबों के दहलीज तक जाता था। वे लोग प्रतिमा देखते थे। हिन्दुओं के लिए वहाँ तम्बाखू का इन्तजाम रहता था। उनके मुहर्रम का अखाड़ा भी हिन्दुओं के गाँव में आता था; ताजिया रखकर वे बाना-पटा खेलते, तम्बाखू पिया करते। उन दिनों हिन्दुओं के पूजा-पर्व के बजनिये, प्रतिमा ले जानेवाले कहार, नाई आदि के लिए पूजा के बाद मियाँ साहबों के सिरिश्ते से वृत्ति देने की व्यवस्था थी। मुहर्रम के बाद हिन्दुओं के यहाँ भी लाठी-वाठी खेलनेवाले लोग आया करते थे। उनकी भी वृत्ति बँधी थी। पीर की दरगाह पर हिन्दुओं की मन्नत अभी भी बिलकुल मिट नहीं गयी है! सख्त शूल की बीमारीवाले मुसलमान आज भी देखुड़िया कालीबाड़ी जाया करते हैं।

इधर कुछ दिनों से ये बातें उठती जा रही हैं। अवश्य ही इसका असली कारण लोगों की माली हालत का गिर जाना है। मियाँजी लोगों के वे दिन लद गये। दूसरे-दूसरे हिन्दू-मुसलमानों की हालत भी धीरे-धीरे पस्त हो आयी है। जो लोग नये सिरे से पनपे हैं, उनका भी रंग-ढंग नया है। अपने समाज, अपनी जाति में भी उनका बन्धन निरा लौकिक है। सभी का देश-काल बिलकुल अलग है। फिर भी कुछ बन्धन है, गाँव का जीवन बिताना हो तो वह उतना-सा बन्धन तोड़ सकना असम्भव है। वह बन्धन खेती-बारी का है। बरसात आने पर आज भी दोनों दलों को बढ़ई-लुहार के यहाँ जुटना पड़ता है। बैठकर बातें करते हैं। लगान की किस्त चुकाते वक्त दोनों जमींदार की कचहरी में अगल-बगल बैठते हैं। जिस साल फसल मारी जाती है, लगान

और सूद के बारे में दोनों साथ ही बैठकर सलाह करते हैं और मिल-जुलकर जमींदार से अपनी माँग पेश करते हैं। यात्रा[1] या कविगान की महफिल में हिन्दू-मुसलमान दोनों की समान भीड़ होती है। कंकना के बावुओं का नाटक देखने के लिए दोनों तरफ के पढ़े-लिखे लोग आते हैं। अम्बुवाची के अवसर पर जो कुश्ती की होड़ होती है, उसमें दोनों पक्ष के किसान भाग लेते हैं। हिन्दुओं के अखाड़े पर मुसलमान लड़ने आते हैं, मुसलमानों के अखाड़े में हिन्दू लड़ने जाते हैं। लेकिन आजकल अब सावधानी के साथ जमात बनाकर जाया करते हैं। मारपीट हो जाने की आशंका आजकल जैसे बढ़ गयी है। गीत-दल की प्रतियोगिता दोनों में आज भी होती है। हिन्दू लोग घेंटूगीत गाते हैं, मुसलमानों में मिरासिन का दल है। मनसा का भसान दोनों ही दल गाते हैं।

इस समय कुसुमपुर में चमड़े का व्यापारी दौलत शेख सबसे ज्यादा सम्पन्न आदमी है। वह यूनियन बोर्ड का मेम्बर है। अपने दरवाजे पर बैठकर शेख तम्बाखू पी रहा था। देबू को जाते देख उसने पुकारा, "अरे कौन, देबू गुरुजी? किधर जाओगे चाचा? सुनो-सुनो!"

जरा आगा-पीछा करके देबू गया। शेख ने सादर स्वागत करके ही उसे बिठाला। उसके बाद बिना भूमिका के ही बोला, "यह काम तुम ठीक नहीं कर रहे हो, चाचा?"

देबू ने प्रश्न-भरी निगाह से शेख की तरफ देखा। शेख ने कहा, "लगान बढ़ने के मामले में हंगामा कर रहे हो, हड़ताल करा रहे हो, यह काम तुम ठीक नहीं कर रहे हो।"

देबू ने विनय के साथ कहा, "क्यों?"

अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर दौलत ने कहा, "मैं अपने काम से कलकत्ता गया था। लाट साहब के मेम्बरों से मेरी मुलाकात हुई थी। मेरा मुवक्किल मुझे मिनिस्टर के यहाँ ले गया था। लीग के मेम्बर मुसलमान मिनिस्टर के यहाँ। मैंने पूछा। मिनिस्टर ने मुझे तसफिया कर लेने को कहा।"

देबू चुप रहा। दौलत फिर बोला, "तुम बड़ी फजीहत में पड़ जाओगे, गुरुजी! यह काम तुम मत करो। आखिरकार सारा हुज्जत-हंगामा अकेले तुमपर जा पड़ेगा। ये बेईमान उस वक्त जोरू के आँचल में मुँह छिपाकर घर में जा घुसेंगे। मिनिस्टर ने मुझसे कहा है—कानूनन जब जमींदार बढ़ोतरी का हकदार है तो उसे रोक कौन सकता है? बेहतर है आपस में मेट-माट कर लो। वही अच्छा होगा। हुज्जत होने से सरकार अपना नुकसान हरगिज बरदाश्त नहीं करेगी।"

---

1. यात्रा नाटक ही है, पर बिना परदे के खेला जाता है। और कविगान है ग्राम्य कवियों का स्वरचित कविता-पाठ। दोनों की महफिल होती है।

अबकी देबू बोला, "लेकिन जमींदार जो दावा कर रहा है वह देते-देते हमें रहेगा क्या? हम खाएँगे क्या?"

दौलत ने आगे धीरे से कहा, "घोष से मैंने बात की है चाचा! घोष मुझे पक्का वचन दे रहा है। कहो, मैं तुम्हारे भी उसी दर से तय करा दूँ। रुपये में एक आना, बस!"—दौलत बड़े विज्ञ-सा हँसने लगा।

"उसपर तो हम तुरन्त राजी हैं। मैं आज ही बुलाकर कहता हूँ सब—"

टोककर दौलत ने कहा, "सबकी नहीं, मैंने महज तुम्हारी बात कही है!"

देबू एक पल में सारी बात समझ गया। मुसकराकर उसने नम्रता के साथ कहा, "माफ करें चाचा, मैं अकेले मेट-माट नहीं कर सकता। आप रुपया आना की कह रहे हैं? मैं जानता हूँ अगर मैं इनका साथ छोड़ दूँ तो श्रीहरि रुपये में एक पैसा लगाकर मुझसे मेट-माट कर लेगा। मगर मुझसे यह नहीं हो सकता!" देबू उठ खड़ा हुआ।

हाथ पकड़कर दौलत ने कहा, "बैठो चाचा, बैठो!" मगर देबू ने कुछ कहा नहीं और न ही अपना हाथ उसने छुड़ाया। खड़े-खड़े ही वह बोला, "कहिए!"

"देखो चाचा, मेरी उम्र तीन बीस हो गयी! दुनिया का बहुत-कुछ देखा, बहुत-कुछ सुना। यह काम मत करो। सुनो, दुनिया में आदमी बड़ा होता है धन-दौलत से और बड़ा होता है अपने इल्म से। जो अच्छा काम करता है अल्ला उसे बड़ा बनाता है। चाचा, शुरू में मैं नंगे पैरों छाता-ओढ़े बीस कोस पैदल जाता था। मोचियों के यहाँ जाकर खाल खरीदता था। जमींदार को सलाम बजाता था। मुसाहबों को चाचा कहता था। आज अल्लाह की मेहरबानी से खेत-खलिहान किया, पूंजी जोड़ी। अब अगर मैं अपने-आप ही अपनी कदर न करूँ तो दस छोटे लोग ही मेरी खातिर क्यों करने लगें? और फिर अल्लाह ही मुझपर मेहरबानी कैसे रखेंगे? अपने गाँव के घोप लोगों को देखो, उनका चाल-चलन देखो। और सुनो, कंकना के मुखर्जी बाबू के व्यापार की नींव ही पड़ी थी उस समय। उस समय ये मुखर्जी लोग राय बाबुओं को, बनर्जी बाबुओं को सलाम बजाया करते थे। उनके पैरों की धूल लेते थे। और फिर यह देखा कि लाखों-लाख रुपये कमाकर मुखर्जी बाबू ही इलाके के खास आदमी बने! अब अपने-आप कुरसी पर बैठते हैं और बनर्जियों को चौकी पर बैठाते हैं। इज्जत कायम रखनी चाहिए। चाचा, तुम्हारा बच्चा मर गया, तुमने बहुत महसूल चुकाया। इसके लिए लोग तुम्हारी तारीफ करते हैं। अमीर से गरीब सभी लोग तुम्हें अच्छा कहते हैं। ऐसे में अपनी इज्जत तुम्हें खुद समझनी होगी। उन हरामियों के साथ तुम न उठा-बैठा करो। कंकना के बाबू, परसीडेण्ट बाबू कह रहे थे—अबकी कहीं देबू घोष बोर्ड में खड़ा हो गया तो मुश्किल करेगा। बनिज-व्यापार करो। अभी महाजन खातिर से तुम्हें काफी माल देंगे। मैं कहता हूँ, देंगे। शादी करो, घर बसाओ।"

देबू ने धीरे-धीरे अपना हाथ खींच लिया। अभिवादन करके कहा, "सलाम चाचा! रात हो रही है; घर चलूँ!"

दौलत ने अबकी साफ ही कह दिया, "तुम, चाचा, व्यवसाय करो! तुम्हारे लिए श्रीहरि महाजन के पास जामिन बनेगा।"

हाथ जोड़कर देबू ने कहा, "यह नहीं होने का चाचा! आप बुरा न मानें!"

वहाँ से देबू खेतिहर मुसलमानों के टोल में पहुँचा। उस समय वहाँ काफी लोग जुट चुके थे। इकट्ठे होने की खुशी में, उमंग में उन्होंने टोल के गीत गानेवाले दल को बुलाकर गाने-बजाने का भी इन्तजाम कर रखा था। मजूरों और खेत-मजूरों के गाने-बजाने की जमात। कुछ सुरीले लड़के गीत की दोहारी कर रहे थे—ईट के भट्ठे का मालिक उसमान मूल गायक था। वह मूल गीत गाता जा रहा था। बंगाल का बहुत प्राचीन काल का गीत; लड़के दोहारी कर रहे थे—

सजनी री, देख जा, रात गये चरखे की घनघनी।
सजनी री!

उसमान गा रहा था—

कौन सजनिया कहे रे भाई, चरखे को न हिया है,
चरखे के चलते सातों पूतों का ब्याह किया है।
कौन सजनिया कहे रे भाई, चरखे के नहीं पाँती,
चरखे की दौलत से मेरे द्वार बँधा है हाथी।
कौन सजनिया कहे रे भाई, चरखे के नहीं नौरा,
उसी के चलते दरवाजे पर बँधा है मेरे घोड़ा।

देबू के आते ही गाना थम गया। कई लोग एक साथ हो बोल उठे, "आइए, आइए, गुरुजी!"

रहम ने पूछा, "वह बूढ़ा शैतान तुमसे क्या कह रहा था, चाचा!"

देबू हँसा। कुछ बोला नहीं।

खेतिहरों में मातब्बर कुसुमपुर मकतब का मास्टर इरशाद बोला, "बैठिए भाईजान! दौलत शेख जो कह रहा था, वह हमें मालूम है। यहाँ बैठक होगी, यह सुनकर आज घोष जो उसके पास आया था!"

देबू ने इस बात का जवाब नहीं दिया।

इरशाद ने कहा, "आपने बुड्ढे को क्या कहा।"

"उसकी बात जाने दीजिए इरशाद भाई! मुझे यहाँ जिस काम के लिए बुलाया है उसकी बात कीजिए।"

इरशाद थिर निगाहों देबू की ओर ताकने लगा। उजड्ड और खूँख्वार रहम जोश में गरम होकर उठ खड़ा हुआ। बोला, "तुम्हें कहना ही पड़ेगा!"

देबू ने उसकी तरफ देखते हुए कहा, "नहीं!"

"जरूर कहना पड़ेगा!"

इस पर देवू ने इरशाद से पूछा, "इरशाद भाई?"

इरशाद ने रहम को डाँटा, "रहम चाचा, कर क्या रहे हो तुम? बैठो, चुपचाप वैठ जाओ!"

रहम वैठ गया, लेकिन दाँत पीसता हुआ बुदबुदाया, "जो हरामी बेईमानी करेगा, उसका गला दो फाँक करके मैं मयूराक्षी में बहा दूँगा, हाँ! फिर मेरे नसीब में चाहे जो हो!"

देबू ने अव हँसकर कहा, "अगर हम वैसा करें चाचा, तो तुम भी वही करना। उस वक्त अगर मैं शोर मचाऊँ या कि तुम्हें टोकूँ, तो तुम मुझे आज की बात याद दिला देना। मैं तुम्हें वाधा नहीं दूँगा, चीखूँगा नहीं, रोऊँगा नहीं, गरदन बढ़ा दूँगा!"

सारी सभा स्तब्ध हो गयी। गाने-वजानेवाले दल के छोकरे बीड़ी पीते हुए हँसी-मजाक कर रहे थे। देवू घोष के मुँह की तरफ देखकर वे भी अवाक् रह गये। कोई जोश नहीं, शान्त स्वर के उन कुछ शब्दों को सुनकर सभी कोई उसकी ओर ताकने लगे थे और वातों के साथ ही उसके होंठों पर मीठी हँसी खेल जाते देख अवाक् हो गये थे। रहम ने एक वार देवू की ओर देखा और सिर झुकाकर नाहक ही नाखून से माटी पर अंट-शंट दाग देने लगा।

जरा देर में इरशाद ने कहा, "आप इसका कुछ खयाल मत कीजिए देबू भाई! रहम चाचा को तो आप जानते ही हैं।"

"नहीं-नहीं, मैंने कुछ भी खयाल नहीं किया है।"—देबू हँसने लगा—"अब काम की बात कीजिए, इरशाद भाई! रात काफी हो गयी है।"

इरशाद ने बीड़ी निकालकर देवू को दी। देबू ने हँसकर कहा, "वह सव मैंने छोड़ दिया है।"

"छोड़ दिया है?" खुद एक वीड़ी सुलगाकर फीकी हँसी हँसते हुए इरशाद ने कहा, "आप फकीर हो गये देवू भाई!"

लगान बढ़ने सम्बन्धी वातों में काफी रात हो गयी। तय पाया गया कि कुसुमपुर के मुसलमान अलग हो अपनी हड़ताल करेंगे। हिन्दुओं से बस इतना ही नाता रहा कि आपस में राय किये विना कोई सम्प्रदाय जमींदार से मेट-माट नहीं कर सकेगा! मामले-मुकदमे में दोनों तरफ से अलग वकील रहेंगे, लेकिन वे भी आपस में मशविरा करके ही काम करेंगे।

इरशाद ने कहा, "सदर में नूरुलमुहम्मद साहब हैं, जानते हैं न? हमारे जिले की लीग के सदर हैं। हम लोग उन्हीं को अपना वकालतनामा देंगे। हमें वे सहूलियत देंगे।"

"खैर, वही होगा! तो आज हम चलें!"—बात खत्म करके देबू उठा।

"रात बहुत हो चुकी है। आप जरा रुक जाएँ, देबू भाई! रोशनी लेकर कोई आदमी साथ कर दूँ।"

"उसकी जरूरत नहीं! मैं मजे में चला जाऊँगा।"

"नहीं-नहीं, बरसात का समय है, साँप-वाँप का डर है। फिर तुम्हारे घोष का कोई एतबार नहीं। घोष से दौलत शेख जा मिला है। ऊँहूँ!"

सामने की खुली जगह में अभी भी लोग-बाग खड़े थे। उसी भीड़ में से निकल कर आगे बढ़ आया रहम चाचा—एक हाथ में लालटेन, दूसरे में लाठी!—"मैं चलता हूँ इरशाद, मैं। चलो चाचा!"—कहकर वह एक गाल हँसा।

परले सिरे का गँवार होते हुए भी रहम किसानों में मातब्बर गिना जाता था। यों किसी को पहुँचाने जाना उसके लिए हेठी की बात थी। देबू ने झट कहा, "नहीं-नहीं, चाचा! यह कैसे हो सकता है, तुम क्यों जाओगे?"

"अरे वाबा, चलो! तुम्हारी बदौलत देखें अगर घोष या शेख के आदमी से हो जाए मुलाकात, तो एक हाथ आजमा लें!"—वह बड़े नाज के साथ हँसने लगा। देबू ने एतराज नहीं किया। इरशाद ने भी मना नहीं किया। झूठे सन्देह पर एकाएक नाराज हो जाने की घड़ी में उसने देबू को जो तीखी बातें कही थीं, उसी के अफसोस में वह इस तरह से लाठी-लालटेन लिये इस रात के आलम में देबू के साथ जाने को तैयार हो गया। दिल से चाहते हुए भी 'माफ करो'—यह बात उसकी जबान पर नहीं आयी। इसीलिए स्नेहशील अभिभावक की नाई अपने सारे सम्मान को ताक पर रखकर देबू को सारी आफतों से बचाकर वह जता देना चाहता है कि वह उसे कितना प्यार करता है, वह उसका कितना अपना है।

इरशाद ने कहा, "खैर, तुम्हीं जाओ।"

वैहार में उतरा कि रहम ने जोरों से गाना शुरू कर दिया—

कारे-कारे वादरवा
ओ पानी ले के आ
जलती जान जुड़ाता जा!

हँसकर देबू ने कहा, "और पानी लेकर क्या करोगे चाचा? बैहार में तो पानी ही पानी है!"

रहम जरा सकुचा गया। खेती-बारी के दिन हैं। खेतों में आकर उसे यही गीत याद आ गया। बोला, "बेंग के ब्याह का गीत है, चाचा!"—और उसने दूसरा पद शुरू किया—

वेंग का ब्याह करूँगा बदरा
ब्याह करूँ बेंगी का

झमझम जल बरसा बादरवा
झमझम जल बरसा!

आषाढ़-सावन में पानी नहीं पड़ता है, तो इधर के लोगों में बेंग का ब्याह रचाने का रिवाज है। कहते हैं बेंग का ब्याह रचाने से खूब बारिश होती है। छुटपन में देबू भी सब लड़कों के साथ गाते हुए माँग-माँगकर बेंग का ब्याह करता था। बेंग के ब्याह का बड़ा उत्साह था उसकी स्त्री बिलू को। उसे याद आया, एक बार बेंग को कपड़े-लत्ते पहनाकर बिलू ने बड़ी कुशलता से दुलहिन बनाया था। देबू ने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा।

बिलू और मुन्ना! उसके जीवन की सोने की बेल और हीरे का फूल! लड़कपन में उसने एक रूप-कथा सुनी थी—राजा के स्वप्न की कथा। राजा ने सपने में देखा—एक अनोखा पेड़, चाँदी का तना, सोने के डाल-पात और उनमें फूले थे हीरे के फूल। उस पेड़ पर हीरा, मोती, पन्ना, मूँगा, पुखराज, नीलम आदि रंग-रंग के मणि-माणिक से सजा-सँवरा एक मोर पंख पसारे नाच रहा था। देबू का वह पेड़ थी बिलू, मुन्ना था वह फूल और उस पेड़ पर जो मोर नाच रहा था, वह था देबू के जीवन का अरमान, भरोसा, उसके होठों की हँसी, उसका बल, उसके मन की शान्ति! खुद, हाँ खुद ही तो उसने पेड़ को काट फेंका। आज सिर्फ धर्म, कर्तव्य, समाज को लेकर दौड़ा चल रहा है वह। इसके बजाय अगर वह भगवान को पुकारता! राजबन्दी यतीन बाबू के यहाँ से चले जाने के बाद रह-रहकर उसके मन में होता रहा है कि सब छोड़कर किसी तीर्थ में चला जाए। लेकिन उसे मानो उसका रास्ता नहीं मिल रहा है। जिस दिन यतीन गया ऐन उसी दिन उसे न्यायरत्न की चिट्ठी मिली—"गुरुजी, मुझे इस आपदा से बचाओ!"

यह लगान बढ़ने के चलते जमींदार और रैयतों में जो विरोध होने को है, उस विरोध में रैयतों की तरफ की सारी जिम्मेदारी, सारा बोझा पहाड़-सा उसी के माथे पर आ पड़ा है। लगान की बढ़ोतरी! रैयतों का हाल अपनी नजरों से देखने के वावजूद जमींदार कैसे लगान बढ़ाना चाहता है, देबू यह समझ नहीं पाता। रैयतों के पास है क्या? घर में अनाज का नाम नहीं। वैशाख के बाद से ही खेतिहरों ने उधार खाना शुरू कर दिया है? साल-भर में पहनने को चार से ज्यादा कपड़े मयस्सर नहीं। वीमार पड़ जाने से बिना इलाज के ही मरते हैं। छप्पर पर फूस साबित नहीं है। सारे वरसात का पानी उनके घर के अन्दर ही गिरता है। यह सब देखते हुए भी ज्यादा लगान की माँग कैसे करते हैं वे? इस इलाके के जमींदारों ने एक दलील पेश की है कि उन्होंने मयूराक्षी का बाढ़-रोधी बाँध बनवा दिया है, जिससे यहाँ के खेतों की उपज बढ़ी है। लेकिन इससे बढ़कर झूठी बात दूसरी नहीं हो सकती। इस बाँध को बनाया है रैयतों ने। जमींदार ने अपनी देख-रेख में इसे वनवाया है। प्यादे भेजकर काम करने के लिए रैयतों को पकड़वा मँगाया है। हर साल बाँध की मरम्मत

आज भी रैयत लोग ही करते हैं। अवश्य आजकल बहुत-से किसान रैयत मरम्मत के लिए नहीं जाते। इन दिनों कानून भी कुछ कड़ा हो गया है। सद्गोप वगैरह जात के रैयतों से जबरदस्ती काम कराने की हिम्मत भी नहीं पड़ती है जमींदार को। लेकिन बाउरी, डोम, मोची आदि को आज भी यह बेगारी करनी पड़ती है। सेटलमेण्ट के रेकॉर्ड्स ऑव राइट्स तक में यह बेगार खटना ही उनके घर के लगान में लिखा है। रहने के घर का लगान है : साल में तीन मजूर—एक बाँध की मरम्मत के लिए, एक चण्डीमण्डप के लिए और एक जमींदार के अपने घर के लिए।

"देबू चाचा! अब मैं चलूँ?"—रहम अभी तक वही गीत गाता चला आ रहा था। गाना बन्द करके उसने देबू से कहा, "मैं बस्ती के अन्दर नहीं जाऊँगा।"—लालटेन और लाठी लिये देबू को पहुँचानेवाले के रूप में वह बस्ती के अन्दर नहीं जाना चाह रहा था।

देबू ने चारों तरफ देखा। मोची टोला आ गया था। बोला, "हाँ-हाँ, अब तुम लौट जाओ, चाचा!"

"आदाब!"

"आदाब चाचा!"

"मेरी बात का कुछ खयाल मत करना!"—लालटेन और लाठी लिये देबू के साथ इतनी दूर आकर अपनी तीखी बात के कसूर की ग्लानि से बहुत-कुछ हलका हो चुका था। अब वह हलका होकर सहज भाव से ही यह बोल पड़ा।

उज्ज्वल हँसी से देबू का चेहरा खिल पड़ा। बोला, "नहीं-नहीं चाचा! हम क्या बाल-बच्चों को डराते नहीं हैं? बुरा काम करने से कहते नहीं हैं कि खून कर देंगे?"

"तो अब चलता हूँ।"

"हाँ जाओ!"

"न-न, चलो, तुम्हें घर ही पहुँचाकर जाऊँगा!"—देबू की मीठी हँसी से, उसकी अपनेपन से भरी बातों से रहम की ग्लानि तो जाती ही रही, आनन्द के आवेग से मान-अपमान का सवाल भी जाता रहा। बोला, "अपने बच्चे को पहुँचाने आया हूँ, इसमें शर्म किस बात की है? चलो!"

देबू के बरामदे पर लालटेन जल रही थी। वह चकित हो गया। घर में अपना तो कोई है ही नहीं, वहाँ इस तरह बैठे कौन लोग हैं? इतनी रात में कहाँ से कौन आये? कुटुम्ब तो नहीं है? हो सकता है, अम्बुवाची के गंगा-नहान के बाद लौटे हुए यात्री ही हों।

दरवाजे पर पहुँचते ही पातू मोची ने कहा, "लो, गुरुजी आ गये!" बरामदे पर हरेन घोषाल, तारा नाई, गिरीश बढ़ई तथा और भी कई आदमी बैठे थे। देबू ने शंकित होकर ही पूछा, "क्या बात है?"

हरेन ने कहा, "दिस इज वेरी बैड गुरुजी, वेरी बैड! ऐसा काँदो-पानी, साँप-बिच्छू और फिर जमींदार से अनबन चल रही है। तुम शाम को लौट आने की कह गये और इतनी रात तक लापता!"

दरवाजे के अँधेरे से दुर्गा निकल आयी। उसने हँसते हुए कहा, "जमाई तो किसी को अपना नहीं समझता है न घोषाल कि सोचे मेरे लिए कोई चिन्तित होगा।"

देबू हलका-हलका हँसा।

पातू ने कहा, "मैं लालटेन लेकर जा ही रहा था।"

दुर्गा ने कहा, "रात हुई देखकर मैंने लुहार-बहू से रोटी बनवा ली थी। मुँह-हाथ धो लो, फिर चलो खा आओ! आज अब रसोई नहीं बनानी पड़ेगी।"

यह दुर्गा और लुहार-बहू पद्म! देबू के स्वजनहीन जीवन में न केवल मर्द बल्कि ये दो औरतें भी अपार स्नेह-ममता लिये अयाचित रूप से आकर उसे सींच देना चाहती हैं। लुहार-बहू उसकी मितनी है, अन्नी भाई घर-द्वार छोड़कर कहीं चला गया। इस समय लुहार-बहू पद्म उसी की आश्रित-सी है। पति द्वारा ठुकरायी हुई इस बाँझ औरत का दिमाग भी कुछ-कुछ खराब है। पद्म का वह क्या करे—कुछ समझ नहीं पाता।

सोचते हुए वह दुर्गा के साथ चल पड़ा।

पाँच

पद्म इन्तजार में बैठी थी।

आज इस इन्तजार में जैसे कितनी तृप्ति हो! अनिरुद्ध के इन्तजार में उसने कितनी ही रातें उनींदी बितायी हैं। उसके बाद आया था यतीन।

पद्म के सूने जीवन में यतीन का आना जैसे एक सपना हो! हठात् ही आ पहुँचा था। अनिरुद्ध का एक कमरा किराये पर लेकर पुलिस के अधिकारियों ने कलकत्ते के उस युवक को इतनी दूर के एक गाँव में जोश-खरोश से परे शान्त परिवेश में लाकर रखा था। अधिकारियों ने निश्चिन्त होकर सोचा था कि बंगाल के मरणासन्न समाज की बीमार साँसें इन क्रान्तिकारियों के हृदय में भी छूत-सी फैल जाएँगी। वर्षा के सजल मेघ की प्राणवन्त शक्ति को बेकार करने के लिए नाराज देवता ने मानो उसे रेगिस्तान के आसमान में भेज दिया हो! लेकिन एक रोज देवता

ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि वह प्राणशक्ति निष्फल नहीं हुई है। ऊसर मरुभूमि के कलेजे में जगह-जगह हरियाली छिटक आयी है, ओसिस-शिशु जाग उठे हैं। बंगाल के विभिन्न गाँवों के ताप-प्यासभरे चेष्टाहीन जीवन में इन राजबन्दियों की प्राणशक्ति के परस से रेगिस्तान की हरियाली-जैसी नये जागरण को झलक दिखाई देने लगी थी। वह सब देख-सुनकर आखिर सरकार ने राजबन्दियों को गाँव में निर्वासित करने का नियम उठा दिया और उन्हें गाँवों से हटा ले गयी। बंगाल के सरकारी विवरण और वहाँ के राजनीतिक इतिहास में इस तथ्य को स्वीकारा गया है।

खैर, छोड़िए वह बात! यतीन को पाकर पद्म कुछ दिनों में ठीक हो गयी थी। वह यतीन की माँ बन गयी थी। तीन-चार साल की बच्ची जैसे अपने बराबर आकार का खिलौना लिये माँ बनकर खेलती है, वैसे ही पद्म ने कुछ दिनों के लिए एक घरौंदा बनाया था और यतीन ने इस गाँव के एक बिना माँ-बाप के लड़के फतिंगा को खोज लिया था। फतिंगा एक और छोटे को ले आया था। नाम था उसका गोबरा। पुलिस अधिकारियों ने यतीन को वहाँ से हटा दिया, तो पद्म के जीवन में फिर से एक विपत्ति आ गयी। आर्थिक सहारा जो किराये का था। वह भी जाता रहा। फतिंगा और गोबरा भी उसे छोड़कर भाग गये, उन्हें खाना नसीब न होने का कष्ट गवारा नहीं था। इसी बीच उन लोगों ने अपनी कमाई का जरिया ढूँढ़ निकाला है। मयूराक्षी नदी के उस पार रेल का बड़ा जंक्शन है। कारोबार वहाँ दिनों-दिन तरक्की पर है। मारवाड़ी महाजनों की गद्दी, बड़ी-बड़ी मिलें—चावल की, तेलकल, आटाकल, मोटर-मरम्मत का कारखाना। इन सबके होने से वर्षा के पानी-सा पैसे का लेना-देना चलता है हरदम। फतिंगा और गोबरा वहीं जा जुटे हैं। कभी भीख माँगते हैं, कभी चाय की दूकान पर काम-काज कर देते हैं, कभी मोटर-सर्विस की बसें धोने के लिए पानी भर देते हैं। और फिर मौका मिलता है तो रेलवे प्लेटफॉर्म से सोये मुसाफिरों के छोटे-मोटे सामान गायब कर देते हैं। पद्म उन्हें प्यार करती थी, यह बात शायद वे भुला ही बैठे हैं। जरा देर के लिए भी कभी नहीं आते। दुनिया में पद्म फिर निरी अकेली पड़ गयी है। उसका दिमागी रोग फिर बढ़ने लगा है। आजकल वह अपने सूने घर के ऊपर से बैठी-बैठी उदास निगाहों आसमान को ताका करती है। बीच-बीच में बिल्ली या चूहा खुट-खाट करता है। तो वह एक अजीब ही नजर से उधर देखती है और एक अनोखी हँसी उसके होठों पर फूट पड़ती है। फतिंगा और गोबरा पराये लड़के हैं, वे चले गये हैं—यह बात उसे याद आ जाती है।

अकेली दुर्गा ही उसकी खोज-खबर रखती है। दुर्गा उसे मितनी कहती है। एक समय स्वैरिणी दुर्गा ने अनिरुद्ध से दोस्ती कर ली थी। व्यंग्य करने की नीयत से ही वह उस समय पद्म को मितनी कहा करती थी। लेकिन आज वह सम्बन्ध परम सत्य हो उठा है। दुर्गा ने ही देबू घोष को पद्म के बारे में सारा कुछ खोलकर बताया था। कहा था—"उसका कोई उपाय किये बिना तो नहीं चलने का जमाई!"

देबू ने चिन्तित होकर कहा था, "वही तो दुर्गा!"

"वही तो कहकर चुप लगा जाने से तो नहीं बनेगा, गुरुजी! गाँव में तुम-जैसे आदमी के होते एक औरत बेचारी जहन्नुम में चली जाएगी!"

"लुहार-बहू के मायके में कौन है?"

"माँ-बाप नहीं हैं। भाई-भाभी हैं, सो उन लोगों ने साफ कह दिया है कि उनके पास जगह-जुगाड़ नहीं है।"

"तो?"

"तभी तो कह रही हूँ! आखिरकार क्या छिरू पाल के—"

छिरू पाल के?—देबू चौंक उठा था।

हँसकर दुर्गा ने कहा था, "छिरू पाल को तो जानते हो? शुरू से लुहार-बहू पर उसकी नजर गड़ी हुई है।"

जरा देर चुप रहकर देबू ने इस पर कहा था, "मैं खाने-पहनने के बारे में नहीं सोचता, दुर्गा! एक तो अनाथ औरत, फिर अनिरुद्ध मेरा दोस्त था और बिलू भी लुहार-बहू को मानती थी। उसके खाने-कपड़े का भार न हो तो मैं लेता हूँ पर उसे देखे-भालेगा कौन? अकेली औरत—"

सुनकर दुर्गा के होठों पर हँसी की पतली-सी लकीर दौड़ गयी थी।

देबू ने कहा, "हँसने की बात नहीं है, दुर्गा!"

इस बात पर दुर्गा जरा और भी हँसी। कहा, "जमाई, तुम पण्डित आदमी हो पर—"

अपने आँचल से मुँह दबाकर वह खूब हँसी एकाएक। हँसकर बोली, "मगर इन मामलों में मैं तुमसे बड़ी पण्डित हूँ।"

देबू ने यह बात स्वीकार कर ली थी हँसकर।

"इस जले मुँह की हँसी को मैं क्या कहूँ?"—कहकर हँसी को जब्त करके वास्तविक गम्भीरता के साथ ही बोली, "तुम्हें मालूम है जमाई, औरत बरबाद होती है पेट के लिए और लोभ से। मुहब्बत से नहीं होती है, सो नहीं, मुहब्बत से भी होती है। मगर कितनी? सौ में एक! लोभ से, रुपये के लोभ से, गहने-कपड़े के लोभ से औरतें नष्ट हुआ करती हैं, मगर पेट की आग बड़ी जबरदस्त आग होती है जमाई! तुम उसे पेट की ज्वाला से बचा लो! लुहार उसके लिए पेट का अन्न नहीं रख गया है, रख गया है एक पैना दाव! कहा करता था, इस दाव से बाघ को काटा जा सकता है। पद्म उसी दाव को बगल में लेकर सोती है। काम करती है, काज करती है, मगर दाव को सदा हाथ के पास ही रखती है। उसके लिए तुम फिक्र न करो!"

उसी दिन से देबू ने पद्म के भरण-भोषण का भार उठाया है। दुर्गा खोज-खबर लेती रहती है। आज दुर्गा ने आटे की कीमत देकर पद्म के यहाँ ही देबू के लिए रोटी बनवा रखी थी।

खाने की तैयारी मामूली ही थी। रोटी, एक सब्जी, दो टुकड़ा मछली, थोड़ी-सी मसूर की दाल और जरा-सा गुड़। लेकिन इसकी परिपाटी कुछ असाधारण-सी थी। थाली-कटोरे चाँदी-से झकझका रहे थे। फटे कपड़ों के कोरों से बनाया हुआ आसन बड़ा सुन्दर था, बड़ा साफ! कमल के कोमल पत्तों को बड़े जतन से गोल-गोल काटकर ढक्कन बनाया था; गिलास और दाल का कटोरा उसी से ढँका था। सबसे छोटा जो पत्ता था, उस पर रखा था नमक। इसी से साधारण असाधारण हो उठा था। पहली ही नजर में मन प्रसन्नता से भर उठता। पद्म के बरामदे पर जाकर श्रद्धा-सने इस आयोजन को देखकर देबू जरा शर्मिन्दा-सा हो गया।

"अरे बाप रे! मितनी ने यह सब कर क्या रखा है दुर्गा!"

दुर्गा वहीं एक किनारे बैठी थी। वह हँसकर बोली, "वह तो पूछो ही मत, नमक किसमें देगी—यही सोचकर हैरान!" मैंने कहा, "सखुए के पत्ते के टुकड़े में दे दो। उहूँ! आखिर इतनी रात को जाकर कमल का पत्ता ले आयी। उसके बाद यह सारा कुछ किया।"

थाली सामने रखकर पद्म रसोई के दरवाजे के पास दीवार के सहारे खड़ी थी। ये बातें सुनकर उसका सिर अवसन्न-सा हो गया। वह दीवार से ओठँग गयी, थिर और उदास नजरवाली बड़ी-बड़ी उसकी आँखें भी बन्द हो आयीं। तन-मन मानो बहुत थक गया हो, आँखों में जबरन नींद चली आ रही हो।

आसन पर बैठकर देबू को भी बड़ा अच्छा लगा। दिनों से बिलू की मृत्यु के बाद से इस जतन के साथ उसे किसी ने नहीं खिलाया। गिलास के पानी से हाथ धोकर उसने मुसकराकर कहा, "दुर्गा, बिलू के बाद से मुझे इतने जतन से किसी ने नहीं खिलाया है!"

दुर्गा ने देबू को कोई जवाब नहीं दिया। रसोई की तरफ मुँह घुमाकर जरा ऊँचे गले से कहा, "सुनती हो मितनी, मीता तुम्हारा क्या कह रहा है?" अन्दर पद्म के होठों पर जरा हँसी फूट उठी। दुर्गा ने देबू से कहा, "तुम्हारी मितनी खूब है, जमाई! खाना परोस दिया और अन्दर चली गयी? क्या चाहिए, क्या कैसा बना है—यह सब कौन पूछेगा, कहो तो?"

देबू ने कहा, "नहीं-नहीं, मुझे और कुछ नहीं चाहिए। और चीजें सब अच्छी बनी हैं।"

"फिर भी आकर दो बातें तो करे! गप-शप नहीं होने से खाया कैसे जाएगा!"

"तू बड़ी फाजिल है दुर्गा!"

"मैं तुम्हारी साली हूँ न!"—कहकर वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। उसके बाद बोली, "मेरा छुआ तो तुम खाओगे नहीं न भाई, वरना देखते कि मैं तुम्हें इससे कितनी अच्छी तरह खिलाती हूँ!"

देबू ने कोई जवाब नहीं दिया। गम्भीर होकर खा-पीकर उठ पड़ा। कहा, "तो अभी चलता हूँ!"

दुर्गा रोशनी उठाकर बढ़ी। देबू ने कहा, "तुझे जाना नहीं पड़ेगा। बत्ती मुझे दे दे।"

उसकी ओर देखकर दुर्गा ने बत्ती रख दी! देबू के घर से बाहर निकलते ही उसने पुकारा, "सुनो, सुनो जमाई! जरा रुको!"

देबू रुक गया—"कहो!"

दुर्गा आगे बढ़ आयी—"एक बात कह रही थी!"

"क्या?"

"चलो, चलते-चलते कहती हूँ!"

कुछ आगे बढ़ने पर दुर्गा ने कहा, "लुहार-बहू के लिए कहीं धान कूटने का काम जुटा दो! एक ही तो पेट है, उससे भी चल जाएगा। उसके बाद कुछ जरूरत हो तो तुम देना!"

देबू ने भँवें सिकोड़कर फिर 'हूँ' कहा।

और थोड़ी दूर जाकर दुर्गा ने कहा, "मैं इस गली से अपने घर चली जाऊँ?"

देबू ने कोई जवाब नहीं दिया। दुर्गा ने पुकारा, "जमाई!"

"क्या?"

"तुम मुझसे नाराज हो?"

देबू उसकी तरफ मुड़कर बोला, "नहीं!"

"हुँ! तुम नाराज हो! नाराज नहीं हो तो हँसो तो जरा!"

देबू अबकी हँस पड़ा। बोला, "जा भाग।"

डर का स्वाँग रचकर दुर्गा बोली, "बाप रे, अब ज़माई मारेगा रे बाबा!"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और कलाई-भरी चूड़ियों से जैसे बाजे की झंकार करती हुई गली के अँधेरे में खो गयी।

स्नेह से देबू जरा हँसा। उसके बाद धीरे-धीरे चलकर जब अपने घर पहुँचा तो देखा सोने के लिए पातू कब का आ गया है। दुर्गा का बड़ा भाई पातू मोची रात को देबू के ही यहाँ सोता है।

बिस्तर पर लेटकर देबू को नींद नहीं आयी।

जिसे जात खेतिहर कहते हैं, उसी जात खेतिहर के घर का है वह। उसका बाप अपने हाथ से हल जोतता था। उसने अपने कन्धे पर बहँगी ढोया है, खाद की टोकरी सिर पर रखकर गाड़ी को अपने से लादा है, खेत से धान का बोझा माथे पर उठाकर घर लाया है, बैलों की सेवा की है। बचपन में देबू भी घर के गाय-गोरू को चरवाहे तक पहुँचाता रहा है; उन दिनों वह भी गाय-बैलों की नियमित सेवा करता था। खेती के दिनों बाप का कलेवा खेत में पहुँचाया करता था। बाप जब कलेवा करने बैठ जाता तो वह उसकी वजनी कुदाली उठाकर आदत डालता था। घर में कुदाली का जो भी काम होता, बचपन में सब वही करता था। उसके बाद गाँव

की पाठशाला में उसे लोअर प्रायमरी में छात्र-वृत्ति मिली। पाठशाला का गुरुजी वही अन्धा बूढ़ा केनाराम था। केनाराम ने ही उस रोज देबू के बाप से कहा था, "तुम इस लड़के को पढ़ने दो बाबा! लड़के के जरिये तुम्हारा सारा दुःख दूर होगा। देबू को ऐसी-वैसी छात्र-वृत्ति नहीं मिली है, सारे जिले में वह अव्वल आया है। कंकना के स्कूल में उसे फीस नहीं देनी पड़ेगी, ऊपर से हर महीने दो रुपये मिला करेंगे। नहीं पढ़ेगा तो यह वृत्ति बेचारे को नहीं मिलेगी।"

कंकना के स्कूल में केनाराम ने ही मण्डल के बजाय उसकी उपाधि घोष लिखायी थी। उसके बाद हर साल फर्स्ट या सेकेण्ड होता-होता वह फर्स्ट क्लास तक पहुँचा। उस समय उसका बाप उसे कोई काम नहीं करने देता था। हँसते हुए बाप ने उसकी माँ से कहा था, "हमारा देबू हाकिम होगा!" देबू वही आशा करता था।

आज इन बातों को स्मरण करते हुए देबू लेटा रहा।

उसके बाद एकाएक बिना मेघ के गाज गिरने-जैसी उसके जीवन में जीवन की पहली विपत्ति आयी। बाप और माँ—दोनों लगभग एक ही साथ मर गये। देबू को लाचार अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी, और अपना पुश्तैनी काम शुरू करना पड़ा। हल-बैल लेकर उसने अपने बाप-दादे की तरह खेती शुरू की। उसके बाद उसे यूनियन बोर्ड के निःशुल्क प्रायमरी स्कूल में नौकरी मिल गयी। गुरुजी की जगह। मजे में था। बिलू-जैसी शान्त-शिष्ट स्त्री, खिलौने-सा मुन्ना, बारह रुपये माहवार और फिर अपनी खेतीबारी की आमदनी! मोरी में धान, भण्डार घर की कोठी में उड़द, गेहूँ, तिल, सरसों, तीसी; गुहाल में गाय, पोखर में मछली, दो-चार आम-कटहल के पेड़! राजा से भी बढ़कर सुख था उसे। अचानक उसे दुर्गति आयी। यह दुर्गति उसने अवश्य कंकना के स्कूल से ही अपनायी थी। अन्याय का विरोध करने की कुमति उसपर वहीं से सवार हो गयी थी। उसी नशे में कानूनगो का विरोध करने में उसे जेल जाना पड़ा।

जेल से लौटने के बाद वह नशा मानो पेशा होकर उसके कन्धे पर सवार हो गया। नशा चाहे तो छूट भी सकता है, पर पेशा छोड़ सकना सम्पूर्णतया आदमी के अपने वश की बात नहीं। छोड़ना चाहते ही पेशा नहीं छोड़ा जा सकता। जिनसे देने-पावने का सम्बन्ध रहता है वे नहीं छोड़ते। खेती जिनका पेशा है, वे खेती छोड़ दें तो जमींदार अपनी बाकी लगान नहीं छोड़ता जमीन बिकने के बाद भी लगान के लिए स्थावर सम्पत्ति पर आफत आती है। और दुनिया में क्या सिर्फ पावनेदार ही नहीं छोड़ते? देनदार भी तो नहीं छोड़ते! महाजन जब कहता है कि मैं अब यह सूद का कारोबार नहीं करूँगा तो कर्जदार लोग गिड़गिड़ाते हैं। यह भी तो एक नैतिक दावा है और यह दावा अदालत के दावे से कम नहीं है। देबू की भी आज वही दशा हुई है। दुनिया में आज उसे अपने लिए जरूरत भी कितनी है? पर पाँच गाँव की जरूरत उसकी गरदन पर सवार है। छोड़ देने की कहने से एक तरफ तो लोग

नहीं छोड़ते, दूसरी तरफ पावनेदार नहीं छोड़ते। उसका पावनेदार भगवान है। उसे न्यायरत्न जी की कही हुई कहानी याद हो आयी। मछेरिन की टोकरी से एक ब्राह्मण शालिग्रामशिला ले आये थे। उन शिलारूपी भगवान की पूजा से ब्राह्मण ने सरबस गँवाया, लेकिन शिला को नहीं छोड़ा। न्यायरत्न ने कहा था, मनुष्य में जो भगवान है, उसकी भी वही गति है। वह है मछेरिन की टोकरी की शिला।...उसकी बिलू चली गयी, मुन्ना चला गया; उसके साथ अन्तर के देवता कौन-सा खेल खेलेंगे, कौन जाने!

एक लम्बा निःश्वास छोड़कर देबू ने मन-ही-मन कहा, "वही हो देवता! मैं भी देखूँ, तुम्हारी दौड़ कहाँ तक है! मेरे बीवी-बच्चे को लिया, अब पाँच गाँव के लोगों का बोझा बनकर तुम मेरे कन्धे पर सवार हो! रहो सवार!..."

बाहर मेघ गरज उठे। बरसात के पानी-भरे बादलों की गम्भीर गरज। घने गाढ़े अन्धकार में लगातार रिमझिम पानी। बड़े-बड़े बेंग खुशी के मारे बोल रहे थे। आज झींगुर की झीं-झीं नहीं सुनाई पड़ रही थी। सहसा रास्ते पर रोशनी दिखाई दी। देवू ने सिर उठाकर खिड़की से बाहर झाँका। इस बारिश में इतनी रात को कौन जा रहा है? जाने में यों ऐसे आश्चर्य का कुछ नहीं था। फिर भी उसने आवाज दी—"कौन, कौन जा रहे हो?"

जवाब मिला, "जी, हम लोग हैं गुरुजी! मैं सतीश!"

"सतीश?"

"जी! खेत में एक लकड़ी बाँधनी है। सोचा था, कल बाँधूँगा। लेकिन देवता जिस ढंग से उतरा है कि रात को न बाँधें तो खेत की माटी-वाटी सब बुहारकर ले जाएगा।"

देबू ने निःश्वास फेंका। निःश्वास नाहक ही फेंका। दुनिया में सबसे दुखी यही लोग हैं। गृहस्थ तो घर में सो रहे हैं। ये भागीदार हलवाहे इतनी रात को उनका खेत बचाने के लिए चले जा रहे हैं। गोकि इनको खुराकी कर्ज देकर वे सैकड़े पचास सूद लेते हैं।

अँधेरे में ताकते हुए देबू यही सोच रहा था। आज यह घटना इस समय उसके लिए महत्त्वपूर्ण हो गयी। लेकिन किसानों के गाँवों में यह घटना बड़ी मामूली-सी है।

"गुरुजी!" डरी हुई आवाज में किसी ने चुपचाप पुकारा।

"कौन?" देबू उठ बैठा।

"जी, मैं सतीश!"

"सतीश? क्या बात है सतीश?"

"जी, मौलकिनी के बरगद के नीचे 'जमाट-बस्ती' मालूम पड़ती है।"

"क्या कह रहे हो? 'जमाट-बस्ती'?"

"जी, बस्ती से निकला तो देखा कि खेत में रोशनी है। इस पानी में भी काफी

जोर की रोशनी। लाल रोशनी दप-दप कर रही है। गौर किया। मौलकिनी के बाँध पर बरगद के नीचे मशाल जल रही है।"

'जमाट-बस्ती' यानी मशाल लिये डकैत जमा हैं। दरवाजा खोलकर देबू बाहर निकला। बोला, "तुम जल्दी से भूपाल चौकीदार को तो बुला लाओ!"

"आप घर के अन्दर जाएँ, गुरुजी! मैं तुरन्त उसे बुला लाता हूँ।"

सतीश चला गया। देबू अँधेरे में ही स्थिर होकर खड़ा रहा। जमाट-बस्ती का क्या ठिकाना! बरसात के दिनों में लोगों में बेहद अभाव है। तिस पर दुर्योग की यह रात! जो लोग चोरी-डकैती करते हैं, दुनिया के अभाव और गरीबी में उनका सोया आक्रोश सबसे पहले इसी खूँख्वार पापवृत्ति को छेड़कर जगाता है और तब बाहरी दुनिया के इन दुर्योगों का सुयोग उन्हें हाथ के इशारे से बुलाता है; धीरे-धीरे वे लोग आपस में सहयोग कायम करते हैं। उसके बाद निष्ठुर उल्लास से एक दिन बाहर निकल पड़ते हैं। निश्चित स्थान पर आकर एक आदमी माटी की हाड़ी में मुँह डालकर एक अजीब भयंकर आवाज रात के सन्नाटे में गुँजा देता है। उसी इशारे से सब लोग आ इकट्ठे होते हैं। फिर मिल-जुलकर शुरू करते हैं अपना अभियान। उस समय उन्हें दया नहीं होती, माया नहीं होती, आँखों में पौरुष-विस्मृति की एक ज्वाला जल उठती है—उस वक्त वे अपनी सन्तान को नहीं पहचानते; सर्वांग में विनाश की बेरोक चंचलता जाग पड़ती है। उस समय जो रुकावट डालता है उसकी गरदन काटकर वे उछाल देते हैं या खुद मरते हैं; दल का कोई मरता है तो उसका सिर काटकर चल देते हैं।

देबू अँधेरे में खड़ा-खड़ा सिहर उठा। अभी जाने किस टोले में शोर मचाते हुए वे कूद पड़ेंगे! भूपाल अभी तक आ क्यों नहीं रहा है? उसके रास्ते की तरफ वह परेशान निगाहों ताकने लगा। वर्षा-मुखर रात, मेढकों की लगातार टर्र-टर्र जाने कहाँ तो पानी से भीजकर उल्लू बोलने लगा। यह रात भी जैसे उन निशाचरों-जैसी ही उमंग-भरी हो उठी है। एड़ी से चोटी तक उसके शरीर में उत्तेजना का एक प्रवाह धीरे-धीरे तेज हो उठने लगा।...लेकिन भगवान, तुम्हारी दुनिया में इतना पाप क्यों है? लोगों में ऐसी खौफनाक प्रवृत्ति क्यों? तुम लोगों को पेट-भर खाना क्यों नहीं देते? तुम्हीं तो हर रोज हर किसी के लिए नियम से खाने की व्यवस्था करते हो! महामारी में, भूकम्प में, बाढ़ में, आग में, आँधी में तुम खतरनाक खेल खेलते हो, भयंकर हो उठते हो, हम समझ लेते हैं। वैसे में हाथ जोड़कर हम तुम्हें पुकारते हैं—हे प्रभु, अपना यह रुद्र रूप रोको! हमारी वह पुकार तुम नहीं भी सुनते हो तो तुम्हारी महिमामयी विराट् मूर्ति के सामने हम बेबस कीड़े-मकोड़ों की तरह मर जाते हैं, हममें शिकायत करने की शक्ति भी नहीं रहती। लेकिन मनुष्य की इस खूँख्वार शक्ल को तो तुम्हारा वह रुद्र रूप नहीं कह सकते! यह तो पाप है! आखिर यह पाप क्यों? मनुष्य में यह पाप कहाँ से आया?

भूपाल ने पुकारा, "गुरुजी!"

"हाँ, चलो!" देबू उछलकर रास्ते पर आ गया।

"नहीं, पहले गाँव के किनारे से देख लें कि है क्या!"

"ठहरिए गुरुजी!"—पीछे से सतीश बाउरी ने कहा। वह अपने टोले के और कई लोगों को जगाकर साथ ले आया था।

छह

गाढ़ी अँधेरी रात के परदे में ढँकी धरती; आसमान के नक्षत्र गायब। एक गाढ़े जमे हुए अँधेरे के सिवाय सारे-कुछ का अस्तित्व खो गया था। उत्कण्ठा से भरे ये कुछ लोग अपनी नजदीकी के लिए परस और धीमी-धीमी बातचीत के शब्द-बोध से ही एक-दूसरे के निकट जिन्दा थे। इस अखण्ड अन्धकार को कहीं परँ खण्डित करके एक नाचती हुई लौ जल रही थी। उत्कण्ठित आदमियों की आँखों में शंका-भरी दृष्टि। देबू ठीक सामने ही खड़ा था। वह सब-कुछ को ओझल कर देनेवाले अँधेरे में जगह का अन्दाज लगा रहा था। यह गाँव, यह बैहार, यहाँ की दिशा-दिशा से उसका गहरा परिचय जो है! आज अगर वह अन्धा भी हो जाए, फिर भी वह स्पर्श से, गन्ध से, मन के परिमाप से आँखवाले की तरह सब कुछ पहचान लेगा। तिस पर अब इस इलाके में कर्मकोलाहल से दिन-रात मुखर एक अद्‌भुत पुरी हो गयी है; इस दुर्योग की रात में भी वह समान रूप से बोल रही है। मयूराक्षी के उस पार जंक्शन स्टेशन; स्टेशन के चारों तरफ कल-कारखाने, वहाँ मालगाड़ी की शण्टिंग की आवाज, मिल के इंजन की आवाज, बीच-बीच में रेल के इंजन की सीटी।

देबू के सामने ही वह बायें कोने पर पच्छिम-दक्खिन में जंक्शन स्टेशन की आवाजें। उसके उत्तर मयूराक्षी नदी। जंक्शन बनने के पहले ऐसी अँधेरी रात में इस गाँव के लोगों को मयूराक्षी दिशा का संकेत देती थी। देबू से बायें पूरब-पश्चिम बह रही है मयूराक्षी नदी। उस मयूराक्षी को धनुष की प्रत्यंचा-सी छोड़कर आधे चन्द्रमा के आकार का वह रहा कंकना। कंकना के उत्तर-पूरब कुसुमपुर, उसी के बाद महूग्राम, महूग्राम के बाद शिवकालीपुर, शिवकालीपुर से दक्खिन मयूराक्षी से लगा देखुड़िया। इस आधे चाँद के आकार के घेरे में यह बैहार का नाम ही है पंचग्राम का बैहार। इस बैहार में पाँचों गाँवों की सीमा की जमीन है। इसके सिवा प्रत्येक

गाँव की सीमा में इन पाँचों गाँवों की रैयत की जमीन है। इन फैले हुए बैहार की छाती में एक जगह इस रिमझिम बारिश में भी आग की लौ नाच रही है—शायद हवा से काँप रही है। अँधेरे में हिसाब लगाकर देबू ने समझा, सतीश ने ठीक ही अनुमान किया है, वह जगह मौलकिनी का बरगदतला है। जाने किस भूले अतीत में किसी ने मौलकिनी नाम का वह तालाब खुदवाया था। विशाल तालाब। किसी समय इस तालाब ने पंचग्राम के बैहार के काफी बड़े हिस्से की सिंचाई के लिए पानी जुगाया है। उस तालाब के बाँध पर वह जो प्रकाण्ड बरगद खड़ा है; वह भी शायद तालाब की खुदाई के समय ही लगाया गया था। आज भी धूप से तपा प्यासा किसान मजे से उस तालाब का पानी पीता है, उस पेड़ की छाया में सुस्ताकर जुड़ाता है। परन्तु बहुत दिनों से ही रात में उस बरगद के नीचे 'जमाट-बस्ती' की मशालें जल उठती हैं। जमाट-बस्ती की और भी कई जगहें हैं। मयूराक्षी के बाँध पर अर्जुन पेड़ के नीचे, कुसुमपुर के मियाँ लोगों के आम के बगीचे में भी अँधेरी रात में ऐसी ही रोशनी जला करती है। लेकिन आज की रोशनी मौलकिनी के बरगद के नीचे ही जल रही है।

देबू ने कहा, "मौलकिनी के बरगदतले है, भूपाल! रोशनी भी मशाल की ही है।"

भूपाल ने कहा, "जी हॉ, भल्लों की जमात है।"

"भल्लों की जमात?"

"हाँ, बिलकुल सही! मशाल जलाकर भल्लों के सिवा और जमात तो जुटती नहीं!"

भल्ला यानी बागदी। बंगाल में ये भल्ले बागदी शक्ति के लिए बड़े मशहूर हैं। शारीरिक बल, लठैती के कौशल और खास करके भाला चलाने की वीरता के लिए किसी समय ये बड़े ही खूँख्वार थे। शारीरिक बल और लठैती अभी भी पुश्तैनी तौर पर बरकरार है। डकैती कभी इनका नाज का पेशा थी। अँगरेजों के जमाने में, बंगाल के अभिजात वर्ग के नये जागरण के समय नये आदर्शों से अनुप्राणित समाज-नेताओं के सहयोग से शासकों ने छोटी जाति के खूँख्वार लोगों के साथ-साथ इन भल्ला लोगों का भी काफी दमन किया था। फिर भी वे लोग बिलकुल मर नहीं गये। आज बेशक अपनी शक्ति की संस्कृति को वे बहुत छिप-छिपाकर पालते हैं। औरतों-जैसा घाघरा-चोली पहनकर जमात बनाये नाचते-फिरते हैं। कहीं अगर ज्यादा पारिश्रमिक मिलता है, तो बल और लठैतों के करिश्मे दिखाते हैं। साधारणतया ये खेतिहर हैं, बाहर से बड़े ही शान्त। लेकिन बीच-बीच में, विशेष रूप से बरसात के दिनों में जब बड़ा अभाव पड़ आता है, उनकी यह दुष्प्रवृत्ति जाग पड़ती है। वैसे में परस्पर दुःख-सुख की बातें करते-कराते कब डकैती का मनसूबा गाँठ लेते हैं, इसे वे भी नहीं समझते। राय-सलाह जब पक्की हो जाती है तो चल पड़ते हैं। भल्ला

बागदियों के सिवा भी इस तरह के सम्प्रदाय हैं—डोम हैं, हाड़ी हैं। और फिर सभी सम्प्रदायों का मिला-जुला दल भी है।

भूपाल ने कहा, "यह भल्ला बागदियों का दल है। देखुड़िया भल्ला बागदियों का गाँव है। दूसरी जाति के भी कुछ लोग हैं, परन्तु संख्या में भल्ला ही प्रधान हैं। पहले देखुड़िया के ये भल्ला ही पंचग्राम के बाहुबल थे। आज दो सौ साल से भी ज्यादा पहले से ये लुटेरे बन गये हैं।"

ये कई आदमी काठ के मारे-से खड़े थे। कभी-कभी धीमे-धीमे कुछ बात हो जाती थी, फिर वही सन्नाटा। इधर दूर पर गहरे अन्धकार में मशाल की रोशनी जल रही थी। देबू नहीं रहा होता तो ये जरूर अपनी अक्ल से जैसा समझते, करते। देबू की प्रतीक्षा में ही सब चुप थे। सतीश बाउरी ने कहा, "गुरुजी?"

"हूँ!"

"हाँक लगाऊँ?"

"हाँक लगाने से लोग-बाग जगे हैं, यह सोचकर ये निशाचर लौट जा सकते हैं। कम-से-कम इस गाँव की तरफ नहीं आएँगे ऐसा लगता है, लेकिन वे अगर माते हुए हों तो जरा भी विलम्ब न करके इस गाँव को छोड़कर दूसरे सोये गाँव पर कूद पड़ेंगे।"

भूपाल ने कहा, "घोष बाबू को खबर करें गुरुजी?"

"श्रीहरि को?"

"जी हाँ! उन्होंने बन्दूक ली है। बन्दूक है उनके पास। उनके यहाँ कालू शेख है। इसके अलावा घोष बाबू यह समझ लेंगे कि यह हरकत किसकी है!"—भूपाल जरा हँसा।

श्रीहरि आज गाँव का जमींदार है। आज वह गिना-माना आदमी है। लेकिन एक समय जब वह छिरू पाल के नाम से मशहूर था, तो खूँख्वारपन में वह इन्हीं लोगों के समान था। बहुतों का कहना है कि खेती और उधार कर्ज लगाने से जमींदार बनने की हैरतअंगेज कहानी की आड़ में ऐसे ही निशाचरों से साँठ-गाँठ की बात छिपी है। उस समय छिरू शायद डकैती का माल भी रखता था। अनिरुद्ध लुहार की धान-चोरी के समय ही सिर्फ एक बार उसके घर की तलाशी नहीं हुई थी—उसके पहले भी इसी सन्देह पर और कई मर्तबा खाना-तलाशी हो चुकी थी उसके यहाँ। अभी तो वह जमींदार है, प्रभाववाला आदमी है, अब वह वैसों के संसर्ग में नहीं रहता, लेकिन वह ठीक पहचान लेगा कि यह किसका दल है। हो सकता है कालू शेख के साथ हाथ में बन्दूक लिये उस रोशनी को देखता हुआ चुपचाप चल पड़े और जाकर एकाएक बन्दूक चला दे।

देबू ने कहा, "इतनी रात को ऐसे दुर्योग में उसे क्यों कष्ट दोगे, भूपाल! बल्कि एक काम करो। सतीश, अपने टोले का नगाड़ा पिटवा दो। तुम लोगों के पास कै नगाड़े हैं?"

"जी, दो हैं!"

"ठीक है! दो आदमी गाँव के इस-उस छोर पर पीटें!"

नगाड़े की आवाज, खास करके रात को नगाड़े की आवाज इस हलके में आफत आने का संकेत है। जब मयूराक्षी का बाँध टूटता है तो नगाड़े की आवाज होती है। उसमें आगे का गॉव जग जाता है और वहाँ भी नगाड़ा बजने लगता है। उससे उसके आगे का गाँव जग जाता है।

डाका पड़ने पर भी नगाड़ा बजने का नियम था—है भी। परन्तु सभी समय इस नियम का पालन नहीं होता। गाँव में डकैतों के आ जाने पर सब भूल-भाल जाते हैं। और, नगाड़े पर चोट पड़ने से दूसरे गाँव के लोग जगते भी हैं, तो मदद को नहीं दौड़ते, इसलिए कि पुलिस के झमेले में पड़ना पड़ता है, पुलिस को इस बात का सबूत देना पड़ता है कि वे डकैती डालने नहीं, डकैतों को पकड़ने के लिए आये थे।

नगाड़े की बात सतीश को अच्छी ही लगी, उसने तुरन्त दल के दो आदमियों को भेज दिया। लेकिन भूपाल जरा मायूस हुआ। बोला, "घोष बाबू बोर्ड के मेम्बर हैं। उन्हें खबर नहीं भेजने से मुझे फजीहत में पड़ना पड़ेगा।"

लेकिन श्रीहरि को इस बात की सूचना देने के लिए देबू का मन हरगिज राजी न हुआ। जरा देर चुप रहकर बोला, "चलो, हम लोग ही जरा आगे बढ़कर देखें!"

"न, और आगे मत जाना!"

दृढ़ और दबे नारी-कण्ठ से सभी चौंक उठे। इधर अँधेरे के माहौल में यों नितान्त अप्रत्याशित, कौन स्त्री बोली? बिलू की अशरीरी आत्मा?

फिर नारी का गला—"मुसीबत को आते ज्यादा देर नहीं लगती, जमाई!"

देबू ने अचरज से पूछा, "कौन? दुर्गा?"

"हाँ!"

लगभग सभी एक साथ बोल उठे, "दुर्गा?"

दुर्गा ने 'हाँ' कहा और तुरन्त मजाक से बोली, "डरो मत! मैं भुतनी नहीं, औरत हूँ! दुर्गा!"

"तू कब आयी?"

दुर्गा ने कहा, "सतीश भैया ने थानेदार को पुकारा, टोले में लोगों को जगाया। मेरी नींद टूट गयी। फिर घर में नहीं रह सकी। सतीश भैया के पीछे-पीछे चली आयी।"

"तेरे कलेजे की बलिहारी है दुर्गा!" भूपाल ने व्यंग्य से ही कहा।

"यह कलेजा न होता तो रात-विरात परशीडण्ट बाबू के बँगले पर पहुँचाने के लिए थानेदार को और कौन औरत मिलती? और बख्शीश भी कैसे मिलती? और नौकरी की कैफियत से ही कैसे बच पाता?"

दुर्गा के कहने में इतिहास का काफी संकेत था। भूपाल लजा गया।

इतने में गाँव के दोनों सिरों पर नगाड़े बज उठे। आफत की इस घनी अँधेरी रात में डुग-डुग की आवाज दिशा-दिशा में फैल गयी। देबू ने हाँक लगायी—आ है! आ है! साथ ही साथ सभी हाँक दे उठे—आ है! दूर पर अँधेरे में जो रोशनी हवा से काँपती हुई मानो नाच रही थी, वह कुछ अस्वाभाविक-सी तेजी से काँप उठी। देबू ने फिर सामूहिक स्वर में हाँक लगायी—आ है! आ है! गाँव में इतने में ही हलचल हो गयी थी। अँधेरी रात में सब एक-दूसरे को आवाज देने लगे। ऊँची आवाज में पहरे की घोषणा होने लगी। यह आवाज श्रीहरि के लठैत कालू शेख की थी। दोनों नगाड़े डुग-डुग बजते ही रहे।

बैहार के अँधेरे में वह जलती मशाल एक बार झुकी और मानो सहसा माटी के अन्दर छिप गयी। उन लोगों ने मशाल को ओदी माटी में डालकर बुता दिया। और उधर एक नगाड़ा और कहीं बजने लगा।

देबू ने कहा, "तुम घोष बाबू को खबर कर दो, भूपाल! नाहक क्यों झमेले में पड़ोगे!"

पीछे से किसी का गम्भीर गला सुनाई दिया—"भूपाल!"

लालटेन भी आ रही थी एक। भूपाल चौंक उठा—यह तो खुद घोष बाबू! श्रीहरि करीब आया। हाथ जोड़कर भूपाल ने कहा, "हुजूर!"

"क्या बात है?"

"जी, बैहार में जमाट-बस्ती!"

"कहाँ?"

"लगा कि मौलकिनी के बाँध पर। अब तक रोशनी जल रही थी। हमारे नगाड़े की आवाज और हाँक सुनकर बुझा दी है।"

"मुझे खबर क्यों नहीं दी तूने?"

देबू ने कहा, "खबर भेजी ही जा रही थी कि तुम आ गये।"

"देबू चाचा?"

"हाँ।"

"हुँ! कौन लोग थे, कुछ पता चला?"

"कैसे पता चले? लेकिन मशाल देखकर भूपाल कह रहा था, भल्ला लोग थे।"

बन्दूक में कारतूस भरकर आसमान की ओर लगातार दो आवाज कर दीं श्रीहरि ने। गोली की तीखी और ऊँची आवाज ने अँधेरे को जैसे चीर-फाड़ डाला। चेम्बर से छोड़ी हुई कारतूसों को निकालकर श्रीहरि ने कहा, "देबू चाचा, यह सब तुम लोगों के विरोध के नारे का नतीजा है।"

देबू भौचक्का रह गया। हैरान-सा बोला, "विरोध के नारे का नतीजा?"

"हाँ! देखुड़िया के तिनकौड़ी की कारस्तानी है। वह तुम लोगों का एक पण्डा

है। भल्लों की जमात बहुत पहले ही टूट चुकी थी। उसी ने फिर से जोड़ी है। मुझे खबर भी मिली। खेत में काम करते-करते तिनकौड़ी ने क्या कहा, मालूम है? कहा, लगान बढ़ाने का मजा चखा देंगे। मेरा नाम लेकर कहा, उसे एक दिन मूली-सा मरोड़ दूँगा।"

देबू ने धीर भाव से ही कहा, "उन बातों की कोई कीमत नहीं है श्रीहरि! मैंने सुना, तुम भी तो कह रहे हो कि जो ज्यादा होशियारी करेंगे उन्हें गोली से उड़ा दोगे।"

इतने में पीछे चटाक् की आवाज हुई, जैसे किसी ने किसी को जोरों से चपत लगायी हो। और आवाज के साथ ही वहीं दुर्गा बोल उठी, "मेरा हाथ पकड़कर खींचते हो, बदमाश पाजी!"

श्रीहरि ने लालटेन उठायी। उसका लठैत कालू दुर्गा के सामने खड़ा था। श्रीहरि जरा हँसकर बोला, "दुर्गा?"

दुर्गा साँपिन-सी फुफकार उठी, "तुम्हारा आदमी मेरा हाथ पकड़कर खींचता है?"

श्रीहरि ने कालू को डपट दिया, "कालू हट जा वहाँ से!" उसके बाद फिर जरा हँसकर बोला, "इतनी रात को तुम यहाँ कैसे?" और तुरन्त उसने खुद ही उसका जवाब ढूँढ़ लिया, "ओ, देबू चाचा के साथ आयी हो?"

देबू कुछ क्षण श्रीहरि की ओर ताककर दुर्गा से बोला, "चल दुर्गा, घर चल! इतनी रात को बेहार में नहीं झगड़ते। सतीश, चलो!"

सभी लोग चले गये। सिर्फ भूपाल श्रीहरि को छोड़कर नहीं जा सका।

श्रीहरि ने कहा, "कल थाने में डायरी लिखा देना! समझा?"

"जी, जैसा हुकुम!"

"देखुड़िया के तिनकौड़ी के नाम से मैंने डायरी करा रखी है। दरोगाजी को याद दिला देना। मैं भी कल शाम को जाऊँगा।"

भूपाल भी जाति का बागदी है। उसकी पुलिस की नौकरी बहुत दिनों की हो गयी। उसका अन्दाज सही था, जगह भी ठीक मौलकिनी तालाब के बाँध पर बरगद के नीचे, और जो लोग जुटे थे वे भी भल्ला बागदी थे। लेकिन अगुआ तिनकौड़ी न था। श्रीहरि का अन्दाज गलत भी था, क्रुद्ध के कारण भी था। तिनकौड़ी जाति का सद्गोप है। श्रीहरि से दूर का रिश्ता भी पड़ता है। लेकिन श्रीहरि से बहुत दिनों से अनबन है। तिनकौड़ी वज्र गँवार है। दुनिया में वह किसी के भी आगे किसी खातिर सिर नहीं झुकाता। कंकना के लखपति बाबू से लेकर श्रीहरि तक और उधर साहब-सूबा से लेकर दरोगा तक किसी को वह सिर नवाकर हाथ नहीं जोड़ता। इसके लिए उसे बहुत-बहुत झेलना पड़ा है।

देखुड़िया के भल्ला बागदियों का वह नेता जरूर है, लेकिन उनकी डकैती या

चोरी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसके लिए वह भल्लों की लानत-मलामत करता है, बहुत बार आपे से बाहर होकर मार भी बैठता है। उसकी वह फजीहत, वह मार भल्ला लोग सहते हैं, क्योंकि उनकी पाप की कमाई से कोई नाता न रखते हुए भी उन लोगों से उसका अटूट सम्बन्ध है। आड़े में वह हरगिज कभी उन्हें नहीं छोड़ता। डकैती के मामले में, बी. एल. केस में वही उन लोगों का सबसे बड़ा मददगार है, मामले-मुकदमों की देख-भाल और पैरवी वही करता है। सब-कुछ उनकी पाप की कमाई से ही करता है, लेकिन कभी पाई-पैसे का भी गोलमाल नहीं होता। हाँ, पैरवी के लिए जाता है तो उन्हीं पैसों का थोड़ा-बहुत भला-बुरा खाता है, बीड़ी के बदले सिगरेट खरीदता है, जीत होने पर शराब भी पीता है। इससे ज्यादा और कुछ भी नहीं। जो बच जाता है, उसकी पाई-पाई लौटा देता है। सिर्फ इसीलिए लोगों का यह खयाल है कि भल्लों के इन पापकर्मों का भी नेता तिनकौड़ी ही है। पुलिस में उसका नाम बहुत जगह दर्ज है। भल्लों के प्रायः हर मामले में पुलिस ने तिनकौड़ी को भी लपेटने की कोशिश की है, पर किसी भी तरह से वह कारगर न हो सकी। भल्लों में ऐसे लोग बहुत कम हैं जो कबूल कर लें। कभी-कभार निरा कम उम्र का नया ही कोई शायद जिसने पुलिस के डर या लालच से कुछ स्वीकार कर लिया हो, लेकिन वैसों की जबान से भी कभी तिनकौड़ी का नाम नहीं निकला।

बी. एल. केस ऐसे में पुलिस का एक अचूक हथियार है। लेकिन बी. एल. केस यानी 'बैड लाइवलीहुड' या गलत उपायों से रोटी कमाने के इस जुर्म में तिनकौड़ी की बाबत एक अड़चन आती थी—वह थी उसका बपौती जोत-जमा। जोत-जमा अच्छा ही था उसका। और गँवार होते हुए भी तिनकौड़ी अपने-आप में खेतिहर बड़ा अच्छा है—इस बात से इलाके का कोई गवाह इनकार नहीं कर सका। इस बात के ब्रह्मास्त्र-से कुछ प्रमाण हैं। जिले के सदर में कृषि और पशुओं की जो प्रदर्शनी हुआ करती है, उसमें गोभी, मूली आदि के लिए तिनकौड़ी बहुत बार इनाम पा चुका है, प्रमाण-पत्र पा चुका है। दो-एक बार तमगा भी मिला है; बैल, दुधार गाय के लिए भी प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं। वह इन सबूतों को पेश कर देता है।

इतने दिनों के बाद अब पुलिस की कोशिश कारगर होने को आयी, इसलिए कि ऐसा उपजाते हुए भी उसकी अधिकांश जोत-जमा खत्म हो आयी है; पचीस बीघे में से महज पाँच बीघे बच रहे हैं।

एक समय तिनकौड़ी को ऐसी प्रेरणा हुई थी कि अपने गाँव के अधीश्वर पेड़ तले रहनेवाले बाबा महादेव का एक शिवाला बनवा देंगे। उस समय उसके हाथ में कुछ रुपये भी आये थे। उसके गाँव की कुछ सीमा मयूराक्षी के उस पार तक फैली थी; जंक्शन का एक नया यार्ड बनाने के लिए उस सीमा की लगभग सारी जमीन रेल कम्पनी ने सरकार के भूअर्जन कानून के अनुसार खरीद ली। उस क्षेत्र में तिनकौड़ी की भी कुछ जमीन थी, कुछ बाबा महादेव की भी थी। बाबा की जमीन

की कीमत बाबा के मालिक जमींदार ने ले ली। राशि कोई खास बड़ी नहीं थी—कुल दो सौ रुपये। तिनकौड़ी को चारेक सौ मिले। इसके अलावा उसके घर में धान भी काफी था। तिनकौड़ी उत्साहित होकर पेड़-तले रहनेवाले बाबा को गृहवासी बनाने के जतन में जी-जान से जुट पड़ा। उसने जमींदार से जाकर कहा, "बाबा की जमीन का जो दाम मिला है उससे बाबा के सिर पर कोई छाँह तैयार करा दी जाए।" जमींदार ने कहा, "दो सौ रुपयों में शिवाला नहीं बनता।"

तिनकौड़ी को अदम्य उत्साह था। वह बोला, "इसके लिए हम चन्दा इकट्ठा करेंगे। कुछ आप दें। भल्ला लोग मेहनत-मजूरी करके देंगे। किसी तरह से हो जाएगा, आप शुरू कर दें।"

जमींदार बोले, "पहले तुम लोग श्रीगणेश करो, चन्दा वसूलो; उसके बाद मैं यह रुपया दूँगा।"

तिनकौड़ी ने वही बात मान ली। भल्ला लोगों के साथ शुरू कर दिया काम। कोई तीस हजार ईंटें पाथ लीं। और जाकर जमींदार से कहा, "ईंटें पकाने के लिए कोयला चाहिए। रुपये दीजिए!"

जमींदार ने उसे भरोसा दिया, "सीधे कोठों से ही कोयला मँगवा देंगे।"

कोयला आने के पहले ही बारिश शुरू हो गयी। तीस हजार ईंटें गलकर फिर माटी की ढेर बन गयीं। ताड़ के पत्ते काट-काटकर तिनकौड़ी ने बहुत ढाँका, पर ईंटों को नहीं बचा सका। मारे गुस्से के वह जमींदार के पास जा धमका। कहा, "नुकसान आपको भरना पड़ेगा।"

जमींदार ने तुरन्त उसे वहाँ से निकलवा दिया। चिढ़कर तिनकौड़ी ने देवोत्तर के रुपयों के लिए जमींदार पर नालिश कर दी। दो सौ रुपये वसूलने के लिए मुन्सिफी कोर्ट से जजी तक लड़ने में उसने साढ़े तीन सौ रुपये खर्च किये। यहीं से उसकी जमीन बिकनी शुरू हुई। रुपये वसूल नहीं हुए। ऊपर से जमींदार ने मुकदमे का खर्च अदा कर लिया। लोगों ने तिनकौड़ी की बेवकूफी की बेहद निन्दा की, पर तिनकौड़ी ने इसके लिए कभी अफसोस नहीं किया। वह जैसा था, वैसा ही रहा, सिर्फ महादेव को प्रणाम करना छोड़ दिया। आजकल जितनी भी बार उधर से गुजरता है, बाबा को अँगूठा दिखा देता है।

देवाधिदेव के उद्धार की इस चेष्टा के बाद भी जो बच रहा था, उससे भी उसकी जिन्दगी मजे में चल जाती। लेकिन ठीक इसी के बाद शिबू दरोगा की नाक पर घूँसा मारने के मुकदमे में उसे लगभग तीन बीघा जमीन और बेचनी पड़ी। शिबू दरोगा उसके घर की तलाशी लेने आया था। जब आपत्तिजनक कोई चीज नहीं मिली तो शिबू दरोगा के सिर पर खून सवार हो गया। खिसियाकर उसने तिनकौड़ी के घर में चावल-दाल, नमक-तेल जो कुछ भी सामान था, बिखेरकर बराबर कर दिया। तलाशी लेने में तिनकौड़ी ने कोई एतराज नहीं किया, बल्कि वह हँस रहा था। लेकिन

शिबू दरोगा का यह प्रलयंकर ताण्डव देखकर वह भी पागल हो उठा। आव देखा न ताव, जमा दिया दरोगा की नाक पर एक घूँसा। बड़ा सख्त घूँसा—दरोगा की नाक पर आज भी वैसा ही है। उसी पर पुलिस ने उस पर मुकदमा किया। लगे-लगे तिनकौड़ी ने गैरकानूनी हरकत के लिए दरोगा पर नालिश की। गाँव के सभी भल्लों ने तिनकौड़ी की ओर से गवाही दी, बेखौफ होकर दरोगा के जोर-जुल्म की बात कह दी। पुलिस साहब ने मामले का मेट-माट कर दिया। लेकिन तब तक तिनकौड़ी का और भी तीन बीघा बिक चुका था।

इस समय तिनकौड़ी पर विरोध आन्दोलन की धुन सवार हो गयी। फिर भी भल्लों को लेकर श्रीहरि के यहाँ डाका डालने-जैसी मनोवृत्ति उसकी नहीं है। खेत पर उसने यह कहा जरूर था कि मूली की तरह एक दिन छिरू को मरोड़ दूँगा। लेकिन वह महज बात की बात थी। उसकी बात का ढंग-ढर्रा ही ऐसा है। यहाँ तक कि अपनी स्त्री के भी जरा जोर से बोलने पर वह चिल्ला उठता है—'गले पर लात रखकर वह लताड़ मारूँगा कि...'

इस भयावनी रात में नगाड़े की चोट सुनकर तिनकौड़ी की बीवी जग गयी थी। तिनकौड़ी की नींद गजब की है। खा-पीकर बिस्तर पर लेटते ही उसकी आँखें मुँद जाती हैं और दो-तीन ही मिनिट के अन्दर उसकी नाक बजने लगती है। उसकी नाक का बजना भी कुछ ऐसा-वैसा नहीं है। जितनी ही अजीब उसकी आवाज होती है उतना ही गुरु गम्भीर होता है उसका गर्जन। रात को गाँव की सुनसान गैल में वह आवाज तिनकौड़ी के मकान से कम-से-कम आधी रस्सी दूर तक सुनाई पड़ती है। एक बार इस थाने का नया जमादार जब पहले दिन देखुड़िया की 'राउण्ड' में निकला तो तिनकौड़ी के घर से कोई आधी रस्सी के फासले पर चौंककर ठिठक गया। चौकीदार से कहा, "ऐ, रुक जा!"

चौकीदार कुछ समझ नहीं सका। उसके लिए यह कोई नयी बात नहीं थी। उसने अकचकाकर पूछा, "जी?"

जमादार दो कदम पीछे हटकर चारों तरफ देखता हुआ यह निश्चय करने की कोशिश कर रहा था कि वह आवाज कहाँ से आ रही है। दाँत पीसकर बोला, "साँप! हरामजादा, सुन नहीं रहा है, गुर्रा रहा है!" उसके बाद बोला, "शायद साँप-नेवले की लड़ाई हो रही है। सुन रहा है?"

चौकीदार अब समझा। हँसकर बोला, "जी नहीं!"

"नहीं, वह थप्पड़ जमाऊँगा कि..."

"जी, वह तिनकौड़ी की नाक बज रही है।"

"नाक बज रही है?"

"जी हाँ! तिनकौड़ी मण्डल की!"

आँखें फाड़कर दरोगा ने फिर एक बार पूछा, "नाक बज रही है?"

अबकी चौकीदार से हँसी रोकते न बना। खुक्-खुक् करके हँसते हुए उसने कहा, "जी हाँ, नाक बज रही है!"

"कौन तिनकौड़ी? जो पुलिस ससपेक्ट है?"

"जी!"

"रोज उसे पुकारता है?"

चौकीदार चुप रह गया। वह उसे कभी नहीं पुकारता है। उसकी नाक का बजना ही उसके घर में होने का प्रमाण है, यही सुनकर चला जाता है।

दरोगा ने कहा, "रहने दो! कम्बख्त को मत पुकारा करो; जिस दिन नाक न बजे उस दिन बताना।" और कुछ देर के बाद बोला, "साला बड़े सुख से सोता है रे!"

ऐसी नींद है तिनकौड़ी की। जगा दो तो खैर नहीं। लेकिन आज इतनी गहरी रात में नगाड़े की आवाज सुनकर उसकी स्त्री लक्ष्मीमणि स्थिर नहीं रह सकी। खेतिहर की बेटी—वह इस तरह नगाड़ा पिटने का मतलब समझती है। उसे लगा कि मयूराक्षी में बाढ़ आ गयी है। तिनकौड़ी के एक लड़का है, एक लड़की। लड़के की उम्र कोई सोलह साल है, लड़की की चौदह। उनकी भी नींद टूट गयी थी। लड़की माँ के साथ ही सोया करती है। लड़का सोता है बगल के कमरे में। तिनकौड़ी बाहर के बरामदे पर सोता रहता है। लाठी और दाव उसके बगल में रखा रहता है।

दरवाजा खोलकर लक्ष्मीमणि बाहर आयी। ठेलकर तिनकौड़ी को जगाया—"अजी ओ, सुनते हो, ओ जी?"

ठेलने से तिनकौड़ी चिल्लाकर उठ बैठा—"ऐ कौन है?"—और झट उसने दाव उठा लेने के लिए हाथ बढ़ाया।

लक्ष्मीमणि जरा पीछे हट गयी, बोली, "अरे, मैं हूँ, मैं। अजी..."

"कौन? लक्ष्मी?"

"हाँ!"

"क्या है?"

"नगाड़ा बज रहा है। लगता है, बाढ़ आयी है!"

"बाढ़?"

"वह सुनो नगाड़ा!"

तिनकौड़ी ने कान लगाकर सुना; कहा, "हुँ!"

लक्ष्मी बोली, "घर-द्वार सँभालें?"

तिनकौड़ी ने जवाब नहीं दिया। इस दुर्योग में ही वह बरामदे के छप्पर पर चढ़ गया, वहाँ से कोठे के छप्पर पर और फिर ध्यान से सुनने लगा। नगाड़ा बज रहा था। हाँकें भी लग रही थीं। मगर यह हाँक तो बाढ़ की नहीं! आ है!—यह हाँक तो चौकीदार-जैसी है। मयूराक्षी से तो कोई आवाज भी नहीं आ रही है। नदी

में गरज नहीं है। फिर तो डकैती के खतरे का नगाड़ा पिट रहा है! कौन हैं? कौन हैं ये?

उसके गाँव की गैल पर चौकीदार ने हाँक लगायी—"आ है!"

तिनकौड़ी ने बार-बार अपने ही तईं गरदन हिलाकर कहा, "हुँ! हुँ! हुँ!" डकैती के खौफ से गाँव-गाँव में नगाड़ा बज रहा है और देखुड़िया के भल्लों में सुगबुगाहट भी नहीं! वे लोग लाठी लेकर नहीं निकले हैं—बदमाश! उसने छप्पर पर से ही हाँक मारी—आ है!

चौकीदार ने पूछा, "मण्डलजी?"

"हाँ, ठहर जा!"—तिनकौड़ी कोठे के छप्पर से छलाँग मारकर बरामदे के छप्पर पर आया, वहाँ से उछलकर एकबारगी आँगन में। अब उसे देर नहीं बरदाश्त हो रही थी। दरवाजा खोलकर वह बाहर निकला। पूछा, "भल्ला टोले का कौन-कौन नहीं है रे? पुकारकर देखा है?"

चौकीदार जाति का भल्ला ही था। उसने धीमे-धीमे कहा, "राम तो जरूर ही नहीं है। गोविन्द, रंगललवा (रंगलाल), विन्दाबन (वृन्दावन), तारनी—ये सब भी नहीं हैं। इनके सिवा और लोग घर पर ही हैं।"

"आज तो कोई 'रौण्ड' में नहीं जाएगा थाने से?"

"जी नहीं।"

तिनकौड़ी आप ही आप दाँत पीसने लगा। उधर जमे हुए अन्धकार को चीरती हुई दो-दो गोलियाँ छूटने की आवाज मयूराक्षी के किनारों से होकर निकल गयी। तिनकौड़ी ने शंकित होकर कहा, "बन्दूक की आवाज?"

"जी!"

पीछे से तिनकौड़ी के बेटे ने पुकारा—"बाबूजी!"

बेटा गौर और बेटी सोना—बाप को दोनों बड़े प्यारे हैं। गौर मिडिल स्कूल में पढ़ता है, बाप के साथ खेती का काम भी करता है। लड़के में वैसी धार नहीं है, नहीं तो तिनकौड़ी उसे बी.ए., एम.ए. तक पढ़ाता। बीच-बीच में अफसोस करके कहता है, काश गौर मेरी बेटी और सोना बेटा होती!—सच ही सोना बड़ी अक्लमन्द लड़की है। लोअर प्रायमरी का इम्तहान देकर उसने दो रुपये की माहवारी छात्रवृत्ति पायी थी। परन्तु और आगे बढ़ने की ज़ुगत नहीं बैठी उसकी। तो भी वह अपने बड़े भाई की किताबें लेकर आज भी पढ़ा करती है, घर के काम-धन्धों में माँ का हाथ भी बँटाती है। देखने में बहुत ही अच्छी लड़की है; मगर अभागिनी है। सात ही साल की उम्र में विधवा हो गयी है। तिनकौड़ी की वह जो क्षुब्ध कामना है, उसमें शायद दुःख भी छिपा हुआ है। सोना अगर लड़का होती और गौर होता लड़की तो उसे बेटी के वैधव्य का दुःख नहीं सहना पड़ता। गौर आखिर सोना की किस्मत लेकर तो पैदा नहीं होता। बेटा गौर उसे बड़ा प्यारा था। वह बाप के ही समान बलवान्

है। रात रहते ही बाप के साथ खेत जाता है, नौ बजे तक उसकी मदद करता है, उसके बाद नहा-खाकर जंक्शन के स्कूल में पढ़ने जाता है। बाबुओं का स्कूल है, इसलिए तिनकौड़ी ने उसे कंकना के स्कूल में नहीं दाखिल कराया। जो बाबू लोग देवता की भी जायदाद हड़प लेते हैं, उनके पढ़ने से बच्चा परायी दौलत हजम करना सीखेगा—तिनकौड़ी का ऐसा खयाल है! चार बजे स्कूल से लौटकर गौर फिर शाम तक बाप की सहायता करता है। शाम के बाद आकर लालटेन जलाकर दस बजे रात तक पढ़ता है।

लड़के की पुकार पर तिनकौड़ी ने कहा, "क्या है बेटे?"

"घर-द्वार सँभालना नहीं होगा?"

"नहीं! तुम लोग सो जाओ जाकर, मैं आया! डरने की कोई बात नहीं है!"—फिर चौकीदार रतन से उसने कहा, "चल, रतन!"

गाँव के बाहर बैहार के किनारे खड़ा होकर तिनकौड़ी बोला, "रतन!"

"जी!"

"सन् अठारह की बाढ़ याद है?"

सन् अठारह की बाढ़ मयूराक्षी के किनारे बसनेवाले नहीं भूल सकते। जिन्होंने वह बाढ़ अपनी आँखों देखी है, वे तो नहीं ही भूलेंगे; जिन्होंने देखी नहीं है उन्होंने कहानी सुनी है और वह कहानी भूलने की नहीं। रतन बागदी के लिए सन् अठारह की बाढ़ उसके जीवन की एक विशेष घटना है। वह बाढ़ रात को आयी थी और बहुत अचानक आयी थी। उस समय रतन का घर गाँव के छोर पर था—मयूराक्षी के बहुत नजदीक। बाढ़ ऐसी अचानक आयी कि रतन के लिए महज बाल-बच्चों के साथ खाली हाथ भी भाग सकना सम्भव नहीं हुआ। लाचार उसे घर के छप्पर पर चढ़कर बैठना पड़ा था। भोर को घर बैठ गया और छप्पर बाढ़ में बह चला। भयंकर बहाव! रतन खुद तो तैरकर अपनी जान बचा सकता था, लेकिन बीवी-बेटे को लेकर उस धारा में तैरना उसके वश की बात न थी। उस रोज तिनकौड़ी और वह राम भल्ला बहुत-सी चमड़े की रस्सियाँ बाँधकर एक-एक करके तैरते हुए आये थे और रस्सी से उस छप्पर को बाँधा था। यह नहीं, ऐन वक्त पर रतन की बीवी डगमगाती हुई बाढ़ के पानी में गिर पड़ी। राम भल्ला और तिनकौड़ी ने झट से पानी में कूदकर उसे भी खींचकर निकाला था। वह बात रतन भूल सकता है भला! रात के अँधेरे में हाथ बढ़ाकर उसने तिनकौड़ी के पाँव छुए और उस हाथ को अपने कपाल से लगाकर कहा, "भला वह मैं भूल सकता हूँ मण्डलजी? आप तो—"

"अपनी बात नहीं, मैं तो रामा की कह रहा हूँ। सही-सलामत लौट आये वह!"

रतन ने कहा, "वह देखिए, मेड़ों पर से काले-काले सब जा रहे हैं वे।"

सात

पिछली रात की उस घटना के बाद श्रीहरि घोष ने बाकी रात जगकर बिता दी। जमाट-बस्ती देखकर वह सोच में पड़ गया। उसे लग रहा था कि पंचग्राम के सारे लोग षड्यन्त्र रचकर उसे घेर लेना चाहते हैं। वे सब उसे पीसकर मार डालना चाहते हैं। दूसरों की उन्नति से कुढ़नेवाले ये डाही लोग! पिछले जन्म के पुण्य और इस जन्म के कर्मफल से लक्ष्मी ने उस पर कृपा की है। उसके घर में उन्होंने अपने चरणों की धूल दी है।—यह कसूर क्या उसी का है? उसने क्या लक्ष्मीजी को औरों के यहाँ जाने को मना किया है? इस इलाके के लिए तो उसने कुछ कम नहीं किया है! प्रायमरी स्कूल का भवन बनवा दिया है। सड़क बनवा दी है, कुआँ बनवाया है, तालाब खुदवाया है, मिट्टी के चण्डीमण्डप को उसी ने पक्का बनवाया है, लोगों के माता-पिता के दाय में, कन्या-दाय में, अभाव में वही तो रुपया कर्ज देता है, धान देता है! ये एहसान-फरामोश यह भी नहीं सोचते! उसके खिलाफ कौन क्या कह सकता है श्रीहरि उन सबकी जानकारी रखता है।

वे अकृतज्ञ लोग कहते हैं—स्कूल का भवन तो बोर्ड ही बनवा देता। आखिर हम लोग भी तो टैक्स देते हैं!

अरे मूर्खो, टैक्स से रुपये ही कितने मिलते हैं?

कहते हैं—न होता तो हमारे बच्चे पेड़ तले ही पढ़ते।

यही ठीक था।

रास्ते के बारे में भी वे यही कहते हैं।

चण्डीमण्डप के बारे में कहते हैं—वह तो श्रीहरि की कचहरी है।

कचहरी नहीं, श्रीहरि घोष की ठाकुरबाड़ी! चण्डीमण्डप जब जमींदार का है और श्रीहरि ने जब गाँव का जमींदारी-स्वत्व खरीदा है, तो वह हजार बार उसका है। कानून ने जब उसे स्वत्व दिया है और सरकार जब उस स्वत्व की रक्षक है, तो उसे उखाड़नेवाले तुम कौन होते हो? देबू घोष के यहाँ की बैठक में न्यायरत्न के पोते ने शायद यह कहा है कि जब चण्डीमण्डप बना, तो जमींदार ही नहीं था। उसे गाँव के लोगों ने बनवाया था; गाँववालों की ही सम्पत्ति था चण्डीमण्डप। न्यायरत्नजी देवता हैं, मगर उनके इस पोते को पर उग आये हैं। पुलिस उसके हर कदम पर नजर रखती है। चण्डीमण्डप अगर गाँववालों का था, तो उन लोगों ने उस पर जमींदार का दखल क्यों होने दिया?

तालाब श्रीहरि ने खुदवाया; लोग उसका पानी पीते हैं, पर कहते यह हैं कि पानी श्रीहरि का थोड़े ही है। पानी तो मेघ का है! श्रीहरि ने मछली खाने के लिए पोखर खुदवाया है, आम-कटहल खाने के लिए चारों तरफ बगीचे लगवाये हैं—हम लोगों के लिए नहीं। अगर मना करे, तो हम पोखरे का पानी नहीं पिएँगे।

उसे मना ही कर देना चाहिए। नहीं, ऐसा वह कभी नहीं करेगा। अगला जन्म भी तो है। आनेवाले जन्म में वह इस पुण्य के साथ पैदा होगा। अगले जन्म में वह राजा होगा।

कर्ज की बाबत लोग कहते हैं—कर्ज देता है, सूद लेता है।

गजब है! यह बात एहसान-फरामोशों के ही योग्य है। अजी जनाब, उस आफत की घड़ी में देता कौन है? कर्ज लेने से ही सूद देना पड़ता है।—यही कानून की बात है, यही शास्त्र का नियम है। हूँः, पाखण्डी अकृतज्ञ लोग।

सोचते-सोचते श्रीहरि तीन चिलम तम्बाखू पी गया। आजकल उसे चिलम खुद नहीं चढ़ानी पड़ती है, उसकी बीवी भी नहीं चढ़ाती; नौकर रख लिया है, वही चढ़ाता है।

सवेरे ही वह जंक्शन रवाना हुआ। थाने में बीती रात की जमाट-बस्ती की डायरी लिखा देनी थी। किसी और से यह काम कराने को मन नहीं माना। उसका कारिन्दा आदमी पक्का है। फिर भी उसने खुद जाना ही ठीक समझा। दुनिया में धार बहुत-सी चीजों को काटती है, पर भार नहीं होने से बहुत बार धार से काम नहीं होता। मामूली चोट से नाली काटी जा सकती है, लेकिन बलिदान के लिए भारी दाव की जरूरत पड़ती है। खुद अपने जाने में दरोगा बात को जितना महत्त्व देगा, कारिन्दे के जाने से उसके सौ हिस्से का एक हिस्सा भी नहीं देगा।

टप्पर लगाकर बैलगाड़ी तैयार की गयी। आजकल वह जंक्शन तक पैदल शायद ही जाता-आता है। गाड़ी के साथ चला कालू शेख! कालू शेख ने पगड़ी बाँधी। गाड़ी पर श्रीहरि ने कुछ डाभ, एक घौद मर्तबान केला और कुछ अच्छा कटहल रख लिया। बड़े-बड़े और तन्दुरुस्त दोनों बैल देखने में ठीक एक-से थे। दोनों का रंग सफेद, गले में कौड़ियों की माला के साथ छोटी-छोटी घण्टियाँ। टुन-टुन घण्टी बजाते हुए दोनों बैल तेजी से बढ़ चले।

श्रीहरि सोचने लगा कि डायरी में किस-किसका नाम लिखाये? तिनकौड़ी का नाम तो देना ही पड़ेगा। थाने का दरोगा खुद भी वह नाम कहेगा। शायद पुलिसवाले फिर से तिनकौड़ी पर बी.एल. केस करने की तैयारी कर रहे हैं। दरोगा ने खुद कहा, वह आदमी अपने-आप डकैत न भी हो, डकैती का माल न भी रखता हो, तो भी जब वह भल्लों की पैरवी करता है, तो उसकी साँठ-गाँठ जरूर होगी उनसे।

भल्लों में राम भल्ला है नेता। दूसरे भल्लों का नाम छानबीन के बाद पुलिस ख़ुद निकालेगी। और किसका नाम? रहम शेख का? उसपर भी पुलिस की निगाह है। भल्ला न होने से भल्ला डकैतों के साथ नहीं रहे, ऐसी कोई बात नहीं। रैयतों के विरोध-आन्दोलन में मुसलमानों में उसी आदमी को सबसे ज्यादा उत्साह है। और वह आदमी भी वाहियात है। लिहाजा हड़तालियों में जो खूँख्वार हैं, उन लोगों ने इस मौके से अगर उसके घर डाका डालने की सोची हो, तो उनसे रहम का लगाव रहना कुछ

अजीव नहीं है। भल्ला-प्रधान डाकुओं में मुसलमान भी रहते हैं; मुसलमान प्रधान डाकू-दल में दो-एक भल्लों के होने का भी पता चला है। तिनकौड़ी, रहम और—?

गाड़ी में एक हचकोला लगने से उसकी चिन्ता का सूत्र बिखर गया। 'आह' करके खीझ जाहिर करते ही उसने देखा कि गाड़ी रास्ते के मोड़ पर मुड़ रही है। उसके चेहरे पर हँसी फूटी—अच्छे बैलों का लक्षण ही यही है। रुपये भी तो कुछ कम नहीं लगे। जोड़े का दाम साढ़े तीन सौ रुपये—। उसके मन की बात पूरी न हो सकी। सामने ही अनिरुद्ध लुहार का बरामदा था, बरामदे पर लुहार-बहू नौ-दस साल के एक लड़के को छाती से कसकर चिपकाये हुए है। वह लड़का जी-जान से अपने को छुड़ाने के लिए एक हाथ से उसका झोंटा पकड़े हुए है और दूसरे हाथ से उसे ठेल रहा है। लुहार-बहू के माथे पर घूंघट नहीं है, देह का आवरण भी अस्त-व्यस्त, आँखों में पागल-सी नजर, दुबला पीला मुखड़ा लहू के उच्छ्वास से थम्-थम् कर रहा है।

श्रीहरि का कलेजा कई बार जोर-जोर से धड़क उठा। उसके दिल में बहुत दिन पहले का छिरू झांक उठा, उसकी बहुत दिनों की दबी वासना उमगकर उच्छृंखल हो उठी। उसने तुरन्त अपने को जब्त किया। जमींदार है वह, जाना-माना आदमी है, और अब वह पाप नहीं करेगा। पाप के घर लक्ष्मी नहीं रहती। लेकिन तो भी वह अस्त-व्यस्त घूँघट-रहित पद्म को एकटक देखता रहा।

एकाएक पद्म की नजर भी उस पर पड़ी, बैल के गले की घण्टी सुन गाड़ी की तरफ जो देखा कि श्रीहरि पर नजर पड़ी, वहीं छिरू पाल उसे एकटक देख रहा है। उसने तुरन्त उस लड़के को छोड़ दिया। वह लड़का वही फतिंगा था। सवेरे ही वह जंक्शन से गाँव आया था। आज लोटन-षष्ठी थी। आज के दिन उसे मांजी की याद आयी। याद आने की वजह भी थी। पहले पद्म आज के दिन खाने-पीने की खासी तैयारी करती थी। लेकिन अबकी कुछ हुआ-हवाया नहीं था—यह देखकर वह भागा जा रहा था। मुंह से कुछ बोला नहीं। शायद शर्म आ गयी थी। नजरबन्द यतीन बाबू जब यहां था, तो फतिंगा को भी भरपूर खाने को मिलता था। इसीलिए वह यहां पड़ा रहता था। आज माँजी ने बारम्बार अनुरोध किया यहीं रहने का और अन्त में उसे यों जकड़कर पकड़ लिया था।

छुटकारा जो मिला, फतिंगा बरामदे से कूदकर वों-वों करके भागा। पद्म अपने को संभालकर अन्दर चली गयी। बैलगाड़ी भी वहां से पार हो गयी।

श्रीहरि के जी में बहुत-सी बातें आयीं। अनिरुद्ध लुहार शैतान है। अच्छा ही हुआ। उसे जेल काटनी पड़ी और अन्त में गाँव-घर छोड़कर भागना पड़ा। उस समय लुहारिन पर श्रीहरि की लोभी नजर थी, आज भी शायद...! लेकिन इस औरत का चलता कैसे है। सुना है, देबू धान देता है। क्यों? देबू क्यों धान देता है? और यह लेती ही क्यों है! धान तो वह भी दे सकता है! बहुतों को वह धान दान देता है।

लेकिन लुहार-बहू उसका धान कभी नहीं लेती। और उसी से क्या देबू के सिवा वह किसी से भी धान नहीं लेगी।

गाँव के बाहर, कंकना और उसके गाँव के बीच में एक बड़ा-सा नाला पड़ता है। दोनों गांवों का बरसात का पानी उसी नाले से होकर मयूराक्षी में जाकर गिरता है। ज्यादा वर्षा होने से यह नाला ही एक छोटी-मोटी नदी बन जाता है। उस समय इस नाले की वजह से एक गाँव से दूसरे गाँव जाना एक दुष्कर काम हो जाता है। फिलहाल जंक्शन शहर के कलवालों ने, गद्दीवालों ने उस पर एक पुलिया बना देने के लिए यूनियन बोर्ड से कहा है। उन लोगों ने काफी मदद का वचन दिया है। वह पुलिया बन जाने से बरसात के दिनों में भी इधर का धान-चावल रेल-पुल से होकर जंक्शन जा सकेगा।

श्रीहरि ने अपने मन में ही कहा, "मैं इसमें अड़चन डालूँगा। देखता हूं कि पुलिया कैसे बनती है! मैं इन गाँववालों को खाये बिना मारूँगा।"

इस समय भी नाले में कमर-भर पानी तेज धार से बह रहा है। कल शायद तैरने लायक पानी हुआ था! नाले के दोनों तरफ केवाल-सी माटी जम गयी है। गाड़ी नाले में उतरी। उन माटी-जमी जगहों में घुटने-भर काँदों था। श्रीहरि के बैल मजबूत हैं, गाड़ी को खींचकर पार ले गये। इस कांदों में कम्बख्त किसानों के हड्डी-पंजर निकले बैलों की गाड़ियाँ जब फँसेंगी तो कम-से-कम एक बेला तो यहीं बीत जाएगी। वे लोग खुद भी पहियों में कन्धा लगाकर गाड़ी ठेलेंगे, पीठ धनुष-सी एंठ जाएगी; काँदों, पसीने और पानी से भूत-जैसी शक्ल बन जाएगी!—श्रीहरि का चेहरा गम्भीरता-भरे क्रोध से थम्-थम् करने लगा।

नाला पार करके कुछ ही दूर जाने पर रेल-पुल। श्रीहरि की गाड़ी उस पुल पर पहुँची। उत्तर-दक्षिण लम्बा, पुराने युग का खिलानवाला पुल। एक तरफ पत्थर के असंख्य टुकड़ों के बीच से रेल की लाइन चली गयी है, लाइन के किनारे-किनारे दूसरी तरफ आदमियों के चलने का रास्ता। श्रीहरि के दोनों जवान बैल लाइन देखकर चौंक उठे, फोंस-फोंस करके बार-बार गरदन हिलाने लगे। छोटी ही उम्र से गँवई-गाँव में किसी गरीब के यहाँ, माटी के घर, माटी के नर्म रास्ते पर शान्त टोले के सूनेपन में वे पले; अभी कुछ मास पहले ही श्रीहरि के घर में आये हैं। यह ईट-पत्थर की सड़क, लोहे की चकचक करती पटरियाँ—ये सब चीजें उनके लिए अजीब अचरज-सी हैं। अनजान वातावरण में भय और विस्मय से दोनों बैल चंचल हो गये। पुल पार करके घाट पार करना पड़ेगा।

श्रीहरि ने गाड़ीवान से कहा, "होश से चला!" कहकर वह हँसा। जंक्शन शहर उन लोगों के लिए भी आश्चर्य है। उसकी उम्र पैंतालीस हो गयी। यह रेल लाइन अवश्य बहुत दिनों की है, स्टेशन उस समय एक छोटा-सा स्टेशन था। गाँव भी निरा गँवई था। उसकी उम्र जब बारह-तेरह साल की हुई तो स्टेशन बड़ा स्टेशन बन

गया—जंक्शन! दो-दो शाखा लाइनें निकलीं। यह सब उसे खूब याद है। शुरू में श्रीहरि मूल लाइन की गाड़ी पर चढ़कर कई बार गंगा नहाने गया है—आजिमगंज, खगड़ा। उस समय इस स्टेशन पर कुछ भी नहीं मिलता था; स्टेशन के पास सिर्फ मुड़ी, मूरकी, बताशे मिलते थे। उस समय बाबुओं का गाँव इस इलाके में बाजारवाला गाँव था। अच्छी मिठाई, मनिहारी के सामान, कपड़े खरीदने के लिए लोग कंकना जाया करते थे। उसके बाद ब्रांच लाइनें होने के साथ ही साथ स्टेशन जंक्शन हो गया। बड़ी-बड़ी इमारतें बनीं, दूर बैहार में रेलयार्ड बना, कतार से सिगनल खम्भे खड़े हुए, बहुत बड़ा मुसाफिरखाना बना। जाने कहाँ से देश-देशान्तर के व्यवसायी आ पहुँचे, बड़े-बड़े गोदाम बनवाकर इधर का धान, चावल, उड़द, सरसों, आलू खरीद-खरीदकर ढेर लगा दिये। मँगायी भी कितनी चीजें—हरेक तरह का कपड़ा, कल-पुरजे, औजार, मसाले, मनिहारी की दुर्लभ वस्तुएँ! लालटेन उसने यहीं की दूकान में सबसे पहले खरीदी थी। लालटेन, दियासलाई, काँच की दावात, निबवाली होल्डर कलम, रोशनाई की टिकिया, हड्डी की मूठवाली छुरी, विलायती कैंची, कारखाने में ढाली गयी लोहे की कड़ाही, डोल, काले कपड़ेवाला छाता, पॉलिश किया हुआ जूता, यहॉ तक कि कारखाने के बने खेती के सारे सरंजाम, विलायती गैंता, खन्ती, कुल्हाड़ी, कुदाल, फाल तक! बड़ी-बड़ी कलें खड़ी हुई—धान-कल, तेल-कल, आटा-कल! कोल्हू गया, घर का जाँता उठ गया। छोटे लोगों का आदर बढ़ा, आस-पास के गाँव खाली करके लोग कारखाने में आ जुटे।

श्रीहरि की गाड़ी स्टेशन के अहाते के पास से जा रही थी। अजीब गन्ध आ रही थी, तेल-गुड़-घी, हर तरह का मसाला—धनिया, तेजपत्ता, मिर्च, काली मिर्च, लौंग की गन्ध एक में मिल गयी थी! उन सबमें तम्बाखू क़ी तीखी गन्ध पहचान में आ रही थी। पास के धान-कल से सीझे धान की गन्ध आकर उसमें मिल रही थी। स्टेशन यार्ड से रह-रहकर साँस-रोधी गन्ध आ जाती थी कोयले के धुएँ की। इन सारी चीजों से रेल-गोदाम के चारों तरफ की माटी ढँक गयी थी।

गाड़ीवान अचानक बोल उठा, "अरे, बाप रे! गाँठें कितनी हैं?"

श्रीहरि ने गरदन बढ़ाकर देखा, सचमुच कपड़े की दस-बारह बड़ी-बड़ी गाँठें पड़ी थीं। बगल में टाट की कोई पचास गाँठें पड़ी थीं। गाड़ीवान ने उन सबको ही कपड़े की गाँठें समझ लिया था। एक तरफ पड़े थे काठ के बक्से। नये कपड़े और टाट की गन्ध के साथ दवा की झाँसवाली गन्ध उठ रही थी और उनसे मिली थी चाय की पत्तियों की गन्ध।

गोदाम से दमादम की आवाज आ रही थी, मालगाड़ी से सामान उतारे जा रहे थे। रेल-यार्ड में इंजन की स्टीम की आवाज, सीटी की आवाज, तेजी से चलते हुए बीस-पचास सौ-डेढ़ सौ चक्कों की आवाज, कारखाने की आवाज, मोटर-बस की घर-घर, मनुष्य के कलरव से चारों ओर मुखरित।

दिन-दिन शहर बढ़ रहा है! रास्ते के दोनों किनारे पक्के मकान बढ़ते ही चले जा रहे हैं। फाटक पर नाम लिखे हरेक ढंग के इकतल्ला, दुतल्ला मकान; दूकानों पर विज्ञापन, दीवारों पर विज्ञापन।

गाड़ीवान बोल उठा, "उफ्, कबूतरों की भीड़ तो देखिए!"—लगभग दो सौ कबूतर रास्ते पर अनाज के दाने बीन-बीनकर खा रहे थे। लोगों को या गाड़ी देखकर भी नहीं उड़ते, जरा खिसक-भर जाते थे। यह जंक्शन शहर उनके लिए भी हैरत की चीज है। श्रीहरि को एकाएक एक बात याद आयी—यहाँ के कुछ कलवाले और गद्दीवाले महाजन उनके यानी जमींदारों के खिलाफ रैयतों को उकसा रहे हैं, इसका पता करना होगा। वह उनको जानता है। उन लोगों के किये रैयत लोगों का मिजाज इतना बढ़ गया है। छोटे लोग तो कारखाने का काम पा जाने से खेती छोड़ बैठे हैं। उनपर कड़ाई करो कि वे कम्बख्त भागकर कारखाने में नौकरी कर लेते हैं। कल के मालिक उनकी जान बचाते हैं। कितनों के पास जो उसका धान बाकी ही पड़ा रह गया, कहा नहीं जा सकता। खेती-बारी करना धीरे-धीरे कष्टकर होता जा रहा है। खेतिहरों को यही लोग दादन देते हैं, जमींदार से विरोध होने पर उनकी तरफदारी करके अपना उल्लू सीधा करते हैं। और ये बेवकूफ गल जाते हैं, दादन लेते हैं; उपज के समय पाँच रुपये की चीज तीन रुपये में देते हैं। फिर भी मूर्खो को होश नहीं। इतना सब होकर भी यह गनीमत है कि ये मिलवाले, गद्दीवाले धान कर्ज नहीं देते, रुपया देते हैं। धान के लिए उन कम्बख्तों को आज भी जमींदार-महाजन के दरवाजे जाना पड़ता है।

गाड़ी रास्ते से मुड़कर थाने के अहाते के फाटक पर पहुँची। दरोगा ने हँसकर कहा, "अरे, घोष बाबू! क्या खबर है? यहाँ किधर?"

श्रीहरि ने विनय से कहा, "जी, हुजूर के ही दरबार में आया हूँ। आप लोग बचाएँ तो बचाएँ, वरना जान-माल से ही जाने की नौबत...!"

"सो क्या?"

"खबर तो मिली होगी कि कल रात मौलकिनी के बरगदतले जमाट-बस्ती हुई थी? भूपाल और रतन नहीं आये?"

"नहीं तो!"--कहकर हँसते हुए दरोगा ने कहा, "और साहब, थाना-पुलिस को अधिकार ही नहीं तो हम करें क्या? अब तो मालिक आप ही लोग हैं—यूनियन वोर्ड। आज भूपाल और रतन के बोर्ड के काम की बारी है। वहाँ का काम-काज करके तब आएँगे।"

"मैंने उन्हें बार-बार सवेरे ही आ जाने को कहा था।"

"बैठिए, बैठिए! सुनता हूँ सब...!"

श्रीहरि ने कालू शेख से कहा, "वह सब उतार दे!"

दरोगा ने तिरछी निगाहें उन चीजों पर घुमाते हुए पूछा, "चाय तो पिएँगे न?"

बरामदे पर खड़े होकर उन्होंने उस पार के दूकानवाले को आवाज दी—"ऐ, दो कप चाय जल्दी!"

श्रीहरि को ले जाकर वे दफ्तर में बैठे। चाय पीकर बोले, "सिगरेट निकालिए। सिगरेट सुलगाकर कल की बात सुनूँ!"

श्रीहरि घर पर भी सिगरेट नहीं पीता, लेकिन रखता है। दरोगा हाकिम जब पहुँचते हैं तो निकालकर देता है। कहीं बाहर जाता है तो साथ रखता है। आज भी लेता आया था। उसने सिगरेट की डिबिया निकाली। दरोगा ने कान्स्टेबुल से कहा, "दरवाजा लगा दो!"

लगभग घण्टे-भर वाद श्रीहरि थाने के दफ्तर से बाहर निकला। दरोगा भी वाहर निकले और कहा, "वह आपने ठीक ही किया है, कोई गलती नहीं हुई है, अन्याय भी नहीं; ठीक किया है!"

श्रीहरि जरा हँसा, सूखी हँसी।

उसने पिछली रात की जमाट-बस्ती की डायरी करायी, साथ ही जिन पर उसे सन्देह था उनका नाम भी लिखाया। राम भल्ला, तिनकौड़ी मण्डल, रहम शेख के नाम तो बताये ही, ऊपर से देबू घोष का भी नाम बता दिया। उसपर भी सन्देह है। यह सारा मामला ही अगर रैयतों के विरोध-आन्दोलन का फेरा है, तो देबू को छोड़ा नहीं जा सकता। सारे-कुछ की जड़ देबू ही है—वही सब किसी को सिर पर उठाये हुए है, पीछे से सबको प्रेरित करता है।

दरोगा ने पहले तो अचरज दिखाया, "यह भी सम्भव है घोष वावू? देबू घोष डकैती में?"

इस पर लाचार होकर श्रीहरि ने कल उतनी रात को उस दुर्योग में भी गाँव के बाहर हमदर्द दुर्गा को देबू के साथ देखनेवाली बात का जिक्र किया। कहा, "देबू का पतन हो गया है, दरोगाजी!"

"ऐं!"

"सिर्फ दुर्गा ही नहीं, उसने अब अनिरुद्ध लुहार की स्त्री के भी भरण-पोषण का भार लिया है, मालूम है?"

दरोगा ने जरा देर श्रीहरि की ओर ताका और खस-खस करके सब कुछ लिख लिया। बोले, "फिर तो आपने ठीक ही सन्देह किया है।"

श्रीहरि चौंका—"आपने देबू का नाम लिख लिया क्या?"

"हाँ! जब नैतिक गिरावट आ गयी, तो अनुमान ठीक ही है!"

"नहीं, नहीं! तो भी जरा भली तरह से जानने-सुनने के बाद ही लिखना ठीक होता!"

दरोगा ने हँसकर बार-बार उससे कहा, "आपसे कोई अन्याय नहीं हुआ है। आपने ठीक ही पकड़ा है और ठीक ही लिखाया है।"

लौटते हुए दो-चार गद्दीवाले महाजनों और मिल-मालिकों के पास भी वह गया। लेकिन कुछ ठीक खबर नहीं मिली। केवल एक मिलवाले ने कहा, "हम लोग रुपया देंगे, घोष बाबू! जमीन का हिसाब लगाकर रुपया देंगे। आप जमींदारों से रैयतों की लड़ाई है, यही तो हमारे लाभ का मौसम है।"—वह घमण्ड मे हँसा।

श्रीहरि मन-ही-मन नाराज हुआ। लेकिन जबान से कुछ नहीं बोला। वह भी जरा हँसा।

मिलवाला भला आदमी जरा नाटे कद का था, बड़े आदमी का बेटा। जंक्शन शहर में उसकी दो मिलें हैं—एक धान की, एक आटे की। बहुत-कुछ साहबी ठाठ-बाट, बातचीत साफ-साफ, घमण्ड की थोड़ी बू लिये हुए। वही फिर बोला, "कारखाने के मजदूरों के लिए आप लोग भी तो हमसे कम हंगामा नहीं करते!"

"बात-बात में अपनी तरफ के मजदूरों को रोक लेते हैं! रैयतों से कहा करते हैं—मिलों में काम करने मत जाओ, गद्दीवालों का दादन नहीं ले सकते, उनके हाथ धान नहीं बेच सकते। अब उनसे आप लोगों का विरोध शुरू हुआ है, हम लोगों के लिए यही तो मौका है उन लोगों को और भी अपना बनाने का!"

श्रीहरि का हृदय चोट खाये क्रुद्ध बिल के साँप की तरह चक्कर खा रहा था। फिर भी किसी तरह अपने को जब्त करके नमस्ते करते हुए वह उठ खड़ा हुआ।

मिलवाले ने कहा, "कुछ खयाल मत कीजिएगा, मैंने साफ बातें कही हैं।"

गरदन हिलाकर श्रीहरि गाड़ी पर बैठ गया। मिलवाला बाहर निकलकर फिर बोला, "आप चाहते क्या हैं? हम रुपये न दें, तो रुपये के बिना रैयत मुकदमा नहीं लड़ सकेंगे और लाचार कुछ तसफिया कर-करा लेंगे। या कि हम रुपये दें उन्हें, रैयत आपसे लड़ा करें, आखिरकार तो उन्हें हारना ही है; एक बार सब-कुछ गँवाकर ही हारेंगे। वैसे में आपको और भी सहूलियत होगी!"—वह आदमी विज्ञ-जैसा हँसने लगा।

श्रीहरि ने कोई जवाब न देकर गाड़ीवान से कहा, "कंकना चल!"

मिलवाले ने हँसकर पूछा, "जमींदार कान्फ्रेन्स है क्या?"

श्रीहरि ने चकित आँखों इस बार मिलवाले की तरफ ताका। उसके बाद वह धीरे-धीरे गाड़ी पर सवार हो गया। पूँछ उमेठे जाने से तेज बैल गाड़ी को लेकर घूमते हुए चल पड़े।

मिल के पक्के प्रांगण से कुछ औरतें उसे देख रही थीं। श्रीहरि ने देखा, उसी के गाँव की मोची और बाउरी औरतें थीं। अपने पाँवों से वे सीझे हुए धान को फैला रही थीं और गला मिलाकर गीत गाती जा रही थीं।

श्रीहरि कंकना के मुखर्जी बाबू की कचहरी में पहुँचा।

मुखर्जी लखपती हैं। साल में लाख से ज्यादा की आमदनी है उनकी। सिर्फ

इसी इलाके के नहीं, पूरे जिले के प्रधान धनी हैं। कंकना बेशक भले लोगों का बड़ा पुराना गाँव है लेकिन कंकना का आज जो रूप है, जिले में उसका जो नाम है, वह इस मुखर्जी परिवार की कीर्ति के कारण ही। बड़े-बड़े मकान, अपने लिए बाग-महल, साहब-सूबों के लिए अतिथि-भवन, कतारों में मन्दिर, स्कूल, अस्पताल, बालिका विद्यालय, पक्के घाट बँधे बड़े-बड़े पोखर आदि—बहुत बड़ी कीर्ति है मुखर्जी बाबू की। जमींदारी की जो भी जायदाद है, सब देवोत्तर। देवोत्तर से ही उस संस्थाओं का खर्च चलता है। साहबों के लिए मुर्गी खरीदी जाती है, शराब खरीदी जाती है, बावर्चियों को तनख्वाह दी जाती है, खेमटा नाचनेवाली बाईजी आती हैं, रामायण-भागवत का पाठ करनेवाले आते हैं। बाबुओं के लड़के-बाले भी रंग-रूप बनाकर थिएटर करते हैं। देवोत्तर की आमदनी भी बहुत है। वाजिब आमदनी के अलावा भी ऊपरी आय है। देवोत्तर के हर लेन-देन में एक पैसे के हिसाब से देवता का पावना। देनदार को रुपया चुकाते समय रुपये में एक पैसा ज्यादा देना पड़ता है। रुपया लेते वक्त रुपये में एक पैसा कम लेना पड़ता है। मुखर्जी बाबू हिसाबी और बुद्धिमान् आदमी हैं। श्रीहरि ने पाँव छूकर उनको प्रणाम किया।

मुखर्जी बाबू बोले, "वही तो, तुम अचानक आ पहुँचे! मैंने सोचा था, कोई दिन ठीक करके दूसरे-दूसरे जमींदारों को भी खबर भेजूँगा। सब मिलकर विचार करके कोई रास्ता निकाला जाए।"

श्रीहरि ने कहा, "मैं आपसे राय लेने आया हूँ। और-और जो जमींदार हैं, उनसे कुछ होना-हवाना नहीं है। आप तो सब जानते ही हैं!"

मुखर्जी बाबू ने कहा, "इसीलिए तो!"

श्रीहरि उनकी तरफ ताकता रहा।

मुखर्जी बाबू बोले, "वे सब खानदानी जमींदार हैं। उन्हें जिद चढ़ जाए तो लगान बढ़ोतरी का मुकदमा जरूर करेंगे। उन्हें जिद चढ़ा देनी होगी।"

श्रीहरि ने हँसते हुए नम्रता से कहा, "एक होकर रैयत लोग लगान देना बन्द कर देंगे तो कितने मुकदमे करेंगे लोग?"

"तुम रुपयों का इन्तजाम कर रखो। जो छोटे-मोटे हैं, उनको रुपया तुम देना और जो बड़े हैं, उनका भार मुझपर रहा। रुपयों की वसूली जायदाद से ही होगी।"

श्रीहरि अवाक् हो गया।

मुखर्जी बाबू बोले, "इसमें करने को खास कुछ नहीं है; सिर्फ एक काम करो। तुम तो धान का कारबार करते हो? अबकी धान देना बन्द कर दो। किसी खेतिहर को धान मत देना।"—इतना कहकर उन्होंने गद्दी-घर के कर्मचारियों को आवाज लगाकर कहा, "कौन है उधर, जरा पंजिका तो दे जाओ!"

पंजिका देखकर बोले, "हुँ, मुसलमानों के रमजान का महीना आ रहा है, रोजे का महीना! रोजे के अन्तिम दिन इदुलफितर। धान मत देना, मुसलमानों को काबू

करने में ज्यादा दिन नहीं लगेंगे।"—हँसकर वे पुनः बोले, "भोजन मयस्सर न हो तो बाघ भी वश में हो जाता है।"

श्रीहरि ने प्रणाम करके कहा, "जैसी आज्ञा! तो अभी मैं जाऊँ?"

मुखर्जी बाबू ने हँसते हुए आशीर्वाद दिया, "मंगल हो तुम्हारा! डरना मत। जरा समझ-बूझकर चलना। पास में रुपये हैं, तुम्हें डर किस बात का? हाँ, एक बात और। शिवकालीपुर के लगान की किस्त नियम से तो दे रहे हो तुम?"

"जी हाँ, पाई-पाई चुका दी है!"

"सरकार का राजस्व तुम देते हो कि जमींदार देता है?"

श्रीहरि ने समझ लिया, हँसकर बोला, "आश्विन की किस्त में अब और नहीं दूँगा।"

रास्ते पर आकर श्रीहरि ने देखा कि रास्ते के पास ही खासी भीड़ जमा हो गयी है। तिनकौड़ी मण्डल हाथ में एक पैना लिये आग-बबूला हुआ खड़ा है, उसके सामने सर झुकाये बैठा है एक कम उम्र का भल्ला। उसकी पीठ पर पैने का एक निशान लम्बी मोटी रस्सी की तरह उभर आया है।

श्रीहरि ने क्रुद्ध होकर कहा, "हुआ क्या? उसे इस तरह से मारा क्यों?"

तिनकौड़ी ने कहा, "कुछ नहीं हुआ; तुम जा रहे हो, अपनी राह जाओ!"

श्रीहरि ने भल्ला से पूछा, "ऐ छोकरे, नाम क्या है तेरा?"

उसने उठकर प्रणाम किया। कहा, "जी, मैं भल्ला हूँ!"

"हाँ, हाँ, नाम क्या है?"

"जी, छिदाम भल्ला!"

"किसने मारा है तुझे?"

छिदाम ने सर खुजाकर कहा, "जी, मारा तो किसी ने नहीं है।"

"मारा नहीं है? पीठ पर यह निशान कैसा है?"

"जी नहीं, वह कुछ नहीं है।"

"कुछ!"

"जी नहीं।"

तिनकौड़ी ने निहायत उपेक्षा से ही फिर कहा, "जाओ, जाओ, जहाँ जा रहे हो, जाओ! तुम्हें हाकिमी करने की नहीं जरूरत है। मारा है तो ठीक किया है। इसे वह समझेगा और मैं समझूँगा।"

घर पहुँचते ही श्रीहरि ने इस घटना को लिखकर कालू शेख के मारफत थाने भेज दिया।

आठ

तिनकौड़ी ने जिस नौजवान भल्ला को पीटा था, वह उनमें से एक था, जो रात को गाँव में गैरहाजिर थे। रात खेतों की मेड़ से काली-काली जो छाया-मूर्तियाँ चली आ रही थीं उनमें यह छिदाम भी था। तिनकौड़ी यह सोच भी नहीं सकता था कि यह छोकरा भी उन लोगों के साथ हो सकता है। राम भल्ला प्रौढ़ हो चुका है। इस इलाके में उस-जैसा लठैत और तेज दौड़नेवाला दूसरा आदमी नहीं है। एक बार का जिक्र है, वह साँझ को शहर से चला; यहाँ आकर आधी रात में डकैती की और बाकी चार घण्टे के अन्दर ही अन्दर फिर आकर सदर शहर में हाजिर हो गया। जिन्दगी में तीनेक बार जेल की सजा भी भोग चुका है। तारिणी, वृन्दावन, गोविन्द, रंगलाल—ये भी कुछ मामूली नहीं हैं। ये सभी राम की जवानी के दिनों के साथी हैं। बूढ़े हो चले, फिर भी बाघ हैं। उन सबों के साथ यह लौंडा जा जुटा है, यह जानकर तिनकौड़ी के अचरज और क्रोध का ठिकाना न रहा। लम्बा छरहरा कोमल-कोमल-सा यह छोकरा दो साल पहले तक भी मनसाभसान के दल में बिहुला बनकर गाया करता था।

"कागा रे, बिहुला का सँदेसा लेकर जा!"

दो ही साल में उस छोकरे में यह परिवर्तन आ गया! छुटपन में ही उसका बाप मर गया था। माँ ने बड़े-बड़े कष्ट से उसे पाला-पोसा। उस समय तिनकौड़ी ने ही उसे धांगई का काम दिलाया था। दस-बारह घर की गौओं को चराया करता। एक गाय चराने की मजूरी दो पैसे माहवार थी। दस-बारह घरों की तीस-चालीस गोओं के लिए महीने में एक-सवा रुपया मिल जाता था। घर-घर से रोज मूड़ी के बदले पाव-पाव-भर चावल मिलता, दशहरे पर हर घर से एक धोती। उस छिदाम का यह परिवर्तन देखकर तिनकौड़ी आपे से बाहर हो गया। लेकिन रात को वह पकड़ नहीं आ सका। तिनकौड़ी का गला सुना कि रात ही घर से रफूचक्कर हो गया था।

राम तथा दूसरे लोगों से रात ही कहा-सुनी हो चुकी थी। बल्कि कहा-सुनी कहना ठीक नहीं होगा, क्योंकि बकता वह खुद ही रहा था। हजार धिक्कार देते हुए उसने कहा था, "छिः! छिः! इतनी सजा के बाद भी तुम लोगों को होश नहीं हुआ रे! राम, अभी उस रोज ही तो तू छूटकर आया है, शायद पिछले कातिक में, और यह सावन है! इसी बीच फिर? तुमसे मैं कहूँ क्या? छिः छिः!"

राम ने सिर खुजाते हुए हँसकर कहा, "ओह, मण्डल बेहद नाराज हो गया है, बैठो, बैठो। अबे ए, तारनी, एक बोतल ला निकालकर।"

"नहीं नहीं, नहीं! कसम रही अब से अगर तुम लोगों की शक्ल देखूँ मैं!"—तिनकौड़ी तुरन्त घर की तरफ मुड़ गया।

"अरे भाई मण्डल, मत जाओ, सुनो तो, मण्डल!"

"नहीं, नहीं!"

"नहीं क्या, सुनो! नहीं लौटोगे? खैर! तुमसे मेरा नाता खत्म!"

अब तिनकौड़ी को लौटना ही पड़ा। खासी नाराजगी के साथ लौटकर बोला, "क्या कहता है, कह? आखिर कहेगा भी क्या? कहने को है ही क्या तेरे पास?"

राम ने कहा, "तुमने अपना सरबस तो जमींदार से मुकदमा लड़ने में बरबाद कर दिया। तुम्हीं कहो अब किसके दरवाजे पर जाऊँ, खाऊँ क्या?"

"मर जा, मर जा, तू मर जा!"

"इससे तो जेल जाना ही अच्छा है!"—राम की जोरों की हँसी से दुर्योग की वह अँधेरी रात सिहर उठी।

"तो इसलिए डकैती करेगा?"

राम ने फिर मुसकराकर कहा, "उसके सिवाय और करूँ क्या, कहो? तमाम भल्ला टीले में चुटकी-भर अनाज नहीं है। तुम सदा देते आये हो, इस बार तुम्हारे यहाँ भी नदारद! गोविन्द के यहाँ तीन दिन से चूल्हा ही नहीं जला। बिन्दा की पतोहू मैके भाग गयी; जाती हुई कह गयी—भूखी रहकर भतार का घर करने से रही! खेती का समय सर पर आ गया है। तुम लोग हड़ताल के पीछे हो। जमींदार धान देने को तैयार नहीं। महाजन के पास गया था। बोला, 'लगान वसूली की रसीद लाओ तो देंगे!' अब हम करें तो क्या करें?"

तिनकौड़ी इस बात का जवाब नहीं दे पाया।

राम ने हँसकर ही कहा, "कई दिन शिवकालीपुर होकर आया-गया। देखा, छिरू पाल के यहाँ धान और धन मस-मस कर रहा है। कलुआ शेख को प्यादा बहाल किया है। साला हाथ में लाठी लिये मूँछों पर ताव देता रहता है। यह सब देख-सुनकर हमने आपस में तय किया, उसी साले के यहाँ हाथ मारा जाए। हम लोगों का भी पेट भरे और इस विरोध में आन्दोलन का भी एक किनारा हो। फिर तो सब मालूम ही है तुम्हें! कम्बख्त को चोट पड़ती तो मामला-मुकदमा नहीं करता; कर पाता क्या?"

"अबे सूअर, उसका तो जो होता सो होता। तुम लोगों का क्या होता यह बता?"

"सो देखा जाता!"—राम लापरवाही की हँसी हँसने लगा।

तिनकौड़ी ने इसपर गाली दी, "सूअर हो! सूअर हो तुम लोग! एक बार अखाद्य खाकर सूअर जैसे उसका स्वाद नहीं भूल सकता, तुम लोग भी ठीक वैसे ही हो, सूअर!"

अब सब लोग जोर से हँसने लगे। यह सूअर की गाली तिनकौड़ी के नर्म मिजाज की गाली है।

राम ने कहा, "अबे तारनी, तुझे बोतल लोने को कहा था न? क्या हुआ?"

"न, न, रहने दो!"–तिनकौड़ी ने बाधा दी।

"क्यों रहने क्यों दूँ?"

"तुम लोगों के घर में इस कदर अनाज खत्म है, खाना नहीं नसीब हो रहा है, यह मुझसे कहा क्यों नहीं? सच ही गोविन्द के यहाँ तीन दिन से चूल्हा नहीं जला?"

गोविन्द ने झुककर तिनकौड़ी के पाँवों पर हाथ रखकर कहा, "तुम्हारे पैर छूकर कहता हूँ।"

वृन्दावन ने एक लम्बा निःश्वास फेंका–"बेटे की बहू भाग गयी मण्डल! लाने के लिए बेटे को भेजा था, तो कहा–भूखी रहकर अधपेटा खाकर मैं नहीं रह सकती। ऐसे भतार की मुझे कोई गरज नहीं।"

तिनकौड़ी ने भी एक बड़ी लम्बी उसाँस ली। मन-ही-मन उसने अपने को धिक्कारा। एक पत्थर के मोह से उसने अपना सब गँवा दिया। शिव को अब वह पत्थर कहा करता है। जितनी बार भी उधर से जाता-आता है, शिव को अपना अँगूठा दिखा देता है। पत्थर नहीं तो और क्या है? जमींदार उसकी जायदाद के रुपये हजम कर गया था–पत्थर ने उसका क्या किया? और वह उस पत्थर के लिए मन्दिर बनवाने गया था–उसी की जमींन बिक-बिका गयी।

नहीं तो उसे फिक्र किस बात की थी? अपने पचीस बीघा खेत में प्रति बीघा चार बीस की दर से एक सौ बीस यानी ढाई सौ मन धान हर साल घर में आता। पुकारो तो आवाज दे, ऐसी जमीन थी उसकी। उसी की उपज से भल्ला-टोले का अभाव मिटता था। कुसाइत में उसने देवोत्तर रुपये के लिए जमींदार पर नालिश की थी। और यह मुकदमा जो है, एक मजे की मशीन है! हारो तो दिवालिया होगे ही, जीतो, तो भी वही। वकील, मुख्तार, मुहर्रिर, अमला, पेशकार, प्यादा, यहाँ तक कि अदालत के सामने का वह बरगद भी एक ही शोर मचाता है–रुपया-रुपया। बरगद के नीचे एक पत्थर को सिन्दूर से पोतकर एक ब्राह्मण बैठा रहता है। तावीज बेचता है। उस तावीज से, कहते हैं, मामले में जरूर से जरूर जीत होती है। जो जीतता है, वह भी तावीज लेता है; जो हारता है, वह भी। तिनकौड़ी ने भी एक तावीज लिया था; हर तारीख पर एक पैसा देकर सिन्दूर का टीका भी लगवाता था, तो भी हार गया। हारने पर बहुत गरम होकर वह उस ब्राह्मण के पास गया था। कैफियत तलब की थी। ब्राह्मण ने उसकी तरफ ताकते हुए कहा था, "अशुद्ध कपड़े में तावीज पहनने से क्या फल मिलता है बाबा? कसम खाकर कहो तो सही कि तुमने अशुद्ध कपड़े में नहीं पहना था?"

तिनकौड़ी हलफ लेकर नहीं कह पाया था। लेकिन उस ब्राह्मण की धोखेबाजी का शुबहा उसका नहीं गया।

अभी उसके घर का धान नहीं के बराबर है। जितना है, उतने से उसी का साल यानी फसल होने तक—नहीं निकलेगा। तिस पर बढ़ोतरीवाला मुकदमा आ रहा है। यह मुकदमा किये बिना कोई चारा नहीं। जमींदार कहता है, फसल की कीमत बढ़ गयी है। लिहाजा कानूनन वह लगान बढ़ाने का हकदार है। प्रजा कहती है, फसल का दाम बढ़ा है, तो खेती का खर्च भी बढ़ गया है। इसके अलावा बाढ़, सूखा आदि के कारण उपज पहले से कहीं ज्यादा बरबाद होती है। लिहाजा जमींदार तो ज्यादा लगान नहीं ही पाएगा, प्रजा भी कम पाएगी। कानून में दोनों ही हैं। भाड़ में जाए कानून! सोच-सोचकर भी इस गोरख-धन्धे का अन्त नहीं मिलता! जो होना होगा, होगा! वह हिल-डोलकर सीधा बैठ गया। बोला, "राम, कल शाम को आ जाना! एक-एक टिन धान मैं दूँगा। उसके बाद जो होगा देखा जाएगा।"

राम ने कहा, "देने को कहते हो तो देना। मगर तुम्हारा अपना क्या होगा?"

"उसके लिए अभी से सोचकर क्या करना? होगा सो होगा।"

"तो मेरे हिस्से का आधा-आधा गोविन्द और बिन्दा को दे देना।"

"क्यों, तुझे जरूरत नहीं है?"

हँसकर राम वोला, "अभी मेरा काम चल जाएगा।"

"चल जाएगा? यानी तू. ."

"तुम्हारी कसम। अबकी जेल से आने के बाद कभी कुछ नहीं किया है। अपनी किरिया, पहले का ही है।"

"पहले का? मुझे बुद्धू समझता है तू? तीन साल की सजा काटकर निकला है। आठ-नौ महीने हुए, वही रुपया अभी तक है?"

"गुरु की कसम! जहाँ बच्चों को गाड़ते हैं, उसी बाँध के ताड़ के नीचे बीस रुपये गाड़कर रखे थे। बीवी से कह दिया था इशारे से—अगर बहुत ही जरूरत पड़ जाए कभी, तो आषाढ़ के महीने में जब जंक्शन की कल में दस का भोंपू बजे तो बाँध के इस कोने में ताड़ के पेड़ का माथा देखना जाकर! लेकिन वह थी मूरख, ताड़ के पेड़ पर चढ़कर उसकी चोटी पर खोजने लगी। आषाढ़ में जब दस का भोंपू बजा था, तो ताड़ के छोर की छाँह जहाँ पड़ी थी, रुपये ठीक वहीं पर गाड़े थे। मैंने इस आषाढ़ में खोदकर देखा, ठीक ही रुपये थे। मेरा कुछ दिन चल जाएगा।"

तिनकौड़ी अब खुश हुए बिना न रह सका। कहा, "तुम घाघ हो भैया!"—कहकर वह उठा। आते-आते भी बोला, "तुम कल आना—गोविन्द, बिन्दा, तारनी—कल साँझ को आना। मगर खबरदार! अब से यह हरकत नहीं। भला न होगा।"

तिनकौड़ी को आज अचानक कंकना की बैहार में छिदाम मिल गया। सुबह उसने तिनकौड़ी को अपने गाँव के खेत में काम करते देखा था। सो वह मजदूरी की तलाश में महूग्राम, शिवकालीपुर, कुसुमपुर पार होकर कंकना की तरफ आया

था। कंकना भले लोगों का गाँव है। वहाँ के लोग केवल जमीन के मालिक हैं। बहुत-से लोग अपने यहाँ हल-बैल रखकर हलवाहे से खेती कराते हैं। और, बहुत-से लोग आसपास के गाँवों के खेतिहरों को खेत बटाई में लगा देते हैं। खेती करके फसल काटकर भागीदार धान का बोझा कन्धे पर ढोकर बाबुओं के यहाँ पहुँचाते हैं। आधा हिस्सा मालिक पाता है, आधा बटाईदार। ऐसे ही बटाईदार के यहाँ छिदाम मंजूर रह गया था। ऐसे में वहाँ तिनकौड़ी जा धमका।

उसके ढोरों में एक बज्जात गोरू है। वह तमाम दिन तो बड़े अच्छे ढंग से रहता है, लेकिन सांझ को जब गुहाल में घुसने का समय होता है, तो यक-ब-यक पूँछ उठाकर घोड़े की तरह चारों पैर उठाकर सरपट भागता है। रात-भर मनमाना चर-चराकर भोर को घर वापस आता है और शान्त स्वभाव से या तो सो जाता है या खड़ा खड़ा पागुर करता रहता है। कल शाम को जो भागा, सो आज अभी तक घर पर नहीं पहुँचा। यह बड़ी अस्वाभाविक बात थी। जलपान करने बैठा तो पता चला कि वह कंकना के बाबुओं के यहाँ बाँध लिया गया है। बाबुओं के फूल का पौधा खा गया था। इसके लिए उस पर इस बुरी तरह मार पड़ी कि कई जगह फटकर खून बह निकला। तिनकौड़ी तुरन्त उठा और पैना हाथ में लिये कंकना की ओर चल पड़ा। हठात् छिदाम पर नजर पड़ गयी। भागने की गुंजाइश न थी। एक तो बाबुओं पर गुस्से से वह गर-गर कर रहा था, फिर छिदाम बुलाने पर भी कल घर पर नहीं मिला था; सो डरता-डरता छिदाम जैसे ही उसकी ओर बढ़ा कि उसने उसकी पीठ पर खूब कसकर पैना जमा दिया—"हरामजादा!"

छिदाम ने दोनों हाथों से उसके दोनों पैर पकड़ लिये। मुँह से पीड़ा-सूचक उफ् तक नहीं किया, न ही कोई प्रतिवाद किया।

तिनकौड़ी ने एक लाठी और जमायी—"पाजी! सूअर!"

ठीक इसी वक्त श्रीहरि की गाड़ी आ पहुँची!—

छोकरे को कुछ दूर तक वह खींचते हुए ले गया और उसकी कलाई को दबाकर बोला, "छुड़ा तो ले!"

छिदाम अवाक् होकर उसकी ओर ताकने लगा।

फटकारकर तिनकौड़ी ने कहा, "छुड़ा! छुड़ा तो देखूँ! हरामजादे, सूअर, तूने जो रात को राम भल्ला के साथ जाना सीखा है, तुझे कितनी ताकत हो गयी है मैं देखूँ जरा! छुड़ा, छुड़ा ले!"

छोकरे के होठों पर मुसकराहट आयी, बोला, "भला छुड़ा सकता हूँ मैं!"

"फिर रे, सूअर का बच्चा!"

"करूँ क्या; कहिए, घर में दाना नहीं है। घोरईगिरी का वह चलन लोगों ने उठा दिया। तिस पर माँ ने रिश्ता ठीक किया है मेरा, पैसा चाहिए। मैंने राम काका से कहा। उसने कहा—तो क्या करेगा, हम लोगों के साथ निकलना सीख।"

"हूँ!"—तिनकौड़ी ने उसका हाथ छोड़ दिया।

उधर से कोई हँका रहा था—"हेई-हेई! अरे ओ तिनू भैया!"

"कौन है?"—तिनकौड़ी और छिदाम ने पलटकर देखा। रास्ते के उस नाले में किसी की गाड़ी अटक गयी थी। शिवपुर का दूकानदार वृन्दाबन दत्त हँका रहा था। वे दोनों जल्दी-जल्दी गये। बोझ-लदी गाड़ी के दोनों पहिये धँस गये थे। वृन्दाबन जंक्शन से माल लेकर आ रहा था। पन्द्रह-सोलह मन माल था, बैल दोनों ही बूढ़े; एक तो काँदो में बैठ गया था। तिनकौड़ी वृन्दाबन पर बहुत खिसिया उठा। कहा, "खूब व्यापार करना सीखा है! बनिये जो हरकट कंजूस होते हैं, इस बात का सबूत तुमने ही दिया है। वृन्दाबन! इन बूढ़े बैलों को छोड़कर दो अच्छे बैल नहीं खरीद सकते? नहीं, रुपया जो खर्च हो जाएगा।"

दत्त ने कहा, "अरे खरीदूँगा, खरीदूँगा। ले, अभी जरा सहारा तो दे दे भैया! हाँ रे—क्या नाम है तेरा—बेटे, तू बल्कि बैल की जगह जरा गाड़ी के जुए में कन्धा लगा। हरामजादा बैल ऐसा बदमाश है—काँदो में लेट गया, देखो तो जरा। कम्बख्त का खाना कहीं देखते! ले, ले बाबा! तिनू भैया!"

खीजकर ही तिनू ने कहा, "पकड़ रे छिदाम! तुझसे बनेगा? तू न हो तो चक्के में हाथ लगा।"

"जी नहीं, आप पहिये सँभालें!"—कहकर छिदाम ने गाड़ी के सामने हाथ भाँजकर छाती से जोर लगाया। तिनकौड़ी हैरान रह गया। देखते-देखते छिदाम का शरीर मानो पत्थर का हो गया है। खुद चक्का ठेलते हुए उसने समझा कि छिदाम किस भयंकर ताकत से गाड़ी को खींच रहा है। गोकि ठेल रहा था सीधा तनकर, एड़ी से चोटी तक पके बाँस की खूँटी-सा सीधा। एक तरफ बैल, गाड़ीवान और खुद वृन्दावन ठेल रहा था। फिर भी छिदाम की ओर का हिस्सा पहले उठा।

कमर से दो पैसे निकालकर दत्त ने छिदाम को दिये; कहा, "किसी दिन जाना घर से दो मुट्ठी मूड़ी ले आना!"

छिदाम के हाथ से पैसे छीनकर तिनकौड़ी ने दत्त की तरफ फेंक दिये। कहा, "साँझ को मुझसे भेंट करना! खबरदार, इस कंजूस के ये दो पैसे मत लेना!"

हनहनाते हुए चलते-चलते तिनकौड़ी छिदाम की ही सोचने लगा—काश, इस छोकरे को पेट-भर भोजन मयस्सर होता, फिर तो एक असुर ही होता यह।

कहावत है—"राम से ही खैर नहीं, ऊपर से सुग्रीव का सहयोग"। गोरू को मारने और रोक रखने के कारण झगड़ने में तिनकौड़ी अकेले ही एक सौ था, रास्ते में रहम शेख आ जुटा।

रहम जंक्शन से लौट रहा था। सावन की धूप में पसीने से लथपथ—बदन पर पड़ी चादर से हवा कर रहा था। तिनकौड़ी की पोशाक बिलकुल खेत पर काम करनेवाली थी; पहनावे में मोटे सूत की पाँच हाथवाली धोती, तमाम बदन में काँदो

तो लगा ही हुआ था, फिर दत्त की गाड़ी को जो निकाला, सो कीचड़-काँदो में नहाये भैंस-सा हो गया था—हाथ में था पैना।

रहम ने ही कहा, "अरे ओ तिनू भाई, ऐसी शक्ल में कहाँ चले? लगता है सीधे खेत से उठकर चल पड़े हो!"

तिनकौड़ी ने कहा, "जरा कंकना जा रहा हूँ। कम्बख्त बाबुओं से जरा मुलाकात कर आऊँ। मेरे एक गोरू को सालों ने बेतरह पीटा है—खून कर दिया है!"

"खून कर दिया है?"—रहम जोश में आ गया।

"बाबुओं के फूल का गाछ खाया है। साले, फूल की माला पहनेंगे! इसीलिए सोचा, जरा देख आऊँ!"

"चलो मैं भी साथ चलता हूँ!"

इतनी देर बाद तिनकौड़ी ने पूछा, "तुमने आज हल नहीं जोता?"

खेती के दिनों में खेतिहर हल नहीं जोते, यह ताज्जुब की बात है! इस समय एक दिन का दाम कितना है! एक ही खेत में आज की गाड़ी हुई गाछी कल की गाड़ी हुई गाछी से कम-से-कम बीस-पचीस दाने धान ज्यादा देगी।

रहम ने कहा, "पूछो मत भैया! अल्लाह की दुनिया को शैतानों ने दखल कर लिया है। जो धरम-करम करे उसी पर मार! खेती के समय धान चुक गया। खींच-तानकर किसी तरह सावन निकलेगा। ऊपर से तेहवार। खर्च की नौबत। बाल-बच्चों को कपड़ा-लत्ता देना होगा। करूँ क्या, कहो? शाम को इसीलिए गया था।"

तिनकौड़ी ने कहा, "हाँ, हाँ, तुम लोगों का तो रोजा चल रहा है, एक महीने तक है न?"

"हां! रमजान का पूरा महीना। बीच में पूर्णिमा। उसके बाद अमोसिया। अमोसिया के बाद चांद दीखेगा, तब रोजा ठण्डा होगा। इदुलफितर का परब।"

तिनकौड़ी इस त्योहार के बारे में जानता था। बोला, "यह तो तुम लोगों का बहुत बड़ा तेहवार है?"

"हां, इदुलफितर बहुत बड़ा त्योहार है। खाना-पीना होता है। गरीबों को खैरात देनी होती है, साधु-फकीर-मेहमानों को खिलाना पड़ता है। बहुत खरच है तिनकौड़ी भाई! मगर देखो, आभद्रा बरसात—घर में अनाज नहीं, टेंट में पैसे नहीं!"

तिनकौड़ी ने लम्बा निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "वह बात बोलते क्यों हो रहम भाई! इलाके-भर के लोगों का एक ही हाल है। किसी के घर दाना नहीं है। जमींदार धान नहीं देगा। कहता है बढ़ोतरी दो तो दूँगा। महाजन कहता है—लगान वसूली की रसीद दाखिल करो, कागज लिखो।"

"हम लोगों को तो इसपर भी तेहवार सर पर है!"

तिनकौड़ी इसका क्या जवाब दे; वह चुपचाप चलने लगा।

रहम ने कहा, "लेकिन तुम लोगों के सब तेहवार फसल के समय होते हैं! दुर्गापूजा—वह ठीक क्वार में ही होगी। हम लोगों के महीने खिसकते रहते हैं सो बड़ा गोलमाल हो जाता है।"

तिनकौड़ी ने कहा, "हाँ, तुम्हारे महीने पीछे खिसकते रहते हैं।"

"हाँ, बहुत पेंच है भैया! किसी-किसी साल ऐसी मुसीबत होती है कि क्या बताऊँ! यही समझ लो कि मेरे ऊपर जो कर्ज है, उसका आधा तेहवारों के ही चलते है। इज्जत-आबरू है, इदुलफितर, मुहर्रम में दस रुपया खर्च न करो तो लोग मानेंगे कैसे?"

तिनकौड़ी ने कहा, "सो तो है। हाँ, हम दुर्गा-पूजा, काली-पूजा में खर्च न करें तो चल सकता है? जो जिस तबके का है, उसे उसके हिसाब से खर्च तो करना ही पड़ेगा।"

अभावों की चर्चा से दोनों का मन जाने कैसा भारी-भारी हो आया। जब वे दोनों कंकना के बाबुओं के यहाँ पहुँचे तो उस भारी मन के ही कारण जाते ही लंका काण्ड नहीं कर बैठे। सामने जो नौकर मिला उससे पूछा, "बाबू कहाँ हैं? उनसे कहो, देखुड़िया का मण्डल आया है।" क्रोध का पागलपन न होते हुए भी उसने यह गम्भीरता के साथ ही कहा।

उसी समय दरवाजा खोलकर घर के मालिक बाहर निकले—एक तरुण भद्र पुरुष। उन्होंने मीठे-मीठे ही कहा, "तिनकौड़ी मण्डल तुम्हीं हो?"

"हाँ! आपने मेरे गोरू को मार-मारकर जख्मी क्यों बनाया? और उसे पकड़कर ही किस कानून से रखा है"—थोड़ा-थोड़ा करके तिनकौड़ी उत्ताप संचय कर रहा था।

रहम ने कहा, "सुना, मारकर लहू-लुहान कर दिया है? ब्राह्मण हो तुम?"

भले आदमी ने विनय से कहा, "सुनो, मैं दोष मानता हूँ। मगर इतना मानो कि यह काम मेरे हुक्म से नहीं हुआ है। एक नया माली था, गुस्से में वह ऐसा कर बैठा। मैंने उसे जवाब भी दे दिया है।"

तिनकौड़ी और रहम दोनों ही अवाक् रह गये। कंकना के बाबू इतना मुलायम होकर इस सज्जनता से किसानों से बात करते हैं—यह उन्हें बड़े आश्चर्य की बात लगी।

उन भले आदमी ने फिर कहा, "देखो, गोरू को चोट आयी थी। यदि वह दोष मानने की इच्छा न होती तो मैं उसी हालत में उसे भगा देता; उसे बाँधकर नहीं रखता, सेवा-जतन नहीं करता!"

वास्तव में उसकी हिफाजत की गयी थी। एक सींग टूट जाने से लहू बह आया था। दवा लगाकर वहाँ पट्टी बाँध दी गयी थी। नाँद में माड़, भूसा, खली अभी बच ही रही थी। देखकर तिनकौड़ी और रहम, दोनों जने खुश हुए। खरी-खोटी कुछ नहीं कही।

भले आदमी ने अनुरोध किया—"मुँह-हाथ धोकर जलपान कर लो!"

तिनकौड़ी उनके अनुरोध को टाल न सका। रहम ने हँसकर कहा, "मेरा तो रोजा है।"

तिनकौड़ी ने पूछा, "आप लोग तो कलकत्ता रहते हैं?"

वे बोले, "हाँ!"

रहम ने सिर हिलाकर कहा, "हूँ!"—यानी तभी ऐसा व्यवहार है।

तिनकौड़ी ने बताशे खाकर पानी पिया। पूछा, "यहाँ कब आये हैं?"

"पाँचेक दिन हुए।"

"अभी रहेंगे?"

"ना! धान बेचने आया हूँ, बिकते ही यहाँ से चला जाऊँगा।"

"धान बेचेंगे? बेच देंगे?"

"हाँ, दर इस समय ऊँचा हुआ है, बेच दूँगा। हम लोग कलकत्ते रहने हैं। वहाँ चावल खरीदकर खाते हैं। यहाँ रखकर क्या करेंगे? हर साल बेच दिया करते हैं।"

"बेच देते हैं? तो—" तिनकौड़ी बात पूरी नहीं कर सका।

रहम ने कहा, "तो दादन क्यों नहीं देते? फसल होने पर सवाया-ड्योढ़ा जिस दर पर हो, दे देंगे।"

तिनकौड़ी ने कहा, "जी हाँ! हम ही क्यों, इससे इस इलाके के लोग जी जाएँ; दिल खोलकर आपका भला मनाएँगे।"

बाबू ने कहा, "नहीं भैया, ऐसे झमेले में मैं नहीं पड़ता!"

रहम ने कहा, "छँटाक-भर धान आपका नहीं डूबेगा।"

"नहीं! मैं किसी का उपकार भी नहीं करना चाहता और सूद से भी मुझे मतलब नहीं!"

रहम ने कहा, "सुनिए, बाबू सुनिए—"

उसकी बात पूरी होने के पहले ही बाबू अन्दर चले गये। कहते गये, "नहीं नहीं, इन सबमें मैं नहीं पड़ता!"

वे अवाक् हो गये। इस किस्म के आदमी से भेंट नहीं थी उनकी। यहाँ के सूदखोर महाजन को ये समझते हैं, जुल्मी जमींदार को भी जानते हैं, लेकिन शहरवासी इस तरह का आदमी उनके लिए समझ के परे है। सूद भी नहीं लेगा, उपकार भी नहीं करेगा। ऐसे को वे कहें क्या? भला या बुरा? कंकना में इस किस्म के आदमी कम नहीं हैं, उनसे इसके पहले रहम और तिनकौड़ी का परिचय नहीं हुआ। ये लोग हर साल इसी तरह से धान बेचकर चले जाते हैं।

तिनकौड़ी ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। बोला, "ऐसे लोग भले में भी नहीं, बुरे में भी नहीं।"

रहम समझ नहीं पाया कि ऐसे आदमी के लिए क्या कहे? गोरू को घायल

करने के अपराध में माली को बरखास्त करता है, धनी होते हुए किसानों के आगे कसूर मानता है, मगर इतना धान रहते किसी को देना नहीं चाहता! सूद का लोभ नहीं! ऐसे आदमी को क्या कहे, कुछ सोच न पाकर बोला, "भाड़ में जाए! चलो, घर चलें! इरशाद के यहाँ हमारी बैठक भी है। जरा कदम बढ़ाकर चलो।"

"बैठक! उस दिन सुना, देबू गुरुजी गया था, तुम लोगों की बैठक हुई थी। फिर बैठक? हड़ताल की है क्या?"

"अबकी पेट की बैठक है। धान का बन्दोबस्त होना चाहिए न! दौलत ने छिरू के साथ साँठ-गाँठ कर ली है, धान नहीं देगा। इसी का कोई इन्तजाम करना होगा। इधर तेहवार सर पर है।"

"फिर तुम सवेरे-सवेरे गये कहाँ थे?"

"जंक्शन। बैठक के लिए एक वेला तो काम बन्द ही रहेगा। इसीलिए जंक्शन गया था। मिलवाला कलकत्ते का बाबू घर बना रहा है; उसे अच्छा ताड़ का पेड़ चाहिए। उसी सिलसिले में गया था। खेत में वह एक पेड़ है न! दादा के हाथ का लगाया हुआ है, वही देने के लिए कहा है!"

दूर से अजान सुनाई पड़ रही थी। रहम ने व्यस्त होकर कहा, "तुम जाओ, भाई! मैं चलता हूँ। आज जुम्मे की नमाज है।"

इरशाद के यहाँ बैठक हो रही थी। सारे मुसलमान खेतिहर मौजूद थे। सबके चेहरे पर चिन्ता की छाप। सबके घर का धान चुक गया था। भदई होने में अभी दो महीने की देर है। दो महीने की खुराक चाहिए। अनाज के लिए दौड़ते फिरने की भी फुरसत नहीं। खेतों में पानी भर गया है। खेती का समय निकला जा रहा है, पानी के नीचे ख़ादवाली मिट्टी गलकर चन्दन-सी हो गयी है। सारी बैहार से एक सोंधी गन्ध उठ रही है। माटी के पौधे रोज अँगुली के एक-एक पोर-जितना बढ़ रहे हैं। यह क्या खेतिहर के बैठे रहने का समय है!

तिनकौड़ी भी गोरू को एक पेड़ में बाँधकर बैठक से कुछ हटकर बैठ गया। उसे फिर धान के लिए इसी तरह घूमना पड़ेगा। खेती का काम बन्द रहेगा। सावन के दस दिन निकल गये। खेती के थोड़े ही दिन बच रहे हैं। "सावन का पूरा, भादों का वारा; इस बीच जो बना सो मारा!" पूरा सावन ही खेती का सबसे अच्छा समय है। आगे भादों के बारह दिन तक किसी तरह चल सकता है। उसके बाद बोना और बेगार खटना समान ही है। क्वार के तीस तक धान के पौधों का बढ़ना बन्द हो जाता है। अन्दर-अन्दर बालियाँ बनकर बीस दिन के अन्दर फूट निकलती हैं। उसके बाद धान को पुष्ट होने में तेरह दिन लगते हैं। क्वार के तीस तक ही धान का बढ़ना खत्म। अभी एक-एक दिन का दाम जो लाख-लाख रुपया है!

मुसीबत इस बार उन लोगों से भी ज्यादा रहम भाई वगैरह की है! घर में दाने का नाम नहीं, खेती का समय, और ऊपर से तेहवार! जिस साल दुर्गापूजा आश्विन के शुरू में होती है, उस साल वह दुर्गत होती है कि कहने की नहीं! फिर भी उस समय थोड़ी-वहुत भदई हो जाती है। तिनकौड़ी ने मन-ही-मन कहा—हाय भगवान पर्व-तेहवार के दिन क्या इस तरह से रखने थे! मुसलमान किसान बेचारे अपने इदुलफितर पर्व के प्रति गाढ़ी श्रद्धा रखने के बावजूद उत्साह नहीं पा रहे हैं, सब चिन्तित हो पड़े हैं।

मुसलमानों के पर्व-तेहवार चान्द्र वर्ष से निर्धारित होते हैं, इसलिए सौर-प्रभाव से चालित ऋतुचक्र से उन पर्वों का कोई सम्बन्ध नहीं होता। अरब देश में यह धर्म प्रवर्तित हुआ। वहाँ चान्द्रमास गणना में कोई असुविधा नहीं थी। जलते रेगिस्तान में सौर-सम्बन्ध का बहिष्कार करके मीठी चाँदनी में जीवन को ज्यादा स्फूर्ति मिली। लोगों की अर्थनैतिक संगति के ऊपर टिड्डियों के उत्पात, पहाड़ घिरे, बालू-पत्थरवाली मिट्टी के देश अरब में कृषि की प्रधानता तो क्या, प्रभाव तक बिलकुल नहीं है। लिहाजा आग वरसानेवाले सूरज और वैचित्र्यविहीन ऋतुचक्र से सम्बन्ध न रखकर वर्ष-गणना में असुविधा नहीं हुई। भयंकर गरमी में कुछ दिनों के लिए थोड़ी-बहुत वर्षा और कुहासे से आनेवाली सर्दी से जीवन में ऋतुओं की मधुरता और वैभव का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, यह स्वाभाविक है। फल-सम्पदा सिर्फ एक है—खजूर; वह वर्ष-भर सूखा ही रहता है। खाद्य में जहाँ अन्न के बजाय मांस की प्रधानता है, और खाने लायक पशुओं के जीवन से भी जहाँ ऋतुचक्र का कोई सम्बन्ध नहीं है, वहा चान्द्र-गणना से महीना पीछे हो जाता है, पर उससे संगति का तारतम्य नहीं होता। वहाँ के पर्व चाँद की स्निग्ध किरणों के बीच तारतम्यहीन समारोह में प्राणों के उच्छ्वास से भर जाते हैं। लेकिन कृषि-प्रधान बंगाल में खेती पर पूर्णतया निर्भर रहनेवाले मुसलमान किसानों को स्थानोपयोगी काल-गणना की इस असंगति से बड़ी असुविधा में पड़ना पड़ा है। अगहन-पूस-माघ-फागुन में अब इदुलफितर-मुहर्रम होती है तो जिस आनन्द की उमंग में वे मत्त हो जाते हैं, उसमें अतिशयता होती है। आषाढ़-सावन-भादों के कठिन अभाव में, खेती की व्यस्तता में ये पर्व उदास-से बीत जाते हैं—पूस-माघ की अतिशयता कुछ-कुछ उसी की प्रतिक्रिया होती है। अबकी रमजान सावन की अँजोरिया में पड़ा है, भादों की अँजोरिया के आरम्भ में खत्म होगा। इधर खेती का समय, किसान के घर में पूस का सँजोया हुआ खाद्य खत्म हो गया है, उधर जमींदार से लगान बढ़ाने का विरोध और फिर इदुलफितर! त्यौहार के दिन दान-खैरात करना पड़ता है, साधु-फकीर, सगे-सम्बन्धियों को खिलाना पड़ता है; बाल-बच्चों को नये कपड़े देने पड़ते हैं—जरी की टोपी, रंगीन कुरता, नक्शकोर कपड़ा और सुन्दर-सा एक रूमाल पाकर कोमल मुखड़े हँसी से खिल पड़ें—तब तो! तभी तो पर्व सार्थक होगा, जीवन सार्थक होगा!

मकतब का मौलवी इरशाद मियाँ इन लोगों का नेता है। वह सोच रहा था, इतने-इतने लोगों का कौन उपाय होगा? कभी-कभी वह को-ऑपरेटिव बैंक की सोचता था।

को-ऑपरेटिव बैंक! यहाँ के को-ऑपरेटिव बैंक का चेयरमैन है कंकना के लखपति मुखर्जी बाबू का लड़का। सेक्रेटरी वहीं का कोई दूसरा बाबू है। उसके गाँव का चमड़े का व्यवसायी धनी दौलत हाजी, शिवकालीपुर का श्रीहरि घोष मेम्बर हैं!

इरशाद ने फिर भी कहा, "एक दरख्वास्त देकर तो देखें!"

रहम ने कहा, "सुनो इरशाद, जरा इधर सुनो!"

रहम ने एक बात तिनकौड़ी से नहीं कही थी। वह बात चूँकि अपनी थी, इसीलिए नहीं कही थी। "जंक्शन के कारखानेवाले कलकत्ते के बाबू ने कहा है कि रुपया मैं दे सकता हूँ। लेकिन मेरे साथ पक्की लिखा-पढ़ी करनी होगी कि जो मुझसे रुपया लेंगे, उन्हें मेरे रुपये के बराबर धान सबसे पहले अदा करना होगा। और चूँकि मैं इस आड़े में रुपया दूँगा, इसलिए तुम्हें शपथ करके कहना पड़ेगा कि हम जब भी धान बेचेंगे, आपके ही हाथ बेचेंगे।"

"दर?"

"यह सब, चाचा, तुम्हारे गये विना तय नहीं होगा। पाँच आदमी के साथ एक दिन साँझ को चलो।"

कुछ ही देर में कानाफूसी शुरू हो गयी। तिनकौड़ी ने सुन लिया। वह तुरन्त उठ पड़ा।

यह खबर पाकर वह खुशी-खुशी घर लौटा। खैर! एक उपाय मिल गया। दादन मिले तो और चाहिए क्या? सोना उगलनेवाली जमीन, उसके हाथ की खेती—फिक्र क्या है! काश आज अपनी सारी जमीन होती! पत्थर के लिए सब गया; जाए! फिर कर लेगा वह! इसी बार कई आदमियों का बटैया लिया है। कातिक के महीने में नदी का पानी जब हट जाएगा तो बाप-बेटे मिलकर चौर को काट-कूटकर अच्छा-खासा खेत बना लेंगे। समय से पहले आलू, मटर, गोभी उपजाएगा वह उसमें। जैसे भी हो, रुपया एक बार कमाना ही पड़ेगा। आखिर गौर को वह दे क्या जाएगा? गौर से भी ज्यादा चिन्ता उसे सोना बिटिया की थी। सोने की प्रतिमा-सी लड़की; नाम उसने गलत थोड़े ही रखा है! उसी के फूटे नसीब से बेचारी बिटिया सात साल की उम्र में विधवा हो गयी। उसका कोई उपाय करना पड़ेगा। उसके नाम कुछ जमीन पक्के तौर पर लिख देना उसका सबसे बड़ा काम है।

घर पहुँचते ही सोना ने झिड़की दी, "यह तुम्हारा बड़ा अन्याय है, बाबूजी! हल-बैल खेत में छोड़कर वही घुटने तक उठी हुई धोती पहने कंकना चले गये! वेला झुक गयी, न खाना न पीना—"

तिनकौड़ी हा-हा करके हँसा। बोला, "अरे बाप रे, देखता हूँ बुढ़िया माँ बन गयी है तू!"

"बाबुओं से झगड़ आये न?"

"नहीं रे, नहीं! वह आदमी अच्छा है। कलकत्ते में रहता है न! मीठे-मीठे ही बोला। कहा—"गलती हो गयी। गोरू का बड़ा जतन किया। मुझे जलपान कराया। लेकिन हाँ, रुपये के अलावा और कुछ भी नहीं पहचानता। उफ् धान कितना है रे सोना! सब बेच डालेगा।"

सोना चुप हो गयी। वह अगर धान बेच डाले तो कोई क्या कह सकता है। हमारे नहीं हैं, लेकिन उससे बाबू का क्या?

सोना की माँ बोली, "सुनते हो, शिवकालीपुर का देबू गुरुजी आया था।"

"देबू गुरुजी?"

"हाँ!"

"किस लिए? कुछ कह गया है?"

"मैंने तो बात नहीं की, सोना ने ही की थी। बता सोना, क्या कहा!"

सोना बोली, "कह गये हैं—मैं फिर आकर उसी को बताऊँगा।"

माँ ने कहा, "लेकिन बात तो बड़ी देर तक की तूने?"

सोना ने लजाकर कहा, "मुझसे पढ़ने की बात कह रहे थे।"

तिनकौड़ी उत्साहित हो उठा, "पढ़ने की बात! कुछ पूछा था? तू बता सकी?"

लजाती हुई गरदन झुकाकर सोना ने बताया, "सब जवाब दिया।" उसके बाद बोली, "मुझसे कह रहे थे कि यू.पी.की वृत्तिका इम्तहान क्यों नहीं दे देती हो?"

"तो तू देती क्यों नहीं है, सोना!"—तिनकौड़ी के उत्साह की सीमा नहीं रही। "कंकना के बालिका विद्यालय में बाबुओं की लड़कियाँ पढ़ती हैं, सोना भी क्यों न पढ़े! ठीक है, देबू तो फिर आएगा, उससे राय करता हूँ।"

नौ

कल से झूलन शुरू होगा। आज सावन शुक्ला दशमी है, कल एकादशी। विष्णु की द्वादश यात्रा में से अन्यतम यह हिन्दोल-यात्रा एकादशी से शुरू होती है और पूर्णिमा के दिन खत्म होती है। मामूली गृहस्थों के यहाँ झूलन का खास कुछ उत्सव नहीं होता। सिर्फ पूर्णिमा के दिन हल चलाना मना है। आसमान में फिर बादल घिर आये हैं। गरमी भी खूब है। लगता है, बारिश होगी। अबकी बारिश अँजोरिया पाख से

शुरू हुई है। बंगाल के किसानों की इसपर पैनी नजर रहती है। आषाढ़ से ही वे इसपर गौर करते रहते हैं कि इस साल बारिश किस पक्ष में शुरू होती है। हर साल बारिश का एक निश्चित समय देखा जाता है। इस साल बारिश अँधेरिया पाख से शुरू होती है, उस साल कृष्णपक्ष के बीच-बीच में शुरू होकर पूर्णतिथि यानी अमावस्या में जोरों की बारिश हो जाती है। और शुक्लपक्ष के शुरू के कई दिन हलकी वर्षा के बाद बादल छँट जाते हैं। दस-पन्द्रह दिन या अठारह दिन सूखा रहने के बाद फिर जोरों से बारिश होती है। अतिवृष्टि में अवश्य इसका व्यतिक्रम देखने में आता है। क्योंकि वे दोनों भी ऋतुचक्र की स्वाभाविक गति की अस्वाभाविक अवस्था हैं, नियम में अनियम व्यतिक्रम!

अबकी वर्षा शुक्लपक्ष में उतरी। दशमी को आसमान बादलों से घिरा। बूँदा-बाँदी भी हो रही है। पूर्णिमा को शायद जोरों की वर्षा हो। वर्षा इस बार ज्यादा है, फिर भी मोटा-मोटी अच्छी ही कही जाएगी। सावन में पानी ने जलमय कर दिया। सावन कर्कट राशि का महीना है; सूर्य इस समय कर्कट राशि में रहते हैं। वचन है—'कर्कट छरकट, सिंह (अर्थात् भाद्र में) शुका, कन्या (अर्थात् आश्विन में) काने-कान। बिना वायु के तुला (अर्थात् कार्तिक में) कहो तो कहाँ रखोगे धान।'

धान के आसार अच्छे हैं। पानी का गुण भी अच्छा है। किसी-किसी साल पानी अच्छा पड़ने पर भी देखा जाता है कि धान के पौधे वैसे जोरदार नहीं होते, खासी उपजाऊ जमीन में भी नहीं। लेकिन इस बार इन कुछ दिनों में ही धान के पौधों ने खासा जोर पकड़ा है। ऐसी वर्षा किसानों के लिए सुख की होती है। बैहार में भरपूर पानी, खेतों में लकलक पौधे, दलदल माटी—और क्या चाहिए। प्रकृति के आयोजन की प्रचुरता में अपनी श्रम करने की शक्ति का योग दे पाये कि हुआ।

ऐसी वर्षा में किसान मछली की तरह खेत में कूद पड़ता है। मुँह-अँधेरे ही खेत जाता है। कलेवे के समय यानी दस बजे एक बार हल छोड़कर खेत की मेड़ पर बैठकर पाँच सेर सामान अँटनेवाले पुरखों के बड़े कटोरे में मूड़ी-गुड़ खाता है; उसके बाद एक चिलम खूब कड़ा तम्बाखू पीकर फिर हल की मूठ पकड़ता है। एक से दो बजे के अन्दर हल खोल देता है और फिर तीन घण्टा यानी दो से पाँच तक फावड़ा चलाता है। पाँचे बजे के बाद घर लौटता है। नहा-खाकर फिर खेत जाता है मोटी उखाड़ने के लिए। काँदो-पानी में घुटना गाड़कर दोनों हाथों से मोटी उखाड़ता है। रात के दस बजे माथे पर मोटी का बहुत बड़ा बोझ लिये घर लौटता है। ऐसी वर्षा में बैहार सुबह से दस बजे रात तक हँसी-खुशी आनन्द से मुखर रहती है। तीस-पैंतीस की उम्र का हर किसान—उसका गला चाहे जैसा भी हो, जी खोलकर गीत गाता है। यह गीत साँझ के बाद ज्यादा सुनाई पड़ता है और सुनाई पड़ता है हर तरह का गीत।

देबू ने उसाँस ली। इस बार ऐसी वर्षा है, मगर खेतों में गीतों की गूँज नहीं।

ऐसी वर्षा के बावजूद हर किसान का काम एक वेला बन्द रहता है। उसके घर में धान नहीं है। देबू को अपने उम्र के अनुभव हैं कि बरसात में किसी साल किसानों के घर अनाज नहीं रहता है। लेकिन उसने सुना है कि पहले रहता था। बूढ़े द्वारका चौधरी ने एक दिन यतीन बाबू से जो बात कही थी, देबू को वह बात याद आयी।

उस समय गऊ ब्याती थी तो दूध बाँटता था, रास्ते के किनारे आम-कटहल के बगीचे लगाता था, पोखर-तालाब खुदवाता था, देवता की प्रतिष्ठा करता था—

बच्चों को सुलाने की लोरी है—

चन्दा-चन्दा,
डाल नींद का फन्दा,
गाय बियाये दुद्धा दूँगी।
भात जीमने थाली दूँगी।

भात नसीब न होता तो भात की थाली काहे को देती? और देती भी किस धन से? धान से बढ़कर धन नहीं।

गोल में भरा धान, गुहाल में गौएँ, पोखर में मछली, घर के ईछे-पीछे पेड़-पौधे, बहू-बेटियों की गोदी में बच्चे—ऐसे ही घरों में लक्ष्मी रहती थी। पहले घर-घर में यह सब था। नहीं था, तो ये बातें आयीं कहाँ से? आज इस पंचग्राम में यह सब दीखता है तो एक श्रीहरि के ही घर में। कंकना के बाबुओं के यहाँ लक्ष्मी है, लेकिन यह सब नहीं है। जंक्शन में लक्ष्मी है, किन्तु वहाँ की लक्ष्मी के लक्षण ही और हैं। कंकना के बाबुओं की फिर भी जमीन है, जमींदारी है। जंक्शन में गद्दी है, कल-कारखाना है—खेत-खलिहान से कोई वास्ता नहीं। धान वहाँ लक्ष्मी नहीं, ढेरों पड़ा है; जूतों से ठोकरें लगाकर धान की निरख-परख होती है। अमावस्या-पूर्णिमा तिथि को बृहस्पतिवार को सुबह-शाम धान बिकता है और फिर भी लक्ष्मी वहाँ दासी बनी खट रही है। चैत्रलक्ष्मी के व्रत की कथा में आता है—एक बार एक ब्राह्मण के खेत से तिल के फूल तोड़कर लक्ष्मी ने कान में पहन लिये थे। इसके लिए लक्ष्मी को ब्राह्मण के यहाँ खटना पड़ा था। इन गद्दीवालों, कल-कारखानेवालों का क्या कर्ज खाया है लक्ष्मी ने, कौन जाने!

कुछ किसान बेहार से शोर-गुल करते हुए लौट रहे थे। शोर-गुल तो रोज ही करते हैं, आज मानो कुछ ज्यादा था। देबू ने लालटेन की बत्ती को जरा उकसा दिया। वे लोग देबू के दरवाजे पर आकर अपने-आप ही रुक गये।

"गोड़ लागी गरुजी!"

"बैठे हैं?" सतीश ने पूछा।

"हाँ!"—देबू ने कहा, "आज शोर-गुल जरा ज्यादा-सा लगा! किसी से लड़ाई-झगड़ा हो गया क्या?"

"जी नहीं!"

"झगड़ा नहीं गुरुजी!"

"जी, सतीश आज बाल-बाल बच गया!"—उत्तेजित स्वर में पातू ने कहा। पातू दुर्गा का भाई, सब कुछ गँवा बैठा है; पेट नहीं भरता है, इसलिए पुश्तैनी पेशा छोड़ दिया है। इन दिनों मजदूरी करता है। आज वह सतीश के ही बटैया खेत में काम कर रहा था।

"बाल-बाल बच गया? क्यों क्या हुआ?"

"जी, साँप! काला खरीस, दो हाथ लम्बा होगा!"

सतीश ने हँसकर कहा, "जी, हाँ! समझिए, जाने कैसे मोटी की खुली अँटिया में मुँह डाले हुए था। मुझे क्या पता! अँटिया बाँधने के लिए कसकर पकड़ी, खूब कसकर पकड़ी थी, समझ लें, नहीं तो खैर नहीं थी। उसके मुँह को ही दबा दिया था मैंने, सो हाथ में लपेट लगायी। मैंने हँसिया से काट डाला। क्या करता?"

घटना ऐसी कुछ असाधारण गम्भीर नहीं थी। बैहार में काले खरीस बहुत हैं। हर साल दो-चार मारे जाते हैं! मारे तभी जाते हैं जब मुठभेड़ हो जाती है, नहीं तो वे मेड़ों के बिलों में रहते हैं। खेतों में किसान काम करते हैं। अयाचित भाव से कोई किसी पर हमला नहीं करता। मारे साँप ही ज्यादा जाते हैं, असावधानी से ही कभी कोई आदमी चपेट में आ जाता है।

पातू ने कहा, "सतीश भैया को अब माँ[1] मनसा के थान पर माथा चढ़ाना चाहिए। आपकी क्या राय है?"

सतीश ने कहा, "सो होगा। चलो, तुम लोग चलो आगे! मैं भी आता हूँ।"—और-और लोग पहले चले गये। सतीश बैठ गया।

देबू ने पूछा, "कुछ कहना है सतीश?"

"जी हाँ! आपको न कहूँ तो और किसे कहूँ?"

"कहो।"

"जी, धान की कह रहा था।"

देबू ने कहा, "वही तो सोच रहा हूँ, सतीश!"

"जी, अब तो बिलकुल नहीं चल रहा है, गुरुजी!"

देबू चुप रहा।

सतीश बोला, "एकाध जने की बात नहीं। पाँच-पाँच गाँव के सब लोग। कुसुमपुर के शेखों का तो त्यौहार भी है आज। मैंने देखा, खेतों में एक भी हल नहीं आया।"

देबू ने एक लम्बा निःश्वास फेंका। कहा, "उपाय तो कुछ-न-कुछ करना ही

---

1. मनसा—साँपों की देवी।

पड़ेगा, सतीश! मैं रात-दिन सोच रहा हूँ। खैर, ज्यादा सोचो मत। कोई-न-कोई उपाय होगा ही।"

सतीश ने प्रणाम करते हुए कहा, "बस, तब क्या फिक्र है! आप भरोसा दें तो हो गया!"—और फिर वह चला गया।

देवू शाम से ही सोच रहा था। शाम से ही क्या, आज कई दिनों से उसकी इस चिन्ता का विराम नहीं था। जमाट-बस्ती जिस दिन हुई थी, वह उसी रात से वहुत चिन्तित हो पड़ा है। जमाट-बस्ती करनेवाले चाहे भल्ले हों, चाहे हाड़ी लोग या कि मुसलमानों के उस तरह के लोग—उसमें उनका अपराध जैसा सत्य है, उससे भी बड़ा सत्य है भूख, अन्न की बेतरह कमी। अपराध करनेवाले लोग समाज के स्थायी बाशिन्दे हैं, बारहों महीने हैं वे; और दुर्योग, अँधेरा—वह भी है। लेकिन यह अपराध वे सदा नहीं करते, खास करके कातिक से फागुन तक डकैती नहीं होती। कातिक से फागुन तक यहाँ सबकी हालत अच्छी रहती है। उस समय ऐसा घृणित पाप करना तो दूर रहा, ये लोग व्रत करते हैं, पुण्य की कामना से खुशी-खुशी उपवास करते हैं, भिखमंगों को भीख देते हैं; डकैतों के नाती, डकैतों के बेटे—ये सब डकैत उस समय डकैती नहीं करते। अपराध-वृत्ति से भी बड़ी है अभाव की ज्वाला। मन-ही-मन उसने लक्ष्मी को प्रणाम करते हुए कहा—देवी, तुम रहस्यमयी हो! तुम्हारे रहने से भी आफत है, नहीं रहने से भी आफत। कंकना में तुम कैद हो। वहाँ तुम्हारी•ही बदौलत बाबू लोग बाबू हैं। वे लोग तरह-तरह के छल-प्रपंच से गरीबों का सरबस हड़प लेते हैं—लगान के सूद में, कर्ज के सूद में, सूद-दर-सूद में; यहाँ तक कि लोगों को गलत तरीके से दबाने के लिए वे झूठे मामले-मुकदमे से भी नहीं हिचकते, इन बातों को वे अधर्म नहीं मानते। इस सबकी जड़ में भी तुम्हीं हो। और ये भल्ले लोग डकैती करते हैं—जिनके खान्दान में पुश्तों से किसी ने कभी डकैती नहीं की, ऐसा कोरा आदमी भी डकैती में साथ देता है—उसका कारण तुम्हारा अभाव है। हे माँ, तुम्हारे अभाव से ही इन अभागों में ऐसी पाप-वृत्ति जाग उठी है। जब जाग उठी है तो खैर नहीं। किस दिन किस गाँव में डकैती पड़ जाएगी, कोई ठीक नहीं रहता। उस दिन वह इसी के लिए तिनकौड़ी के यहाँ गया था। उससे तो भेंट न हो सकी, उसकी बेटी से भेंट हुई। लड़की जैसी श्रीसम्पन्न है, वैसी ही बुद्धिमती भी।

तिनकौड़ी से भेंट नहीं हुई, लेकिन देखुड़िया के लोगों की दयनीय दशा वह अपनी आँखों देख आया है। न केवल देखुड़िया की, बदतर हालत सारे इलाके की ही है; गोकि इतनी अच्छी बारिश हुई, धान की कमी नहीं होनी चाहिए। ऐसे में महाजन बुलाकर कर्ज देता है। इस बार लगान-विरोधी आन्दोलन के कारण महाजनों ने धान उधार देना बन्द कर दिया है। श्रीहरि का बन्द करना तो जरूरी ही है। वह पेट की मार मारकर रैयतों को कायदे में लाना चाहता है। दूसरे महाजनों ने बन्द किया है, जमींदार के डर से और सूद बढ़ाने की नीयत से। इसके सिवा दिये धान

के बाकी रह जाने का भी डर है। सभी गाँवों से खेतिहर आने लगे—किया क्या जाए गुरुजी!

देबू उन्हें क्या जवाब दे?

वे लोग फिर भी कहते—कोई उपाय कीजिए, नहीं तो खेती होने से रही और बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे।

आज अचानक ही उसने सतीश को भरोसा दे दिया। सतीश खुश होकर चला गया। लेकिन देबू ने बड़ी अकबकाहट महसूस की। वह बेचैन हो उठा। उसे लगा कि जिम्मेदारी जैसे और भी भारी हो गयी।

इतने में घने अँधेरे में खूब ताकतवर कोई आदमी पैरों की जोरों से आवाज करता हुआ करीब के मोड़ से मुड़कर देबू के दरवाजे के सामने आ खड़ा हुआ। माथे में मुरैठा, हाथ में लाठी। फिर भी तिनकौड़ी को पहचानने में देबू को देर न लगी। व्यस्त होकर बोला, "तिनू चाचा! आओ, आओ!"

तिनू बरामदे पर चढ़ा, धप्प से चौकी पर बैठ गया, बोला, "हाँ, आ गया। सोना कह रही थी, उस रोज तुम गये थे। लेकिन इधर कई रोज मैं वक्त ही न निकाल पाया।"

देबू ने कहा, "हाँ, कुछ कहना था।"

"कहो। मुझे भी कुछ बात करनी है।"

देबू ने कहा, "उस दिन की जमाट-बस्ती के बारे में मालूम है?"

"मालूम है। उन कम्बख्तों को मैंने बड़ा डाँटा है। तुमसे कहने में क्या है, यह भल्लों की ही करतूत है।"

"श्रीहरि ने थाने में शायद आपका भी नाम लिखाया है।"

तिनकौड़ी ठठाकर हँस पड़ा। हँसी को जब्त करके बोला, "वह बदनामी तो अपनी है ही भैया, उसकी मैं परवाह नहीं करता। भगवान है, मैं अगर पाप नहीं करता तो मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।"

देबू हँसा। बोला, "सो तो ठीक है! फिर भी थोड़ा होशियार हो जाना अच्छा है।"

"और क्या होशियार होने को कहते हो? खेती-बारी करता हूँ, मेहनत-मशक्कत करता हूँ, खाता-पीता हूँ, सोता हूँ। इससे ज्यादा और क्या सावधान होना है?"

इस बात का जवाब देबू नहीं दे सका। बात तो सही है। अच्छे उपायों से कोई अपनी घर-गिरस्ती करे और फिर भी उसपर सन्देह का बोझा लाद दिया जाए तो वह क्या करे? सच्ची राह पर चलते हुए दुनियादारी करने से ज्यादा सावधान और किस तरह से हुआ जा सकता है?

"वह साला छिरू जो जी में आये, करे। जेल होगा और क्या! मुझे मालूम है कि साला बी.एल. करने की फिराक में है। मैं उसकी चिन्ता नहीं करता। मेरा

गौर सयाना हो गया है, मजे में घर चला लेगा। न होगा तो मैं कुछ दिन जेल की ही रोटियाँ खा आऊँगा।"—कहकर तिनकौड़ी फिर जोरों से हँस पड़ा।

देबू समझ गया कि तिनकौड़ी कुछ उत्तेजित हो गया। सो साथ-साथ वह भी जरा हँसा।

एकाएक तिनकौड़ी की हँसी थम गयी। एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उसने कहा, "यह भगवान-वगवान बिलकुल गलत है देबू! होता तो भला तुम्हारा जैसा सोने का संसार बरबाद हो जाता? या कि मेरी सोना-जैसी प्रतिमा सात साल की उम्र में विधवा हो जाती? मैंने उस पत्थर के लिए क्या कम किया? हुआ क्या? मेरे ही रुपये गये, जमीन गयी। मैं साला गधा बन गया। यह भगवान-वगवान सरासर झूठ, धोखा है!"

देबू ने श्रद्धा के साथ तिरस्कार किया, "छिः चाचा, आप-जैसे आदमी को ऐसी वात जबान से नहीं निकालनी चाहिए!"

"क्यों?"

"भगवान क्या ऐसी मामूली-सी घटना से पहचान में आते हैं? दुःख देकर वे आदमी को कसौटी पर कसते हैं।"

"अहा-हा! तुम्हारे भगवान तो बड़े रसिक आदमी हैं! क्यों, वे सुख देकर क्यों नहीं कसते कसौटी पर ? दुःख देकर इम्तहान लेने का शौक क्यों है?"

"वह भी करते हैं वे। कंकना के बाबुओं की देखिए। वहाँ उन्होंने सुख से परीक्षा ली है।"

"उससे उनका वुरा क्या हुआ है?"

"मगर आप क्या कंकना के बाबुओं-सा होना चाहते हैं? उन सब बाबुओं जैसे—शैतान, चरित्रहीन, पाखण्डी? तमाम लोग गालियाँ देते हैं। मौत ताक में बैठी है। जिसके मरने से सारे ही लोग कहेंगे—पाप रुखसत हुआ, जान में जान आयी। तिनकौड़ी चाचा, जिसके मरने से लोग रोते नहीं, हँसते हैं, उससे बढ़कर अभागा भी कोई है! काना, लँगड़ा—जिसका दुनिया में कोई नहीं, वह मरकर रास्ते पर पड़ा रहता है, उसे देखकर भी लोगों की आँखों में पानी आता है। और जिनके यहाँ हजारों-हजार, लाखों-लाख रुपये हैं, जमींदारी है, कारोबार है, बड़ा परिवार है, हाथी-घोड़ा है, उनके मर जाने से लोग कहते हैं, हम जी गये! इसी से सोच देखिए।"

तिनकौड़ी इसपर चुप रहा। देबू की इन तीखी बातों ने उसके हृदय में प्रवेश करके उसकी अभिमान-विमुख-भगवत्-प्रीति को तिरस्कार, सान्त्वना और आवेग से आकुल कर दिया। लेकिन ऐसे आवेग के उच्छ्वास में वह बड़ा संयत आदमी है। जिस दिन सोना विधवा हुई, उस दिन भी किसी ने उसकी आँखों में एक बूँद आँसू नहीं देखा। कुछ देर चुप रहकर उसने सिर्फ एक उसाँस ली। उसके बाद बोला—"तुम्हारा भला होगा वेटे, तुम्हारा भला होगा। भगवान तुम्हारे ऊपर दया करेंगे!"

देवू चुप था।

तिनकौड़ी ने कहा, "तुम्हारे पास किस लिए आया हूँ सो सुनो।"

"कहिए।"

"धान!"

"धान का तो अभी कोई उपाय ही नहीं सूझा, चाचा! दो-चार जने की वात नहीं, पाँच-पाँच गाँवों के आदमी!"

"कुसुमपुर के मुसलमानों ने धान की जुगत कर ली है। धान नहीं, रुपया। रुपये कर्ज लेकर धान खरीद लाये हैं। आज खेती में शेखों का एक भी हल नहीं उतरा।"

देबू अचम्भे में आ गया।

तिनकौड़ी ने कहा, "जंक्शन के कारखानेवाले ने रुपया दिया, गद्दीवाले से धान खरीदा। कारखानेवाला चावल भी देने को तैयार है। लेकिन कुटाई की मजूरी तो काट लेगा; और, फिर भूसा, कूड़ा। कारखाने का चावल भी समझो कैसा होता है। वह हमारे मुँह को नहीं रुचेगा। उससे अच्छा तो रुपया लेना ही है।"

देवू ने कहा, "कुसुमपुर के सबने दादन लिया?"

"हाँ! दस-पन्द्रह, वीस-पचीस—जो जैसा आदमी है! कई दिन पहले से ही ठीक कर लिया था, किसी से कहा नहीं। मैं उस दिन उन लोगों की बैठक में था, सुन लिया।"

देवू ने कहा, "वही तो!"—उसने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा।

"मैं भी गया था, वातचीत कर आया। तुम बल्कि कल-परसों चलो। मैं तुम्हारा नाम कह आया हूँ। वोला—उसकी क्या जरूरत है? अपनी बात तुम लोग आप करो। देवू गुरुजी को रुपया नहीं चाहिए। अकेला आदमी है, और घर में धान भी है।"

"मुझसे कारखानेवालों की मुलाकात हुई, चाचा! मेरे पास तो आदमी भेजा था।"

"तुमसे वातचीत हुई है?"

"हुई है। मैं शर्त पर राजी नहीं हो सका।"

"क्यों?"

"जोड़कर देखा है आपने कि क्या कर्ज सिर पर लदता है? मैंने हिसाव लगाकर देखा है। डेवढ़ा सूद वहुत है। उन रुपयों से जो धान खरीदिएगा, पूस में धान बेचते वक्त ठीक उसका डबल धान लगेगा।"

"मगर उसके सिवा उपाय भी क्या है, कहो?"

देवू कुछ देर चुप रहकर बोला, "अभी मैं सोचकर किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाया हूँ, तिनू चाचा!"

"लेकिन इधर पेट के लिए अनाज जो नहीं रहा! जन-मजूरे धान-धान करके जान खायें जा रहे हैं! और इन भल्लों का ही क्या करूँ?"

"आज तो मैं कुछ कह नहीं पाऊँगा, चाचा! कल जरा न्यायरत्नजी के यहाँ जाऊँगा। फिर जैसा होगा, बताऊँगा।"

तिनकौड़ी ने लम्बी उसाँस ली। जंक्शन से वह खूब खुश होकर लौटा था। वह खुशी इतनी अधिक थी कि इसी रात देबू को वह खबर देने का लोभ रोक नहीं सका। कुछ देर चुप रहकर बोला, "तो आज मैं चलूँ!"

देबू स्वयं भी उठ खड़ा हुआ।

बरामदे से उतरकर तिनकौड़ी फिर मुड़कर खड़ा हो गया। कहा, "हाँ, एक वात और।"

"कहिए।"

"अपनी सोना की कह रहा था। उसे तो उस दिन देखा है तुमने?"

"हाँ, बड़ी अच्छी लड़की है, मुझे बहुत अच्छी लगी!"

"कुछ पूछा-वूछा था? बता पायी?"

देबू ने निश्छल बड़ाई करके कहा, "लड़की आपकी बड़ी बुद्धिमान है। उसने अपने-आप ही जो पढ़ा है, मैंने देखा, वह उसी से अगर यू.पी. की परीक्षा दे तो वृत्ति पा लेगी।"

तिनू ने उदास होकर कहा, "अपना नसीब वेटा, उसका मैं क्या करूँ, कुछ सोच नहीं पाता। खैर, वह इम्तहान दे तो बुरा क्या है?"

"वुरा क्या? मैं कहता हूँ, उससे आपकी बेटी का भविष्य अच्छा होगा।"

तिनू ने उसके दोनों हाथ दबाकर कहा, "बीच-बीच में जाकर उसे थोड़ा-बहुत वताते रहना, बेटे!"

"ठीक है। बीच-बीच में जाऊँगा।"

तिनू खुश हो गया, "बस-बस! फिर तो सोना फर्स्ट आएगी, यह मैं जोर देकर कह सकता हूँ!"

तिनू चला गया। लालटेन को मद्धिम करके देबू फिर सोचने लगा। सब लोगों की चिन्ता। लगान बढ़ने के मामले में लोग पागल-से हो उठे हैं। तिनकौड़ी ने आज जो रास्ता बताया, उस रास्ते से लोगों का सर्वनाश होगा, इसमें कोई शक नहीं! वह अपनी नजरों में उन लोगों का भविष्य साफ देख पा रहा है। उनके इस सर्वनाश का भागी उसे बनना पड़ेगा।

रोज की तरह पातू अपनी स्त्री के साथ वहाँ सोने आया। पूछा, "दुर्गा नहीं आयी है, गुरुजी?"

"नहीं तो!"

"अच्छा! बड़ी वदमाश है! साँझ की ही निकली है—"

घूँघट की आड़ से पातू की बीवी ने कहा, "कमाऊ बहन ठहरी; रोजगार को निकली है!"

पातू उबल पड़ा। बोला, "हरामजादी कहीं की, तू कहाँ थी अब तक? घोषालवाली बात किसी को मालूम नहीं है, क्यों?"

देबू ने खिजलाकर कहा, "पातू!"

"गुरुजी!"—तभी पास ही के पेड़-तले से किसी ने मन्द स्वर में पुकारा।

"कौन?"

"मैं हूँ ताराचरण!"

"ताराचरण? क्या बात है रे?"—देबू उठकर गया।

ताराचरण की बात का ढंग-ढर्रा ही ऐसा है। वह धीमे-धीमे बोलता है, जैसे बड़ी गुप्त बात कर रहा हो। अवश्य ही ऐसी आदत उसे गुप्त बातें कहते-कहते ही हुई है। हर घर में उसका बेरोक आना-जाना। यों जाते-आते रहने से हर घर का कुछ-कुछ छिपा हुआ तथ्य उसके कानों तक आ जाता है। उसी तथ्य को जरूरत के मुताबिक दूसरों को बताकर आदमी की डाह की धार-चढ़ी कौतूहल-वृत्ति को तृप्त करके अपना काम बना लेता है। और उसके भी मन की बात जानकर औरों तक फैला देता है। इलाके के सारे गोपनीय तथ्य सबसे पहले वही जानता है। थाने के दरोगा से लेकर छिरू घोष, और फिर देबू से लेकर तिनकौड़ी मण्डल—यहाँ तक कि महाग्राम के न्यायरत्न के यहाँ की भी बहुतेरी बातें ताराचरण को मालूम हैं। हर कोई उसे सन्देह की नजर से देखता है। वह हँसता है। सन्देह की नजर से देखने के बावजूद लोग ताराचरण से कुछ छिपा नहीं पाते। लेकिन इलाके भर में दो आदमियों की ताराचरण श्रद्धा करता है—एक हैं महाग्राम के न्यायरत्न और दूसरे देबू घोष।

देबू जैसे ही उसके पास पहुँचा, ताराचरण ने कहा, "रांगा दीदी की हालत बहुत खराब है, अब-तब है। जरा चलिए।"

"हालत अब-तब है? किसने कहा?"

"जी, मैं घोष बाबू की कचहरी में गया था। लौट रहा था कि रास्ते में दुर्गा से भेंट हो गयी। बोली—रांगा दीदी बहुत बीमार है। आपको एक बार जाने के लिए कहा है उसने।"

रांगा दीदी के कोई बाल-बच्चा नहीं, खेतिहर सद्गोप की बेटी है। इस समय वह सत्तर साल की बुढ़िया है। देबू की उम्र के लोग उसे रांगा दीदी कहते हैं। वही बुढ़िया अरमरा रही है। देबू ने पातू से कहा, "पातू, तुम सो जाओ! मैं अभी आता हूँ।"

रांगा दीदी से देबू का एक मधुर सम्बन्ध है। जब वह चण्डीमण्डप में पाठशाला चलाता था, तो नहाने के समय रोज बुढ़िया बुहारू लाकर चण्डीमण्डप को साफ कर दिया करती थी। परलोक के लिए पुण्य संचय करने का यही काम था। सुख-दुःख

की कितनी ही बातें बुढ़िया से होती थीं तब। सेटलमेण्ट के हंगामे में उस बार जब वह गिरफ्तार हुआ था, तब जो बुढ़िया भावावेग में आयी थी, देबू को वह याद आया। वह जेल में था तो बुढ़िया बिलू की सदा खोज-खबर लेती रही। निकट आत्मीयजन-सी निश्छल थी ममता उसकी। बिलू का देहान्त हो जाने के बाद सारे दिन उसके मुँह की ओर देखती हुई बैठी रहती थी। उसकी धुँधली आँखों की सजल दृष्टि जीवन में वह कभी नहीं भूल पाएगा।

पीछे से ताराचरण ने कहा, "थोड़ा घूमकर चलना ही ठीक रहेगा, गुरुजी!"

"क्यों?"

"घोष की कचहरी के सामने से जाने से गोलमाल हो जाएगा।"

"गोलमाल?"—देबू अचम्भे में आ गया। एक बुढ़िया मर रही है, वहाँ गोलमाल का कैसा डर? आत्मीय और स्वजनहीन बुढ़िया मरने को बैठी है; अपने पीछे किसी को छोड़कर नहीं जा रही है, इसका कितना दुःख है उसे। मरने के बाद दुनिया में कोई उसका नाम नहीं लेगा, उसके लिए एक बूँद आँसू नहीं बहाएगा। आज तो उसकी मरणशय्या के पास सारे गाँव को इकट्ठा होना चाहिए। बुढ़िया यह देखकर मरे कि सारे गाँव के लोग उसके अपने हैं। उसने कहा, "इसमें लुकना-छिपना क्या है ताराचरण? गोलमाल का डर कैसा?"

जरा हँसकर ताराचरण ने कहा, "जी, है गुरुजी! बुढ़िया का कोई वारिस तो है नहीं। बुढ़िया के मरते ही श्रीहरि घोष मुस्तैद हो जाएगा। कहेगा, बुढ़िया मर गयी। वैसे की जायदाद, रुपये-पैसे का मालिक जमींदार है। आइए, इस गली से चलिए।"

अब देबू को ख्याल हुआ। ताराचरण ठीक बोला है, पक्का आदमी है वह, अजीब हिसाब है उसका, अनोखी है उसकी अभिज्ञता। जिसके वारिस नहीं, उसकी सम्पत्ति का मालिक जमींदार होता है। दरअसल हकदार तो राजा होता है या राजशक्ति; लेकिन यहाँ राजशक्ति ने अपना अधिकार जमींदार को इस तरह से सौंप दिया है कि हक-हुकुम, नीचे-ऊपर सब-कुछ का मालिक जमींदार ही है। खेत रैयत जोतते हैं, उन रैयतों से लगान वसूल करके जमींदार देता है। काम वह इतना ही करता है। लेकिन नीचे अगर खान निकल आए तो जमींदार पाता है; नदी की मछली और गाछ जमींदार पाता है। जमींदार खाता-पीता है, सोता है, कृपा करके कुछ दान-ध्यान करता है। नदी पर बाँध बाँधने के लिए खर्च कोई देता है, सिंचाई के लिए तालाब खुदवा देता है, मगर जमींदार तुरन्त दावा कर बैठता है कि लगान बढ़ाने का हक हो गया है उसका।

जिसके वारिस नहीं है, उसकी जायदाद के असली मालिक हैं देशवासी। राजा या राजशक्ति उनके प्रतिनिधि के रूप में सभी साधारण कामों का प्रबन्ध करती है। इसीलिए सभी आम सम्पत्ति का मालिक था राजा। इसलिए चण्डीमण्डप को आम लोगों ने बनवाकर कहा—राजा का है, इसीलिए देवता का सेवायत राजा था; इसीलिए

लावारिस प्रजा की जायदाद सरकार के जिम्मे चली जाती थी। ये सब बातें देबू ने न्यायरत्न और विश्वनाथ से सुन रखी थीं। उनका भाग्य! राजा आज अपना सारा अधिकार जमींदार को दिये बैठा है। जमींदार ने दिया है ठेकेदार को। देबू ने निःश्वास फेंका। लेकिन आज वह यों छिपकर किस अधिकार से जाए? वह ठिठक गया।

ताराचरण ने कहा, "गुरुजी, आइए!"

गली के उस सिरे पर किसी ने कहा--"परामाणिक, गुरुजी आ रहे हैं?" गला दुर्गा का था।

ताराचरण ने रुककर कहा, "रुक क्यों गये?"

"और भी दो-चार आदमियों को बुला लो, ताराचरण!"

"पीछे बुलाना। पहले तुम आओ जमाई!"--दुर्गा आगे बढ़ आयी।

देबू ने कहा, "लेकिन तू कैसे आ पहुँची?"

धीमे से दुर्गा ने कहा, "लुहार-बहू के यहाँ आयी थी। कई दिनों से थोड़ा-थोड़ा बुखार आ रहा था रांगा दीदी को। लुहार-बहू जाया-आया करती थी, एक लोटा पानी ढककर सिरहाने रख आती थी। रांगा दीदी ने भी मुसीबत में लुहार-बहू का बहुत किया था। मैं दीदी का गाय दुह दिया करती थी, लुहार-बहू दूध गरम करके उसे दे आती थी। बचे हुए दूध को मैं बेच देती थी। आज दोहपर को गयी तो देखा, बेचारी को होश नहीं है। लुहार-बहू ने माथे पर हाथ रखकर देखा, बहुत तेज बुखार था। तीसरे पहर फिर हम दोनों गयीं कि पाया, बुढ़िया के दाँती लग गयी है। आँख-मुँह में पानी के छींटे देते-देते दाँती छूटी, मगर बेहोशी में बड़बड़ाने लगी। इस कदर पसीना छूट रहा है कि हाथ-पाँव ठण्डे होते आ रहे हैं।"

देबू ने कहा, "डॉक्टर को बुलाना चाहिए था। ताराचरण, तुम जरा जाओ। मेरा नाम बताकर जगन भाई को बुला लाओ।"

"नहीं!"--दुर्गा ने रोका। कहा, "हम लोगों ने कहा था, तो रांगा दीदी ने मना कर दिया।"

"मना कर दिया?"

"हाँ, थोड़ी देर पहले होश में आयी है। बोली; डॉक्टर-वैद की जरूरत नहीं है दुरगा, तू अब छिनालपना न कर। बुलाना है तो देबा को बुला। मगर मैं लुहार-बहू को अकेली छोड़कर जा भी नहीं पा रही थी और कोई आदमी भी नहीं मिल रहा था। आखिर परामाणिक से बुला लाने को कहा।"

देबू ने जरा सोचा, फिर कहा, "नहीं! ताराचरण, तुम एक बार डॉक्टर को बुला ही लाओ।"

बुढ़िया की आखिरी अवस्था ही है। हाथ-पाँव के किनारे बर्फ की तरह ठण्डे हो रहे हैं। धुँधली आँखें और भी धुँधली हो आयी हैं। बुढ़िया के सिरहाने उसके मुँह की तरफ पद्म बैठी थी; देबू को देखकर उसने घूँघट काढ़ लिया। बुढ़िया का

स्थान उसके जीवन से भी काफी जुड़ा हुआ था। वह अकसर खोज-पूछ करती, गाली-गलौज भी देती और फिर नमक, तेल, दाल—पद्म को जब जो घटता उसके आकर उधार पैसा माँगने से ही वह दे देती। वापस देती तो ले लेती, किन्तु विलम्ब होने से कभी कुछ बोलती नहीं। घर में खीरा, केला, लौकी—जब जो होता, बुढ़िया उसे दिया करती थी। बुढ़िया को जब कभी खास कुछ खाने का जी होता, तो उसके सामान पद्म के बरामदे पर रख जाती—मेरे लिए बना देना। सामान अकेली उसी के लिए नहीं, कई आदमियों के लिए काफी होता। आजीवन दूध, गोंयठा बेचकर, गाय-बकरी पोस-बेचकर बुढ़िया ने अच्छी-सी पूँजी जोड़ी थी। अवस्था उसकी निहायत बुरी नहीं है। लोग कहते हैं, बुढ़िया के पास बड़ी रकम है। पैकार हैदर शेख लेखा देता है कि मैंने ही बुढ़िया से पाँच-पाँच बछड़े खरीदे हैं। पाँच बछड़ों की कीमत तीन सौ रुपये है और बकरा वगैरह तो बराबर लेता रहता है। इसके रुपयों का हिसाब नहीं।

देबू उसके करीब जाकर बैठा। पुकारा, "रांगा दीदी!"

दुर्गा ने कहा, "जोर से पुकारो। अब सुन नहीं पाती है।"

देबू ने फिर जोर से ही पुकारा, "रांगा दीदी! रांगा दीदी!"

बुढ़िया बुझती हुई नजरों से उसकी ओर ताक रही थी। देबू ने कहा, "मैं हूँ—देबू।" बुढ़िया की निगाहों में फिर भी कोई फर्क नहीं आया। अब देबू ने उसके कान के बिल्कुल पास जोर से कहा, "मैं देवा हूँ, रांगा दीदी, देवा।"

अबकी बुढ़िया ने धीमे-धीमे रुक-रुककर कहा, "देवा! देबू भाई!"

"हां!"

बुढ़िया ने हँसकर कहा, "मैं चली भैया!"

दूसरे ही क्षण उसके दोनों पीले होंठ काँपने लगे, धुली हुई आँखों में पानी भर आया। बोली, "अब तुम लोगों को नहीं देख पाऊँगी।" फिर जरा रुककर अजीब हँसी हँसकर बोली, "बिलू से—तेरी बिलू से क्या कहूँगी, बता; वहीं तो जा रही हूँ!"

दस

पद्म जमीन पर पट लेटी बूढ़ी रांगा दीदी के लिए रो रही थी। बुढ़िया सच ही उसे प्यार करती थी। पद्म को दिनों से अच्छी तरह रोने का कारण नहीं मिला। दुनिया

में कहने को उसका अपना एक ही था—अनिरुद्ध; वह कब का उसे छोड़कर चल दिया। उसके लिए अब रोना आता भी नहीं। यतीन लड़के-सा कुछ दिनों के लिए रहा था। उसके चले जाने के बाद पद्म कई दिनों तक रोयी थी। उसकी याद आ जाने से आज भी आँखें भर आती हैं, लेकिन खूब जी भरकर नहीं रो पाती।

बुढ़िया रात के अन्तिम पहर में गुजरी। मरने से पहले जगन डॉक्टर आदि पाँच जनों ने उससे पूछा था, "दीदी, श्राद्ध-व्राद्ध तो करना होगा। रुपये-पैसे कहाँ रखे हैं, बता दो, हम सब उससे श्राद्ध करेंगे तुम्हारा। और जिस मद में जैसा खर्च करने को कहोगी, वही करेंगे।" बुढ़िया ने जवाब नहीं दिया। करवट ले ली। लेकिन डॉक्टर के आने से पहले ही उसने देबू से कहा था, उस समय वहाँ केवल वह और दुर्गा थी। कहा था, "देवा, सोलह कोड़ी[1] रुपये मेरे पास हैं—मेरे ठीक सिरहाने के नीचे जमीन में गड़े हैं। जैसा-तैसा श्राद्ध कर देना मेरा और बाकी तू ले लेना, पाँच बीस लुहारिन को दे देना।"

जो बात बुढ़िया ने देबू से छिपाकर कही थी, सुबह सबको बुलाकर देबू ने उस बात की खुले-आम घोषणा कर दी। श्रीहरि घोष तक को बुलवाकर कह दिया कि रांगा दीदी यही कह गयी है। रुपया जहाँ गड़ा था, वह जगह भी बता दी।

नतीजा जो होना था, सो हुआ। जमींदार श्रीहरि घोष ने पुलिस बुलवायी और लावारिस बुढ़िया का सारा सामान, गाय-बछड़ा, रुपया-पैसा सब दखल कर लिया। देबू की बात ही उसने अनसुनी कर दी। दुर्गा बिना कहे ही देबू की बात की सचाई की गवाही देने गयी थी—जमादार और श्रीहरि घोष ने जबरदस्ती उसे वहाँ से निकाल दिया। फिर दुबारा बुलवाकर बेतरह फटकारा। उस फटकार का हिस्सा पद्म को भी लेना पड़ा।

जमादार ने दुवारा दुर्गा को बुलाकर कहा था, "तू है मोची की लड़की और बुढ़िया थी सद्गोप। उसके मरने के समय तू यहाँ कैसे आयी? उसने तुझे बुलवाया था?"

दुर्गा डरनेवाली औरत नहीं थी। उसने कहा, "मौत की घड़ी में तो लोग भगवान को भी बुलाना भूल जाते हैं तो यह भला मुझे क्या बुलाती! मैं खुद ही आयी थी।"

श्रीहरि ने बड़े कठोर कण्ठ से कहा, "रुपये के लोभ से तूने बुढ़िया को मार नहीं डाला है, इसी का क्या ठीक है?"

दुर्गा पहले तो चौंक उठी थी, फिर हँसकर प्रणाम करते हुए बोली, "बहुत खूब! यह बात तुम्हारे ही मुँह से सोहाती है पाल!"

जमादार ने डाँटकर कहा, "बात करना नहीं जानती है हरामजादी? घोष बाबू को पाल कहती है, 'तुम' कहती है?"

---

1. कोड़ी = बीस रुपये।

दुर्गा ने छूटते ही कहा, "यह कभी मेरा यार जो रहा है, इसे कभी पाल कहा है, तुम कहा है और पी-पवाकर कभी तू भी कहा है। इतने दिनों की आदत क्या छूट सकती है जमादार साहब? इसके लिए अगर आपके यहाँ कोई सजा हो, तो दीजिए।"

श्रीहरि का सिर झुक गया था, जमादार ने भी इसपर ज्यादा खोद-खाद करने की हिम्मत न की। कुछ क्षण चुप रहकर बोला, "सद्गोप औरत के मरने के समय उसके जाति-गोत के कोई नहीं आये, तू आयी, लुहार-बहू आयी, इसके क्या मानी? क्यों आयी थी?"

पद्म की छाती इसपर धड़क उठी थी।

दुर्गा से यह पूछते ही जमादार ने साथ-ही-साथ कहा, "लुहार-बहू से पूछ रहा हूँ मैं; क्यों जवाब दो?"

जो भी लोग मौजूद थे वहाँ, सबके सब इस अप्रत्याशित सन्देह से भौचक्के हो गये थे। जवाब देबू गुरुजी ने दिया। वह अब तक चुप बैठा था। सामने आकर बोला, "जी, कोई रास्ते पर गिरकर मर गया, शायद हो कि वह मुसलमान हो, और कोई हिन्दू आकर उसके मुँह में पानी डाल दे या किसी मरते हुए हिन्दू के मुँह में कोई मुसलमान ही पानी दे दे तो क्या आप लोग यही कहेंगे कि उसने उसका खून कर दिया है? उससे क्या आप यह पूछेंगे कि उसके किसी जाति-भाई को न बुलाकर तुमने मुँह में पानी क्यों डाला?"

जमादार ने कहा, "लेकिन बुढ़िया के पास रुपये थे।"

"रास्ते में जो मरते हैं, वे सबके सब भिखमंगे ही नहीं होते, राहगीर हो सकते हैं, उनके पास भी रुपया हो सकता है।"

"वैसे में हम बेशक शुबहा करेंगे, खासकर रुपये अगर न मिलें!"

"रुपये की बात तो मैंने आप लोगों को बता दी है।"

"और ज्यादा रुपये नहीं थे, यही कैसे समझें?"

"थे, इसी का क्या मतलब है?"

"हमारा खयाल है, थे। लोग कहते हैं, बुढ़िया के पास हजार के हिसाब में रुपये थे।"

"दूसरे की दौलत और अपनी उम्र को आदमी कम नहीं देखता, ज्यादा ही देखता है। लिहाजा बुढ़िया के पास हजारों होने की ही बात लोग कहते हैं।"

श्रीहरि ने कहा, "खैर ठीक है। लेकिन जब देखा कि बुढ़िया की हालत अबतब है तो मुझे क्यों नहीं बुलवाया?"

"क्यों, तुम्हें किसलिए बुलवाता?"

"मुझे क्यों बुलवाते?"—श्रीहरि अचरज में पड़ गया।

जमादार ने जवाब दे दिया, "क्यों नहीं, ये गाँव के जमींदार जो हैं!"

"जमींदार लगान वसूलकर सरकारी खजाने में जमा करता है। किसी के मरने के वक्त भी बुलाना पड़ेगा उसे, ऐसा कोई कानून है क्या? या कि धर्मराज, यमराज, भगवान के दरबार से भी उसे इसका कोई सनद मिला है? लुहार-बहू बुढ़िया की पड़ोसिन है, दुर्गा लुहार-बहू के यहाँ आयी थी और आकर रांगा दीदी की खोज-पूछ के लिए गयी कि—"

"जभी तो कह रहा हूँ कि जाति-भाई किसी ने खोज नहीं ली, घोष बाबू ने नहीं जाना, ये कैसे जान गयी? इन्होंने खोज क्यों ली?"

"जाति-भाई ने खोज-खबर क्यों नहीं ली, यह तो आप जाति-भाई से पूछिए। आपके घोष बाबू को जानकारी क्यों नहीं हुई, यह आपके घोष बाबू ही बताएँगे। दूसरों की जवाबदेही ये कैसे दें? इन लोगों ने खोज-पुकार किया, यह इनका अपराध नहीं है। दूसरों ने खोज-खबर नहीं ली इसकी कैफियत इनके जिम्मे नहीं है।"

"इन्होंने आपको खबर दी, घोष बाबू को क्यों नहीं दी?"

"कानून में ऐसा कुछ दर्ज है क्या कि ऐसी स्थिति में घोष को यानी जमींदार को ही खबर देनी पड़ेगी? इन लोगों ने मुझे बुलवाया, मैंने डॉक्टर को बुलवाया, मरने के बाद भूपाल चौकीदार से थाने में खबर भिजवायी। इसमें बार-बार घोष बाबू का नाम क्यों आ रहा है?"

इस बार जगन डॉक्टर आगे आकर बोला, "मरते समय मैंने रांगा दीदी को देखा था। उसकी मौत स्वाभाविक मौत है। बुढ़ापा था और ऊपर से बुखार। उसी बुखार में वह चल बसी। आप लोगों को कोई शुबहा हो तो लाश भेज दें। लाश की जॉच कराकर यह साबित करें कि मौत अस्वाभविक है, उसके बाद ये झमेले करें। फाँसी-सूली जो होनी होगी, होगी फैसले में।"

श्रीहरि ने कहा, "ठीक है, वही हो। क्यों जमादार साहब?"

जमादार इतना साहस नहीं कर सका। बेजरूरत और पूरा-पूरा सबूत न रहने के बावजूद मौत को अस्वाभाविक बताकर लाश की जाँच के लिए आगे बढ़ाने से कैफियत उसी को देनी पड़ेगी। फिर भी अपनी जिद उसने पूरी तरह नहीं छोड़ी। जंक्शन शहर से श्रीहरि से कहकर एक एम. बी. डॉक्टर को बुलवा भेजा और इस तरह हंगामे को कुछ देर और जिलाकर रखा।

जंक्शन का डॉक्टर आया। देख-सुनकर उसने जरा चकित होकर ही कहा, "इसे अस्वाभाविक मृत्यु कहने की वजह क्या है, सुनूँ जरा?"

श्रीहरि इसका कोई जवाब नहीं दे पाया। जवाब जमादार ने दिया, "मतलब कि बुढ़िया के पास रुपया है न! देबू घोष और दुर्गा मोचिन यह कह रहे हैं कि बुढ़िया उसमें से सौ रुपये लुहार-बहू को और बाकी देबू को दे गयी है।"

डॉक्टर को इसमें भी कोई वैसी बात नहीं मिली। बोला, "ठीक तो है।"

"ठीक तो नहीं डॉक्टर साहब! इसमें जरा लटपट मामला है। मतलब कि

आजकल देबू घोष ही लुहार-बहू का भरण-पोषण करता है। बीच में यह दुर्गा मोचिन है। अब बात यों है कि बुढ़िया के मरने के वक्त सिर्फ दुर्गा और लुहार-बहू ही आयीं। आकर उन्होंने देबू घोष को बुलवाया। देबू ने आकर डॉक्टर को बुलवाया। लेकिन बुढ़िया का जबानी वसीयतनामा डॉक्टर के आने से पहले ही हो गया। इसपर सन्देह की गुंजाइश नहीं है क्या?"

हँसकर डॉक्टर ने कहा, "वह तो वसीयत के बारे में हो सकता है। लेकिन अस्वाभाविक मृत्यु बताकर मामले को नाहक ही–मेरा खयाल है बिना जरूरत आप लोग पेचीदा बना रहे हैं।"

"बिना जरूरत कह रहे हैं आप?"

"हाँ! और फिर जगन बाबू भी तो वहाँ मौजूद थे।"

"खैर! शव का दाह-संस्कार करें। रुपये-पैसे, चीज-असबाब, गाय-गोरू हम थाने में जमा कर लेंगे। बाद में अगर उनपर देबू घोष और लुहार-बहू का वाजिब हक हो तो वे अदालत से समझ लेंगे।"

रांगा दीदी के संस्कार में देबू ने श्रीहरि घोष को जरा भी दखल नहीं देने दिया। कहा, "उसके बदन में सोना-दाना नहीं है। रांगा दीदी की देह अब न तो किसी की प्रजा है, न किसी की देनदार। जमींदार के नाते हम लोग तुमको उसका दाह-संस्कार नहीं करने देंगे। अगर तुम जाति-भाई के नाते आना चाहते हो तो आओ और दस जने जिस तरह से कन्धा लगा रहे हैं, तुम भी लगाओ। मुँह में आग मैं दूँगा। यह वह मुझसे कह गयी है। इसके लिए मैं उसकी जायदाद या दौलत का दावा नहीं करूँगा।"

श्रीहरि उठ खड़ा हुआ। कहा, "कालू, तू यहाँ बैठ। नमस्ते जमादार साहब, मैं अब चलता हूँ। आप सभी चीजों की फिहरिश्त बनाकर जाइएगा। और जाने के पहले चाय पीते जाइएगा।"

श्रीहरि के यों चले जाने को लोगों ने उसका भाग जाना ही समझ लिया। सबसे ज्यादा खुश जगन घोष हुआ था। लेकिन उससे भी ज्यादा खुश थी पद्म। उस जानवर-सी शक्लवाले आदमी को देखते ही वह सिहर उठती है! उस दिन की उसकी उस अपलक दृष्टि में साँप-से देखते रहने की बात याद आ जाती है। लेकिन फिर भी वह देबू के प्रति उमग नहीं सकी। लोग जब देबू की तारीफ कर रहे थे तो वह घूँघट की ओट में होठ बिचकाये हुए थी। देबू के प्रति जीवन में उसे यही पहला विराग था। देबू गुरुजी के लिए उसके मन में श्रद्धा, प्रीति, कृतज्ञता, करुणा की सीमा नहीं थी। लेकिन देबू के उस दिन के आचरण से वह उससे विरक्त हो उठी।

उसने सबके सामने रुपये की बात जाहिर क्यों कर दी? दुर्गा ने कहा, "जमाई पत्थर है, पत्थर! गुरुजी को रुपयों की जरूरत नहीं, मगर पद्म को तो है जरूरत। उसका पति उसे कहीं का न रखकर छोड़ गया है। दो मुट्ठी दाने का ठिकाना नहीं!

उसे अगर कोई दया करके रुपया दे गयी तो धार्मिक और वैरागी बनकर देबू ने उससे वंचित कर दिया उसे। देबू का खा-पहनकर वह कब तक रहेगी? क्यों रहेगी? देबू उसका होता कौन है?"

रांगा दीदी बेचारी सीधी औरत थी। उसने कितनी बार पद्म से कहा था, "अरी ऐ पद्म, देवा का जरा अच्छी तरह आदर-जतन करना। बड़ा बदनसीब है वह, उसे जरा अपना बना लेना।"

पद्म के सामने ही देबू से बोली थी, "देवा, शादी-ब्याह अगर न करेगा, तो कम-से-कम सेवा-जतन के लिए तो कोई चाहिए ही भैया! तूने पद्म को बचाया है, तो वही तेरी सेवा जतन करे। बल्कि उसे तू अपने घर ले जा। नाहक ही दो जगह क्यों रसोई-पानी हो! और हाथ जलाकर तू ही क्यों पका-चुकाकर खाता है।"

देबू गुरुजी ने गुरुजी की तरह ही गम्भीर होकर कहा था, "नहीं दीदी, मितनी अपने ही घर रहेगी!"

वुढ़िया ने फिर भी उम्मीद नहीं छोड़ी थी। पद्म से कहा था, "तू जरा अच्छी तरह से इसकी सेवा-जतन करना! समझी?"

सेवा-जतन का आग्रह बहुत होते हुए भी वह वैसा कर नहीं पायी। देबू ने ही उसे इसका मौका नहीं दिया, तो वही देबू की दया का अन्न ऐसे क्यों खाये? रांगा दीदी के रुपये उसे मिल जाते, तो वह कहीं चली जाती। इसलिए वह बुढ़िया के लिए इस तरह से रो रही थी।

दुर्गा ने आँगन से आवाज दी, "कहाँ है री, लुहार-बहू?"

पद्म उठी। आँखें पोंछकर कहा, "यहाँ हूँ बहन!"

समीप जाकर दुर्गा ने कहा, "रो रही थी, क्यों?"

"तो तुमने सुन लिया लगता है?"

पद्म ने हैरत में आकर कहा, "क्या?"—अचानक ऐसा क्या घट गया जिसे सुनकर वह और थोड़ा रो सकती है? अनिरुद्ध की कोई खबर आयी है क्या? या यतीन के बारे में गुरुजी के पास कोई खबर आयी है?—या कि फतिंगा जंक्शन में रेल से कट गया?

दुर्गा का चेहरा उत्तेजना से तमतमा रहा था।

"बात क्या है दुर्गा? क्या है—बोल?"

"छिरू पाल ने तुमको और देबू गुरुजी को अजात कर दिया है!"—दुर्गा ने होंठ टेढ़ा करके कहा। उत्तेजना, क्रोध और घृणा से उसने श्रीहरि के लिए वही पुराना नाम छिरू पाल ही कहा।

"अजात करेगा? मुझको और गुरुजी को?"

"हाँ, तुमको और गुरुजी को।"—हँसकर दुर्गा बोली, "तुम्हारा भाग अच्छा है। लेकिन वरी मैं भी न की जाऊँगी।"

एकटक दुर्गा की तरफ ताकती हुई पद्म बोली, "यही कहा है? किसने कहा?"

"घोष बाबू ने—अजी छिरू पाल ने! उसने कभी मोचिन की जूठी शराब पी है, मोचिन के घर में रात बितायी है, मोचिन के पैरों पड़ा है। रांगा दीदी का किरियाकरम होगा, उसमें पाँच गाँव के जाति-गोत आएँगे, ब्राह्मण आएँगे, वहीं तुम लोगों का विचार होगा। तुम लोग पतित किये जाओगे।"

धीमे से हँसकर पद्म ने पूछा, "और तू?"

"मैं!"—दुर्गा खिलखिलाकर हँस पड़ी।—"मैं!"—दुर्गा की वह हँसी थम ही नहीं रही थी। जैसे बाँध तोड़कर लगातार बाढ़ की नदी कल-कल हँसी हँसती है वैसी ही उच्छ्वसित हँसी! उसमें जितना ही कौतुक था, उतनी थी हिकारत। कुछ देर तक वह हँसती रही। उसके बाद बोली, "मैं उस दिन कन्धे में एक ढाक लटकाकर बजाऊँगी, और नाचूँगी, अपनी सारी काली करतूतें उघारूँगी। सतीश भैया से एक गीत बनवा लूँगी। ब्राह्मण, कायस्थ, जमींदार, महाजन—सबका नाम ले-लेकर कहूँगी और छिरू पाल की करतूतें मेरे उस गीत की टेक होंगी।"

दुर्गा मानो सच ही नाचने लगी। पद्म को भी ऐसे ही नाचने की इच्छा होने लगी। बोली, "मुझे भी अपने साथ ले लेना बहन, मैं भी काँसी बजाऊँगी तेरे साथ।"

कुछ देर के बाद दुर्गा ने कहा, "अब जाती हूँ, जरा जमाई को यह बता आऊँ।" और वह वैसे ही नाचते-नाचते चली गयी।

सुनकर गुरुजी करेगा क्या? पद्म को भी बड़ा कौतूहल हुआ और साथ ही उसे बहुत ज्यादा कौतुक महसूस हुआ। खैर! आज न देख सकी, न सही। पाँच गाँव के समाजपति लोग जब आएँगे और इसका विचार होगा, तब तो देखूँगी ही। उस दिन देबू गुरुजी क्या कहेगा? क्या करेगा वह? तीखे और तेज गले से वह इसका प्रतिवाद करेगा—लगेगा, वह लम्बा आदमी आग की लपट-सा जल रहा है। लेकिन पाँच-पाँच गाँवों के जाति-भाई नवशाखा के जाने-माने लोग भला उससे मानेंगे? यह बात पद्म जोर के साथ कह सकती है कि लोग नहीं मानेंगे। इलाके के लोग श्रीहरि से देबू घोष को कई गुना ज्यादा मानते हैं, यह बात बहुत सत्य है, फिर भी लोग देबू की बात को सच नहीं मानेंगे। लोगों को वह पहचान चुकी है! हर आदमी जब उसकी तरफ ताककर देखता है तो उसकी निगाह में क्या होता है, उसे वह जानती है। वे लोग ऐसी एक परायी युवती का नाहक ही भरण-पोषण करने की रस-भरी बात को हाथों-हाथ प्रमाण पाने के बाद भी यकीन नहीं करेंगे—ऐसा भी कभी होता है? आसमान से अगर देवगण भी पुकार कर कहें कि यह झूठ है तो लोग देवताओं की बात को भी झूठ ही कहेंगे। और फिर श्रीहरि घोष पूरी-मिठाई का भोज करेगा। खास करके पके बालोंवाले बुड्ढे रह-रहकर सिर हिलाते हुए कहेंगे—'उहूँ, अरे बाबा, साग से मछली नहीं ढाँकी जा सकती!' वैसे में पण्डित क्या करेगा? हो सकता है वह मुझे छोड़कर प्रायश्चित्त करे! कौन जाने! गुरुजी के बारे में ऐसा सोचते हुए उसे तकलीफ हुई।

गुरु चाहे उसे न छोड़ें, लेकिन अब वही गुरुजी की सब सहायता अस्वीकार करेगी। उससे अब कोई भी नाता वह नहीं रखेगी। उस पंचायत के सामने ही घूँघट हटाकर वह दुर्गा की तरह होठ टेढ़ा करके यह बात कहेगी—'गुरुजी भले आदमी हैं। वे तुम लोगों-जैसे नहीं हैं। उनकी निगाह में मिट्टी के तेल की ढिबरी-जैसी कालिख नहीं पड़ती। और मेरे लिए गड़बड़-घोटाला मत करो। मैं चली जाऊँगी; जाऊँगी नहीं, जा रही हूँ, यह गाँव छोड़कर चली जा रही हूँ। किसी की दया का अन्न अब मैं नहीं खाऊँगी। तुम लोगों की पंचायत को मैं नहीं मानती, नहीं मानती, नहीं मानती!'

क्यों माने? किस लिए माने? घोष ने चोरी-चोरी जब उसके खेत का धान काट लिया था, तो पंचायत ने उसका क्या किया? घोष के जुल्मों से उसका पति कहीं का नहीं रहा—पंचायत ने उसका क्या किया? उसका पति घर छोड़कर चला गया—किसने उसकी खोज की? उसे भोजन मयस्सर नहीं, पंचायत ने कै मुट्ठी दाना दिया उसे? उसके बचाव का कौन-सा इन्तजाम किया है पंचायत ने? उसके पति को लौटा लाएँ तो जाने। उसकी जो जायदाद श्रीहरि ने हड़प ली है, उसे पंचायत लौटवा दे तो वह माने। नहीं तो क्यों माने?

देबू गुरुजी पत्थर हैं। दुर्गा कहती है, पत्थर है वह। नहीं होता तो भला वह अपने को उसके पैरों पर बेच देती! उसे देखकर उसके कलेजे के अन्दर झलमला उठता है, जैसे वर्षा की इस रात में जुगुनू-भरा पेड़ झलमल करता है; मगर दूसरे ही क्षण बुझ जाता है। आज वह सारा कुछ झर जाए, झर जाए! देबू का दिया आज से वह नहीं खाएगी। वह फिर माटी पर औंधी पड़कर रोने लगी।

दुर्गा गयी तो देखा गुरुजी नहीं हैं। दरवाजे पर ताला पड़ा है। बाहर की चौकी पर एक कुत्ता सोया है। रोएँ उड़ गये थे उसके। गुरुजी लौटेगा तो वहीं बैठेगा; ज्यादा थका हो तो शायद वहीं पर लेट भी जाए। उसकी बिलू दीदी के अरमानों का घर! एक ढेला मारकर उसने कुत्ते को भगा दिया। वह घोरई छोरा खलिहान में मन की उमंग से सातवें सुर में जी खोलकर गा उठा—

> मत रो मेरी दिलवर जनिया री,
> ला दूँगा सिकड़ीवाला मैं नथ।

मरे यह छोरा। उम्र भी क्या होगी? पन्द्रह पार करके सोलह में गया होगा। इसी में दिलवर जनिया का रोना चुपाने के लिए सिकड़ीवाले नथ का सपना देखना शुरू कर दिया है! उसे कुछ खरी-खोटी सुनाने का लोभ दुर्गा जब्त नहीं कर सकी। वह खलिहान में जा पहुँची। छोकरा मगन मन गा रहा था और पुआल की अँटिया खसखस करके काटता जा रहा था। दुर्गा के पैरों की आहट उसे सुनाई ही न पड़ी। दुर्गा ने हँसकर कहा, "अबे ओ, ओ दिलवर जनिया!"

पलटते ही दुर्गा को देखकर वह हँस पड़ा और गाना बन्द करके अपने-आप ही खुक-खुक करके हँसने लगा।

दुर्गा ने हँसकर कहा, "मैं तेरे पास सिकड़ीवाले नथ के लिए आयी हूँ। देगा?"

छोरे ने शर्म से सिर झुका लिया। कहा, "धत्त!"

"क्यों, मुझसे चुमौना कर ले न! बस, सिकड़ीवाला नथ देने से ही हो जाएगा।"

छोकरा इस बार हँसते-हँसते लोटपोट हो गया।

दुर्गा ने कहा, "हाय राम, गला दबाओ तो अभी दूध निकलेगा, मगर जरा गीत का ढंग देख लो!"

छोकरा भँवें नचाकर बोला, "हाय राम नहीं, अब मैं चुमौना करूँगा।"

"किससे रे?"

"हूँ! देखना, इसी क्वार में देख लेना!"

"भोज खिलाएगा न?"

"मालिक से रुपये के लिए कहा है।"

"तेरा मालिक गया कहाँ है?"

अब उसे हिम्मत आयी। बेवकूफ-सा बोला, "देखकर एक बार जी जुड़ाने आयी थी शायद?"

देबू के प्रति दुर्गा के अनुराग की बात कुछ छिपी नहीं थी। जबान से तो वह नहीं कहती कुछ, लेकिन उसके काम, उसके व्यवहार में जरा भी संकोच नहीं, झिझक नहीं। हर किसी को नजर आता है उसका अनुराग। इसके सिवा दुर्गा की माँ दुर्गा के इस अनुराग का गाँव-भर में ढिंढोरा पीटती फिरती है। इसी नाहक प्रीति के चलते ही उसकी अभागिन बेटी हाथ की लक्ष्मी को पैरों से ठुकराती है, इस दुःख को वह कहाँ रखे? कंकना के बाबुओं के बगीचे के माली लोग इतने दिनों तक आ-आकर निराश हो गये, अब नहीं आते। अवश्य बेटी की कमाई से उसे खास कोई मतलब नहीं, दो मुट्ठी अन्न मिलने से ही उसका चल जाता है, लेकिन उसे देखकर खुशी तो होती! इसीलिए इतना क्षोभ है! दुर्गा की माँ के मुँह से शिकायत की वह कहानी इस छोरे ने भी सुन रखी है। दुर्गा के ताने का बदला वही कहकर उसने चुका लिया।

लेकिन दुर्गा नाराज न हुई; उसने मजा लिया। हँसकर बोली, "अरे रे मुँहझौंसा, ठहर तू, आने दे गुरुजी को! मैं कहती हूँ उनसे कि तूने यह कहा है।"

छोकरे का मुँह अब सूख गया। बोला, "मालिक नहीं हैं। वे कुसुमपुर गये हैं, वहाँ से कंकना जाएँगे।"

"आखिर लौटेंगे तो?"

छोरे ने कहा, "हो सकता है कंकना से जंक्शन जाएँ। हो सकता है, सदर चले जाएँ। आज और कल न लौटें शायद! परसों भी लौटेंगे कि नहीं, क्या पता!"

दुर्गा ने अचरज से कहा, "जंक्शन जाएँगे, सदर जाएँगे, परसों भी न लौटें शायद! आखिर क्यों, क्या हुआ है रे?"

दुर्गा को परेशानी में पड़ी देख छोकरे की जान में जान आयी। दुर्गा ने अब वह पचड़ा छोड़ दिया। छोकरे ने गम्भीर होकर कहा, "मालिक का रवैया मालिक को ही ठीक है। क्या पता बाबा, झगड़ा यहाँ से दूसरे-दूसरे से हुआ और दौड़े मालिक! वहाँ राम-श्याम में मारपीट हुई और दौड़े यहाँ से मेरे मालिक! कुसुमपुर के शेखों से शायद कंकना के बाबुओं का दंगा हुआ है, मालिक दौड़े-दौड़े गये हैं।"

"कंकना के बाबुओं से कुसुमपुर के शेखों का दंगा हुआ है? किस बाबू से? किस शेख से? काहे का दंगा?"

"कंकना के बड़े बाबू और रहम शेख से। वही गट्टा-गट्टा-सा चेहरा, यह दाढ़ी—उसी शेखजी से।"

"दंगा क्यों हो गया?"

"यह क्या पता! शेख ने बाबुओं का ताड़ का पेड़ काट लिया है या क्या काट लिया है, बाबुओं ने इसीलिए उसे पकड़वा मँगाया और खम्भे से बाँध दिया। शेख लोग जमात बनाकर कंकना पहुँच गये। देखुड़िया का तिनकौड़ी पाल आया था—बाढ़ के आगे बहनेवाला कतवार; मालिक ने चादर ली और चले गये।"

"जंक्शन जाएँगे, सदर जाएँगे—यह तुझसे किसने कहा?"

"देखुड़िया के उसी पाल ने! उसने कहा कि कंकना के थाने में लिखाना होगा, उसके बाद सदर में जाकर नालिश करनी होगी!"

बड़ी देर तक दुर्गा चुप खड़ी रही। फिर अपने घर गयी। आवाज दी, "बहू!"

पातू की स्त्री बाहर आयी।

"भैया किस खेत में काम करने के लिए गया है?"

"अमरकुण्डा के बैहार में।"

दुर्गा अमरकुण्डा के बैहार की तरफ चल पड़ी। वहाँ जाकर पातू से कहा, "तू जाकर जरा देख आ भैया! मैं धान रोप लूँगी।"

पातू सतीश की मजदूरी कर रहा था, उसने कोई एतराज नहीं किया। अपने साफ कपड़े को ठीक से कमर में लपेटकर दुर्गा धान की गोछी गाड़ने लगी। औरतें भी धान रोपती हैं, पुरुषों के सामने ही बड़ी फुर्ती से रोपती चली जाती हैं। कभी दुर्गा ने भी रोपा है; छोटी उम्र में अपने भैया के खेत में वह धान रोपती थी। अब अवश्य बहुत दिन से वह अभ्यास छूट गया है। इसीलिए शुरू की कुछ गोछियाँ गड़ने में जरा अड़चन पड़ी, फिर ठीक हो गया। पानी-भरे खेत में अपनी रेशमी चूड़ियोंवाली कलाई डुबाकर पानी और चूड़ियों से एक खासी मीठी आवाज निकालती हुई तेजी से एक सीध में गोछियाँ गाड़ती जाने लगी।

अकेली वही नहीं, खेतों में बहुत-सारी औरतें धान रोप रही थीं। नन्हे बच्चों

को साफ-सुथरी मेड़ पर सुला दिया था। घटा-घिरे आसमान से रह-रहकर फुहियाँ पड़ रही थीं। ताड़ के पत्ते को गीली मिट्टी में गाड़कर बच्चों के माथे पर छाँह कर दी थीं। असीम आनन्द में किसान-दम्पती अविराम काम करते जा रहे थे। पति हल चला रहे थे, पत्नियाँ धान रोप रही थीं; मजबूत हाथों से पति फावड़ा चला रहे थे, स्त्रियाँ पाँवों से खेत की मेड़ बाँध रही थीं। बारिश से सारा शरीर भीगा हुआ, काँदो में लथपथ। बीच-बीच में धूप निकल आती, काँदो-पानी सूखकर दर-दर पसीना बहने लगता; बीतते सावन की पुरवैया में सिर के बालों के गुच्छे उड़ रहे थे। पुरुष-कण्ठ के मीठे सुर के गीत दूर-दूर तक गूँजकर खो-खो जाते थे।

धान रोपते-रोपते औरतें एक-एक डग पीछे हट रही थीं, एक ताल पर पाँव उठा-रख रही थीं, हाथ भी एक ही साथ उठते-गिरते थे। एक ही साथ उनके रूपा-जस्ते के कंगन बज-बज उठते थे। थककर मर्द जब गाना बन्द कर देते तो वे उसकी बाद की कड़ी शुरू कर देतीं, या कोई दूसरा गीत उसके जवाब में गाने लगतीं। पंचग्राम के दूर तक फैले हुए बेहार में सैकड़ों खेतिहर और मजूर खेती में जुटे थे, विशेष रूप से सन्ताल-स्त्रियाँ काम में जुटी हुई थीं। उन सबों के बीच धान रोपती हुई दुर्गा बीच-बीच में कंकना के रास्ते की तरफ ताक लेती थी।...

ग्यारह

सारा इलाका एक ही दिन में महज कुछ घण्टों में उत्तेजना से चंचल हो उठा। मामूली खेतिहर रैयतों को भी मान-मर्यादा का हक है, देश के शासन-तन्त्र के आगे जमींदार, धनी-महाजन और उनकी मान-मर्यादा में कोई फर्क नहीं है, इस बात को साफ-साफ समझ न पाते हुए भी इसका कुछ आभास उन्हें था। मामले को कुसुमपुर के मौलवी इरशाद और देवू ने पेचीदा बना दिया है।

रहम ने तिनकौड़ी से उस दिन ताड़ का एक पेड़ बेचने का जिक्र किया था। इदुलफितर सिर पर था और सावन-भादों का अभाव ऊपर से; परेशान होकर वह धान या रुपया कर्ज लेने के फिराक में इधर-उधर चक्कर काट रहा था। तभी उसे खबर मिली कि जंक्शन शहर में कलकत्ते के कारखानेवाले के कारखाने में एक नया शेड बनेगा। शेड के लिए अच्छा पका हुआ ताड़ का पेड़ चाहिए। यह खबर उसे अपने गाँव के आरा चलानेवालों से मिली। आरेवाले अबू शेख ने उससे कहा, "बड़े

भाई, सोनाडाँगा के बैहारवाले साँठी के खेत में जो ताड़ है, उसे बेच दो न! कारखानेवाला काफी दाम दे रहा है। बीस रुपये में तो शक ही नहीं।"

गाय-बकरी के पैकार जैसे इस बात की खोज रखते हैं कि किसके और कहाँ अच्छे मवेशी हैं, उसी प्रकार ये लकड़ी चीरनेवाले भी अच्छे पेड़ों की खोज-खबर रखते हैं। आदत भी कहिए और जरूरत भी। किसी का भी नया मकान बनने को हो तो वही हाजिर हो जाते हैं। घर में लगनेवाली लकड़ी चीर देने का ठेका लेते हैं; वही पेड़ की कमी पड़ी तो बता देते हैं कि काम लायक अच्छा पेड़ कहाँ मिलेगा। कारखानेवाले का बहुत बड़ा शेड बन रहा है; उसके छप्पर के लिए ताड़ का पेड़ चाहिए, मामूली से ज्यादा लम्बा पेड़ और केवल बड़ा ही नहीं, बिल्कुल सीधा और आदि से अन्त तक सालवाला पेड़ होना चाहिए, पक्का पेड़! उसी से लोहे के 'टी' और एंगिल का काम चलाना होगा। लोहे और लकड़ी का हिसाब लगाकर कारखानेवाले ने देखा कि यहाँ जिस दाम पर लकड़ी की खरीद-बिक्री होती है, उससे तीन गुना ज्यादा दाम देने से भी उसका आधा खर्च बच जाएगा। उसने आम दर से दूने का ऐलान कर दिया। उस पेड़ पर अबू की नजर थी। यहाँ की दर से उस पेड़ का दाम पन्द्रह से ज्यादा नहीं होता। इसीलिए उसने बीस कहा।

और किसी वक्त अगर कोई यह बात कहता तो रहम सुना देता—"मेरे पेट में आग लगी है या लछमी रूठी है मुझसे कि मैं वह गाछ बेचूं! शैतान कहीं का, भाग!"

वह पेड़ उसे बड़ा प्यारा था। उसे उसके दादा ने लगाया था। जाने कहाँ किस कुटुम्बी के यहाँ गया था, वहीं से एक बहुत बड़ा पक्का ताड़ ले आया था। ताड़ का रस जैसा मीठा था, उतनी ही मीठी थी उसकी सुगन्ध। आमतौर से ताड़ में तीन गुठलियाँ होती हैं, इसमें चार थीं। सोना-डाँगा की ऊँची परती में मिट्टी काटकर उसने उसी समय खेत तैयार किया था। उसी की मेड़ पर उसने चारों गुठलियाँ गाड़ दीं। पेड़ एक ही हुआ। तीन पुश्त से वह पेड़ बढ़ता आया, बूढ़ा हुआ; नीचे से ऊपर तक साल ही साल! फिर खुले समतल में होने की वजह से पेड़ को तीर की तरह सीधा ऊपर उठने का मौका मिला। इसे बेचने की कभी कल्पना भी न की थी रहम ने। लेकिन इस बार वह बहुत आड़े पड़ गया, पन्द्रह के बदले बीस रुपये कीमत भी लुभावनी थी। इसीलिए अबू की बात को सुनकर वह चुप रहा। उसे एक बात और लगी, अबू ने जब बीस कहा है, तो निश्चय ही उसने कुछ हाथ में रखकर कहा है। इसीलिए उस दिन वह खुद ही कारखानेवाले के पास गया था। कारखानेवाले ने पेड़ की जानकारी पहले ही हासिल कर ली थी और उसने अपने हिसाब से एक ही बात कह दी, "उसे बेचो तो मैं तीस रुपये दूँगा!"

"तीस रुपये!"—रहम हैरान रह गया।

"राजी हो, तो रुपये ले जाओ। मोल-भाव मैं नहीं करता। इससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं कहूँगा।"

रहम राजी हो गया। खेती का वक्त निकलता जा रहा था। घर में अनाज खत्म हो चला था। जन-मजूर को धान देना पड़ता है। वे खुराकी के लिए परेशान हो रहे थे। धान न मिले तो क्या खाकर खेती में खटेंगे वे? ऊपर से रमजान का महीना; रोजे के दिन करीब आते जा रहे थे। बच्चे-बच्ची और बीवी कितनी उम्मीदें किये हुए थे कि नये कपड़े मिलेंगे। ऐसे में राजी हुए बिना उपाय भी क्या था? एक उपाय था जमींदार के आगे झुक जाना, बढ़ा हुआ लगान देना। लेकिन यह तो उससे हरगिज न होगा! बात दी तो जाति का भी हलफ लिया। वादा-खिलाफी होगी तो उसका ईमान कहाँ रहेगा? रमजान का पाक महीना, रोजा रख रहा है, ईमान तोड़ने का गुनाह वह नहीं कर सकता।

वहीं कारखानेवाले से उसकी दादन की बात भी हुई थी। मिल के गोदाम में और बाहर धान की ढेरियाँ देखकर रहम अपने को जब्त नहीं कर सका। बोला, "हमें कुछ धान दादन दीजिए न, पूस-माघ में ले लीजिएगा, सूद समेत!"

कुछ देर उसकी ओर देखते हुए कारखानेवाले ने कहा, "धान नहीं, रुपये दे सकता हूँ।"

"रुपये लेकर हम क्या करेंगे बाबू? हमें तो धान चाहिए, धान!"

"धाम से ही रुपये होते हैं, रुपये से ही धान। रुपये से धान खरीद लेना!"

"वह भी तो आपसे ही खरीदेंगे न!"

"नहीं, मैं धान नहीं, चावल बेचता हूँ। वह भी दस-पाँच मन नहीं; दो-चार सौ मन से कम होने पर नहीं बेचता! रुपये लेकर यहाँ के गद्दीवालों से खरीद लेना।"

बड़ी देर चुपचाप सोचकर रहम ने पूछा, "सूद कितना लेंगे रुपये पर?"

"सूद नहीं लूंगा, पूस-माघ में उतने ही रुपये का धान देना होगा। उस समय धान की जो दर होगी, उससे रुपये में एक आना कम देना होगा। एक शर्त और है।"

"वह क्या?"

"जो लोग मुझसे दादन लेंगे, वे दूसरे के हाथ धान नहीं बेच पाएँगे। इसकी कोई लिखा-पढ़ी तो नहीं रहेगी, मगर वचन देना होगा। तुम लोग मुसलमान हो, ईमान पर बात देनी होगी।"

तब रहम ने कहा था, "अच्छा, आपस में राय-मशविरा करके बताएँगे।"

"ठीक है!" मिलवाला मन-ही-मन हँसा था—"ताड़ के रुपये आज ही ले जा सकते हो!"

"जी, परसों आऊँगा। तभी सब ठीक कर जाऊँगा।"

बैठक में दादन की बात तय पायी गयी और रहम ने ताड़ का पेड़ बेचने का निश्चय कर लिया। लेकिन उसकी दोनों बीवियाँ ताड़ के पेड़ के लिए रो पड़ी थीं—उफ् इतना

मीठा ताड़। कितने लोग उनके यहाँ ताड़ माँगने आते हैं। भादों में ताड़ पककर खुद ही गिर पड़ते हैं। भोरहरे में ही गरीब-गुरबों के बच्चे उसे चुन ले जाते हैं। गिरे हुए ताड़ पर इधर किसी की मिल्कियत नहीं होती। इसीलिए रहम पकने-पकने को होते ही ताड़ कटवाकर घर ले आता है। तकलीफ उसे भी खूब हो रही थी। मगर उपाय क्या था? उस दिन जाकर गाछ का दाम वह ले आया। रुपये दादन लेने की बात भी पक्की कर आया।

लेकिन एक बात का रहम को खयाल न रहा और असल बात वही थी। बात थी पेड़ की मिल्कियत की। तीन पुश्त में मिल्कियत में हेर-फेर हो गया इसका उसे कयास भी न था। उसके दादा ने जमींदार से परती बन्दोबस्त लेकर अपने हाथ से खेत तैयार किया था। लेकिन उसका बाप अपने अन्तिम दिनों में कर्ज के कारण कंकना के मुखर्जी बाबू को वह जमीन बेच गया था। मुखर्जी लोग बहुत बड़े महाजन हैं—लखपती। इस तरह कर्ज से इलाके की बहुत जमीन उनके हाथ आयी है, हजारों-हजार बीघा। इतनी जमीन में खुद खेती करना किसी के लिए भी मुमकिन नहीं। फिर वे किसान भी नहीं, असल में वे महाजन जमींदार हैं। इसीलिए उनकी सारी जमीन बटाईदारी में लगी हुई थी। फसल के वक्त बाबू लोगों के आदमी आते, समझ-बूझकर अपना हिस्सा ले जाते। जमीन बेच देने के बाद रहम के बाप ने बाबुओं से वह जमीन बटाई में खेती करने के लिए रखी थी। बाप के मर जाने के बाद रहम भी उसे जोत रहा है। एक दिन के लिए भी कभी यह खयाल उसे न आया कि जमीन उसकी अपनी नहीं है। लगान के बदले उपज का हिस्सा दिया करता, बस यही। उसी हिसाब से वह जमीन की देख-रेख करता है, जमीन में कुछ करना-कराना हुआ तो मजदूर रखकर सदा उसी ने कर-करा लिया—उसके लिए बाबुओं से कभी रुपया माँगने की याद नहीं रही। यों सदा सबसे कहता आया कि यह मेरी बपौती जमीन है; मन में भी उसे अपनी ही समझता रहा है। उसी जमीन के धान से सदा नवान्न करता आया है। ताड़ के इस पेड़ को जब उसने बेचा तो एक बार भी यह बात उसके मन में नहीं आयी कि पेड़ उसका नहीं है, दूसरे का पेड़ बेचकर वह अन्याय कर रहा है।

मिलवाला पेड़ को काटकर उठा ले गया, उसके बाद आज सवेरे अचानक रहम के यहाँ चपरासी आ पहुँचा—"बाबू की बुलाहट है, फौरन चलो!"

रहम ने बैलों को सानी लगायी थी; उनका खाना खत्म हो, इस इन्तजार में था वह। उसने कहा, "कहना बाबू से, उस बेला आऊँगा।"

"उँहूँ, इसी वक्त जाना पड़ेगा।"

रहम मातब्बर किसान ठहरा, तिस पर गँवार। उखड़ गया—"इसी वक्त जाना होगा के माने? मैं क्या तेरे बाबू का खरीदा हुआ गुलाम हूँ?"

चपरासी ने रहम का हाथ धर दबाया। दबाना था कि जोरावर रहम ने चपरासी

के गाल पर जोरों का एक तमाचा जड़ दिया—"यह हिमाकत, मेरे बदन पर हाथ!"

वह जमींदार का चपरासी था; इन्द्र के ऐरावत-सा घमण्ड, वैसे ही झूमते हुए चला करता था। इलाके में कोई उसे इस तरह से तमाचा भी लगा सकता है, यह वह सोच भी नहीं सकता था। तमाचे से सिर चकरा जरूर गया, लेकिन सँभलकर वह गुर्राया। रहम ने तुरन्त दूसरे गाल पर भी एक तमाचा लगाया और बरामदे पर से लाठी उठाकर बड़े ताव से पलटकर खड़ा हो गया।

अब चपरासी को होश आया। उसने और कुछ नहीं कहा-सुना, वापस चला गया; जाकर जमींदार के पैरों पर लोट पड़ा। रहम के तमाचे से सूजे हुए गाल पर आँसू ढुलक आये। बोला, "अब यह नौकरी मुझसे नहीं चलेगी, हुजूर! माफ कीजिए!"

सुन-सुनाकर बाबू तो आग-बबूला हो उठे। फौरन पाँच-पाँच लठैत भेजे गये। वे लठैत रहम को खेत से ही पकड़ ले गये। अपनी शक्ति और ऐश्वर्य दिखाते हुए सम्राट् आलमगीर ने जैसे 'पर्वतमूषिक' शिवाजी से भेंट की थी, बाबू ने ठीक वैसे ही रहम से भेंट की। उनके निजी बैठके के बरामदे पर रहम को हाजिर किया गया। वहाँ प्यादे-चपरासी, पेशकार-गुमाश्ते गमगम कर रहे थे। बाबू आराम से ओठँगकर नरचे से गुड़गुड़ी पी रहे थे।

रहम सलाम करके खड़ा हो गया। बाबू बोले ही नहीं।

कुढ़कर उसने बैठने योग्य किसी जगह की खोज की, मगर कुछ कुरसियों के सिवा वहाँ कुछ नहीं था। जमीन पर बैठने को उसका जी नहीं चाह रहा था। उसके आत्माभिमान को ठेस लगी। पश्चिम बंगाल के जिस भी मुसलमान किसान के पास थोड़ी-बहुत जमीन-जिरात है, उन सबको यह आत्माभिमान है। आखिर कोई कब तक खड़ा रह सकता है? और फिर किसी ने उससे कोई बात न की। चारों तरफ लोगों की ऐसी मौन उपेक्षा और बाबू का यों इस अन्दाज से तम्बाखू पीना और कुछ नहीं, उसका अपमान करने के लिए है, यह समझने में भी उसे देर न लगी।

उसने इस बार बड़े जोर से सलाम कहकर अपना अस्तित्व मुख्तसर में जता दिया।

रहम ने कहा, "यह खेती का समय है। हमारे लिए बैठने का यह समय नहीं। कहना है सो कहिए।"

बाबू उठ बैठे, बोले—"मेरे चपरासी को तुमने तमाचा मारा है?"

"उसने मेरा हाथ क्यों पकड़ा? मेरी क्या इज्जत नहीं है? चपरासी मेरे बदन में हाथ लगानेवाला कौन होता है?"

गरदन मोड़कर टेढ़ी हँसी हँसते हुए बाबू ने कहा, "यहाँ जितने चपरासी हैं सब अगर तुम्हें दो-दो चपत लगाएँ तो तुम क्या कर सकते हो?"

रहम गुस्से से बोल नहीं पाया; सिर्फ एक बेमानी आवाज करके रह गया।

एक चपरासी ने तुरन्त उसके मुँह पर एक चपत मार दी—"चुप, बेअदब कहीं का।"

रहम ने तैश में आकर हाथ उठाया, पर तीन-चार जनों ने मिलकर उसका हाथ पकड़ लिया—"चुप! बैठ, यहाँ बैठ जा!"

सबने दबाव देकर उसे वहीं बैठा दिया। रहम समझ गया, जोर चाहे जितना हो उसके भीतर, इतने लोगों के आगे वह बेकार है, कोई कीमत नहीं उसकी। क्रोध और कुढ़न से एक बार उसने चपरासी की तरफ ताका। पन्द्रह चपरासी थे, जिनमें से दस उसके जाति-भाई—मुलसमान थे। रमजान का महीना, रोजा रखा था; फिर भी उसका यों अपमान करने में उन्हें हिचक न हुई। रमजान उद्यापन के समय इन्हीं लोगों से गले मिलना होगा। धरती की ओर नजर किये वह चुप बैठा रहा।

तिनकौड़ी के बारे में देबू के चरवाहे छोकरे ने दुर्गा से कहा था—बाढ़ के आगे रहनेवाला कतवार। तिनकौड़ी कतवार है या नहीं, नहीं कह सकता, पर हर जगह वह सबसे पहले हाजिर हो जाता है। लिहाजा तिनकौड़ी को बाढ़ का अगला बहाव कहना ही ठीक होगा। लोगों की जबान से खबर चारों तरफ फैल गयी। कुसुमपुर के और भी कई मुसलमान खेतिहर रहम की जमीन के आसपास खेतों में काम कर रहे थे। उन्होंने यह सब देखा, पर हल छोड़कर जा नहीं सके। तिनकौड़ी उन सबसे कुछ दूर था। दूर से देखकर वह अन्दाज नहीं लगा सका कि माजरा क्या है। कुछ लोग आये और रहम भाइ हल-बैल छोड़कर चला गया। लेकिन आनेवाले लोगों के मुरैठे ने उसे चौकन्ना कर दिया। उसने झट हलवाहे को हल थमाया और जा पहुँचा; पता किया और भागा-भागा कुसुमपुर गया। इरशाद को खबर देकर कहा, "देखो, खोज-खबर लो!"

इरशाद ने सोच में पड़कर कहा, "वही तो!"

सोच-विचारकर इरशाद ने एक आदमी भेज दिया। उस आदमी ने आकर सही-सही वाकया जो बताया तो इरशाद आपे से बाहर हो गया। सबको बुलवाया और कहा, "तुम सब मेरे साथ चलोगे? हम सब रहम भाई को छीनकर ले आएँगे।"

पचास-साठ किसान एक साथ उछल पड़े।

मुसलमानों का यह साहस जो है, बहुत हद तक वह साम्प्रदायिक साधना की देन है। ऊपर से अज्ञान, असमर्थता, गरीबी से सतायी हुई जिन्दगी का विक्षोभ, जो शासन-पीड़न से नहीं जाता, हृदय में सोया रहता है, वही विक्षोभ उन्हें एक समवेदना के क्षेत्र में स्वयं संगठित कर देता है। इनका यह असन्तोष जमींदार के खिलाफ हड़ताल करने की दिशा में कुछ दिनों से भड़कता आ रहा था, जैसे ज्वालामुखी के खुले मुँह पर आग उगलने के आगे धुआँ आ जाता है।

वे जमात बनाकर चल पड़े, रहम को छुड़ाकर लाएँगे। उन सबका जाति-भाई उन्हीं पाँच में से एक जाना-माना आदमी, उन सबका रहम भाई! सब इरशाद के पीछे हो लिये। तिनकौड़ी उसी समय शिवकालीपुर की तरफ लपका; देबू की जरूरत थी इस समय।

जमींदार की कचहरी में इस तरह से जमात बनाकर लोग और भी कई बार जा चुके हैं। स्थिति भी बहुत-कुछ एक ही प्रकार की। जमींदार द्वारा सजा पाये हुए आदमी को छुड़ाने के लिए गाँव-भर के लोग जुट आये। आरजू-मिन्नत की, बहुत-बहुत खुशामद-दरामद, गलती-कसूर कबूल किया, माँफी माँगी और छुटकारे का अर्ज किया। लेकिन आज ये लोग और ही मूर्ति और ही मनोभाव लेकर हाजिर हुए थे।

पूरी जमात कचहरी के प्रांगण में पहुँची। आगे-आगे इरशाद। बरामदे पर जमींदार साहब कुरसी से उठ खड़े हुए, चुपचाप अपनी शक्ल उन्होंने दिखा दी। उन्हें पता है कि उनकी शक्ल देखकर इलाके के लोग डर से सन्न रह जाते हैं। चपरासी लोग गुमान के साथ सज-धजकर खड़े हो गये। जिनकी पगड़ी खुली थी, उन्होंने माथे पर पगड़ी बाँध ली।

जमात बरामदे की सीढ़ी के पास जाकर चुपचाप खड़ी हो गयी। जमींदार ने गम्भीर स्वर में ललकारा, "कौन? कहा के हो तुम लोग? क्या चाहते हो?"—उन्होंने सोचा था—कहते ही आगे आने के लिए उनमें धक्कमधुक्की शुरू हो जाएगी, हर कोई उन्हें अपना सलाम दिखा देना चाहेगा; एक साथ पचास-साठ आदमी झुक जाएँगे। मिट्टी से टकराकर उनके सलाम की प्रतिध्वनि बरामदे पर आएगी—सलाम हुजूर!

लेकिन जमात चुप थी। मामूली-सी बुझी-बुझी चंचलता भी मानो नजर आयी।

जमींदार ने फिर उसी स्वर में कहा, "जो कहना हो, सिरिश्ते में जाकर कहो।"

अब इरशाद सीधे ऊपर पहुँच गया। निहायत मामूली-सा एक सलाम करके बोला, "सलाम! जरूरत आपसे ही है।"

"एक ही साथ बहुत-सी अर्जियाँ हैं क्या? अभी मुझे फुरसत नहीं है। जरूरत हो तो—"

इरशाद ने बीच ही में टोका, "आपने चपरासी भेजकर रहम चाचा को इस तरह से पकड़वा क्यों मँगाया है? उसे यहाँ रोक क्यों रखा है?"

जमींदार और रहम इस बार एक साथ ही गरज उठे।

जमींदार ने रोष से पुकारा, "चपरासी! किसन सिंह! जाबिद अली!"

रहम खड़ा होकर चीख उठा, "मेरे मुँह पर तमाचा मारा है, गरदन दबाकर जबरदस्ती बिठाला है; मेरी आबरू पर हमला किया है!"

चपरासी किसन सिंह गरजा, "ऐ रहम अली, बैठे रहो!"

जाबिद जरा आगे बढ़ आया, दूसरे चपरासियों ने अपनी-अपनी लाठी सँभाल ली।

इरशाद चीख उठा, "खबरदार!"

उसके साथ-साथ सारी जमात चिल्ला पड़ी, बहुत बातों में कोई खास बात समझ नहीं आयी, सामूहिक शब्दों के एक शोर ने सिर्फ एक जबरदस्त विरोध जाहिर कर दिया।

दूसरा क्षण एक अजीब सन्नाटे का क्षण। दोनों तरफ के लोग एक-दूसरे को ठक्-से देखते रहे।

उस सन्नाटे को तोड़ते हुए पहले जमींदार ने बात की। पहले वे भौचक्के-से रह गये थे। रैयत, गरीब लोग—ये अचानक ऐसे कैसे हो उठे!

दूसरे ही क्षण उन्हें लगा, कुत्ते भी कभी-कभी पागल हो जाते हैं। यह उनका मरण रोग जरूर है, पर अभी उस रोग का जहर उनके दाँतों में फैला हुआ है। उनका दाँत गड़ जाए तो मालिक को भी मरना पड़ेगा। उन्होंने सावधान हो जाने के लिए ही कहा, "किसन सिंह, बन्दूक निकालो।"

उसके बाद लोगों की तरफ घूमकर बोले, "तुम लोग दंगा करने की कोशिश करोगे तो मैं गोली चलाऊँगा।"

मार-मार का शोर उठ ही रहा था कि पीछे से एक तेज और ऊँची आवाज में सुनाई पड़ा, "नहीं भाइयो, हम सब दंगा करने के लिए नहीं आये हैं। हम अपने रहम चाचा को छुड़ा ले जाने के लिए आये हैं। आओ रहम चाचा, उठकर चले आओ।"

सबने देखा, नीचे की भीड़ के बगल से भीड़ को पार करता हुआ देबू घोष सीढ़ियों पर चढ़ रहा है। सारी भीड़ एक साथ बोल उठी, "चले आओ चाचा! चले आओ! बड़े भाई! रहम भाई! चले आओ!"

चपरासियों ने जमींदार की ओर देखा। जाबिद को उम्मीद हुई कि ऐसी हालत में उनके मुँह से कोई जोरदार धमकी या चपरासियों को कड़ा बेपरवाह हुक्म मिलेगा। लेकिन बाबू ने सिर्फ इतना ही कहा, "रहम ने चोरी से मेरा ताड़ का पेड़ बेच दिया है। मैं उसे थाने भिजवाऊँगा।"

देबू ने कहा, "आप थाने में खबर भेज दीजिए, ले जाना होगा तो दरोगा पकड़कर ले जाएगा। थाने को खबर भेजे बिना अपने चपरासी से गिरफ्तार कराने का अधिकार आपको नहीं है। आपकी कचहरी न तो सरकारी थाना है, न हाजत ही। चले आओ चाचा, चलो!"

रहम खड़ा था। उसका हाथ पकड़कर देबू बरामदे से उतरने लगा। इरशाद उनके साथ हो लिया। देबू ने जनता से कहा, "चलो भाइयो, लौट चलो।"

जंगली कुत्ते और हिरन जमात बनाकर रहते हैं, गैंडे, बाघ और सिंह नहीं,

यह जीवों का एक धर्म है। शक्ति जहाँ असमान अधिकता से एक स्थान पर जमा होती है, वहाँ एक होकर निडर रहने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। आदिम जातियों में शक्तिशाली बल में वलवान् से अपने बचाव के लिए कमजोरों ने एक होकर उसे शिकस्त देनी चाही थी। आगे चलकर बलवान् को ही अपना दलपति बनाकर सम्मान परिवर्तन में दल के सभी के प्रति कर्तव्य का बोझा उसके कन्धों पर लादने के कौशल का आविष्कार किया था। फिर भी जमात में बलवान् के प्रति ईर्ष्या सदा से थी और है। धन की शक्ति के आविष्कार के बाद से धनपतियों से शौर्यवालों ने हार मान ली है। धनपतियों के इशारे पर ही आज एक देश की शौर्य-शक्ति दूसरे देश की शौर्य-शक्ति से लड़ती है, मित्रता करती है। लेकिन एक ही देश के छोटे-बड़े धनपतियों में भी परस्पर ईर्ष्या पुराने नियम से जारी है; एक के विनाश से दूसरे को खुशी होती है। इस समय वैसे ही ईर्ष्यालु व्यक्ति का एक प्रतिनिधि आकर उनके सामने हाजिर हो गया।

कंकना के ही मध्यवित्त जमींदार के नायब ने आकर देबू और इरशाद को बुलाया। वह इन लोगों के लिए ही राह में खड़ा था। बोला, "बाबू ने आप लोगों के पास भेजा है।"

भँवें सिकोड़कर देबू ने कहा, "क्यों?"

"बाबू इससे बड़े दुःखी हुए हैं! यह क्या आदमी का काम है! पैसा हो जाए तो क्या इसी तरह लोगों के सिर पर पैर रखकर चलना चाहिए!"

इरशाद ने कहा, "बाबू को हम लोगों का सलाम कहिए।"

"बाबू ने कहा है, थाने में डायरी कराना न भूलिए। नहीं तो इसके बाद आप ही लोगों को हंगामे में डालेगा। यहीं से सीधे थाने में चले जाइए।"

इरशाद ने देबू की तरफ देखा। देबू को नजरबन्द यतीन बाबू की बात याद आयी। गाछ काटने के हंगामे में उस बार यतीन बाबू ने भी थाने में डायरी लिखाने के लिए कहा था। कहा था, मजिस्ट्रेट साहब को, कमिश्नर साहब को दो तार भेज दो।

नायब बोला, "डायरी इस तरह से कराओ कि चपरासी लोग गले में गमछा लगाकर खेत से खींच लाये, कचहरी में मारा-पीटा और खम्भे से बाँध रखा। जब तुम सब वहाँ पहुँचे तो गोली छोड़ी। खुशकिस्मती से गोली किसी को लगी नहीं।"

देबू अवाक् होकर उस नायब की तरफ देखता रहा : "इस नायब के मामूली-से जमींदार से भी लगान बढ़ाने का विरोध कुछ-कुछ है उन्हें। उस मामले में ये भी मुखर्जी बाबू से जा मिले हैं और वही छिपकर हमें राय देकर उनसे दुश्मनी कर रहे हैं।..."

इरशाद तथा और लोग खुश हो गये। इरशाद ने कहा, "नायबजी कुछ बुरा नहीं बता रहे हैं, देबू भाई!"

नायब ने कहा, "मैं चला, जाने कौन कहाँ देख ले। हजार हो, आँखों की शर्म है ही। लेकिन हाँ, जो कहा, वही कीजिए!"—वह चला गया।

इरशाद ने कहा, "देबू भाई, तुम तो कुछ कह नहीं रहे हो?"

देबू ने सिर्फ इतना ही कहा, "नायब ने जो कहा, वही करना चाहते हो इरशाद भाई?"

रहम ने कहा, "हाँ भैया! नायब ने ठीक ही कहा है।"

"डायरी लिखाने में असहमत नहीं हूँ। लेकिन यह गले में गमछा लगाना, खम्भे से बाँधना, गोली छोड़ना—यह भी लिखाओगे?"

"हाँ, इससे मुकदमे को बल मिलेगा।"

"लेकिन ये बातें तो झूठी हैं रहम चाचा!"

रहम और इरशाद अवाक् हो गये। रहम मामले-मुकदमे का आदी है। इरशाद ने खुद तो मामला किया नहीं, लेकिन दौलत हाजी के साथ टोले-पड़ोस के लोगों के मामले-मुकदमे में राय-मशविरा देता है, पैरवी करता है। पूरा-पूरा सच कहने से दुनिया में मामला-मुकदमा नहीं हो सकता, इसका उन्हें पूरा तजुर्बा है।

रहम ने कहा, "देबू चाचा, तुम बच्चे के बच्चे ही रह गये!"

देबू ने कहा, "तो फिर जो करना हो, तुम लोग कर आओ चाचा! इरशाद भाई जा रहा है, मैं अपने घर जाता हूँ।"

"घर जाओगे?"

"हाँ! और समय मैं तुम लोगों के साथ ही रहा हूँ। लेकिन इसे तुम्हीं लोग कर आओ।"

इरशाद और रहम मन-ही-मन थोड़ा नाराज हो गये। बोले, "ख़ैर जाओ!"

कई दिन के बाद, डायरी और टेलिग्राम दोनों करा दिये गये। साथ ही चारों तरफ—क्या हिन्दू क्या मुसलमान—सभी रैयत खूब उत्तेजित हो उठीं। लगान बढ़ने के विरोध में किये जानेवाले आन्दोलन की तैयारी इस आकस्मिक घटना से आपसे आप बड़ी जोरदार हो गयी। इससे लगान की बढ़ोतरी के लेखे-जोखे का आर्थिक नफा-नुकसान प्रजा के लिए बिलकुल तुच्छ हो गया। इसने एकाएक उनकी इहलौकिक और पारलौकिक सारी चिन्ताओं और कमी को आच्छादित कर लिया। हानि-लाभ के अलावा भी एक और चीज होती है—जिद। दलगत स्वार्थ और नीति के नाते उनकी वह जिद और भी बलवती हो उठी।

इस उत्तेजित जीवन-प्रवाह के बहाव से देबू एकाएक मानो एक किनारे जा रहा। अपने बरामदे की चौकी पर बैठा यही सोच रहा था वह। दुर्गा उसे पंचायत की बात बता गयी थी। पहले वह उदास-सा हँसा था। लेकिन इन्हीं कई दिनों में

उसे और पद्म को लेकर बस्ती में तरह-तरह की आलोचनाएँ शुरू हो गयी थीं। बहुत लोगों की बहुत-वहुत तरह की बातों का आभास उसे मिल रहा था।

आज फिर तिनकौड़ी आकर कह गया, "लोग क्या कह रहे हैं, मालूम है भैया?"

लोग जो कह रहे थे, देबू को मालूम था। वह चुप रहा। हँसा।

तिनकौड़ी ने जोश में आकर कहा, "हँसो मत बेटे! तुम तो हर बात में हँस देते हो, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।"

देबू तो भी हँसकर ही बोला, "लोग कहते हैं तो मैं उसका क्या करूँ?"

उसका प्रतिकार क्या किया जा सकता है, यह तिनकौड़ी को नहीं मालूम। लेकिन उसने अधीर होकर कहा, "लोगों को नरक में भी जगह नहीं मिलेगी, यह बात मैं कुसुमपुरवालों से कह आया हूँ।"

"कुसुमपुर के लोग भी यही कह रहे हैं क्या?"

"वही तो कह रहे हैं। कह रहे हैं कि देबू ने मुखर्जी बाबुओं से भीतर ही भीतर साजिश की है। नहीं तो डायरी लिखाने में वह साथ क्यों नहीं गया।"

सुनकर देबू का सारा शरीर हिम हो गया मानो।

तिनकौड़ी बोला, "यह भी कह रहे हैं कि देबू जब कचहरी पहुँचा, उसी वक्त बाबू ने देबू को कनखी मार दी। इसी से देबू आधी राह से लौट आया।"

देबू जैसे पत्थर हो गया, कोई जवाब नहीं दिया उसने। काठ का मारा-सा बैठा रहा।

बारह

खबर और भी विस्तार से ताराचरण नाई से मिली। उसके यजमान पाँचों गाँवों में हैं। वह नियम से जाता-आता है। बयान करने के बाद उसने सिर खुजलाकर कहा, "और क्या कहें गुरुजी!"

देबू आदमी में गलत विश्वास की बात सोचने लगा।

ताराचरण ने फिर कहा, "कलयुग में किसी का भला नहीं करना चाहिए।" ताराचरण इन मामलों में निर्विकार आदमी है। परायी निन्दा सुनते-सुनते उसके मन में जैसे ठेला पड़ गया है। फिर भी देबू के बारे में ऐसी घटना से वह पीड़ा का अनुभव किये बिना न रह सका।

देबू ने कहा, "इस बीच न्यायरत्नजी के यहाँ गये थे?"

"गया था। उन्होंने भी यह सुना।"

"सुना है?"

"हाँ, घोष एक दिन उनके यहाँ भी गये थे न!"

"कौन? श्रीहरि?"

"हाँ! वह खूब पड़ गया है पीछे। कल देखिएगा उसका मजा जरा!"

"मजा?"

"पाँच गाँवों में कंकना-कुसुमपुर को छोड़कर दूसरे गाँवों के मातब्बर मण्डलों की करनी-करतूत कल देख लीजिए। घोष कल धान गोला खोलेगा।"

"तो श्रीहरि धान देगा?"

"जी! जिन लोगों ने पंचग्रामी मजलिस के कहने पर घोष की हाँ में हाँ मिलायी है, घोष उन सबको धान देगा। बहुतेरे लोग बेशक राजी नहीं हुए हैं लेकिन जाने-माने लोग झुक गये हैं। मण्डलों में से सिर्फ तिनकौड़ी ने कहा—मैं इन बातों में नहीं हूँ।"

देबू फिर जरा देर चुप रहा। आज मानो उसके दिमाग में आग जल उठी है। उसके मन में तरह-तरह की उन्मत्त इच्छाएँ जगने लगीं। जी में आया, देखुड़िया के उन खूँख्वार भल्लों का नेता बनकर इलाके के मातब्बरों को मटियामेट कर दे। सबसे पहले श्रीहरि को; उसका सरबस लूटकर, उसकी आँखें फोड़कर उसके घर में आग लगवा दे।

ताराचरण बोला, "खेती का समय है। धान की कमी न होती तो ऐसा नहीं होता। हड़ताल के लिए तो मातब्बर लोग ही उबल पड़े थे, आपको तो वही लोग खींच ले गये। लेकिन धान मिलना बन्द होते ही सब मन-ही-मन हाय-हाय करने लगे। इधर आपको समाज से अलग करने के लिए पंचायत बुलाने की नीयत से जैसे ही श्रीहरि मण्डलों के घर गया कि मण्डलों ने सोचा यही मौका है; और सब झुक गये। इसके सिवा..."

"इसके सिवा?"—एकटक देखते हुए देबू ने पूछा।

"इसके सिवा"—ताराचरण फिर बोला, जरा रुककर बोला, "आज के लोगों की तो आप जानते ही हैं। सुभाव-चरित्तर कै जनों का ठीक है? लुहार-बहू और दुर्गा के बारे में सुनकर सब रस ले रहे हैं।"

"हुँ! इस संबंध में न्यायरत्न महाशय ने क्या कहा, मालूम है? तुमने कहा न कि श्रीहरि वहाँ गया था!"

दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए ताराचरण ने कहा, "ठाकुर बाबा?"—वह हँसा। हँसकर बोला, "ठाकुर बाबा ने कहा—अहा, कितना अच्छा कहा! आखिर पण्डित की बात ठहरी! मैंने कण्ठ कर ली थी; ठहरिए, याद कर लूँ!"

जरा सोचकर वह हताश होकर बोला, "न, याद नहीं आ रहा है। हाँ, लेकिन

यह कहा है कि इस बात से मुझे अलग रखो। तुम पाल से घोष हुए हो, बहुत बड़े पण्डित तो ख़ुद ही हो तुम। जो करना हो, कंकना के बाबुओं से मिल-मिलाकर करो।"

दरअसल न्यायरत्न ने कहा था, "मेरे दिन लद गये घोष! मैं अब तुम लोगों का खारिज विधाता हूँ। मेरी विधि से अब तुम्हारा काम नहीं चलेगा! और विधिविधान मैं देता भी नहीं।"—उसके बाद हँसकर कहा, "कंकना के बाबुओं के पास जाओ। तुम लोगों के वही महामहोपाध्याय हैं। तुम पाल से घोष बन बैठे, एक उपाध्याय तो तुम स्वयं हो!"

देवू सान्त्वना से मानो जुड़ा गया! बड़ी देर चुप रहकर उसने अपनी उन्मत्तता को शान्त किया। छिः, यह सब सोच क्या रहा हूँ मैं।

ताराचरण ने कहा, "कंकना के बाबुओं की चूँकि बात आ गयी, इसलिए कहता हूँ। कुसुमपुर के शेखोंवाले मामले में आपके बारे में ये बातें किसने उड़ायी हैं, मालूम है? ख़ुद उन्हीं बाबुओं ने!"

"बाबुओं ने? क्या उड़ाया है?"

"हाँ, बाबुओं के नायब ने खुद इरशाद से कहा है। कहा कि कचहरी पहुँचते ही देबू ने आँख दबाकर बाबू को इशारा कर दिया था कि यह हंगामा आगे नहीं बढ़ेगा। मैं ठीक किये देता हूँ।—नहीं तो बाबू रहम को नहीं छोड़ते। बाबू ने भी इशारे से देवू को पंजा दिखाया। यानी हाँ, ठीक कर दो। पाँच सौ रुपये दूँगा!"

देवू हैरान रह गया। बाबू के नायब ने ऐसा कहा।

देवू अवाक् चाहे हो, बात सच थी। मुखर्जी बाबू-सा पैनी अक्ल के आदमी वास्तव में विरले ही हैं। मुसलमान लोग जब जमात बाँधकर जा धमके, तो वे थोड़ा विचलित हुए; सोचा, दंगा-हंगामा होगा। लेकिन उससे वे डरे नहीं। बल्कि उन्होंने तो वैसा ही चाहा था। कुछ दरबान, चपरासी मारे जाते, कुछ मुसलमान किसानों की जानें जातीं; खुद तो बन्दूक की मदद से आखिर बच ही जाते। उसके बाद मुकदमे में—घर आकर लूट-पाट और दंगा करने के जुर्म में उन किसानों को तबाह कर देते। लेकिन देबू ने पहुँचते ही सब उलट-पलट कर दिया। देबू के बारे में उन्होंने सुन रखा था, जो सुना था उससे देबू की मर्यादा और व्यक्तित्व का एक ऐसा रूप निखरा था कि उसके सामने उन-जैसे आदमी को भी सिमट जाना पड़ा। कारण, देबू ने अपने जीवन में जो किया, वे वह न कर सके। देबू उन्हें मन्त्रमुग्ध करके, भीड़ को शान्त करके पल-भर में रहम को लेकर चला गया। वे बड़े चिन्तित हो गये। सारा कसूर उनके कन्धे पर आ पड़ा।

इतने में उनके कानों दूसरे के नायब द्वारा उन लोगों की कान फूँके जाने की बात पहुँची। यह भी सुना कि देबू ने झूठी डायरी लिखाना और तार भेजना नहीं चाहा; इसीलिए वह थाने नहीं गया। तुरन्त उनके दिमाग में बिजली की कौंध-सी एक सूझ

आयी। आदमी के स्वभाव को वे खूब जानते हैं। देबू की बात वे निश्चित रूप से नहीं कह सकते, पर पाँच सौ रुपये का लोभ इनमें से और कोई नहीं पी सकेगा, इसे वे निश्चित समझ रहे थे। ऐसे में, यह अफवाह फैलाकर उसकी जनप्रियता को ठेस लगायी जाए तो कैसा रहे? उन्होंने तुरन्त अपने नायब को जवाबी डायरी दर्ज कराने के लिए थाने भेज दिया और उससे कह दिया कि झूठी बात इरशाद और रहम के कानों में डाल दे। जनता उत्तेजना से अधीर थी। उसी का यकीन कर लिया। रहम और इरशाद को पहले तो दुविधा हुई इसपर, पर एकबारगी इसे झाड़कर फेंक न सके।

अधबँहिया कुरता पहनकर देबू उसी दोहपर में घर से निकल पड़ा। ताराचरण ने अन्दाज लगा लिया कि वह कहाँ जा रहा है। तो भी पूछा, "इस दोपहर में कहा चले?"

"जरा न्यायरत्नजी को एक बार प्रणाम कर आऊँ ताराचरण! नहीं तो मेरे मन की धधकती आग बुझेगी नहीं।"—देबू रास्ते पर उतर पड़ा।

अपना छाता उसे देते हुए ताराचरण ने कहा, "छाता ले जाइए। धूप बड़ी कड़ी है!"

देबू ने कुछ कहा नहीं, छाता लेकर चलना शुरू कर दिया। सप्तग्राम के सुदूर-प्रसारी बैहार से होकर रास्ता। अभी-अभी सावन खत्म हुआ है। भादों की शुरुआत। धान रोपने का काम करीब-करीब खत्म हो चुका है खास करके जो लोग कुछ सम्पन्न हैं, उनकी रोपनी कई दिन पहले ही खत्म हो चुकी है। धान की कमी से उनका काम नहीं रुका, बल्कि ऊपर से उन्होंने नकद मजूरे लगाये। जिनके खेतों में इसी बीच पौधे जम आये थे, उनके खेतों में निड़ानी चल रही थी। फैले हुए बैहार में धान की हरियाली की बहार थी। आज देबू ने किसी भी तरफ ताककर नहीं देखा; चलता रहा।

एक बहुत बड़े अचम्भे की घटना ने भी आज उसके हृदय को नहीं छुआ। इतने बड़े बैहार में—अभी भी बहुत-से लोग काम कर रहे थे; पहले हर आदमी उससे दो-एक बात करके ही उसे आगे जाने देता। दूर के आदमी उसे पुकारकर रोका करते, करीब आकर बातचीत करते थे। लेकिन आज बहुत कम आदमियों ने ही उससे बात की। आज सिर्फ सतीश बाउरी; देखुड़िया के दो-एक भल्लों और एकाध आदमी ने उससे बातचीत की। उसके जाति-गोतवाले देबू को अनमना देखकर सिर झुकाये अपना काम करते रहे। तिनकौड़ी आज खेत में नहीं था।

देबू को इसका खयाल ही न हुआ। पहले तो बेहिसाब गुस्से से मन की प्रतिहिंसा आदिम युग की भयंकरता लिए जाग पड़ी थी। लेकिन न्यायरत्न की सान्त्वनाभरी वाणी से निर्भय होकर उसके जी की जमी हुई शिकायतें वैसे ही गलकर झर गयीं जैसे ठण्डी हवा के झोंकों से छूकर बैशाख के मेघ। उस समय उसकी आँखों से बरबस आँसू बह आये थे; ताराचरण के सामने उसने बड़े कष्ट से उन आँसुओं

को जब्त किया था। राह में भी आज वह डूबता हुआ-सा जा रहा था, जैसे अपना खयाल ही न हो।

न्यायरत्न पूजा-पाठ करके अपने गृह-देवता के घर से निकल रहे थे। देबू को देखते ही मुसकराकर बोले, "आओ गुरुजी, आओ!"

देबू के होठ थर-थर काँप उठे। उस आदमी को देखते ही दुनिया के हृदयहीन अविचार की सारी वेदना मानो उमगकर उथल पड़ी, बच्चे के अभिमान की नाईं।

आग्रह के साथ न्यायरत्न ने कहा, "बैठो, बैठो! धूप से चेहरा और आँखें सुर्ख हो रही हैं, पसीने से मानो नहा गये हों।"–देबू के हाथ के मुड़े छाते को देखकर बोले, "छाता अभी भी भीगा ही देख रहा हूँ। सवेरे अच्छी बारिश हुई थी। उसके बाद एक पहर तो सूर्य देवता ने भास्कर का रूप धारण किया! लगता है, तुमने छाता लगाया ही नहीं गुरुजी, ठण्डे-ठण्डे आते!"

देबू अब तक अपने को जब्त किये हुए था। न्यायरत्न की युक्ति और मीसांसा सुनकर उसके मुँह पर विनय की हल्की हँसी निखर आयी। झुककर वह बोला, "आपके चरणों की धूल लूँ?"

"यानी मुझे छुओगे या नहीं, यह पूछ रहे हो? सामने ही देख रहे हो, मेरा पूजा-पाठ समाप्त हो चुका है। तुम पण्डित हो, खुद सोच लो।"

लेकिन देबू किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका। वह उनकी तरफ देखता ही रह गया। न्यायरत्न ने देवता के निर्माल्य सहित अपना हाथ देबू के माथे पर रखा। कहा, "मेरे चरणों की धूल से पहले भगवान का आशीर्वाद लो। गुरुजी, मैं चूँकि उनकी पूजा करता हूँ, इसीलिए छूत-छात का खयाल रखता हूँ। जो वस्त्र जितना ही स्वच्छ होता है, उसमें स्पर्श उतनी ही शीघ्रता से संक्रामित होता है न! इसीलिए सावधानी से रहता हूँ। नहीं तो मुझे यह हिमाकत क्यों हो कि मैं तुम्हें नहीं छुऊँगा?"

देबू ने न्यायरत्न के पैरों पर माथा रखा।

स्नेह से न्यायरत्न बोले, "उठो गुरुजी, उठो!"–कहकर अन्दर की ओर मुँह करके उन्होंने आवाज दी, "भो–भो–राजन्! भैया!"

देबू ने अकुलाकर पूछा, "विशू भाई आया है क्या?"

"हाँ!" न्यायरत्न हँसे।

"क्या है दादाजी?"–विश्वनाथ बाहर निकला, और देबू को देखकर बोल उठा, "अरे, देबू भाई! इतनी धूप में?"

न्यायरत्न हँसकर बोले, "देख रहे हो गुरुजी? राज्ञी से बातों में निमग्न राजा का मन अचानक पुकार लेने से कैसा कुढ़ गया है, देख रहे हो?"

विश्वनाथ शरमाया नहीं। बोला, "आपके देवता झूलन में मग्न होंगे। राज्ञी उसी के लिए परेशान हैं। इस बेचारे की तरफ ताकने की उसे फुरसत नहीं है मुनिवर!"

"मेरे देवता के प्रसाद से पूर्णिमा की इस रात में तुम भी झूला झूलोगे राजन्! तुमने कमरे में झूले की डोरी डाली है—मैंने झाँककर देखा है। मेरे देवता के झूलन के बहाने ही तुम्हें कलकत्ते से आने का मौका मिला है, यह मत भूल जाओ। मैं अवश्य तुम्हारे सात दिन के बाद आने पर भी कुछ नहीं कहता। लेकिन तुम हर बार मेरे देवता के प्रति भक्ति की छलना करके कैफियत देना नहीं भूलते हो, राजन्!"

अबकी विश्वनाथ हँसने लगा। देबू ने एक निःश्वास छोड़ा। उसे बिलू की याद आ गयी। झूलन में उन लोगों ने भी एक बार झूला डाला था।

न्यायरत्न ने कहा, "जया अगर व्यस्त हो तो गुरुजी के लिए तुम्हीं एक गिलास शरबत बनाकर ले आओ तो!"

देबू ने व्यस्त होकर कहा, "नहीं-नहीं-नहीं!"

न्यायरत्न ने कहा, "गृहस्थ के अतिथि-सत्कार के धर्म में बाधा नहीं देनी चाहिए!"—फिर विश्वनाथ से कहा, "जाओ भैया, गुरुजी को बड़ी प्यास लगी है, बड़ा थके-थके-से हैं!"

कुछ देर के बाद न्यायरत्न ने कहा, "मैंने सब सुना है गुरुजी!"

देबू उनके पांवों पर हाथ रखे ही बैठा था, उनकी ओर देखकर बोला, "मैं क्या करूँ, कहिए?"

न्यायरत्न चुप रहे। विश्वनाथ पास ही चुपचाप बैठा था। उसने जिज्ञासा-भरी आँखों से उनकी तरफ ताका।

देबू ने फिर पूछा, "मैं क्या करूँ, कहिए?"

न्यायरत्न ने कहा, "बोलने का अधिकार मैंने अपने से ही बहुत पहले छोड़ दिया है। शशि के मरने के दिन मैंने अनुभव किया था कि समय बदल गया है, पात्र भी बदल गये हैं। दैवक्रम से मैं भूतकाल का मन और तन लिए छाया की तरह वर्तमान में पड़ा हूँ। उस रोज से मैं केवल देखता रहता हूँ, विश्वनाथ तक को कुछ नहीं कहता।"

एक लम्बा निःश्वास फेंककर वे चुप हो रहे। देबू उनके मुँह की तरफ देखता हुआ जैसे चुपचाप बैठा था, वैसे ही बैठा रहा। न्यायरत्न ने फिर कहा, "देखो, बोलने का अधिकार अब मुझे सच ही नहीं है। जिन्हें मैंने शशि के समय से देखा है, आज के लोग उनसे भी स्वतन्त्र हैं। लोगों की नैतिक रीढ़ टूट गयी है।"

विश्वनाथ अब बोला, "उनके तो शरीर की ही रीढ़ टूट गयी है, दादाजी! नैतिक रीढ़ कहाँ से रहेगी? अभाव ही तो अनियम है; नियम न रहे तो नीति किसके सहारे टिकेगी, कहिए? चोरी और लूट में जिसका सब जाता है, बहुत होगा वह नीति को मानकर चोरी नहीं करेगा, परन्तु भीख माँगे बगैर उसे गुजर कहाँ? भीख से हीनता का बड़ा निकट का सम्बन्ध है। और, हीनता से नीति के विरोध को चिरन्तन कह सकते हैं!"

न्यायरत्न हँसकर बोले, "समय से वही सत्य हो उठा है। शायद महाकाल का यही इरादा हो। नहीं तो दीनता—चाहे वह कठोरतम दीनता ही क्यों न हो—उसके होते हुए भी हीनता की छूत से बचकर चलने की साधना ही तो महद्धर्म थी। कृच्छ्र साधना से, सर्वस्व त्याग से भगवान को पाया जा सके या नहीं, सांसारिक दीनता और अभावों की मलिनता से मुक्त करके मनुष्यता एक दिन विजय-विभूषित हुई थी।"

विश्वनाथ ने कहा, "आपके पहले के जिन लोगों ने इसे सम्भव बनाया था, उन्हीं लोगों ने तो उस शिक्षा को सार्वजनीन नहीं होने दिया दादाजी! यह उसी का नतीजा है। मणि को पाकर उसे फेंका जा सकता है, लेकिन जिसने मणि पाया नहीं, वह फेंकेगा कैसे? लोभ ही कैसे रोकेगा?"

न्यायरत्न ने पोते की तरफ देखकर कहा, "बात तुम बहुत सोचकर कहा करते हो भैया! असंयत या बेमानी बात ही तुम नहीं बोलते!"

विश्वनाथ ने देखा दादा के दृष्टिकोण में प्रखरता बड़ी क्षीण आभा में चमक रही है। देबू ने भी इसे गौर किया था, लेकिन विशू की कौन-सी बात से न्यायरत्न ऐसे हो उठे, अन्दाज नहीं कर सका।

विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "मेरे पूर्ववर्ती सामने मौजूद हैं; मैं अब रंगमंच के नेपथ्य में चला जाता हूँ। इसलिए आपके पूर्वगामी कहा।"

न्यायरत्न भी हँसे—मौन और टेढ़ी हँसी। बोले, "कुरुक्षेत्र की लड़ाई में कर्ण के दिव्य अस्त्रों के सामने पार्थ-सारथि ने रथ के दोनों घोड़ों के घुटने टेकवाकर रथी का मान बचाया था। अर्जुन को पीछे भी नहीं हटना पड़ा और कर्ण का महास्त्र भी बेकार हुआ। वाक्-युद्ध में तुम कुशल हो विश्वनाथ!"

विश्वनाथ अब जरा शंकालु हो उठा। इसके बाद न्यायरत्न जो बोलेंगे वह हो सकता है वज्र-जैसा निष्ठुर हो या कि इच्छामृत्यु पानेवाले तीरों की सेज पर सोये भीष्म की अन्तिम इच्छा-जैसा कुछ मार्मिक, करुण! लेकिन न्यायरत्न ने वैसा कुछ भी नहीं कहा, गरदन झुकाकर सिर्फ अपने इष्ट देवता को पुकारा—"नारायण! नारायण!"

क्षण-भर बाद ही वे सीधे होकर बैठ गये, जैसे अपनी सोयी हुई शक्ति को सीधा करके जमा लिया हो। फिर देबू की ओर मुड़कर बोले, "सोचकर देखो गुरुजी! मेरा उपदेश लोगे कि अपने इस नये ठाकुर का उपदेश लोगे?"

विश्वनाथ सीधा होकर बैठ गया। बोला, "मैं जिस समाज का ठाकुर बनूँगा दादाजी, उस समाज में देबू गुरुजी आप-जैसा ही पूर्वगामी होगा। उस समाज के पतन के साथ ही साथ या तो देबू काशीवास करेगा या आप-जैसा द्रष्टा होकर बैठा रहेगा।"

न्यायरत्न हँसकर बोले, "तो अपना पोथी-पत्रा और शास्त्र-ग्रन्थ फेंककर घर को साफ-सुथरा कर डालूँ, कहो? मेरे देवता का तब तो अहोभाग्य! पक्का नाट्यमन्दिर बनेगा! तुमने ही उस दिन कहा था—यह युग वणिकों एवं धनिकों का

है। बात बिल्कुल सत्य है। इस अंचल के समाजपति मुखर्जी की इज्जत इस बात का सबूत है।"

विश्वनाथ ने हँसकर टोका, "आप नाराज हो गये दादाजी! आपकी बातें युक्तिहीन हुई जा रही हैं। मैंने उस दिन और भी बातें कही थीं, उन्हें आप भूल गये।"

न्यायरत्न चौंककर बोले, "भूला नहीं हूँ! तुम्हारा वह धर्महीन, इहलोक सर्वस्व साम्यवाद!"

"धर्महीन नहीं है। लेकिन हाँ, आप लोग जिसे धर्म के नाम से मानते आये हैं, वह धर्म नहीं है। आचार ही जिसका सारा-कुछ है, वह धर्म नहीं, न्यायनिष्ठ सत्यमय जीवन-धारा है। आपके बाहरी अनुष्ठानों और ध्यानयोग के बदले हम विज्ञान-योग द्वारा परम रहस्य की खोज करेंगे। उसकी हम श्रद्धा करेंगे, पूजा नहीं करेंगे?"

न्यायरत्न ने गम्भीर स्वर में कहा, "विश्वनाथ!"

"दादाजी!"

"तो तुम मेरे बाद भगवान की पूजा नहीं करोगे?"

विश्वनाथ ने कहा, "पहले आप देबू गुरुजी से बात खत्म कर लें।"

न्यायरत्न देबू की ओर मुखातिब हुए! देबू का चेहरा फीका पड़ गया था। उसको लेकर न्यायरत्न के जीवन में फिर कौन-सी आग जल उठी? बीस-बाईस साल पहले नीति के वितर्क में विरोध की एक आग जल उठी थी। उस आग से गिरस्ती झुलस गयी थी। न्यायरत्न के इकलौते बेटे, विश्वनाथ के पिता ने क्षोभ और अभिमान से आत्महत्या कर ली थी।

देबू को चुप देखकर न्यायरत्न ने कहा, "गुरुजी!"

देबू बोला, "आज मैं चलता हूँ ठाकुर महाशय!"

"चले जाओगे? क्यों?"

"फिर किसी दिन आऊँगा।"

"मेरे और विश्वनाथ के बीच होनेवाली बातचीत से शंकित हो गये?" न्यायरत्न हंसे—"नहीं-नहीं, उसकी चिन्ता न करो तुम! पूछो, तुम क्या पूछना चाहते हो?"

देबू ने कहा, "मैं क्या करूँ? श्रीहरि पंचायत बुलाकर मुझे समाज से निकाल देना चाहता है, गलत बदनामी देकर—"

"हाँ अब याद आया। ठीक है। पंचायत तुम्हें बुलाये, तुम जाना; विनय के साथ कहना—'मैंने कोई अन्याय नहीं किया है। इसपर भी पंचायत अगर सजा ही देने को तैयार है तो, मुझे स्वीकार है। मगर अपने एक मित्र की बेपनाह स्त्री को मैं छोड़ नहीं सकता।' इसपर पंचायत जो करे, करे। न्याय के लिए दुःख-कष्ट झेलना।"

विश्वनाथ हँस उठा।

न्यायरत्न ने पूछा, "तुम हँस पड़े विश्वनाथ? तुम लोगों के न्याय से क्या उस स्त्री को त्याग देना उचित है?"

"आप हम लोगों पर अन्याय कर रहे हैं दादाजी! आपने हम लोगों के न्याय को अपने न्याय से उलटा यानी अन्याय मान लिया है। मगर इस स्थिति में जो आप कह रहे हैं, वही हमारा न्याय भी कहता है। मैं हँसा यह सुनकर कि पंचायत जाति से बाहर निकाल देगी और दुःख-कष्ट होगा।"

"गरज कि तुम यह कहना चाहते हो कि पंचायत पतित नहीं करेगी या करेगी भी तो दुःख-कष्ट नहीं होगा!"

"पंचायत पतित जरूर करेगी, क्योंकि उस पंचायत के पीछे उसके समाज का धनी श्रीहरि घोष है, घोष की धन-दौलत है। परन्तु आपने जितने कष्ट की सोची है, उतना कष्ट नहीं होगा।"

न्यायरत्न हँसकर बोले, "तुम अभी भी निरे बच्चे ही हो विश्वनाथ!"

"बुढ़ापे का मैं दावा नहीं करता दादाजी! उसमें मेरी रुचि भी नहीं है। पर आप सोच देखिए, पंचायत कर क्या सकती है? आपने पिछले जमाने की सोचकर कहा है। उसे जमाने में समाज अलग कर देता था, तो आदमी का नाई, धोबी, पुरोहित, बढ़ई, लुहार—सब बन्द हो जाता था। उसका कर्म-जीवन और धर्म-जीवन—दोनों ठप पड़ जाते थे। समाज के इस हुक्म के खिलाफ कोई उसकी मदद करता तो उसे भी सजा मिलती थी। दूसरे गाँव से भी सहायता नहीं मिलती थी। आज तो धोबी, नाई, पुरोहित ही समाज के नियम मानकर नहीं चलते। पैसा दीजिए और काम करा लीजिए। उस युग में ऐसा करने से उन्हें दण्ड दिया जाता; अब ठीक उलटा है। धोबी, नाई, लुहार, बढ़ई अगर काम करने से इनकार कर दें तो हम लोग ही आफत में पड़ जाएँगे और कहीं उन्हें ज्यादा तंग किया गया तो, या तो वे गाँव छोड़कर कहीं चल देंगे या पुश्तैनी पेशा छोड़ देंगे। भई देबू, डरने की क्या बात है! जंक्शन शहर से एक उस्तरा खरीद लेना, एक साबुन। वह भी न बने तो जंक्शन में ही डेरा ले लेना। न तो तुम्हें दाढ़ी ही रखनी होगी न मैला कपड़ा ही पहनना पड़ेगा। जंक्शन पंचायत की चौहद्दी से बाहर है।"

देबू अवाक् होकर विश्वनाथ की ओर ताकने लगा। न्यायरत्न ने कुछ देर तक उसकी तरफ देखा और कहा, "तुम अब रंगमंच के नेपथ्य में नहीं हो भैया, तुम मंच पर आ गये हो। मैं ही बल्कि प्रस्थान करना भूल गया और तन्द्रा में पड़ा मंच पर रह गया हूँ।"

विश्वनाथ ने कहा, "कम-से-कम महाग्राम के महासमाजपति के नाते जब आपके पास लोग आते हैं, तो यह बात बहुत सच लगती है। देश में नयी पंचायतें बन गयीं—यूनियन बोर्ड, यूनियन कोर्ट, बेंच; वे टैक्स लेते हैं, फैसला करते हैं, सजा

देते हैं। इसके बाद भी लोग जब हमें समाजपति का वंश कहते हैं, तो यात्रा पार्टी के राजा की बात याद हो आती है।"

न्यायरत्न बोले, "नहीं-नहीं, विदूषक! यात्रा-पार्टी का राजा नहीं हूँ! मैं वास्तव में राज्य-भ्रष्ट राजा हूँ। अपना राज जाने के बारे में मैं सचेतन हूँ। मैं यहाँ उस गये राज्य के मोह में नहीं पड़ा हूँ; जानता हूँ कि वह नहीं लौटने का। फिर भी हूँ, मेरे पास छिपे सम्पद् की धरोहर है। कुल का मन्त्र, कुल का परिचय, कुल की कीर्तियों का प्राचीन इतिहास! तुम लोग उसे सँभाल लो तो हँसते-हँसते मर जाऊँगा। नहीं लोगे, तो भी दुःख न होगा। सब उनको सौंपकर चला जाऊँगा।"

इसी वक्त अन्दर घर के दरवाजे पर आकर खड़ी हुई जया। उसने कहा, "दादाजी, आप एक बार सब देख-समझ लें आकर; उस समय अगर कोई चीज न मिले तो क्या होगा, कहिए तो? और फिर हम-आप—न होगा तो उपवास कर लेंगे, लेकिन औरों को तो खाना-पीना है। टोला का वह छोटा-सा लड़का इसी बीच इस-उस वहाने दो-तीन बार रसोई से घूम गया। बेचारे का मुँह सूख गया है।"

"चलो, चलता हूँ।"

"आप लोगों में इतनी बातें क्या हो रही हैं?"

"शिवकालीपुर के गुरुजी आये हैं, उन्हीं से बात कर रहा था।"

देबू न्यायरत्न की ओट में उनके पाँवों के पास बैठा था। जया उसे देख नहीं सकी। ददिया ससुर के कहने से देबू के वहाँ होने के बारे में सचेतन होकर उसने घूँघट को जरा खोंस लिया। कहा, "गुरुजी से कहिए यहीं थोड़ा प्रसाद पाकर जाएँगे। वेला काफी हो चुकी है।"

देबू ने धीमे से कहा, "मेरा आज पूर्णमासी का उपवास है।"

"ठीक है, तव अभी विश्राम करो। रात में झूलना देखकर ठाकुरजी का प्रसाद पाना। रात को वल्कि यहीं रह जाना।"

देबू ऊब-सा उठा था; दादा-पोते की पेचीदी बातों से हाँफ उठा था वह। और फिर घर में काम भी था, हलवाहे-चरवाहे उसका इन्तजार कर रहे होंगे।

उसने हाथ जोड़कर कहा, "उस वेला मैं फिर आऊँगा। चरवाहे के यहाँ भोजन का ठिकाना नहीं है; हलवाहे का भी वही हाल है। देते-देते भी धान देकर नहीं आया। तिस पर आज पूर्णमासी है, बेचारों को उधार-पैंचा भी नहीं मिलेगा। चावल देने की कही थी। वे मेरी राह देख रहे होंगे।"

रास्ते पर उतरा तो देबू मन में उलझ गया। अपनी सोचकर नहीं, न्यायरत्न और विश्वनाथ की बातों से। उसने अपने को बार-बार धिक्कारा कि वह आखिर न्यायरत्न के पास दौड़ा-दौड़ा आया ही क्यों? जी में आया कि इसी रास्ते होकर वह गाँव छोड़ कहीं और चला जाए! न्यायरत्न का इतना अच्छा घर-संसार, विश्वनाथ जैसा पोता, जया-जैसी पोत-बहू और अजय-जैसा परपोता, कितना सुख है! शायद

हो कि यह सारा-कुछ अशान्ति की आग में जल जाए! नहीं तो न्यायरत्न शायद घर-द्वार छोड़कर काशी चले जाएँ या फिर विश्वनाथ ही बाल-बच्चों सहित घर छोड़कर चला जाएगा। यह भी हो सकता है कि वह अकेला ही घर से चला जाए। ठीक-ठीक न समझ पाया हो चाहे, पर देबू ने इतना तो समझ ही लिया कि बिशू भाई किस रास्ते दौड़ पड़ा है। और, उसके अंजाम का अन्दाज लगाना भी कठिन नहीं है। आपस के इस द्वन्द्व से विशू भाई और जोर से उस राह पर चल पड़ेगा, बिना सोचे-समझे! उसके बाद या तो अन्दमान या कैदखाने! अहा, ऐसी सोने की प्रतिमा-सी स्त्री चाँद के टुकड़े-सा बच्चा...!

"अरे! गुरुजी! इस भरी दुपहरिया में इधर? कहाँ जाएँगे?"

चौंककर देबू ने देखा—पूछनेवाला देखुड़िया का रामभल्ला था। हँसकर देबू बोला, "रामचरण?"

"जी हाँ! इस कुवेला को कहाँ जाएँगे?"

"महाग्राम गया था—न्यायरत्नजी के यहाँ। घर लौट रहा हूँ।"

"घर जाएँगे तो इधर से?"

देबू ने चारों तरफ गौर से देखा। अरे, अनमना होकर वह गलत रास्ते पर आ गया! सामने मयूराक्षी का बाँध। बेहार से बायें न मुड़कर वह सीधा चला आया। बाँध के उस पार श्मशान; शिवकालीपुर, महाग्राम और देखुड़िया के शवों का दाह-संस्कार यहीं होता है। उसकी बिलू, उसका मुन्ना—देखने में वे जया और अजय से बहुत बुरे न थे, गुण में भी कम न थे—वह बिलू और मुन्ना इसी श्मशान में खो गये। कोई निशानी नहीं रही, राख भी जाने कब धुल गयी—मगर वह जगह है। वहाँ बैठने को उसका जी चाहा। दिनों से वह उनके लिए रोया नहीं है। पाँच गाँवों के हजारों लोगों की जिम्मेदारी का बोझा उठाये उसी में मशगूल था : इज्जत-आबरू के ही लोभ से, हाँ, इज्जत-आबरू के ही लोभ से, और क्या! सब कुछ भूलकर वह माते हुए आदमी-सा भटकता फिर रहा था, सोचता था कि बहुत बड़ा काम कर रहा है। आज इज्जत-आबरू की जगह लोग उसके सारे बदन पर कालिख पोतने को तैयार हैं। इसीलिए आज बिलू और मुन्ने ने उसे राह भुलाकर बुलाया है। स्त्री और बच्चे की तसवीर उसकी आँखों में झलमला उठी।

राम ने फिर पूछा, "कहाँ जाएँगे सरकार?"—दिन दोपहर में एक पण्डित आदमी गाँव का रास्ता भूल जाएगा—यह बात वह सोच ही न सका।

देबू ने कहा, "जरा श्मशान की तरफ जाऊँगा।"

"श्मशान?"

"हाँ! काम है।"

राम अवाक् हो गया।

देबू ने कहा, "तुम मेरा एक काम कर दोगे जरा?"

"जी, कहें!"

देवू ने जेब से डोरी में बँधी कुछ कुंजियाँ निकालकर कहा, "ये चाबियाँ लेकर तुम—" वही तो, वह देगा किसे?—जरा सोचकर बोला, "ये चाबियां तुम अनिरुद्ध लुहार की वहू को दे देना। कहना—भण्डार से आठ सेर चावल निकालकर दो सेर मेरे चरवाहे छोरे को और तीन-तीन सेर करके छह सेर दोनों हलवाहों को दे देगी। मुझे लौटने में देर होगी। तुरन्त जाने की जरूरत नहीं, अपना काम-धाम कर लो।"

राम ने कहा, "काम मेरा आज का हो गया। पुनमासी है। हल तो बन्द है; जिन खेतों में पहले रोप चुका था, उनमें निड़ानी कर रहा था। मगर धूप इतनी तेज है कि कर नहीं पा रहा हूं। मैं अभी ही जाता हूँ। लेकिन आप मसान में जाकर क्या करेंगे?"

"काम है थोड़ा।"—देबू बाँध की तरफ वढ़ा।

राम को फिर भी तसल्ली नहीं हुई। देबू का रवैया बड़ा रहस्यमय लगा। देबू के बारे में इधर जो अफवाहें उड़ रही थीं, उसे सब-कुछ मालूम था। पद्म की बावत भी और रहम तथा कंकना के बाबुओं के झगड़े में जो बातें उठी हैं वे भी। पद्मवाली बात को तो वह किसी कसूर में नहीं गिनता। विधुर जवान, पढ़ा-लिखा आदमी—उसे अगर वह पति द्वारा छोड़ी हुई स्त्री जँच ही गयी, उसे वह प्यार ही करने लगा तो कौन-सा गुनाह हो गया? और कंकना के बाबुओं ने जो इलजाम लगाया है, उसपर वह यकीन नहीं करता। तिनकौड़ी ने तो हलफ तक उठाकर यह कहा है। और तिनकौड़ी तो वेशक पद्मवाली बात का भी विश्वास नहीं करता।

इसीलिए, सब जान-सुनकर भी देवू को और कुछ देर रोककर अन्दर की थाहने के लिए बोला, "आप कुसुमपुर की सभा में नहीं गये?"

"कुसुमपुर की सभा? काहे की सभा?"

"जी, वहां आज बहुत बड़ी सभा है। तिनू भैया गया है। बाबुओं से रहम का जो हंगामा हुआ है उसपर, विरोध-आन्दोलन पर—"

देवू ने धीमे से हँसकर कहा, "मैं अब इन बातों में नहीं पड़ता राम भाई!"

राम चुप रह गया। बाद में बोला, "मसान में क्या करेंगे आप? चिलचिलाती दोपहर, न खाया है न पिया है। चलिए, घर चलिए।"

इसी वक्त किसी की हाँक सुनाई दी। किसान की हाँक ऊँचे गले से भी लम्बी हांक! राम मुड़कर खड़ा हो गया। हाँक की आखिरी ध्वनि साफ थी। राम ने कान के पीछे अपनी हथेली की आंट डालकर सुना और कहा, "तिनू भैया मुझी को ही बुला रहा है।" और तुरन्त उसने मुँह के दोनों ओर हाथ की तलहथी आड़े रखकर जवाब दिया, "ए—एः।"

तिनू तेजी से चला आ रहा था। जाते-जाते देवू भी ठिठक गया—माजरा क्या है?

तिनू बहुत उत्तेजित था। करीब आने पर ऐसी जगह में राम के साथ देबू को देखकर उसने कोई अचरज नहीं दिखाया। अचरज दिखाने लायक हालत नहीं थी उसके मन की। वह बोला, अच्छा ही हुआ कि देबू चाचा भी हैं। मैं तुम्हारे ही यहाँ होता हुआ आ रहा हूँ। तुम मिले नहीं। कुसुमपुर के शेखों ने बड़ा झमेला खड़ा कर दिया भैया! रामा, तुम लोग लाठी-भाला सँभालो।"

देबू ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों? हो क्या गया?"

"पूछो मत भैया! आज उन लोगों ने सभा बुलायी थी। सभा में तुम्हें नहीं बुलाया, मैं भी नहीं जाता। लेकिन सोचा—कुछ खरी-खोटी सुना आऊँ। गया, तो देखा वहाँ भारी हंगामा था! सुना, कंकना के बाबुओं ने शायद कुसुमपुर बस्ती को जला डालने को कहा है। वह पहले हिन्दुओं की बस्ती थी। वहाँ फिर से हिन्दुओं को बसाया जाएगा!"

"हूँ! उसके बाद?"

"उसके बाद बहुत-बहुत बातें! मेरे ही यहाँ चलो न, बताता हूँ! प्यास से मेरी छाती सूख रही है।"

बोलते-बोलते वह बढ़ने लगा। राम और देबू भी साथ-साथ बढ़ चले।

तिनकौड़ी ने कहा, "डॉक्टर जगन-वगन—विरोध आन्दोलन के नेता लोग सब वहाँ गये थे; सिर्फ पंचायतवाले मण्डल लोग ही नहीं गये। तुमने तो सुना ही है, तुम्हें अलग करने के लिए इस समय साले छिरू से उनकी खूब पटने लगी है! धान देगा न छिरू!"

"सुना है। लेकिन कुसुमपुर का क्या हुआ?"

"हम लोगों ने कहा, 'बाबू लोग तुम लोगों का घर फूँक डालेंगे तो तुम लोग बाबुओं से निबटो। दूसरे हिन्दुओं को उसका क्या है।' वे बोले—'बाबू लोग यहाँ हिन्दुओं को बसाएँगे; वैसे में सारे हिन्दू एक हो जाएँगे।' आते वक्त फिर यह सुना—!... ओ सोना बिटिया!"

वे लोग तिनकौड़ी के दरवाजे पर पहुँच चुके थे।—

देबू ने पूछा, "हाँ, और क्या सुना?"

"कहता हूँ; ठहरो, एक लोटा पानी पी लूँ पहले!"

सोना दरवाजा खोलकर बाहर निकली। तिनकौड़ी की विधवा बेटी। तन्दुरुस्त बदन, सुन्दर मुखड़ा, गोरा रंग। उस पन्द्रह-सोलह साल की लड़की को देखकर विधवा कौन कहेगा! किशोरी कुमारी-जैसी सपनों-भरी निगाह आँखों में; चेहरे पर कहीं, किसी भी रेखा में वेदना या उदासीनता का आभास नहीं। वह बाहर आयी, हाथ में एक किताब थी। देबू को देखकर वह लजा गयी और किताब को पीछे छिपा लिया।

ऐसी उलझन-भरी चिन्ता और उत्कण्ठा के होते हुए भी देबू ने हँसकर कहा, "किताब छिपा क्यों दी? कौन-सी किताब पढ़ रही थी?"

अन्दर जाते हुए तिनकौड़ी ने कहा, "सोना बिटिया, जरा देबू को शरबत बनाकर दे।"

"नहीं-नहीं! पूर्णमासी का उपवास है आज। शरबत एक बार पी चुका हूँ।"

"तो जरा हवा कर दे। गजब की गरमी! पसीने से नहा रहा है।"

सोना जल्दी-जल्दी पंखा ले आयी। देबू ने कहा, "पंखा मुझे दो।"

"नहीं, मैं झल देती हूँ।"

"नहीं-नहीं, मुझे दो। तुम तो बल्कि किताब ले आओ; देखूँ, क्या पढ़ रही थी। जाओ।"

सकुचाती हुई सोना ने किताब लाकर देबू के हाथ में दे दी। एक पाठ्य-पुस्तक थी—साहित्य की, जाने-माने लेखकों की छात्रोपयोगी रचनाओं का संग्रह; निबन्ध, कहानी, कविता, जीवनी।

देबू ने पूछा, "कौन-सा पढ़ रही थी?"

सोना ने नजर झुकाकर कहा, "ऐसा ही एक पद्य पढ़ रही थी।"

देबू ने हँसकर कहा, "पद्य नहीं कहते, कविता कहो। कौन-सी?"

सोना जरा देर चुप रही। फिर बोली, "रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता।"

देबू ने किताब के पन्ने पलटे कि अपने-आप ही एक कविता निकल आयी। देर तक किताब का कोई पन्ना खुला होता है, तो किताब खोलने पर वह पन्ना आप ही खुल जाता है। देबू ने देखा कविता के अन्त में कवि का नाम लिखा था—रवीन्द्रनाथ ठाकुर। शीर्षक था—स्वामी-लाभ। नीचे कोष्ठक में छोटे अक्षरों में लिखा था 'भक्तमाल'। पूछा, "यही थी शायद?"

गरदन हिलाकर सोना ने हामी भरी।

देबू ने मिठास-भरे स्वर में कहा, "पढ़ो तो, सुनूँ जरा।"—किताब उसने सोना की तरफ बढ़ा दी।

राम भल्ला ने कहा, "बिटिया रामायण इतनी अच्छी पढ़ती है गुरुजी! अहाहा, जी जुड़ा जाता है!"

देबू ने हँसते हुए कहा, "पढ़ो-पढ़ो।"

सोना धीमे से बोली, "बाबूजी को खाने के लिए देना है। मैं जाती हूँ"—कहकर वह अन्दर चली गयी। शरमायी हुई उस लड़की को देखकर देबू स्नेह से हँसा। उसके बाद उसने कविता पढ़ी—

> एक बार तुलसीदास निर्जन श्मशान में बैठे थे।
>
> ... ...
>
> देखा, मरे हुए पति के चरणों तले सती बैठी है
>
> उन्हीं के साथ एक ही चिता पर जल मरने का संकल्प,
>
> तुलसीदास ने कहा, 'माता, कहाँ जाने का यह इतना आयोजन?'

....
हाथ जोड़कर बोली, 'पति मिलें तो स्वर्ग नहीं चाहिए।'
... ...
तुलसीदास बोले, 'मैं कहता हूँ, घर लौट चलो,
आज से महीने-भर बाद अपने पति को वापस पाओगी।'
रमणी आशा से श्मशान छोड़ घर लौटी,
और तुलसीदास जाह्नवी के तीर पर निस्तब्ध रात्रि में जागते रहे।

एक महीने के बाद पड़ोसियों ने जाकर उससे पूछा, 'तुलसी के मन्त्र का क्या फल निकला?' उस स्त्री ने हँसकर कहा, 'मुझे अपना पति मिल गया, मिल गया।'

सुनकर बोले व्यग्र लोग, 'बोलो तो है किस घर में?'
नारी बोली, 'स्वामी मेरे हैं अहरह अन्तर में?'

कविता खत्म करके देबू मौन हो गया। सोना को देखकर उसे जिस बात की याद नहीं आयी, वही बात याद आ गयी। सोना विधवा है, सात साल की उम्र में वह विधवा हो गयी थी। सिर झुकाकर वह चुपचाप चली गयी; उस समय उसके उस झुके मुख की भंगिमा और धीर चाल में वह जिस बात का अनुभव नहीं कर सका, अब उसी का स्पष्ट अनुभव उसने किया। अनुभव किया उसकी चुपचाप पलती गहरी विरह-वेदना का। उसने एक गहरी उसाँस ली। तुलसीदास-जैसा उसे भी कोई मन्त्र आता होता, तो वह सोना को बताता। तिनकौड़ी दुःख से कहा करता है—सोना मेरी सोने की प्रतिमा है। बात गलत नहीं है। देबू की आँखें डबडबा आयीं।

इसी समय तिनकौड़ी अन्दर से बाहर आया। बाहर आते ही उसने कहना शुरू किया, "समझे भैया, यह पेंच जो है, इसे तुम्हारे दौलत शेख ने लगाया। वह शायद मुखर्जी के यहाँ गया था। बाबुओं ने उसी से कहा।"

तेरह

कंकना के मुखर्जी बाबू ने ठीक वैसा नहीं कहा था।

दौलत शेख को उन्होंने बुलवाया था। शेख धनी है। बहरहाल, उसका चमड़े का व्यवसाय चल निकला है। और जम गया है। अपनी जाति का न हो चाहे, आज

के समाज में धनी-धनी में लौकिकता का एक नाता होता है। उसी से मुखर्जी बाबुओं से श्रीहरि से या दूसरे जमींदार महाजनों से हाजी दौलत का सौहार्द है। इसके अलावा दौलत मुखर्जी बाबुओं का एक विशिष्ट रैयत है। उनकी बही में दौलत शेख के लगान का अंक काफी मोटा है। और, धनी दौलत से गाँववालों की बनती नहीं, इसका भी उन्हें पता है। इसीलिए शेख को उन्होंने बुलवाया था।

जंक्शन शहर थाने के दरोगाजी और जमादार साहब क्रम से बढ़ते हुए पत्थर की तरह भारी और मौन होते जा रहे थे। डायरी कराना होता तो लिख लेते, कुछ बोलते नहीं। मुखर्जी बाबू के यहाँ से दस-पन्द्रह सेर की एक मछली भेजी गयी थी। उसे उन लोगों ने वापस भेज दिया। नायब को साफ लफ़्जों में कह दिया, "जिस तरह की गरम हवा बह रही है जनाब उसमें हजम नहीं होगी। मजिस्ट्रेट को, कमिश्नर को तार गया है। बाप रे! सुना है, मिनिस्टर के पास भी तार जा रहा है। मेहरबानी करके अब यह सब मत लाया करें।"

परसों यूनियन बोर्ड के निरीक्षण के लिए सरकिल ऑफिसर आये हुए थे। वे—वही क्यों, सभी सरकारी कर्मचारी—एस. डी.ओ., डी.एस.पी., कभी-कभी मजिस्ट्रेट और पुलिस-साहब भी इस इलाके में आते तो कंकना के बाबुओं के अँगरेजी ढंग से सजे देवोत्तर गेस्ट-हाउस में ठहरते, उनका आतिथ्य स्वीकार करते। सरकार में बाबुओं का अच्छा नाम-ग्राम है, काम भी उन लोगों ने जन-सेवा का बहुत किया है—स्कूल, अस्पताल, बालिका विद्यालय उन्हीं लोगों का बनवाया हुआ है। सरकारी कामों के लिए चन्दे की बही में उनका नाम सदा ऊपर ही रहता है। वे लोग जिस रास्ते से चला करते हैं, वह रास्ता बाहरी तौर पर साफ-साफ कानून का रास्ता है। रुपया कर्ज देते हैं, सूद लेते हैं। लगान बाकी पड़ जाए तो बेरहम बनकर सूद वसूल लेते हैं, नालिश करते हैं। लगान बढ़ानेवाले मामले में भी वे अदालत के ही सहारे चल रहे हैं। गैरकानूनी वसूली भी थोड़ी-बहुत है शायद, लेकिन वह भी कानून के गंगाजल के छींटों से ऐसी शुद्ध हो जाती है कि उसकी असिद्धता अथवा अशुद्धता की कभी कोई बात ही नहीं उठती, मसलन, देवोत्तर का धर्मादा, खारिज-फीकी बावत अतिरिक्त अदायगी इत्यादि। इस वसूली में उनकी जोर-जबरदस्ती नहीं है। हाँ, धर्मादा नहीं देने से न तो रुपया देते हैं, न लेते हैं। नहीं लेना या नहीं देना अपनी इच्छा पर है। यह कोई गैरकानूनी नहीं। और आखिरकार लाचार होकर अदालत की शरण लेते हैं, दूसरों को अदालत जाने पर मजबूर करते हैं। लिहाजा जो कानून के उस्तरे की धार से चलते हैं, उनसे सिर घुटवाने के लिए थोड़ा-बहुत खून बह जाने को लोगों ने मान लिया है। इसके सिवा बाबुओं की सरकार-भक्ति का जिक्र लॉर्ड कार्नवालिस के जमाने से आज तक जिले के सभी साहब विशेष रूप से कर गये हैं। इसलिए राजभक्त बाबुओं की अतिथि-शाला में आतिथ्य स्वीकार को वे बुरा नहीं मानते। लेकिन ताज्जुब, परसों सरकिल ऑफिसर यहाँ आये और वे बाबुओं के

गेस्ट-हाउस में नहीं ठहरे। मुखर्जी बाबू दो वजहों से चौंके। देश-काल का कहाँ क्या वदल गया है, इसे वे नहीं जान सके। रैयतों के तार का महत्त्व मानो बहुत बढ़ गया है। मुकदमों के कूट-कौशल प्रजा की संघ-शक्ति के सामने आज गोया कमजोर पड़ गये हैं। लेकिन, आज से पैंतीस साल पहले यहाँ से छह मील दूर के एक जमींदार रैयत की भीड़ पर गोली चलाकर तुरन्त घोड़े से सदर पहुँचे और सलाम भेजकर साहब को प्रणाम किया—इस घटना के समय वे सदर में ही थे। रैयतों का मामला ठप पड़ गया था। घर बैठे ही उन्होंने यह अनुभव किया कि राजशक्ति मानो संगठित प्रजा का तार पाकर चंचल हो उठी है। और, इससे वे भी चंचल हो उठे।

देवू को इनकी जमात से अलग करने पर भी खास नतीजा नहीं निकला। बिलकुल ही नहीं निकला—सो नहीं, लेकिन जितना निकला उसका खास कोई महत्त्व नहीं था; कम-से-कम उन्हें ऐसा लगा। काफी सोच-विचार करके उन्होंने दौलत शेख को बुलवा भेजा।

शेख की उम्र साठ से ज्यादा हो चुकी है, मगर शरीर अभी समर्थ है। मझोले कद के एक घोड़े पर चढ़कर जाता-आता है। उसी घोड़े पर शेख बाबुओं की कचहरी में पहुंचा। बाबू ने सादर बिठाला।

दौलत भी रहम और इरशाद को अच्छी निगाहों से नहीं देखता। कहा, "गलती आपसे थोड़ी-सी हो गयी है बाबू! उसने चोरी से पेड़ काट लिया—चोरी के इलजाम में नालिश ठोंक देते!"

बाबू ने कहा, "नालिश तो ठोंकना ही है। अभी तुम्हें इसलिए बुलाया है कि तुम अपने गाँव के मातब्बर हो। लोगों को यह समझा दो कि वे जो कर रहे हैं अच्छा नहीं कर रहे हैं। इसमें मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। साहब पड़ताल में भी आएँ तो बिना मुकदमे के मेरा कुछ नहीं कर सकते। मामला हाईकोर्ट तक जाता है। झूठी नालिश वहां नहीं टिकेगी। और फिर हाईकोर्ट का मामला धान बेचकर नहीं चलता।"

अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए शेख ने कहा, "सुनिए बाबू, मुझसे कहना आपका बेकार है। रहम शेख बदमाश और बदतमीज है; इरशाद ने दो हरूफ पढ़ना-लिखना सीख लिया है, नाम के आगे मौलवी लिखता है। फर्ज नहीं जानता, कलमा नहीं जानता; अपने को मोमिन कहता है। मैं हज करके आया हूँ, हाजी हूँ। साठ की उम्र हुई। मुझको कहता है कि यह बुड्ढा सूदखोर है, लोगों को ठगता है—वह हाजी नहीं काफिर है। मेरे कहने से वे लोग नहीं सुनेंगे।"

बाबू ने कहा, "ठीक है। तुम गाँव के एक जाने-माने आदमी हो; हम लोगों से तुम्हारा बहुत दिनों का अच्छा सरोकार है, इसीलिए तुमसे कहा। बाद में तुम मुझे दोष मत देना। रहम, इरशाद और उनके साथ और जो लोग हैं, मैं उन्हें यहाँ से उजाड़ दूंगा"—कहकर मुखर्जी बाबू उठकर चले गये। दौलत शेख से और बात तक नहीं की। उन्हें लगा कि हाजी जानकर इस मामले से अलग रहना चाहता है। कंकना

के छोटे-वड़े दूसरे समानधर्माओं की तरह शेख भी उनके उजलत में होने का मजा ले रहा है।

दौलत शेख जरा देर बैठा, फिर उठ गया। इस अवहेलना की उसे बड़ी चोट लगी। बूढ़े घोड़े की पीठ पर सवार हो लौटते हुए बार-बार उसके जी में यही होने लगा कि वह भी रहम और इरशाद का साथ दे। जिन्दगी में बड़ी मामूली अवस्था से वह धनी बना; बड़ी मेहनत की, वहुतों से कारबार किया, बहुतों का मन उसे जुगाना पड़ा। मनुष्य को समझने की एक योग्यता उसे ही आयी थी। उसने खूब समझा कि आज रहम और इरशाद उसे नहीं मानते, वह उन्हें मना नहीं सकता—इस बात को जानकर ही मुखर्जी ने उसका आदर करने की जरूरत नहीं समझी। आज एक अड़चन खड़ी करके रहम और इरशाद-जैसे मामूली आदमी बाबू के आगे उससे भी वड़े आदमी बन वैठे हैं। एकाएक उसके जी में आया कि रहम और इरशाद को कहीं अपनी मुट्ठी में कर ले तो इलाके के इस धुरन्धर बाबू को बंसी के काँटे में फँसे हंगर (एक प्रकार की बड़ी मछली) की तरह खिला सकता है। उसे हँसी आयी। यह मुखर्जी बाबू शेर था, एकाएक मानो स्यार हो गया है। जब उसने दौलत से यह कहा कि रहम, इरशाद और उसके साथियों को यहाँ से उजाड़ दूँगा, उस समय उसके गले की आवाज तक हलकी पड़ गयी थी। धमकी महज मौखिक है। उसका चेहरा तक फीका पड़ गया था। हाय-हाय रे मुखर्जी बाबू! समझ गया, तुम बाघ की खाल ओढ़े रहते हो, दरअसल हो तुम भेड़ा। तुम रहम और इरशाद से डरते हो, फ़ुः फ़ुः!

घोड़े की पीठ पर वैठे हाजी ने कई बार फुः फुः किया। इरशाद-रहम? वकत क्या है उनकी? मुखर्जी वावू-जितना पैसा उसके पास रहा होता तो जाने कब का उन असभ्य वदतमीजों को साफ कर दिया होता। आदमी की खाल की सफाई नहीं करनी चाहिए, वरना उन लोगों की खाल की सफाई कराकर अपने कारबार के चमड़े में मिला देता! वकत क्या है इरशाद की, रहम की?

वस्ती पहुँचकर दौलत शेख अवाक् हो गया। वस्ती में लोगों की बेहिसाव भीड़। शिवकालीपुर, महाग्राम, देखुड़िया के हिन्दू किसान इकट्ठे हुए हैं, गाँव के मुसलमान खेतिहर हैं, वीच में इरशाद, रहम, शिवकालीपुर का जगन डॉक्टर, देखुड़िया का तिनकौड़ी! उसने घोड़े की लगाम खींच ली। देवू घोष नहीं था। मुखर्जी वाबू ने वह चाल वेजा नहीं चली। उधर श्रीहरि ने भी अच्छी चाल खेली है। वह छोकरा पस्त हो गया है।

जगन डॉक्टर मुँहफट आदमी है। धनियों से उसे वड़ी चिढ़ है। दौलत शेख को खड़ा होते देख हँसकर उसने मजाक किया, "शेखजी, कंकना गये थे क्या? मुखर्जी बाबू के यहाँ? वाह; वाह!"

मौजूद लोगों में हँसी की कानाफूसी होने लगी।

शेख तलवे से सिर तक जल उठा। इस ढीठ डॉक्टर की बोलचाल ही ऐसी है। लेकिन ये मामूली खेतिहर—जो उस रोज तक भी धान के लिए कुत्ते की तरह दरवाजे पर दुम हिला गये हैं—वे लोग भी उसका मजाक उड़ा रहे हैं। उसके जी में आया कि इन अभागों को मुखर्जी का वह संकल्प सुना दे।

रहम ने हँसकर कहा, "क्यों बड़े भाई, बोल नहीं रहे हैं?"

जगन ने कहा, "शेखजी देख रहे हैं कि यहाँ हैं कौन-कौन! कल फिर बाबू को बताना होगा न जाकर! रिपोर्ट देनी होगी।"

दौलत की आँखें लहक उठीं। वह हाजी है, हज करके लौटा है; मुसलमान समाज में उसका एक सम्मान है आखिर। आज तक रहम और इरशाद ही उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे। कहते थे रुपया रहने से ही जहाज का टिकट कटाकर मक्का शरीफ जाया जा सकता है। हज से लौटकर भी वह सूद कमाता है, लोगों की जायदाद हड़पता है—हज का पुण्य उसका नष्ट हो चुका है। हम उसे नहीं मानते। उनकी वही हिकारत लोगों में भी फैल गयी है। उसने यह साफ महसूस किया कि इस बात का यों फैलना उसे खींचकर कहाँ उतारना चाहता है। इलाके के हिन्दू लोग भी उसकी हँसी उड़ाते हैं!

इरशाद ने कहा, "क्यों चाचा, गरीबों से बात तक नहीं!"

दौलत ने कहा, "मैं कहूँ क्या इरशाद, कहते शर्म आती है।"

जगन बोल उठा, "बाप रे, जब कहते शेखजी को शर्म आ रही है तो जाने क्या बात होगी!"

दौलत ने कहा, "मैं तुमसे नहीं बोलता डॉक्टर! मैं कह रहा हूँ रहम से, इरशाद से, अपने जाति-भाइयों से। हम लोगों पर बहुत बड़ी आफत है! मैं क्या यों ही दौड़ा-दौड़ा आया? सुनो रहम, तुम भी सुनो इरशाद, आज मुखर्जी बाबू ने मुझसे कहा—दौलत, तुम अपने जाति-भाइयों से कह देना, अगर वे इस हंगामे का सहज ही निबटारा नहीं कर लेते, तो मैं सारे कुसुमपुर को जलाकर राख कर दूँगा।"

गांव के लोगों के बदले 'जाति-भाई', और जो हंगामा करेंगे, उनके बदले 'सारा कुसुमपुर' कहकर दौलत ने रहम-इरशाद को अपना बनाने की कोशिश की।

रहम निपट गँवार ठहरा। तुरन्त पूछ बैठा, "सारे कुसुमपुर को आग लगा देगा?"

इरशाद ने हँसकर कहा, "आप तो मियाँ जाने-माने आदमी हैं, बाबुओं से गले-गले हैं। सारा कुसुमपुर जल जाने पर भी आप महफूज रहेंगे। आपको क्या परवाह पड़ी है?"

"नहीं, मेरी भी रिहाई नहीं, मैंने कहा—'मैं तो बूढ़ा हो गया बाबू! मेरे अब कै दिन हैं? मुसलमान होकर मुसलमानों की तबाही मैं नहीं देख सकता।' बाबू ने

कहा—'फिर तो तुम भी नहीं बचोगे।' सुनो दौलत, कुसुमपुर में मैं हिन्दुओं की बस्ती बसाऊँगा! तब यही जगन डॉक्टर यहाँ आकर घर बसाएगा। देबू घोष भी आएगा। तिनकौड़ी आएगा। आया समझ में?"

तत्काल जैसे जादू-सा हो गया।

संघबद्ध जनता परस्पर अलग-अलग हो गयी। दो हिस्सों से बँटकर पहले वेदना-भरी निगाह से एक-दूसरे को देखा, फिर देखा सन्देह की नजर से।

जगन ने विरोध में कुछ कहना चाहा, पर सिर्फ 'हरगिज नहीं' के सिवा और कोई बात उसे ढूँढ़े नहीं मिली।

रहम उठ खड़ा हुआ। शरीर में भरपूर कूवत, बड़ा बिगड़ैल स्वभाव; तिस पर रोजे के उपवास से दिमाग गरम और स्नायु तीखी हो गयी थी। वह बिगड़ उठा। वह चीख उठा—"तो इलाके की हिन्दू बस्तियों को हम खाक कर देंगे।"

शोर-गुल में सभा टूट गयी।

रमजान का पाक महीना। रम्ज का मतलब है तपी हुई हवा। रमजान में उपवास के कठिन साधन की आग में आदमी का पाप जलकर राख हो जाता है; आग में जैसे लोहे की जंग गल जाती है, भूख की आग में तपकर वैसे ही आदमी पाक-साफ हो जाता है—यही शास्त्र का उद्देश्य है। उपवास से भुने मुसलमानों के मन में दौलत की वात का बारूदखाने पर चिनगारी-जैसा असर हुआ।

हिन्दुओं में भी उत्तेजना कम नहीं फैली। गाँव-गाँव में लोगों की जुटान होने लगी।

दिन-दिन नयी-नयी अफवाहें फैलने लगीं। बड़ी खतरनाक अफवाहें। ये कहाँ से उड़ीं, इसकी खोज किसी ने नहीं ली, सम्भव और असम्भव का विचार नहीं किया। दोनों सम्प्रदायों के लोग उत्तेजित ही होते चले गये।

थाने में डायरी पर डायरी। तार पर तार जाने लगे—मजिस्ट्रेट साहब के पास, कमिश्नर के पास, मुसलिम लीग के दफ्तर में, हिन्दू महासभा को। बाबुओं की मोटर बरसात के काँदो-पानी में भी गाँवों का चक्कर काटने लगी। गाड़ी पर बाबू का नायब और बाबू का वकील। सारे हिन्दू सम्प्रदाय पर आफत। बाबुओं के नाट्य-मन्दिर में सभा होगी। कुसुमपुर की मसजिद में मुसलमान लोगों की बैठक। पास-पड़ोस के गाँवों के मुसलमानों को खबर भेजी गयी। दौलत शेख रहम के पास बैठ गया।

अकेले इरशाद ही जैसे धीरे-धीरे बुझने लगा। वह विशेष बोलता नहीं। चुपचाप बैठकर सुना करता। इरशाद दुनिया में अकेला ही है। उसकी बीवी ससुराल नहीं आती। कुछ मील दूर के एक गाँव में एक बढ़ते हुए मुसलमान परिवार में उसकी शादी हुई थी। उसके साले कोई वकील हैं, कोई मुख्तार। उनके घर की लड़की के बाप का कहना था कि इरशाद उनमें से किसी का मुहर्रिर बनकर यहीं रहे। शहर में उन्हीं के डेरे पर रहे, काम-काज करे। लेकिन इरशाद ने इसे मंजूर नहीं किया।

उसकी बीवी इसलिए नहीं आती। इरशाद भी नहीं जाता। तलाक देने में उसे कोई एतराज नहीं है। पर उसका कहना है कि मैं तलाक की दरखास्त नहीं दूँगा; देनी हो तो बीवी ही दे। घर बैठे वह सारी बातों को गहराई में डूबकर समझने की कोशिश करता। रहम चाचा अभी भी नहीं समझ सका कि क्या से क्या हो गया! सारी बस्ती दौलत शेख की मुट्ठी में चली गयी।

देखते-ही-देखते दौलत बहुत बड़ा धार्मिक बन गया। रोजे के दिनों दान करना होता है; गरीब-गुरबों को आटा, घी, किसमिस या उसी दाम का चावल-दाल देना पड़ता है। धनियों के लिए सोना-रूपा दान करने का निर्देश है धर्मग्रन्थ का। धनी दौलत शास्त्र के इस निर्देश का पालन करता था अपने चरवाहे-हलवाहे को दान देकर। सेर-सेर-भर चावल देकर वह एक ही ढेले से दो शिकार करता था। त्योहार की त्योहारी भी होती और खुदाताला के दरबार में पुण्य का भी दावा होता। इसके लिए गाँववाले दौलत की निन्दा करते हैं, उससे घृणा करते रहे हैं। दौलत को इन सबकी खबर होती। मगर उसने कभी इसकी परवाह नहीं की। इस बार उसी दौलत ने यह ऐलान कर दिया है और लोग बेशर्म की नाई नाज से वही कहते फिरने लगे कि अबकी शेखजी धनी आदमियों-जैसा दान-पुण्य करेगा। उसकी दहलीज से अर्थी-प्रार्थी कोई निराश नहीं लौटेगा। रमजान की सत्ताईसवीं रात को शबेक़दर का जागरण रखेगा, बस्ती-भर के लोगों को खिलाएगा। मूर्ख लोग उसी रात की इन्तजार में हा किये बैठे हैं। खुद रहम चाचा तक उत्साहित हो बैठा है—अब शेख की मति पलटी है।

इरशाद ने दीर्घ निःश्वास फेंका। दौलत ने रहम से कहा कि अगर मुकदमा होगा, रुपयों की जरूरत पड़ेगी तो मैं दूँगा।

इरशाद को हँसी आयी। छुटपन के किताब में उसने एक कहानी पढ़ी थी—मगर के घर का न्योता। कहानी के अन्त में जो तसवीर थी, वह अभी इरशाद की आँखों में तैर रही है—सारे आमन्त्रितों को निगलकर अपनी तोंद मोटी किये मगर महाराज गुड़गुड़ी पी रहे हैं।

इरशाद! बापजान! इरशाद।"—उत्तेजित-से रहम ने आवाज दी।

दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए इरशाद ने कहा, "आइए चाचा! अन्दर आइए!"

"अरे बापजान, तुम्हीं बाहर आओ! जल्दी, देखो-देखो!"

"क्या है?"—इरशाद जल्दी से बाहर निकला।

"देखो!"

"इरशाद को कुछ दिखाई नहीं दिया। उसे केवल बहुतों के एक साथ आने की आहट-सी मिली पैरों की। दूसरे ही क्षण रास्ते के मोड़ से घूमकर दिखाई दिये हथियार बन्द सिपाही; दो-चार नहीं, लगभग पचीस। वे मार्च करते हुए राह की धूल उड़ाते चले गये। कंकना का जमादार भी उन सिपाहियों के साथ था। उसने इरशाद और रहम को दिखाते हुए सिपाहियों के नेता से कुछ कहा।

रहम ने पूछा, "हम लोगों को दिखाकर उसने क्या कहा. बताओ तो?"

इरशाद जरा हँसा; कुछ बोला नहीं।

रहम ने कहा, "पचास सैनिक आ रहे हैं बापजान! साथ में एक डिप्टी। देखो क्या होता है!"

खास कुछ हुआ नहीं।

डिप्टी साहब के बीच-बचाव से विवाद खत्म हो गया। कंकना के मुखर्जी बाबू ने कुसुमपुर की मसजिद में पचास रुपये की मिठाई भिजवा दी। रहम को बुलवाया और अपने सामने बेंच पर बिठाकर कहा, "कुछ खयाल मत करना रहम!"

दौलत शेख भी था। वह बोला, "आप भी क्या कहते हैं! रैयत और जमींदार—बेटा और बाप। बेटे से कसूर बने तो बाप शासन करता है। और सयाना लड़का हो तो वह भी नाराज होता है। बाप फिर से प्यार करता है कि गुस्सा जाता रहता है।"

इस आदर से रहम भी गल गया। वह भी बोला, "हुजूर को बहुत-बहुत सलाम! हुजूर हम लोगों का भी कसूर माफ करें!"

इरशाद को बुलाया नहीं गया। वह गया भी नहीं। रहम ने अनुरोध किया था। पर इरशाद ने कहा, "बुजुर्ग शेखजी जा रहे हैं। आप जा रहे हैं। मेरी तबीयत ठीक नहीं है, चाचा!"

दौलत और रहम चले गये।

थोड़ी देर के बाद इरशाद की बुलाहट आयी। थाने से एक सिपाही आया। इरशाद चौंका! फिर कुरता पहना, सिर पर टोपी रखी और सिपाही के साथ चला गया।

थाने पर पहुँचा तो देखा, और एक आदमी का बुलाया गया था। थाने के बरामदे पर देबू खड़ा था।

"देबू भाई!"—थाने के बरामदे पर आमने-सामने खड़े हो देबू को उसने निःसंकोच भाई कहा। उस दिन की बात सोचकर भी उसे हिचक नहीं हुई।

देबू ने हँसते हुए कहा, "आओ भाई!"

इरशाद जरा देर चुप रहा, फिर लम्बा निःश्वास फेंककर बोला, "सब बेकार हो गया देबू भाई, सब बरबाद हो गया!"

देबू ने कहा, "मगर करना क्या है? उपाय क्या है उसका?"

इरशाद कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "तुम्हारे प्रति मुझसे कसूर बन पड़ा है, देबू भाई!"

देबू ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। बोला, "हमारे शास्त्रों में क्या

लिखा है, मालूम है? सुख में, दुःख में, राजा के दरबार में, मसान में, अकाल में, राजक्रान्ति में जो समीप रहते हैं, साथ रहते हैं, वही असली मित्र हैं। दोस्त के लिए दोस्त से भूल हो ही जाती है, उसके लिए माफी माँगने की जरूरत नहीं है भाई!" देबू अपनी स्वभाव-सुलभ हँसी हँसा।

इरशाद ने उसकी ओर देखा। इसी वक्त उन्हें बुलाया गया। डिप्टी साहब अजीब ढंग से उन दोनों की ओर देखते रहे—एकटक। उसके बाद कहा, "लीडरी हो रही है?"

प्रतिवाद में देबू जाने क्या-कुछ कहने जा रहा था।

डिप्टी साहब ने कहा, "ठहरो!"

फिर बोले, "अबकी खूब बच गये, लेकिन आइन्दा के लिए होशियार!"

दोनों एक साथ थाने के बाहर निकले। थाने की इस घटना से दोनों के जी को चोट पहुँची। धमकी के सिवा बात कुछ नहीं हुई, लेकिन जिस अजीब नजर से डिप्टी साहब उन्हें घूर रहे थे, वह नजर दरोगा, जमादार, सिपाही—यहाँ तक कि चौकीदार की नजर में फूट उठी थी।

दोनों चुपचाप ही चल रहे थे। छोटे-से शहर की भीड़ और हलचल-भरी सड़क को चुपचाप पार करके दोनों मयूराक्षी के रेल-पुल पर पहुँचे। पुल पार किया, मयूराक्षी के बाँध का रास्ता पकड़ा। सूना रास्ता। बरसात के पानी से बाँध के दोनों ओर के सरपत हरे और घने होकर दीवार-से खड़े थे। चलते-चलते हठात् इरशाद ने ऊपर की ओर नजर करके हाथ फैलाकर कहा, "ख़ुदा, तुम भी तो कुछ जानते हो! सब कुछ देख रहे हो! तुम्हीं इसका विचार करना। यदि मुझसे कसूर हुआ हो तो ऐ ख़ुदाताला, तुम मुझको सजा देना; मेरी नजर छीन लेना, जिससे मैं दर-दर का भिखारी बन जाऊँ। ला-इलह-इल्लल्लाह, तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं! तुम्हीं विचार करना। रोजा रखा है। तुम्हारा गुलाम हूँ मैं। हाथ जोड़कर तुमसे कहता हूँ—इसका विचार करना! तुम्हारे इन्साफ से जो कसूरवार हों, उन बेईमानों के सिर पर..."

इरशाद का गला रुँध गया।

देबू पास ही खड़ा था। इरशाद भाई की मार्मिक पीड़ा का उसने अनुभव किया। कचोट उसे भी कम नहीं थी। लेकिन उसे जैसे सब-कुछ सह गया है। कानूनगो द्वारा की गयी उसकी तौहीन, जेल, बिलू और मुन्ने की मौत, हाल ही में उसके नाम पर लगाये गये दो-दो घिनौने लांछन, छिरू पाल की साजिश—सबने उसे जैसे संवेदन-शून्य कर दिया है, ठीक उसी हिसाब से सहनशील भी। अभी-अभी उस रोज भी ऐसे ही कठोर जलन से उसके जी में आग भड़क उठी थी, लेकिन कुछ ही क्षणों में वह बुझ गयी। उस दिन से मानो वह और भी प्रशान्त हो गया है। देबू समझ गया, इरशाद विपक्षवालों को सराप रहा है। उसकी पीठ पर हाथ रखकर गहरे स्नेह से बोला, "छोड़ो भी इरशाद भाई!"

इरशाद ने उसकी तरफ ताका।

देबू ने कहा, "किसी को गाली-सराप नहीं देना चाहिए भाई!"

इरशाद की आँखें दप्-दप् जल रही थीं।

देबू ने मुसकराकर कहा, "अगर स्वयं भगवान की नजर में अपराध करें, पाप करें तो उनसे प्रार्थना करनी चाहिए—मुझे सजा दे। उस सजा को माथा नवाकर कबूल करना चाहिए। लेकिन कोई और पाप करे, हमारा नुकसान करे, तो भगवान से कहना चाहिए—भगवान उसे क्षमा कर दो! माफ कर दो!"

इरशाद स्थिर आँखों से देबू को देख रहा था। उसकी जलती हुई आँखों से आँसू की दो गरम बूँदें ढुलक पड़ीं।

देबू ने कहा, "चलो! धूप चढ़ आयी, रोजा है! कदम बढ़ाकर चलो।"

चादर की कोर से आँखें पोंछकर इरशाद ने उसाँस ली।

"हमारी बस्ती होकर चलो। मेरे यहाँ बैठकर जरा सुस्ता लेना, ठण्डे हो लेना, फिर घर जाना।"

इरशाद फीका हँसकर बोला, "चलो!"

बस्ती में जब घुसे तो सड़कें लोगों से भरी थीं। गाँवों के रास्ते आमतौर से सूने ही रहते हैं। अस्वाभाविक भीड़ देखकर देबू और इरशाद चौंक उठे। इरशाद ने कहा, "माजरा क्या है देबू भाई?"

देबू इतने में सब समझ गया था। लेकिन भीड़ सिर्फ आदमियों की ही न थी, रास्ते के किनारे पेड़-तले गाड़ियाँ भी जम गयी थीं। देबू ने कहा, "चलो, देखना! कोई आफत नहीं है।"—वह मुसकराया।

इरशाद भी आखिर खेतिहर का बेटा है। स्वाभाविक बात होती तो वह झट समझ जाता। लेकिन आज उसका मन और मस्तिष्क उद्भ्रान्त हो गया था।

राह की भीड़ पार करके जाने पर कुछ ही फासले पर श्रीहरि का घर पड़ा। खलिहान के फाटक को श्रीहरि ने पक्का करवा दिया है। चौड़े फाटक से गाड़ी तक अन्दर आ सकती है। फाटक से अन्दर की तरफ उँगली का इशारा करके देबू ने कहा, "वह देखो!"

खलिहान के साफ-सुथरे आँगन में घर की ऊँचाई के बराबर धान की ढेरी लगी हुई थी! भादों के साफ आसमान में सूरज की तेज धूप से शरद् की आभा फूट रही थी। उस शुभ्रोज्ज्वल धूप की झाई से सिन्दूरमुखी धान की ढेरी सोने-सी झलमला रही थी।

श्रीहरि एक कुरसी पर बैठा था। एक आदमी ने उसे छाता ओढ़ रखा था। बीच में काँटा खड़ा था—बाँस की तिकाठी पर। धान की तौल हो रही थी—रामेजी राम, रामेजी राम दो, दो ए राम दो, दो ए राम तीन...

गाँव-गाँव के मण्डल मातब्बर लोग घेरे बैठे थे। बाहरी दीवार की परछती की

छाँह में आस लगाये गरीब खेतिहरों की भीड़ खड़ी थी। देबू को देखकर सबने सिर झुका लिया।

देबू ने किसी से कुछ कहा नहीं। इरशाद के साथ वह अपने बरामदे पर पहुँचा। वहाँ से उसने सुना, जगन डॉक्टर जोरों से लोगों को गालियाँ दे रहा है--बड़ों के पैर चाटनेवाले कुत्ते! बेईमान! विश्वासघातक! कमीने!

घर के अन्दर से बाहर आयी दुर्गा। इरशाद को देखकर उसे अचम्भा हुआ। बोली, "अरे, कुसुमपुर के पण्डित मियाँ!"

इरशाद ने कहा, "हाँ! तुम अच्छी तो हो?"

दुर्गा ने कहा, "हाँ, ठीक हूँ!" उसके बाद देबू की तरफ देखकर हँसती हुई बोली, "उधर से आये, देखते हुए आये?"

"क्या?"

"घोष के यहाँ की भीड़?"

"हाँ!"

"हाँ नहीं, इसकी मुसीबत तुम्हें झेलनी पड़ेगी। यह सारा इन्तजाम तुम्हारे लिए हो रहा है।"

देबू हँसा।

दुर्गा ने कहा, "हँसी की बात नहीं। रांगा दीदी का सराध करीब आ गया है। पंचायत बैठेगी।"

देबू जरा और हँसा। उसके बाद अन्दर से एक बालटी पानी और एक लोटा लाकर इरशाद के सामने रखते हुए बोला, "मुँह-हाथ धो लो। रोजे का उपवास है, पानी पीने की गुंजाइश तो है नहीं!"

इरशाद ने कहा, "कुल्ला तक करने की मुमानियत है।"

देबू एक पंखा लेकर अपने और साथ ही साथ इरशाद को भी झलने लगा। दुर्गा ने कहा, "मुझे दीजिए गुरुजी, मैं दोनों को झल देती हूँ!"

चौदह

पंचग्राम के जीवन-समुद्र में लहरों का एक प्रचण्ड उफान-सा आया था। वह उफान टुकड़ों में टूटकर छितरा गया। समुद्र के अन्दर ही अन्दर जो धारा बह रही थी, उसमें

तरंगों की अस्वाभाविक उमड़ ने फूलकर आवेग ला दिया था, एक भयानक आवर्तन और आलोडन का खिंचाव नीचे के पानी को ऊपर खींच लाना चाहता था। समुद्र की अन्तर्धारा के आकर्षण से वह उफान टूट गया। उत्साह और स्फूर्तिहीन जीवन-यात्रा के दिन फिर किसी तरह से कटने लगे। खेतों में रोपाई का काम खत्म हो चुका था। किसान सुबह खेत जाते और निड़ानी में जुट जाते। हाथेक ऊँचे धान के पौधों में घुटने गाड़कर वे घास-पात सफाई करते हुए धानों को ठेलकर आगे चढ़ते जाते—इस तरफ से उस तरफ तक और फिर उस तरफ से इस तरफ तक। बैहार में मेड़ों पर खड़े होने से लगता कि कोई आदमी ही नहीं है।

माथे पर भादों की कड़ी धूप। तन-बदन से झर-झर झरता पसीना। धान के धारवाले पत्तों से बदन कट-कट जाता। तो भी उनके मन उम्मीदों से भरे रहते—खेतों में खड़े तेज और सब्ज पौधों की परछाई ही उनके मनों पर पड़ती। ढाई पहर खेतों में काम करके तब घर लौटते। नहा-खाकर छोटे-छोटे अड्डों पर बैठे चिलम पीते, गपशप करते। गपशप का खास विषय होता बीते हंगामे की चर्चा और देबू-पद्म संवाद। दोनों ही बातें बड़ी रोचक और उत्तेजक होनीं, लेकिन मज़े की बात यह कि ऐसे विषय पर बातचीत जमती नहीं। क्यों नहीं जमती—यह कोई समझ नहीं पाता। सीता को अयोध्या की प्रजा जानती-चीन्हती न थी—यह बात नहीं, तो भी अशोकवन में वन्दी की हालत में जो गुजरा होगा, उस सम्बन्ध में बहुत-सारी कुत्सित कल्पनाएँ करके वह बौरा उठी, महज बौराने के लिए ही। लेकिन लंका के राक्षस नहीं बौराये। हाँ, उन्होंने सीता की अग्नि परीक्षा देखी थी। मन्दोदरी की बात पर राक्षस मतवाले नहीं हुए। इसलिए कि उस मतवालेपन के आनन्द का अनुभव करनेवाली उनकी मानसिकता लंका की लड़ाई में मर गयी थी। वैसे ही शायद, इस इलाके के लोगों में कोई भी आलोचना जम नहीं रही थी। आषाढ़ की रथ-यात्रा से लेकर भादों के कुछ दिन मानो हवा पर सवार हो उड़ गये। पंचग्राम के इतने बड़े वैहार की खेती पूरी हो गयी—हजार-दो हजार लोगों ने काम-काज किया, मगर किसी दिन कोई झड़प नहीं हुई, मारपीट नहीं हुई। और भी अचम्भे की बात कि इस बार मोरी धान की अँटिया शायद ही चोरी गयी! खेती के समय कैसा उत्साह! कल्पना से रँगी हुई कैसी-कैसी उम्मीदें। वैहार में इस साल चार ही पाँच गीत सुनने को मिले। बाउरी कवि सतीश का गीत ही सबसे ज्यादा मशहूर हुआ—

कलिकाल औचक ही गया!
दुःख के घर सुख ने बसेरा बाँधा नया।
कोई किसी की मेड़ न काटे
खेत का पानी खेत के बाँटे
पराई आर को काटे पर ने बनाया।
गाली गुफ्ता बिलकुल भूले

भाई बिरादर गले-गले
यह अघटन भले-भले किसने घटाया!
दीन सतीश कहे कर जोड़े
तेरह सौ छत्तीस साल आया!

सतीश का खयाल था, खेती-बारी हो चुकने पर भसान-दल की महफिल के लिए ऐसे गीत और बना लेगा। लेकिन रोपनी खत्म हो चुकने पर भी बाउरी-डोम टोले का भसान-दल जम नहीं पाया। लड़कों की जमात मौलसिरी-तले लालटेन जलाये जमती थी, ढोलक बजाती हुई—लेकिन बड़े कुछ खास नहीं आते। इलाके-भर के लोगों में एक अलसाया बिखराव का लक्षण है।

अँधेरिया पाख। देबू अपने ओसारे की चौकी पर लालटेन जलाये बैठा रहता। चुपचाप सोचा करता। कुसुमपुर के लोगों ने उस पर घूस लेने की घिनौनी तोहमत लगायी थी। इरशाद ने झूठ-सच समझा। उसने देबू के सामने इसे माना और आकर स्नेह-सने शब्दों में दिलासा दे गया। उस तोहमत की ग्लानि देबू के मन से पुँछ चुकी थी। उसका उसे कोई गम नहीं रहा। श्रीहरि ने उसके ऊपर पद्म और दुर्गा को लेकर वाहियात लांछन लगाया, वह अभी भी पंचायत बैठाने की जुगत में लगा हुआ था—उसका भी उसे कोई दुःख, कोई शर्म, कोई गुस्सा नहीं। स्वयं न्यायरत्न महाशय ने उसे आशीर्वाद दिया है। पंचायत अगर उसे जाति से बाहर भी कर दे तो उसे दुःख न होगा। उससे वह बिलकुल नहीं डरता। लेकिन दुःख उसे इस बात का था कि इलाकेवालों ने धर्म की शपथ लेकर जिस घट को बैठाया था, उस घट को उन्हीं लोगों ने चूर-चूर कर दिया। यह मामूली-सी भूल काश वे नहीं करते! लोगों ने उसे जो कुछ भी कहा, कहा; उसमें भी कोई हर्ज नहीं था। उसे अलग करके भी वह काम होता। मगर एक ही गलती के चलते सब चौपट हो गया।

चौपट ही कहिए। उस हंगामे को दबाने के सिलसिले में कुसुमपुर के शेखों से कंकना के बाबुओं का लगान बढ़ानेवाला मामला भी मिट गया। दौलत और रहम के माध्यम से बढ़ोतरीवाला काम होने लगा। रुपये में दो आने की बढ़ोतरी। यह कुछ वैसा बुरा नहीं हुआ। लेकिन यह भी तय पाया है कि जमीन बढ़ने की बढ़ोतरी देनी होगी। यह बात सुनने या देखने में वैसी बुरी नहीं लगती। रैयत पाँच बीघे का दस रुपया लगान देते हैं। उसकी जगह यदि छह बीघे हो तो ज्यादा एक बीघे का लगान रैयत को देना है। जमींदार का वाजिब पावना होता है। यह कानून, न्याय, धर्म, सब दृष्टि से संगत है। लेकिन इसमें गोलमाल बहुत है। जमींदार के सिरिश्ते में बहुत बार जमीन का लेखा नहीं रहता। नाप की गलती तो है ही, उस समय के नाप का मान भी आज से अलग था।

दौलत का लगान जिस दर से बढ़ेगा या बढ़ा, यह अभी किसी को नहीं मालूम।

रहम ने उसी दर से बढ़ोतरी दी। गुमाश्ता के पास बैठकर बीच-बचाव करने का सम्मान पाकर ही वह सारा-कुछ भूल गया।

कुसुमपुर में बढ़ी दर से लगान देने से इनकार अकेले इरशाद ने किया।

शिवकालीपुर में श्रीहरि घोष के सिरिश्ते में भी बढ़ोतरी की बातचीत पक्की हो गयी। मुखर्जी बाबू की खींची लकीर पर ही लकीर खींचेंगे लोग। इस बस्ती में जगन तथा दो-एक जने तने हुए थे। बूढ़े द्वारका चौधरी इस विरोध-आन्दोलन के साथ कभी नहीं रहे, लेकिन पुराने आभिजात्य की मर्यादा के नाते वे बढ़ोतरी देने को राजी नहीं हुए। अपने निश्चय पर वे अडिग थे।

देखुड़िया में रहा एक तिनकौड़ी। भल्ले लोग भी हैं, मगर उनके पास जमीन ही कितनी है। किसी के पास दो बीघा, किसी के पास बहुत हुई तो पाँच। किसी-किसी के पास दस-पन्द्रह कट्ठा ही।

श्रीहरि घोष के यहाँ बैठक हुआ करती। एक के बदले अब दो गुमाश्ते। एक को अभी सामयिक तौर पर रखना पड़ा है। बढ़ोतरी का कागज-पत्तर तैयार हो रहा है। घोष बैठा तम्बाखू पिया करता। हरीश, भवेश आदि मातब्बर आते। बीच-बीच में पंचायतवाले मण्डल लोग भी आते। दो-चार ब्राह्मण-पण्डित भी अपने चरणों की धूल दिया करते। शास्त्र की चर्चा होती। श्रीहरि के उत्साह का अन्त नहीं। अपने गाँव की तरक्की की योजना वह गर्व के साथ सबके सामने कहता—

दुर्गापूजा महायज्ञ है। अगले साल वह चण्डीमण्डप में दुर्गापूजा का समारोह करेगा। सुनकर सब उत्साहित हो उठे। गाँव में माता दशभुजा आएँगी—इससे तो गाँव का ही मंगल होगा। यों दर्शन-पूजा के लिए बच्चों को द्वारका चौधरी के यहाँ ले जाना पड़ता है, कंकना के बाबुओं के यहाँ ले जाना पड़ता है!

"वही तो!"—श्रीहरि इस पर उमगकर कहता, "इसीलिए तो! चण्डीमण्डप में पूजा होगी; आप दस लोग आएँगे, बैठेंगे, पूजा कराएँगे। बच्चे खुशी मनाएँगे, प्रसाद पाएँगे। एक रोज गाँव के जाति-गोतों को भोजन कराया जाएगा; एक दिन होगा ब्राह्मण-भोजन। अष्टमी की रात को पूरियाँ। नवमी की पूजा के दिन गाँव के गरीबों को भर पेट खिचड़ी, जो जितना खा सके। विजयादशमी की रात को प्रतिमा-विसर्जन के समय आतिशबाजी।"

लोग-बाग थोड़ा और उत्साहित हो उठते। कोई ब्राह्मण-पण्डित वहाँ मौजूद होता तो संस्कृत का कोई श्लोक सुनाकर श्रीहरि की इस योजना की राज-कीर्ति के साथ तुलना करता हुआ कहता, "दुर्गापूजा कलियुग का अश्वमेध है। यज्ञ करने का

भार तो राजा ही का है, जरूर करो! भगवान ने जब तुम्हें इस गाँव की जमींदारी दी है, देवी लक्ष्मी ने जव तुम्हारे यहाँ चरण रखे हैं, तो यह तो तुम्ही को करना होगा।"

श्रीहरि सहसा गम्भीर हो उठता। कहता "भगवान मुझसे कराएँगे, मैं करूँगा; यह तो है ही। करना मुझे पड़ेगा ही। मगर बात यों है कि कभी-कभी मेरे जी में होता है, नहीं करूँगा; इस गाँव में मैं कोई काम नहीं करूँगा, क्यों करूँ, कहिए? कुछ दिनों से लोगों ने मेरे साथ कैसा सलूक किया, कहिए तो? अरे बाबा, राजा का राज है। उनके राज्य में मैंने जमींदारी ली है। उन्होंने बढ़ोतरी लेने का अख्तियार मुझे दिया है। अख्तियार दिया है, इसीलिए मैंने माँग की है। नहीं देंगे, नहीं देंगे कहकर एक गँवई-गँवार छोकरे की बात पर सब उछलने लगे। मुसलमानों से साँठ-गाँठ करके अन्त तक क्या किया, जरा देखिए तो सही!"

सब चुप रहते। सारी बातें याद आ जातीं। स्वस्थ जीवन की उमंगों का स्वाद, स्वस्थ आत्म शक्ति के क्षणिक निडर प्रकाश की सोयी स्मृति मन में जाग उठती। कोई सिर झुका लेता, किसी की नजर श्रीहरि के चेहरे पर से फिसलकर जमीन में गड़ जाती।

श्रीहरि बोलता जाता, "खैर, भले-भले सब बीत गया, अच्छा ही हुआ। भगवान मालिक हैं, समझ गये, उन्होंने ही बचा लिया।"

"बेशक! भगवान ही मालिक हैं!"

"और क्या! मगर भगवान खुद तो कुछ करते नहीं। वे लोगों के जरिये ही कराते हैं। किसी-किसी को भार देते हैं वे। उनका वह भार पाकर जो काम नहीं करता, वह स्वार्थी है, अमानव है; जन्मान्तर में उसकी दुर्दशा का अन्त नहीं रहता। उसकी उपेक्षा से समाज छार-छार हो जाता है।"

ब्राह्मण इस पर हामी भरते, "बेशक! राजा, राजकर्मचारी, समाजपति—ये लोग अगर अपना कर्तव्य न करें तो प्रजा कष्ट पाती है, समाज जहन्नुम में चला जाता है। कहावत है, राजा के बिना राज अनाथ!"

श्रीहरि कहता, "इस गाँव में बदमाशी करके अब किसी को रिहाई नहीं मिलेगी। जो शैतान हैं, बदमाश हैं, जरूरत होगी तो मैं उन्हें गाँव से निकाल दूँगा।"

अपनी लम्बी योजना के बारे में वह कहता जाता, "इस अचल में नवशाखा समाज की पंचायत का मैं पुनर्गठन करूँगा; कदाचार, व्यभिचार, धर्महीनता का दमन करूँगा। देवता की कीर्ति-रक्षा के लिए कानून-सम्मत प्रबन्ध करूँगा।"—देवता, धर्म और समाज के उद्धार और रक्षा की योजना वह जबानी आँक जाता।

वह कहता, "आप लोग सिर्फ मेरी पीठ पर खड़े रहें। कुछ करना नहीं पड़ेगा आप लोगों को; मेरी पीठ पर रहें और सिर्फ यह कहें कि हाँ, हम तुम्हारे साथ हैं। और फिर देखिए कि मैं सब ठीक किये देता हूँ। आँधी-पानी आएगा तो आए, सिर झुकाकर झेल लूँगा; खर्च की जरूरत होगी, करूँगा। पाँच-सात किस्त लगाकर नालिश

ठोंकते रहने से कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, एक हाथ जीभ निकल आएगी। बीवी-बच्चे जाते हैं, फिर होते हैं। कितना देखेंगे?"

वह उँगली पर गिनता हुआ बोलता जाता कि किस-किसके बीवी-बच्चे मरे, किस-किसने फिर से शादी की और फिर बाल-बच्चे हुए। सचमुच ही पता चलता कि इस गाँव के तीस आदमियों की स्त्रियों का अन्तकाल हुआ और उनमें से अट्ठाईस ने शादी की। पाँच आदमियों के बीवी-बच्चे दोनों मरे। उनमें से चार के फिर से बीवी-बच्चे हो गये। हुआ नहीं है एक देबू घोष के; उसने शादी नहीं की।

"लेकिन"—श्रीहरि हँसकर कहता, "सम्पत्ति-लक्ष्मी चली जाती है, तो फिर नहीं लौटती। बड़ी कठिन देवी है वह! और रैयत चाहे जितना बड़ा हो, हर किस्त बाकी लगान की नालिश होती है तो जायदाद उसकी जाकर ही रहेगी।"

बुझे हुए-से लोग मिट्टी के खिलौने-से हो जाते। श्रीहरि उनका मददगार है, वे सब उसी के समर्थक हैं। श्रीहरि कह रहा है कि उन्हीं लोगों के बल पर उसे बल है, फिर भी उन्हें लगता कि उन-जैसे बेबस और दुःखी इस दुनिया में और नहीं हैं। एकाएक भवेश ऊपर को मुँह किये भगवान को पुकार उठता—गोविन्द! गोविन्द! तुम्हारा ही भरोसा है प्रभो!

श्रीहरि कहता, "लोग इसी बात को भूल जाते हैं! सोचते हैं हम ही मालिक हैं! हमसे दूसरा कोई नहीं है। अरे बाबा फिर तो भगवान तुझे राजा के घर भेजते।"

सभी उठने के लिए व्यग्र हो जाते, अपने-अपने काम की बात यथासम्भव संक्षेप में विनम्रतापूर्वक प्रकट करते।

"मेरी जोत की खरीदवाला वह पुराना कागज मिल गया है श्रीहरि! जमीन जो बढ़ रही है, उसका मतलब यह हुआ कि उसमें आबादी जमीन तुम्हारी बारह बीघे ही थी; उसके अलावा घास-बेड़ की पाँच बीघे थी। अब बाबूजी ने घास-बेड़ साफ करके पूरी की पूरी जमीन अच्छी बना ली है। इसी से तुम्हारे सत्रह की जगह बीस बीघे हो गये।"

"खैर, सहूलियत से कभी दिखाइएगा।"

ब्राह्मण कहते, "हमारा दो बीघा ब्राह्मणोत्तर माल की जमीन में घुस गया है।"

"ठीक है, नमूद ले आइएगा।"

सब उठ जाते। श्रीहरि थोड़ा सिरिश्ते का काम देखता। उसके बाद खा-पीकर सोचता—अबकी बार मैं लोकल बोर्ड में खड़ा हूँगा। लोकल बोर्ड में खड़े हुए बिना इधर के रास्तों-घाटों का सुधार असम्भव है। शिवकालीपुर और कंकना के बीच के उस नाले पर पुलिया बनवाना निहायत जरूरी है। और इन लोगों पर नाराज होने से क्या होगा? ये सब अबोध, अभागे हैं। इन पर नाराज होना और घास पर नाराज होना एक ही है।

उसकी नजर एकाएक एक खिड़की पर जा ठहरती है! रोज ही जा ठहरती

है। उस खिड़की से अनिरुद्ध लुहार का घर दिखता है। वह रोज ही खिड़की खोलकर उधर देखता। अँधेरे में कुछ अन्दाज नहीं होता; लेकिन हाँ, कभी-कभी यह नजर आ जाता है कि मिट्टी के तेल की ढिबरी हाथ में लिये ये छरहरी-सी लुहार-बहू घर में इधर-से-उधर आ-जा रही है।

अपने ओसारे पर बैठा देखुड़िया का तिनकौड़ी सारे इलाके के लोगों को व्यंग्य-भरी गालियाँ दिया करता। उसकी गालियों में श्राप नहीं होता, गुस्सा भी नहीं होता, होती सिर्फ उपेक्षा और ताना। वह मालगुजारी की बढ़ोतरी नहीं देगा। भूपाल उसे बुलाने आया था; खासे आदर के साथ नमस्कार करके कहा था, "एक बार आइएगा मण्डलजी! बढ़ोतरी का कोई किनारा किया जाएगा। मण्डल लोग सब आएँगे! आप जरा--"

भूपाल ने अचानक देखा कि तिनकौड़ी उसे बड़ी कठोर नजर से देख रहा है। वह ठिठक गया और कई कदम पीछे हट आया। मण्डल महाशय सहसा चीते की तरह उस पर झपट पड़ें तो कोई आश्चर्य नहीं।

तिनकौड़ी के चेहरे की पेशियाँ अब धीरे-धीरे हिलने लगीं। नाक की नोक फूल उठी--दोनों तरफ आधे चांद के आकार की दो बाँकी रेखाएँ फूट उठीं; होठ का ऊपरवाला हिस्सा जरा उलट गया। बेहद घृणा से उसने पूछा, "कहाँ जाऊँगा?"

"जी?"

"पूछता हूँ कहाँ जाना होगा?"

"जी, घोष बाबू की कचहरी में!"

"अरे कम्बख्त, बेंग के बच्चे की दुम गिर जाती है तो बेंग ही होता है, हाथी नहीं होता। छिरू पाल घोष बन गया, ठीक है! अब यह बाबू और क्या है रे? यह कचहरी ही क्या?"

भूपाल को जवाब देने का साहस नहीं हुआ।

तिनकौड़ी ने हाथ बढ़ाकर उँगली से रास्ता दिखाते हुए कहा, "जा, भाग जा यहाँ से।"

भूपाल लौटकर जा ही रहा था कि खड़ा हो गया; हिम्मत बटोरकर बोला; "इसमें मेरा कोन-सा कसूर है? मैं तो हुक्म का बन्दा हूँ। मुझसे उन्होंने कहा; मैं आ गया। मुझपर क्यों—"

तिनकौड़ी अब उठ खड़ा हुआ; बोला, "हुक्म का बन्दा! कम्बख्त छछूँदर का गुलाम चमगादड़ कहीं का—निकल जा, कहता हूँ निकल जा।"

भूपाल ने भागकर जान बचायी। लेकिन तिनकौड़ी की बात पर उसे गुस्सा नहीं आया। खास करके भल्ला, बागदी, बाउरी, डोम इन लोगों से तिनकौड़ी को

खासा अपनापन है। उसे कोई परहेज नहीं है, सबके घर जाता है, बैठता है, गपशप करता है, चिलम हाथ में लेकर तम्बाखू पीता है। एक समय यह मनसा गान के दल में भी इन लोगों के साथ गीत गाता फिरता था। आज भी सबसे मजाक करता है, गालियाँ बकता है, कोई उसे बिगड़ता-विगड़ता नहीं! भूपाल बल्कि रास्ते में मन-ही-मन कौतुक से थोड़ा हँसा। गाली मण्डल ने खासी दी। छछूँदर का गुलाम चमगादड़ यानी घोष छछूँदर है। उसे अपने चमगादड़ होने में आपत्ति नहीं, लेकिन घोष को छछूँदर बनाया—इसी कौतुक से वह हँसा।

भादों की कृष्ण पक्ष की रात! बीच-बीच में बादल घिर आते; ठण्डी हवा के झोंके; पेड़-पौधे के घने पत्तों की सन-सन आवाज उठती; गड्ढे-डाबर में मेंढक टर्र-टर्र करते; झींगुर की अविराम झीं-झीं; कभी-कभी फुहियों की बारिश। तिनकौड़ी ओसारे पर अँधेरे में बैठा तम्बाखू पी रहा था और गालियाँ बक रहा था। राम भल्ला और तारणी भल्ला बैठे सुन रहे थे।

"सियार हैं, गीदड़...! साले सब गीदड़ हैं! समझ गये राम—गीदड़ हैं सब!"

राम और तारणी अँधेरे में ही समझदार की नाई जोर-जोर से गरदन हिलाकर कहते, "और क्या!"

तिनकौड़ी को कोई भी गाली जँच नहीं रही थी। बोल उठा, "साले सियार भी नहीं हैं। सियार तो कम-से-कम बकरी-भेंड़ को मार सकता है, पगलाकर काट भी खाता है। ये सब फोंक सियार हैं।"

अन्दर लालटेन जलाकर गौर और सोना पढ़ रहे थे। बाप की उपमाएँ सुनकर वे हँस रहे थे।

"भालू के बेटे, साले उल्लू!"

सोना से अब नहीं रहा गया। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

तिनकौड़ी ने डाँटा, "गौर ऊँघ रहा है?"

गौर ने हँसकर कहा, "नहीं तो!"

"तो फिर सोना हँस क्यों रही थी?"

गौर ने कहा, "सोना आपकी बातें सुनकर हँस रही है।"

"मेरी बातें सुनकर?"—तिनकौड़ी ने एक गहरी साँस लेकर कहा, "यह हँसने की बात नहीं है बिटिया! बड़े दुःख से कह रहा हूँ, बड़ी जलन से! तू बच्ची है, क्या समझेगी!"

सोना सहम गयी। कहा, "नहीं बाबूजी, उसके लिए नहीं।"—जरा चुप रहकर फिर संकोच के साथ ही कहा, "तुमने कहा न, भालू का बच्चा उल्लू! इसलिए। भालू के पेट में उल्लू होता है?"

अबकी तिनकौड़ी भी हँस उठा, "अरे हाँ! मेरी ही गलती है।"

अबकी राम और तारणी भी हँसे। अन्दर सोना और गौर भी एक झोंक फिर हँसे। सोना की पैनी अक्ल से तिनकौड़ी जरा खुश भी हुआ! बोला, "जरा मनसा की पांचाली पढ़ सोना! हम सब सुनें।"—इस प्रसंग में ही वह दोहराता है—"बेकार के कामों में दिन गया और रात गयी सोचकर, राधा और कृष्ण को भजा नहीं जीवन-भर!—रात-दिन इन साले भेड़ों की सोचकर, क्या होगा? भेंड़ हैं सब भेंड़। समझे रामा, गीदड़ को देखकर भेंड़ें आँख बन्द कर लेती हैं। सोचती हैं जब हम गीदड़ को नहीं देख रही हैं तो गीदड़ भी हम लोगों को नहीं देख रहा है। साला सियार बेपरवाह हो जाता है, झट दबोच लेता है और गरदन तोड़ देता है। यह ठीक वही हुआ। कम्बख्त छिरू पाल और सिर्फ छिरू पाल ही क्यों, कंकना के बाबू तक धूर्त गीदड़ हैं और ये सब हैं भेंड़। मटामट सबकी गरदन तोड़ रहे हैं।"

अबकी सही गाली पाकर तिनकौड़ी खुश हो गया।

सोना ने अन्दर से पूछा, "कौन-सी जगह से पढ़ूँ?"

मनसा की पांचाली तिनकौड़ी को कण्ठस्थ है। किसी समय वह उसका मूल गायक था। उसी समय उसने कलकत्ते से छपी किताब मँगवायी थी। उस समय भसानवाला दल पांचाली दल था; तिनकौड़ी ने ही उसे तोड़कर यात्रा-दल-सा बनाया था। वह बनता था चांद बनिया; कभी-कभी गोधा की भूमिका भी अदा करता था। चांद बनकर ऊबड़-खाबड़ डाल की एक लाठी लिये 'हेमताल' की लाठी-सा वीर-रस का अभिनय करके वह महफिल को मात कर देता था। जब-जब मंच पर आता, कहता—

'जिन हाथों से पूजी मैंने महाचण्डिका जननी।
उनसे कभी नहीं पूजूँगा मैं 'चेंगमूड़ी' कानी।'

उसके बाद सनका के सामने गम्भीर होकर कहता—चन्द्रधर की चौदह नावें डूब गयीं, मेरे छह-छह बेटे जहर के असर से काले पड़कर अकाल ही काल के गाल में चले गये—सब उसी कानी 'चेंगमूड़ी' की बदौलत। उसने मेरा महाज्ञान हर लिया। बन्धु धन्वन्तरि को मार डाला। जो भी बच रहा है वह भी जाए। मगर मैं फिर भी—फिर भी उसकी पूजा नहीं करूंगा। नहीं-नहीं-नहीं।

आज उसने कहा, "पढ़ किसी एक जगह से!"

राम ने कहा, "सोना बिटिया, उस जगह से पढ़ो। वही, केले के खम्भों को बाँधकर उस पर मरे लखीन्दर को लिये बिहुला बह चली। जरा सुर से पढ़ो!"

तिनकौड़ी ने बता दिया, वहाँ से पढ़ सोना, वहाँ से जहाँ चन्द्रधर कह रहा है—

'कलिया को जो पा जाऊँ मैं कहीं एक भी बार।
मरे सुतों का बदला ले लूँ उसे उसी क्षण मार ॥'

सोना ने वहीं से सस्वर पढ़ना शुरू किया—

विलाप करती हुई बिहुला अपने विवाह के साज-सिंगार उतार फेंकती है; हाथ का कंगना उतारा, बाजूबन्द खोला, कान का कुण्डल, नाका बेसर उतार दिया; माँग के सिन्दूर को पोंछ दिया। कोहबर में सोने के डिब्बे में पान भरा था, सबको फेंक-फांककर बिहुला लखीन्दर के शव को अपनी गोद में उठाकर अनिर्दिष्ट दिशा की ओर बह चली।

वह बह चली। कौवा रोने लगा, वह उसका संवाद उसकी माँ के पास ले गया। अन्य पक्षी भी रोने लगे। पशु रोने लगे। शव की गन्ध से स्यार आये लेकिन बिहुला का रोना देखकर वे भी रोते-रोते लौट गये।

तिनकौड़ी, राम, तारणी भी रोने लगे। सोना का गला भी भारी हो गया। वह भी रह-रहकर आँसू पोंछने लगी। अध्याय खत्म हो गया, तो तिनकौड़ी ने कहा, "आज अब रहने दे बिटिया!"

सोना ने पोथी बन्द की। उसे माथे से लगाकर रख दिया और अन्दर चली गयी। गौर कुछ पहले ही सो गया था। राम और तारणी भी उठ खड़े हुए।

"आज अब चलता हूँ मण्डल!"

अनमने तिनकौड़ी ने जरा चौंककर ही कहा, "हाँ।"

अँधेरे की तरफ ताकता हुआ वह बैठा रहा। मन पर एक भार-सा था। रात बिस्तर पर लेटकर उसे नींद नहीं आयी। घोर अँधेरी रात। रिमझिम वर्षा। चारों ओर सन्नाटा। तमाम लोग बेखबर सो रहे हैं। उन लोगों ने पेट के लिए इज्जत की बलि दी और निश्चिन्त हो गये हैं। उनके लिए श्रीहरि घोष का गोला खुल गया है, कंकना के बाबुओं का गोला खुल गया है, दौलत शेख का गोला खुल गया है। लेकिन उसे कोइ नहीं देनेवाला। उसने इस बार शहर के कलवाले से रुपये लेकर धान खरीदा था। उस धान का थोड़ा-बहुत उसने भल्लों को दिया। धान और चाहिए। बड़े आदमी उस जमींदार से झगड़कर चौदह नावें उसकी डूब गयीं। पचीस बीघा बपौती तो जमीन थी, उसमें से बीस बीघा जाती रही, पांच बीघा ही बच रही है। बिहुला की तरह उसकी प्यारी बिटिया सोना कोहबर में ही विधवा होकर अथाह में बह रही है। आज के जमाने में लखीन्दर नहीं बचता। कोई उपाय नहीं! कोई उपाय नहीं!! अचानक उसे एक बात याद आ गयी—शहर में आजकल भले घरों में भी विधवा-विवाह होता है। उसने निःश्वास छोड़ा। यह बात उसने अपनी स्त्री से एक बार कही भी थी। लेकिन सोना ने अपनी माँ से कहा—नहीं माँ, छिः! दूसरी एक तरकीब है कि सोना को लिखाया-पढ़ाया जाए। जंक्शन में उसने स्त्री डॉक्टर को देखा, है, स्कूलों की मास्टरनियों को देखा है। पढ़-लिखकर सोना भी अगर ऐसी हो सके...। ओसारे पर लेटे-लेटे वह सोचता रहा।...

अँधेरिया पाख के आकाश में चाँद उगा। मेघों की छाया में चाँदनी रात की

शक्ल भोर-रात-सी हो गयी। बीच-बीच में गलती से कौए बोल उठने लगे—बसेरे से मुँह निकालकर डैने फड़फड़ाने लगे।

तिनकौड़ी ने मन के संकल्प को मजबूत किया। यह संकल्प उसका बहुत दिनों से है, लेकिन किसी भी प्रकार से वह उसे रूप नहीं दे पा रहा है। कल ही वह देबू से राय-मशविरा करके जो भी हो, कोई व्यवस्था करेगा।

"मण्डलजी! अरे ओ मण्डलजी!"

तिनकौड़ी की नाक न बजने की वजह से आज चौकीदार ने उसे पुकारा।

कुसुमपुर के मुसलमानों को दौलत शेख से धान उधार मिल गया। सारा दिन रोजा और तो भी दिन-भर खेतों में काम-काज करके उसने जमींदार के सिरिश्ते में मालगुजारी की बढ़ोतरी का उलझा हुआ हिसाब किया। शाम को रोजा तोड़कर वह गहरी नींद सो गया।

इरशाद रोजा तोड़ने के समय रोज शाम को किसी गरीब जाति-भाई को कुछ खिलाकर तब अपने खाता। उसके मन में जोर नहीं रह गया है। हर वक्त एक अव्यक्त पीड़ा उसे जलाया करती है। देबू भाई ने उसे जो कही थी, वह बात याद करके भी वह अपने मन को मना नहीं पाता।

वह नजरों के सामने साफ देख रहा है कि हो क्या रहा है। जो हो रहा है, वह नहीं, बल्कि क्या होगा, वह भी उनकी नजरों में साफ दिखाई दे रहा है।

दौलत का कर्ज जानमारू है। उससे कर्ज लेकर कलवाले का कर्ज चुकाया गया। कुछ ही वर्षों में इस कर्ज के चलते सारी जायदाद दौलत के कब्जे में चली जाएगी। कलवाले के कर्ज में धान पर बीतता, लेकिन दौलत का कर्ज सूद-मूल सहित मूंगे के द्वीप-सा दिन-दिन बढ़ता रहेगा। कुछ ही वर्षों में सारे गाँव की जमीन का मालिक दौलत हो जाएगा। रहम चाचा को भी दौलत को मालगुजारी देनी पड़ेगी।

अँधेरी रात में आसमान की ओर ताककर उसने ईश्वर को पुकारा : अल्लाह नूरांइयाह! तुम इसका विचार करो। प्रतिकार करो। गरीबों को बचाओ।

यह प्रार्थना उसकी अपने लिए नहीं थी। उसने तय कर लिया था कि वह गाँव छोड़कर चला जाएगा। अपनी ससुराल की बुलाहट को वह अब अनसुनी नहीं करेगा! जाएगा। काम भी करेगा, पढ़ेगा भी। मैट्रिक पास करके मुख्तारी पढ़ेगा, मुख्तार होकर ही अपने गाँव लौटेगा। उससे पहले नहीं। उसके बाद वह लोहा लेगा। दौलत, कंकना के बाद श्रीहरि घोष—एक-एक दुश्मन के खिलाफ जिहाद बोलेगा।

महाग्राम के न्यायरत्न बैठकर सोचा करते।

चण्डीमण्डप में लालटेन जलती होती, कुम्हार लोग दुर्गा की प्रतिमा गढ़ते होते और अजय वहाँ बैठा रहता। उतना छोटा-सा बच्चा, उसकी भी आँखों में नींद नहीं!

बड़े ध्यान से वह प्रतिमा का बनना देखा करता। शशिशेखर भी इसी तरह से देखा करता था, विश्वनाथ भी देखता था। अजय भी देख रहा है। टोले-मुहल्ले के बच्चे भीड़ लगाये खड़े होते। सदा इसी तरह भीड़ लगाते हैं। लेकिन यह खड़ा होना वह खड़ा होना नहीं है, यानी बचपन में वे लोग जो मन लिये खड़े हुआ करते थे, यह वह नहीं है।

भरा-पूरा गाँव महाग्राम—धन-धान्य से भरा खुशहाल पंचग्राम—लेकिन न उत्सव, न समारोह। प्राणों की आवेगमयी धारा धीरे-धीरे छीजती चली जा रही है। सम्पदा गयी लोगों का स्वास्थ्य गया, वर्णाश्रम समाज-व्यवस्था मिट चली, जातिगत कर्म जाता रहा—किसी ने खो दिया, किसी ने छोड़ दिया। आज ही सवेरे कई विधवा स्त्रियाँ आयी थीं। धान कूटकर अपना गुजारा चलाती थीं वे। लेकिन जंक्शन में चावल की मिल हो गयी, अब उन्हें इतना कम काम मिलने लगा है कि उससे उनके रोटी-कपड़े की समस्या भी नहीं हल होती! उन्होंने सिर्फ सुना। सुनकर उसाँस ली; लेकिन तत्काल कोई उपाय नहीं बता सके। अभी भी सोचकर किसी नतीजे पर नहीं आ पाये।

इस पर वे बहुत पहले से ही सचेत हैं। कभी कठोर निष्ठा के साथ उन्होंने समाज-धर्म को अछूता रखने की कोशिश की थी। विदेशी मनोभाव को दूर रखने की चेष्टा की थी, लेकिन काल के प्रभाव से उनका अपना बेटा ही शत्रु और विद्रोही बना। उसके बाद भी उन्होंने उम्मीद की थी कि समाज-व्यवस्था बिखरती है तो बिखरे, अगर धर्म स्थिर रहे तो फिर एक दिन सब लौट आएगा। आज तो स्वयं ईश्वर भी मानो खोते जा रहे हैं।

उनका पोता विश्वनाथ समय के धर्म से नास्तिक हो गया, जड़वादी।

विश्वनाथ जा चुका था। देबू के सिलसिले में उस दिन जो चर्चा हुई उस चर्चा में उसने कहा था कि "मेरी जिन्दगी का रास्ता, मेरा आदर्श, मेरा मत आपसे बिलकुल अलग है। मेरे लिए आपको तकलीफ होगी दादाजी! उससे बेहतर है कि जया और अजय को लेकर..."

न्यायरत्न ने कहा, "नहीं-नहीं भैया, जाओ मत। हमारे मत और पथ अलग हों, तो क्या हम दोनों एक जगह रह भी नहीं सकेंगे?"

विश्वनाथ ने उनके पैरों की धूल लेकर कहा, "आपने बचा लिया दादाजी! जया और अजय आपके पास रहें और मैं..."

"और तुम? तुम क्या...?"

"मैं?"—विश्वनाथ हँसा : "मेरा कार्यक्षेत्र दिनों-दिन जैसा बढ़ता जा रहा है, वैसा ही जटिल होता जा रहा है दादाजी!"

"तुम यहीं, अपने गाँव में ही रहकर काम-काज करो।"

"मेरा कर्मक्षेत्र सारा देश ही है। आखिर मैं आप-जैसे महामहोपाध्याय का पोता

हूँ, मेरा कर्मक्षेत्र तो विराट् होगा ही। यहाँ का काम देबू करेगा, धीरे-धीरे उसके साथ और भी लोग आएँगे—आप देखिएगा। मनुष्य दबकर मर सकता है, मगर उसकी मनुष्यता पीढ़ियों में नहीं मरती। उसकी अन्तरात्मा उठना चाहती है। उठकर ही रहेगी। आपकी समाज-व्यवस्था ने करोड़ों-करोड़ लोगों को मार डाला है—इसीलिए उन लोगों के एक साथ सिर उठाने से वह व्यवस्था चौचीर हो गयी है। वह एक दिन टूटकर बिखरेगी। हमारे पुरुखों ने समाज का मंगल ही सोचना चाहा था, मैं इस बात पर सन्देह नहीं करता। लेकिन धीरे-धीरे उसके अन्दर बहुतेरी भूलें घुस गयी हैं। उसी भूल का प्रायश्चित्त कर लेने के लिए हम लोग इस समाज को तोड़ेंगे, धर्म को बदलेंगे।"

पिछले दिन होते तो न्यायरत्न ज्वालामुखी की तरह आग उगलते। लेकिन शशि की मृत्यु के बाद से वे निरासक्त श्रोता और द्रष्टा रह गये हैं। लम्बा निःश्वास छोड़कर उन्होंने एक फीकी हँसी हँसी।

विश्वनाथ कह गया—"एक बहुत ही जोरदार राजनीतिक आन्दोलन आ रहा है दादाजी! मेरा कलकत्ते से बाहर रहना नहीं चल सकता। जया से आप कुछ भी मत कहिएगा। और आप अपने देवता की सेवा का एक पक्का बन्दोबस्त करें। टोल के किसी लड़के को देवता या सम्पत्ति लिख-पढ़ दें।"

न्यायरत्न ने उसकी ओर देखकर पूछा, "मैं अगर यह भार जया को सौंपूँ तो इसमें कोई आपत्ति होगी तुम्हें?"

विश्वनाथ ने जरा सोचकर कहा, "दे सकते हैं आप क्योंकि वह मेरे धर्म को कभी नहीं अपना सकेगी।"

अन्धकार में दिगन्त की ओर देखते हुए न्यायरत्न यही सोच रहे थे और बिजली की कौंध में आभास देख रह थे। जाने किस दूर-दूरान्तर की हवा से मेघ जमकर बरसने लगे। वहां बिजली कौंध रही थी। उसी का आभास पल-पल मिल रहा था। बादल की गरज नहीं सुनाई पड़ रही थी। इतनी दूरी तय करके आने में शब्द-तरंग क्रमशः क्षीण होकर निःशब्दता में खो जाती थी। इसमें अस्वाभाविकता कुछ नहीं थी। भादों होते हुए भी समय वर्षा का था। कई रोज पहले इधर बड़ी वर्षा हुई। बादलों से घिरे आकाश में मेघों की गरज और बिजली की चमक का विराम नहीं था। आज फिर बादल दिखाई दिये। मेघों के टुकड़े की आवा-जाई जारी थी। इस समय दिगन्त में बादलों का आभास रहता ही है और सदा ही इस समय दूरान्तर के मेघों की विद्युत्-छटा रात के अँधेरे में पल-पल आभासित हुआ करती है। यह खेल न्यायरत्न आजीवन देखते आये हैं। लेकिन उन्होंने आज ऋतु-रूप के इस स्वाभाविक विकास में सहसा कुछ अस्वाभाविक, कुछ असाधारण-सा देखा। उन्हें खुद ऐसा ही लगा।

गहरे शास्त्रज्ञ और निष्ठावान् हिन्दू। वास्तविक जगत् के वर्तमान और अतीत को लेखा लगाकर उसी के अंकफल को ध्रुव भविष्य और अखण्ड सत्य नहीं मान सकते। उससे भी कुछ अधिक, उसके सिवा भी कुछ के अस्तित्व पर उन्हें अगाध विश्वास था; बीच-बीच में उसे मानो वे प्रत्यक्ष करते—सारी इन्द्रियों, सारे मन से अनुभव तक करते। वह आकस्मिकता की नाईं अप्रत्याशित भाव से जटिल रहस्य के परदे में छिपकर आता और 'वास्तववाद' को जोड़-घटाव-गुणा-भाग में अंकफल को उलट-पलट कर जाता।

विश्वनाथ कहता—"हिसाब लगाकर हम सूरज के आकार को बता सकते हैं, उसका वजन बता सकते हैं।"

"कहा जा सकता हो शायद। ज्योतिषी लोग हिसाब से ग्रहों का संस्थान बताते हैं। यह पुरानी बात है। नये सिरे से सूरज और दूसरे ग्रहों की लम्बाई-चौड़ाई तुम लोगों ने वतायी है। लेकिन यह आँकड़ा ही क्या सूरज का आकार और वजन है? करोड़ों-करोड़ मन—।" न्यायरत्न हँसे थे। कहा था—"जो आदमी दो मन का बोझा ढो सकता है, उसके माथे पर चार मन लाद देने से उसकी गरदन टूट जाती है भैया! लिहाजा दो-दूना चार मन का हिसाब बताने पर भी उसे इसकी जानकारी नहीं होती कि चार मन कितना भारी होता है। इसे तो अनुभूति से ही प्रत्यक्ष करना पड़ता है। जिसे अतीन्द्रिय की अनुभूति नहीं है, निर्मूल होने पर भी सर्वतत्त्व का आँकड़ा उसके लिए बेकार है। जिसे वह अनुभूति है, वह समझ सकता है कि आज का आँकड़ा कल बदल जाता है। सूरज छीजता है, बढ़ता है। अंक के अतीत को इस इन्द्रियातीत की अनुभूति से प्रत्यक्ष करना पड़ता है।"

विश्वनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

विश्वनाथ ने समझा, निष्ठावान् हिन्दू ब्राह्मण का संस्कार होने के कारण ही न्यायरत्न ऐसी बात कह रहे हैं। उनके उस संस्कार को तितर-बितर कर देने-जैसा तर्क भी उसके पास था, लेकिन स्नेहशील बूढ़े आदमी का जी ज्यादा दुखाने की उसे इच्छा नहीं हुई। वह चुप ही रहा। सिर्फ हलकी-सी मुसकराहट उसके चेहरे पर खेल गयी थी।

न्यायरत्न ने भी इस आलोचना को और नहीं बढ़ाया। विश्वनाथ स्थिर था—दृढ़प्रतिज्ञ। अब ये सिर्फ द्रष्टा रह गये।...अँधेरी रात में बैठे न्यायरत्न सिर्फ यही सोचते। सोचते कि पता नहीं, अजय कैसा होगा!

कोई उथल-पुथल होनेवाली है, न्यायरत्न बीच-बीच में इसका साफ आभास पाया करते। यह नये कुरुक्षेत्र की भूमिका है। पृथ्वी मानो नयी गीता की वाणी के लिए उन्मुख हो रही है।

फिर भी उन्हें विश्वनाथ के लिए पीड़ा महसूस होती। वह इस उथल-पुथल में कूद पड़ने के लिए योद्धा की तरह तैयार हो रहा है।

जया का चेहरा, अजय का चेहरा याद करके उनकी आँखों के कोने में आँसू की बूँदें आ गयीं। दूसरे ही क्षण आँखें पोंछकर हँसे।

संसार में माया का प्रभाव धन्य है। मन-ही-मन उन्होंने महामाया को प्रणाम किया।

पन्द्रह

एक जनी, और भी जागा करती। वह थी पद्म। अँधेरी रात में घर के अन्दर का अँधेरा और भी गाढ़ा हो उठता। पद्म अँधेरे में आँखें पसारे जगी रहती। बिखरी-बिखरी चिन्ताएँ—सारी की सारी वेदना के एक एकरस सुर में गुँथी हुई!

उफ्, कैसा अँधेरा! हाथ को हाथ नहीं सूझता!

गाँव के लोग नींद में बेखबर। कोई शब्द नहीं, कोई आहट नहीं। केवल मेढक की बोली। जैसे हजारों मेढक एक ही साथ बोल रहे हों। दो बड़े मेढक होड़ लगाकर एक साथ ही चीख रहे थे। यह बोला तो वह चुप। वह चुप कि यह बोला! बात कर रहा हो गोया। एक मर्द, दूसरी उसकी स्त्री।...मेढक पानी में चला...खुशी-खुशी पानी में तैरता हुआ खुराक की खोज में—तेजी से, तीर के समान। मेढकी बच्चों को लिये पीछे रह गयी है...नन्हे कोमल पैरों से इस तेजी से पानी काटकर जाने की क्षमता उनमें नहीं है। मेढकी उन्हें छोड़कर जा नहीं सकती। वह कह रही है—

> मत जा रे मत जा रे बेंगा छोड़ हमें यों पीछे
> अबला में अथाह में वेकल अपनी आँखें मीचे
> बच्चा-कच्चा लेकर!

बेंगा ने गम्भीर गले की डाँट सुनायी—

> मर जा मर जा, कैसी आफत क्यों पुकारती पीछे?
> बच्चे लाकर किया कृतारथ, यों ढकेलकर नीचे
> शामत लायी ब्याह कर।

...मर्द ऐसे ही होते हैं। शुरू में कितना प्यार! उसके बाद पलटकर नहीं देखते।...अनिरुद्ध गया तो कहकर भी नहीं गया। कौए से सन्देश तक नहीं भेजा। एक पोस्टकार्ड। कीमत भी क्या उसकी! अचानक खयाल आया, वह जिन्दा भी है

या कि मर गया? नहीं, वह जरूर मर गया। जिन्दा होता तो कभी-न-कभी खबर देता। ये बेंगा ऐसे ही मरा करते हैं। सोल मछली के बच्चों के लोभ से, केकड़े के बच्चों के लालच से दौड़ पड़ता है। साँप ताक लगाये बैठा रहता है, घर दबाता है। ...कष्ट में भी वह हँसी...उस वक्त बेंगा का रोना कैसा!

"अरी ओ बेंगी, मुझे यम ने पकड़ लिया।"

पद्म अँधेरे में हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।

बाहर बिजली चमक उठी। उसकी छटा खिड़की-दरवाजे की फाँकों से, दीवारों की फाँकों से, छप्पर के छेदों से घर के अन्दर छिटक गयी। ओह, कैसी छटा!

दूसरे ही क्षण अन्दर का अँधेरा दूना हो गया। पद्म ने उस अँधेरे में चारों ओर देखा। कुछ नजर नहीं आ रहा था, लेकिन बिजली की ही कौंध में सब दिख गया। शिवकालीपुर के लुहार का घर चलनी हो गया है, छप्पर में असंख्य छेद...अब ढहकर माटी में मिल जाएगा। लुहार मर गया, उसका घर ढह गया, अब रह गयी केवल उसकी स्त्री। लेकिन लुहार मर गया, यही बात ठीक-ठीक कौन कह सकता है?

बेंगा क्या सभी मरता है? सोल मछली के बच्चों को खाते-खाते और आगे निकल जाता है, आखिर नदी में जा पहुँचता है। वहाँ रोहू-कतला के अण्डे मिलते हैं, मछली के जीरे का दंगल। नदी के किनारे की बेंगी से भेंट हो जाती है और फिर वह वहीं जम जाता है। और ऐसा भी होता है कि तमाम रात चरकर बेंगा सवेरे लौटता है। लौटकर देखा कि बेंगी गायब है। उसे गाँव का गेहुँअन चट कर गया है। बच्चों में से भी बहुतों को खा गया है, बहुत-से किलबिलाकर इधर-उधर चले गये हैं। कितनी बेंगी तो बच्चों को छोड़कर भाग जाती हैं। फतिंगा की माँ! वह फतिंगा! फिर मीता देबू को ही देख लो न। मितनी चल बसी। मीता ने किसी तरफ नजर उठाकर भला देखा भी!

रांगा दीदी की याद आ गयी। कितनी हँसी-मजाक करती थी वह! कितना क्या कहती। उसे गाली देती। कहती...मर जा, मर जा। अच्छी तरह से सेवा-जतन नहीं कर सकती है।

एक दिन पद्म ने हँसकर कहा था—"मुझसे नहीं बनेगा। तुम बल्कि एक दिन कोशिश कर देखो दीदी!"

"अरे! मेरी उमर होती—"रांगा दीदी ने एक बार पिच् करके कहा, "तो देखती, देवा मेरे पैरों लोटता रहता। जरा इस बुढ़ापे में मेरे रंग की बहार तो देख!"...वही एक उसकी हमदर्द थी। तुरत दुर्गा का खयाल हो आया। एक हमदर्द वह है! दुर्गा कहती है—"गुरुजी पत्थर है।"...पत्थर हँसता नहीं, पत्थर रोता नहीं, पत्थर बोलता नहीं, पत्थर गलता नहीं। पत्थर उसने बहुत देखा। मौलसिरी के नीचे देवी का भी पत्थर देखा, शिव को देखा, काली को देखा। उनके चरणों पर बहुत माथा भी कूटा किया। हाथ में, गले में अभी भी तावीजों का बोझा पड़ा ही हुआ है।

पण्डित भी पत्थर है। अच्छा ही हुआ—लोगों ने पत्थर पर कलंक की कालिख पोत दी! खूब हुआ। खुशी हुई।...

बाहर डैने फड़फड़ाने की आवाज हुई। कौआ बोल रहा था। सवेरा हो गया क्या? अहा, तब तो जान बच जाए। बिस्तर के पास की खिड़की को खोलकर वह अवाक् हो गयी। आह-हा, कैसी रात! कब चाँद निकल आया है। हलकी बदली की परतों से ढके चाँद की वह रोशनी—नीलाम्बरी पहने गोरी बहू-सी।

दरवाजा खोलकर वह ओसारे पर निकली।

चारों ओर सन्नाटा। ऊपर के ओसारे से अजीब लग रहा था। अँगना की माटी भीगकर नर्म हो गयी थी—फिर भी चाँदी-सी चाँदनी में झकमक कर रही थी। कहीं कोई कचरा, कहीं कोई पाँव का निशान नहीं! दखिनबारी ओसारे पर कहीं कोई चीज नहीं—यों ही पड़ा है। ओसारा कितना बड़ा लग रहा है! गिरा घर कूड़ा-कचरा से भरा रहता है—मरे आदमी-जैसा। छप्पर पर फूस नहीं रहती, दीवारें ढह जाती हैं, खिड़की-दरवाजा टूट गिरता है—जैसे लाश के सिर पर बाल नहीं रहता, मांस नहीं रहता, आँखों के गड्ढे, मुँह 'हा' किये रहता है! और यह घर झकमक कर रहा है। छप्पर पर अभी फूस है, खिड़की-दरवाजे पुराने हो गये हैं, फिर भी ठीक हैं। है नहीं सिर्फ तो कहीं आदमी की निशानी। न तो पैर के निशान हैं, न कोई चीज-वस्तु। कुरता, जूता, छड़ी, हुक्का, चिलम, चिलम की राख—सब उसी दखिनबारी ओसारे पर रहता था। लोगों के अँगना में बच्चों का घरौंदा होता है; जब तक यतीन रहा, फतिंगा और गोबरा थे—उस समय अँगना में कैसी-कैसी अजीबोगरीब चीजें पड़ी रहती थीं। अब कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं! लगता है, यह घर भूख की ज्वाला से चुपचाप मर रहा है—जैसे खाने के लिए 'हा' किये हुए है--लोगों के कर्म-कोलाहल से लोगों के चीज-वस्तु से उसका पेट भर दो। अकेले पद्म को चबा-चूसकर तृप्ति की बात तो दूर, वह जिन्दा भी नहीं रह पा रहा है। आँगन के एक ओर जाने किसके पाँव की छाप पड़ी है! दुर्गा के पाँव की होगी! शाम को वह आयी थी। और दिन तो वह यहीं सोया करती है। आज नहीं आयी।

शायद...! घिन से पद्म का बदन री-री कर उठा। शायद कंकना गयी हो। या कि जंक्शन! कल पूछने से ही कह देगी। शर्म या झिझक उसे है ही नहीं। हँस-हँसकर विस्तार से सब बता देगी। वह दम्भ से ही कहती है कि 'बहन, पेट के लिए बाँदी-गिरी भी नहीं कर सकती, भीख भी नहीं माँग सकती।'

यह भीखवाली बात उसे गड़ी। भीख की याद आते ही उसे लगती : छिः! वह भीख के दाने खाती है। भीख के भात के सिवा और क्या! गुरुजी से यह सहायता लेने का उसे हक क्या है? उसे अपनी किस्मत पर एक चिढ़-भरी कुढ़न

हुई। और वह कुढ़न उसी समय आसमान पर फैलती हुई बदली की तरह अनिरुद्ध पर जा पड़ी, उसके बाद पड़ी श्रीहरि पर, फिर जा पड़ी देबू घोष पर। वही उससे ऐसा क्यों करती है? क्यों?

दुर्गा कुछ झूठ नहीं कहती। कहती है, 'गुरुजी को देखने से माया होती है। अहा, बिलू दीदी का पति! नहीं तो उसपर माया कैसी! वह भी कोई मर्द है? लुहार-बहू, उसकी क्या है बता?'...उसके बाद पिच् करके कहती—'मुझे उसका अफसोस नहीं है बहन! बाम्हन, कायथ, सद्गोप, जमींदार, परसीडेण्ट, हाकिम, दरोगा...जाने कितने।' ...वह खिलखिलाकर हँसी। बोली, 'मैं हूँ मोचिन। मेरी जाति के लोगों को कोई पाँव छूकर प्रणाम नहीं करने देते, घर में नहीं जाने देते! और इधर मेरे ही पाँवों पर लोटते हैं सब। बगल में बैठकर दुलारते हैं, मानो स्वर्ग में पहुंचा देते हैं—तुमसे कहूँ क्या बहन!'—आगे वह बोल ही नहीं पाती, हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती।

दुर्गा शायद आज भी अभिसार में निकली है। शायद हो कि उसके चरणों पर कोई जाना-माना, सम्पन्न आदमी लोट रहा हो। शायद कंकना गयी हो। वहाँ के बगीचे के कितने ही अनुभव सुनाये हैं उसने! बगीचे में चांदनी में दुर्गा का हाथ पकड़कर टहलने का शौक होता है बाबुओं को। गरमियों में मयूराक्षी में नहाने जाते हैं! आज भी कदाचित् वैसी ही कोई नयी अभिज्ञता लिये लौटे। कल ही वह नयी खूबसूरत साड़ी में दीखेगी—कलाई में नयी चूड़ियाँ होंगी। यह सन्देह सत्य नहीं भी हो सकता है। क्योंकि दुर्गा अब वह दुर्गा नहीं रही। आजकल वह अभिसार में विशेष नहीं जाती। कहती है—'उससे अब ऊब आ गयी है बहन! मगर करूं क्या, पेट की मार बड़ी मार होती है। और फिर मेरे ना कहने से ही क्या लोग जान छोड़ते हैं? तुमसे कहूँ क्या लुहार-बहू, भले घर का जवान, शाम से ही घर पिछवाड़े आकर खड़ा रहता है, झरोखे पर ढेला मारकर अपनी मौजूदगी बताता है। झरोखा खोलकर देखती हूँ कि साफ-सुथरे कपड़े पहने पेड़-तले अँधेरे में खड़ा है। आधी रात में भी कोठे की खिड़की पर चढ़ जाता है, कभी-कभी तो सींखचा तोड़कर डकैत की तरह अन्दर भी आ पहुँचता है!'

बाप रे! पद्म सिहर उठी। उसका सारा शरीर थर-थर करके कांप उठा। उफ् जानवर! पशु! दूसरे ही क्षण उसके होठों पर हँसी दौड़ गयी।। उसके सिरहाने दाव रखा हुआ है। निडर हो वह रेलिंग पर भार देकर मेघ-मलिन चाँदनी की ओर ताकने लगी। भादों की इस उमस में भला खिड़की-दरवाजा बन्द करके अन्दर सोया जा सकता है? मन्द मीठी हवा बड़ी भली लगती है। तन जुड़ा जाता है! चाँद पर होकर स्याह-सफेद हलकी बदलियाँ निकलती जा रही थीं। कभी प्रकाश, कभी अँधेरा!

वह चौंक उठी। कौन? दखिनवारी ओसारे के उस कोने वह वहाँ साफ घुसरा-सा खड़ा है चोर-सा? कौन है वह? पद्म का कलेजा धड़क उठा। वह चुपके से अन्दर गयी। दाव लिये दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी। वह आदमी थिर खड़ा

था। छिरू पाल? वह होता तो क्या ऐसा स्थिर खड़ा रहता? लम्बा-सा आदमी कौन? गुरुजी? हाँ गुरुजी-सरीखा ही लगता है। उसके दिल की धड़कन की गति बदल गयी। धड़कन नहीं गयी, लेकिन धड़कन में जो भय-विह्वलता थी, वह जाती रही। पत्थर गल गया। लाख हो, हो तुम बेंगा की जाति! कहा, बेचारा आया तो है पर सकुचाया ही खड़ा है।

पद्म धीरे-धीरे उतरी। गुरुजी वैसा ही खड़ा था! पद्म आगे बढ़ी। दबे गले से आवाज दी—"गुरुजी?"

नहीं। गुरुजी नहीं! ओसारे के उस कोने छप्पर पर एक बड़ा-सा छेद हो गया है। उसी छेद से चाँद की रोशनी पड़ रही थी, लम्बी-सी ठीक जैसे कोने में कोई लम्बा आदमी खड़ा हो!

दरवाजे पर धक्का कौन दे रहा है? दरवाजा ढकेल रहा है! हाँ! इस धक्के में ख़ास इशारा है। पद्म ने आकर दरवाजे की फाँक से झाँका। उसके बाद आवाज दी—"कौन?...कौन?...कौन?"

देबू बिस्तर पर लेटा जग रहा था। सोच रहा था। सामने की खुली खिड़की से अचानक ऐसा लगा उसके घर के पासवाले रास्ते के उस पार हरसिंगार के नीचे सादा-सफेद-सा कोई शायद खड़ा है। कौन? देबू उठ बैठा; चौंका, कोई स्त्री! आसमान में एक जगह मेघ जम आये थे। पानी बरसने लगा था। पत्तों पर टप्-टप् की आवाज हो रही थी। इतनी रात गये पानी-बदली में आकर कौन खड़ी है?

दुर्गा? एक उसी का ठिकाना नहीं वह सब-कुछ कर सकती है। पर सच ही क्या वही है? वह सब कर सकती है, फिर भी देबू को इस बात पर विश्वास नहीं हो पाया कि वह उसके झरोखे के पास अकारण ही यों आकर खड़ी होगी। आवाज दी—"दुर्गा?"

मूरत ने जवाब नहीं दिया। हिली तक नहीं।

कौन है? दुर्गा होती तो क्या जवाब नहीं देती? तो? तो?

एकाएक उसके जी में आया—तो क्या यह मेरी गुजरी हुई बिलू है? हरसिंगार-तले झरे हुए फूलों में खड़ी-खड़ी अपलक आँखों उसे देखने आयी है। हो सकता है, वह रोज ही इस तरह देख जाया करती हो! दुनिया की फिक्र में अनमना देबू शायद उसे देख नहीं पाता हो! वह रोती है और रो-रोकर लौट जाती है। देबू को कोई सन्देह नहीं रह गया। उसने पुकारा—"बिलू? बिलू?"

वह मूरत जरा चंचल-सी हुई मानो, थोड़ा—एक पल के लिए।

देबू का शरीर रोमांचित हो उठा; कलेजा एक अनिर्वचनीय आवेग से भर उठा। पार्थिव और अपार्थिव—दोनों ही प्रकार की कामना के अधीर आनन्द से वह दरवाजा

खोलकर ओसारे से रास्ते पर उतरा—रास्ते को पार करके हरसिंगारतले मूर्ति के पास जाकर खड़ा हुआ और व्यग्रता से हाथ बढ़ाकर उस मूरत के हाथ को पकड़ लिया। उसका भ्रम तुरत टूट गया। हाड़-मांस का स्थूल शरीर—स्निग्ध और गरम स्पर्श—स्पर्श में बिजली का प्रवाह! कलाई में नब्ज धड़क रही है—कौन है यह? उसने हैरान होकर पूछा, "कौन?"

आसमान में काला बादल जम आया था। आसमान ढक गया था। चाँदनी लगभग डूब गयी थी। चारों ओर अँधेरा। देबू ने फिर पूछा, "कौन?" आभास-इंगित-से मन की चेतना से उसे पहचानते हुए भी पूछा, "कौन?"

पद्म ने अपना घूँघट उतार दिया। पूरी नजर से देबू को देखकर उसने कहा, "मैं हूँ।"

"लुहार-बहू?"

"हाँ! तुम्हारी मितनी।"—पद्म हँसी।

देबू के अन्दर एक कँपकँपी दौड़ गयी। वह कुछ बोल नहीं सका! दबे गले से फुसफुसाकर पद्म ने कहा, "मैं आयी हूं गुरुजी!"

देबू एकटक उसकी ओर देखता रह गया!

पद्म के स्वर में कोई संकोच नहीं था—उसके हृदय में कामना का प्रबल आवेग, स्नायुओं में आकुल उत्तेजना, नस-नस में दौड़ती रक्तधारा में बढ़ती हुई गरमी! उसने कहा, "मैं आ गयी मितवा! उस घर में मुझसे और रहा नहीं गया। मैं अव तुम्हारे यहाँ रहूँगी! दोनों मिलकर नया घर बसाएँगे! तुम्हारा मुन्ना फिर से मेरी गोदी में लौट आएगा! लोग जो चाहें सो कहें। न होगा तो हम दोनों चले जाएँगे दूर कहीं!..."

और वह हाँफ उठी।

देबू वैसा ही काठ का मारा-सा खड़ा रह गया।

कुछ क्षण रुककर देबू ने जिज्ञासु की नाई कहा, "मितवा!"

उसने एक लम्बा निःश्वास फेंका। सचेतन होने की कोशिश की। उसके बाद कहा, "जोरों की बारिश आ रही है। घर जाओ लुहार-बहू।"

वह वहाँ रुका नहीं। पलटा। घर के अन्दर गया। दरवाजा बन्द किया और कुण्डी को लगाने के लिए उठाया—

उसी हालत में ठक खड़ा रह गया। उसे खयाल भी नहीं रहा कि कुण्डी पर हाथ रखे वह इस तरह कब तक खड़ा रहा। खयाल तब आया, जब बिजली की एक तेज-तीखी कौंध से—नीलाभ चमक से उसकी आँखें चौंधिया गयीं। उसी क्षण गाज-गरजन से चारों तरफ जैसे हिल उठा। वरसती धारा से पत्तों पर आवाज होने लगी। सच ही जोरों की बारिश आ गयी! देबू चौंककर फिर किवाड़ खोलकर बाहर निकला। ओसारे पर खड़े होकर उधर के हरसिंगार की तरफ देखा—कुछ नजर नहीं

आया। यहाँ तक कि वह गाछ भी नहीं दिखाई दिया। घनी बारिश में घने काले बादलों की छाया में सब-कुछ डूब गया था! मितनी जरूरी चली गयी होगी! अब वह खड़ी होगी भला या कि खड़ी रह सकती है! फिर भी वह ओसारे से उतरकर हरसिंगार की तरफ लपका। कोई नहीं। उस बारिश में ही वह कुछ देर खड़ा रहा। एक बार दो-एक कदम बढ़ा भी। लेकिन तुरत लौट पड़ा। घर लौटकर एक लम्बी उसाँस ली। गीले कपड़े बदलकर चुपचाप बैठ गया। बदनसीब औरत! इसका कोई उपाय करना जरूरी है। मगर कौन-सा उपाय? उसे याद आयी वह कविता, जो सोना उस दिन पढ़ रही थी—स्वामीलाभ! तुलसीदास ने जो मन्त्र उस विधवा को दिया था, वह मन्त्र वह कहाँ पाएगा?

बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी।

सुबह काफी देर से नींद टूटी। बड़ी रात तक उसे नींद नहीं आयी। शायद रात के अन्तिम पहर तक वह जग ही रहा था। वर्षा अभी भी थमी नहीं थी। आसमान में बादल छाये थे। हवा भी मचलकर बहने लगी थी। लगता है, एक बादल उतरा! देबू उस हरसिंगार की ओर ताकता हुआ खड़ा रहा। रात की बातें मन में घुमड़ने लगीं। लम्बा निःश्वास छोड़कर उसने उधर से नजर फेर ली। अभागिन! दुनिया में कुछ बदनसीब औरतें ऐसी होती हैं, जिनकी दुःख-दुर्गति का कोई प्रतिकार नहीं! जो उसका प्रतिकार करना चाहते हैं, उसके दुर्भाग्य की आँच में वे भी झुलस जाते हैं। अनिरुद्ध घर से चल दिया, उसकी जगह-जायदाद भी गयी—यह सब इस औरत के दुर्भाग्य से ही हुआ। उसने उसे सहारा दिया, सो बदनसीबी की लपटें उसकी ओर भी लपकी चली आ रही हैं। श्रीहरि उसे पंचायती सजा की आग के घेरों से घेरना चाह रहा है। परसों पंचायत बैठेगी। चारों ओर खबर भेजी गयी है। घोष ने तैयारियाँ खूब की हैं। उसने रांगा दीदी का एक वारिस खड़ा किया है। श्राद्ध वही करेगा। उसी मौके से पंचायत बैठेगी। रांगा दीदी का श्राद्ध परसों है। और इस औरत ने उसे जलाकर खाक करने के लिए बारूद की रंगीन मशाल-जैसी पाप की आग जलायी है। देबू ने उसे अपने आदर्श, अपने संस्कार के अनुसार पवित्रता और संयम से अनुप्राणित करने का संकल्प किया। अब वह लुहार-बहू के घर हरगिज नहीं जाएगा। छाता खोलकर वह बैहार की तरफ चल पड़ा।

रात जोरों की बारिश हो चुकी थी। गाँव के नालों से खल-खल करता हुआ पानी बह रहा था। गड्ढे-पोखरे पहले से ही भरे हुए थे। तिस पर रात इतनी बारिश हुई। सब छलक पड़े। जिन नालों से पोखरों में पानी आता था, उनसे पानी बाहर निकलने लगा। जगन अपनी खिड़की-गड़हिया के पास खड़ा था। गड़हिया का पानी बह रहा था, सो वह घर के कमिए से नाले के मुँह पर बाँस की चचरी गड़वा रहा

था। आजकल जगन भी देबू से विशेष बोलता-चालता नहीं है। वह इस पंचायत में नहीं है। पंचायत में उसके रहने की बात भी नहीं। डॉक्टर जाति का कायस्थ है—नवशाखा समाज की पंचायत से उसका क्या नाता? फिर भी, गाँव के समाज का है, गाँववासी की हैसियत से उसकी राय, उसके सहयोग का एक महत्त्व है। और फिर जब वह डॉक्टर है, पुराने सम्मानित परिवार का है, तो वह महत्त्व कुछ विशेष ही है। लेकिन डॉक्टर उस पंचायत में नहीं है, जिसे श्रीहरि ने बुलाया है। डॉक्टर ने लुहार-बहूवाली बात को सच मान लिया है। निहायत नजर मिल गयी, इसलिए डॉक्टर ने सूखे भाव से कहा, "खेत चले?" देबू ने हँसकर कहा, "हाँ। चचरी डलवा रहे हो?"

"हाँ। जीरा डाला है। कुछ बड़ी मछलियाँ भी हैं।"—उसके बाद आसमान की ओर देखकर बोला, "जो ढंग है आसमान का, हवा जिस तरह से उड़ती-पड़ती बह रही है—लगता है, फिर पानी आएगा। अब पानी आया तो चचरी से भी कुछ नहीं होने का।"

देबू ने भी आसमान की तरफ देखा—"हूँऽ!"

लगभग सभी गृहस्थ, जिन्हें पोखर-गड़हिया है, नाले के मुँह पर चचरी की रोक डाल रहे थे। ग्रामीण-जीवन में खेत, धान, गेहूँ, आलू, ईख, शाक-सब्जी, गाय-गोरू की तरह पोखरे की मछली भी जरूरी चीज है। लोग-बाग बारहों महीने खाते तो हैं ही, अतिथि-कुटुम्ब के आये-गये, उसी से मान बचता है। पेट का बच्चा, घर की गाय और पोखर की मछली—गृहस्थों के सौभाग्य का लक्षण है।

सद्गोप-टोले के बाद बाउरी, डोम और मोची-टोला। इनके टोले गाँव के छोर पर हैं और कुछ नीचे बसे हैं। गाँव का सारा पानी उसी टोले से निकलता है। टोले के ठीक बीचोंबीच एक बालू-भरा रास्ता या नाला निकल गया है—उसी रास्ते से बहकर पानी पंचग्राम की बेहार में गिरता है। टोला पानी से लगभग भर गया था। कहीं घुटने-भर, कहीं घुट्ठी-भर पानी। टोले में मर्द सूरत कोई नहीं, सब खेतों में जा चुके थे। इस जोरों की वर्षा से धान का तो नुकसान होगा ही—पानी के तीखे बहाव से मेड़ें टूटेंगी, खेतों में बालू भर जाएगा। उन जगहों में सब मिट्टी डालने गये थे। स्त्रियाँ और बच्चे हाथ-जाल और टोकरियों से मछली मारने में मशगूल। बच्चों को तो त्योहार-सा हो गया है। कोई तैर रहा है, तो कोई कूद रहा है। कुछ बड़ी उमर के लड़के ताड़ के धड़ का एक टुकड़ा कहीं से उठाकर नौका-विहार कर रहे थे। कई जनों के घर की दीवार भी धँस गयी थी।

देबू का मन उसे दुर्गा के लिए इधर खींच लाया था। उसका खयाल था—दुर्गा के जरिये वह लुहार-बहू की खोज-खबर लेगा। दुर्गा से खोलकर कुछ बताने की ख्वाहिश नहीं की। इशारे से कुछ बातें जानने और जनाने की थीं। तमाम रात सोचकर उसने यही तय किया था कि रात की बात का कोई जिक्र न करके वह लुहार-बहू को मन्त्र दिलाने का प्रस्ताव करेगा—"देखो, मनुष्य के भाग्य-फल को

मानना ही पड़ता है। आदमी के बहू-बेटा जाता है, औरत के पति-पुत्र जाता है—रह जाता है केवल धर्म। धर्म को अगर मनुष्य न छोड़े तो धर्म उसे नहीं छोड़ता। जो धर्म का दामन थामे रहता है, वह दुःखों के होते हुए भी सुख चाहे नहीं, शान्ति अवश्य पाता है। उस लोक में गति मिलती है, दूसरे जन्म में भाग्य प्रसन्न होता है। तुम अब दीक्षा लो। मैं तुम्हारे गुरु को खबर भेजता हूँ। दीक्षा लो। मन्त्र का जाप करो, नेम करो, व्रत करो। इससे मन को शान्ति मिलेगी।"

दुर्गा के घर पर पहुँचकर उसने आवाज दी—"दुर्गा!"

दुर्गा की माँ एक छोटा-कपड़ा पहने हुई थी—उससे सिर पर घूँघट नहीं डाला जा सकता। उसने जल्दी-जल्दी एक फटा अँगोछा माथे पर रखकर कहा, "वह तो तड़के ही उठकर निकल गयी है भैया। कल रात उसका सिर दुख रहा था। रात उस लुहारिन के यहाँ सोने नहीं गयी। जगकर वैसे ही भाव-साववालों के यहाँ गयी है।"

पातू की वह बिलैया-सी बीवी अन्दर से पानी उपछ रही थी। फूटे छप्पर से पानी गिरते रहने से अन्दर गड्ढा हो गया था।

लौटते वक्त वह अनिरुद्ध के घर की तरफ से बस्ती में घुसा। बस्ती का यह हिस्सा उधर से कुछ ऊँचा है। इस तरफ कभी पानी नहीं जमता। लेकिन आज इधर पानी जम गया था। घुट्टी डूब जाती थी। उधर रांगा दीदी के घर की दीवार नीचे की तरफ भीगी हुई थी। कारण ठीक-ठीक उसकी समझ में नहीं आया। वह लुहार के घर के सामने खड़ा होकर पुकारने लगा—"दुर्गा? अरी दुर्गा है?"

किसी ने जवाब नहीं दिया। फिर आवाज दी। इस पर भी जवाब न मिला तो वह अन्दर गया। अन्दर भी कहीं किसी की आहट नहीं थी। ऊपर के कमरे का दरवाजा खुला पड़ा था। दखिनबारी घर के एक कोने छप्पर के छेद से लगातार पानी पड़ते रहने से दीवार का एक कोना धँस गया था। काँदो-माटी से एकाकार हो रहा था वह! उसने फिर एक बार पुकारा। इस बार कहा, "मितनी हो? मितनी?"

मितनी कहकर ही पुकारा उसने, क्योंकि उस अभागिन की बदनसीबी की भी तो सोचे बिना नहीं रहा जाता। वह इस देश की बाल-विधवा-जैसी अभागिन है। संयम बड़ी चीज है, वही सबसे उत्तम उपाय है—इसमें उसे सन्देह नहीं—लेकिन इन सबकी वंचना भी तो बड़ी दर्दनाक है। देबू जिस युग में पैदा हुआ है और उसने जो शिक्षा-संस्कार पाया है, उससे महत्त्व के लिहाज से उसे ये दोनों ही दिशाएँ समान लगती हैं! फिलहाल उसने शरच्चन्द्र की किताबें पढ़ी हैं। पढ़ने से ऐसी अभागिन औरतों के प्रति उसकी दृष्टि बदल गयी है। कल रात वह संयम की ओर ही झुक पड़ा था। उस समय उसने पुराने विधान के अनुसार कठोर विचारक की तरह उसका विचार करना चाहा था। आज अभी वह करुणा की ओर झुक गया। और उसने फिर आवाज दी—"मितनी हो? मितनी?"

इसपर भी जवाब नहीं। हो सकता है, दुर्गा के साथ वह घाट की तरफ गयी

हो। लौट आया। रास्ते का पानी क्रमशः बढ़ रहा था। जिनके घर ऐन रास्ते के किनारे पड़ते थे, उसमें से कुछ लोग अपने-अपने ओसारे पर मायूस-से बैठे थे। पास ही कहीं हरेन घोषाल अँगरेजी में चिल्लाता चला जा रहा था। सबसे पहले हरीश और भवेश चाचा से भेंट हुई। देबू ने कहा, "आपके टोले में इतना पानी! चाचा!"

वे कुछ कहें, इसके पहले ही हरेन ने पुकारा—"कम हियर, सी, सी। सी विथ योर ओन आइज। द जमींदार—श्रीहरि घोष एस्क्वायर—मेम्बर ऑव द यूनियन बोर्ड—हैज डन् इट।"

देबू आगे बढ़ा। देखा, नाले का पानी श्रीहरि के पोखरे में न घुसे इसलिए श्रीहरि ने नाले के ऊपर एक बाँध बँधवा दिया है। पानी को ऊँचे की ओर मोड़ दिया है। नतीजा है कि पानी ऊँचे की तरफ जा नहीं पा रहा है और टोले में ही भर गया है।

देबू कुछ देर खड़ा सोचता रहा। उसके बाद पूछा, "घर में कुदाली है?"

"कुदाली?" लेकिन 'क्या होगा'—यह सोचकर घोषाल का मुँह सूख गया।

"हाँ! कुदाली या कुछ भी लाओ। ले आओ।"

सूखे चेहरे से घोषाल ने पूछा, "बाँध काटने से फौजदारी तो न होगी?"

"नहीं। जाओ, ले आओ।"

"बट, देयर इज कालू शेख। ही इज ए डेंजरस मैन।"

"ले आओ, तुम ले तो आओ। न लाना हो तो कहो, मैं अपने घर से ले आऊँ।"

—देबू तनकर खड़ा हो गया था। उसका छरहरा बदन थर-थर काँप रहा था। घोषाल घर के अन्दर से छोटी-सी कुदाली ले आया। लाकर देबू की तरफ उसे बढ़ा दिया। देबू ने खुले छाते को मोड़कर घोषाल के बरामदे पर रख दिया, कपड़े को समेटा और हाथ में कुदाली लिये बाँध पर चढ़कर खड़ा हो गया। चिल्लाकर बोला, "हम लोगों का घर-द्वार डूबा जा रहा है। यह बाँध गैर-कानूनी है—किसने बाँधा, बतायें। मैं इसे काटे दे रहा हूँ।"

श्रीहरि के फाटक से कालू शेख बाहर निकल आया। उसके पीछे-पीछे श्रीहरि भी। देबू ने कुदाली चलायी—चोट और फिर चोट।

श्रीहरि ने पुकारकर कहा, "ठहरो, खुद मेरा ही आदमी काट देता है।" देबू चाचा, तुम उतर जाओ। अपने पोखरे के मुँह पर मैंने बड़ा-सा बाँध बनवा लिया—उसी के लिए पानी को बन्द किया था। बाँध बँध गया। अरे ए, जा! काट दे। जल्दी-जल्दी जा।"

पाँच-सात मजूरे दौड़े आये। इसी गाँव के मजूरे थे। देबू को दूसरे सबने छोड़ दिया था, लेकिन इन लोगों ने नहीं छोड़ा था। एक ने श्रद्धा के साथ कहा, "आप उतर आइए गुरुजी, हम लोग काट देते हैं।"

देबू ने कुदाली घोषाल के ओसारे पर रख दी। अपना छाता उठाया और घर की ओर चल पड़ा। श्रीहरि के ही बगल से जाना था। उसने मुसकराकर कहा, "चाचा!"

देबू खड़ा हो गया। मुड़कर देखने लगा।

श्रीहरि उसके करीब आकर धीमे से कहने लगा—"अनिरुद्ध की स्त्री से तुम्हारा झगड़ा है क्या?"

देबू के दिमाग में आग लग गयी। भँवें सिकुड़ आयीं—आँखों में जैसे छुरी की पैनी धार चढ़ गयी। फिर भी उसने अपने को ज़ब्त करके कहा, "मतलब?"

"मतलब कि कल रात—डेढ़ या दो बजे होंगे, मूसलाधार पानी पड़ रहा था। मेरी नींद टूट गयी। खिड़की से छींटे आ रहे थे। मैं खिड़की बन्द करने लगा। देखा, रास्ते पर कोई खड़ा है। आवाज दी—कौन? औरत के गले का जवाब मिला—मैं हूँ। मैंने सोचा, किसी को कुछ हुआ है। जल्दी-जल्दी उतरा। देखा, लुहार-बहू है। उसने मुझसे कहा—'आपके यहाँ तो दाई-नौकरानी कई हैं। मुझे भी कोई जगह देंगे अपने यहाँ?' मैंने पूछा—'सो क्यों? तुम तो देबू चाचा के पास थी न? वह तुम्हारा आदर-जतन नहीं करते हैं, ऐसी तो बात नहीं है।' उसने मेरी बात का जवाब नहीं दिया। बोली—'आप अगर अपने यहाँ नहीं रखेंगे तो मैं चली जाऊँगी—जिधर ये दो आँखें ले जाएँगी, चली जाऊँगी।' करता क्या चाचा, कहा, 'खैर, आओ'!" यह कहकर श्रीहरि गर्व से हँसने लगा मगर देबू को काठ मार गया।

श्रीहरि ने फिर कहा, "अच्छा ही हुआ चाचा। भूतनी तुम्हारे कन्धे से उतर गयी। अब उस मोचिन छोरी से कह देना कि तुम्हारे यहाँ आया-जाया न करे। पंचायत को मैं समझा-बूझा दूँगा। प्रायश्चित्त कर लो। शादी-ब्याह करो। मैं अच्छी-सी लड़की देख देता हूँ।"

देबू स्थिर खड़ा था! वह श्रीहरि की सारी बातें सुन नहीं रहा था—अचरज और गुस्से की उत्तेजना को जी-जान से जब्त कर रहा था। किसी तरह से अपने को रोक करके उसने कहा, "अच्छा, मैं जाता हूँ।"

सोलह

पद्म के जीवन की रुँधी हुई कामना—वह कामना, जो अब तक उसके मन के अन्दर ही घुमड़ा करती थी, एकाएक उसके मन के धोखे से, गुप्त दरवाजे से, बाहर निकल

पड़ी। और वह निकली भी सहस्रमुखी होकर। आदमी को जो चाहिए, एक नारी जो चाहती है--जिस पावना की ताकीद नारी के एक-एक देह-कोष में, एक-एक लोम-कूप में, चेतना के हर स्तर में स्पन्दित होती है, उसी पावने का दावा था उसका। देह की भूख, पेट की भूख। पति-पुत्र, अन्न-धन, सुख-सम्पद्, घर-गिरस्ती। वह अपने एकाधिकार में, नितान्त अपने रूप में यह सब चाहती थी। उन कामनाओं को कठोर संयम से, कृच्छ्र साधना से उसने बहुत दबाया। नेम-व्रत किया, उपवास रखती रही, लेकिन उसकी 'प्राण-शक्ति' की उमंग किसी भी प्रकार से दबाये नहीं दबी। मन के गोपन में बहुत-बहुत कल्पनाएँ, बहुत-बहुत संकल्प माटी के नीचे पड़े अंकुर-से छिपे थे, उस दिन अचानक जिन्दगी पर, स्वतन्त्र चिन्तन और कर्म-क्षेत्र पर पड़े संस्कार के पत्थर के किसी छेद से निकल पड़े। चाँदनी की रेखा को भ्रम से आदमी समझकर वह नीचे उतरी थी। उसके बाद हवा से दरवाजा हिला, तो उसमें उसने किसी का इशारा महसूस किया। दाव को हाथ में लेकर ही उसने दरवाजा खोला था। दरवाजे के सामने कोई नहीं था, लेकिन उसे लगा जैसे कोई जल्दी से खिसक गया हो। उसी की तलाश में वह रास्ते पर निकली। वह जितना ही बढ़ती गयी, उसकी कल्पना का आगन्तुक कभी मरुभूमि की मरीचिका-सा हटता गया और आखिरकार उसे उसी हरसिंगार के नीचे ले जाकर खड़ा कर दिया। करीब में देबू के घर पर जो नजर पड़ी, तो उसके हाथ का दाव आप ही आप छूटकर गिर पड़ा।

देबू के घर के सामने खड़े होते ही उसकी चेतना लौटी। मगर तब तक उसके जीवन की जतन से पली-घुटी हुई कामना गुफा से छूट पड़े झरने की नाई हजारों धारा में धरती पर आना चाहने लगी थी। उथली हुई वासना को डर नहीं, संकोच नहीं। उसके सर्वांग में लाखोंलाख जीव-देह-कोष में खिल-खिल हँसी उठ रही थी, नस-नस में कल-कल गीत गूँज उठा था, असंख्य और अपार सुख से, आनन्द से प्राण उमड़ पड़े थे; घर-गिरस्ती-सन्तति की खिलती आती कल्पना में वह विभोर हो गयी थी। उसने देबू से अपनी बात कही--वह बात, जिसे अपने मन की साँकल खोलकर भूल से भी किसी से नहीं कही थी, इशारे से भी नहीं बताया था।

देबू के निरासक्त निष्ठुर उपदेश से वह चौंकी--"जोरों की बारिश आ रही है। घर जाओ लुहार-बहू!"

इस अन-उमगे और कठोर ठुकराहट के अपमान से वह अधीर हो उठी। रुकावट पाने से आवेगमयी धारा का स्रोत जैसे किनारे तोड़कर बह जाता है, वैसे ही वह देबू को छोड़ उछलकर श्रीहरि के अनजाने तट की तरफ दौड़ पड़ी। सोचा भी नहीं कि श्रीहरि के पास मरुभूमि-जैसा विशाल चौंर है बालू का--वहाँ पानी की धारा कल-कल करती हुई खेल नहीं पाती, खो जाती है। उसने अपना भविष्य नहीं सोचा, अपना भला-बुरा नहीं सोचा; सीधे श्रीहरि के यहाँ चली गयी।

उसके कोठा घर के पिछवारे जाकर खड़ी हुई। श्रीहरि ने ठीक ही कहा, वह जग

ही रहा था। लेकिन पद्म उसी समय में सो रही थी। अवचेतन की नाईं बेखबर सो रही थी वह। देबू के तेज गले ने अचानक उसकी नींद-निहत चेतना में जागरण की धड़कन जगायी! जगकर उसने देखा कि देबू और श्रीहरि आमने-सामने खड़े बातें कर रहे हैं। उसने चारों तरफ निगाह दौड़ायी। अब उसने समझा कि वह कहां है! रात की बात किसी बुरे सपने की तरह धीरे-धीरे उसके मन में जागी।—लेकिन अब उपाय?

दुर्गा देबू के ही यहाँ बैठी थी। वह खबर ही देने के लिए गयी कि लुहार-बहू घर पर नहीं है।

सुनकर देबू ने मुख्तसर में कहा, "मालूम है।"

देबू का चेहरा देखकर दुर्गा को और कुछ बोलने का साहस न हुआ। वह चुप होकर बैठी रही।

देबू ने कहा, "अभी तू घर जा दुर्गा। पीछे सब बताऊँगा।"

दुर्गा उठ खड़ी हुई।

देबू ने फिर कहा, "नहीं। बैठ, सुन! तुझे अगर असुविधा न हो तो तू मेरे यहाँ रह न दुर्गा।"

दुर्गा अवाक् होकर देबू के मुंह की ओर ताकने लगी।—गुरुजी कह क्या रहा है।

देबू ने कहा, "घर-द्वार में झाड़ू नहीं लगता; लीपना नहीं होता। यह कम्बख्त चरवाहा छोरा ऐसा पाजी हो गया है। तू यह सारा काम-काज किया कर। यहीं खाना। तनख्वाह लेगी तो वह भी दूंगा।"

घोड़े को जैसे यक-ब-यक चाबुक लगा हो, दुर्गा चौकन्नी हो गयी। बोली, "नौकरानी का काम तो मुझसे नहीं होता गुरुजी, अपना घर बुहारने के लिए भाभी को रोज सेर-भर चावल दिया करती हूँ।"

देबू ने उसकी तरफ देखा, फिर बोला, "नौकरानी क्यों? तू तो बिलू को दीदी कहा करती थी। साली-जैसी रह यहाँ। तनख्वाह कहना भूल हो गयी। आखिर हाथ-खर्च की भी तो जरूरत होती है।"

दुर्गा भौचक्की-सी उसकी ओर ताकती रही।

देबू ने कहा, "परसों पंचायत बैठेगी दुर्गा। कम-से-कम ये दिन तो तू मेरे यहाँ रह!"

अबकी दुर्गा ने माजरे को समझा। हँस पड़ी। उसे बड़ा कौतुक हुआ। पंचायत में उसके और गुरुजी के बारे में मजे की आलोचनाएँ होंगी। देबू ने गम्भीर होकर ही पूछा, "तो क्या कहती है, बता?"

"कुंजी दो! झाड़ू-बुहारू लगा दूँ।"—और कुंजी के लिए उसने हाथ बढ़ाया।

देबू ने उसे कुंजी दे दी। कहा, "घड़े में पानी है या नहीं, देख तो?"

"पानी!"—दुर्गा ने कहा, "पानी मैं क्या देखूँ? तुम देखो!"

देबू बोला, "न, तू ही देख। न हो तो ले आना। यतीन बाबू का कहा याद

है? और तू मुझसे जैसी स्नेह-श्रद्धा करती है, वह तो किसी की माँ-बहन से कम नहीं है। मैं तेरे हाथ का पानी पीऊँगा। मैं जाति नहीं मानता। मैं पंचायत को यह साफ-साफ सुना दूँगा!"

"नहीं। मुझसे यह न होगा जमाई! मेरे हाथ का पानी—कंकना के वाम्हन-कायथ-बाबू लोग छिपकर पीते हैं मजे में। शराब में मिला देती हूँ, पी लेते हैं। उनके मुंह से गिलास लगा देती हूँ! मगर मैं तुम्हें नहीं दे सकती गुरुजी!"—दुर्गा की आँखों में आँसू आ गया। उसे छिपाने के लिए ही वह झट घूम गयी और दरवाजे का ताला खोलने लगी।

देबू जरा हँसा और चुप हो रहा।

आसमान की बदली छँट रही थी। थोड़ी-सी धूप निकली। फिर बादल से ढक गयी। फिर बादल छँटकर धूप निकली। बारिश थम गयी।

"दण्डवत् गुरुजी!"—सतीश बाउरी ने प्रणाम किया। उसके साथ बाउरी, मोची, हलवाहे-मजूरे और भी कई जने थे। सारा शरीर भीग गया था। भीग-भीगकर काला रंग तक फीका हो गया था। पाँव के किनारे उँगलियों की फाँकें; हाथ के तलवे लाश-जैसे सफेद हो गये थे। उँगलियों की नोक चुपस गयी थीं।

देबू ने नमस्कार किया। सिर्फ बातों से उन्हें तृप्त करने के लिए पूछा, "क्या हाल है पानी का?"

"वैहार में वाढ़ उमड़ आयी है। धान-पान डूब गया। गोछियाँ उखाड़ ले जाएँगी। बड़ा नुकसान कर दिया गुरुजी!"

दुःख की ये बातें कुछ देबू को सुनाने के लिए सतीश व्यग्र था। उसे सुनाये बिना उसे सन्तोष नहीं था मानो।

देबू ने दिलासा देकर कहा, "दो दिन धूप उगेगी कि पौधे ताजे हो जाएँगे। जरा इस वाढ़ को निकल जाने दो, जहाँ-जहाँ की गोछियाँ उखड़ गयी हैं, फिर से लगा देना।"

सतीश को भरोसा नहीं हुआ। बोला, "उम्मीद थी कि अबकी दो मुट्ठी फसल होगी। सो पानी का जो हाल है!"

"है तो क्या हुआ। बहाव बह जाने दो। अबकी बरसात अच्छी रही। दिन में धूप होती है, रात में पानी। फसल इस बार अच्छी होगी। पानी भी अन्त तक होगा।"

"वह सही है मगर इतना पानी भी तो ठीक नहीं।"

देबू के मन में औचक ही एक बात खेल गयी। नदी! मयूराक्षी! उसने अकुलाकर पूछा, "नदी का क्या हाल है?"

"जी, नदी लबालब है। लेकिन फेन बह रहा है। अब इस पर यदि वह उफनाये, बाढ़ आ जाए तो सब साफ हो जाएगा।"

"बाँध की क्या हालत है? देखी है?"—भँवें सिकोड़कर देबू ने पूछा।

सिर खुजाकर सतीश ने कहा, "पिछले साल बाढ़ नहीं आयी थी न! उससे पहले भी नहीं!"—उसके बाद आप ही एक अनुमान-सा करके कहा, "बाँध तो आपका ठीक ही है। और बाँध तोड़कर इधर बाढ़ नहीं आएगी। वैसा हो तो यह धरती ही नहीं रहेगी।"—कहकर सतीश ने जरा पारमार्थिक हँसी हँसी।

देबू ने जवाब नहीं दिया। उसका मन विरक्ति से भर गया : ये लोग अपना भविष्य सोचकर कुछ नहीं करते—कुछ नहीं करेंगे!

सतीश ने प्रणाम करके कहा, "अब चलूँ गुरुजी, वही सुबह का निकला हूँ।" कहते-कहते वह हँस पड़ा, हँसकर बोला—"तमाम रात भीगता रहा हूँ। उस पर सुबह से यह बहाव तोड़ने में हलुआ-हैरान हो गया। चलूँ। इसके बाद तो फिर एक बार पलुहं[1] लेकर निकलना है। उफ्, मछलीमय हो गयी है बैहार!"

दूसरे एक ने कहा, "कुसुमपुर के शेख ने बरछा से सात सेर की एक कतला मार ली।"

एक और बोला, "कंकना के बाबुओं का नारायण तालाब बह गया।"

इस बीच देबू उठ खड़ा हुआ।

पद्म की इस शोचनीय परिणति से उसे चोट पहुँची थी। उसकी अपनी शिक्षा संस्कार-ज्ञान-बुद्धि के अनुसार सोलहों आने दोष पद्म का ही है, वह बिलकुल निर्दोष है। उसने उसे स्नेह किया, विधवा भाई-बहू की नाई सम्मान के साथ उसके रोटी-कपड़े का भार भरसक उठाता रहा। बीती रात जिस संयम से मीठी बातें कहकर उसने उसे लौटाया है, उसमें अन्याय क्या हुआ? श्रीहरि पद्म के नाम पर ही उस पर तोहमत लगाकर झूठी बदनामी देकर उसे समाज से अलग कर देने पर तुला हुआ है। उसने इसकी भी परवाह नहीं की। निडर होकर पंचायत का मुकाबला करने को तैयार था। फिर उसकी गलती कहाँ है?

लेकिन फिर भी मन नहीं मान रहा था! मनुष्य को अपनी बहन और बेटी की ऐसी दुर्दशा के लिए गहरी पीड़ा और शर्म में अपनी जिस बेबस विवशता के अपराध का बोध होता है, पद्म के लिए पीड़ा और शर्म के साथ-साथ अक्षमता का वही अपराधबोध भी उसे एक अजानी पीड़ा-सा पीड़ित कर रहा था। दुःख, पीड़ा, लज्जा—सब उसी अक्षमता के अपराध-बोध का रूपान्तर है। उसका मन हजार तर्कों से निर्दोष साबित होने के बावजूद उसी पीड़ा से पीड़ित हो रहा था। दुर्गा को अपने घर में रहने के लिए कहकर, उसके हाथ का पानी पीने की कह बागी बनने के जोश से मन को उत्तेजित करके भी उसे उस वेदना से छुटकारा नहीं मिला। सो बाढ़-रोधी बाँध को महत्त्व देकर देबू बाँध को देखने के लिए निकल पड़ा—महज उस आत्मपीड़न

---

1. दबाकर मछली फँसाने की टोकरी-सी चीज।

से बचने के लिए। दुर्गा से कहा, "दुर्गा, मैं आकर रसोई चढ़ा दूँगा। तुझे अपने घर-वर जाना हो तो इसी बीच हो आ।"

दुर्गा ने हैरान होकर पूछा, "इस समय कहाँ चले? दुनिया में फिर किसे कहाँ तकलीफ हुई?"

गम्भीर होकर देबू ने कहा, "मयूराक्षी में बाढ़ बढ़ रही है। देख आऊँ!"

दुर्गा ने अवाक् होकर गाल पर हाथ रखा।

देबू ने भँवों पर बल डालकर कहा, "क्या हो गया?"

"क्या हो गया? रोने को जी चाह रहा है, यों रोकर जी नहीं भर रहा है। 'राजा के हाथी मरा है, उसका गला पकड़कर रो आएँ'—वही हाल है! मैं पूछती हूँ, बाँध तोड़कर बाढ़ कब आयी है?"

"बक मत! मैं आया।"—ओर हाथ में छाता लेकर देबू निकल पड़ा।

दुर्गा ने गलत नहीं कहा। काफी चौड़ा बाँध। उसके दोनों ओर के सरपत-वन की जड़ों से जकड़कर बाँध की माटी अटूट बन गयी है। दस-बीस साल में कभी जोरों की बाढ़ आती है, तो थोड़ा-बहुत टूटता जरूर है बाँध, जिसे बाद में मिट्टी डालकर ठीक कर दिया जाता है। लेकिन कोई इस बात की फिक्र नहीं करता कि वर्षा के पहले से ही बाँध कहीं पर टूटा हुआ है।

लेकिन पहले फिक्र करते थे लोग। बाँध बाँधने की व्यवस्था थी।

देबू ने उन्हीं बातों को अपने मन में खूब बड़ा कर लिया और बाँध की चिन्ता को ही एकमात्र चिन्ता बनाकर बाहर निकल पड़ा।

आधे चांद के आकार की इस पंचग्राम बैहार के छोर पर धनुष की प्रत्यंचा की तरह पहाड़ी नदी मयूराक्षी बहती है! पहाड़ी औरत-जैसा ही स्वभाव। यों ठीक ही रहती है। पानी घटता-बढ़ता रहता है। लेकिन जंगली स्वभाव के नाते हू-हू करके अचानक बाढ़ आ जाती है—फिर उसी जल्दी से घट भी जाती है। उससे खास कोई नुकसान नहीं होता! बैहार के एक किनारे बाढ़ से बचाव का बाँध बना है—उसी में बाढ़ का वेग थमता है। वह बाँध महज पंचग्राम की चौहद्दी तक की ही महदूद नहीं है। पंचग्राम की सीमा को पार करके नदी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक चला गया है। इस बाँध को किसने बाँधा, कब बाँधा—कोई नहीं कह सकता। लोग उसे 'पंच जांगाल' कहते हैं। पंच यानी पंच पाण्डव। माता कुन्ती को लेकर जब वे छिपते फिर रहे थे, तो इधर मयूराक्षी में बाढ़ आयी थी। गाँव-घर बह गये थे, धान डूब गया था। लोगों की दुःख-दुर्दशा का अन्त नही था। राजा की लड़की रानी—पाण्डव-जननी की आँखों में लोगों की दुर्दशा देख पानी भर आया। लड़कों ने पूछा—'रो क्यों रही हो माँ?' माँ ने अपनी उँगली से लोगों की दुर्गति दिखा दी। युधिष्ठिर ने कहा—'तो इसके लिए रोती क्यों हो? जहाँ तुम्हारी आँखों में आँसू आये, वहाँ लोगों की दुर्दशा रह सकती है भला, या रही है? हम लोग ऐसा उपाय किये देते हैं कि बाढ़ से यहाँ

के लोगों का कभी नुकसान न हो।' और पाँचों भाई बाँध बाँधने लगे। बाँध बँध गया। किसानों को बुलाकर पाण्डव कहते गये—'देखो भैया, बाँध हमने बाँध दिया। इसकी रखवाली का भार तुम लोगों पर रहा। हर साल बरसात में—रथयात्रा, अम्बुवाची, नागपंचमी आदि पर, जब हल जोतना बन्द रहता है—हर कोई कुदाल-टोकरी लेकर आया करना और अपने-अपने गाँव की सीमा पर हर आदमी पाँच-पाँच टोकरी मिट्टी डाल जाया करना। तीन दिन-तीन पचे पन्द्रह टोकरी।

यही प्रथा चली आ रही थी। जब से गाँव का मालिक जमींदार हुआ—अरती-परती, खाई-खन्दक, घासकर-बनकर, जलकर-फलकर, लत्ता-पत्ता यहाँ तक कि ऊपर और जमीन के नीचे के हक-हुकुम का मालिक हुआ—तभी से यह बाँध जमींदार की खास सम्पत्ति हो गया—उसके हुक्म के विना बाँध पर मिट्टी डालने या काटने का अधिकार किसी को न रहा। इस प्रथा के उठ जाने के बाद जमींदार बेगार पकड़कर बाँध की मरम्मत कराते थे। अब बाँध टूटने पर उस रिवाज के मुताबिक उसे बाँधने का खर्च कुछ जमींदार देता है, कुछ रैयत लोग देते हैं। हर साल बाँध पर मिट्टी डालने की जिम्मेदारी लोग भूल बैठे हैं। बाँध टूटेगा तो मजिस्ट्रेट के पास दरख्वास्त भेजी जाएगी, पड़ताल होगी, एस्टिमेट होगा, रैयत और जमींदार को नोटिस भेजा जाएगा और तब बाँध धीरे-धीरे बंधता रहेगा।

पंचग्राम की दूर तक फैली बेहार पानी में डूब गयी थी। अन्दाज़ से मेड़ों की पगडण्डी पकड़े देबू चला जा रहा था। रात जो घनी घटा घिर आयी थी, वह घटा अभी बहुत-कुछ छंट गयी थी। तीखी धूप निकल आयी थी। धूप की छटा से सारी बेहार आईने-सी झकमक कर रही थी। धान के पौधे खास दिखाई नहीं दे रहे थे।

पानी कहीं घुटने-भर, कहीं कमर-भर। बरसात के पानी की निकासी के लिए दो नाले हैं, उनमें छाती-भर पानी था। बहाव भी खूब तेज। लेकिन बेहार में बहाव मन्थर था, लगभग थिर-सा लग रहा था। उस मन्थर पानी को चीरती हुई एक-एक रेखा बड़ी तेजी से चली जा रही थी। उस रेखा के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे लोग—हाथ में पलुई या बरछा लिये हुए। ये रेखाएं मछलियाँ थीं—बड़ी-बड़ी मछलियाँ। बेहार में मछली मारनेवाले लोगों की भीड़—औरत, मर्द, बच्चे, बूढ़े सब।

समूची बेहार पार करके देबू बाँध पर पहुँचा। उसे याद आ गया कि जहाँ से वह बाँध पर चढ़ेगा, उसी के उस पार नीचे मयूराक्षी के चौर पर मसान है। उसके मुन्ने और बिलू की चिता! आज बिलू रही होती तो ऐसा न हुआ होता। पद्म की यह गति नहीं होती। जो मन्त्र वह नहीं जानता, उसकी बिलू वह मन्त्र जानती थी। बिलू होती, तो लुहार-बहू को देबू अपने ही घर रख सकता था। हँसती हुई बिलू अपने मुन्ने को उसकी गोद में दे देती। साँझ-बिहान उसके कान में मन्त्र देती रहती। सुबह उसे दुर्गा का नाम स्मरण कराती। कृष्ण के सौ नाम सिखाती। पुण्यश्लोक नाम को स्मरण करना सिखाती। पुण्यश्लोक नलराजा, पुण्यश्लोक धर्मराज युधिष्ठिर,

पुण्यश्लोक जनार्दन-नारायण, सभी पुण्यों के आधार! शाम को उसे कहानियाँ सुनाया करती—सती की कहानी, सीता की कहानी, सावित्री की कहानी! लुहार-बहू की सारी भूख, सारे लोभ, सारी लोलुपता जाती रहती।...

वह बाँध पर चढ़ गया। हवा से सरपत के जंगल में सर-सर सन्-सन् की आवाज हो रही थी। उस सन्-सन् आवाज के साथ ही एक और आवाज हो रही थी नदी की! नदी में एक आवाज-सी हो रही थी। यह आवाज तो अच्छी नहीं! उस ओर के सरपत-वन की ओट को ठेलकर देबू ने नदी की तरफ ताका। ओह, मयूराक्षी तो भयंकर हो उठी है! भीषण रूप धारण किया है! इस पार बांध के किनारे से लेकर उस पार जंक्शन तक पानी ही पानी है। लाल कँदोर पानी। दोनों किनारों के बीच कुटिल घूर्णियाँ उठाती हुई मयूराक्षी तीर के वेग से बहती जा रही है। गेरुआ रंग के पानी पर फेन बहता आ रहा है। पश्चिम से पूरब जहाँ तक नजर जाती—फेन और फेन। इन सबके साथ नदी में जगी थी एक गरज। देबू बाढ़ के किनारे तक उतरा। वहां खड़े होकर पैनी नजर से बाँध पर गौर किया। इधर-उधर देखते हुए एकाएक दिखाई दिया कि सरपत-वन के पास चींटी-कीड़े जमा हैं। बड़े-बड़े पेड़ों के तनों पर लाखों-लाख फतिंगे चढ़ते चले जा रहे हैं। अपने पांवों की तरफ देखा। पांव की सुपतीभर पानी में थी, इसी में पानी घुट्टी तक आ गया। फिर देबू बांध पर चढ़ गया। बाँध किस हालत में है, यह देखने के लिए वह आगे बढ़ा।

नदी में अभी जो बाढ़ थी, उससे ज्यादा खतरा नहीं था। वर्षा में नदी में बाढ़ स्वाभाविक है। लेकिन यह भादों है। भादों के महीने में बाढ़ आने से महामारी होती है! डाक का वचन है 'चैत में कुआँ, भादों में बाढ़। कहाँ-कहाँ मृतकों का गाड़!' भादों की बाढ़ से उपज सड़ती है, मारा पड़ता है। गरीब भूखे मरते हैं। बाढ़ के बाद ही फैलते हैं संक्रामक रोग, बुखार, काला मलेरिया। छोटी-मोटी बाढ़ का भी नतीजा कम बुरा नहीं होता। लेकिन देबू आज जिस बाढ़ की सोच रहा था, वह बाढ़ बड़ी ही भयंकर होती है। हड़पा-बाढ़—कोई-कोई घोड़ा-बाढ़ भी कहते हैं। वह बाढ़ हड़हड़ाती हुई उसी तरह दौड़ती आती है, जैसे जंगली घोड़ों का एक दल ही एक साथ हनहनाता हुआ दौड़ा आ रहा हो। कई फुट ऊँची उन्मत्त जलराशि उमड़ती-घुमड़ती एकाएक दोनों किनारों को छाप लेती है—किनारों को तोड़कर खेत-बैहार, गाँव-घर, पोखर-बगीचे को डुबाती हुई सब तहस-नहस करके चली जाती है। लग रहा था कि वही हड़पा या घोड़ा-बाढ़ आएगी।

मयूराक्षी के लिए यह बाढ़ नयी नहीं है। पहाड़ी नदियों में ऐसी बाढ़ कभी-कभी आ जाती है। जिस पहाड़ से नदी निकली होती है, उस पहाड़ पर जोरों की बारिश होने से वह पानी ढालवें से पूरे वेग के साथ नीचे की ओर दौड़ पड़ता है। मयूराक्षी में वह बाढ़ आ चुकी है।

पचीस-तीस साल पहले एक बार आयी थी शायद। उस बाढ़ की याद लोग

आज भी नहीं भूले हैं। जिन नये लोगों ने उस बाढ़ को देखा नहीं, वह उसके विक्रम के चिह्न को देखकर सिहर उठते हैं। देखुड़िया के नीचे मील-भर पूरब में मयूराक्षी ने मोड़ लिया है। उस मोड़ पर अभी भी बालू का एक पहाड़-सा धू-धू करता रहता है। एक बहुत बड़ा बगीचा है आम का—उस बाढ़ के बाद से उस बगीचे का नाम पड़ गया है 'गलागड़ा' बगीचा। बगीचे के पुराने पेड़ों की डाल-बहुल चोटी ही बालू के स्तूप पर जमी रह गयी है। बाढ़ ने पेड़ों को गले तक बालू में गाड़ दिया। उस बगीचे के बाद ही 'भैंसाडहर' की दूर तक फैली रेत, जिस पर आज भी घास नहीं उगती। 'भैंसाडहर' हरी-भरी भूमि पर ग्वालों का एक छोटा-सा गाँव था। मयूराक्षी के हरियाली-भरे चौंर की घास से वे ग्वाले भैंसें पोसा करते थे। उस बाढ़ में ग्वालों का वह गाँव गायब ही हो गया। मयूराक्षी की बाढ़ में, जब दोनों किनारे पानी से एकाकार हो जाते, जो भैंसें ग्वालों के बच्चों को अपनी पीठ पर लिये मजे में इस पार-उस पार आती-जाती थीं, उस बार की हड़पा-बाढ़ में वे भैंसें भी निरी बेबस-सी किसी तरह अपनी नाक-भर पानी से बाहर रखकर बह गयी थीं।

अबकी फिर क्या वही बाढ़ आ रही है? शिवकालीपुर के सामने बाढ़ का पानी बाँध पर ठहरा गया था। चींटियों ने पेड़ों पर शरण ली थीं। मुँह में लाखों-लाख अण्डे। चींटियाँ ही नहीं, लाखों की तादाद में किस्म-किस्म के कीड़े। बाँध पर उनके बसेरे थे। बाढ़ आने के पहले ही ये कैसे समझ लेते हैं! पानी बरसने को होता है तो ये नीची जगहों से कहीं ऊँचाई पर चले जाते हैं। वैसे ही बाढ़ आने के पहले भी ये समझ जाते हैं और ऊपर चढ़ जाते हैं। आम तौर से बाँध के ऊपर शरण लेते हैं। अबकी ये पेड़ों पर चढ़े जा रहे हैं। एक अचरज यह भी है कि जब चींटियाँ अण्डे लिये ऊपर उठती हैं, तो चींटियों की दूसरी जमात उनपर हमला करती है—अण्डे छीन लेती है। इस बार वैसी लड़ाई तक नहीं हुई। एक रास्ते से आते हुए देबू ने वैसी दो ही झड़पें देखीं। यहाँ जिन्होंने हमला किया वे पेड़ों पर रहते हैं—पेड़ पर रहनेवाले चींटे। जो नीचे से ऊपर जा रही थीं, वे मानो बेहद बेबस-सी। बाढ़ से बहते हुए छप्परों पर आदमी और साँप जैसे निर्जीव-से पड़े रहते हैं, उनकी भी वैसी ही हालत है।

बाँध की हालत भी अच्छी न थी। जमाने से किसी ने देखा नहीं। असंख्य छेदों से बाँध में पानी घुस रहा था, चूहों ने गढ़े खोद दिये हैं। इन गढ़ों को बन्द करने का उपाय नहीं है। चूहे बड़े वाहियात होते हैं। अनाज के दुश्मन, घर के शत्रु—उनसे दुनिया का कोई उपकार नहीं होता। बाँध में अन्दर-ही-अन्दर सुरंगें काटकर शायद उसे पोला कर दिया है। बाँध बहुत चौड़ा है और सरपतों की जड़ से मिट्टी के सहारे बँधा होने से मामूली बाढ़ से उनका कुछ नहीं बिगड़ता। लेकिन पगले बहाव में जैसी एक गरज जगी है वह अगर उसके मन का भ्रम न हो—तो मयूराक्षी के पार से सोयी हुई राक्षसी जाग पड़ेगी। इस बार घोड़ाबाढ़ ही आएगी। और उस बाढ़ में यह पुराना बाँध, जिसकी मरम्मत नहीं की गयी है—नहीं टिक सकेगा।

आसमान में फिर मेघ घिर आये।

हवा चल रही थी। फुहियाँ बरसने लगीं। हवा के वेग में फुहियाँ कुहरे-सी उड़ती दिखाई देने लगीं। यह बदली सहज ही नहीं छँटने की, ऐसा लगा! दुर्भाग्य है—सिर्फ उन सबों का दुर्भाग्य। एड़ी-चोटी के पसीने से खड़ा किया, छाती के लहू से सींचा हुआ धान सड़ जाएगा, बस्ती बह जाएगी, घर-द्वार खण्डहरों में बदल जाएँगे, तमाम एक हाहाकार मच जाएगा। लोगों के पाप का प्रायश्चित्त—उसे एक बात याद आ गयी—लोग कहते हैं, पहले के लोग पुण्यात्मा थे। लेकिन उस समय भी तो ऐसी हड़पा-बाढ़ आती थी! इसी तरह से अनाज सड़ता था, घर-द्वार धराशायी होते थे! लोग हाहाकार करते थे!...सोचते-सोचते महाग्राम की सरहद पार करके वह देखुड़िया की सीमा में पहुँच गया।

बाँध पर दो आदमी खड़े थे। सिर पर छाता नहीं। सारा बदन भीगा हुआ। एक के हाथ में लाठी-जैसी कोई चीज, दूसरे के हाथ में जाने क्या—ठीक से अन्दाज नहीं लगाया जा सका। कुहासा-सी बारिश ने उनकी साफ पहचान को धुँधला कर रखा था। देबू कुछ आगे बढ़ा तो पहचान में आया। एक तो तिनकौड़ी था। और दूसरा राम भल्ला। तिनकौड़ी के हाथ में बरछा था, राम के हाथ में पलुई। वे दोनों मछली की ताक में थे।

देबू ने करीब जाकर कहा, "मछली मारने को निकले हैं?"

तिनकौड़ी नदी की तरफ बड़े ध्यान से देखता हुआ खड़ा था। नजर घुमाये बिना ही बोला, "हाँ, निकला था। मगर नदी के पास पहुँचा, तो लगातार गों-गां की आवाज सुनाई पड़ी। नदी गरज रही है।"

राम ने कहा, "एक-एक करके मैंने दो लाठियाँ गाड़ीं—दोनों डूब गयीं—वह देखिए। दूसरी पर भी बाढ़ चढ़ गयी। लच्छन अच्छे नहीं हैं गुरुजी!"

देबू ने कहा, "मैं भी वही सोच रहा हूँ। गरज मैंने भी सुनी। सोच रहा था, शायद मेरा भ्रम हो।"

"उँहूँ! भ्रम नहीं। तुमने ठीक ही सुना है।"

"बाँध की हालत देखी है? चूहों ने अन्दर-ही-अन्दर चलनी बना दिया है।"

राम ने कहा, "उससे कुछ नहीं बिगड़ेगा। असल में डर है आपके कुसुमपुर के पास। कंकना के पास बाँध फट गया है।"

"फट गया है?"

"एकबारगी इस पार-उस पार। वह सेंमल का पेड़ बाबुओं ने काट लिया है! तब से फटा है। वह पहाड़-सा पेड़ बाँध के ऊपर ही गिरा था न। तिस पर अब उसकी जड़ें सड़ गयीं। लोगों ने जलाने के लिए उन जड़ों को निकाल लिया। वहीं पर डर है। उस जगह की मरम्मत नहीं की गयी तो उस मिट्टी को मयूराक्षी भूरे-जैसी चाट जाएगी!"

देवू ने पूछा, "चलिएगा तिनू चाचा?"

तिनू तुरत तैयार हो गया। अब तक मानो वह बल नहीं पा रहा था। लोग उसे हड़बड़िया कहते हैं। हो-हो करना स्वभाव है उसका। रामा ने भी वही कहा है। उनमें पहले ही बात हो चुकी है आपस में। तिनकौड़ी उसी वक्त चलने को तैयार हो गया था, लेकिन रामा ने कहा—"चलोगे तो सही! मुझे कह रहे हो, चलो, चलता हूँ। मगर चल के करोगे क्या—यह तो सुनूँ? कोई आएगा भी बाँध बाँधने?"

"नहीं आएँगे?"

"तुम्हारी बात पर भला क्यों आने लगे! उससे तो अच्छा है कि लोगों को ख़बर कर दो। सब अपना-अपना घर सँभालेंगे, मचान बाँधेंगे। चुपचाप बैठे रहो। चलो, बल्कि हम अपना घर सँभालें। मचान बाँध लें। भगवान करे, रातोंरात बाढ़ आए और सब सालों को बहा ले जाए!"

तिनकौड़ी को इस बात पर एतराज नहीं। खुश होकर बोला, "तूने बेजा नहीं कहा रामा, ठीक ही कहा है वही हो तो इन सूअर के बच्चों के लिए ठीक हो। सूअर के बच्चे हैं सब! पेट पालने के लिए फिर सब सालों ने जाकर उसी छिरू पाल के घूरे में मुँह लगाया।"

देवू ने तार्कीद की—"चलिए चाचा, देर हो रही है।"

देखुड़िया की सीमा के बाद महाग्राम, उसके बाद शिवकालीपुर, उसके बाद कुसुमपुर। कुसुमपुर के बाद कंकना की सीमा से जो मिलने की जगह है, वहीं पर बाँध में दरार पड़ गयी है। बड़ी-सी। पहले यहाँ पर सेमल का एक विशाल पेड़ था। जिन दिनों देबू स्कूल में पढ़ता था, उसे इस पेड़ को देखते ही याद आ जाता था—'अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः।' पेड़ पर अनगिनती जंगली तोते रहते थे। देवू की उम्र तो कम थी, तिनकौड़ी और राम तक ने बचपन में उस पेड़ से तोते के बच्चे उतारे थे।

सेमल के तख्ते बड़े हलके होते हैं और तख़्तों को खूब ही पतला चीरने से भी नहीं फटते। इसलिए पालकी बनाने के लिए सेमल के तख्ते ही ज्यादा काम के होते हैं। कंकना के बाबुओं के जमींदारी बहुत है—सुदूर गँवई गाँवों में भी। बीसवीं सदी के उनतीस साल गुजर गये, अभी भी सभी गाँवों तक बैलगाड़ी जाने लायक भी रास्ता नहीं है बल्कि पहले रास्ते थे, कच्चे रास्ते—खेतों से होकर गाड़ी जाने की लीक। बरसात में काँदो हो जाता और जाड़ों में गाड़ी के पहियों, बैलों के खुरों से चूर होकर धूल उड़ा करती। उसे गो-पथ कहते ही थे। उसी से होकर खेतों से धान घर लाया जाता था। एक से दूसरे गाँव को जाया जाता था। उसकी देख-रेख पंचायत करती थी। लेकिन अधिकांश में जमींदारों ने गोचर परती जमीन के साथ-साथ गो-पथ का भी बन्दोबस्त कर दिया है। जमीन के लोभी किसानों ने भी अपने अगल-बगल के गो-पथों को हड़प लिया है। अब यूनियन बोर्ड को पक्के रास्तों की धुन है, इधर

ध्यान देने की उसे फुरसत भी नहीं। लिहाजा मोटर-बग्घी के इस जमाने में भी जमींदार को पालकी की जरूरत रह गयी है। पालकी बनाने के लिए उस सेमल के पेड़ को काटा गया था।

एक युग के सम्बन्ध को तोड़कर जब वह महीरुह माटी पर गिरा, तो उसी की बत्तीस नाड़ियों के खिंचाव से बाँध का कुछ हिस्सा फटकर बैठ गया। तब से बाँध वहाँ फटा पड़ा है। ऊपर दरार है, नीचे दुरुस्त है। बाढ़ साधारणतया ऊपर को नहीं उठती। इसीलिए उस पर किसी का ध्यान नहीं गया। इस बार बाढ़ हू-हू करके ऊपर को बढ़ रही है। बाँध की उस दरार को देखकर देबू, तिनकौड़ी और राम ने परस्पर एक-दूसरे की ओर निहारा। तीनों की आँखों में था एक शंका-भरा मौन प्रश्न।

तिनकौड़ी ने कहा, "यह तो दो-तीन जने के बूते की बात नहीं है भैया!"

राम ने हँसकर कहा, "बाढ़ इस कदर बढ़ रही है कि जब तक लोगों को बुलाओगे, तब तक विसर्जन होनेवाली काली मैया-जैसा बाँध कतरा जाएगा!"

तिनकौड़ी गाली दे उठा—"हरामजादा, हँसने में शर्म नहीं आती?"

राम को बेहद कौतुक हुआ। वह हो-हो करके हँस उठा। घर कहने को उसे एक झोंपड़ा है, और धन के नाम पर कुछ थाली-बरतन, टिन का एक पिटारा, कुछ कथरियाँ, एक हुक्का और कुछ लाठी-भाले। इस प्रौढ़ावस्था में भी वह भीम-सा बलवान् है, और तैरने में मगर। न तो उसे कोई खतरा है, न ही गाँव के गृहस्थों पर कोई ममता। ये लोग उससे डरते हैं, नफरत करते हैं, सताने में मदद पहुँचाते हैं—बी.एल. केस में गवाही देते हैं। इसलिए उनकी बेहद दुर्दशा हो तो भी वह मुड़कर उन्हें नहीं देखता। उन लोगों की दुर्गति से राम को अपार खुशी होती। वह हँसते-हँसते बेहाल हो गया।

देबू दरारें पड़े बाँध की ओर देखकर सोच रहा था।

बेशक बाढ़ से पंचग्राम बह जाएगा। उसके अन्तर की आँखों में आफत के चपेट में आये इलाके की तसवीर तैर गयी, राक्षसी मयूराक्षी युग-युग से पंचग्राम की शस्य-सम्पदा, घर-द्वार बहा ले जाती है। परन्तु उस युग में लोगों की हालत और थी। मनुष्य के बदन में असुर का बल था। खेतिहरों के हाथ में आठ सेर वजन की कुदाली होती थी। गाँव में एकता थी। मयूराक्षी बाँध को तोड़कर सब बहा ले जाती थी। बलवान् गाँववाले फिर से बाँध बना लेते थे, खेतों में भर आये बालू को उठा फेंकते थे। उस समय के बैल भी उन मनुष्य-जैसे ही मजबूत होते थे—उन्हीं बैलों से फिर खेत जोतते, दूसरे ही साल बेहिसाब फसल होती। फिर से नये घर बन जाते, सुन्दर गाँव नये ढंग से सज जाते—बुढ़िया मालकिनी के मर जाने पर नयी गृहिणी की सजायी हुई गिरस्ती-सी शकल हो जाती थी गाँव की। लेकिन यह समय ही और है। भूखे किसानों के बदन में कूवत नहीं, खाने की कमी से बैल भी दुबले

और कमजोर हो गये हैं। अब अगर खेतों में बालू भर जाए, तो वह बालू खेतों में ही पड़ा रह जाएगा। खेत बलुआहे हो जाएँगे। टूटे घर मरम्मत करके झोंपड़े होंगे; मरने के दिन की ओर ताकते हुए लोग किसी तरह से उसमें सिर छिपा सकेंगे, बस इतना ही! इस मुसीबत की घड़ी में पुकारने पर लोग जाएँगे जरूर लेकिन मुसीबत के आ पहुँचने पर बाँध बाँधने के लिए कोई नहीं आएगा। मनुष्यों की एकता की डण्ठल को किसने कहाँ काट दिया है, अब बाँधा नहीं जा सकता। फिर भी इस समय—इस समय पुकारने से लोग आ भी सकते हैं।

उसने कहा, "तिनू चाचा, लोगों को जुटाना ही होगा। आप देखुड़िया और महाग्राम जाइए। मैं कुसुमपुर और शिवकालीपुर जाता हूँ।"

तिनू ने कहा, "रामा, तू अपना नगाड़ा लाकर पीट।"

राम ने कहा, "नाहक ही नगाड़ा पिटवाकर मेरा हाथ दुखवाओगे मण्डल—कोई नहीं आएगा।"

तिनू बोला, "हूँः, तू सब जानता है! भल्ला लोग भी नहीं आएंगे।"

राम ने कहा, "देखो, अपने गाँव के भल्लों की छोड़ो, वे आएँगे। मगर और तो एक भी आदमी नहीं आएगा—देख लेना।"

सत्रह

राम का कहा ही सच निकला। सम्पन्न किसान कोई नहीं आया। आये केवल गरीब बेचारे। दो ही एक जने और आये, जिनमें से मुख्य था इरशाद।

देबू दौड़ता हुआ कुसुमपुर गया था। इरशाद अपने घर से बाहर निकल रहा था। कल अमावस्या! रमजान के महीने का आखिरी दिन। चाँद देखने के बाद ईद मुबारक। इदुलफितर। रोजा के उपवास-व्रत का उद्यापन। इस पर्व में नये कपड़े चाहिए, सुगन्ध चाहिए, मिठाई चाहिए। इरशाद जंक्शन शहर जाने के लिए निकला था। तब तक दौड़ता हुआ देबू पहुँचा। बाजार का काम स्थगित करके इरशाद देबू के साथ निकल पड़ा। गाँव के घरों में कोई खुशहाल-खेतिहर लगभग नहीं ही था। सभी शहर गये थे। सब उसी बाँध होकर गये, बाढ़ का हाल देखकर उन्हें फिक्र भी हुई—लेकिन त्योहार सिर पर था, उस उत्सव की कल्पना में वे उस चिन्ता को टाल गये। इरशाद घर-घर गया। गरीब-गुरबे घर पर थे। पैसे न होने से वे बाजार नहीं गये थे। वे तुरत अपने-अपने घर से निकल पड़े।

उधर बाँध पर बैठा राम नगाड़ा पीट रहा था।

शिवकालीपुर से सतीश, पातू और उसके संगी-साथी निकले। किसान कोई नहीं आया। शायद चण्डीमण्डप में श्रीहरि की कोई बैठक थी।

देखुड़िया के लोग पहले ही आ पहुँचे थे। कई-एक आदमी महाग्राम से आये। कुल मिलकर पचासेक आदमी। इधर बाढ़ का पानी इसी बीच लगभग एक हाथ बढ़ गया। बाँध की उस दरार के एक गढ़े से बाढ़ का पानी रेंगता हुआ बैहार में घुसने लगा था। पचास आदमी बाँध पर कलेजे के बल पड़ गये।

सुरंग-जैसे गढ़े का हाल बड़ा टेढ़ा होता है। बाँध के उस पार उसका मुँह कहाँ है, उसे खोज निकाले बिना किसी प्रकार से वह बन्द नहीं होने का। पचास जोड़ी आँखें नदी की बाढ़ को ताकने लगीं, पानी बाँध पर कहाँ चक्कर खा रहा है घुरनपाक की तरह।

घुरनपाक वैसा एक नहीं था, कोई दस-बारह। मतलब कि दस-बारह मुँह। इधर भी पता चला कि पानी एक गढ़े से नहीं, कम-से-कम दस जगह से निकल रहा है। दरार की मिट्टी गल-गलकर गिर रही है और दरार चौड़ी होती जा रही है। बाँध की मिट्टी नीचे की ओर सरकती जा रही है।

तिनकौड़ी ने कहा, "खड़े रहने से कुछ न होगा।"

जगन बोला, "तब जुट जाओ काम में।"

हरेन उत्तेजना में आज हिन्दी बोल रहा था—"जल्दी! जल्दी!" देबू खुद दरार के पास जाकर खड़ा हुआ। बोला, "इरशाद भाई, कुछेक खूँटे की जरूरत है। पेड़ की डाल काट डालो! सतीश, मिट्टी लाओ तुम।"

बैहार के साफ पानी पर से पाटल रंग का एक अजगर मानो भूखा मुंह फैलाये दौड़ता हुआ बढ़ रहा हो।

बाँध के गड्ढे को काटकर वहाँ पर डाल के खूँटे गाड़ दिये। ताड़ के डमखोले बिछाकर उसी पर टोकरियों से झपाझप माटी डाली जा रही थी। पचास आदमी में से महज दो—जगन और सतीश ही खड़े थे। अड़तालीस आदमी की मेहनत में जरा भी कोताही नहीं थी। कुछ लोग मिट्टी काटकर टोकरियाँ भर रहे थे, कुछ लोग ढो रहे थे। देबू , इरशाद, तिनकौड़ी तथा और भी कई जने उन खूँटों को सँभाले खड़े थे, जो बाढ़ के स्रोत से टेढ़े हो रहे थे।

—"मिट्टी! मिट्टी!"

ताड़ के पत्तों से घेरे खूँटों को बाढ़ के वेग से रोके रहने में हाथ की शिराएँ और पेशियाँ जमती-सी जा रही थीं—लगता था, अब फट जाएँगी। दाँत पर दाँत धरे देबू चिल्ला पड़ा—"मिट्टी! मिट्टी"

राम भल्ला का चेहरा भयंकर हो उठा—वैसा ही भयंकर, जैसा कि अँधेरी रात में हाथ में घातक हथियार लिये हो जाता है। उसने तिनकौड़ी से कहा, "जरा पकड़ो!"

और वह झट पीछे पलट गया। और पैरों को टेक तथा पीठ का सहारा देकर घेरे को ठेले रहा, "हाँ गिराओ अब मिट्टी।"

इरशाद हाँफ रहा था। महीने-भर से वह नियमित रोजा रखता आ रहा था। आज भी उपवास किये हुए था। देबू ने कहा, "इरशाद भाई, तुम छोड़ दो। ऊपर जाकर थोड़ी देर बैठ जाओ।"

इरशाद हँसा, लेकिन उनको छोड़ा नहीं। झप्-झप् मिट्टी गिर रही थी। कभी आसमान में मेघ आते थे, कभी धूप निकल आती थी।

सूरज एक बार बदली से निकला कि उसकी ओर देखकर इरशाद ने कहा, "थोड़ी देर थाम लो। मैं अभी आता हूँ। नमाज का वक्त बीत रहा है।"

वेला झुक आयी थी। आदमी के आकार से डेढ़ गुनी लम्बी छाया पड़ रही थी। नमाज का वक्त बीता जा रहा था। देबू ने राम भल्ला की तरह घेरे में पीठ लगाकर कहा, "तुम जाओ।"

जी-जान से लोग टोकरी-टोकरी मिट्टी डालते जा रहे थे। मिट्टी क्या, काँदो! टोकरियों की फाँक से गलकर गिरते हुए काँदो से उनके सिर से कमर तक लिपट रहे थे। काँदो-जैसी मिट्टी से वैसा काम भी नहीं बन रहा था। बहाव में वह तुरत गल जाती थी। और उधर मयूराक्षी फूल-फूलकर हाँफ रही थी। बाढ़ का पानी बढ़ ही रहा था, तेज हवा से उस बहाव में सिहरन-सी जाग रही थी।

नदी की गरज साफ सुनाई दे रही थी। तीखी धारा की कल-कल को डुबाती हुई एक गरज-सी उठ रही थी।

रोलर-सा घूमता-घुमड़ता पानी। पानी पर फेन का जमाव। फेन पर कचरों का ढेर, सिर्फ कचरा ही नहीं, फूस, छोटी-मोटी सूखी डाल भी बहती जा रही थी।

हरेन ने अचानक उँगली के इशारे के साथ-साथ कहा, "डॉक्टर लुक, वह छप्पर!"--छोटे घर का छप्पर बहता जा रहा था : "देयर, देयर—वह, वहाँ! वह... एक और। बाइ गॉड, एक बिग पेड़ का कुन्दा।"

छप्पर, पेड़ का कटा कुन्दा, बाँस, फूस—सब बहता जा रहा था। ऊपर की तरफ का कोई गाँव बह गया।

जगन डॉक्टर घबराकर चीख उठा--"गया! गया!"

तिनकौड़ी अब तक पत्थर की मूरत बना चुपचाप अपनी सारी ताकत लगाकर घेरे को संभाले हुए था। उसने देबू का हाथ पकड़कर कहा, "बगल से खिसक जाओ। नहीं रुकेगा, छोड़ दो। रामा छोड़ दे। बेकार है कोशिश। देबू, हट जाओ। नहीं तो पानी के वेग से मिट्टी में गड़ जाओगे। लो—गया-गया!"

गया! बाढ़ के भीषण दबाव से वह बाँध की दरार बढ़ी और वह हिस्सा जोरों की आवाज के साथ बैहार में गिर पड़ा। राम बगल होकर खड़ा हो गया। तिनकौड़ी पानी में बुड़की लगाकर तैरता हुआ बह गया और देबू पानी में खो गया!

जगन चिल्ला उठा—"देबू ! देबू !"

राम भल्ला देखते-ही-देखते पानी में कूद पड़ा।

इरशाद का नमाज पढ़ना खत्म ही हुआ था। वह कुछ क्षण अचम्भे में खड़ा रहा और चीख पड़ा—"देबू भाई!"

मजूर हाय-हाय करने लगे। सतीश बाउरी, पातू बजनिया भी उस बहाव में कूद पड़े।

पीछे बाँध की दरार चौड़ी होने लगी। गेरुए रंग का पानी हड़-हड़ करता हुआ और ज्यादा घुसने लगा। बैहार के साफ पानी पर कँदोर पानी वैशाखी बादल की तरह फूल-फूलकर चारों तरफ फैलने लगा। देखते-ही-देखते पानी घुटने-भर से कमर-भर हो गया। अब इरशाद भी पानी में कूद पड़ा।

बाढ़ का मूल स्रोत पूरब की ओर दौड़ रहा था। मयूराक्षी की धारा के समान्तराल। बगल से दबाव डालता हुआ वह गाँवों की तरफ बढ़ने लगा। बैहार के साफ पानी को चीरता हुआ मूल स्रोत बड़े वेग से कुसुमपुर की सीमा पार करके शिवकालीपुर, शिवकालीपुर से महाग्राम, महाग्राम के बाद देखुड़िया, देखुड़िया की सीमा पार करके पंचग्राम की बैहार के उस पार रेतीला भैंसाडहर—गलागाड़े बगीचे के बगल में मयूराक्षी में जाकर गिरेगा।

राम उस स्रोत के साथ ही साथ जा रहा था। रह-रहकर सिर उठाता और फिर गोता मार देता। तिनकौड़ी भी चला जा रहा था। वह जब-जब पानी से सिर निकाल रहा था, चीख पड़ता था—"हा भगवान!"

बाढ़ के पानी में मिट्टी के अन्दर के कीट-पतंग बहते जा रहे थे। एक गेहुँअन तैरता हुआ तिनकौड़ी के बगल से निकल गया। तिनकौड़ी ने तुरत डुबकी मारी। बाढ़ में खेतों के गड्ढे डूब गये थे। साँप कोई आश्रय खोज रहा था। कोई पेड़ या कोई ऊँची जगह। आदमी भी मिल जाए तो जकड़ लेगा इस समय। जकड़कर बचना चाहेगा। कीट-पतंगों की तो सीमा नहीं। डाल-पत्तों पर लाखों-लाख चींटियाँ। मुंह में अण्डे! अण्डे की माया अभी भी छोड़ नहीं सकी हैं।

कुसुमपुर में शोर मच गया—गाँव के किनारे तक बाढ़ पहुँच गयी। शिवकालीपुर में भी बाढ़ घुस गयी। बाउरी और मोची-टोले में तो पानी पहले से ही जमा था—बाढ़ का पानी पहुँच जाने से लगभग कमर-भर पानी हो गया। सतीश और पातू के सिवा सभी अपने टोले में लौट गये। इसी बीच बहुतों के घर में पानी घुस गया। बरतन-भाँड़े सिर पर रखे, गाय-बकरों को डोरी में बाँधकर औरतें पुरुषों के ही इन्तजार में खड़ी थीं। उनके जाते ही 'चलो-चलो' की धूम पड़ गयी।

गाँव भी है और सदा से नदी भी है। बाढ़ भी जाती है, गाँव भी बहता है। लेकिन सबसे पहले यह हरिजनों की बस्ती ही बहती है। घर-द्वार डूब जाते हैं। बाशिन्दे ऐसे ही भागते हैं। यह भी तय रहता कि वहाँ जाकर पनाह लेंगे। उनके

वाप-दादे भी वहीं पनाह लेते थे। गाँव के उत्तर की ओर का मैदान ऊँचा है। बस मैदान में पुराने समय का एक भठा हुआ तालाब है। उसी उत्तर-पश्चिम कोने में अर्जुन का एक बहुत बड़ा पेड़ है। उसी पेड़ के नीचे ऐसे में आश्रय लेते थे; आज भी वे वहीं चले।

दुर्गा की माँ बड़ी देर से चीख-पुकार कर रही थी। दुर्गा सवेरे से देबू के यहाँ थी। देबू जो निकला सो लौटा नहीं। बड़ी देर तक उसकी राह देखकर वह अपने घर लौटी। लौटकर कोठे पर चली गयी। तब से उतरी ही नहीं। अपनी छाती के नीचे तकिया रखकर रँगीली औंधी लेटी बाढ़ देख रही थी। और गीत की एक कड़ी गुनगुना रही थी—कलंकिनी राधा के लिए कन्हैया को धूल में लोटना पड़ा!

दुर्गा की माँ ने बार-बार पुकारा—"हे दुर्गा, बाढ़ आ रही है। घर-द्वार सँभाल। चल, बल्कि हम लोग तालाब के बाँध पर चलें।"

दुर्गा ने कई बार तो कोई जवाब ही नहीं दिया। फिर एक बार बोली—"भैया को लौट आने दो।" उसके बाद वह फिर गाने लगी।

> मैं इस पार खड़ी, उस पार है और कोई
> बीच में बहती नदी, पार कौन करे, यही पड़ी
> कहाँ हो कन्हैया?...

इतने में बेहार से लौटे हुए लोगों का शोर-गुल सुनाई पड़ा। वह समझ गयी, गुरुजी के जोश दिलाये नाहक ही ये लोग बाढ़ से लड़कर आखिर हार-पारकर लौट आये। वह जरा हंसी : "हुंः, गुरुजी को खा-पीकर और तो कोई काम नहीं, बाढ़ रोकने गया था!—" दुर्गा की माँ नीचे से चिल्लायी—"दुर्गा—ओ दुरगा!"

"तालाब के बांध पर जा न तू। हरामजादी मरने के डर से ही मर गयी।"

"अरी, नहीं!"

"तो फिर ऐसे चिल्ला क्यों रही है?"

इस बार दुर्गा की मां ने रोकर कहा—"अरी, जमाई गुरुजी वह गया री।"

दुर्गा दौड़कर नीचे आयी—"कौन? कौन बह गया?"

"जमाई गुरुजी! बाढ़ के चपेट में आ गया।"

दुर्गा बाहर निकल गयी। राह में लबालब पानी। उस पानी को पार करके कहाँ जाएगी वह और जाकर भी क्या करेगी? अपने मन को उसने दिलासा दिया—देबू कुछ कमजोर मर्द नहीं है। तैरना भी आता है उसे! लेकिन बाँध तोड़नेवाली बाढ़ का बहाव—उफ्, बड़ी भयंकर होती है वह! बरगद का पेड़ सामने आ जाए तो उखाड़ फेंकती है जड़-समेत—जमीन की छाती को चीरकर गड्ढा बना देती है।—सोचते-सोचते ही वह राह के पानी में उतर पड़ी। कमर से भी ज्यादा पानी था। मुहल्ला इसी बीच खाली हो गया था। केवल मुर्गियाँ घर के चलियों में बैठी थीं। बतखें बाढ़ के पानी में तैर रही थीं। एक टूटी दीवार पर कुछ बकरियाँ खड़ी थीं। हठात् उसने देखा कि

एक आदमी पानी ठेलते हुए एक घर से निकलकर दूसरे घर में घुसा। इस मुसीबत में भी वह हँसी। रतना बाउरी! कम्बख्त छिछोरा चोर है। वह खोजता फिर रहा था कि छूटा हुआ कहीं कुछ मिल जाए। वह आगे बढ़ी।

"एह' गुरुजी बह गया!"

जाते-जाते वह पलटकर खड़ी हो गयी। पुकारकर कहा, "भैया जब तक नहीं आ जाता, तू ऊपर चढ़कर बैठ जा माँ! भाभी तू भी ऊपर जा। चीज-बतुस ऊपर उठा ले।"

माँ ने कहा, "आखिर घर के नीचे दबकर मरूँ?"

"नया घर है। इतनी जल्दी नहीं गिरेगा।"

"तू कहाँ चली?"

"मैं आती हूँ।"

वह और न रुकी। चली गयी।

दिन की रोशनी ढलती जा रही थी। दुर्गा पानी चीरती हुई आगे बढ़ी। अपना टोला पार करके वह भले लोगों के टोले में पहुँची। वहाँ पानी बहुत कम था। कमर-भर पानी घुटने-भर हो गया। लेकिन इतना कम ही नहीं रहेगा पानी। बाढ़ बढ़ती ही जा रही थी। इस टोले के घर भी कुछ ऊँची सतह पर हैं, रास्ते से सीढ़ी चढ़ कर घर में जाना होता है। घर के ओसारे आदि कुछ और ऊँचे हैं। सीढ़ियाँ डूब गयी थीं—अब अँगना में पानी पहुँच जाएगा। गाँव में बहुत जोर से शोरगुल मचा था। बहू-बेटे, गाय-गोरू, सगे-सामान के लिए भले गृहस्थ लोग परेशान हो रहे थे। उन बाउरी-डोम-मोचियों की तरह एक बोरे में सारी गिरस्ती भरकर निकल पड़ने का कोई उपाय नहीं था। इतनी ही देर में चण्डीमण्डप स्त्रियों से भर चुका था। बाढ़ के समय वे सदा चण्डीमण्डप में ही आश्रय लेती हैं।

पहले चण्डीमण्डप माटी का बना था। कमरे-वमरे भी अच्छे नहीं थे। अबकी इस विपत्ति में भी आराम है—चण्डीमण्डप पक्के का बन गया है। साफ-सुथरा। कमरे भी अच्छे। फिर भी सबको चण्डीमण्डप में घुसने का भरोसा नहीं हो रहा था। जाने दोष क्या कहे—यही सोचकर आगा-पीछा कर रहे थे सभी। लेकिन श्रीहरि ने खुद ही सबसे कहा। बदन पर चादर रखकर वह सभी परिवारों की सुख-सुविधा की तदबीर करता फिर रहा था। मीठे शब्दों में सबसे कहता चल रहा था—"घबराने की क्या बात है? चण्डीमण्डप है, मेरा घर है। मैं सब खोल देता हूँ।"

श्रीहरि की इन बातों में कोई छल-कपट नहीं था। गाँव के इतने-इतने लोग जब एक अचानक आयी विपदा के शिकार हैं, तो वह निश्छल दया में ही गल गया। न केवल चण्डीमण्डप वह अपना घर-द्वार भी खोल देने को तैयार हो गया। ये घर-द्वार श्रीहरि के बाप के समय बने थे और उसी समय घरों को बाढ़ से बचने योग्य बनाया गया था। काफी मिट्टी डालकर सतह ऊँची की गयी थी। उस पर भी

छाती भर ऊँचाई तक नींव थी घर की। इधर श्रीहरि ने दीवारों में अन्दर से ईंटों की चुनाई करा दी थी। ओसारा, फर्श, यहाँ तक कि आँगन को भी पक्का कर दिया है। उसके नये बैठके की नींव तो इकतल्ले-जैसी ऊँची है। फिलहाल श्रीहरि ने एक गोशाला बनवायी है—बहुत बड़ी गोशाला। उस पर भी कोठा बनवा दिया है। उसमें भी बहुतों के लिए जगह हो जाएगी। उसका भी फर्श वगैरह पक्का है। उसे इतनी-इतनी जगह होते गाँववालों को कष्ट होगा?

श्रीहरि की माँ—बहरलाल श्रीहरि की गम्भीरता और आभिजात्य देखकर पहले की तरह गाली-गलौज या चीख-पुकार करने की हिम्मत नहीं करती, खुद भी वह मानो बहुत बदल गयी है—इज्जत-आबरू के ज्ञान से वह भी बहुत-कुछ सचेत-सी हो गयी है। तो भी श्रीहरि के ऐसे संकल्प का उसने विरोध किया—"नहीं बेटे, यह नहीं होने का। मैं तुम्हें ऐसा नहीं करने दूँगी। करोगे तो मैं सिर फोड़ूँगी अपना।"

श्रीहरि को उस समय वाद-विवाद की फुरसत नहीं थी। इतने-इतने लोगों के आश्रय की व्यवस्था करनी थी। मन-ही-मन वह एक बात और सोच रहा था—लोगों को खिलाने-पिलाने की बात। जिन लोगों को आश्रय देगा—उनके खाने-पीने का इन्तजाम न करना क्या उस जैसे आदमी के लिए शोभन होगा? माँ के कहने का उसने बहुत संक्षेप में जवाब दिया—"छिः माँ!"

"छिः क्यों बेटे। काहे की छिः? तुम्हें तबाह करने के लिए जिन लोगों ने आन्दोलन किया है, उन्हें बचाने को तुम्हें क्या पड़ी है? तुम्हें कैसी गरज?"

श्रीहरि हँसा। कोई जवाब नहीं दिया उसने। माँ तो बेटे की वह हँसी देखकर ही चुप हो गयी। हालाँकि वह सन्तुष्ट होकर ही चुप रही। बेटे के गौरव से उसने अपने को गौरवान्वित समझा। जमींदार की माँ होने से उसमें भी बहुत परिवर्तन आ गया है। इतने-इतने लोगों के स्याह-सफेद के वे मालिक हैं, यह क्या कम गौरव की बात है? लोग उसे राजा की माँ कहते हैं। उसने मन में साफ-साफ यह अनुभव किया कि ईश्वर की दया और आशीर्वाद उसके बेटे-पोते, उसकी सारी सम्पन्न घर-गिरस्ती पर पड़ा है तथा उसे और भी समृद्ध कर रहा है। श्रीहरि भी ठीक यही सोचता था!

मयूराक्षी सदा से है, सदा रहेगी। उसमें बाढ़ भी आएगी। लोगों की आफत में उसके बेटे-पोते मुसीबतजदों को इसी प्रकार से पनाह दिया करेंगे। सब लोग आ-आकर कहेंगे—'सौभाग्य कहिए कि घोष बाबू चण्डीमण्डप बनवा गये थे!' उस समय भी उसका नाम होगा।

इसीलिए श्रीहरि खुद चण्डीमण्डप में पहुँचा। मीठे शब्दों में सबका स्वागत किया, सबको भरोसा दिया : "घबराने की क्या बात है, चण्डीमण्डप है। मेरा घर है। मैं सब खोल देता हूँ।"

परिवार सहित खेतिहर गृहस्थ आ-आकर आश्रय लेने लगे। श्रीहरि का गुण गाने लगे। एक ने कहा—"गाँव में सौभाग्यशाली पुरुष का पैदा होना गाँव का ही

बड़-भाग है। यही मण्डप गर्द के मारे किच-किच रहा करता था और अब देखो राजमहल हो जैसे!"

श्रीहरि ने हँसकर कहा, "तुम लोग मेरे कुछ बिराने तो हो नहीं! सभी जातिगोत हो। अपने हो। यह सब-कुछ तो तुम्हीं लोगों का है!"

दुर्गा रास्ते पर पानी में ही खड़ी थी। इस टोले को पार करने के बाद फिर बैहार। पानी इस बीच घुटने के ऊपर तक बढ़ गया। बैहार में तैरने लायक पानी था। और इधर वेला ढलती आ रही थी। गुरुजी की खबर लेकर अभी तक कोई नहीं लौटा। तो क्या गुरुजी बह ही गया? उसकी आँखों में बरबस आँसू छलक आये। उसका जमाई गुरुजी—पाँच-पाँच गाँव के लोगों ने जिसे धन्य-धन्य कहा, दूसरों के लिए जिसने अपने सोने के संसार को खाक हो जाने दिया; गरीब-दुखियों का अपना, अनाथों का सहारा—जिसने न्याय के सिवा कभी अन्याय नहीं किया, वह गुरुजी बह गया? और ये लोग उसका नाम तक नहीं ले रहे हैं?

वह पानी में आगे बढ़ी। गाँव के उस छोर पर रास्ते पर खड़ी रहेगी। विशाल बैहार। फिर भी तो यह नजर आएगा कि कोई आ रहा है या नहीं। जमाई गुरुजी वहा भी होगा, तो पूरब की ही ओर वहा होगा। आखिर लोग-बाग तो लौटेंगे! उन्हें दूर से पुकारकर कुछ भी पहले तो खबर मिलगी! दुर्गा बस्ती के पूर्वी छोर पर जाकर खड़ी हो गयी। अकेले में वह फफक-फफककर रोयी; मन-ही-मन बार-बार लुहार-बहू को गाली देने लगी। वह दईमारी इस तरह से गुरुजी के चेहरे पर कालिख पोतकर, उसकी हेठी कराकर चली नहीं गयी होती, तो गुरुजी इस तरह से बैहार की तरफ नहीं जाता। उसे तो गुरुजी का हाव-भाव मालूम है। वह उसके हर कदम का मतलब समझ सकती है।

गाँव से कोई आदमी तेजी से पानी काटता हुआ आ रहा था। दुर्गा ने मुँह फेरकर देखा। कुसुमपुर का रहम शेख़। उसी ने पूछा—

"कौन, दुर्गा है क्या?"

"हाँ!"

"अरी, देबू चाचा की कोई खबर मिली?"—शेख के स्वर में बड़ी घबराहट थी। इत्तिफाक से देबू से उसका दुराव हो गया है। रहम अभी जमींदार का आदमी है। अभी भी जमींदार की ही तरफ से काम करता है। दौलत से भी खूब पटरी बैठती है। देबू की चर्चा आने पर उसके खिलाफ ही बोलता है। लेकिन देबू की विपत्ति का समाचार सुनकर वह स्थिर नहीं रह सका। भागा-भागा आ रहा है। वह घर में नहीं था, वरना बाँध टूटने की सुनते ही देबू वगैरह के साथ ही आता। ताड़ बेचने के जो पैसे उसके पास थे, उन्हीं पैसों को लेकर वह सवेरे ही जंक्शन बाजार गया था। रेल का पुल पार करते वक्त ही बाढ़ देखकर उसे थोड़ा खौफ हुआ था। बाँध टूटने की खबर उसे बाजार में ही मिली। दौड़ते-दौड़ते जब वह लौटा, तब तक पानी

उसके भी गाँव में घुस चुका था। उसके घर के औरत-बच्चों ने दौलत के यहाँ पनाह ली थी। गाँव के लगभग सभी मातबरों का परिवार वहीं था। मामूली खेतिहर लोगों ने मसजिद में शरण ली। और जो मेहनत-मशक्कत करके रोजी-रोटी कमाते हैं, ऐसे लोग बस्ती के पच्छिमवाले टीले पर चले गये थे। वहीं पर, इस गाँव के पुरनिये महापुरुष गुलमुहम्मद साहब की कब्र के पास। कब्र पर मौलसिरी का एक घना-सा पेड़ है, उसी पेड़ की छाया में। उन्हें खबर देने गया कि रहम को देबू के बारे में मालूम हुआ। सुनकर वह कैसा तो हो गया!

एक ही क्षण में उसे ऐसा लगा, मानो देबू के सामने कितना अपराध किया है! उस समय जोश में, लोगों की जबानी देबू के घूस लेने की बात पर विश्वास करने के बावजूद रहम के मन के कोने में एक सन्देह था—देबू को उसने बहुत छोटी उम्र से जो देखा था—उसे उसने प्यार किया था। उस सन्देह की बुनियाद वही जानना, वही प्यार ही था। लेकिन उस सन्देह को भी अब तक सिर उठाने का मौका नहीं मिला। दंगावाले मामले की सुलह में जमींदार ने उसे इज्जत दी। वही इज्जत पत्थर की नाईं अब तक उस सन्देह को दबाये रही। आज यह जो खबर मिली, इसने उस पत्थर को ढकेलकर हटा दिया और वह सन्देह प्रबल होकर जाग पड़ा। देबू—जो इस तरह से अपनी जान कुर्बान कर सकता है—वह वैसा शैतान हरगिज नहीं हो सकता। उसने जमींदार से हरगिज रुपया नहीं लिया है। ऐसा आदमी ही नहीं है वह। वह बाबुओं की चालबाजी थी। वह अगर बाबुओं का आदमी होता, तो क्या बढ़ोतरी के इस इतने बड़े मामले में कभी भी, किसी वक्त भी वहाँ दिखाई नहीं पड़ता? वह अगर इतना ही स्वार्थी है तो इस हिम्मत के साथ बाँध की दरार पर जाकर क्यों खड़ा हो गया? सो रहम वहीं से भागा-भागा आया।

रहम के पूछते ही दुर्गा की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगा। इतनी देर के बाद एक आदमी ने उसके जमाई गुरुजी की सुध तो ली!

रहम ने बहुत ही परेशान होकर पूछा—"दुर्गा?"

दुर्गा बोल नहीं सकी। गरदन हिलाकर ही उसने जताया, "नहीं, कोइ खबर नहीं मिली।"

और रहम उसी दम पानी में उतर पड़ा। दुर्गा ने कहा, "रुकिए शेखजी, मैं भी चलूंगी।"

रहम ने कहा, "चल! मगर तैरने-भर पानी है। इतना तैर सकेगी?"

कपड़े को कसकर दुर्गा बढ़ चली।

रहम बोला, "ठहर! वह देख—महाग्राम से कुछ लोग निकले हैं।"

बाढ़ के पानी से डूबी हुई जमीन को बायें छोड़ते हुए महाग्राम के पास-पास कुछ लोग आ रहे थे। गाँव के किनारे बेहार की अपेक्षा कम पानी है। बीच बेहार में तो तैराव-भर पानी है। ऊपर से धारा भी।

रहम ने वहीं से हाँक लगा दी। लेकिन उसकी भी आवाज बार-बार रुँध आती थी। दिन-भर रोजे का उपवास। गला सूख रहा था। अपने गले की कमजोरी को समझकर रहम ने कहा, "दुर्गा, तू भी पुकार।"

दुर्गा भी रहम के साथ-साथ जी-जान से पुकारने लगी। कहीं वे पातू, सतीश, जगन डॉक्टर ही हों! कहीं वे आकर यह कहें कि देबू का पता नहीं चला।

वही लोग थे। हॉक का जवाब आया। रहम ने कहा, "हां, वही लोग हैं। इरशाद-जैसा गला लग रहा है।"

अबकी उसने नाम लेकर आवाज दी—"इ-र-शा-द!"

जवाब मिला—"हाँ।"

थोड़ी ही देर में वे लोग आ पहुंचे। इरशाद, सतीश पातू, हरेन और देखुड़िया का एक भल्ला।

रहम ने पूछा—"इरशाद, गुरुजी? देबू चाचा मिला?"

लम्बा निःश्वास छोड़कर इरशाद ने कहा, "मिला। पानी के वेग से गिर पड़ने के कारण माथे में चोट आयी है। होश नहीं है।"

दुर्गा ने पूछा—"कहाँ, इरशाद मियाँ, गुरुजी कहाँ हैं?"

"देखुड़िया में। उसी के आस-पास राम भल्ला ने उसे खींचकर निकाला है।"

"बच तो जाएगा न?"

"जगन डॉक्टर है। दो भल्ला कंकना गये हैं, अगर वहां का डॉक्टर आ जाए! छिदाम भल्ला जगन डॉक्टर का बेग ले जाने के लिए आया है।"

दुर्गा ने कहा, "मैं भी जाऊँगी।"

चण्डीमण्डप लोगों से भर गया था। वे लोग शोरगुल मचा रहे थे। अपने-अपने सरो-सामान सहेजकर सब रात बिताने योग्य जगह के लिए लड़-झगड़ भी रहे थे। बच्चों ने चिल्ल-पों मचानी शुरू कर दी थी। किसी को किसी की तरफ ताकने की फुरसत नहीं थी। ये लोग जैसे ही चण्डीमण्डप के पास पहुँचे कि कुछ लोग दौड़कर इनके पास आये।

"घोपाल, गुरुजी का क्या समाचार है? गुरुजी, हमारा गुरुजी?"

"सतीश, ऐ सतीश?"

"पातू, बता न?"

चण्डीमण्डप में स्त्रियों ने सब छोड़-छाड़कर इधर ध्यान दिया। चुपचाप प्रतीक्षा करने लगीं।

हरेन ने गरम होकर कहा, "ह्वाट इज दैट टु यू? इससे तुम्हें क्या मतलब? सेलफिश पीपुल सब!"

इरशाद ने कहा, "बड़ी-बड़ी कठिनाई के बाद गुरुजी मिला है। मगर हालत खतरनाक है।"

चण्डीमण्डप के सारे लोग मानो पत्थर हो गये। मौन को भंग करके एक नारी कण्ठ गूँजा। एक प्रौढ़ा ने काली मैया के चरणों में माथा पीट-पीटकर बड़े ही आर्त-स्वर में कहा—"उसे बचा दो मैया, उसे बचा दो! देवू को तुम बचा दो। वह सोने-जैसा लड़का है। हे माँ काली! तुम मालिक हो, उसे बचा दो! "

उन ठक्-से खड़े लोगों में प्रार्थना की गूँज उठी—"माँ-माँ! बचा लो माँ!"

औरतें रह-रहकर आँखें पोंछ रही थीं।

साँझ हो गयी। जगन डॉक्टर का दवावाला बैग लेकर वह भल्ला जवान जा रहा था, उसके पीछे-पीछे जा रही थी दुर्गा। वह भी मन-ही-मन कह रही थी—"बचा दो माँ, बचा दो। जमाई गुरुजी को बचा दो। अबकी पूजा में मैं दायें-बायें जोड़ा बकरा चढ़ाऊँगी!"

उसकी आँखों में रह-रहकर आँसू आ जाता था। अपने मन को दिलासा दे रही थी, आशा से कलेजे को मजबूत करना चाहती थी कि—गुरुजी जरूर बच जाएगा! इतने-इतने लोग, सारे गांव के ही लोग जिसके लिए देवी के चरणों में सिर पीट रहे हैं, उसका बुरा हो सकता है भला? कुछ ही देर पहले, जब लोग घोष की खुशामदें कर रहे थे, तो उनके कलेजे के अन्दर से ऐसा निःश्वास कहाँ निकल रहा था। आंखों से आंसू कहाँ निकला। वह तो आड़े आकर बड़े के आश्रय में सिर छिपाकर—हयाशर्म को पीकर उसकी झूठी खुशामदें कर रहे थे। वह बात उनके प्राणों की बात नहीं। हरगिज नहीं। उनके प्राणों की बात यही है। आंखों से टपाटप आँसू क्या यों ही निकल सकता है? मनुष्य के लीचड़पन से ही दुर्गा के जीवन का घनिष्ठ परिचय है। उसने मनुष्य को कभी अच्छा नहीं समझा। आज उसे लगा—आदमी अच्छे होते हैं, आदमी जरूर अच्छे होते हैं! बड़ी मुसीबत में, बड़े अभावों में पड़कर ही वे बुरे होते हैं, उस पर भी उनके हृदय में भलापन रहता है। स्वार्थ के लिए भी किसी से लड़ने पर जी दुखता है। पाप करने से उसे शर्म होती है।

आदमी अच्छे होते हैं। देवू गुरुजी को लोग भूले नहीं हैं। गुरुजी बच जाएगा!...

"कौन हो भई, कौन जा रहे हो?"—पीछे से भारी गले से किसी ने पूछा। भल्ला जवान ने मुँह उधर करके कहा, "हम लोग हैं?"

"तुम लोग कौन?"

अबकी वह छोरा चिढ़ गया। बोला, "तुम कौन हो?"

डाँट के स्वर में पुकार आयी—"ठहर जा।"

"नहीं।"

"ऐं।"

छोकरा हँस पड़ा, मगर उसने चलना नहीं बन्द किया। दुर्गा शंकित हो उठी। पीछे के उस आदमी ने कहा, "अबे साला!"

छोकरा इस बार पलटकर खड़ा हो गया। बोला, "जरा इधर को आ जाओ जीजाजी, देखूँ जरा तुम्हें!"

"कौन है तू?"

"तू कौन है?"

"मैं कालू-शेख हूँ। घोष बाबू का चपरासी। ठहर जा तू।"

"मैं हूँ जीवन भल्ला! तुम्हारे घोष बाबू का मैं कुछ धारता नहीं।"

"तुम्हारे साथ वह औरत कौन है? औरत?"

दुर्गा ने तीखे स्वर में कहा, "मैं दुरगा हूँ।"

"दुरगा?"

"हाँ।"

कालू जरा चुप रहा। फिर बोला, "अच्छा जाओ।"

कालू पद्म की खोज में निकला था। वह घोष के घर में नहीं थी। बाढ़ की हलचल जो हुई, वह उसी समय कहाँ चल दी, किसी को पता नहीं। शाम को श्रीहरि को इसका पता चला और तब वह मारे गुस्से के पागल हो उठा। उसकी खोज के लिए उसने कालू को, भूपाल को भेजा।

पद्म भाग गयी। पिछली रात, एक अस्वस्थ मानसिक स्थिति में प्यासा पागल जैसे कीच में कूद पड़ता है, वह वैसे ही श्रीहरि के दरवाजे के सामने गयी और उसी के घर में चली गयी। आज सुबह से उसके पछतावे की हद न थी। उसके जीवन की कामना महज खून-मांस के शरीर की ही कामना न थी, पेट के लिए अन्न की कामना ही न थी, वह थी उसके मन की फूली हुई कामना, जो पुत्र की परिणति में अपने को सार्थक करना चाहती है। अन्न वह सिर्फ अपना पेट भरने के लिए नहीं चाहती, अन्नपूर्णा होकर उसे परोसना चाहती है अपने पुत्र के पत्तल पर; पुरुष के पत्तल पर! उसकी कामना बहुत थी। श्रीहरि के यहाँ रहने का मतलब समझ कर वह सवेरे से छटपटा उठी थी। इधर साँझ हुई और उधर बाढ़ से विपन्न लोगों की भीड़ हुई। उसी मौके से वह निकलकर चली गयी! गाँव के दक्खिन पानी, पूरब में पानी, पच्छिम में भी वही। सो वह उत्तर की वैहार से अँधेरे में छिपकर अपनी अजानी मंजिल की ओर चल पड़ी—वह चाहे जहाँ हो।

उस भल्ला छोकरे के पीछे दुर्गा चली जा रही थी।

वैहार में बाढ़ का पानी और बढ़ गया था। तीसरे पहर जहाँ कमर-भर पानी था, वहाँ अब छाती-भर हो आया। अब शिवकालीपुर के खेतिहरों के भी घर में पानी

घुस रहा था। वे दोनों महाग्राम होकर चले। महाग्राम के रास्ते में भी घुटने-भर से ज्यादा पानी था। बाढ़ का यह हाल कि लगता था—घण्टे-दो घण्टे में खेतिहरों के घर में भी पानी घुस जाएगा। महाग्राम एक समय में समृद्धिशाली गाँव था। खण्डहरों की वहाँ भरमार है। माटी के अम्बार-से लगे हैं। उन्हीं ऊँचे स्तूपों पर पिछले दिनों के लोगों के लगाये पेड़ों की छाया में लोगों ने आश्रय लिया था। न्यायरत्न के चण्डीमण्डप और घर में जितने लोग आ सके, उन्होंने उन सबको शरण दी।

देखुड़िया में एक तिनकौड़ी के ही घर का भरोसा था। उसका घर बहुत ऊँचा है। ज्यादातर लोगों ने वहीं शरण ली थी। बहुत-से लोग दूसरे गाँव में भाग गये। भल्ला लोगों में बहुतेरे अभी तक बाँध पर ही बैठे थे। बैठे थे कि कोई लकड़ी बहकर जाती हो, तो पकड़ें। राम तारिणी आदि ने रात में भी वहीं रहने का तय किया था। कितने बड़े-बड़ों का घर गिरेगा। लकड़ी का सन्दूक भी बहकर आ सकता है। बाबू लोग भी बहकर आ सकते हैं—जिनके कुरते में सोने के बटन भी होंगे, उँगली में हीरे की अंगूठी होगी, जेब में होगी नोटों की गड्डी। कमर की गंजिया में मुहरें भरी होंगी। लेकिन बारी-बारी से एक-एक आदमी तिनकौड़ी के यहाँ रहेगा। गुरुजी बीमार है—जाने कब क्या जरूरत पड़े!

जगन डॉक्टर तिनकौड़ी के ओसारे पर बैठा था।

जीवन ने ले जाकर दवा का बैग वहां पर रखा।

दुर्गा ने अकुलाकर पूछा—"डॉक्टर बाबू, जमाई-गुरुजी कैसे हैं?"

डॉक्टर ने बेग खोला। सुई का सरंजाम निकालते हुए कहा, "बक-बक मत कर, बैठ!"

ऐन इसी वक्त अन्दर से देबू की आवाज सुनाई पड़ी—"कौन? कौन?"

दोनों अन्दर की ओर लपके। देबू ने आँखें खोली थीं। उसके सिरहाने बैठी तिनकौड़ी की बेटी सोना सेवा कर रही थी। सुर्ख आँखों की विभोर निगाहों से उसकी ओर ताककर—हठात् दोनों हाथों से सोना का झोंटा पकड़कर उसके चेहरे को अपने सामने खींचकर देबू कह रहा था—"कौन?—कौन?"

सोना के बाल मानो उखड़े जा रहे थे। मगर बड़ा धीरज था उसे! वह चुपचाप देबू के हाथ छुड़ाने की कोशिश कर रही थी।

देबू ने फिर पूछा, "बिलू? बिलू? कब आयी तुम? बिलू!"

जगन ने देबू का हाथ दबाकर सोना का बाल छुड़ा दिया।

दुर्गा ने पुकारा—"जमाई-गुरुजी!"

जगन ने धीमे से कहा, "मत पुकार! विकार में बक रहा है।"

अठारह

मयूराक्षी की सर्वग्राही बाढ़ की भीषणता से इलाका तबाह हो गया। पिछले पचीस वर्षों में ऐसी काल बाढ़—यह घोड़ा-बाढ़ नहीं आयी। पंचग्राम की उस सुदूर प्रसारी वैहार में शस्य का कोई चिह्न ही न रहा लगभग। कुछ पौधे तो बाढ़ बहा ले गयी। जो बचे सो सड़ गये। बदबू उठ रही थी। बैहार का पानी तक हरा हो गया था। बाँध के किनारे जिससे होकर बाढ़ का बहाव बहा था, किसानों ने जमीन को जोत-जोतकर, खाद डालकर चन्दन-सा मुलायम और सन्नानवती माता की छाती-सा खाद्यरस से उर्वर बनाया था—उन खेतों में अनउपजाऊ चिट-चिट माटी जाग उठी थी; कुछ खेतों में बालू की ढेरी जम गयी थी!

गाँव के किनारे-किनारे, जहाँ पानी का बहाव नहीं था, जो खेत थे, वे बाद में डूबे और सबसे पहले ही बाढ़ से निकल आये—उन खेतों में थोड़ा बहुत शस्य रह गया था। मगर उसकी भी हालत शोचनीय थी। उनकी ठीक वही दशा थी, जो दशा अकाल और महामारी से किसी प्रकार से बचे हुए लोगों की होती है। अब बस्ती के घरों के गिर जाने, वैठ जाने की बारी थी। कुछ घर तो बाढ़ के समय ही बेठ गये थे, लेकिन बाढ़ के बाद ज्यादा बैठ रहे थे। बाढ़ में घर इसी तरह से ज्यादा टूटते हैं। घर के दीवारों की नींव पानी में भीगकर नर्म हो जाती है। इसके बाद जब पानी निकल जाता है और धूप उग आती है, तो फूलकर दीवारें धँस जाती हैं। लगभग पचास फीसदी घर गिर गये। फूस-पुआल बह गये, गोचर भूमि की घास पानी में डूबी रही, इसीलिए सड़ गयी। गाय-गोरू, भेंड़-बकरी का अनाहार आरम्भ हो गया। मौका मिलते ही वे उत्तर की ओर भागे। मयूराक्षी पूरब-पच्छिम बहती है। किनारे के सभी गाँवों की उत्तरी बैहार ऊँची है। यह बैहार सदा उपेक्षित पड़ी रहती है। वही बैहार पानी में नहीं डूबी। इस बार चूँकि काफी वारिश हुई, इसलिए वहाँ फसल काफी अच्छी थी। गाय-गोरू, भेंड़-बकरियाँ दौड़कर उसी वैहार में जाना चाहतीं। अबकी उत्तरी बैहार ही लोगों का भरोसा था, मगर उधर खेत बहुत कम था।

श्रीहरि घोप अपने बैठक में बैठकर तम्बाखू पी रहा था। अपने कारिन्दा दास जी से वह यही सब बातें कर रहा था। दास शिकायत करके कह रहा था—"लगान की बढ़ोतरी का आपसी निबटारा बड़ा बेजा हुआ, बहुत बेजा।"

उसका कहना था—"आपसी निबटारा न करके अगर मुकदमा करने के संकल्प पर ही अडिग रहा जाता तो बिला मेहनत एकतरफा डिगरी होती। यानी रैयतों की ओर से बिना किसी झमेले के ही डिगरी हो जाती। वैसी हालत में अगर अदालत की तरफ से आपसी भेंट-घाट कराया जाता, तो भी बड़ा लाभ होता। अदालत के बिना आपसी निबटारे से रुपये में दो आने से ज्यादा की बढ़ोतरी नहीं होती। होने

से अदालत उसे नहीं मानती। लेकिन मुकदमे से या नालिश करके आपसी समझौता कर लेने मे बढ़ांतरी ज्यादा हो सकती है। ऐसा कि रुपये में आठ आने तक की नजीर है।"

श्रीहरि को बात याद आयी! लेकिन कंकना के बाबू ने जो सब गुड़-गोबर कर दिया! किस बुरी माइत में रहम से हंगामा हुआ।

दास ने कहा, "रियाया के संकल्प का घड़ा बाढ़ के पानी में बह जाता। फिर तो पेट की गरज से आपके ही दरवाजे आकर वे पड़ जाते। कलवाले ने उस समय बैहार का धान देखकर रुपया देना चाहा था। लेकिन इस बाढ़ के बाद वह किसी को धेला भी नहीं देता।"

श्रीहरि जरा हँसा—तृप्ति की हँसी। वह जानता है। उसके ऊँची बुनियाद के घर को बाढ़ कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकी। धान की मोरियाँ ज्यों की त्यों खड़ी उसके अँगने की शोभा बढ़ा रही थीं। उसने कल्पना की कि पाँच-सात गाँवों के लोग उसके खलिहान के उस फाटक पर भिखमंगे-जैसे हाथ जोड़कर खड़े हैं।—धान चाहिए। उनके बाल-बच्चे भूखे हैं, बैहार में एक भी बीज के धान का पौधा नहीं।

भादों के अभी भी पन्द्रह दिन बाकी बचे थे, अभी भी रात-दिन करारी मेहनत की जाए तो थोड़ी-बहुत जमीन में खेती हो सकती है। बीज छींटने से कुछ ही दिन में बीज का पौधा उग आएगा। उन बीजों से जितना बने, खेती कर सके, तो फिर भी कुछ मिल-मिला जाएगा। कम-से-कम चार में से एक में भी धान की बाली होगी। श्रीहरि को अपनी जमीन बहुत है। अमरकुण्डा बैहार के जो सबसे अच्छे खेत हैं, लगभग सब उसी के हैं। उन खेतों में जहाँ तक बन सके खेती करने की तैयारी उसने शुरू भी कर दी थी। जो भी हो जाए लाभ ही है। आषाढ़ का रोपा नाम का है। गरज कि आषाढ़ में खेती करने योग्य पानी कम ही होता है, रोपा भी कम होता है। हो भी तो शस्य से ज्यादा पत्ता ही होता है। खेती सावन में अच्छी होती है। उपज भी होती है और आम तौर से यहाँ खेती के लायक बारिश सावन में ही होती है। सावन में न होकर भादों में बारिश हो तो वह वृष्टि अनावृष्टि की होती है। उस समय फसल होने की बात भी नहीं उठती। पौधे को फैलने का मौका नहीं मिलता। लिहाजा जितने पौधे रोपे जाते हैं, गिनकर उतनी ही बालियाँ होती हैं। और कहावत है, क्वार में बोना किस लिए?...यह भादों का महीना है। अभी भी पन्द्रह दिन हैं भादों के। अभी धान रोपा जा सके तो पौधा पीछे एक-एक बाली मिलेगी। खेतिहरों के रोपने के लिए, खाने के लिए धान चाहिए।

श्रीहरि बेरहम नहीं होगा। वह लोगों को धान देगा। अपनी मोरियाँ खाली करके देगा। कल्पना की आँखों उसने देखा कि लोग धान कर्ज लेने के कागज पर सही बनाकर दे रहे हैं। और मुक्तकण्ठ से उसकी जय-जयकार करके लोगों ने और भी एक कागज लिख दिया अदेखा—उसके एहसान का कागज। एकाएक उसने इन

सब में अमोघ विचार का विधान देखा। गम्भीर होकर बोल उठा—'हे हरि! तुम्हीं सत्य हो!'

राजा ईश्वर का प्रतिभू है। सभी देवता के अंश से राजा का जन्म होता है। धरती भगवान की है। भगवान का प्रतिभू राजा पृथ्वी का शासन करता है। पृथ्वी की भूमि उसकी है—सारी सम्पदा उसकी है। राजा का प्रतिभू है जमींदार। राजा ने ही जमींदार को राजा का अधिकार दिया है—तुम्हीं लगान वसूल करना, शासन करना। राजा के ही नियम से प्रजा भूमि के लिए कर देती है, राजा के बराबर ही राजा के प्रतिभू को मानती है। रैयतों ने उस विधान को नहीं माना था। इसीलिए उन्हें बाढ़ की ऐसी भयंकर सजा उनसे मिली। अब उसके इम्तहान की बारी है। विपत्ति में प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। राजा के प्रतिभू के नाते वह कर्तव्य उस पर आ पड़ा है। वह अगर उस कर्तव्य का पालन न करे तो वे रिहाई नहीं देंगे। श्रीहरि उन सबको धान देगा। अपने कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करेगा। दोनों हाथ जोड़कर उसने भगवान को प्रणाम किया। उन्होंने उसके भण्डार को भरा-पूरा बनवाया है। देने को बाकी ही क्या रखा है? जगह-जमीन, बगीचा, तालाब, घर—अन्त-अन्त में जिस चीज की उसे कल्पना तक नहीं थी, वह जमींदारी भी उन्होंने उसे दी है। गुहाल-भरे गाय-गोरू, खलिहान-भरी मोरियाँ, लोहे के सन्दूकों-भरा रुपया, सोना, नोट—दोनों हाथों से दिया है। उसके जीवन की सारी ही कामनाएँ उन्होंने पूरी की हैं—पाप की कामना तक पूरी करके अजीब ढंग से उस पाप के प्रभाव से उसे बचाया है। अनिरुद्ध से जब उसका विरोध हुआ, तभी से यह ख्वाहिश थी कि अनिरुद्ध की जोत-जमीन छीनकर उसे देश-निकाला दे और उसकी बीवी को नौकरानी रखे। अनिरुद्ध की जमीन उसे मिल गयी है—अनिरुद्ध घर छोड़कर चला भी गया। अनिरुद्ध की बीवी भी अपनी इच्छा से ही उसके वहाँ आ पहुँची थी। खैर, वह भाग गयी सो अच्छा ही हुआ। भगवान ने उसे बचा लिया है।

अब देबू घोष को सबक सिखाना होगा। और भी कई लोग हैं—जगन डॉक्टर, हरेन घोषाल, तिनकौड़ी पाल, सतीश बाउरी, पातू बजनिया, दुर्गा मोचिन। तिनकौड़ी का तो इन्तजाम हो गया है। सतीश, पातू—ये तो चींटी हैं। लेकिन हाँ, दुर्गा को खासी सजा देनी पड़ेगी। जगन, हरेन को तो वह कुछ लगाता ही नहीं। उन दोनों की तो कोई वकत ही नहीं। देबू के लिए भी पहले से ही इन्तजाम किया गया है। इस बाढ़ के आ जाने से ही नहीं हो पाया। अब एक दिन पंचायत बुला लेनी होगी। देबू अब बहुत-कुछ ठीक हो चुका है, और भी थोड़ा हो ले। देखुड़िया से अपने घर आ जाए। उसे चण्डीमण्डप में बुलवाकर पंचग्राम के लोगों के सामने उसका विचार होगा।

कालू शेख आया। सलाम बजाकर उसने एक चिट्ठी, दो पैकेट और एक अखबार दे दिया। आजकल डाक लेने के लिए रोज उसका आदमी कंकना में डाकघर

जाया करता है। यह उसने कंकना के बाबुओं से सीखा है। अखबार में पढ़कर चिट्ठी लिख करके वह सूचीपत्र मँगवाया करता है। चिट्ठी-पत्तर से कम ही वास्ता है। वकील मुख्तार के यहाँ से मुकदमों की खबर आती है। और आता है एक दैनिक समाचारपत्र। चिट्ठी में एक मुकदमे की तारीख थी। चिट्ठी दासबाबू को देकर श्रीहरि अखबार खोलकर बैठ गया। अखबार की मोटे अक्षरोंवाली हेड लाइनों पर निगाह दौड़ाते हुए एकाएक खबर देखकर वह चौंका। मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—मयूराक्षी नदी में भयंकर बाढ़। साँस रोककर वह उस खबर को पढ़ गया।...

देबू भी अवाक् हो गया।

वह बहुत हद तक स्वस्थ हो चुका था, लेकिन कमजोरी अभी थी। कंकना के अस्पताल के डॉक्टर की चिकित्सा, जगन डॉक्टर के जतन और सोना की सेवा से वह स्वस्थ हो उठा। कल उसे पथ्य मिला। आज वह बिछौने पर ओठँगकर बैठा था। बैठकर अपनी बात सोच रहा था : जान से ही चला गया होता, तो ठीक था। अब नहीं रहा जाता। कमजोर और थके शरीर से लेटे-लेटे उसे लग रहा था कि धरती का स्वाद, गन्ध, वर्ण सब खत्म हो गया है। क्यों, उसका जीना आखिर किस लिए? जीने का खयाल होते ही उसे अपने घर का ध्यान हो आता। सूना, सन्नाटा पड़ा, धूलि से भरा घर?...कि तिनकौड़ी का बेटा गौर हाँफता हुआ आया—"गुरुजी!"

"गौर?" देबू को अचम्भा हुआ—बात क्या है गौर? स्कूल से लौट आये?

गौर जंक्शन के स्कूल में पढ़ता है। स्कूल की छुट्टी का यह समय नहीं था। एक अखबार देबू के सामने रखते हुए गौर ने कहा, "देखिए!"

"क्या है?"...देबू अखबार पर झुक गया। शीर्षक देखा—'मयूराक्षी में भयंकर बाढ़।' अखबार के किसी निजी संवाददाता ने लिखा था। बाढ़ की भीषणता का जिक्र करते हुए लिखा था—'शिवकालीपुर के तरुण समाजसेवी देवनाथ घोष ने बाढ़ के खतरे को रोकने की हर कोशिश की, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। बाँध बाँधने की चेष्टा करते हुए वे बाढ़ में बह गये। बड़ी-बड़ी मुश्किल से उनकी जान बची है।' इसके बाद इलाके के नुकसान का उल्लेख करते हुए लिखा था—'इलाके के लोग बे-घर-बार के हो गये हैं। सैकड़े साठ घर गिर गये। घर का अनाज और सारी सामग्रियाँ बह गयीं। उन्हें जीने का कोई सहारा नहीं रह गया। खड़ी फसल की जो उम्मीद थी, वह भी सड़-गल गयी। बहुतों के गाय-गोरू भी बह गये। यहीं अन्त नहीं, बाढ़ और अकाल की अभिन्न महामारी की भी आशंका है। उनके जीने के लिए तुरन्त खाद्य की जरूरत है, भविष्य के सहारे के लिए बीज-धान की आवश्यकता है। महामारी से बचने के लिए प्रतिषेधक की व्यवस्था जरूरी है। नहीं तो देश का यह हिस्सा मरघट में बदल जाएगा। मुसीबतजदा उन लोगों को बचाने की जिम्मेदारी

देशवासियों की है। उसी जिम्मेदारी के लिए देशवासियों से अपील है। वहाँ के लोगों की सहायता के लिए एक 'बाढ़-राहत समिति' कायम की गयी है, जिस समिति की अध्यक्षता का भार उस इलाके के एकनिष्ठ सेवक श्री देवनाथ घोष को सौंपा गया है। लोगों की यथासाध्य सहायता देवता के आशीर्वाद के समान ही स्वीकार की जाएगी।'

देबू अवाक् हो गया! माजरा क्या है! अखबार में यह सब किसने लिखा? समाजसेवी—एकनिष्ठ सेवक! देश के लाखों-लाख लोगों तक इस खबर की घोषणा किसने की?—अखबार को एक तरफ हटाकर खुली खिड़की से बाहर की ओर देखते हुए वह चिन्ता में डूब गया।

गौर ने अखबार लेकर वह खबर बहुतों को पढ़कर सुनायी। जिसने सुनी, वही अवाक् रह गया। देश के अखबार ने देबू की जय-जयकार की है, इससे लोग खुश हुए। श्रीहरि देबू को समाज से निकालने की कोशिश कर रहा है, मजबूर होकर लोगों को श्रीहरि की राय से ही राय मिलानी पड़ेगी। फिर भी लोगों को खुशी हुई।

उन्होंने बार-बार आपस में इस बात की ताईद की—"बात तो सही है। सही-सही ही लिखा है—इसमें जरा भी झूठ नहीं। हमारा देबू तो संन्यासी है—लोगों के दुःख से दुःखी, सुख से सुखी!"

तिनकौड़ी ने बिगड़कर बेरहमी से लोगों की लानत-मलामत की। कहा, "अरे दो मुँहे साँप, तुम लोग चुप रहो। कुत्ते की तरह जब जिसके पास गये, उसी के तलवे चाटे और पूँछ हिलायी! देबू की तारीफ करनेवाले तुम कौन होते हो? तुम लोग छिरू पाल के पास जाओ, और दल बनाकर देबू को समाज से पतित करो जाकर। जाओ, जाकर अपने छिरू से कहो कि अखबार ने देबू के लिए क्या लिखा है?"

तिनकौड़ी की गाली-गलौज लोगों ने चुपचाप सुनी—सिर नवाकर स्वीकारा। एक ने कहा, "मण्डलजी, पेट पापी है, क्या करूँ, कहो, तुम जो कह रहे हो, बिलकुल बजा है।"

"पेट मुझे नहीं है? मेरे बाल-बच्चे नहीं हैं?"

इस बात का कोई जवाब लोग नहीं दे पाये। तिनकौड़ी पापी पेट की परवाह नहीं करता, उसे वह जीत गया है—इसे वे लोग मानते हैं और इसके लिए उसकी तारीफ करते हैं। और फिर कभी-कभी तिनकौड़ी के इस तने रहने को वास्तविकता से अनजान होना बताकर उसकी निन्दा करके अपनी अक्षमता की लाज को ढँकते हैं, आत्मग्लानि से बचने की कोशिश करते हैं। बहुत बार सोचते भी हैं कि हम भी तिनकौड़ी की तरह पेट के लिए सिर नहीं झुकाएँगे। कोशिश भी बहुत करते हैं, परन्तु पेट-शत्रु के नागपाश का बन्धन ऐसा है कि उसके कठिन दबाव और जहरीले निःश्वास से जर्जर होकर सब तुरत बिखर जाता है। इसी से फिर हिम्मत नहीं होती।

बाप, दादा और उनके भी पुरखे इस कड़वे अनुभव से अपनी सन्तानों को

बार-बार होशियार कर गये हैं कि, "सिर पत्थर से सख्त नहीं होता—उसे ठोंकना मत।" पेट से बड़ा कुछ भी नहीं, भूख से बड़ी पीड़ा दूसरी नहीं। पेट के अन्न का खतरा हरगिज मत मोल लेना। ये बातें उनकी नसों में लहू के साथ बहती हैं। उनके पेट का अन्न तो श्रीहरि के ही यहाँ है—श्रीहरि की उपेक्षा वे कैसे करें? फिर भी कभी-कभी वे झगड़ना चाहते हैं? उनके कलेजे में कहीं और एक इच्छा छिपी है, एक अन्तरतम कामना—वह कामना कभी-कभी सिर उठाकर कहती है—"न, और नहीं। इससे तो मौत अच्छी है!"

इस बार विरोध-आन्दोलन के वक्त उनकी वह इच्छा एक बार जग पड़ी थी। वे खिलाफ में खड़े हो गये थे, पर तुरत टूट गये। जितनी देर तक वे खड़े रह सकते थे या जितनी देर तक खड़े रह सकने की बात थी—वे उससे भी कम समय में टूट बिखरे! जाने कैसे, कहाँ से शेखों के साथ दंगा होने की नौबत आ गयी, सदर से सरकारी फौज आ पहुँची। पुश्तों से जो भय उनमें संचित होता आया था, उस भय से वे घबरा उठे। ऊपर से श्रीहरि ने दानों का लोभ दिखा दिया। बस, वे टिक नहीं सके। टिककर भी क्या होता ? क्या कर लेते वे? इस बाढ़ के बाद श्रीहरि के सिवा उनके जीने का सहारा जो नहीं था! श्रीहरि की बातों पर स्याह को सफेद और सफेद को स्याह कहे बिना उपाय क्या है! कोई इस पेट-दुश्मन का जिम्मा ले, भरपेट खाने की फिक्र से बरी कर दे, फिर देखो वे क्या नहीं कर सकते हैं।

तिनकौड़ी की गालियों का अन्त नहीं हो रहा था; "डरपोक, गीदड़, लोभी, बैल, बेवकूफ, भेंड़ कहीं के, अपने पेट में छुरा मारो! मर जाओ! मर जाओ! निकम्मे साँप—जरा भी जहर नहीं! मर जाओ!"

देखुड़िया का ही रहनेवाला, तिनकौड़ी के एक जाति-भाई ने कहा, "मर जाएँ, तब तो अच्छा ही हो भाई तिनू! लेकिन मर जाएँ कहने से ही तो मरना नहीं होता! तुमने तेज की बात कही, जहर की बात! तेज या जहर क्या यों ही रहता है भाई! विषय नहीं रहने से विष भी नहीं रहता, तेज भी नहीं!"

तिनकौड़ी झुँझला उठा—"विषय! मेरे विषय है? क्या है, कितना है? विषय—रुपया—!"

उसने कहा, "हाँ-हाँ तिनू भैया विषय—रुपया। कभी मुझे भी तेज था, विष था। याद है, मैंने और तुमने कंकना के निताई बाबू को पीटा था? वह दँतैल रात को गोविन्द की बहन के यहाँ आया करता था? मैंने ही तुम्हें बुलवाया था। आगे-आगे मैं ही था। निताई पर वह मार पड़ी कि वह छह महीने तो भोगता रहा और आखिर मर ही गया—याद है? वैसा हमने गाँव की इज्जत के लिए किया था। उस समय तेज था, विष था। उस समय अपनी गिरस्ती जमी-जमायी थी। पिताजी के पचास बीघा खेत था। तीन हल चलते थे। घर में हम पाँच भाई थे—पाँच हलवाहे। उस समय तेज था, विष था। उसके बाद पाँचों भाई जुदा हुए। हिस्से में जमीन मिली दस बीघे। पाँच

बाल-बच्चे। क्या खुद खाएँ और क्या बाल-बच्चों के मुँह में दें? श्रीहरि के सामने हाथ न फैलाऊँ तो और क्या करूँ, कहो। इस पर तेज और विष रह सकता है?"

फिर जरा हँसकर बोला, "तुम कहोगे कि तुम्हें ही क्या था? था क्या नहीं, तुम्हीं कहो? और जमीन भी तुम्हारी हम लोगों से अच्छी थी। तुम्हारा तेज और विष मरा नहीं है? फिर भी तो तुम्हें तेज का सौदा बड़ा महँगा पड़ा। सब तो चला गया। नाराज न होना, सच ही कह रहा हूँ। वह पहलेवाला तेज क्या तुम्हीं में रह गया है?"

तिनकौड़ी शान्त रहा। बात बहुत बेजा नहीं कही। सच ही क्या पहलेवाला तेज उसे है? आजकल वह चिल्लाता है, तो लोग हँसते हैं। और वही था कि छिरू पहले चीख-शोर करता तो लोग उसे जवाब देते थे, उसके आमने-सामने डट जाते थे। आज छिरू श्रीहरि हो गया। उसके तेज के आगे लोग ऐसा काँपते हैं, जैसे आग के आगे फूस। फूस कच्ची रहे तो सूख जाती है, सूखी हो तो जल जाती है!

अबकी उस आदमी ने कहा, "तिनू भैया, सुना कि अखबार में छपा है--देबू के पास रुपये आएँगे--रुपये-कपड़े बँटेंगे।"

तिनकौड़ी ने इतना सब समझा नहीं था। वह इसी फख्र से उछल रहा था कि अखबार में श्रीहरि का नहीं--देबू का नाम छपा है। उछल रहा था कि वह जो बात सदा श्रीहरि से कहता है, वही अखबार में भी छपी है। वह कहता है कि तू बड़ा है तो अपने घर का है, इसके लिए तेरी खातिर किस बात की? खातिर उसी की करूँगा, जो खातिर के लायक है। उसने सोना की पाठ्य-पुस्तक की कुछ पंक्तियाँ भी याद कर रखी हैं--'जो अपने को बड़ा कहता है, वह बड़ा नहीं है। बड़ा वही होता है, जिसे लोग बड़ा कहते हैं। दुनिया में बड़ा होना बड़ा कठिन है। जिसमें बड़े गुण होते हैं, दुनिया में वही बड़ा होता है।' धनी श्रीहरि को छोड़कर अखबार ने गुणी देबू की तारीफ की है--इसी खुशी में वह कूद रहा था। वह बात सुनकर सहसा उसे याद आया, ठीक तो। अखबार में लिखा है, जो-जो भी सहायता करेंगे, उसे देवता के आशीर्वाद की तरह स्वीकार किया जाएगा।

तिनकौड़ी ने कहा, "आएगा नहीं? जरूर आएगा। नहीं तो अखबार में लिखा क्यों?" तिनकौड़ी को इस पर जरा भी शुबहा नहीं रहा। इस बात के प्रचार के लिए वह उसी वक्त भल्ला लोगों के टोले में जा पहुँचा : "रामा, अरे ओ रामा! तारनी, गोविन्दा, छदाम...कहाँ है रे?"

देबू तब भी सोच ही रहा था : यह किया किसने? बिशू भाई की करतूत तो नहीं? लेकिन वह तो बाहर है, वहाँ से यह सब जान कैसे पाएगा। न्यायरत्नजी ने तो उसे नहीं लिख भेजा। हो सकता है! लेकिन बिशू भाई ने यह किया क्या? यह भार उससे ढोया नहीं जाएगा। अब वह छुटकारा चाहता है! उसकी जिन्दगी अब हाँफ उठी है। थकावट, ऊब, कटुता से उसका जी भर गया है। दो-तीन दिन और निकल जाए, तिनकौड़ी चाचा के यहाँ से वह चला जाएगा! तिनकौड़ी का ऋण इस

जीवन में चुकाया नहीं जा सकेगा! राम भल्ला ने बाढ़ के प्रखर स्रोत से उसे खींचकर निकाला है। कुसुमपुर के उस छोर से वह तीन-तीन गाँवों को पार करके देखुड़िया तक बहता आया था। उसके बाद तिनकौड़ी उसे अपने घर ले आया। लाकर मिल-जुलकर जो सेवाशुश्रूषा की, उसकी तुलना नहीं! तिनकौड़ी की स्त्री और सोना ने माँ-बहन-जैसी सेवा की। गौर ने भी सहोदर भाई-जैसा जतन किया। तिनकौड़ी ने अपने चाचा-जैसा किया। मगर यह भी उससे बरदाश्त नहीं हो रहा था। किसी तरह अपने दोनों पाँवों पर खड़ा हो सके, तो चला जाए। इस हार्दिक स्नेह का सेवा-जतन उसे बेड़ी-सा लग रहा था। यह भी अच्छा नहीं लग रहा था। खुली खिड़की से बाहर दिखाई पड़ रहे थे लोगों के टूटे घर, बाढ़ के पानी से गले हुए सागों के खेत, रास्ते के दोनों ओर काँदो-कीचड़ सनी झाड़ी-झुरमुटें, पेड़-पौधे, गाँव की पगडण्डी—जहाँ गाँव से बाहर हो बैहार में जा मिली है, वहाँ से पंचग्राम की बैहार का पानी-काँदो-भरा एक हिस्सा, सूनी-सपाट बैहार। लेकिन उन सबसे उसकी चिन्ता में कोई चंचलता नहीं आ रही थी। उससे अब नहीं बनता। नहीं बनेगा।

"देबू भैया!" गौर आया। उसके हाथ में वही अखबार था।

देबू ने उसकी ओर नजर घुमाकर कहा, "कहो।"

"यह क्यों लिखा है देबू भैया? यह जो—?"

"क्या?"

"यह, यहाँ पर।"—अखबार को उसके बिछावन पर रखकर गौर बोला, "यह!"

"ऐसा सख्त क्या है कि समझ नहीं सके? क्या है, देखूँ!"

गौर अप्रतिभ हो गया। बोला, "मैं नहीं! मैंने भी तो कहा, यह ऐसा कठिन क्या है? सोना कह रही है?"

"कौन-सी जगह?"

"यह जो है 'इन सारी मुसीबतजदा नर-नारियों की रक्षा की जिम्मेदारी देशवासियों पर है। उस जिम्मेदारी को उठाने की सबसे अपील है।' सो सोना कह रही है,—वही तो खड़ी है सोना! आ न सोना, आ!"

देबू ने भी स्नेह से कहा, "आओ सोना, आओ!"

सोना करीब आ गयी।

देबू ने कहा, "इसका मतलब तो कुछ कठिन नहीं।"

सोना ने धीमे से कहा, "जिम्मेदारी क्यों लिखा, मैंने भैया से यह पूछा। यह तो लोगों से भीख माँगना है। जिसे इच्छा होगी, देगा। नहीं इच्छा होगी, नहीं देगा। यह तो जिम्मेदारी नहीं।"

उसकी बातों ने देबू के दिमाग में अजीब ढंग से चोट की। "वह तो!" सोना ने कहा, "और, बाढ़ हमारे यहाँ आयी, इसके लिए दूसरी जगह के लोगों की जिम्मेदारी क्यों होगी?"

देबू अवाक् हो गया। इस बुद्धिमती लड़की के अर्थ-बोध के सूक्ष्म तारतम्य को देख देबू अचरज से उसकी ओर ताकने लगा। लेकिन देबू की वह नजर देख सोना जरा अप्रतिभ हुई। बोली, "मैं समझ नहीं सकी..." और फिर लजाकर वह चली गयी।... देबू तब तक भी अवाक् ही सोच रहा था। इस पर तो उसने गौर नहीं किया था। बात तो सही है कि ऐसे अजाने कुछ गाँवों की दुःख-दुर्दशा पर दूर-दूर के लोगों को दया हो सकती है मगर उनकी जिम्मेदारी कैसी? जिम्मेदारी! महत्त्व और व्यापकता में वह शब्द उसकी अनुभूति में बहुत बड़ा हो उठा। साथ ही साथ यह पंचग्राम भी परिधि में बढ़कर विराट् हो गया।

उसने आवाज दी—"सोना?"

गौर उन कई पंक्तियों को बैठा फिर-फिर पढ़ रहा था। उसके मन में भी इसका खटका लगा था। वह बोला, "सोना तो चली गयी!"

"ओ! खैर, उसे बुलाओ तो जरा।"

बुलाना नहीं पड़ा। सोना आप ही आ गयी। हाथ में गरम दूध का कटोरा और पानी का गिलास। कटोरे को रखकर बोली, "पी लीजिए।"

देबू ने कहा, "तुमने ठीक ही समझा है सोना! गलत नहीं सोचा। तुम्हारी सूझ से मुझे खुशी हुई है।"

शरमाकर सोना ने सिर झुका लिया।

देबू ने कहा, "तुमने रवीन्द्रनाथ की 'नगरलक्ष्मी' कविता पढ़ी है? वही—श्रावस्तीपुर में जब पड़ा अकाल...वाली? पढ़ी है?"

सोना ने कहा, "नहीं।"

"गौर, तुमने भी नहीं पढ़ी?"

"नहीं।"

"तो सुनो।"

सोना ने टोका, "पहले आप दूध पी लीजिए। ठण्डा हो जाएगा!"

दूध पीकर, कुल्ला करके देबू पूरी कविता पढ़ गया।...

सोना बोली, "मुझे यह कविता लिख दीजिएगा?"

देबू ने कहा, "तुम्हें वह किताब मैं इनाम दूँगा।"

सोना का चेहरा दमक उठा।

"गुरुजी हैं?" तभी किसी ने बाहर से पुकारा।

गौर ने उझककर देखा; डाकिया है।

देबू ने कहा, "आओ! चिट्ठी है क्या?"

"मनीऑर्डर! चिट्ठी।"

"मनीऑर्डर!"

विश्वनाथ बाबू ने पचास रुपये भेजे हैं।

चिट्ठी भी लिखी थी। यानी कि यह सारा कुछ विश्वनाथ का ही किया है। लिखा है, "दादाजी के पत्र से मुझे सब मालूम हुआ। पचास रुपये भेज रहा हूँ। और भी रुपये जमा कर रहा हूँ। तुम्हारे पास बहुत सारे मनीऑर्डर जाएँगे। हम लोग भी कई आदमी—जाएँगे। काम शुरू कर दो।"

रुपये लेकर देबू चिन्ता में पड़ गया। विश्वनाथ ने लिखा है, 'काम शुरू कर दो।' इन पचास रुपयों से वह कौन-सा काम करेगा? गौर से पूछा, "चाचा कहाँ गये, जग देखो तो गौर।"

"दस मिल-जुलकर करिए काज। हारे-जीते कहीं न लाज।"

बहुत सोच-विचारकर देबू ने दस की राय लेकर ही काम किया। इस काम में उसने एक पुराने आदमी में नये आदमी का आविष्कार किया। बहुत न सही, थोड़ा चकित हुआ। तिनू चाचा का बेटा गौर। स्वस्थ और सबल लड़का, लेकिन शान्त और सीधा। वृद्धि वास्तव में उसे बहुत कम है। उसी गौर में उसने एक अनोखे गुण का आविष्कार किया। स्कूल में पढ़ता है वह। स्कूल के छात्रों को देबू खूब अच्छी तरह जानता है। खुद भी वह उत्साही छात्र रहा था और गौर से कम उम्र का था, फिर भी बहुतेरे लड़कों से उसका साबका रहा। एक तरह के लड़के होते हैं, जो पढ़ने में अच्छे होते हैं, काम-काज में भी लगन होती है। और एक प्रकार के लड़के ऐसे होते हैं जो पढ़ने में वैसे नहीं होते मगर बड़े पुरजोर होते हैं, काम-काज में बड़े उत्साही। इन दोनों के बीच स्थितिवाले लड़के भी होते हैं, जिनमें एक बात है, एक नहीं है। ओर फिर ऐसे भी लड़के हैं, जो दोनों में ही पीछे रहते हैं, जिनके जीवन की गति कछुए-सी होती है। उसका खयाल था—ग़ौर यह अन्तिम प्रकार का लड़का है। लेकिन आज उसने अपना एक अनोखा परिचय दिया! वह तिनकौड़ी का लड़का है, उसके लिए यह परिचय स्वाभाविक ही है। दस के साथ काम करने के सिलसिले में उसने मानो अकेले ही दस की शक्ति लेकर आत्मप्रकाश किया!

तिनकौड़ी ने कहा था, "जो लोग हम लोगों की बात पर हैं, उन्हीं को दो-दो, चार-चार रुपये देकर काम शुरू करो।"

देबू ने कहा, "पाँच जने को बुलाकर जो हो, कुछ किया जाए। नहीं तो अन्त में जाने कौन क्या कहे।"

तिनकौड़ी ने कहा, "कहेगा ठेंगा। कहेगा फिर क्या? किसी साले का हम कुछ धारते हैं क्या? रुपया क्या किसी के बाप का है? और बुलवाओगे भी किसे?"

देबू ने हँसकर कहा, "मैं कहता हूँ जगन डॉक्टर, हरेन, इरशाद, रहम—इन कुछ लोगों को..."

"रहम? नहीं, रहम को नहीं बुला सकते। जो आदमी दल से अलग होकर जमींदार से जा मिला है, उसे बुलाने की जरूरत नहीं।"

"आप सोच देखिए चाचा। आदमी से भूल-चूक होती है। आदमी को खींचकर

अपनाने से वह अपना होता है और ढकेल कर हटा देने से बिराना बन जाता है।"

तिनकौड़ी चुप बैठा रहा। कोई जवाब नहीं दिया उसने। बात उसे जँची नहीं।

देबू ने पूछा, "तो किसे भेजूँ, कहिए तो? राम नहीं मिलेगा?"

गौर बैठा था। नजदीक आकर बोला, "मैं जाऊँगा भैया।"

"तुम जाओगे?"

"हाँ। राम जाति का भल्ला है न। उसके बुलाये जाने पर कोई कुछ सोचे तो?"

तिनकौड़ी गरज उठा—"सोचेगा? कौन क्या सोचेगा? किस साले को खाने का न्योंता दे रहा हूँ कि कोई कुछ सोचेगा?..." एक बहाना पाकर उसके मन की अकबकाहट निकल पड़ी।

गौर ठिसुआ गया। देबू ने कहा, "नहीं-नहीं, गौर ने ठीक ही कहा है चाचा।"

"ठीक कहा है तो जाए, मरे!"...कहकर तिनकौड़ी उठकर चला गया।।

देबू चुप रहा। बाप की राय नहीं है तो बेटे को भेजने में उसे झिझक हुई।

गौर ने कहा, "देबू भैया, जाऊँ मैं?"

"जाओगे? लेकिन तिनू चाचा..."

"बाबूजी ने तो जाने को कहा है!"

"कहाँ? जाने को कहाँ कहा? वे तो नाराज होकर चले गये।"

सोना आयी। हँसकर बोली, "जी नहीं, बाबूजी वैसे ही बोलते हैं। 'मर जा, भाड़ में जा'—यह सब बाबूजी यों ही कहते हैं।"

गौर ने कहा, "कहते नहीं हैं तो केवल सोना को...।"

गौर लौट आया। बताया कि सबको खबर कर दी है। अपनी अक्ल लगाकर उसने बूढ़े द्वारका चौधरी को भी जाकर कह दिया। देबू ने खुश होकर कहा, "अच्छा ही किया। बूढ़े चौधरी बड़े पक्के आदमी हैं और उन्हीं का खयाल न आया!" गौर ने कहा, "महाग्राम के न्यायरत्न से भी कह आया हूँ। देबू भैया।"

देबू ने हैरान होकर कहा, "अरे, उन्हें क्या आने के लिए कहना चाहिए? तुमने किया क्या यह! क्या कहा उनसे?"

गौर बोला, "उनसे मेरी मुलाकात नहीं हुई। उनके घर पर कह दिया है। कहा कि हमारे घर पर आज बैठक है। बाढ़ के बारे में बैठक। मैं वही कहने आया हूँ।"

सोना हँसते-हँसते बेहाल हो गयी—"बाढ़ की भी बैठक होती है!"

तीसरे पहर सभी लोग आये। जगन, हरेन, इरशाद, रहम और उनके साथ और भी बहुत-से लोग। सतीश और पातू आया। दुर्गा भी आयी। वह रोज ही आया करती है। देबू के घर की कुंजी उसी के पास है। वह घर-द्वार झाड़ती-बुहारती है, देखती-सुनती है। बूढ़े द्वारका चौधरी भी पधारे। पैदल आते नहीं बना तो बैलगाड़ी पर चढ़कर आये। मुश्किल यह हो गयी कि तिनकौड़ी नहीं था। वह जो निकला था, सो लौटा ही नहीं।

वूढ़े ने कहा, "बेटा देबू, खोज-खबर तो मैं दोनों वक्त लेता रहता हूँ। किन्तु खुद मैं आ नहीं सका...।" फिर हँसकर बोले, "अब दूसरी तरफ खींच रहा है न, इधर कदम नहीं बढ़ा पाता। मगर तुम्हारी बुलाहट हुई तो इधर का खिंचाव हुआ। पैदल नहीं चल सका—बैलगाड़ी पर आया हूँ।"

देवू वोला, "मेरी सेहत का हाल देख रहे हैं न, नहीं तो—"

"हाँ-हाँ! वह मैं समझता हूँ भैया। लेकिन बात है कि जरा जल्दी ही कर लो—"

"बस-बस! काम तो वैसा कुछ है नहीं। सिर्फ तिनकौड़ी चाचा के लिए...। खैर! न हो तो हम लोग शुरू कर दें तब तक।"

देवू ने लोगों से सब बताया। कागज और मनीऑर्डर का कूपन दिखाया। सबके सामने रुपये रखकर बोला, "अब आप लोग कहिए कि किया क्या जाए?"

जगन ने कहा, "गरीबों को खिलाओ। जिसे कुछ भी नहीं है, उसे दो।"

हरेन ने कहा, "आइ सपोर्ट इट।"

देवू ने पूछा, "चौधरी जी?"

चौधरी बोले, "बात तो डॉक्टर ने अच्छी ही कही। मगर मैं कह रहा था कि अभी भी पन्द्रह दिन का समय है खेती का। इन रुपयों से यदि बीज-धान खरीद दिया जाता—"

रहम और इरशाद साथ-साथ बोल उठे—"यह बहुत अच्छी सलाह है।"

जगन ने कहा, "ये गरीब बेचारे भूखे मरेंगे न?"

देवू ने कहा, "इन पचास रुपयों से उन्हें कितने दिन बचाओगे?"

"इसके बाद भी रुपये आएँगे।"

"तो उन रुपयों में से देना।"

गौर ने देबू के कान में फुसफुसाकर कहा, "अच्छा देबू भैया, हम लड़के लोग अगर उन गाँवों से, जहा बाढ़ नहीं आयी है, भीख माँगकर लाएँ तो?"

गौर की सूझ से देबू को हैरत हुई।

ठीक इसी समय प्रशान्त गले की आवाज सुनाई पड़ी—"गुरुजी हैं?"

न्यायरत्न! उसके स्वागत में सादर सब खड़े हो गये। न्यायरत्न अन्दर आये! जरा हँसकर बोले, "मुझे आने में कुछ देर हो गयी।"

देवू ने उन्हें प्रणाम किया। बोला, "एक बात के लिए मुझे माफ करना होगा। मैंने इसके लिए आपको कष्ट देने के लिए नहीं कहा था। तिनकौड़ी के लड़के गौर ने अपनी बुद्धि खर्च करके यह करतूत कर दी।"

"तिनकौड़ी के बेटे को मैं आशीर्वाद देता हूँ। तुम लोगों ने देश की सेवा के लिए पुण्य का यज्ञ शुरू किया है, उस यज्ञ में हिस्सा लेने के लिए मुझे बुलाकर उसने अच्छा ही किया है।"

गौर ने झुककर उनके चरणों में प्रणाम किया।

न्यायरत्न बोले, "और तिनकौड़ी की बिटिया कहाँ है? बड़ी भली लड़की है! मुझे थोड़ा-सा पानी चाहिए। पैर धोना है।"

हाथ में पानी का डोल और लोटा लिये सोना बाहर आयी। उन्हें प्रणाम करके बोली, "मैं चरण धो देती हूँ।"

न्यायरत्न ने कहा, "मैं कुछ मदद ले आया हूँ गुरुजी।" और फिर अपनी चादर की गाँठ से उन्होंने दस रुपये का नोट निकालकर दिया।

सारी बातें सुन-सुनाकर उन्होंने भी कहा कि "पहले बीज-धान देना ही ठीक रहेगा। बीज के लिए मैं भी कुछ धान देकर सहायता करूँगा गुरुजी!"

जब सब लोग उठ पड़े तो दुर्गा बोली, "घर कब चलोगे जमाई-गुरुजी? मुझसे अब नहीं चलता। अपने घर की कुंजी तुम सँभालो।"

देबू बोला, "मैं कल या परसों आऊँगा। दो दिन अभी और रखो।'

दुर्गा ने कपड़े से आँखें पोंछीं। बोली, "घर बिलू दीदी का है। न बिलू दीदी हैं, न मुन्ना। जाने को जी नहीं चाहता। तिस पर तुम भी नहीं हो। घर जैसे निगलने दौड़ता है।"

इतने में तिनकौड़ी लौटा। पीठ पर बड़ी-सी एक कतला मछली थी। वजन में आधे मन की रही होगी। अठारह सेर से तो हरगिज कम नहीं। धड़ाम से उसे नीचे पटककर बोला, "उफ़, इसके पीछे कोई कोस-भर भागना पड़ा। अरे ओ भई, तुम लोग जरा रुक जाओ—थोड़ी-थोड़ी मछली ले जाना। डॉक्टर, इरशाद, रहम, जरा रुक जाओ भाई, रुक जाओ।"...

उन्नीस

पन्द्रह ही दिन के अन्दर इलाके में एक हलचल-सी मच गयी। दो घटनाएँ घट गयीं। श्रीहरि घोष ने पंचायत बुलाकर देबू को समाज से पतित कर दिया। दूसरी ओर बाढ़ सहायता-समिति एक रूप लेकर खड़ी हो गयी। उस समिति की वजह से ही एक धूम मच गयी। न्यायरत्न के पोते ने अखबार में बाढ़ की खबर छपवा दी। कलकत्ता, बर्दवान, मुर्शिदाबाद, ढाका आदि बड़े-बड़े शहरों से वे चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं। शहर ही नहीं, गाँवों से भी लोग रुपया भेजने लगे। जाने कितने अजाने गाँवों से देबू के नाम पाँच-पाँच दस-दस रुपये के मनीऑर्डर आने लगे। पन्द्रह-बीस दिन के अन्दर

ही देबू के पास प्रायः पाँच सौ रुपये जमा हो गये। जिनके घर गिर गये थे, उन्हें घर के लिए मदद दी जाएगी। इसी बीच बीज-धान बाँटा जा चुका था। जिससे जैसा बन पा रहा था—खेत आबाद कर रहा था।...

भादों की संक्रान्ति बीत गयी। आज क्वार की पहली थी। क्वार का रोपना किस लिए? मगर लोग अभी भी रोपते ही जा रहे थे। महीने के पहले पाँच दिन को पिछले ही महीने में गिना जाता है। इस बार भादों का महीना उनतीस ही दिन का था। लेकिन आफत यह थी कि लोगों के घर में खाने को नहीं था। उस पर शुरू हो गया कंप-कंपी के साथ मलेरिया बुखार—फिर भी भाग्य ही कहिए कि हैजा नहीं फैला। घर-घर हरसिंगार के पत्ते के रस पीने का एक नया काम बढ़ गया। भादों खत्म होते-होते हरसिंगार नये पत्तों से लद जाते हैं, फूलने लग जाते हैं। अबकी उनमें पत्ते नहीं रहे। फूल नहीं आएँगे। अगर बुखार नहीं फैला होता तो बोआई कुछ ज्यादा होती। काला मलेरिया! यों मलेरिया इस समय हर साल ही कुछ-न-कुछ होता है। लेकिन बाढ़ की वजह से इस बार वह भयंकर रूप से फैला। कंकना और जंक्शन शहर के अस्पताल में बिना दाम के दवा मिलती है। मगर खेती का काम छोड़कर रोगी को इतनी दूर लेकर जाना आसान काम नहीं। जगन डॉक्टर रोगी को देखने का कुछ नहीं लेता। दवा का दाम लेता है। न ले तो उसका भी चले कैसे? हाँ, कल देबू ने बताया कि कलकत्ते से कुनैन तथा दूसरी दवाएँ आ रही हैं। एक डॉक्टर और दवा के लिए जिले में भी दरख्वास्त भेजी गयी है।

लोगों के अचरज का ठिकाना नहीं रहा। उस रोज बूढ़े हरीश ने भवेश से कहा, "भई, जो बाप-दादे के जमाने में नहीं देखा, वही देख रहा हूँ।"

भवेश ने कहा, "ठीक कह रहे हो चाचा। गजब देखा। बाढ़ तो इसके पहले बहुत बार आयी है।..."

नदियों का देश है बंगाल। ऋतुओं में यहाँ वर्षा प्रबल है। बाढ़ थोड़ी-बहुत हर साल ही आती है। इस पहाड़ी नदी मयूराक्षी में भी बीस-तीस साल के हेर-फेर से ऐसी ही तबाह करनेवाली बाढ़ आती है। गाँव बह जाते हैं, खेत डूब जाते हैं—लोग यह दृश्य देखा ही करते हैं। पिछले दिनों ऐसी बाढ़ के बाद देश में एक दुःसमय आया करता था। वैसे बुरे दिनों में गाँव के धनी जमींदार लोगों की मदद किया करते थे। धनी और अच्छी हालतवाले गृहस्थ गरीबों को खाने के लिए देते थे, धनी लोग कम या बिना सूद के धान उधार दिया करते थे। जमींदार उस किस्त का लगान नहीं वसूलते थे। लगान बाकी पड़ जाता था तो सूद नहीं लेते थे। दयालु जमींदार लगान में कुछ माफी देते थे। कोई-कोई साल-भर का ही लगान छोड़ देते थे। इतना जरूर था कि उन दिनों खेतिहरों की हालत अब से बहुत अच्छी थी। टुकड़ों में इस तरह जायदाद बँटकर गृहस्थ इतने गरीब नहीं हो गये थे। कुछ महीने वे कष्ट झेलते और फिर धीरे-धीरे संभल जाते।

गरीब-गुरबों की यानी बाउरी-डोम-मोचियों की दुर्दशा जैसी तब थी वैसी अभी भी है। इस तरह की घटनाएँ घट जाने के बाद महामारी उन्हीं लोगों में ज्यादा फैलती है। भीख के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं रह जाता, इसलिए लोग गाँव छोड़कर अन्यत्र चल देते। हालत सुधर जाने पर बाप-दादों की जगह की ममता से बहुतेरे लोग फिर लौट आते। ऐसी नौबत आने पर भरे-पूरे गृहस्थ सरकार से तकावी लेते, उन पैसों से तालाब खुदवाते, खेत तैयार करते और गरीब लोग उन्हीं की मजदूरी करते।

हरीश ने कहा, "अरे भई, उन लोगों का समय तो अब अच्छा है। नदी को पार किया कि जंक्शन। बीसियों चिमनियों से धुआँ उठ रहा है। पहुँच गये कि मजदूरी मिल गयी—मजदूरी मिली कि पैसे मिले। मगर ये कम्बख्त जाएँगे तो नहीं।"

भवेश ने कहा, "नहीं गये हैं, सो खैर समझो चाचा। वरना कामरा-चरवाहे नहीं मिलते।"

हरीश बोला, "यह ठीक कहा तुमने! मगर अब नहीं रहेंगे भैया- अब सब जाएँगे। पेट की जलन बड़ी बुरी होती है।"

भवेश ने कहा, "देबू तो जी-जान से जुट गया है! स्कूल के छोकरे गीत गाते हुए गांव-गांव में भीख माँगते फिर रहे हैं—चावल, कपड़ा, पैसा।"

गौर ने कानों-कान देबू से जो कहा था, उस बात ने काम का रूप लिया। एक-एक वयस्क आदमी के नेतृत्व में लड़कों की जमात गाँव-गाँव से माँगकर कपड़े, अन्न, रुपये-पैसे लाने लगी। इतने ही दिनों में पन्द्रह-बीस मन चावल जमा हो गया। भले लोगों के किसी गाँव में औरतों ने जेवर तक उतारकर दिया है। बहुत ज्यादा कीमती जेवर नहीं, यही अँगूठी, कान की बाली, नाक की कील आदि। ये सारी बातें इस इलाके के लोगों को अनोखी-सी लग रही थीं। लोगों के यहाँ जब भिखमंगे माँगने जाते हैं, तो लोग देना नहीं चाहते—दो-टूक सुना देते हैं। कितनी चिरौरी, कितना निहोरा-बिनती करनी पड़ी है उन्हें! और फिर इस माँगने में उस भीख की दीनता भी नहीं है। देबू के यहाँ जो लोग सहायता ले रहे हैं उन्हें भी दीनता की वह आँच नहीं छू जाती। इस सारे कुछ में एक अनोखी तृप्ति का भाव छिपा हो मानो। पहले गये गुजरे लोग अपनी गरीबी के नाते भीख माँगने में अपराध की ग्लानि का अनुभव करते थे। इसमें मानो उस अपराध का जरा भी अनुभव नहीं होता।

भवेश ने कहा, "मगर इस कम्बख्त छोटे लोगों का मिजाज बेहद बढ़ गया है। सहायता-समिति से चावल पाकर उनका दिमाग क्या हो गया है, देखा है? परसों मेरा धोरई छोरा नहीं आया एक वेला। मैं उसके टोले में गया। मैंने सोचा, तबीयत-वबीयत खराब हो गयी हो शायद। वहाँ सुना, वह तिनकौड़ी के बेटे गौर के साथ किसी काम से शहर गया है। मुझे गुस्सा आ गया। गुस्से की बात है या नहीं, तुम्हीं बताओ। इस पर मैंने कहा—तो अब उसे काम-काज नहीं करना है। मैं जवाब देता हूँ। इस पर उस छोरे की माँ ने क्या कहा, जानते हो? कहा, 'तो बाबू

हम करें क्या? गुरुजी वगैरह इस मुसीबत में लोगों को खाना दे रहे हैं। उनका कोई काम हो तो कैसे न करें। आपको जवाब ही देना है, तो दे दीजिए।' "

हरीश हँसकर बोला, "ऐसा होता है। सदा से होता आया है। समझ गये—हम लोग उस समय छोटे थे। तेरह-चौदह के रहे हों! उस समय रामदास गुसाईं आया था। सुना है नाम?"

भवेश ने प्रणाम करके कहा, "अरे बाप रे! मैंने तो देखा है!"

हरीश ने कहा, "देखा है?"

"हाँ, इत्ती-इत्ती बड़ी जटा। उस समय अवश्य यहाँ रहते नहीं थे। बीच-बीच में आते थे।"

"वही कहो। मैं जब की कह रहा हूँ, उस समय गुसाईंजी यहीं रहते थे—कंकना के उस तरफ मयूराक्षी के किनारे। उन्होंने वहाँ महोत्सव की धूम कर दी। लोग अपने सिर पर ढोकर दो-दस मन चावल पहुँचा आते थे। गरीब हो, दुःखी हो, सबको जी-भर खाना मिलता था—केवल मुँह से इतना कहना पड़ता था—"कहो भई राम नाम, सीताराम।" गुसाईंजी गरीब-दुखियों के माँ-बाप थे। उस समय गरीबों का मिजाज इसी तरह सातवें आसमान पर चढ़ गया था। जमींदार गृहस्थ कोई बात कहते कि कम्बख्त गुसाईं से जाकर एक की दस लगाते। और गुसाईं उसी बात पर जमींदार से, गृहस्थ से झगड़ जाते। अन्त में कंकना के बाबुओं से ठन गयी। गुसाईं लड़ते बहुत दिनों तक रहे। आखिरकार एक दिन एक नाचवाली आकर हाजिर हुई। उसने जाकर गुसाईंजी को पकड़ा। कारसाजी बाबुओं की थी। कहा, 'तुम शहर में मेरे यहाँ रहे थे। मेरे बाकी रुपये दो। नहीं तो...।' इसी बात पर बड़ी फजीहत हुई। बिगड़कर गुसाईं चले गये। कहते गये, 'कल्कि महाराज के आये बिना दुष्टों का दमन नहीं होगा।' ... बस, इसके बाद, फिर वैसे का वैसा—फिर पैरों तले रहने लगे। देख लेना, इसका भी वही हाल होगा।"

रामदास गुसाईं के पास वह जो रूप का व्यवसाय करनेवाली आयी, सो लोगों ने उन्हें छोड़ दिया। लगातार तीन दिनों तक बनी-बनायी रसोई पड़ी रही, कोई भी गरीब खाने के लिए नहीं गया। जिनके लिए उन्होंने जमींदार से झगड़ा किया था, वे लोग भी नहीं गये। गुस्से और क्षोभ के मारे रामदास गुसाईं यह जगह ही छोड़कर चले गये। लेकिन इस समय एक परिवर्तन नजर आ रहा है। वह यह कि लुहार-बहू और दुर्गा को देबू से लपेटकर लोगों ने बड़ी अफवाहें उड़ायीं, पंचायत ने देबू को अजाति कर दिया, फिर भी लोगों ने देबू को नहीं छोड़ा।

देबू पर न्यायरत्न को अगाध विश्वास है। लेकिन लोगों का वह वैसा विश्वास नहीं करते। इस विषय पर उन्होंने भी सोचा है। कभी-कभी उन्हें लगता है कि समय की शृंखला बिलकुल टूट गयी है। और समाज के टूट जाने के साथ-साथ मनुष्य का धर्म-विश्वास भी लोप हो रहा है। यही कारण कि नवशाख सम्प्रदाय की पंचायत

ने देबू को अजाति करने का संकल्प तो किया, पर वह सफल नहीं हो सकी। इसी बीच एक रोज शिवकालीपुर के चण्डीमण्डप में—बहरहाल श्रीहरि घोष की ठाकुर वाड़ी—घोष के बुलाये नवशाख सम्प्रदाय की पंचायत बैठी थी। सद्-गृहस्थों में से बहुतेरे उस पंचायत में आये थे। गरीब कतई आये ही नहीं, सो बात नहीं। देबू को बुलाया गया था, लेकिन वह गया नहीं। कह दिया, "लुहार-बहू श्रीहरि घोष के यहाँ है। बेसहारा मित्र-पत्नी के नाते पहले वह उसकी सहायता किया करता था, पर अब उससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। दुर्गा उसे श्रद्धा-भक्ति करती है। दुर्गा का ननिहाल उसकी ससुराल में है। इस नाते दुर्गा उसकी स्त्री को दीदी कहती थी और उसे जमाई-गुरुजी। दुर्गा उसके घर काम-काज करती है और करती रहेगी। वह भी उसे सदा स्नेह-सहायता करता रहेगा। उसे कभी अलग नहीं कर सकता। बस, इतना ही कहना है। इस पर पंचायत को जो करना हो, करे।"

पंचायत ने देबू को पतित करार दिया।

समाज द्वारा पतित किये जाने के बावजूद जन-साधारण ने देबू से नाता नहीं तोड़ा। लोग आते-जाते हैं। देबू के यहाँ बैठते हैं। पान-तम्बाखू चलता है। खास तौर पर इस सहायता-समिति के चलते देबू से लोगों का गहरा सहयोग है। मामूली अवस्था वाले कुछ लोगों ने तो साफ-साफ ऐलान ही कर दिया कि पंचायत के फैसले को हम नहीं मानते। ऐसे लोगों का नेता तिनकौड़ी है।

न्यायरत्न ने जिस दिन देबू को उपेदश दिया था, उस दिन उन्होंने अनुरूप कल्पना की थी। उन्होंने सोचा था कि समाज के गहरे विरोध से गुरुजी का धर्म-जीवन उज्ज्वल हो उठेगा। ध्यान-धारणा, पूजा-पाठ से देबू का रूप ही कुछ नया हो जाएगा, ऐसा उनका खयाल था। लेकिन उनकी वह कल्पना फली नहीं। देबू घोष सहायता-समिति द्वारा कर्म के पथ पर चल पड़ा। कर्म-पथ से भी धर्म-जीवन की ओर जाया जा सकता है। लेकिन देबू के बारे में एक बात सुनकर उन्हें बड़ी चोट लगी कि देबू दुर्गा मोचिन के हाथ का पानी पीने को भी तैयार है। उसने दुर्गा से यह कहा भी था, पर दुर्गा राजी न हुई।

वे कर्म को ही सामाजिक जीवन की संजीवनी शक्ति मानते हैं। लेकिन वह कर्म धर्म-वर्जित कर्म नहीं। धर्म-वर्जित कर्म संजीवनी-सुधा नहीं है, वह उत्तेजक सुधा है। वह अन्न नहीं—सड़े तण्डुल का मादक रस है।

न्यायरत्न देबू के लिए चिन्तित हो पड़े हैं। देबू को वे प्यार करते हैं। मादक रस के नशे में वह उग्र, ढीठ हो उठा है। इस बात की कल्पना वे पहले नहीं कर सके थे। समाज में ऐसा ही ज्वार-भाटा आया करता है। लोग इसी तरह से एक-एक बार ज्वार की तरह उफनाते हैं और एक-एक बार भाटे की तरह शान्त पड़ जाते हैं।

यह तो छोटा-सा पंचग्राम है। सारे देश में ऐसे ही उफान जाती और आती

है। अपने ही जीवन में उन्होंने ब्राह्मधर्म का आन्दोलन देखा है। हाँ, उस धर्म की ओर साधारण लोगों को जरा भी रुझान नहीं हुई। उसके बाद आया स्वदेशी आन्दोलन। उस आन्दोलन की भी दो-दो उफान देखते-देखते चली गयी। यह स्वदेशी आन्दोलन जो था, वही धर्म से नाता न रखनेवाला पहला आन्दोलन था। इस आन्दोलन ने एक काम तो किया है। धर्म से उसका नाता हो, चाहे न हो, उसने एक नैतिक प्रभाव जरूर दिया है।

अपने आरम्भिक जीवन में उन्होंने जो देखा है, वह दृश्य याद आया। प्रथम समाजपति के आसन पर बैठकर उन्होंने मार्मिक पीड़ा महसूस की थी। उस समय जमींदारों का बड़ा रोब-दाब था। वे लोग जबान से तो उनका सम्मान करते थे, श्रद्धा करते थे, पर मन-ही-मन करते थे उपेक्षा। किसी साधारण व्यक्ति को कोई सजा देनी होती थी, तो उनको बुलाया जाता था। लेकिन खुद उनके व्यभिचार की हद नहीं थी। शराब पीना तन्त्र-शास्त्र से जायज था। जमींदार के बैठके में 'कारणचक्र' जुटता था। धनियों के नवजवान सपूत शराब के नशे में चूर रास्तों पर लोगों से गाली-गलौज करते चलते थे। रात को बेबस मध्यवित्तों और गरीबों के दरवाजों पर कामुकों की थपकियाँ पड़ा करती थीं। साधारण लोग गूँगे जानवरों-जैसे थे! उनके घर की हालत ओर भी शोचनीय थी। स्वदेशी आन्दोलन की उस लहर ने उसे बहुत-कुछ धो-पोंछ दिया। लोगों में एक नीति-बोध जागा है।

न्यायरत्न ने लम्बा निःश्वास छोड़ा। इस आन्दोलन की लहर उसके शशिशेखर के कलेजे में लगी थी। शशि में कोई दुर्नीति नहीं थी। आन्दोलन ने उसके धर्म-विश्वास पर ठेस लगायी थी। वह ढीठ हो गया था। उसका नतीजा न्यायरत्न के जीवन में बड़ा भयंकर होकर दिखाई दिया। और अब उसी आन्दोलन की लहर विश्वनाथ को लगी है। विश्वनाथ ने उनके मुंह पर ही कह दिया है—"मैं जाति नहीं मानता, धर्म नहीं मानता, मैं समाज को तोड़ना चाहता हूँ।" वह उनके वंश के उत्तराधिकार तक को नहीं मानना चाहता। जया-जैसी पत्नी—मगर उसे उसकी भी ममता नहीं। एक ज्वार-सा आया है—सर्वग्रासी ज्वार।...उन्होंने फिर लम्बा निःश्वास फेंका।

पंचग्राम में भी वही ज्वार-भाटा चल रहा है। तरह-तरह की घटनाओं से लोग एक-एक बार हो-हल्ला मचाते हैं और फिर झीम जाते हैं। दल टूट जाता है। पहले ऐसी हर हलचल में समाज-धर्म हुआ करता था। उनके आरम्भिक जीवन में एक हलचल मची थी—वह हलचल उन्हीं के नेतृत्व में चण्डीमण्डप में बाबुओं की मनमानी के खिलाफ हुई थी। सभी गाँवो की औरतें चण्डीमण्डप में जाया करती थीं और उन दिनों बाबुओं के लड़के शराब पीकर वहाँ बड़ी बेहयायी करते थे। न्यायरत्न ने ही लोगों की ओर से इसका विरोध किया था। उसके बाद हुई रामदास गुसाईंवाली हलचल। उस हलचल में भी 'कहो भाई राम नाम' का नारा था। फिर सामाजिक बातों के लिए बहुत हलचल हो गयी। देबू के खिलाफ ही तीन-तीन बार हो-हल्ला हो चुका।

पहला सेटलमेण्ट के सिलसिले में। उसके बाद विरोध-आन्दोलन और उसके बाद यह वाढ़-सहायता-समिति। शुरू में देवू से उम्मीदें थीं। लगान विरोधी आन्दोलन के वक्त तक भी उस पर वह प्रभाव था। लेकिन पंचायत से अचानक वह गायब हो गया।

कालधर्म, युगधर्म! शशि के शोचनीय अंजाम ने ठेस लगाकर उन्हें इस सम्बन्ध में सचेत कर दिया है। इसीलिए अब वे अपने को डाँवाडोल होने नहीं देते हैं। जी-जान से अपने को जब्त करके काल की लीला को महज देखते जाने को वे कटिबद्ध हैं। जिसका जो नतीजा हो, हो; काल अपने को जैसे प्रकट करे, करे—वे सिर्फ देखा करेंगे, निश्चेष्ट देखते रहेंगे।

नहीं तो, विश्वनाथ ने जब उस दिन उनके मुँह पर ही कहा—'अपने देवता और अपनी जायदाद का बन्दोबस्त आप करें दादाजी!'—उसी दिन वे उसे कठिन दण्ड देते, कठिन दण्ड! दादा होने के नाते वे उसकी देह के एक-एक अणु-परमाणु के मूल्य का दावा करते—जिसे उन्होंने अपने बेटे शशिशेखर को दिया था और शशिशेखर जिसे उसे दे गया है।

न्यायरत्न के खड़ाऊँ की आवाज सख्त हो गयी। अपनी उत्तेजना को उन्होंने समझा और समझकर गम्भीरता से बोल उठे—"नारायण! नारायण!"

विश्वनाथ काल तक को नहीं मानता। वह कहता है—"काल से ही हमारी लड़ाई है। इस काल को समाप्त करके भावी काल को लाने की साधना हमारी साधना है।"

"मूर्ख!"—वे हँसकर बोले—"तो फिर काल से लड़ाई क्यों कहते हो? काल तो अनन्त है। उसके महज किसी खण्ड से लड़ाई! तुम आज के काल को नहीं चाहते, आगामी काल को चाहते हो। यह तो शाक्त और वैष्णव की लड़ाई हुई। काली-रूप नहीं देखना चाहते, कृष्णरूप के प्यासे हो! या कि ब्रजदुलाल के बदले द्वारकानाथ को चाहते हो।"

विश्वनाथ ने कहा था—"म किसी नाथ को नहीं चाहता दादाजी। तर्क में उपमा के लिए मैं किसी को चाहता हूँ—यह बात कहलाने से आपको लाभ क्या होगा? लोगों को अब नाथ बरदाश्त नहीं। इन नाथों के दल ने—जब-जब जनता ने उठने की कोशिश की है, अपने नाथत्व के दबाव से उसे पीस-पीस डाला है। इसीलिए अपने आगामी कल का रूप अ-नाथ का रूप है। इन नाथों की बुनियाद उजाड़ने से ही वर्तमान काल का अन्त होगा।"

"बात सही है। इस पंचग्राम में भी जब-जब लोगों ने हो-हल्ला किया है, तब-तब इन जमींदार, धनी, समाज-नेताओं ने उनका दमन किया है। इसे देखने के बावजूद भी तुम्हें चेत नहीं होता है विश्वनाथ कि मनुष्य के मन की उमंग आदि काल से ही उस अ-नाथत्व के काल को लाना चाहती है—पर वह काल आज भी नहीं आया। कितना काल बीत गया, कितना आगामी काल आया, लेकिन वह

आगामी काल नहीं आया, जिसकी तुमने कल्पना की है। क्यों नहीं आया, मालूम है? काल के उस रूप का काल अभी भी नहीं आया है।"

इसपर विश्वनाथ जो कहता है, उसे वे हरगिज नहीं मान पाते। उससे उनका विरोध यहीं पर है। गहरे निष्ठावान् ब्राह्मण का मन फिर टन-टन कर उठा। वे फिर बोल उठे—"नारायण! नारायण!"

डाकिया ने आकर प्रणाम किया—"चिट्ठी।"

हाथ में चिट्ठी लिये न्यायरत्न नाट्यमन्दिर से उतरे। उसे प्रकाश में देखा। विश्वनाथ की चिट्ठी थी। न्यायरत्न को अभी भी चश्मे की जरूरत नहीं पड़ती। मगर साल-भर से जरा ज्यादा रोशनी की दरकार होती है और आँखों को जरा सिकोड़कर पढ़ना पड़ता है। पोस्टकोर्ड था। पढ़कर वे जरा चकित हुए—"कल्याणी!"—विशू भाई ने यह लिखा किसे है? उलटकर पता देखा। चिट्ठी जया की थी। न्यायरत्न अवाक् हो गये। जया को विश्वनाथ ने पोस्टकार्ड में खत लिखा है। और 'सिर्फ दो ही चार दिन के बाद एक बार वहाँ आऊँगा। ठीक, अपने घर नहीं। दरअसल बाढ़-सहायता-समिति के काम से जाना है। साथ में और भी दो-चार जाने जाएँगे। दादाजी को मेरा असंख्य प्रणाम कहना। तुम लोगों को आशीर्वाद! बस!—विश्वनाथ।'

चिन्तित होकर ही न्यायरत्न अन्दर गये। पोस्टकार्ड में लिखे इस खत ने उन्हें बड़ा विचलित कर दिया। वे उस दिन भी इतना विचलित नहीं हुए थे, जिस दिन विश्वनाथ ने यह कहा था कि जया से भी उसके मत का मेल नहीं होगा। मत का मेल तो नहीं है। जया उनके हाथों की गढ़ी हुई महाग्राम के न्यायरत्न परिवार की गृहिणी है। समाज टूट गया, धर्म का लोप हो चला है—सारी दुनिया का लोभ, अनाचार, अत्याचार—इस देश के लोग जर्जर होकर भयावना पराया धर्म या धर्महीन वैदेशिक जीवन-नीति को अपनाने पर आमादा हैं; लेकिन उनके अन्तःपुर में उनका धर्म अभी भी सुरक्षित है। जया ने अटूट निष्ठा और हार्दिक श्रद्धा से उनकी दीक्षा ली है। पोते ने भयावह परधर्म को अपनाया—इस चिन्ता से जब वे बेचैन हो उठते हैं, तो जया की ओर ताकने से उन्हें सान्त्वना मिलती है। विश्वनाथ जब उनसे तर्क करता है, अपनी कूट युक्तियों से उन्हें परास्त करना चाहता है, तब वे अपनी गहरी ऊब से अपने को संयत करके महाकाल की लीला को सोच चुप रह जाते हैं। और फिर उस चुप्पी के अन्तराल में जया की याद आती है। जया के लिए उन्हें बड़ी चिन्ता होती है। और जब विश्वनाथ कोई बहाना बनाकर पन्द्रह-बीस दिनों का बीच देकर घर आता है, तो वही दुश्चिन्ता उनका भरोसा हो जाती है। विश्वनाथ गोविन्दजी के झूलन पर आस्था नहीं रखता, लेकिन उसी बहाने जया के साथ झूलन का खेल खेलने के लिए घर आता है इसीलिए यह कहने के बाद भी कि जया से मत का मेल नहीं होगा, उनके हृदय में भरोसा था। आग से पाँखियों का मेल है या नहीं, कौन जाने—प्राण-शक्ति से जलनेवाली शक्ति का सम्बन्ध परस्पर विरोधी

सम्बन्ध है—मगर तो भी पाँखी जल मरने के लिए आते हैं। जया के रूप को देखकर वे आश्वस्त होते हैं, लेकिन आज वे चिन्तित हो गये। विश्वनाथ ने जया को पोस्टकार्ड में चिट्ठी लिखी है!

अन्दर जाकर उन्होंने आवाज दी—"राज्ञी शकुन्तले!"

किसी ने जवाब नहीं दिया। घर के चारों तरफ देखा। देखा कि भण्डार में ताला लटक रहा है। दूसरे कमरों का भी दरवाजा, सिकड़ी बन्द! न्यायरत्न को अचम्भा हुआ। ऐसे वक्त तो जया कहीं नहीं जाती।

उन्होंने फिर पुकारा—"अजय, अज्जो बापी!"

अजय ने जवाब नहीं दिया। जवाब दिया घर के चरवाहे ने—"जी आया!..." उधर के चलिए से सोये अजय को गोदी में लिये वह छोरा जल्दी से आया--"जी, अज्जो सो गया है।"

"अजय की मां कहां गयी?"

"जी, बहूजी हमारे टोले की तरफ गयी हैं।"

"तुम्हारे टोले की तरफ?"—न्यायरत्न हैरान हो गये। जया बाउरी-टोला गयी है! उनकी भौंवें सिकुड़ गयीं।

छोरे ने बताया, "जी, लोटन बाउरी के बच्चे की नाड़ी खिंच रही है। उसकी बीवी ठाकुर बाबा के चरणामृत के लिए आयी थी। इसीलिए बहूजी वहां गयी हैं।"

"नाड़ी खिंच रही है! हुआ क्या है उसे?"

"सो क्या पता। हवा-बयार लगी होगी।"

हवा-बयार के मतलब भूत-वूत की छूत। उस दुःख में भी न्यायरत्न जरा हँसे। लोगों का यह विश्वास आखिर नहीं गया।

इतने में जया लौटी। नहाकर गीले कपड़े में आयी। न्यायरत्न चौंके—"इस कुबेर को तुमने स्नान किया?"

जया ने थके और उदास स्वर में कहा, "उसका बच्चा मर गया दादाजी!"

"मर गया?"

"जी।"

"क्या हुआ था?"

"बुखार। मगर ऐसा बुखार तो मैंने नहीं देखा कभी।"

न्यायरत्न ने परेशान होकर कहा, "पहले तुम कपड़े बदल लो। फिर सुनूंगा।" फिर भी जया गयी नहीं। बोली, "कल शाम से मामूली बुखार था। सवेरे भी वह खेलता रहा था। जलपान के वक्त से बुखार तेज हो गया। बेहोश हो गया। घण्टा-भर पहले मूर्च्छित-सा हुआ। मैंने सुना, देखुड़िया में भी परसों एक लड़का ऐसे ही मर गया। टोले में और भी तीन-चार बच्चों को ऐसा ही बुखार हुआ है। यह कैसा बुखार है दादाजी?"

बीस

मलेरिया इस बार महामारी का रूप लेकर आया। घर-घर बुखार। चारों ओर लोग बीमार पड़ रहे हैं। कौन किसके मुँह में पानी दे, ऐसी हालत है! वयस्कों के लिए आफत घातक नहीं है, वे भोगकर हड्डियों के ढाँचे से ही ठीक हो जाते हैं। पाँच-सात दिन या चौदह दिन तक बुखार की मियाद होती है। बच्चों के लिए वह घातक है। पाँच-सात साल के बच्चों को बुखार हुआ नहीं कि बाप-माँ के माथे पर आसमान टूट पड़ता है। तीन या पाँच दिनों के अन्दर ही कोई आपदा आ उपस्थित होती है। बुखार एकाएक मयूराक्षी की वह घोड़ा-बाढ़-सा ही एकबारगी बढ़ जाता है। लड़का बेचारा सिर धुनने लगता है। उसके बाद उसके हाथ-पाँव खिंचने लगते हैं! बस कुछ घण्टों में सब समाप्त। दस बच्चों में बहुत तो दो-तीन बचते हैं, सात-आठ मर जाते हैं।

परसों रात को पातू मोची का बच्चा चल बसा। पातू की बीवी के काफी उम्र तक कोई बच्चा नहीं हुआ। महज दो साल पहले उस बच्चे से उसकी गोद भरी थी। लोग-बाग कहते हैं—वह बच्चा इस गाँव के हरेन्द्र घोषाल से पैदा हुआ है। लोग-बाग ही नहीं, पातू की माँ, दुर्गा भी कहती है। घोपाल से अपनी स्त्री के गुप्त प्रेम की बात पातू को भी मालूम है। पहले, जब पातू को चाकरान जमीन थी,• वह ढाक बजाकर दो पैसे पैदा किया करता था। उस समय वह मातब्बर था। इज्जत-आबरू की तरफ सख्त नजर थी। उस समय दुर्गा की बदचलनी से उसे बड़ी शर्म आती थी। दुर्गा को उसने जाने कितनी बार झिड़का था, कभी-कभी पीटा भी था। उस समय उसकी स्त्री भी एक अलग ही स्वभाव की थी। पातू से वह बहुत डरती थी, उस पर उसे रुझान भी थी। मोटी-ताजी बिलैया-सी वह हरदम घर के काम-काज में घुर-घुर करती रहती थी। उसकी सास ने बहू को जवानी का रोजगार करने के लिए बहुत-बहुत लोभ-लालच दिखाया था, लेकिन उस समय वहू किसी भी प्रकार से राजी नहीं हुई। उसके बाद श्रीहरि घोष के आक्रोश से पातू के जीवन में एक हेर-फेर आ गया। खेत-पथार गया, पातू ने बजाने का पेशा छोड़ा, रोज-मजूरी शुरू की। इस हालत से पातू कैसे बदल गया—यह स्वयं पातू भी नहीं जानता।

घर में दाने नहीं रहने से दुर्गा से उधार-पुधार लेता। लिहाजा दुर्गा पर डाँट-फटकार करना छूट गया। उसके बाद एक दिन पातू की माँ ने कहा, "पातू दुर्गा रात को कंकना जाती है। अगर तू उसके साथ जाया कर तो बाबुओं से तुझे भी तो बख्शीश मिले। और फिर यह अकेली जाती है, किसी दिन रात-विरात में कोई आपद्-विपद् आये तो क्या होगा? आखिर तेरी माँ के पेट की बहन है।"

बाबुओं के अभिनय की महफिल में दुर्गा को साथ लेकर जाते-जाते पातू इसका भी आदी हो गया। इसी बीच एक दिन उसे पता चला कि उसकी स्त्री भी

इस व्यवसाय में जुट गयी है। शाम के बाद घोषाल को टोले के किसी एकान्त में घूमते देखा जाने लगा और पातू की बीवी भी उधर को जाती दिखाई पड़ने लगी। एक दिन पातू की माँ ने अपनी आँखों देख लिया और चिल्ल-पों मचा बैठी। दुर्गा ने कहा, "चुप हो जा माँ। घर की बहू है छिः।"

पातू ने न तो माँ को चुप होने के लिए कहा और न बीवी को ही डाँटा-फटकारा। वह चुपचाप घर से निकल गया। उसकी बीवी डर से मैके भाग गयी थी। कई दिनों के बाद खुद पातू ही जाकर उसे लिवा लाया था। कुछ दिनों के बाद पातू की बीवी ने उस बच्चे को जन्म दिया।

टोलेवालों ने कानाफूसी की—"बच्चा देखने में घोषाल-जैसा हुआ है। रंग जरा काला हुआ है।..."

लड़के की शरारत देखकर पातू ने भी बहुत बार कहा, "ब्राह्मण की अकल की मिलावट है न, कम्बख्त की शरारत देख जरा।"—और वह स्नेह से हँस पड़ता।

बच्चे को वह प्यार करता था। तीन ही दिन के बुखार में बच्चा चल बसा। दुर्गा भी उसे बहुत चाहती थी। उसने डॉक्टर से दिखाया था। जगन को जब-जब भी बुलाया, नकद रुपये दिये। नियम से दवा खिलायी। फिर भी नहीं बचा वह।

अचम्भा इस बात का कि इससे पातू की स्त्री उतनी मायूस नहीं हुई, जितना मायूस हुआ पातू। मोटे गले से फुक्का मारकर रोते हुए उसने समूचे मुहल्ले को बेकल कर दिया।

आफत की उस रात में सतीश ने आकर उसे सँभाला—दिलासा दिया। बाउरी और मोची टोले में सतीश मण्डल एक आदमी है। उसको हल है, घर में दो मुट्ठी अन्न का ठिकाना है। मनसा के भसान दल का वही मातब्बर है, घेंटू दल का मूल गायक है, तरह-तरह के गीत जोड़ता है इसलिए हरिजन मुहल्ले के लोग उसे मानते हैं। उसी ने बच्चे के शव के संस्कार का इन्तजाम किया। दूसरे दिन पातू को बुलाकर अपने घर लिवा गया, वहाँ से देबू के बैठक में ले गया।

देबू का बैठका इस समय सदा गुलजार रहता है। गाँव के तथा आस-पास के गाँवों के बारह-तेरह से लेकर अट्ठारह-उन्नीस साल के लड़के आते-जाते ही रहते हैं, गुल-गपाड़ा करते रहते हैं। तिनकौड़ी का बेटा गौर उन सबों का सरदार है। पातू भी कई दिनों से यहीं के काम में लगा हुआ है। लड़कों के साथ-साथ वह बोरा ढोता चलता है। गाँव-गाँव से मुठिया का चावल ढोकर ला देता। उसकी इस मुसीबत में सहायता-समिति की ओर से चावल देने की व्यवस्था हो गयी। बात सतीश ने उठायी।

देबू किसी गम्भीर चिन्ता में मग्न था। सतीश ने जैसे ही बात उठायी कि सचेत होकर उसने कहा, "जरूर-जरूर। पातू का इन्तजाम करना ही होगा। जरूर!"

पातू के लिए चावल का इन्तजाम देबू ने कर दिया। चावल ले जाया करती

दुर्गा। वह सुबह ही जमाई-पण्डित के यहाँ जाती। बाहर से घर-गिरस्ती की साफ-सफाई, काम-काज, जो भी होता, देबू के यहाँ वह भरसक उतना ही करती; सहायता-समिति का चावल मापा करती। सवेरे जाती और दोपहर को खाने के वक्त लौटती। खा-पीकर जाती तो शाम के बाद लौटती। इन दिनों वह सदा व्यस्त रहती है। बनाव-सिंगार की तरफ ध्यान देने की भी उसे फुरसत नहीं।

वह सवेरे देबू के यहाँ गयी। पातू की माँ ओसारे पर बैठी पोते के लिए शिकायत करती हुई रो रही थी। उसकी शिकायत सबके खिलाफ थी। वह रो रही थी—"यह सर्वनाश दुर्गा के पाप से हुआ। और पापिन बहू बाम्हन के शरीर में पाप लगाकर अपने महापाप की भागिन बनी है। उसी पाप से इतना बड़ा अनर्थ हुआ। मूरख-गँवार पातू ने देवस्थान में ढाक बजाना छोड़ दिया है। देवता के रोष से ही उसका पोता मर गया। सारा गाँव पाप से भर गया। इसीलिए मयूराक्षी का बाँध टूटा, काल बनकर बाढ़ आयी। इसीलिए महामारी-जैसा यह बुखार आया है। गाँव के पाप से उसी बुखार में उसका पोता मर गया, पतिकुल, पुत्रकुल निर्वंश होने को है!"

टोले में यहाँ-वहाँ और भी कई घरों में रोना-धोना चल रहा था। पातू घर के पिछवाड़े अकेले बैठकर रो रहा था। आज सतीश नहीं था। दूसरे किसी ने बुलाया नहीं। वह भी नहीं गया।

रोना बन्द करके पातू की माँ अचानक आयी। पातू के सामने बैठकर हाथ हिलाती हुई बोली, "अब गज़ब मत ढा बेटे, मत रो! दूसरे के बेटे के लिए अब अफसोस मत कर! उठ! उठकर कुछ इमखोल काट ला! घर की टूटी दीवारों को घेर ले। काम-काज कर।"

बाढ़ में पातू के घर की एक दीवार गिर गयी थी। दुर्गा के कोठा घर के निचले कमरे में वह इस समय रह रहा था। उस कमरे का उपयोग अब तक पातू की माँ किया करती थी।

पातू की माँ बोली, "रोग-शोक से मेरे पंजरे की हड्डियाँ झँझरी हो गयीं। रात को सोती हूँ और तुम दोनों फोंस-फोंस करके रोते हो, मुझे नींद नहीं आती। तुम लोग अपना घर बनवा लो। कितनों के तो घर गिरे। सबने जैसा बना, बना-बनू लिया अपना। तुम्हारा ही नहीं बन सका।"

पातू की माँ ने गलत नही कहा। बाढ़ से बस्ती का कोई भी घर पूरा-पूरा साबुत नहीं बचा था। किसी का ज्यादा, किसी का कम नुकसान हुआ। किसी की पूरी, किसी की अधूरी, तो किसी की दो-दो दीवारें गिर गयी थीं। दो-चार आदमी का पूरा घर ही गिर पड़ा था। लेकिन इन बीस-पचीस दिनों में सबने कुछ-न-कुछ व्यवस्था कर ली। किसी ने ताड़ के पत्तों से घेर लिया। जिनका पूरा का पूरा घर ही गिर गया था, उन्होंने छप्पर बनाया और ताड़ के पत्ते की चटाई से घेरकर सिर छिपाने की गुंजाइश कर ली। घोष बाबू—श्रीहरि घोष ने दिल खोलकर लोगों की मदद की। कह

भी दिया कि जितने भी ताड़ के पत्ते की जरूरत जिसे हो, काट ले। दो या एक के हिसाब से उसने बहुतों को बाँस भी दिया। लेकिन पातू श्रीहरि घोष के पास नहीं गया। जाने पर भी घोष उसे देता या नहीं, इस बात में सन्देह है। क्योंकि सतीश बाउरी को उसने कुछ भी मदद नहीं दी। कह दिया, तुम तो बाबा गरीब नहीं हो!

सतीश अवाक् रह गया। वह बड़ा आदमी कैसे बन गया? श्रीहरि ने कहा, "पहले तुम टोले के मातब्बर थे, अब गांव के हो। न केवल इसी गांव के बल्कि पंचग्राम के एक मातब्बर हो। सहायता-समिति तुम्हारे हाथ में है। तुम लोगों की मदद कर रहे हो, भला मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूं!"

समझ-बूझकर सतीश वहां से उठ आया था।

लेकिन यह सुनकर पातू हंसा था। बोला, "सतीश भाई, इस साले की मैं शकल तक नहीं देखता। साले की शकल देखने से पाप होता है। मैं मर भी जाऊं, मगर उसके दरवाजे नहीं जा सकता!"

पातू गया नहीं। दुर्गा के सूखे घर में रसोई-पानी की जगह मिल गयी, सो अपने घर की मरम्मत की उसने चेष्टा भी नहीं कि। रात में उनके सोने की जगह ठीक-ठाक थी ही। देबू की स्त्री के मर जाने के बाद से दुगा ने पातू के लिए वह नौकरी ठीक कर दी थी। शाम को खा-पीकर वह अपने बीवी-बच्चे के साथ देबू के यहां जाकर सोता। बच्चे के मरने के बाद कई दिनों से वे दुर्गा के ही यहां सो रहे थे। लिहाजा अपने घर की मरम्मत की कोई खास इच्छा ही उसकी नहीं थी। उसके मन की जो इच्छाएं थीं, वे भी बहुत पहले गायब हो चुकी थीं। रसोई-पानी, सोने-बैठने की जगह के सिवा मनुष्य को जिस कारण से घर बनाने की जरूरत होती है, वह पातू के नहीं है। घर में वह रखेगा भी क्या? रखने-जैसी कोई चीज भी तो नहीं है उसे। खेत के लिए घोष से मुकदमा लड़ने में उसके सारे बरतन बासन बिक गये। वह बजनिया है—पहले उसे दो ढाक थे, एक ढोल भी था। बजनिये के बिना मुनाफे का पेशा छोड़ देने से वह भी चला गया। पहले चमड़ा का एक सहारा था—अब वह भी नहीं है। रुपये लेकर मवेशियों के मरघट का बन्दोबस्त जमींदार ने कर दिया है। वह कारबार भी अब नहीं रहा। कारबार नहीं रहा तो रुपये-पैसे की आमदनी भी बन्द हो गयी। सो घर में वह रखे भी क्या और घर को सजाएगा भी किस चीज से? बपौती शाल-दुशाले बिक जाने के बाद से पुराने सन्दूक-पिटारे की तरह यह भी नाहक ही उसकी जिन्दगी की सारी जगह को घेरे हुए था। बाढ़ से घर की एक तरफ की दीवार बैठ गयी, मानो काठ के खाली बक्स के एक ओर को दीमकों ने चाट लिया। पातू न तो उसे अब हिलाना चाहता था न डुलाना। बाकी को भी दीमक चाट लें तो वह जी जाए मानो। बीच-बीच में उसने यह सोचा कि यह घर गिर जाए तो इस जगह में वह लौकी-कोंहड़ा लगाये। उससे काफी-कुछ होगा कुछ खाएगा, कुछ बेचेगा।

माँ की बात सुनकर पातू का मन दुःख से, क्रोध से जैसे जहरीला बन गया। तेल लगने से कटा घाव जैसे विषाक्त हो उठता है, वैसे ही पीड़ादायक विषाक्त हो गया। माँ से उसने कुछ नहीं कहा। वह वहाँ से उठकर चला गया।

जाए भी कहाँ! बस सतीश का घर था। लेकिन चूँकि आज सतीश नहीं आया, इसलिए रूठकर वह वहाँ नहीं गया। दूसरा था देबू का वैठका। लेकिन वह भी पातू को अच्छा नहीं लगा। वहाँ देश की छोड़कर दूसरी कोई बात ही नहीं होती। आज वह महज अपनी बात कहना, दूसरों से सुनना चाहता था कि सचमुच उसका दुःख कितना बड़ा और मार्मिक है। वह जानना चाहता है कि पातू के दुःख से लोगों को कितना दुःख हुआ है। दस की बात, दस गाँवों की बात उसे इस समय सुहाती नहीं थी।

पातू बैहार की ओर चला।

मगर बैहार में भी क्या है! सारी वैहार को बाढ़ ने बरबाद कर दिया है। यहाँ बालू धू-धू कर रही है तो वहाँ गड्ढे में पानी जमा है। जिन खेतों का वैसा कुछ नुकसान नहीं हुआ, वे चौचीर हो गये हैं, उनके तो हाड़-पँजरे निकल आये हैं। चारों ओर ऊँचे-नीचे ऊबड़-खाबड़ कुछ खेतों में फिर से धान जरूर बोया गया है। बाढ़ की लायी हुई माटी की उपजाऊ शक्ति से धान के पौधे गजब के जोरदार हो उठे हैं। और भी बहुत-से खेत बोये जा सकते थे, पर बीज नहीं था। बीज भी शायद मिलता, गुरुजी ने बीज का प्रबन्ध किया था, घोष भी देने को तैयार था। लेकिन मलेरिया ने मानो खेतिहरों की हड्डी-पसली तोड़ दी।

—कि किसी के ऊँचे गले का गीत सुनाई पड़ा। आवाज पहचानी हुई थी। सतीश-जैसा गला लग रहा था।—हाँ, सतीश ही है। मयूराक्षी के बाँध पर से आ रहा है। गया कहाँ था सतीश! वह हँसा। सतीश की हालत मोटा-मोटी अच्छी है। खेत है, हल है। काम ही कितना है उसे! किसी काम से निकला होगा। काम बन गया, इसीलिए खुशी से गाता हुआ लौट रहा है। उसकी हालत कुछ पातू-जैसी तो नहीं है! उसकी जमीन भी नहीं गयी है। और वह यों तबाह भी नहीं हुआ है। उसका बच्चा भी नहीं मरा। वह गीत क्यों नहीं गाएगा! पातू से एक दीर्घ निःश्वास छोड़े बिना नहीं रहा गया।

"गो-सेवा तुम करो अरे मन, गो-धन बहुत बड़ा धन।..." अच्छा, तो सतीश गो-धन माहात्म्य गा रहा है!—

"दीन-दरिद्रों की लछमी वह शिव का है वाहन,
तुष्ट रहे गो माता तो फल-फूल उठे जीवन!..."

पातू को देखकर सतीश ने गाना बन्द कर दिया। बड़े दुःख के साथ बोला, "रहम शेख के बैल का जोड़ा, दोनों का दोनों मर गया!"

पातू उसकी ओर ताकता रह गया।

सतीश ने कहा, "रात रहते ही मुझे बुला ले गया। कुछ नहीं कर सका। शेख

छाती पीट-पीटकर रो रहा है। अहा, क्या खूबसूरत थे दोनों बैल!"—कहते-कहते सतीश की भी आँखों में पानी भर आया। आँखें पोंछकर उसने उसाँस ली।

पातू ने पूछा, "हुआ क्या था?"

गरदन हिलाकर सतीश ने कहा, "समझ नहीं पाया। लेकिन हाँ, कोई बड़ा ही रोग था। बुखार जैसे बच्चों की पूँजी खत्म किये दे रहा है, यह रोग वैसे ही मवेशियों को झाड़-पोंछकर ले जाएगा। बड़ा बुरा है!"

सतीश बाउरी इलाके का बहुत बड़ा गो-चिकित्सक भी है। इसीलिए रहम का बैल बीमार पड़ा तो उसने इसी को बुलाया।

रहम सच ही छाती पीटकर रो रहा था।

बड़े प्यारे थे रहम को वे बैल। अपनी जो स्थिति है, उससे भी ज्यादा पैसे देकर उन बैलों को उसने छोटे थे, तभी खरीदा था। जतन से पाला-पोसा। दँवाई करके हल जोतने योग्य बनाया। तन्दुरुस्त, मजबूत और सुन्दर बैल दोनों इलाके में रश्क करने की चीज थे। रहम ने उन दोनों का नाम भी रखा था—एक का प्रह्लाद, दूसरे का अकाई। प्रह्लाद और अकाई इलाके के मशहूर बलवान् जवान थे। उन बैलों का रहम को फख्र कितना था! अच्छी सड़क से जब वह अपनी गाड़ी लिये जाता और लोगों पर नजर पड़ती तो बैलों के पेट में पैर के अँगूठे की ठोकर लगाता और पीठ पर उँगली लगाकर नाक से एक अजीब-सी आवाज निकालकर बैलों को दौड़ा देता। कहता 'शेर का बच्चा है शेर का! अरबी घोड़ा!' कभी राहगीरों को चिल्लाकर होशियार कर देता, 'हटो-बचो!'

बरसात के दिनों में किसी की गाड़ी काँदो में फँस जाती, जाड़ों में धान से लदी गाड़ी गड्ढे-वड्ढे में गिर पड़ती, तो रहम अपने प्रह्लाद और अकाई को लेकर वहाँ हाजिर हो जाता। उनकी गाड़ी के बैलों को खोलकर प्रह्लाद और अकाई को जोत देता। ये दोनों बैल झट गाड़ी को निकाल देते। गर्व में रहम के बड़े-बड़े दाँत आप ही चुपचाप निकल पड़ते। इलाके में श्रीहरि घोष के सिवा इतने अच्छे हल के बैल और किसी के पास नहीं थे। श्रीहरि ने अपने बैलों की कीमत साढ़े तीन सौ रुपये दी थी।

रहम छाती पीटकर रो रहा था।

रोये नहीं भला? बैल उसके लिए लायक लड़के से भी ज्यादा थे। बड़े आदर और बड़े प्यार के थे—काम-काज में उसके दो हाथ कहिए उन्हें। कन्धे पर खाद ढोने, कलेजे की ताकत लगाकर खेत जोतते—योग्य लड़के जिस तरह बूढ़े माँ-बाप को कन्धे-पीठ पर उठाकर पाथर-पपड़ी के पीर का दर्शन करा लाते हैं, ये बैल रहम को, उसके परिवार को गाँव-गाँव घुमा लाते थे, खेत की फसल घर पहुँचाते थे। इस खौफनाक बाढ़ में खेत की फसल सड़ गयी, तो भी प्रह्लाद और अकाई की मदद से रहम ने अपनी आधी से अधिक जमीन में फिर से धान रोप लिया। बाकी जमीन

में क्वार के महीने में खेती की सोच रखी थी। अब वह खेती कैसे करेगा? और जिन खेतों में रोपा करा चुका है, उसी की फसल कैसे अपने घर लाएगा?

एक बार इदुज्जुहा के समय उसने इरशाद से एक कहानी सुनी थी।—'एक बड़े ही धार्मिक मुसलमान ने कुर्बानी करने की सोची। उसने अच्छी तरह से सोचकर देखा कि दुनिया में उसे सबसे प्यारी कौन-सी चीज है। और उसने खेती करनेवाले अपने सबसे अच्छे बैल की कुर्बानी की थी!' किस्से को सुनकर उसका कलेजा धड़क-धड़क उठा था। बार-बार उसे अपने प्रह्लाद और अकाई की याद आयी थी। दो-तीन दिनों तक वह ठीक से सो नहीं सका था।

रहम आदमी गँवार है। अक्ल उसकी उतनी तेज नहीं है, लेकिन उसके हृदय का आवेग बहुत प्रबल है। वह बिलकुल बच्चे की तरह रो रहा था। दूसरे-दूसरे मुसलमान खेतिहर भी आये थे। वे भी वास्तव में दुःखी हुए—अहा, इतने अच्छे जानवर मर गये! वे लोग भी रहम के बैलों पर गाँव के होने के नाते दूसरे गाँववालों के सामने नाज करते थे। दुर्गापूजा की दशमी को बैलों की एक प्रतियोगिता होती है। घोड़े की दौड़ जैसी दौड़ की होड़ थी। मयूराक्षी के चौंर पर लोग एक निश्चित जगह पर से अपने बैलों को छोड़ देते हैं। पीछे से जोरों से ढाक बजता है। चौंककर बैल दौड़ना शुरू कर देते हैं। निश्चित जगह को जो बैल सबसे पहले पार कर लेता है, वही इलाके का श्रेष्ठ बैल माना जाता है। उस बार श्रीहरि के जोड़े को यह सम्मान मिला था। दूसरे साल तिनकौड़ी रहम के जोड़े को ले गया था। कहा था, अरे भाई, मुझे उधार दे। मैं साले छिरू पाल का घमण्ड तोड़ दूँ।

रहम ने ना नहीं किया। वह खुद मुसलमान है, पर बैल तो उसके बैल ही हैं—न हिन्दू, न मुसलमान। और श्रीहरि का गुमान तोड़ देने से उसे तिनकौड़ी से कुछ कम खुशी नहीं होगी। उस बार रहम के प्रह्लाद ने सबको शिकस्त दी। प्रह्लाद के बाद श्रीहरि के बैल पहुंचे और उनके बाद रहम का अकाई।

इरशाद ने आकर रहम का हाथ पकड़ा—"उठो चाचा, उठो। क्या करोगे! इनसान का बस ही क्या है। फिर देख-सुनकर अच्छे बछड़े का जोड़ा खरीद लेना! फिर हो जाएंगे। इनसे भी संजीदे होंगे, देख लेना!"

रहम ने कहा, "नहीं बापजान, अब नहीं होने के। मेरे प्रह्लाद और अकाई जैसे नहीं होने के। नहीं और, इरशाद"— आँसू-भरी पैनी आँखें उठाकर उसने कहा, "मेरी इन हड्डियों से अब नहीं होने का। मेरे है क्या? किससे होगा?"

इरशाद ने कहा, "हाँ, रुपयों का इन्तजाम मैं करा दूँगा चाचा। मैं जबान देता हूँ। उठो।"

ऐन वक्त पर तिनकौड़ी आ पहुँचा। बैलों के मरने की खबर सुनकर वह दौड़ा आया था। उसे देखकर रहम फूट-फूटकर रोने लगा—"तिनू भाई, मेरा कैसा सर्वनाश हो गया, देखो!"

तिनकौड़ी आँखें फाड़कर मरे हुए बैलों को देख रहा था। वह प्रह्लाद की लाश के पास जाकर बैठा। उस पर हाथ फेरा और एक लम्बी उसाँस लेकर बोला, "आह, दो-दो ऐरावत। आः, इन्द्रपात हो गया!" उसकी आँखों से टपाटप आँसू की बूँदें चू पड़ीं।

आँखें पोंछकर बोला, "सुना महागराम में भी कई बैलों को रोग हुआ है।" खेतिहरों ने चौंककर पूछा, "महागराम?"

"हाँ"—गरदन हिलाकर तिनकौड़ी ने कहा, "बच्चों की तरह गो महामारी भी शुरू हो गयी, देखता हूँ। सतीश बाउरी ने बताया, "बीमारी कुछ समझ में ही नहीं आ रही है।"

इरशाद तथा दूसरे खेतिहर बहुत सोच में पड़ गये।

तिनकौड़ी ने कहा, "मवेशी डॉक्टर के लिए देबू ने ज़िले में तार भेजा है। और हाँ, इरशाद चाचा, देबू ने तुम्हें जरूर से जरूर जाने को कहा है। कल रात कलकत्ते से बिशू बाबू और दूसरे कौन-कोन तो आये हैं। तुम्हें जाने को कहा है। जरूर!"

अचानक जरा अजीब-सा हँसकर वह बोला—"मैंने महागराम में देखा, रमेन चटर्जी और दौलत का आदमी मोची टोले में घूम रहे हैं। मैं समझ गया, प्रह्लाद और अकाई की खाल छुड़ाने की ताकीद करने गये हैं! इसी को कहते हैं, किसी का सर्वनाथ और किसी को खुशी!"

रहम पागल-सा हो उठा—"मैं मरघट में इन्हें नहीं फेंकूँगा, माटी में गाड़ दूँगा।"—उसके बाद इरशाद का हाथ पकड़कर बोल उठा—"इरशाद, तो यह उन्हीं लोगों का काम है!"

"क्या?"—इरशाद ने अचरज से पूछा।

"मोचियों से उन लोगों ने जहर दिलवा दिया!"

तिनकौड़ी ने निःश्वास छोड़ा। कहा, "नहीं-नहीं भाई, यह जहर-वहर नहीं, बीमारी ही है। महामारी—गोरू-महामारी! उन लोगों ने मवेशी-मरघट बन्दोबस्त लिया है, मुनाफा तो उन्हें होगा ही।"

इरशाद ने कहा, "तो अभी मैं चलूँ चाचा। चूल्हे पर भात चढ़ा अया हूँ। जल जाएगा। तीसरे पहर जरा देबू भाई के पास जाना होगा। तिनू चाचा ने बतलाया कि बिशू भाई आया है। देखूँ, क्या कहता है।"

छमीर शेख बड़ा ही गरीब है। मजूरी करके गुजारा चलाता है। शरीर से कमजोर। रोगी होने से मजदूरी भी वैसी नहीं मिलती। यह दुस्सह अवस्था उसकी सदा की है। आदी हो गया है उसका। बीच-बीच में भीख भी वह माँगता है। बाढ़ के बाद यह 'सहायता-समिति' जो खुली है, इससे वह इरशाद का बड़ा फरमाँबरदार बन गया है। इरशाद के पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर कहा, "इरशाद भाई!"

इरशाद ने पलटकर देखा—"छमीर शेख!—क्या है छमीर?"

"देबू गुरुजी के पास जाओगे? मेरे और कबीले के लिए अगर दो कपड़े के लिए कह दो...! पुराने से भी काम चल जाएगा।"

इरशाद ने कह दिया—"अच्छा।"

इरशाद ने बिशू को बहुत बार देखा है। लेकिन कभी खास बात-वात नहीं हुई। बिशू जब कंकना के स्कूल में 'फर्स्ट क्लास' में पढ़ता था, उसी समय इरशाद अपने ननिहाल से मिडिल पास करके वहाँ दाखिल हुआ था। उम्र में वैसा फर्क नहीं था। इरशाद ही उससे लगभग साल-भर बड़ा था। लेकिन फर्स्ट क्लास और फोर्थ क्लास का अन्तर स्कूल-जीवन में इतना होता है कि दोनों में परिचय जमने का मौका नहीं मिला। उसके बाद इरशाद मकतब का मोलवी बना और धर्म की बातों में मशगूल-सा हो गया। सो वह बिशू से जरा विरूप हो गया। क्योंकि बिशू हिन्दू—ब्राह्मण—पण्डित के परिवार का था। लेकिन फिलहाल देबू से घनिष्ठता होने के कारण उसका वह दुराव धीरे-धीरे दूर होता जा रहा था। देबू से विश्वनाथ के बारे में सुनकर वह हैरान हो गया है। बिशू में कट्टरता जरा भी नहीं है। मुसलमान, क्रीस्तान, यहाँ तक कि अछूतों को छूकर भी वह नहाता नहीं है।

देबू ने कहा था—"तुम्हें देखते ही वह तुम्हारे हाथ पकड़ लेगा, तुम देख लेना इरशाद भाई!"

विशू के पत्र उसे बहुत अच्छे लगे। बाढ़ के बाद बाढ़-सहायता-समिति का समाचार भेजकर जिस दिन उसने रुपये भेजे, उस दिन वह अवाक्-सा रह गया। विश्वनाथ से उसका साक्षात् परिचय न होने के बावजूद उसे लगा कि यह एक नयी किस्म का आदमी है। कंकना के बाबू-परिवार में इस किस्म का लड़का कोई नहीं है। उसके जाने-चीन्हे मियाँ-मुकादिमों के यहाँ भी नहीं, उसकी अपनी बस्ती में तो नहीं ही है। उसे लगा, विश्वनाथ से उनके मेल न होने का कोई प्रश्न ही नहीं। देबू को लिखे उसके खतों में विश्वनाथ की बातचीत में दोस्ती का खासा सुर है, जो पल में दिल को छू लेता है। वह उसे देखने का आग्रह लिये ही चला। सोच रहा था कि विश्वनाथ जब उसके हाथ पकड़ लेगा तो वह क्या कहेगा? बिशू बाबू? कि भाई साहब? या कि बिशू भाई? देबू तो बिशू भाई कहता है। लेकिन तुरत ही उसका बिशू भाई कहना क्या ठीक होगा?

देबू के घर के कुछ ही आगे जगन डॉक्टर का दवाखाना है। डॉक्टर एक कुरसी पर बैठा गम्भीर होकर बीड़ी पी रहा था। इरशाद को जरा अचरज हुआ। डॉक्टर भी सहायता-समित का एक पण्डा है। खास करके इस तबाह करनेवाले मलेरिया के समय, सहायता-समिति के नाम से जिस तरह लोगों का इलाज कर रहा है, उससे

उसकी मदद भी रुपयों के किसी मोटे अंक से कम नहीं है। आज बिशू आया और डॉक्टर यहाँ बैठा हुआ है! इरशाद ने कहा, "सलाम डॉक्टर!"

डॉक्टर ने भी कहा, "सलाम!"

हँसकर इरशाद ने कहा, "क्या हाल है, आप बैठे हैं?"

"क्या करूँ, नाचूँ?"

इरशाद को जरा चोट लगी। दुःखित विस्मय से उसने जगन के मुँह की तरफ देखा। जगन ने कहा, "कहाँ जाओगे? देबू के यहाँ?"

नीरस कण्ठ से इरशाद बोला, "हाँ, सुना विश्वनाथ आया है। एक बार महाग्राम जाने की सोचता हूँ।"

"वह महाग्राम में नहीं है। जंक्शन के डाक-बँगले में ठहरा है। देबू भी वहीं है।"

"जंक्शन में?"

"हाँ"—कहकर डॉक्टर बीड़ी धौंकने लगा। और फिर आगे बात नहीं की।

उससे कुछ आगे हरेन घोषाल का घर। घोषाल उत्तेजित-सा अपने घर के सामने घूम रहा था। वह आप ही आप संस्कृत का श्लोक बोल रहा था—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः।'

इरशाद कुछ और हैरान हुआ। घोषाल भी नहीं गया है! उसने अचरज से पूछा, "भाई घोषाल, माजरा क्या है?"

उछलकर अपने ओसारे पर जाकर घोषाल ने कहा, "जाओ-जाओ, बिशू बाबू ने खाना परोसकर रखा है, खा आओ!"—और अन्दर जाकर उसने धड़ाम से दरवाजा बन्द कर लिया।

वहाँ से कुछ और आगे गाँव का चण्डीमण्डप है—श्रीहरि घोष की ठाकुरबाड़ी। उस ठाकुरबाड़ी के नाट्यमन्दिर में खासी भीड़ जमा थी। श्रीहरि गम्भीर होकर पायचारी कर रहा था। पुरनिये लोग उदास-से बैठे थे। बात सिर्फ घोष का कारिन्दा दास कर रहा था—कंकना के बड़े बाबू तो अजगर की तरह फुफकार रहे हैं—"समझ गये? कह रहे हैं—मैं नहीं छोड़ता, चाहे महामहोपाध्याय हो, चाहे पीर हो, इसका उपाय मैं करके ही रहूँगा।"

इरशाद को अब शुबहा नहीं रह गया। कुछ-न-कुछ गोलमाल जरूर हुआ है। वह सोचने लगा, कहाँ जाए? डॉक्टर ने बताया--"विश्वनाथ जंक्शन के डाक-बँगले में है। देबू वहीं है। जंक्शन जाना ही ठीक रहेगा, मगर उससे पहले किससे ठीक-ठीक खबर मिल सकती है?"

—कि उसकी नजर पड़ी, देबू के बसमदे पर दुर्गा खड़ी है। इरशाद जल्दी से गया। पूछा, "दुर्गा, देबू भाई कहाँ है?"

दुर्गा ने उदास मुँह से कहा, "महाग्राम गया है, न्यायरत्नजी के यहाँ।"

"महाग्राम? लेकिन डॉक्टर ने तो बताया कि जंक्शन गया है?"

एक लम्वा निःश्वास छोड़कर दुर्गा बोली, "वहाँ से न्यायरत्नजी के साथ महाग्राम गया है।"

"बात क्या है? बताओ तो सही! देख रहा हूँ सब लोग हलचल मचा रहे हैं।"

दुर्गा की आँखों में आँसू आ गया। कपड़े के अँचरे से आँसू पोंछकर गले को साफ करके बोली, "बड़ा गजब हो गया है शेख साहब! सुना कि न्यायरत्नजी के पोते ने जनेऊ उतारकर फेंक दिया है। जाने किन-किन के साथ बैठकर खाया है। न्यायरत्नजी ने अपनी आँखों देखा है। सुना, वे थर-थर काँपते हुए मयूराक्षी की रेती पर गिर पड़े थे। इलाके के लोग इस बात पर हाय-तोबा कर रहे हैं। देबू गुरुजी न्यायरत्नजी को सँभालकर महाग्राम, उनके घर गया है।"

इक्कीस

न्यायरत्नजी को अपने जीवन में यही शायद सबसे बड़ा आघात था।

प्रौढ़ता के पहले चरण में बेटे से मत का मेल नहीं होने के फलस्वरूप उन्हें बड़ी भारी चोट लगी थी। उनके बेटे शशिशेखर ने आत्महत्या कर ली थी। चलती गाड़ी के सामने वह कूद पड़ा था। बाद में मांस का एक लोथड़ा ही मिला था। न्यायरत्न ने काठ का मारा-सा खड़ा होकर स्थिर भाव से उस दृश्य को—बेटे के मांस-पिण्ड को देखा था। इधर-उधर छिटके पड़े मांस, मेद, मज्जा, हड्डियों को जतन से बटोरकर उसी का दाह-संस्कार किया था। पोता विश्वनाथ उस समय नन्हा था। पतोहू से उसका क्रिया-कर्म कराया था। बाहर से उनमें जरा भी चंचलता किसी ने नहीं देखी। लेकिन आज वे थर-थर काँपते हुए मयूराक्षी की गरम रेती पर बैठ पड़े! विश्वनाथ के बहुत विद्रोह को वे सहते रहे हैं। वह उनके आदर्श एवं पुनीत कुलधर्म के सर्वथा विरोधी विचार रखता है, उन चीजों को कतई नहीं मानता—इसे वे पहले से ही जानते थे। पोते से बहुत बार उनका तर्क हो चुका है। तर्क में उसके मौखिक विद्रोह को उन्होंने बरदाश्त किया है। मन-ही-मन अपने को महज एक द्रष्टा के आसन पर बिठाकर, विश्व-संसार के सारे-कुछ को महाकाल की समझी जा सकनेवाली लीला मानकर सब-कुछ से लीला देखने के आनन्द-रस का स्वाद लेने की चेष्टा की। लेकिन आज पोते के मौखिक विचारों को वास्तव का रूप लेते देख,

तर्क की बगावत को कार्यरूप में प्रत्यक्ष होते देख लमहे-भर में उनके मन की दुनिया में एक विपर्यय हो गया। आज धर्म-द्रोही, आचार-भ्रष्ट पोते को देख तीखे करुण और रौद्र रस से चंचल और अभिभूत हो अपने अजानते ही जाने कब वे निरासक्त दर्शक के आसन से अलग हो अभिनय के रंगमंच में उतरकर खुद ही महाकाल के क्रीडनक हो उठे।

कई दिनों से वे विश्वनाथ की प्रतीक्षा में थे। जया को उसने एक पोस्टकार्ड में लिखा था कि कुछ लोगों के साथ वह यहाँ आएगा। न्यायरत्न ने लिख भेजा था—"तुम लोग कितने जने आ रहे हो, लिखना। यह भी लिखना कि किसी के लिए कुछ खास व्यवस्था की जरूरत है या नहीं।" मगर विश्वनाथ ने उन्हें उस पत्र का जवाब नहीं दिया। कल शाम को देबू ने उन्हें सूचित किया था कि रात को डेढ़ बजे की गाड़ी से विशू भाई दूसरे कुछ कार्यकर्ताओं के साथ जंक्शन में उतरेगा। लेकिन यह लिखा है कि रहने का इन्तजाम वे जंक्शन के डाकबँगले में ही करेंगे।

न्यायरत्न मन-ही-मन क्षुब्ध हुए थे। रात को घर आने में कौन-सी असुविधा होती? घर में आज भी दो मेहमानों के भोजन रखने का नियम है। कोई नहीं आते हैं तो वह भोजन सवेरे किसी गरीब को बुलाकर दे दिया जाता है। हर रोज सवेरे गरीब दरवाजे पर आकर खड़े रहते हैं। बासी हो, लेकिन वह उम्दा भोजन जूठा नहीं होता। गाँव के गरीब उसके लिए लुभाये रहते हैं। जया ने अब पारी बाँध दी है। उसी घर में विश्वनाथ को रात में अतिथि को लाने में हिचक हुई। हो सकता है, उसके मित्र सम्भ्रान्त हों। विश्वनाथ ने सोचा हो कि पुराने खयाल के गृहस्वामी उनको योग्य मर्यादा नहीं दे पाएँगे।

किन्तु जया ने इस बात को बहुत सहज-सरल बना दिया था। विश्वनाथ के प्रति उसे सन्देह होने का आज तक कोई कारण नहीं मिला। विश्वनाथ दादाजी से तर्क करता, उस तर्क का वह सिर-पैर कुछ नहीं समझती और वह शंकित हो जाती। फिर तर्क समाप्त हो जाने पर दादा-पोता के स्वाभाविक व्यवहार को देख वह चैन की साँस लेती। स्वामी से कभी इसके बारे में पूछने पर विश्वनाथ उसे हँसकर टाल जाता। कहता, "अजी वह सब हमारी पण्डिताऊ बकवास है! शास्त्र में कहा गया है कि अजायुद्ध और ऋषि-श्राद्ध आडम्बर और गुरुता में एक ही जैसे होते हैं। शुरू में तर्क-वितर्क-विचार-सभा देखी तो है—अब मारा कि तब मारा! सभा खत्म हुई कि विदाई माँगकर सब अपने-अपने घर में चले गये। हम लोगों का ठीक वही किस्सा है। सभा समाप्त हुई, अब विदा करो तो। तुम भी तो मकान-मालकिन हो!"—कहकर वह स्नेह से पत्नी को पास खींच लेता। जया ब्राह्मण-पण्डित की बेटी है—पढ़ाई-लिखाई वैसी नहीं की, तो भी अजा-युद्ध और ऋषि-श्राद्ध की उपमा सहित विश्वनाथ की युक्ति का वह रस लेती थी और तर्क के बुनियादी तत्त्व को भी कुछ-कुछ भाँप लेती थी।

जया ने कितनी ही बार पूछा, "तुम करना क्या चाहते हो, कहो तो?"

"माने?"

"माने दादाजी के साथ तर्क करते हो; कहते हो कि ईश्वर नहीं है। जाति-वाति नहीं मानते तुम! छिः, इतने बड़े आदमी का पोता होकर ऐसा कहना चाहिए?"

"नहीं कहना चाहिए, क्यों?"

"नहीं। नहीं कहना चाहिए।"

स्त्री की ओर देखते हुए विश्वनाथ हँसता। न्यायरत्न ने बहुत कम उम्र में उसका ब्याह करा दिया था। विश्वनाथ की माँ—न्यायरत्न की पतोहू—बहुत पहले ही गुजर चुकी थी। न्यायरत्न की स्त्री—विश्वनाथ की दादी के गुजर जाने के बाद ही जया ने इस घर की गृहिणी का भार लिया था। उस समय उसकी उम्र मात्र सोलह साल की थी। विश्वनाथ उसी साल मैट्रिक पास करके कॉलेज में दाखिल हुआ था। उस समय वह भी दादा के प्रभाव से प्रभावित था। हॉस्टल में रहता था। नियम से सन्ध्या—आह्निक करता था। उस समय कोई उससे नास्तिकता की बात कहता तो वह गेहुँअन के बच्चे की तरह फन उठाकर फोंस कर उठता। ऐसा भी हुआ है कि कभी-कभी तर्क में हारकर वह तमाम रात रोता रहा है। लेकिन उसके बाद धीरे-धीरे विशाल महानगरी के रूप-रस और देश-देश के राजनीतिक इतिहास में वह एक अनोखी ही अभिज्ञता प्राप्त करने लगा। इधर जब उसका वह परिवर्तन पूरा हुआ तो उसने जया की ओर निहारकर देखा, उसने भी अपने जीवन में एक परिणति-लाभ की थी। उसका किशोर मन गरम और गली हुई धातु की तरह न्यायरत्न के घर की घरनी के साँचे में पड़कर उसी रूप में गढ़ उठा था। यही नहीं, उसकी किशोरावस्था का उत्ताप भी ठण्डा हो आया था। साँचे की मूरत का उपादान सख्त हो चुका था, उसे गलाकर उस साँचे से दूसरे साँचे में ढालने का उपाय नहीं था अब अगर तोड़कर नये सिरे से गढ़ना हो तो साँचे को ही तोड़ना होगा। जया न्यायरत्न के साथ अभिन्न-सी होकर जुड़ गयी थी। अगर जया को तोड़कर गढ़ना हो तो पहले दादाजी को तोड़ना पड़ेगा। इसीलिए पत्नी से छल करके विश्वनाथ दिन बिताता रहा है।...

स्वामी को हँसते देख जया उसका तिरस्कार करती थी। विश्वनाथ उस पर भी हँसता था। उस हँसी में जया को दिलासा मिलता था। उस हँसी को पति की अनुगतता समझकर वह पक्की घरनी-सी अपने-आप ही बका करती थी।

आज जया ने दादाजी से कहा, "आप बड़े उतावले आदमी हैं दादाजी! आपने जब से सुना कि वह रात गाड़ी से उतरकर जंक्शन के डाकबँगले में रहेगा, तब से चहलकदमी कर रहे हैं। वहाँ रहा तो क्या हुआ?"

न्यायरत्न ने फीकी हँसी हँसकर जया की तरफ ताका। उस हँसी का मतलब साफ-साफ न समझते हुए भी उसकी आँच को जया ने समझा। उसने भी हँसकर कहा, "आप मुझे जितनी बेवकूफ समझते हैं, दादाजी, मैं उतनी बेवकूफ नहीं हूँ।

वे लोग जंक्शन में रात—डेढ़-दो बजे रात को उतरेंगे! उसके बाद वहाँ से रेल-पुल पार करके कंकना, कुसुमपुर, शिवकालीपुर—तीन-तीन गाँव पार करके आना होगा। उससे तो अच्छा है कि रात वहाँ रहेंगे, सो-सवाकर सवेरे नाव से नदी पार करके सीधा चले आएँगे।"

न्यायरत्न को भी यह युक्ति माननी पड़ी। जया ने बेमतलब नहीं कहा। इसके सिवा न्यायरत्न को आज जया का बल ही सबसे बड़ा बल है। उनके साथ घनघोर तर्क करके विश्वनाथ जब न्यायरत्न की वंश-धर्म-परायणा जया का आँचल पकड़कर हँसता हुआ घूमता था, तो वे मन-ही-मन हँसते थे। महायोगी महेश्वर मोहिनी के पीछे-पीछे पागल की तरह दौड़े थे। वैरागियों में श्रेष्ठ शिवजी उमा की तपस्या से कैलास लौट आये थे। उनकी जया तो एक ही साथ दोनों है—रूप में वह मोहिनी है, विश्वनाथ की सेवा-तपस्या में उमा। जया ही एक भरोसा है। जया की बात सुनकर फिर उन्होंने उसकी ओर देखा—उसके चेहरे पर जरा भी उद्वेग नहीं था। न्यायरत्न को अब भरोसा हुआ। जया की युक्ति को विचार करके उन्होंने मान लिया—जया ने ठीक ही कहा है।

रात में बिस्तर पर लेटे-लेटे उनका मन फिर विचलित हो उठा। युक्ति बड़ी सहज-सरल थी। कहीं भी अविश्वास करने की गुंजाइश नहीं। लेकिन विश्वनाथ ने यह खबर उन्हें न देकर देबू को क्यों दी? वह आजकल जया को पोस्टकार्ड में चिट्ठी क्यों लिखता है? उन दोनों के सम्बन्ध का रंग क्या चिट्ठी की भाषा की तरह ही फीका हो गया है? लौकिक मूल्य के सिवा अन्य मूल्यों का दावा नहीं रह गया?—दिमाग गरम हो गया। वे बाहर निकल आये।

"कौन? दादाजी?" जया की आवाज से वे चौंक उठे। उन्होंने देखा, जया की खिड़की की फाँक में रोशनी की छटा जाग रही है। बोले—"हाँ, मैं ही हूँ। मगर तुम अभी भी जाग रही हो?"

दरवाजा खोलकर जया बाहर निकली। हँसकर बोली, "आपको नींद नहीं आ रही है, क्यों? अभी भी वही सब सोच रहे हैं?"

न्यायरत्न ने अपने को सँभालकर हँसते हुए कहा, "आनेवाले मिलन के पहले सभी लोग नींद न लाने का रोग भोगते हैं राज्ञी! शकुन्तला जिस दिन पति के यहाँ गयी थी, उसके पहलेवाली रात वह भी नहीं सोयी थी।"

जया ने हँसकर कहा, "मैं गोबिन्दजी के लिए चादर तैयार कर रही थी।"

"गोबिन्दजी के लिए चादर तैयार कर रही थी? देखता हूँ, मेरे गोबिन्दजी को भी अब तुम छीन लोगी। तुम्हारे चारु मुख और सुचारु सेवा से तुम्हारे प्रेम में पड़े बिना रह सकते हैं गोबिन्दजी!"

जया सिर्फ चुपचाप हँसी।

"चलो तो! देखूँ, कैसी चादर तैयार कर रही हो?"

सुन्दर तशर का एक टुकड़ा। उसके चारों ओर सुनहली कोर लगायी जा रही थी। न्यायरत्न ने कहा, "वाह, बहुत अच्छी बनी है।"

हँसकर जया बोली, "कपड़े के इस टुकड़े को वे अपना रूमाल बनाने के लिए ले आये थे। मैंने कहा, नहीं, रूमाल नहीं, इससे गोबिन्दजी की चादर बनेगी। जरी ला देना। और फिनफिन बनारसी का एक टुकड़ा नीले रंग का। उससे राधा-रानी की ओढ़नी बना दूँगी। गोबिन्दजी की चादर बन गयी। अब राधारानी की ओढ़नी बनाऊँगी।"

न्यायरत्न का सारा हृदय आनन्द से भर गया। उनके अपने भाग्य में चाहे जो बदा हो, जया का कभी अमंगल नहीं हो सकता। कभी नहीं। लेकिन सुबह होते ही न्यायरत्न फिर चंचल हो उठे। उन्होंने उम्मीद कर रखी थी कि सुबह विश्वनाथ की पुकार से ही उनकी नींद खुलेगी। विश्वनाथ यहाँ आकर अपने मित्रों को लाने के लिए गाड़ी भेजेगा। प्रातःकृत्य खत्म करके वे टोलेवाले घर के छोर पर जा खड़े हुए। वहाँ से गाँव का रास्ता दूर तक दिखाई पड़ता है।

किसी के यहाँ रोने की आवाज उठ रही थी। न्यायरत्न ने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा : "आह, जाने—फिर किस बेचारी का लाल लुटा!"

जरा देर वैसे ही खड़े रहे। उसके बाद आकर अपनी चादर ली और रास्ते पर उतर पड़े। गाँव के छोर पर जाकर खड़े हुए। पूरब क्षितिज पर जवाकुसुमसंकाश सूरज का उदय हुआ। चारों ओर सुनहला प्रकाश छिटक गया। दिशा-दिशा प्रकाशमान! पंचग्राम की सूनी बैहार में यहाँ-वहाँ जमा हुए पानी पर ज्योति की छटा का प्रतिबिम्ब झिलमिला रहा था। मयूराक्षी के बाँध पर सरपत की झाड़ियां हवा से हिल रही थीं। वह रहा शिवकालीपुर। इधर दक्खिन बाँध के किनारे से पगडण्डी। कहीं कोई नहीं। बहुत दूर पर—शायद शिवकालीपुर के पच्छिम कुछ हरे खेतों में काली काठियों-सी हिल रही थीं! शायद हो कि खेतों में लोग काम कर रहे हों! ..न्यायरत्न पगडण्डी से धीरे-धीरे आगे बढ़े। इस उद्वेग में उन्होंने मन-ही-मन अपने पोते को बार-बार आशीर्वाद दिया। लोगों के लिए यह बड़े संकट की घड़ी है। मुँह के कौर बाढ़ में बह गये, लोग बे-घर-बार के हो गये, घर-घर रोग, आकाश-पाताल में शोक की रुलाई—लोगों के इस दारुण दुर्दिन में विश्वनाथ ने जो कुछ किया—कर रहा है, वह महायज्ञ-जैसा है—पुण्य-कर्म है। पुराने जमाने में ऐसी मुसीबत के समय ऋषि-मुनि यज्ञ करके मनुष्यों के मंगल के लिए देवता का आशीर्वाद प्राप्त करते थे। विश्वनाथ भी मानव-मंगल की वही साधना कर रहा है। उन्होंने मन-ही-मन पोते को बार-बार आशीर्वाद दिया—"धर्म पर तुम्हें मति हो, तुम धर्म को पहचानो, दीर्घायु हो! हमारा वंश उज्ज्वल हो।"

माथे के ऊपर सन्-सन् आवाज हुई। कुछ चकित होकर उन्होंने आसमान की ओर देखा। उनका मन सिहर उठा। गोविन्द! गोविन्द! ऊपर गिद्धों का झुण्ड मँडरा

रहा था। धीरे-धीरे वे आसमान से उतर रहे थे। उतर रहे थे। मयूराक्षी के चौंरवाले मरघट पर न्यायरत्न फिर सिहर उठे। लोगों से अब दाहसंस्कार भी नहीं हो पा रहा है! कोई लाश को मसान में यों ही फेंककर चला गया है!

फिर बाँध के पार चौंर पर वे उतरे। देखा, मसान में नहीं, गिद्ध मवेशियों के मरघट पर उतर रहे हैं। तीन लाशें पड़ी हुई थीं। गाय-बैलों की। एक दूध देनेवाली पहलौठ गाय! पंचग्राम के करीव गृहस्थ बेचारे तबाह हो गये! सभी शायद बरबाद हो जाएँगे। बच जाएँ केवल दालान-कोठे में रहनेवाले।...

"ठाकुरजी, इत्ते सवेरे कहाँ जाएँगे?"

अनमने न्यायरत्न ने नजर उठाकर सामने देखा—घाट की नाव का मल्लाह शशी भल्ला नाव से सिर टेककर उन्हें प्रणाम कर रहा है।

"मंगल हो। जरा उस पार जाना है।"

नाव को खींचकर शशी ने किनारे लगाया।

डाकबंगला मयूराक्षी के पास ही था।

किनारे पर जाकर न्यायरत्न ने विश्वनाथ को आशीर्वाद दिया। उसके मित्रों की कल्पना की। उनकी आँखों में शिवकालीपुर के उस जवान नजरबन्द की तसवीर जाग उठी। उन्हें ऐसा लगा कि वे उस यतीन बाबू को भी वहाँ देखेंगे।

डाकबंगले के फाटक पर पहुँचते ही हँसी की एक हलचल सुनाई पड़ी। जी की उमड़ी हुई हँसी! जो लोग ऐसी हंसी नहीं हँस सकते, वे भला तमाम फैली हुई शोक-भरी आवाज को पोंछ सकते हैं? हाँ, यह बलवान् प्राणों की हँसी थी!

न्यायरत्न डाकबंगले के बरामदे पर गये। सामने का दरवाजा बन्द था, लेकिन झरोखे से सब दिखाई पड़ रहा था। एक मेज के चारों ओर पाँच-छह नौजवान बैठे थे। बीच में चीनी मिट्टी का एक रकाबी में बिस्किट-जैसी कुछ खाद्य-सामग्री थी। एक तरुणी चाय का बरतन लिये खड़ी थी। ढंग से लग रहा था कि वह चली जा रही थी, लेकिन किसी ने उसका हाथ पकड़कर रोक लिया। जिसने हाथ पकड़ा था, यद्यपि वह उधर को मुंह किये बैठा था, फिर भी न्यायरत्न चौंक उठे। कौन? विश्वनाथ? हाँ, वही तो है!!

तरुणी ने कहा, "छोड़िए! देखिए, बाहर कोई बूढ़े सज्जन खड़े हैं।"

विश्वनाथ ने उसका हाथ छोड़कर पीछे देखा।

"दादाजी! आप यहाँ!"—विश्वनाथ उठा। उसके एक हाथ में अधखायी कोई चीज थी, जिसे न्यायरत्न नहीं जानते। उसने तुरत पलटकर अपने मित्रों से कहा, "मेरे दादाजी!"...तरुणी बगल के कमरे में चली गयी।

सभी आदर से कुरसी छोड़कर खड़े हो गये। घर में देबू भी कहीं था। वह दरवाजा खोलकर बाहर आया और बोला, "बिशू चाय पीकर पीछे से आ रहा है। चलिए, हम लोग तब तक चलें।"

न्यायरत्न ने एक बार देबू की ओर निहारा और फिर वे अन्दर चले गये। विश्वनाथ के मित्रों की ओर वे अचम्भे से ताकते रहे। पाँच में से दो ने विजातीय पोशाक पहन रखी थी। विश्वनाथ के सभी मित्रों ने उन्हें प्रणाम किया।

विश्वनाथ ने कहा, "मेरे दोस्त हैं ये। हम सब एक साथ काम करते हैं।"

न्यायरत्न बोले, "तुम्हारे मित्रों का अपना-अपना परिचय तो होगा भाई, वही परिचय बताओ। मैं किसे क्या कहकर पुकारूँ?"

विश्वनाथ ने परिचय दिया—"ये हैं प्रियव्रत सैन, ये अमर बसु, ये पिटर परिमल राय—"

"पिटर परिमल?"

"जी, ये ईसाई हैं।"

न्यायरत्न ठक् रह गये। उन्होंने सिर्फ एक बार चकित दृष्टि से पोते को देखा।

"और ये हैं अब्दुल हमीद।"

न्यायरत्न की आँखें जरा और बड़ी हो गयीं।

"और ये जीवन बीरवंशी।"

बीरवंशी यानी डोम। न्यायरत्न ने मेज की तरफ ताका। एक ही बरतन में खाने का सामान और वह सामान खर्च भी हुआ था। चाय के सारे प्याले मेज पर रखे थे। उसी वक्त वह लड़की कमरे से निकलकर वहाँ खड़ी हुई। उसके हाथ में धुली हुई बनियान और कुरता था।

"और ये भी हमारी सहकर्मिणी हैं—अरुणा सेन। प्रियव्रत की बहन।"

हँसकर उस लड़की ने न्यायरत्न को प्रणाम किया। पूछा, "आप विश्वनाथ बाबू के दादाजी हैं?"

न्यायरत्न बोले, "हाँ! हुआ, रहने दो।"...उनकी आवाज लटपटा रही थी।

कुरता-बनियान विश्वनाथ को देती हुई वह बोली, "लीजिए, कुरता-बनियान बदल तो डालिए! सब तैयार हो गये हैं। चलना है।"

हमीद ने एक कुरसी बढ़ा दी—कहा, "बैठिए आप।"

न्यायरत्न का संयम मानो चुका जा रहा था। सुख-दुःख यहाँ तक कि शारीरिक कष्ट सहकर उसमें से रस प्राप्त करने की उनकी शक्ति मानो खत्म होती जा रही हो। शिरा-स्नायुओं से एक कम्पन-सा प्रवाहित होने लगा। उस आवेग से मन-मस्तिष्क आच्छन्न-सा होने लगा! तो भी हमीद को ओर देखकर फीकी हँसी हँसते हुए वे बैठ गये।

विश्वनाथ कुरता-बनियान उतारकर साफ कुरता-बनियान पहनने लगा। न्यायरत्न उसके खुले बदन को देखकर दंग रह गये। उसकी देह बाल-विधवा की नंग कलाई-सी दीप्तिहीन हो रही थी। उसका गोरा रंग तक मलीन हो गया है। मलीन ही नहीं—नजर को गड़नेवाली एक रूढ़ता से शोभाहीन। ओः, जनेऊ! विश्वनाथ के

गोरे शरीर को तिरछे घेरकर जनेऊ की जो महिमा, जो शोभा थी, उसी के नहीं होने से ऐसा लग रहा था! न्यायरत्न के शरीर का काँपना अब साफ झलकने लगा। अपने हाथ को बढ़कार उन्होंने पुकारा—"गुरुजी! देबू गुरुजी?"

देबू आशंका से दूर खड़ा था। वह झट् आगे आया—"जी?"

"लगता है, मेरी तबीयत खराब हो गयी है। मुझे तुम घर पहुंचा दोगे?"

यह सुनकर सभी व्यस्त हो गये। अरुणा करीब आयी—"बिस्तर लगा दूं, आप लेटेंगे थोड़ी देर?"

"नहीं।"

विश्वनाथ ने समीप आकर कहा, "दादाजी!"

पीड़ावाली जगह को छूने के लिए तैयार व्यक्ति को दर्द से बोलती-बन्दवाला रोगी जिस तरह हाथ के इशारे से मना करता है, वैसे ही चकित भाव से न्यायरत्न ने विश्वनाथ की ओर हाथ उठाया।

अरुणा ने परेशान होकर पूछा, "क्या हुआ?"

दूसरे लोग भी हैरान उनकी ओर ताकने लगे।

न्यायरत्न आँखें बन्द किये बैठे थे। उनके कपाल पर भौंहों के बीच में कुछ गहरी लकीरें जग आयी थीं। विश्वनाथ उनके पीड़ा-विकल पीले चेहरे की तरफ एकटक देख रहा था। उनकी हालत को वह समझ रहा था।

कुछ क्षण के बाद एक गहरा निःश्वास छोड़कर न्यायरत्न ने आँखें खोलीं। जरा हँसकर बोले, "तुम लोगों का भला हो भाई, मैं अब चलता हूं।"

"अरे! ऐसी हालत में कहाँ जाएँगे?"—विश्वनाथ का दोस्त पिटर परिमल परेशान होकर बोला।

"अब मैं ठीक हूँ!"

विश्वनाथ ने कहा, "मैं आपके साथ चलूं?"

"नहीं।"—उन्होंने देबू की ओर निगाह करके कहा—"तुम जरा मेरी मदद करो गुरुजी, कुछ दूर मुझे पहुँचा दो।"

देबू व्यस्त-सा उनके पास आया। बोला, "हाथ पकड़ लूँ?"

"नही-नहीं!"—न्यायरत्न जोर लगाकर जरा हँसे—"सिर्फ कुछ दूर साथ चलो।" और वे बाहर निकल पड़े। कमरा अस्वाभाविक रूप से स्तब्ध और स्तम्भित हो गया। किसी से कुछ बोलते न बना। जी-जान से जिस बात को न्यायरत्न छिपा गये, सोचा, वह बात उनके अन्तिम कुछ शब्दों से, हँसी से, कदम रखने के ढंग से कही गयी हो।

विश्वनाथ चुपचाप बाहर निकला। न्यायरत्न डाकबँगले के बगीचे के बिलकुल उस किनारे खड़े थे। विश्वनाथ जैसे ही उनके करीब पहुँचा, वे बोले, "अच्छा, जया को? जया को भेज दूँ तुम्हारे पास?"

विश्वनाथ ने हँसते हुए कहा, "वह आएगी नहीं!"

न्यायरत्न ने कहा, "नहीं, उसे आने को मैं मजबूर करूँगा।"

"मजबूर करने से आएगी। लेकिन उसे सिर्फ दुःख पाने को ही यहाँ भेजेंगे।"

"जया को तुम दुःख दोगे?"

"मैं नहीं दूँगा, वह खुद दुःख पाएगी। सब देख-सुनकर उसके मन को आघात लगेगा, जैसा कि आपने पाया। कष्ट के कारण को मैं आपके सामने कबूल करता हूं। लेकिन उसी कष्ट ने स्वाभाविक तौर से आपको इतना कातर नहीं किया है। उस कष्ट को लेकर आपने हृदय पर पत्थर की तरह मारा है। जया भी ठीक ऐसी ही चोट खाएगी। क्योंकि उसने आज तक आपकी पौत्र-वधू होने की कोशिश की है। उसने यही जाना है कि उसका एकमात्र परिचय वही है। आज मेरे वास्तविक रूप से नये सिरे से परिचय करना उसके लिए असम्भव है। आपके कोशिश करने पर भी उससे नहीं बनेगा।"

एक गहरी साँस लेकर न्यायरत्न ने कहा, "अपना कुल-धर्म, वंश-परिचय तक तुमने त्याग दिया—जनेऊ फेंक दिया है। तुम्हारे मुँह से ऐसी बात कुछ अप्रत्याशित नहीं है। कसूर मेरा ही है। तुमने मुझसे छिपाया नहीं, अपने स्वरूप का आभास तुमने पहले ही दिया था। फिर भी मैंने जया को अपने पौत्र-वधू के कर्तव्य में डुबाये रखा था—तुम्हारी आध्यात्मिक क्रान्ति की ओर ध्यान देने का भी उसे अवसर नहीं दिया। लेकिन..."

"कहिए।"

"नहीं। अब मेरा कुछ भी नहीं। आज से तुम मेरे कोई नहीं। दोष, यहाँ तक कि अगर मुझे पाप लगे, तो लगे। जया मेरी पौत्र-वधू ही रहे। तुमसे अनुरोध है, मरने पर मेरे मुँह में आग मत देना! मुखाग्नि का अधिकार जया का रहा!"

विश्वनाथ हँसा। बोला, "वंचना को मुसकराते हुए झेल लिया जाए तो वह मुक्ति हो जाती है। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं उसे हँसते हुए सह सकूँ।" ... प्रणाम करने के लिए उसने माथा नवाया।

न्यायरत्न पीछे हट गये। कहा, "हाँ-हाँ, रहने दो। मैं आशीर्वाद देता हूँ तुम इसे हँसते हुए सहो।—"—और वे मुड़कर चल पड़े। देबू ने सिर झुकाकर उनके पीछे-पीछे चलना शुरू किया।

उसकी ओर देखकर विश्वनाथ ने हँसने की कोशिश की।...

घाट पर पहुँचकर न्यायरत्न सहसा ठिठक गये। पीछे मुड़कर हाथ फैलाते हुए घबरायी और काँपती आवाज में कहा, "गुरुजी! गुरुजी!"

"जी!"— देबू दौड़ते हुए उनके पास जा खड़ा हुआ कि न्यायरत्न थर-थर काँपते-काँपते क्वार की धूप से तपी नदी की बालू पर बैठ गये।...

कुछ ही घण्टों में बात पाँचों गाँवों में फैल गयी। अभाव, रोग-शोक से पीड़ित

लोग भी डर से सिहर उठे। कुछ अवस्थावाले लोग इस अनाचार के प्रतिकार के लिए मुस्तैदी से जुट गये।

इरशाद से देबू की रास्ते में ही भेंट हो गयी।

देबू गहरी चिन्ता में डूबा हुआ सिर झुकाकर राह चल रहा था। इरशाद से आमने-सामने भेंट हो गयी; सिर उठाकर देबू ने उसे देखा, अच्छी तरह से एक बार पलक गिरायी और मानो अपने को सचेत कर लिया। उसके बाद बोला, "इरशाद भाई?"

"हां! मैंने सुना तुम महाग्राम गये थे। दुर्गा ने बताया।"

एक गहरा निःश्वास छोड़कर देबू ने कहा, "हाँ, वहीं से लौट रहा हूँ।"

"सुना, न्यायरत्नजी सिर घूम जाने से घाट पर गिर पड़े थे। अब कैसे हैं?"

हलका-सा हँसकर देबू ने कहा, "कैसे हैं, वही जानें। बाहर से तो मुझे अच्छा नहीं लगा। थरथराकर नदी के घाट पर बैठ पड़े। मैं उन्हें सहारा देकर उठाने के लिए गया। जरा देर बैठे रहकर वे आप ही उठे। मयूराक्षी के पानी से हाथ-मुँह धोया। फिर जरा हँसकर बोले, 'सर चकरा गया था गुरुजी। अब सँभाल लिया है।' घर पहुँचकर उन्होंने मुझे जलपान कराया, नहाया, पूजा की। मैं वहीं बैठा था। बोले, 'यहीं भोजन कर लेना गुरुजी।' हाथ जोड़कर मैं ना-ना करता रह गया, वे हरगिज न माने और आखिर में खाना पड़ा। चलते वक्त मुझसे कहा, 'तुम्हें मेरा एक काम करना होगा। मेरी जमीन-जगह, सम्पत्ति जो कुछ है, उसका भार लेना पड़ेगा। बटैया लगाना हो, ठीका पर देना हो, जो भी करना हो, करना। मुझे गुजारे-भर का चावल और बाकी धान बेचकर रुपये काशी भेज देना'।"

इरशाद ने पूछा, "तो उन्होंने काशी जाने का तय किया है?"

"हाँ! अपने देवता, विशू भाई के स्त्री-बच्चे को लेकर काशी चले जाएँगे। कल, चाहे परसों।"

"विशू बाबू ने आकर कुछ कहा नहीं? आये भी नहीं?"

जरा चुप रहकर देबू ने कहा, "वही तो मैं सोच रहा था इरशाद भाई।"

"क्या?"

"बिशू भाई से अब कोई नाता नहीं रखूँगा। रुपये-पैसे का हिसाब-किताब आज ही उसे समझा दूँगा।..." इरशाद चुप रहा।

देबू ने कहा, "एक तुम्हारे जाति-भाई भी आये हैं—अब्दुल हमीद। मैंने देखा, वे भी बिशू भाई-से ही हैं। नाम के ही मुसलमान। जाति-धरम नहीं।"

बाईस

कई दिनों के बाद।

लोग बाढ़ की वजह से आफत के मारे बीमारी से जर्जर और शोक से कातर थे। भूख और अचिकित्सा से उनके होश गुम हो गये थे। मवेशियों की महामारी फैलने से उनकी सम्पदा का एक बहुत बड़ा हिस्सा खत्म होता जा रहा था। भयानक रूप धारण करके मौत उनके सामने आ खड़ी हुई थी। लेकिन तो भी वे बातें भूलकर इस नये संघात से चंचल हो उठे।...न्यायरत्नजी का पोता धर्म को नहीं मानता, जाति नहीं मानता, ईश्वर को नहीं मानता। उसने जनेऊ उतार फेंका है! न्यायरत्नजी अपने परपोते और उसकी माँ को लेकर इस दुःख और शर्म से घर छोड़कर चले गये। इस दुःख और शर्म का हिस्सा मानो उनका हो। यही नहीं, इसे लोगों ने पंचग्राम के बहुत बड़े अमंगल की सूचना समझी। लोग हाय-हाय कर उठे, आशंका से सिहर उठे।

बहुतों ने आँसू तक बहाया। कहा, पाव हिस्सा जो बच रहा था धर्म, वह भी खत्म हो गया। कलियुग हो गया पूरा! यह सारा विनाश जो हो रहा है, उसका कारण इसी अनाचार में निहित है।

इस अफसोस, इस दुःख से उन लोगों ने मौत की कामना की या नहीं, नहीं मालूम। लेकिन वैसी ही किसी प्रेरणा से उन्होंने सहायता-समिति से नाता तोड़ लिया, जिससे उनकी मौत निश्चित थी। ऐसे दुःख-कष्ट के समय, अनाहार और रोग से मौत को अपने सामने प्रत्यक्ष होते देख भी भोजन और दवा लेने से इनकार करना मरना नहीं तो और क्या है?

न्यायरत्न के जाने के दूसरे दिन सवेरे विश्वनाथ आया था। देबू ने हिसाब-पत्तर समझ लेने का अनुरोध किया था। विश्वनाथ ने कहा, "तुम जरा ज्यादती कर रहे हो देबू भाई! हमसे नाता नहीं रखना चाहते हो, मत रखो। लेकिन यहाँ की मदद के लिए दस के चन्दे से जो सहायता-समिति बनी है, उसका कौन-सा कसूर है?"

देबू ने हाथ जोड़कर कहा, "मुझे माफ करो बिशू भाई!"

आज विश्वनाथ फिर आया। सहायता-समिति को कई दिनों से वह खुद ही चलाने की चेष्टा कर रहा था।

देबू ने आज भी कहा, "मुझे माफ करो। कई दिनों से कोशिश करके देख तो लिया, चावल लेने कोई नहीं आया।"

सच ही कोई नहीं आया। गाँव-गाँव खबर कर दी गयी—चावल ही नहीं दवा भी मिलेगी। कलकत्ते से डॉक्टर भी आया है। तो भी कोई दवा के लिए नहीं आया।

विश्वनाथ चुप होकर बैठा रहा।

कई दिनों तक उसने हर कोशिश की। लेकिन अजीब हैं लोग। कछुआ जब गरदन समेत अपना मुँह खोलकर अन्दर समेट लेता है, तो उसे किसी भी प्रकार

से खींच कर बाहर नहीं निकाला जा सकता। वैसे ही इन लोगों ने अपने को समेट लिया था। जड़ता कहकर विश्वनाथ इसकी हँसी नहीं उड़ा सका। इसमें सहने की जिस एक शक्ति का अनोखा परिचय है, उसकी उसने कद्र की, श्रद्धा की। जिन लोगों ने सहने की यह शक्ति पायी है, परम्परा से जिनकी नसों में यह शक्ति बहती है, वे लोग अगर जाग पड़ें, तो कोई सन्देह नहीं कि वह एक विराट् शक्ति का अजेय जागरण होगा। जिस पुकार से, जिसकी पुकार से वह जागेगी, कच्छपावतार की तरह सारी धरती का भार ढोने के लिए जागेगी, वैसी पुकार वह नहीं पुकार सका। शायद इसीलिए उसकी पुकार पर लोग नहीं जागे!

उसने उस वीरवंशी यानी उस पढ़े-लिखे डोम मित्र को लेकर गाँव-गाँव के हरिजन टोले में बैठक करने की भरसक कोशिश की। बैठक होती तो क्या होता, नहीं कहा जा सकता। पर बैठक हो नहीं पायी। भू-स्वामियों ने बैठक नहीं होने दी। नहीं होने दी कंकना के बाबुओं ने, श्रीहरि घोष ने—जिन लोगों ने विश्वनाथ के अनाचार से न्यायरत्न को सामाजिक दण्ड देने का निश्चय किया था। हाटवाली जगह जमींदार की, गाँव का चण्डीमण्डप जमींदार का, धर्मराज तले जो मौलसिरी का पेड़ है, उसके नीचे की माटी भी जमींदार की। जो भी, जितनी भी परती जमीन है, यहाँ तक कि नदी का बालू भी उन्हीं लोगों का है। विश्वनाथ यहीं पला-बढ़ा, बचपन से यहीं का धूल-कादो उसे लगा, वह भी सोचकर हैरान है कि उसने अपने ऊपर इतनी परायी धूल मली! पंचग्राम के लोग जिन्दा हैं, राह चलते हैं—दूसरों की माटी पर। अपना कहने को उनके पास घर के एक आँगन के सिवा और कुछ भी नहीं है। व्यवहार के अधिकार की बात होती है। लेकिन अदालत के परवाने से जमींदार ने उस अधिकार से भी वंचित कर दिया। दरख्वास्त देकर अदालत से एक हुक्मनामा ले आया—अमुक-अमुक जगह में सभा करने की मनाही की जाती है। न मानने पर अनधिकार प्रवेश के जुर्म में मुजरिम बनाया जाएगा।

विश्वनाथ की टोली ने इस हुक्म को तोड़ने की सोची थी। जाने क्या सोचकर वह विचार छोड़ दिया। दल के बाकी लोग कलकत्ते लौट गये। विश्वनाथ देबू को सहायता-समिति का भार देने के लिए आया था। देबू ने कहा, "विशू भाई, मुझे तुम रिहाई दो। तुम न्यायरत्न के पोते हो, तुम जो भी करो, तुम्हारे वंश का पुण्यफल तुम्हारी रक्षा करेगा। मगर मैं तो मर जाऊँगा।"

विश्वनाथ ने मुसकराकर कहा, "यह तुम्हारी गलत धारणा है भाई! मगर, खैर। मैं अब इस समिति से अपना सम्बन्ध तोड़ लेता हूँ। और सब तो चले ही गये, मैं भी आज ही चला जाऊँगा। मुझसे कोई नाता नहीं रहने से लोगों को एतराज नहीं होगा।"

देबू ने कोई जवाब नहीं दिया। सिर झुकाये बैठा रहा।

"देबू!"

फीका हँसकर देबू ने कहा, "बिशू भाई!"

विश्वनाथ बोला, "अब इसमें ना न करो!"

"हो सकता है कि लोग फिर भी सहायता-समिति में न आएँ।"

"आएँगे!..." विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "न आएँ तो तुम्हें समझा-बुझाकर उन्हें लाना होगा। और तुमसे यह होगा भी। रुपये-पैसे तो आखिर जाति समझकर लोगों के हाथ में नहीं जाते। चाण्डाल के घर का रुपया ब्राह्मण के पास पहुँचते ही शुद्ध हो जाता है।"

देबू ने काँटा-चुभने-जैसी एक तीखी चोट महसूस की। उसने विश्वनाथ की ओर ताका। अजीब है विश्वनाथ का मुखड़ा! उसमें जरा भी कहीं ऐसा कुछ नहीं है, जिसे देखकर वैर हो या कि गुस्सा आये। विश्वनाथ का हाथ पकड़कर कहा, "तुमने ऐसा काम किया क्यों भाई?"

विश्वनाथ ने जवाब नहीं दिया। अपनी जैसी आदत थी, चुपचाप हँसा।

देबू ने कहा, "कंकना के बाबू लोग ब्राह्मण होते हुए भी साहबों के साथ एक मेज पर खाना खाते है, शराब पीते हैं, अजाति-कुजाति औरतों के साथ व्यभिचार करते हैं। हम लोग उनसे नफरत करते हैं। हाड़ी, डोम, चमार, राह के भिखमंगे तक उनसे घृणा करते हैं। डर से कुछ कह तो नहीं पाते, लेकिन मन-ही-मन घृणा करते हैं। वे ब्राह्मण भी नहीं हैं। उनका धरम भी नहीं है। लेकिन रोग-दुःख, शोक यहाँ तक कि मरण तक में तुम्हीं लोग हमारे भरोसा थे। न्यायरत्न महोदय के पैरों की धूल से हमारे सारे पाप धुल गये, सारे दुःख पुंछ गये। जब-जब सोचता था कि एक दिन भगवान आएँगे, धरती के पापियों का नाश करके सत्ययुग कायम करेंगे, तब-तब मुझे न्यायरत्न का मुखड़ा याद हो आता था। अब हम कैसे जिएँगे? किनके भरोसे अपना कलेजा मजबूत करेंगे?"

विश्वनाथ ने कहा, "अपने भरोसे कलेजा मजबूत करो देबू! जो बातें तुमने कहीं, उनपर बहुत-कुछ कहा जा सकता है। वह सब तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा। सिर्फ एक बात कह दूँ। जिस युग में मेरे दादा-जैसे ब्राह्मण राजा के अन्याय का विचार करते थे, उनके आँख दिखाने से बड़े लोग डर से माटी में गड़ जाते थे, वह युग अब लद गया। इस जमाने में अभाव पड़े तो या तो खुद ही संगठित करके उसे मिटाने का प्रयास करो या जो लोग आज देश की रक्षा का भार लिये बैठे हैं उन तक आवाज पहुँचाओ। रोग हो तो दवा और इलाज के लिए उन्हीं को दबाओ। अकाल मृत्यु हो तो आंखें तरेरकर उन्हीं से कहो, तुम सबके इन्तजाम में ऐसी मौत क्यों होती है? दुःख-शोक में भगवान को पुकारने की जरूरत पड़े तो खुद ही पुकारो, न्यायरत्न की आवश्यकता अब नहीं रही। इसीलिए उस खानदान का होते हुए भी मैं ऐसा हो गया हूँ। दादाजी मन्त्र-विसर्जन के बाद माटी की मूरत नाई बैठे थे इसीलिए चले गये।"

देबू ने एक लम्बी उसाँस लेकर कहा, "विशू भाई, तमने बहुत पढ़ा-लिखा। तुम हमारे आचार्य के वंशधर हो, वड़ा भरोसा था कि तुम लोगों को बचाओगे। लेकिन–"

हँसकर विश्वनाथ ने कहा, "मैंने कहा तो, और लोग तुम्हें आशीर्वाद के बल पर वचाएँगे। वह भरोसा धोखा है देबू भाई! वह धोखा अगर तुम लोगों का मेरे किये टूट गया, तो अच्छा ही हुआ। खैर मैं अभी चलता हूं।"

"लेकिन बिशू भाई..."

"जिस दिन सच ही बुलाओगे, आऊँगा। शायद हो कि खुद ही आऊँ।" विश्वनाथ तेजी से आगे बढ़ा। जरा दूर जाकर एक मोड़ में ओझल हो गया।

रास्ते में वह रुका। किसी-किसी ने उसकी राह रोकी। थोड़ी ही दूर पर महाग्राम दीखा। वह उसके घर के कोठे का छप्पर नजर आ रहा है। वह रहा घना और हरा-भरा गुलमुहर का पेड़। जरा देर एकटक देखता रहा और फिर सिर झुकाकर चल पड़ा। किस आकर्षण से जो वह अपने दादा, अपनी स्त्री जया, पुत्र अजय और घर-द्वार छोड़कर यों निकल पड़ा है, यह सोचकर कभी-कभी उसे खुद ही हैरान हो जाना पड़ता है। इस राह पर चलने की उत्तेजना अजीब है।

"छोटे ठाकुर!"

"कौन?"–चौंककर विश्वनाथ ने चारों ओर देखा!

रास्ते के बायें बैहार में एक पोखरे के पारवाले आम के बगीचे में एक औरत खड़ी थी।

विश्वनाथ ने फिर पूछा, "कौन?" बगीचे के पुराने पेड़ों की छाया ने नीचे अँधेरा-सा कर रखा था। और फिर पेड़ की नीचे झुकी डाल में उसका आधा चेहरा छिप गया था, पहचान में नहीं आ रहा था।

बगीचे से बाहर निकली दुर्गा।

विश्वनाथ ने पुकारा–"दुर्गा?"

"जी हाँ!"

"यहाँ?"

"जी, खेत आयी थी। देखा कि आप जा रहे हैं।"

"हाँ, मैं जा रहा हूँ।"

"एकबारगी गाँव-घर छोड़कर चले जा रहे है आप?"

विश्वनाथ ने उसके मुँह की ओर ताका। दुर्गा के चेहरे पर उदासी की छाया पड़ी थी। विश्वनाथ ने हँसकर कहा, "जरूरत पड़ते ही फिर आऊँगा।"

एक लम्बा निःश्वास छोड़कर दुर्गा हँसी। कहा, "आपको जरा प्रणाम कर लूँ। आपद्-विपद् के सिवा तो आप यहाँ आने के नहीं। मैं कहीं उसके पहले ही मर जाऊँ!"...आज वह बहुत दिनों के बाद खिलखिलाकर हँसी।

सम्मान रखते हुए उसने कुछ दूर से प्रणाम किया। विश्वनाथ ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा, "मैं जाति-वाति नहीं मानता रे दुर्गा! मेरे पैरों पर हाथ रखने में इतना डरती क्यों है?"

दुर्गा ने विश्वनाथ के पैरों पर हाथ रखा। प्रणाम करके हँसते हुए बोली, "जाति-पाँति क्यों नहीं मानते हैं ठाकुर? यहाँ के एक नजरबन्द बाबू थे—वे भी नहीं मानते थे। मुझसे कहते थे, मेरे लिए पानी न हो तो, तुम्हीं ला दिया करना दुर्गा!"

विश्वनाथ हँसा। बोला, "मुझे अभी प्यास नहीं लगी है, नहीं तो तुमसे ही कहता कि एक गिलास पानी ला दे।"

दुर्गा फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली, "तो आप मुझे अपने साथ ले चलिए। आपकी नौकरानी का काम करूँगी। झाड़ू-बुहारू करूँगी, आपकी सेवा करूँगी।"

विश्वनाथ बोला, "मेरे घर-द्वार नहीं है। यहीं का घर पड़ा रहा। उससे अच्छा है, तू यहीं रह। फिर जब आऊँगा तो तुझसे पानी माँगकर पी जाऊँगा।"

विश्वनाथ चला गया। दुर्गा एक उदास हँसी हँसकर वहीं खड़ी रही।

देबू चुप बैठा था।

विश्वनाथ के चले जाने के बाद भी वह कुछ देर तक रास्ते की तरफ ताकता हुआ खड़ा था। उसके बाद एक लम्बी उसाँस लेकर वहीं जो बैठा, सो बैठा ही है।

न्यायरत्न चले गये। विश्वनाथ भी चला गया। उसके जी में हुआ कि वह अकेला हो गया। इस दुनिया में वह अकेला है! उसकी बिलू, उसका मुन्ना जिस दिन गुजरा था, उस रात को न्यायरत्न आये थे। राजबन्दी यतीन था, वह बहुत पहले ही चला गया। उसके चले जाने से भी उसे पीड़ा हुई थी, लेकिन अपने को इतना असहाय उसने नहीं महसूस किया था। कई दिनों के बाद ही विश्वनाथ आया था। लेकिन आज वह सच ही अकेला है! असहाय है! बगल में खड़ा होनेवाला कोई अपना आदमी नहीं, मुसीबत में दिलासा देनेवाला कोई नहीं—ऐसा कोई नहीं जो सान्त्वना के दो शब्द कहे। मगर कन्धे पर यह बोझ कैसा लद गया। यह तो उतरना ही नहीं चाहता। उसकी आँखों में आँसू आ गया। कहीं कोई नहीं था। उसने आँसू रोकने की कोई जरूरत नहीं समझी। गाल से धारा बहने लगी।

यह बोझा उतरने के बजाय दिन-दिन जैसे और बढ़ता ही जा रहा है। पहाड़-सा भारी हो गया आज। एक के बजाय पाँच-पाँच गाँव का बोझा उसके कन्धे पर लद गया है। लगान की बढ़ोतरी से लेकर कुसुमपुर से विरोध तक, उसके बाद यह प्रलयंकर बाढ़, फिर मलेरिया, फिर मवेशी-महामारी। अकेले क्या करे वह? कर क्या सकता है?

"गुरुजी! रो रहे हो?"

देबू ने पलटकर देखा, जाने कब दुर्गा आ खड़ी हुई है।

"छोटे ठाकुर चले गये, इसलिए रो रहे हो?"...दुर्गा ने अँचरे से अपनी आँखें पोंछीं। कहा, "तुम अगर नहीं कहते तो वे नहीं जाते।"

चादर के छोर से आँखें पोंछकर देबू ने कहा, "मैंने उसे जाने को कहा?"

दुर्गा बोली, "मैं घर के अन्दर ही थी, जब तुम लोग बातें कर रहे थे। मैंने सब सुना है। लोग आज चावल लेने नहीं आये—कल आते। कल नहीं तो परसों आते। पेट के लिए आदमी क्या नहीं करता है, कहो?" फिर हलके से हँसकर बोली, "मेरा भैया घोषाल का रुपया हाथ पसारकर लेता है!"

देबू चुपचाप दुर्गा की ओर ताकता रहा।

दुर्गा फिर बोली, "छोटे ठाकुर ने जनेऊ फेंक दिया है। जाति नहीं मानते, धरम नहीं मानते। यह कहते हो न? द्वारका चौधरी के बारे में सुना?"

"क्या? चौधरीजी को क्या हुआ?"—देबू चौंका। चौधरी कुछ दिनों से बीमार है। न्यायरत्न की विदाई के दिन भी नहीं आ सका। बूढ़े की बेशक उम्र हो गयी है। फिर भी उसकी मौत की खबर देबू के लिए बहुत बड़ी चोट होगी। बड़ा भला है बूढ़ा। देबू को बड़ा स्नेह करता है।

दुर्गा ने कहा, "चौधरीजी ठाकुर बेच रहे हैं।"

"ठाकुर बेच रहे हैं!"

"हाँ। उनसे ठाकुर की सेवा चल नहीं रही है। ऊपर से बाढ़ ने सब साफ कर दिया। पाल ने उनसे कहा है, ठाकुर मुझको दे दीजिए, मैं पाँच सौ रुपये दूँगा। पाल उस ठाकुर की अपने यहाँ प्रतिष्ठा करेगा!"

"श्रीहरि?"

दुर्गा जरा गरदन हिलाकर हंसी।

देबू ने फिर पूछा, "चौधरजी ठाकुर बेच रहे हैं?"

"हां, बेच रहे हैं। बात अभी दबी हुई है। हजार हो, आखिर चौधरीजी मानी व्यक्ति हैं न। उन्होंने पाल का हाथ पकड़कर कहा, 'पाल, यह बात किसी को मालूम न हो। कम-से-कम जब तक मैं जिन्दा हूँ, तब तक और कहीं से लाया हूँ कहना।' ...पाल ने किसी से कहा नहीं है।"

"चौधरीजी ने जब कहने को मना किया है और पाल ने किसी से कहा नहीं, तो तूने कैसे जाना?"—देबू को इसका हरगिज विश्वास नहीं हो रहा था। तर्क से उसने दुर्गा की बात को उड़ा देना चाहा। आखिर में यही कहा, "तूने किसी से गलत सुना है।"

हँसकर दुर्गा बोली, "तुमसे मैं और क्या कहूँ गुरुजी, कहो?"

"क्यों?"

"मैं गलत नहीं सुनती!"—वह हँसी—"मेरी खबर पक्की है। याद नहीं है?"

"क्या?"

तुम लोगों की बैठक की खबर जानकर नजरबन्द बाबू के यहाँ जमादार आया था? मुझे वह खबर पहले मालूम हो गयी थी।

देबू को याद आ गया। दुर्गा ने उस रोज समय पर खबर न दी होती, तो बड़ा बुरा होता। नजरबन्द बाबू को जेल हो जाता।

दुर्गा ने हँसकर कहा, "बिलू दीदी की बहन होते हुए भी मैं तुम्हारा मन नहीं पा सकी और लाख करके लोग मेरा मन नहीं पा सके।"

देबू के चेहरे पर खीझ झलकी। दुर्गा का यह मजाक खासकर मन की ऐसी स्थिति में उसे जरा भी अच्छा न लगा। बोला, "ठहर दुर्गा! यह मजाक की बात नहीं, न ही मजाक का समय है यह। मुझे यह बता कि तूने सुना किससे?"

कुछ क्षणों के लिए दुर्गा ने मुँह फेर लिया। उसके बाद फिर उसी अपनी स्वाभाविक हँसी के साथ कहा, "अपनी शर्म की बात कहूँ कैसे, भला बताओ! चौधरीजी के बेटे ने मुझसे कहा है। कुछ दिनों से वह मेरे घर के आसपास चक्कर काट रहा है। परसों मैंने मजाक में कहा—चौधरी, माला बदलने में मैं सोने का हार लूँगी। तो उसने कहा—वही दूँगा। बाबूजी छिरू पाल के हाथ ठाकुर बेच रहे हैं, वह पाँच सौ रुपये देगा। तुझे मैं हार ही बनवा दूँगा।"

कुछ देर ठक्-सा बैठा रहकर देबू सहसा उठ खड़ा हुआ। बोला, "मैं लौटकर रसोई बनाऊगा दुर्गा!"

"कहाँ?" पूछते-पूछते दुर्गा रुक गयी। देबू कहाँ जा रहा है, यह अन्दाज करने में वैसी कठिनाई तो नहीं थी। रोकने से भी वह सुनेगा नहीं।

"अभी आया। ज्यादा देर नहीं करूंगा।"

वह तेजी से चला गया।

शिवपुर और कालीपुर के बीच बिलगाव एक तालाब का है। विशाल तालाब। कभी चौधरीजी ने ही उसे खुदवाया था। अब वह भठ गया है। उसी तालाब के बांध पर चौधरी का घर है। एक समय था, जब उसमें चौधरी परिवार का बँधवाया घाट था। उसी घाट पर उनके गृह-देवता। लक्ष्मी-जनार्दन की स्नान-यात्रा का पर्व होता था। घाट का नाम ही जनार्दन घाट है। घाट अब टूट गया है, तालाब भी लगभग भठ गया है, सेवार से भरा रहता है, तो भी वहीं पर स्नान-यात्रा पर्व होता है। पर्व कहना ठीक होगा या नहीं, मालूम नहीं। बचपन में चौधरियों की उजड़ी पैठ में भी उस टूटे-फूटे घाट में देबू ने उस पर्व को जैसा देखा है, उसकी तुलना में आज जो होता है, उसे अभिनय कह सकते हैं। बस, नियम पालन।

उस तालाब में जो पानी रहता था, कातिक के अवर्षण में उससे भी बहुत उपकार होता था। काफी खेतों की सिंचाई होती थी। इस बार की बाढ़ में बाँध का एक हिस्सा उड़ गया, इसलिए क्वार में भी तालाब सूखा पड़ा है। बाँध पर खड़े होकर देबू ने एक लम्बा निःश्वास फेंका।

इस तालाब के बाद ही चौधरी के आम-कटहल का बगीचा, वहीं पर पिछौती का पोखरा। इसी पोखरे पर चौधरियों का पुराना मकान था पक्का। छोटी और पतली ईटों का ढेर वहाँ अभी भी पड़ा है। उस मकान का अब साबुत कुछ नहीं बचा है, बड़े-बड़े कष्ट से चौधरी ने रथवाले घर की फटी दीवारों को किसी तरह से खड़ा रखा है। छत को गिराकर पुआल का छप्पर डाल दिया था। इस बार की बाढ़ में वह भी गिर गया। लकड़ी का रथ भी टूट गया। वह एक पेड़ के नीचे कॉदा-मिट्टी-सना पड़ा है करवट होकर।

खण्डहर को पार करके देबू चौधरी के मोजूदा कच्चे घर के सामने जाकर खड़ा हुआ। बाहरवाले कमरे के बरामदे का छप्पर सड़कर गिर गया था। बरामदे पर जो चौकी पड़ी थी, वह पानी में भीगकर, धूप में सूख-सूखकर टूट-फूट गयी थी—शोथग्रस्त बूढ़े-जैसी।

अन्दर-महल की बाहरी दीवार गिर गयी है। उसे ताड़ के पत्तों से घेर दिया गया था। उस घेरे की फाँक से ही नजर आ रहा था कि घर माटी का एक ढेर बना पड़ा है, उसकी लकड़ियाँ बड़े-बड़े जानवरों के हाड़-पंजरों-सी पड़ी थीं!...

हालत देखकर कुछ देर तक तो देबू के गले से आवाज नहीं निकली। उसके पाँव नहीं उठे। चौधरी की इस दुर्दशा की वह कल्पना भी नहीं कर सकता। चौधरी का पुराना घर बहुत पहले ही गिर गया था, जमींदारी जा चुकी थी, तालाब भठ गया था। फिर भी उसके मटकोठे की एक श्री थी। उसके थोड़ी-सी जमीन भी है। बाढ़ के बाद जब सहायता-समिति बनी, तो चौधरी ने एक रुपया दिया भी था। देबू जमाने से इस तरफ नहीं आया, इसलिए वह उसकी हालत का यह हेर-फेर देखकर लगभग स्तम्भित हो गया। तिस पर चौधरी बीमार। वह उसे खरी-खोटी सुनाने के लिए आया था। लेकिन यह सब देख-सुनकर सब सोचा-सोचाया गायब हो गया। एक बार तो जी में आया, लौट जाए, चौधरी शरमिन्दा होगा, पीड़ा होगी उसे। लेकिन उसने आवाज दी—"चौधरीजी! हरेकृष्ण!"

किसी ने जवाब नहीं दिया, लेकिन लगा कि घर में हलचल-सी हुई। औरतें फुसफुसाकर किसी से कुछ कहने लगीं। चौधरी का घर अब साधारण गृहस्थ के घर से ज्यादा कुछ नहीं रहा, पर परदे का आभिजात्य अभी तक वैसा ही बना है।

देबू ने फिर पुकारा—"हरेकृष्ण, घर में हो?"

हरेकृष्ण चौधरी का बड़ा लड़का है। वह बाहर निकला। ठीक इसी वक्त चौधरी की धीमी आवाज सुनाई दी—"अरे, देखो तो कौन पुकार रहे हैं!"

देबू ने कहा, "चौधरीजी को देखने के लिए आया हूँ।"

हरेकृष्ण नासमझ है। गँजेड़ी। उसने अपने बड़े-बड़े दाँत निपोरकर कहा, "देखना क्या है। बाबूजी की आखिरी हालत है। वैद्य ने कहा है, ज्यादा से ज्यादा पाँच-सात दिन।"

देबू ने कहा, "चलो, जरा देखें।"

हरेकृष्ण व्यस्त हो उठा। "चलो, चलो;" और भीतर के लिए तुरत आवाज दी, "जरा हट जाना सब, गुरुजी आ रहे हैं–देबू गुरुजी!"

महज बीस ही पचीस दिन पहले चौधरी बीमारी की हालत में बैलगाड़ी पर सहायता-समिति की बैठक में गया था। इतने ही दिनों में ऐसा हो गया कि पहचानना मुश्किल। चमड़ा ढँका हड्डियों का एक ढाँचा बिछावन पर पड़ा हो जैसे! आँखें गड्ढों में धँसीं, नाक निकली हुई।

इस हालत में भी चौधरी ने हँसकर कहा, "आओ, बैठो।" और उन्होंने अपने दुबले हाथ के इशारे से दूर बिछी एक चटाई दिखा दी। इतनी ही देर में उसने यह व्यवस्था करा रखी थी।

देबू बिछावन पर बैठ गया। बोला, "आप इतना ज्यादा बीमार पड़ गये हैं? लेकिन हम लोगों को इसकी खबर भी नहीं लगी।"

चौधरी जरा मलिन हँसा। कहा, "फकीर जाता-आता है, उसकी खबर कौन रखता है? राजा-वजीर जाते हैं, लोक-लश्कर, शोर-गुल–लोग भीड़ लगाकर देखते हैं। बुड्ढे का जाना फकीर का ही जाना है!"

देबू चुप रह गया। अफसोस हुआ उसे। शरम आयी कि उसने भी इतने दिनों में खोज नहीं ली।

चौधरी ने कहा, "तुम चटाई पर बैठ जाओ गुरुजी! मेरे बिस्तर और बदन से बड़ी बू आती है।"

चौधरी के दुबले हाथ को अपनी गोदी में रखकर देबू ने कहा, "जी नहीं, मैं बहुत ठीक हूँ।"

फिर चोधरी बोले, "आशीर्वाद करता हूँ, तुम्हारा मंगल हो। तुमसे देश की भलाई हो।"

देबू ने पूछा, "इलाज कौन कर रहा है?"

"इलाज!"...चौधरी हँसा : "इलाज नहीं कराया। मैं खुद समझता हूँ–थोड़ा-बहुत नब्ज देखने तो आता ही है–अब ज्यादा दिन नहीं। औरतों ने जिद करके एक दिन वैद्य को बुलवाया था। दवा भी दे गया है वह, पर दवा मैं खाता नहीं। नाहक ही पैसे खरचने से क्या लाभ? जरा पानी दो तो...हाँ, वही।"

देबू ने जतन से पानी पिलाया। मुँह पोंछ दिया। कहा, "नः। दवा नहीं खाना ठीक नहीं हो रहा है।"

"पैसा नहीं है गुरुजी!"

देबू भौचक्का रह गया।

चौधरी ने कहा, "बहुत पहले से ही अन्दर से खोखला हो गया था। अबकी बाढ़ ने तो और भी सब खत्म कर दिया। धान जो था, सब बह गया। कई दिन पहले जोड़े का एक बैल मर गया। एक जो रह गया, वह भी मरा ही समझो। बड़े लड़के का हाल तो मालूम ही है—गँजेड़ी है। बदचलन है।"

देबू ने कहा, "कल डॉक्टर लिवा आऊँगा।"

"नहीं-नहीं।"

"नहीं की बात नहीं। डॉक्टर नहीं चाहते हों, तो वैद्य को लाऊँ।"

"नहीं।"—चौधरी ने बार-बार गरदन हिलाकर कहा, "नहीं गुरुजी! जीना अब मैं नहीं चाहता।"—जरा चुप रहकर बोला, "न्यायरत्न काशी चले गये। पड़े-पड़े ही सुना है सब। डोली से चलकर अन्तिम दर्शन करने की इच्छा थी। लेकिन लाज से वह भी न हुआ। गुरुजी, मैंने किया क्या है, मालूम है?"

देबू चौधरी की ओर देखने लगा।

चौधरी के चेहरे पर कड़वी हँसी फूट उठी। बोले, "मैंने अपने लक्ष्मी-जनार्दन को बेच दिया! श्रीहरि ने खरीदा है।"

कमरे में अजीब सन्नाटा भर गया। इतना कहकर चौधरी बड़ी देर तक चुप हो गया। देबू भी कुछ बोल नहीं सका।

बड़ी देर के बाद चौधरी ने कहा, "लक्ष्मी के नहीं रहने से नारायण भी नहीं रहते हैं गुरुजी! मैंने देखा, देवता भी दौलत के ही देवता होते हैं। गरीब के यहाँ वे नहीं रहते। मैंने सपना देखा। सपने में ठाकुर ने यही कहा!"

आश्चर्य से देबू ने उसी बात की पुनरुक्ति की—"सपने में कहा?"

"हाँ"...बड़ी देर तक बार-बार रुकते हुए, बीच-बीच में दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए चौधरी कहता गया—"एक दिन घर में कुछ भी नहीं था। मुट्ठी-भर अरवा चावल भी नहीं था कि नैवेद्य का प्रबन्ध हो, भोग तो दूर की रही! लाचार बड़े लड़के को मैंने न्यायरत्न महोदय के पास महाग्राम भेजा। वह कम्बख्त गाँजा पीता है, वहाँ आजकल बीच-बीच में घोष के बैठके में तम्बाखू पीने भी जाता है। हो सकता है, वहाँ नशा भी पीता हो। वह न्यायरत्न के यहाँ न जाकर घोष के यहाँ चला गया। घोष ने अरवा चावल दिया और कहा, 'अपने बाबूजी से कहना, ठाकुर मुझको दे दें। मैं ठाकुर-प्रतिष्ठा करना चाहता हूँ। मैं पाँच सौ रुपये दक्षिणा दूँगा।।'...इस अभागे ने आकर मुझसे सब बताया भी। मैं तुमसे क्या कहूँ देबू, मैंने जैसे अपना कलेजा फाड़कर ठाकुर से मन-ही-मन कहा—देवता, मुझे धन दो। जी भरकर तुम्हारी सेवा करूँ। मुझे इस अपमान से बचाओ। नहीं तो यह बताओ कि करूँ क्या? रात सपना देखा। देखा कि श्रीहरि के यहाँ ठाकुर-प्रतिष्ठा हो रही है। मैं श्रीहरि से रुपया

ले रहा हूँ। पहले तो लगा, मैं चिन्ता से ऐसा सपना देख रहा हूँ। लेकिन क्या बताऊँ दूसरे दिन देखा कि हमारे पुरोहितजी कह रहे हैं—आप अपना ठाकुर श्रीहरि को ही दे दें। आप उन्हें रखकर क्या करेंगे? तीसरे दिन फिर देखा कि मैं अपने हाथों श्रीहरि को ठाकुर दे रहा हूँ। मैंने समझा—सोचकर भी देखा कि मेरे मरने के बाद शायद हो कि लड़के ठाकुर की नियमित पूजा भी छोड़ दें।"...चौधरी ने आगे हँसकर कहा, "और, रखेंगे भी कैसे वे? खुद को ही अन्न नसीब नहीं होगा! जो जमीन है, वह भी तो फेलाराम चौधरी के हाथ गिरवी है। सौ रुपया—वही सूद-मूल समेत ढाई सौ हो गया है। सो मैंने बुलवाकर श्रीहरि से पाँच सौ रुपये लिये। जमीन को छुड़ाया। मैं करता क्या देबू!"

देबू काठ का मारा-सा बैठा रहा। जरा देर बाद एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोला, "अच्छा, आज अभी चलता हूँ।"

"जाओगे?"

"जी। फिर आऊँगा।"

"अच्छा, जाओ।"

देर तक बात करके चौधरी थक गया था। एक गहरी साँस लेकर उसने भी अवश की नाई आँखें बन्द कर लीं।

देबू चौधरी के घर से एक क्षोभ लेकर आया था। पैसे के लिए कुल-देवता को बेच दिया, यह सुनकर जो क्षोभ, जो दुःख उसे हुआ, वह क्षोभ, वह दुःख न्यायरत्न के घर छोड़कर चले जाने के क्षोभ-दुःख मे कुछ कम नहीं। अपने अन्यतम मित्र बिशू भाई को उसने जिस तरह से छोड़ दिया, उसी तरह से वह चौधरी को भी छोड़ देगा, यही जताने आया था। मुँह पर चौधरी को रुखाई के साथ खरी-खोटी सुनाने का संकल्प लेकर आया था—लेकिन लौटा दुखता हुआ दिल लिये हुए। चौधरी पर उसे कोई क्षोभ नहीं रह गया। मन में बार-बार उसने देवता को दोष दिया। ऐसी हालत में चौधरी और कर क्या सकता था? सपने अगर उसके मन का भ्रम भी हों, तो भी सभी ओर से विचार करने लगा कि चौधरी ने ठीक ही किया। आजीवन जिस देवता की पूजा वह दुनिया की उत्तम वस्तुओं से करता रहा है, षोडशोपचार से करता रहा है, अपनी गयी-बीती हालत में यदि वह पूजा सम्भव नहीं और ऐसे में उसने उसे किसी धनी को दे दिया, तो क्या बुरा किया? अपना कर्तव्य ही किया उसने। लेकिन देवता ने क्या किया? अचानक उसे न्यायरत्नवाली कहानी याद आ गयी। दुःख उनकी परीक्षा है।

नहीं-नहीं! आज वह विश्वव्यापी दुःख को उनकी परीक्षा हरगिज नहीं मान सका। बाढ़, अकाल, महामारी से सारे देश को तबाह करके परीक्षा?...

रास्ते में जाते हुए उसे बाउरी टोले में औरतों का रोना सुनाई पड़ा।

बायीं ओर के खेत खाँव-खाँव कर रहे थे। धान नदारद। कातिक आ रहा

है। रबी बोने का समय। लोगों में दम नहीं, और बैल भी नहीं हैं। वह खेती भी सम्भव न हो शायद। उससे पहले है पूजा—दुर्गापूजा। अबकी पूजा भी शायद न हो। न्यायरत्न के यहाँ की पूजा इस बार उनके टोले का एक विद्यार्थी करेगा। उसी को इसका भार दे गये हैं वे। मगर उनके न होने से वह पूजा होगी भी? महाग्राम के दत्तों ने अपनी पूजा पिछली बार भीख माँगकर की थी। अबकी वह नहीं हो सकेगी। बच्चों को नये पकड़े नसीब नहीं होंगे।...

सब खत्म हो गया, सब।

न्यायरत्न चले गये, चौधरीजी मरणासन्न हैं। पंचग्राम में मातव्बर कहने को कोई नहीं रह गया! बचपन में उसने पुरनियों से सुना था—तिमुँहे से सलाह लेनी चाहिए, यानी उससे, जिसके तीन माथा हो। सुनकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही थी। उसके बाद पता चला—तिमुँहा बहुत बूढ़े को कहते हैं। झुककर वह बैठता है। अगल-बगल होते हैं घुटने, बीच में चँदेल माथा। दूर से देखने पर तीन सिरवाला-सा दीखता है। आज तिमुँहे की बात दूर रही, सलाह देनेवाला कोई पुरनिया ही नहीं रहा।

भूखा देश, कमजोर और रोग-जर्जर लोग—अभिभावक-विहीन समाज। देवता तक निर्दयी होकर सेवा-भोग के लिए धनियों के यहाँ चले जा रहे हैं। इस देश की खैर है भला!

गहरे दुःख और निराशा से देबू टूट-सा पड़ा। भीख माँगने पर भी इतने बड़े इलाके को बचा सके, क्या मजाल! और उसे तुरत लगा, एक आदमी बचा सकता था, बिशू भाई शायद बचा लेता; लेकिन मैंने ही उसे भगा दिया!

उसकी चिन्ता का सूत्र बिखर गया।

ढोल कैसा बज रहा है! आम तौर से ढोल जमीन-नीलाम की घोषणा में बजता है। आजकल अवश्य यूनियन बोर्ड के हाकिमों के हुक्म भी ढोल बजाकर ही घोषित होते हैं। टैक्स के लिए कुर्की, टैक्स अदा करने की अन्तिम तिथि, टैक्स बढ़ोतरी—हर तरह की घोषणा। यह ढोल किस बात का?...देबू तेजी से आगे बढ़ा।

वही भूपाल चौकीदार एक मोची के साथ ढोल पर घोषणा कर रहा था।

"काहे की डौंडी पिट रही है भूपाल?"

"जी, टैक्स की।"

"टैक्स की? ऐसे समय में टैक्स?"

"जी, लगान की भी।"

देबू का सर्वांग कैसा तो कर उठा! ऐसा दुर्दिन, और टैक्स? लगान?...लेकिन वह बात भूपाल को कहने से क्या लाभ? वह लम्बी डगें भरता हुआ भूपाल को पीछे छोड़ गया।

दुःख से नहीं, क्षोभ और क्रोध से उसके हृदय में उथल-पुथल मच गयी।

कोई उपाय नहीं? जीने का क्या कोई उपाय नहीं?...

चण्डीमण्डप में श्रीहरि का सिरिश्ता खुल गया है। गुमाश्ता दास बैठा है। कालू शेख धूनी की आग में बीड़ी सुलगा रहा है। भवेश और हरीश के हाथ में हुक्का है। महाजन फेलाराम और श्रीहरि मौलसिरी के नीचे खड़े बातें कर रहे हैं—कोई गुप-चुप बात! किसी पर आफत ढाने की सलाह चल रही है शायद।

देबू ने अपनी चाल और तेज कर दी।

उसके ओसारे पर गौर चुपचाप बैठा है। यह एक लड़का। बड़ा भला। घर के एकबारगी सामने पहुँचकर वह आश्चर्य में पड़ गया। कोई आदमी उसकी चौकी पर सोया था। पहनावे में हाफपैण्ट, सस्ते दाम की कमीज और कोट। पैरों में फटे मोजे। जूते नये तो थे पर देखते ही समझ में आ जाता था कि कम कीमतवाले हैं। हैट भी था, उसे मुँह पर रखकर वह मज़े में सो रहा था। चेहरा नजर नहीं आ रहा था। बगल में टिन का एक सूटकेस पड़ा था।

देबू ने गौर से पूछा, "कौन है गौर?"

गौर ने कहा, "सो तो नहीं जानता। मैं तो अभी-अभी आया हूँ। देखा, इसी तरह से सो रहा है।"

देबू ने प्रश्न-भरी निगाह से उस आदमी की ओर ताका।

गौर ने कहा, "देबू भैया!"

"क्या है?"

"भीख के डिब्बे ले आया हूँ। खोलकर पैसे निकाल लें। और भी पाँच-छह डिब्बे चाहिए। पाँच-छह लड़के और काम करेंगे।"

देबू ने मन में एक अनोखी सान्त्वना का अनुभव किया। ताला-लगे छोटे-छोटे डिब्बे लेकर गौर की टोली जंक्शन स्टेशन पर मुसाफिरों से भीख माँगती है। गौर वही भरे डिब्बे ले आया है। कह रहा है, लड़के बढ़ गये हैं और भी डिब्बे चाहिए।

स्नेह से उसने गौर का सिर सहला दिया।

गौर ने कहा, "आज शाम को एक बार हमारे यहाँ आएँगे?"

"क्यों? कोई जरूरत है? चाचा ने बुलाया है?"

"नहीं। सोना इम्तहान देगी न? दरख्वास्त लिख दीजिएगा। उसे कुछ पूछना-पाछना भी है।"

"अच्छा, आऊँगा।"—गहरे स्नेह से देबू ने हामी भरी। गौर और सोना—लड़का और लड़की। दोनों की सोचकर देबू ने सान्त्वना-सी पायी। ये जब बड़े होंगे, तो इलाके की हालत और तरह की हो जाएगी।

घर के अन्दर से निकली दुर्गा। बोली, "गनीमत है—लौट तो आये। खाना-पीना कब होगा?"

उसके शासन से देबू को हँसे बिना न रहा गया। बोला, "चलो-चलो।"

दुर्गा हँसकर बोली, "वह लो मेहमान आया है।"

"मेहमान?"

"वह!"—दुर्गा ने सोये हुए आदमी को दिखा दिया।

देबू को बात नये सिरे से याद आयी। कहा—"वही तो! कौन है?"

"लुहार!"

"लुहार?"

"हाँ! अनिरुद्ध! नौकरी करके साहब बनकर आया है! हाय मरण!"

"अनिरुद्ध? अन्नी भाई?"

"हाँ!"

बातचीत होते रहने से और खास करके बार-बार अनिरुद्ध शब्द के उच्चारण से अनिरुद्ध जग गया। मुंह पर से टोपी हटाकर पहले उसने देबू को देखा। फिर कहा, "देबू भाई, राम-राम!"

तेईस

देबू ने पूछा, "इतने दिनों तक कहाँ थे अन्नी भाई?"

जवाब में उसने कहा, "पद्म घर छोड़कर चली गयी?"

लम्बा निःश्वास छोड़कर देबू ने सिर झुका लिया। उससे कुछ कहते नहीं बना। पद्म की वह रक्षा नहीं कर सका। घर छोड़नेवाली लड़की के पिता, पत्नी के पति, बहन के भाई घर छोड़ने का प्रसंग उठने पर जिस तरह से सिर झुकाकर बैठ जाते हैं चुपचाप, वह वैसे ही चुप हो रहा।

अनिरुद्ध ने कहा, "शर्म कैसी? इसमें तुम्हारा क्या कसूर भाई?" फिर कुछ देर चुप रहकर, गरदन हिलाकर—मानो मन में बहुत-बहुत सोच-विचार करके कहा, "उसका भी कोई कसूर नहीं। जाने दो।" फिर अपनी छाती पर हाथ रखकर कहा, "कसूर हमारा है। हमारा!"

देबू बोला, "एक चिट्ठी भी तो लिखी होती अन्नी भाई!"

अनिरुद्ध चुप हो गया। कुछ नहीं बोला वह।

दुर्गा ने तकाजा किया—"गुरुजी, दोपहरी हो आयी—रसोई तो करो।"

और अनिरुद्ध को देखकर हँसती हुई बोली, "मितवा भी तो यहीं खाएगा। क्यों भाई!"

देबू झट बोल उठा, "हाँ-हाँ, यहीं खाएगा। तुमने बात करना भी नहीं सीखा दुर्गा!"

दुर्गा खिलखिलाकर हँस पड़ी—"अरे, यह मेरा मितवा जो है! इसकी मेहमानदारी कैसी? कहो भी।"

अनिरुद्ध ठहाका मारकर हंसते हुए बोला, "मितनी ने ठीक ही कहा है भाई।"

उसकी इस हँसी से देबू ने अस्वच्छन्दता महसूस की। बोला, "तुम मुँह-हाथ धो लो भाई! तेल-गमछा लो, नहाओ। मैं रसोई कर लूँ।"

अन्दर जाकर उसने रसोई की जुगत शुरू की। अनिरुद्ध! अभागा। एक जमाने के बाद लौटा, मगर पद्म नहीं है! रही होती तो कितना आनन्द आता! आज पद्म को वह अनिरुद्ध के हाथों सौंपता—लड़की के बाप की तरह, बहन के बड़े भाई की तरह! अभागिन पद्म! संसार की दलदल में कहाँ धँस गयी, कौन जाने! उसकी अन्त्येष्टि के लिए कंकाल का एक टुकड़ा भी नहीं मिलेगा!

अनिरुद्ध बाहर बक-बक करता जा रहा था।

दोनों खाने बैठे तो अनिरुद्ध ने अपनी रामकहानी कही।..."जेलखाने में ही बड़ा अफसोस हुआ था, अपने ऊपर घृणा हो गयी थी! सोचा करता, गाँव में मुँह कैसे दिखाऊंगा? और गाँव में खाऊंगा भी क्या? वहाँ एक मिस्त्री से परिचय हुआ। मार-पीट में उसे सजा हुई थी। एक औरत के लिए दूसरे एक मिस्त्री से मारपीट हुई थी। उसी ने मुझे सहारा दिया। उसने छूटकर जाते वक्त मुझे अपना पता दिया और कहा—छूटने पर मेरे पास चले आना। मैं तुम्हें नौकरी दिला दूंगा।...जेल से निकला। सोचा, गाँव नहीं जाऊंगा। जंक्शन से खबर भेजकर पद्म को बुलवा लूँगा। और उसे साथ लेकर चला जाऊंगा।...लेकिन—।" अनिरुद्ध हँसा। कपाल पर हाथ रखकर बोला, "मेरी तकदीर देबू भाई! कैसे तो कहावत है न, 'कहाँ जाते हो नेपाल? साथ जाता है कपाल!' जंक्शन के कारखाने की एक औरत मिल गयी। दुर्गा जानती है—सावी, सावित्री नाम है उसका। देखने-सुनने में खासी है; मुझसे..." अनिरुद्ध फिर हँसा। उससे उस औरत की पहले से ही जान-पहचान थी—जान-पहचान से भी गाढ़ा परिचय। वह कारखाने के बूढ़े खजानची की कृपापात्री थी। बुड्ढे से वह रुपया काफी ऐंठती थी, पर उससे प्रीति जरा भी न थी। उस समय बुड्ढे से झगड़कर वह शहर में रूप का रोजगार करती थी।

अनिरुद्ध ने कहा, "उस औरत ने मुझे छोड़ा ही नहीं। अपने डेरे पर ले गयी। शराब-वराब पिलायी। उसी दिन वह बूढ़ा खजानची उसे मनाकर ले जाने के लिए आया। औरत तो जल-भुन गयी। रात ही उसने मुझसे कहा—चलो, हम लोग भाग

चलें। देबू भाई, इसका नशा क्या होता है, तुम नहीं जानते। सो मैं उस नशे में चला गया। कलकत्ते में उस मिस्त्री के यहाँ उतरा। उसके बाद...."

उसके बाद अनिरुद्ध इतने दिनों की लम्बी कहानी कहता गया—"मिस्त्री ने कल में नौकरी दिला दी। लुहारखाने में मजूरे का काम। लुहार का लड़का ठहरा, फिर छाती में गरीबी की जलन—काम सीखने में देर नहीं हुई; मजूरे से लुहार, लुहार से फिटर। बारह आने से डेढ़ रुपया, डेढ़ रुपया से दो, दो से ढाई और आज मजूरी है तीन रुपये रोज। ऊपर से ओवरटाइम। उसके सिवा भी बाहर ठेके का काम।"

आगे अनिरुद्ध ने कहा, "देबू भाई, पेट भरके खाया, जी भरके पहना, शराब पी, मौज-मजा किया—सब कर-कराके भी छह सौ पचहत्तर रुपये साथ लाया हूँ। सोचा था, घर-द्वार की मरम्मत कराऊँगा, जमीन ख़रीदूँगा। पद्म को साथ ले जाऊँगा। लेकिन...।" अनिरुद्ध ने दोनों ही हाथ उलटकर कहा, "फुर्र हो गयी।" और फिर वह चुप हो गया। देबू ने भी कोई जवाब नहीं दिया। इन बातों का जवाब भी क्या दे? दुर्गा कुछ ही दूर पर बैठी सब सुन रही थी। वह भी कुछ देर चुप रही। उसके बाद बोली, "तो? साबी कैसी है?"

"अच्छी ही थी। लेकिन—।" आगे अनिरुद्ध ने हंसकर कहा, "कई दिन हुए, वह कहीं भाग गयी।"

"भाग गयी?"

"हाँ।"

"जभी अपनी बीवी की याद आयी है?"

दुर्गा की ओर ताककर उसने कहा, "लिहाजा गलती मेरी है, यह तो मैं कबूल ही करता हूँ! लेकिन—"

"लेकिन क्या?"

"लेकिन वह छिरू के घर नहीं गयी होती तो मुझे कोई कष्ट नहीं होता। खैर, वहाँ से भी चली गयी, इससे मैं खुश हूं।"

देबू ने अपनी उसी शिकायत को दोहराया—"तुमने कोई चिट्ठी भी तो दी होती अन्नी भाई!"

अनिरुद्ध बोला, "यह नशा क्या होता है—मैंने कहा न—तुम जानते नहीं देबू भाई! मैं नशे में चूर हो गया था। और फिर मेरे मन में क्या था, मालूम है? मन-ही-मन तो यह तय किये हुए था कि कमाकर हजार रुपये लिये बिना नहीं लौटूँगा! तुम लोगों को दंग कर दूँगा!"

दुर्गा ने कहा, "सो आये तो तुम्हीं दंग रहे गये!"

"नहीं"—अनिरुद्ध ने नकारते हुए कहा, "नहीं। मन में ऐसा ही कुछ सोच करके ही आया था : खाने को मयस्सर नहीं, कपड़े नसीब नहीं, पति लापता,

वाल-बच्चे नदारद और पद्म की उम्र ठहरी जवानी की!—यह मैंने हजारों बार सोचा है दुर्गा। पर मुझे सबसे दुःख—"

"क्या ?"

"ना, वह अब नहीं कहूँगा।"

"क्यों, तुम्हें भी शर्म आती है क्या?"

"शर्म?"—देबू की ओर ताककर अनिरुद्ध ने कहा, "देबू भाई को बीवी-बच्चा नहीं था, उसी ने उसे खाने-पहनने को दिया। हरामजादी उसी के पैरों पर आकर लोट क्यों नहीं गयी? मैं आज देबू भाई से उसे माँगकर ले जाता। वह अगर जाना नहीं चाहती या कि देबू भाई को दुःख होता तो मैं मुसकराते हुए लौट जाता।"

देबू बोल उठा—"आह, अन्नी भाई!"

वह खाना छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

देबू को तमाम दोपहर उस रात की बात याद आती रही। ओसारे की चौकी पर बैठकर वह थिर आँखों उस हरसिंगार को देखता रहा।

उसकी तन्मयता में बाधा देकर दुर्गा बोली, "गुरुजी!"

"हूं! मुझसे कुछ कह रही है?"

दुर्गा ने कहा, "खूब कहा! गुरुजी और किसे कहते हैं!"

"गौर कह गया था, देबू भैया को मेरे यहाँ जाने के लिए याद दिला देना। दरख्वास्त या क्या तो लिखना है। बार-बार कह गया है। तुमसे नहीं कहा, क्या?"

देबू को याद आ गया। सोना मिडिल का इम्तहान देगी। दरख्वास्त लिख देनी होगी। कुछ बना-बता देना होगा। सोना को अगर जीवन का रास्ता पकड़ा सके तो एक बहुत बड़ा धर्म होगा। बड़ी अच्छी लड़की है। गौर की बहन है न! देबू को हैरानी होती, ये दोनों ऐसे कैसे हुए?

तिनकौड़ी के यहाँ एक खासी जमघट जमी हुई थी। तिनकौड़ी माथे पर हाथ रखे बैठा था। रामचरण, तारनी, वृन्दावन, गोबिन्द आदि कई जने बैठकर तम्बाखू पी रहे थे। लेकिन सभी चुप थे। इनकी चुप्पी का एक खास अर्थ होता है। इनका स्वाभाविक रूप है—गरजना, ठठाकर हँसना! तिनकौड़ी के चरित्र की बनावट भी बहुत-कुछ इन्हीं-जैसी है। तिनकौड़ी के साथ इन सबकी जब जमायत जमती है, तो चौथाई मील दूर से ही इनकी हँसी सुनाई पड़ती है। या कि बकझक की आवाज—गरज। या फिर सामूहिक गीत का स्वर।

जमायत को सन्नाटे में देख देबू को शंका हुई : "बात क्या है काका?"

तिनकौड़ी ने सिर उठाया। देबू को देखकर कहा, "आओ बेटे!"

देबू ने कहा, "आज ऐसे चुपचाप क्यों हैं?"

राम भल्ला बोला, "मण्डल भैया की वह अच्छी गैया आज मर गयी गुरुजी!"

तिनकौड़ी ने एक गहरा निःश्वास छोड़कर कहा, "वही नहीं भैया, हरामजादा छिदाम घोष-टोले में डकैती में कल रात पकड़ा गया। बीसियों बार मैंने उससे कहा था, अबे हरामजादे, अभी तेरी उम्र कच्ची है। हजार हो, अभी बच्चा है तू। मत जाया कर मगर कम्बख़्त ने सुना नहीं।"

"घोष-टोले में डकैती में पकड़ा गया? कहाँ, वहाँ तो डकैती की नहीं सुनी?"

"इस घोष-टोले में नहीं। मौलिक घोष-टोला—मुरशिदाबाद के पाँचहाटी के पास। कोई-कोई उसे पाँचहाटी-घोषपाड़ा भी कहते हैं।"

देबू के अचरज की सीमा नहीं रही। पाँचहाटी वह गया है। हफ्ते में वहाँ पाँच दिन पैठ लगती है। इलाके की मशहूर हाट है। शाक-सब्जी से लेकर चावल-दाल, मसाला-पाती, यहाँ तक कि गाय-भैंस तक बिकती है। मौलिक घोष-टोला भी देखा है। बुनियादी मौलिक उपाधिवाले कायस्थ जमींदार हैं। विशाल मकान! लेकिन पाँचहाटी तो यहाँ से कम-से-कम बारह कोस है—चौबीस मील! डकैती करने के लिए छिदाम इतनी दूर गया? उन्नीस-बीस साल का वह लिकपिक-सा छोरा!

देबू ने कहा, "वह तो यहाँ से बारह-चौदह कोस है?"

राम ने बहुत सहज भाव से कहा, "हाँ, उतना तो होगा।"

"इतनी दूर गया डकैती के लिए? वह छोकरा, छिदाम? कल तीसरे पहर भी तो मैंने उसे देखा था। मुझसे भेंट हुई थी।"

"हाँ। शाम को निकला।"

तिनकौड़ी बोला, "वह हरामजादा पकड़ा गया। अब सारी बस्ती को परेशान करेगा। मुझे भी नहीं छोड़ेगा।"—उसने उसाँस ली।

देबू चौंक उठा। तिनकौड़ी-जैसे आदमी के सिर थामकर बैठने का मतलब अब समझ में आया। कुछ क्षणों में अपने को सँभालकर उसने कहा, "परेशान तो करेगा ही वह। लेकिन और उपाय भी तो नहीं है। सहना ही पड़ेगा। उससे डरना क्या है? अदालत तो है। वहाँ झूठ का सच नहीं चलता।"

तिनकौड़ी जरा हँसा।

राम ने हँसते हुए कहा, "गुरुजी ने गलत नहीं कहा तिनू भैया। तुम कोई फिक्र न करो। पुलिस हुज्जत करेगी। हो सकता है, मजिस्टर दौरा सुपुर्द करे। लेकिन दौरे में सब ठीक हो जाएगा।"

अचानक रात का अँधेरा जैसे सिहर उठा। पास ही किसी का हृदय-विदारक रोना सुनाई पड़ा। सभी चौंक उठे।

तिनकौड़ी ने कहा, "कौन है रे रामा? कौन रो रहा है?"

राम की चंचलता इतने में ही ठण्डी पड़ गयी। कहा, "लगता है, रतन का बेटा गया!"

तारनी बोला, "हाँ। वही लगता है!"

एकाएक तिनकौड़ी उठ खड़ा हुआ। कुढ़न और क्रोध से बोला, "आदमी आदमी का खून करता है तो उसे फाँसी होती है, लेकिन रोग को पकड़कर फाँसी दे तो देखूँ। चल रामा, देखें जरा। जो होना होगा, सो तो होगा ही। उसके लिए सोचकर क्या करना!"

वह तेजी से सबसे पहले ही चला गया। देबू जरा चकित हुआ। तिनकौड़ी की ऐसी डाँवाडोल हालत उसने कभी नहीं देखी। सभी चले गये। वह खड़ा रहा। सोचने लगा कि रतन के यहाँ वह जाए या नहीं? अगर जाएगा, तो जिस काम के लिए आया है, वह नहीं हो सकेगा। सोना की परीक्षा की दरख्वास्त देने का भी ज्यादा समय नहीं रहा। और, रतन के यहाँ जाकर भी क्या होगा? क्या करेगा वह? शोकातुर माँ का हृदयवेधी रोना सुनने और उनकी मार्मिक पीड़ा को आँखों से देखने के सिवा और कुछ नहीं कर सकेगा। नः, दुःख उससे और नहीं देखा जाएगा। दुःख देखते-देखते प्राण हाँफ उठे हैं। यहाँ उसने आनन्द पाने की कल्पना की थी। बहुत-बहुत सोचा था।...बुद्धि की दमकवाली सोना से कड़े-कड़े सवाल पूछूँगा। सोना पहले सूनी आंखों सोचती रहेगी कि एकाएक उसकी दोनों आँखें चेतना की चंचलता से दीये की लौ-सी बल उठेंगी, होठों पर मुसकान खेलने लगेगी और जवाब बता देगी। मैं उससे भी सख्त सवाल करूँगा, उसका जवाब सोना नहीं सोच पाएगी। तब उसकी आँखों की बुझती दमक को मैं जला दूँगा। कहूँगा, लो, सुनो जवाब। मैं उत्तर कहता जाऊंगा, सोना की आंखों में चमक चमकेगी और उस बुद्धिमती लड़की के चेहरे पर कौतूहल की तृप्ति तथा श्रद्धा-भरा विस्मय झलक पड़ेगा। गौर भी भौचक्का-सा सुनता रहेगा शायद। गौर की बुद्धि वैसी पैनी नहीं है, पर उसकी प्राण-शक्ति अशेष है। बीच-बीच में उसकी उस प्राण-शक्ति के स्फुरण का परस मिलेगा। सहायता-समिति के लिए सम्भवतः वह इसी बीच कोई नयी युक्ति सोचे बैठा है। पढ़ने-पढ़ाने के बीच ही बोल उठेगा—"देबू भैया, मैं कह रहा था कि..."

कल्पना में उसे मुक्ति का स्वाद मिला था। दुःख से मुक्ति, निराशा से मुक्ति—मुसीबत की अमावस्या के अँधेरे के अवसान के बाद पूर्वी क्षितिज के छोर पर शुक्रतारा के उदय का आश्वासन हो मानो! दुःख को अब वह नहीं सह पा रहा है। रह-रहके जी में आता है कि घर छोड़कर चला जाए। घर! अपने घर की याद आने पर उसे हँसी आती। उसका घर उसकी बिलू और मुन्ने के साथ ही जलकर खाक हो चुका है। जो है, उसमें और पेड़-तले में कोई फर्क नहीं है। रास्तों के किनारे पेड़ों की छाया की कमी नहीं, एक को छोड़कर दूसरे के नीचे जाने में नुकसान ही क्या है? लेकिन ये काम उस पर जैसे नशे की तरह सवार हैं। नशेबाज जैसे तौबा कर-करके भी नशा नहीं छोड़ सकता, नशे का समय आते ही फिर पी लेता है, उसका भी ठीक वही हाल है। सोचता, इसे कर लेने के बाद अब नहीं। यही आखिरी है।

लेकिन उसके खत्म होते न होते दूसरे काम में हाथ डाल देता है।

देबू ने एक निःश्वास छोड़ा। जो भाग्यवाले होते हैं, अँधेरी रात में उनके सामने विजली कौंध उठती है। बरसात के दिगन्त की बिजली—चमक की छटा आती है, गरज की आवाज नहीं पहुँचती। भाग्यवान अँधेरे में भी राह देखकर चलते हैं। लेकिन अभागे के हाथ की बत्ती भी बुत जाती है। उसके नसीब में ऊपर से बिजली की छटा के बदले तूफानी हवा आती है। देबू ने मन-ही-मन आनन्द का जो दीया जलाया था, वह तिनकौड़ी वगैरह की दुश्चिन्ता के निःश्वास और बेटे के मृत्युशोक में रतन वागदी के मर्मभेदी आर्तनाद की तूफानी हवा से पल-भर में बुझ गया।

वह ओसारे पर चढ़ा। देखा, गौर और सोना जहाँ पढ़ते हैं, वहाँ कोई नहीं है। सिर्फ एक चटाई बिछी है और दीवट पर एक दीया जल रहा है।

उसने पुकारा—"गौर!"

किसी ने जवाब नहीं दिया।

उसने फिर आवाज दी—"गौर? ऐ गौर!"

इस बार धीरे-धीरे आकर सोना खड़ी हुई।

देबू ने कहा, "गौर कहाँ है? तुम्हारे इम्तहान की दरख्वास्त लिख देने के लिए कह आया था। कहा था, कुछ बताना-वताना है।"

सोना अबकी भी कुछ नहीं बोली। दीया सोना के पीछे था। उसके सामने की ओर घनी छाया पड़ी थी। फिर भी देबू को लगा, सोना की आँखों से आँसू की धारा वह रही है। वह विस्मय से जरा बढ़कर बोला, "सोना!"

दबी रुलाई में वह धीमे से बोली, "क्या होगा देबू भैया?"

"किस बात का क्या होगा? क्या हुआ है?"

"बाबूजी..."

"बाबूजी क्या"—कहते ही उसे तिनकौड़ी की कही बात याद आ गयी। तिनकौड़ी ने कहा था—'घोष-टोले में डकैती में छिदाम पकड़ा गया। वह हरामजादा पकड़ाया, अब सारी बस्ती को परेशान करेगा। मुझे भी नहीं छोड़ेगा।' देबू समझ गया, चर्चा अन्दर तक पहुँची है और औरतों तक में आतंक हो गया है।

देबू ने अभय और दिलासा दिया—"छिदाम की कह रही हो न? तो उससे डरना क्या? तिनू काका को उस मामले में लपेटने से ही तो लपेटा नहीं जा सकता। भगवान हैं। अभी भी रात-दिन होता है। सच-झूठ कभी ढँका नहीं रहता। इलाके-भर के लोग गवाही देंगे कि तिनू काका वैसा आदमी नहीं है। पहले भी तो पुलिस ने दो-दो वार बी.एल. केस किया था—मगर कुछ भी तो नहीं कर सकी वह। इलाकेवालों की गवाही को जज साहब टाल नहीं सकने।"

सोना की रुलाई और बढ़ गयी। बोली, "अबकी बाबूजी भी वास्तव में उन्हीं लोगों की जमात में शामिल हो गया है!"

"ऐं! कह क्या रही हो?" अचरज से देबू को काठ मार गया।

सोना बोली, "हम लोगों को पता नहीं था देबू भैया! आज शाम को राम चाचा वगैरह ने आकर बाबूजी से चुपचाप कहा, 'गजब हो गया भैया, छिदाम पकड़ा गया। हम लोगों ने सोचा, लोगों ने रपेटा सो छोरा कहीं छिटक गया। मगर हरामजादा, पकड़ा ही गया!' बाबूजी ने माथे पर हाथ रखकर कहा—'रामा, तुम लोगों ने ही मुझे डुबाया। यह पाप कराया'!"

देबू जैसे बुत बन गया। निर्वाक्, निस्पन्द।

सोना ने धीमे से कहा, "कल तीसरे पहर बाबूजी ने कहा, 'मैं एक काम से जा रहा हूं। कल सवेरे लौटूंगा। पहले ही लौट सका तो भोर ही भोर तड़के लौटूंगा। सिपाही आवाज दे तो कह देना, तबीयत खराब है, सो रहा है।' सिपाही ने रात पुकारा नहीं। बाबूजी रात के आखिरी पहर में लौटे। हाँफ रहे थे। शराब पी थी। पीते तो खैर वे हैं ही। हम कुछ समझ नहीं सके। शाम को राम चाचा ने जब कहा—"

सोना का गला रुँध आया।

देबू ने गहरी उसाँस ली : "खत्म—सब खत्म हो गया। चौधरी ने ठाकुर बेच दिया और तिनू काका आखिर में डकैतों से जा मिला!"

आँचल से आँखें पोंछकर सोना बोली, "ये लोग जब डकैती के बारे में बोल रहे थे, तो गौर भैया वहाँ था। बाबूजी को पता नहीं था। मैं आयी तो भैया ने चुप रहने का इशारा किया। मैं चुप खड़ी रही।"

फिर एक आवेग सोना के गले में प्रबल हो उठा। बोली, "भैया घर से चले गये देबू भैया।"

देबू चौंका। बोला, "चला गया! क्यों?"

"गुस्से से। दुःख से। अभिमान से। जाते वक्त कह गया कि, बाबूजी पूछें तो कह देना, मैं घर से चला जा रहा हूँ।"

चौबीस

एक रोज तिनकौड़ी ने निष्कपट भाव से खुद ही देबू से सारा कुछ खोलकर कहा। घर की तलाशी में कुछ नहीं मिला। लेकिन छिदाम जिन्दगी में पहली बार डकैती करने गया और पकड़ा गया। वह पी नहीं सका। कबूल कर लिया। और जिसके

घर डकैती हुई, उसके दो आदमियों ने तिनकौड़ी, राम और तारनी को देखते ही पहचान लिया। पुलिस की पूछताछ में सोना भी सुनी-सुनायी कह गयी। तिनकौड़ी बुत बना अपनी बेटी को देखता रह गया।

मुकदमे की सुनवाई के समय—तिनकौड़ी उस समय हाजत में था—एक वकील के साथ देबू ने उससे भेंट की। उसी दिन तिनकौड़ी ने उससे सब खोलकर कहा।

सब कुछ जान-सुनकर भी देबू को तिनकौड़ी के मुकदमे की पैरवी करनी पड़ी। इसके लिए अपने मन से लड़ते-लड़ते वह घायल हो गया। तिनू चाचा ने डकैतों के साथ डकैती का पाप किया। उसकी पैरवी करना ठीक नहीं है। लेकिन दूसरी ओर सोना और उसकी माँ का मुँह देखकर वह किसी भी तरह से अपने को निरपेक्ष नहीं रख पा रहा था। महज ममता की ही बात नहीं थी—तिनकौड़ी को अगर सजा हो जाए तो सोना और उसकी माँ के लिए उसे मुसीबत में पड़ना होगा। तीनों लोकों में उनकी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है। गौर जो उस रोज शाम को भागा, सो तब से उसका भी कोई पता नहीं! जीवन में ऐसी मुश्किल हालत में देबू कभी नहीं पड़ा।

हर रात को अकेले सौ चिन्ताओं में उसे यही लगता कि घर छोड़कर भाग जाना ही ठीक है। उसे मालूम है कि यहाँ से भागते ही उसे मुक्ति मिल जाएगी, मगर भागते भी नहीं बनता। इस बीच उसने सोना वगैरह को टालकर चलने की कोशिश की। तीन दिन तक वह उनके यहाँ गया नहीं। चौथे दिन अपनी माँ और एक भल्ला लड़के को लेकर सोना उसके आँगन में आ खड़ी हुई। काँपती आवाज में पुकारा—"देबू भैया!"

देबू परेशान हो उठा। अपराध की ग्लानि ने मन-ही-मन उसे चंचल कर दिया। वह बाहर निकला . "सोना! चाचीजी! आइए। अरी ओ दुर्गा, अरे कहां गये सब! अच्छा, यह रही चटाई, बैठिए।"...बाहर की चौकी पर जो चटाई पड़ी थी, उसे लाकर नीचे बिछा दी।

सोना की मां पहले देबू से नहीं बोलती थी। अब घूँघट के अन्दर से बोलती है। वह बोली, "छोड़ दो बेटे, रहने दो।"

सोना ने देबू की बिछाई चटाई उठा दी!

देबू ने कहा, "अरे, उठाये क्यों दे रही हो?"

सोना ने जरा हँसकर कहा, "आपने उलटी ही चटाई डाल दी। उलटी चटाई पर नहीं बैठना चाहिए।"...यह कहकर वह सीधी चटाई बिछाने लगी।

"ओ"—अप्रतिभ होकर देबू ने कहा, "आप लोग तकलीफ उठाकर आयीं क्यों, सो तो कहिए? मैं तीन दिनों से जरूर जा नहीं सका। तबीयत ठीक नहीं थी। आज मैं जाता।"

सोना ने कहा, "एक बात है देबू भैया!"

"कहो।"

"भैया के लिए किसी अखवार में विज्ञापन देना ठीक नहीं होगा? मैंने कल देखा, एक ने 'लौट आओ' का विज्ञापन दिया था।"

"क्यों नहीं।"—यह बात देवू को याद ही नहीं थी। वह बोला, "ठीक कहा है तुमने। देखता हूं लिखकर। आज ही डाक से भेज दूँगा।"

सोना ने आँचल की गाँठ मे निकालकर दो रुपये रख दिये और कहा, "क्या लगेगा मैं नहीं जानती। दो रुपये से हो जाएगा न?"

"रुपये तुम रखो। उसका इन्तजाम मैं करूँगा।"

घूँघट के अन्दर से सोना की माँ बोली, "ये दो रुपये तुम रख लो बेटे! हम लोगों के लिए तुमने बहुत किया है। समय-समय पर रुपया भी खर्च किया है, मैं जानती हूं। ये रुपये मैं गौर के नाम से ले आयी हूं।"

देबू ने रुपये उठा लिये। सोना की माँ ने गलत नहीं कहा। परन्तु देबू ने भूल करके भी कभी वह बात जाहिर नहीं होने दी। वे लोग सिर्फ सोना के इम्तहान की फीस के बारे में ही जानते हैं। इम्तहान देने का संकल्प सोना का आज भी अटूट है। अजीब धुन है! उसने कहा था—"देवू भैया, बाबूजी की तो हालत यह है! भैया चला गया। जो थोड़ी-सी जमीन है, वह भी नहीं रहेगी। उसके बाद हमारी क्या दशा होगी? दाईगिरी करके खाना होगा?"

देवू चुप था। इस बात का जवाब भी क्या दे?

सोना बोली, "मैं जंक्शन गयी थी। वहाँ के बालिका-विद्यालय की दीदीजी से भेंट हुई। उन्होंने मुझसे कहा, मिडिल पास कर लो। मैं तुम्हें अपने स्कूल में रख लूँगी। छोटी बच्चियों को पढ़ाना। दस रुपये माहवार पर जाना पड़ेगा। वेतन फिर बढ़ा देंगी।"

देबू ने स्वयं भी बहुत सोचा है। सोना के लिए इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं दीखता। पहले जमाने में इस रास्ते की बात कोई सोच भी नहीं सकता था। विधवा का वही सनातन रास्ता कि—बाप-माँ या भाई के साथ रहना और अगर कोई न हो तो किसी के यहाँ काम करना। शूद्रों के लिए ब्राह्मण के यहाँ या अवस्थावाले स्वजाति के यहां रसोइया का काम ही दूसरा उपाय था। एक और उपाय—अन्तिम उपाय—जिसे सोचकर भी देबू सिहर उठता। उसे श्रीहरि याद आ जाता, पद्म याद आ जाती। सोना के ऐसे साधु-संकल्प के लिए देबू ने उसे धन्यवाद दिया है, उसकी तारीफ की है। सोचकर हैरत भी हुई कि परिवेश का प्रभाव जीतकर उसने ऐसे संकल्प की प्रेरणा कैसे पायी?

पुरनिये कहते हैं—'समय की महिमा! कलिकाल!'

चण्डीमण्डप में, घाट पर इसी बीच इसपर व्यंग्य-भरी आलोचना होने लगी थी।

देबू से भी बहुतों ने कहा, "गुरुजी, काम यह अच्छा नहीं हो रहा है। इसका

नतीजा बाद में समझोगे।"...लोगों ने बड़े घिनौने इशारे किये।

"लड़की बन-ठनकर जंक्शन नौकरी करने क्या जाएगी? फिर तो वह जो जी में आएगा, वही करेगी।"

देबू इसे नहीं मानता, यह बात नहीं। जंक्शन विद्यालय की ही एक शिक्षिका बड़ी बदनामी कमाकर गयी। सदर अस्पताल की एक डॉक्टरनी और एक मुख्तार साहब की कलंक-कहानी जिले में किसे मालूम नहीं! लेकिन किसी के यहाँ नौकरानी बनने में भी तो वैसे कलंक की सम्भावना से छुटकारा नहीं है। जंक्शन की मिल में भी तो बहुतेरी औरतें काम करने जाती हैं। वहाँ भी क्या वे बेदाग रहती हैं? लेकिन लोग मानो इन बातों के आदी हो गये हैं। देबू के होठों पर कड़वी हँसी फूट उठी थी। और फिर सोना पर उसे भरोसा है, उसे शिक्षा के लिए श्रद्धा है। उसे पक्का विश्वास है कि लिख-पढ़कर सोना का जीवन और भी उज्ज्वल होगा।

तिनकौड़ी से भी उसने सोना के संकल्प की बात कही। उसने भी कहा, "उसकी कोई बात नहीं बेटे। तुम वही कर दो। उसकी ओर से मैं निश्चिन्त हो सकूं तो मुझे कोई चिन्ता ही न रहे। मुझे कालापानी हो, चाहे फाँसी, मैं हँसते-हँसते झेल लूँगा।"

देबू चुप हो गया। सोना के प्रसंग में तिनकोड़ी ने जैसे ही अपने अपराध की बात उठायी, उसने मन में अशान्ति महसूस की।

तिनकौड़ी ने निश्छल मन से सब खोलकर कहा। कहा, "मेरे नसीब का फेर ही है भैया। सदा मैं रामा वगैरह को इस पाप के लिए गालियाँ देता रहा, उन्हें मारा-पीटा भी, दो-तीन महीने तक मुँह देखना छोड़ दिया। जीवन में पराये पोखरे की एकाध मछली छोड़कर मैंने किसी का तिनका भी कभी नहीं लिया। और मेरी दुर्गति देख लो! मेरे नसीब ने मानो गरदन पकड़कर मुझे इस रास्ते पर ला रखा। बाढ़ तबाह कर गयी। मैं तुमसे क्या बताऊँ देबू, पहले तो काँसा पीतल बेचा, उसके बाद चारों ओर अँधेरा! सोचा, तुम्हारी सहायता समिति की शरण लूँ। मगर शर्म आयी। बीज-धान लाया, उसका भी आधा खा गया। ऐसे में एक दिन रामा आया। बोला, 'मण्डल भैया, अब तुम हमें कुछ नहीं कह पाओगे। हम लोग तुम्हारी समिति की भीख पर अब नहीं जी सकते। हम लठैत हैं, सदा के डाकू हैं, सदा जोर-जुलुम का खाया है। आज अब भीख नहीं ले सकते। भीख के अन्न की रसोई गले में नहीं उतरती। हमारे नसीब में जो होना होगा, होगा; तुम हमारी ओर से आँखें बन्द कर लो। अपना उपाय हम आप कर लेंगे! मैंने कहा, 'जब मैं भीख ले सकता हूँ, तो तुम लोग क्यों नहीं ले सकोगे?' इस पर रामा ने कहा, 'हम तुमको भी भीख का भात नहीं खाने देंगे। तुम मण्डल हो; तुमने, तुम्हारे बाप-दादे ने सदा अपना सिर ऊँचा रखा है—दस को खिलाया है—भीख लेने में तुम्हें शरम नहीं आती? बल्कि हम यह करें कि जिसके ज्यादा है, उससे छीन लें—चलो।'...मैंने फिर भी कहा—'पाप है

यह। ऐसा पाप नहीं करना चाहिए।' तब रामा बोला—'हम सब काली मैया का हुकुम लेकर जाते हैं। पाप होता यह, तो मैया हुकुम क्यों देती? खैर! तुम काली मैया के माथे पर फूल चढ़ाओ! अगर वह फूल गिर पड़े तो समझना कि मैया की आज्ञा है। और फूल न गिरे तो तुम मत जाना!' उस रात मसान में कालीपूजा हुई। मैंने माथे पर फूल चढ़ाया, और फूल गिर पड़ा।"

एक लम्बा निःश्वास छोड़कर तिनकौड़ी चुप हो गया। फिर हँसकर बोला, "मेरे नसीब में यही था भैया। मैं भी क्या करूँ? तुमने वकील रखा—ठीक ही किया। मगर तुम इसमें मत पड़ो। पुलिस तुम्हें झमेले में डालेगी। तुम बल्कि सोना बिटिया का कोई इन्तजाम कर दो अच्छा-सा। मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा! मुझे वचन दो कि उसके लिए व्यवस्था कर दोगे?"

देबू का समर्थन सिर्फ जगन डॉक्टर ने किया। डॉक्टर दोष-गुण में सच ही अच्छा आदमी है! जो उसे जँच जाता है, उसका वह निश्छल भाव से समर्थन करता है। और जो उसे बुरा लगता है, उसे रोक पाये चाहे नहीं, चीखकर आसमान को फाड़ते हुए कह देगा—'नहीं-नहीं। यह नहीं हो सकता।'

अनिरुद्ध ने भी समर्थन किया।

कोई डेढ़ महीना हो गया, अनिरुद्ध अभी यहीं है। नौकरी की बात कहने से कहता, "अरे, मुझे नौकरी की क्या फिक्र! हथौड़ी पीटूँगा, पैसे कमाऊँगा। पैसे चुक जाएँगे तो चला जाऊँगा। परवाह क्या है मुझे! न बाल-बच्चे हैं, न घर-गिरस्ती। एक ही बोझ यह साला सूटकेस है। हाथ में इसे उठाकर चल दूँगा!"

उसने दुर्गा के यहाँ अड्डा गाड़ दिया है। ठीक दुर्गा के यहाँ नहीं, पातू के यहाँ। वहीं उसका डेरा रहता है। देबू समझता है, अनिरुद्ध दुर्गा को चाहता है। मगर दुर्गा अजीब बदल गयी है। वह उसकी छाँह भी नहीं छूती। देबू के यहाँ काम करती है, खाती है। रात को जाकर अन्दर से किवाड़ बन्द करके सो रहती है। शुरू में दुर्गा को लेकर देबू की जो बदनामी फैली थी, दुर्गा के ऐसे आचरण से वह अपने-आप गायब हो गयी, जैसे सुबह के आकाश में असमय के मेघ की गरज हो जाती है। तिस पर बाढ़ के बाद देबू ने जब सहायता-समिति कायम की, देश-देश से उसके नाम रुपये आने लगे—पाँच गाँव के लड़कों की टोली उसके साथ आ जुटी—तिनकौड़ी के बेटे गौर से लेकर जंक्शन के लड़कों तक ने भीख माँगकर देबू का भण्डार भर दिया; और देबू ने भी जब सबकी मदद की—कुछ भीख देने-जैसी नहीं, बल्कि ऐसी कि जैसे कोई अपना आदमी मुसीबत में खोज-पूछ रखता हो, तो लोगों ने मन-ही-मन उसे आदर से अपनाया। यह चूक भी महसूस की कि उसके साथ अन्याय हुआ है। सामाजिक तौर पर देबू अभी तक अजाति ही बना हुआ है। पाँच गाँवों के मण्डलों की पंचायत में श्रीहरि ने जो घोषणा की, उसका किसी ने जाहिरा विरोध भी नहीं किया। लेकिन यों मिलने-जुलने, चलने-फिरने में देबू से सबकी घनिष्ठता बनी हुई

है बल्कि वह घनिष्ठता दिन-दिन और गाढ़ी ही होती जा रही है। चण्डीमण्डप से श्रीहरि सभी देखा करता। दो-चार जने से उसने कहा भी—"तुम जो देबू के यहाँ इतना आते-जाते हो, पता है, वह समाज से अलग कर दिया गया है?"

एक दिन श्रीहरि ने रामनारायण से पूछा था। वह श्रीहरि का ताबेदार है। कम-से-कम श्रीहरि ऐसा ही सोचता है। वह यूनियन बोर्ड के प्राइमरी स्कूल का शिक्षक है। रामनारायण श्रीहरि की खातिर भी करता है। लेकिन इस सम्बन्ध में उसने बड़ी नम्रता के साथ कहा, "जी हाँ, आता-जाता हूँ। भाई-बन्ध हे। फिर इस दुर्दिन में सहायता-समिति से मदद भी लेनी पड़ी है। दस-पाँच गाँव के लोग आते-जाते हैं। मैं भी जाता हूँ, बैठता हूं, बातें भी करता हूँ। समाज से निकाला है पंचायत ने, लेकिन दस गाँव के लोग यदि उसे न मानें तो अकेले मुझे कहने से क्या लाभ?"

श्रीहरि इस पर रंज हो गया था। रंज तो दस गाँव के लोगों पर भी हुआ मगर वह रंजिश सबसे पहले रामनारायण पर ही पड़ी। यूनियन बोर्ड का मेम्बर होने के नाते दूसरे सदस्यों पर प्रभाव डालकर रामनारायण को नोटिस दिलवाया—'तुम्हारी अयोग्यता के लिए तुम्हें एक महीने का नोटिस दिया जाता है।' उस नोटिस के जवाब में देबू ने बहुत-बहुत लोगों की सही बनवाकर एक दरख्वास्त 'जिला विद्यालय निरीक्षक' तथा 'सर्किल अफसर' के मारफत अनुमण्डल पदाधिकारी के पास भेजी। रामनारायण की योग्यता का सबूत देकर उस नोटिस को रद्द करा दिया।

श्रीहरि ने तारा हजाम से कहा था कि तू देबू की हजामत क्यों बनाता है? तारा एक ही धूर्त है। यह कानून वह खूब जानता है। बोला, "जी, धान के बदले हजामत बनानेवाला पुराना नियम तो उठ गया है। यों समझिए कि जो समाज से पतित नहीं भी करार दिये गये हैं, उनमें से भी बहुतेरे ऐसे हैं, जो खुद ही उस्तरे से हजामत बनाया करते हैं, जंक्शन जाकर बनवा लिया करते हैं। पैसे लेकर मैं भी ऐसे कितनों की हजामत बनाता हूँ। गुरूजी पैसे देते हैं, मैं बना देता हूँ। आखिर मेरा भी तो पेट चलना चाहिए। आप तो हुजूर बहुत बड़े आदमी हैं; जिन्होंने उस्तरा ख़रीदा है या जो दूसरे नाई से हजामत बनवाते हैं, आप उन्हें मना तो कीजिए। फिर मैं हजार बार माथा नवाकर यह हुक्म मान लूँगा—गुरुजी की हजामत नहीं बनाऊँगा।"

श्रीहरि ने इस पर ज्यादा शोर-गुल नहीं मचाया, लेकिन साथ ही वह चुप भी नहीं बैठा। तिनकौड़ी के मामले में पुलिस की भरसक मदद कर रहा है। तिनकौड़ी डकैती में पकड़ा गया, इसकी उसे बड़ी खुशी है। यह खुशी वह छिपाता भी नहीं।

बात जब सच है, तो पुलिस को मदद करने के लिए देबू ने श्रीहरि को दोष नहीं दिया। लेकिन चिढ़ के मारे अपने काइयाँ गुमाश्ता दासजी की मदद से वह झूठा गवाह खड़ा कर रहा था! दास ने क्या तो पुलिस से कहा है कि घटना की रात उसने लाठी लिये तनकौड़ी और रामा को बाँध पर से लौटते हुए अपनी आँखों देखा

है। उस दिन डेढ़ बजे रात की गाड़ी से उतरकर आते वक्त भटककर देखुड़िया के पास जा निकला था।

यह सोचकर देबू का मन श्रीहरि के प्रति जहरीला हो उठा! घृणा भी होने लगी कि वह तिनकौड़ी के पकड़े जाने से खुश है। देबू यह भी समझता था कि तनकौड़ी को सजा हो जाएगी तो श्रीहरि एक बार सोना के पीछे पड़ेगा। इसका उसे आभास भी मिला था। श्रीहरि ने तो कहा भी है कि—"एक विधवा लड़की जूता पहनकर जंक्शन के स्कूल में मास्टरी करने जाएगी! देखता हूँ मैं, कैसे जाती है वह!"

शाम को अपने ओसारे पर बैठकर देबू यही सब सोच रहा था। आज उसकी बैठक में कोई नहीं आया। दूर पर ढाक बज रहा था। जगद्धात्री की प्रतिमा का विसर्जन था आज। कंकना के बाबुओं के यहाँ तीन प्रतिमाएँ बैठती हैं। एक होड़-सी रहती है। खाने-खिलाने के मामले में कौन कितना आगे रह सकता है और किसके यहाँ शाक-मछली कितनी बनी; पूजा के बाद भी कई दिनों तक इसकी चर्चा चलती रहती है। प्रतिमा विसर्जन के समय आतिशबाजी की होड़...सभी लोग आतिशबाजी देखने के लिए चल दिये थे। जगन डॉक्टर, हरेन घोषाल तक पातू की टोली के साथ चल दिये थे। दुर्गा भी गयी थी। श्रीहरि साँझ से पहले ही जा चुका था। उसकी टप्परवाली शान की गाड़ी देबू के दरवाजे के सामने से ही गयी। घण्टियों की मालावाले तेज बैल झूमते हुए निकल गये। गाड़ी के बगल से लाल मुरैठा बाँधे कालू शेख और चौकीदार की नीली वर्दी में भूपाल बागदी भी गया। श्रीहरि अब जमींदार की कोटि का आदमी है। उसका खास न्योता था।

गाँव में वही लोग रह गये थे, जो लाचार बूढ़े हैं या रोगी या शोकग्रस्त हैं। शोकग्रस्त तो इलाके के प्रायः सभी हैं। बाढ़ के बाद मलेरिया ने आकर घर में कुछ-न-कुछ गजब जरूर ढाया है। जिन पर अभी-अभी गाज गिरी थी, उन्हें छोड़ सभी गये। रोशनी-बाजा आतिशबाजी देखने की खुशी में सब देबू की नजर के सामने से ही गये। प्यासा आदमी छाती के बल घुड़ककर जैसे मरीचिका के पीछे दौड़ता है, एक पल के झूठे आनन्द के लिए ये लोग वैसे ही दौड़े। अभी-अभी मुँह पर कपड़ा ढांके एक आदमी गया। देबू ने उसे भी पहचाना। उस टोले का हरिहर था। परसों ही उसका एक लड़का गुजर गया। देबू ने उसाँस ली! उनके साथ अपनी याद आयी—बिलू की, मुन्ने की। बिलू और मुन्ने को वही कितना याद करता है? उसके होठों पर बाँकी हँसी की एक लकीर खिंच गयी। कितनी देर? शाम को भी रोज नहीं। लेखा लगाने से महीने में एक बार भी नहीं शायद! काम और काम! दूसरों का बोझा माथे पर उठाकर भूत बेगार खटता है। यह बोझ कब उतरेगा, पता नहीं!

लेकिन अब उतर जाएगा, लगता है।

सहायता-समिति के रुपये और गल्ले चुक गये। सहायता-समिति की जरूरत भी कम हो आयी। क्वार बीता, कातिक भी खत्म हो चला। थोड़ी-बहुत फसल इसी बीच गृहस्थों के घर आ भी गयी। 'भाषा' धान भी कुछ-कुछ कटी। अगहन के आरम्भ में ही आएगा 'नवीना' धान, फिर 'आमन'। इधर की बैहारों में पंचग्राम की बैहार ही प्रधान है। उस बैहार में अवश्य इस बार फसल नहीं है। लेकिन हर ग्राम के अगल-बगल कुछ खेत हैं, जहाँ से कुछ-कुछ फसल आएगी। फिलहाल अभाव में कमी होगी कुछ। दो महीने के अरसे में मलेरिया भी बहुत-कुछ सह गया। महामारी का तेज घट गया, उसकी वह भयंकरता नहीं रही। बच्चे बहुत मरे। वयस्क भी कम नहीं मरे। गाय-भैंस की पूँजी लगभग आधी उजड़ गयी। जो मवेशी बचे थे, लोग उन्हीं को लेकर खेती में जुट गये थे। एक इसका तो एक उसका लेकर लोग जोताई में जुट गये।

देबू देखता और सोचता—आदमी भी अजीब हैं! गजब की है इनकी सहने की शक्ति! अनोखी है इनकी जीने की, घर-गिरस्ती करने की आकांक्षा! इतनी बड़ी मुसीबत आयी—बाढ़ राक्षसी की लपलपाती जीभ के चाटने का चिह्न अंग-अंग में पड़ा है; यह अभाव, यह रोग, महामारी की तबाही, खेतों में बालू, गड्ढे—लोगों ने पल-भर में ही सब पोंछ डाला! पंचग्राम की वैहार को वह कल ही देख आया है। सोना वगैरह की खोज-खबर लेने के लिए देखुड़िया गया था। पंचग्राम की बैहार के बीच से जो पगडण्डी गयी है, उसके दोनों तरफ कुछ-कुछ खेती हुई है। अब चना, मसूर, गेहूँ, जौ, सरसों के बीज जुटाना ही सहायता-समिति की अन्तिम जिम्मेदारी रह गयी है। यह काम हो जाने पर वह समिति को ख़त्म कर देगा। वह बोझा सिर से उतर जाएगा।

एक बोझा और था उसके सिर पर—तिनकौड़ी की गिरस्ती। इस नयी जिम्मेदारी के कारण ही उसकी चिन्ताओं की मीमा नहीं थी। तिनकौड़ी के मुकदमे के फैसले में अब देर नहीं है। महीने-भर के अन्दर दौरा सुपुर्द और दौरे में उसे सजा होगी ही। उसके बाद सोना और उसकी माँ की समस्या खड़ी होगी। यह जिम्मेदारी भी बहुत बड़ी है। श्रीहरि की धमकी उसने सुनी है। किसी की धमकी की वह अब परवाह नहीं करता। वैसी धमकी से उसके मन की आग जल उठती है। उस दिन तारा हजाम से जो सुना, तो उसके जी में आया, तिनकौड़ी को सजा होगी तो सोना और उसकी माँ को वह अपने घर लाकर रखेगा। सोना जिस कदर मेहनत कर रही है और जैसी पैनी बुद्धि है उसकी, उससे लगता है कि वह मिडिल जरूर पास कर लेगी। कोशिश-पैरवी करके जंक्शन के स्कूल में उसे नौकरी दिला देगा और ऐसा करेगा कि सोना मैट्रिक पास कर सके। श्रीहरि ने कहा है—'विधवा लड़की जूता पहनकर जंक्शन पढ़ाने जाया करेगी, यह उसे बरदाश्त नहीं।' मगर वह सोना को पढ़ी-लिखी लड़की जैसी साज-पोशाक पहनाएगा। सादी कोर की धोती के बजाय

रंगीन साड़ी पहनाएगा। विधवा! सोना विधवा किस बात की? पाँच साल की उम्र में शादी हुई, सात साल की उम्र में विधवा हो गयी। ऐसी विधवाओं के ब्याह के लिए विद्यासागर महोदय जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। कानून तक पास हो गया है। उसे विद्यासागर की उक्ति याद आयी—'हाय भारत के लोग! और कब तक तुम लोग मोहनिद्रा जड़े प्रमोद सेज पर सोये रहोगे? हाय, अबलाओ, नहीं कह सकता, तुम लोग किस पाप से भारतवर्ष में जन्म लेती हो।'...देबू सोना का नये सिरे से ब्याह कराएगा और उन्हीं लोगों को लेकर अपनी गिरस्ती बसाएगा।...

ये बातें उसके उत्तेजित मन की हैं। शान्त और स्वाभाविक अवस्था में सोना वगैरह की चिन्ता ही उसकी सबसे बड़ी चिन्ता हो गयी है। तय नहीं कर पा रहा है कि इन दो अभिभावक-विहीन स्त्रियों के लिए वह क्या प्रबन्ध करे। गौर रहा होता, तो वह निश्चिन्त था। दुःख और लाज से वह कहाँ चला गया, पता नहीं। कोई सुराग भी नहीं मिल सका। अखबार में विज्ञापन भी दिया गया। उससे भी कोई नतीजा नहीं निकला। अचानक एक बात सूझ आयी उसे।

फट्-फुट् आवाज। आतिशबाजी हो रही थी, वह आसमान में लाल-नील रंग की फुलझड़ी! आसमानतारा!...

उपाय मिल गया! सहायता-समिति का बोझा उतर जाए। अपनी जमीन, अपना घर सोना और उसकी माँ को देकर किसी रात वह चुपचाप चल देगा। बल्कि जंक्शन में ही शिक्षिकाओं के आस-पास उन दोनों के रहने का इन्तजाम कर देगा। सोना स्कूल में नौकरी करेगी, खेती का भार सतीश बाउरी पर रहेगा—फसल वह सोना को पहुँचा दिया करेगा। और फिर गौर क्या कभी लौटेगा ही नहीं? वह लौटेगा तो सारा भार वही लेगा।

इसके सिवाय छुटकारे का और कोई रास्ता नहीं है। यही करेगा। हाँ दुनियादारी के बन्धन से उसे छुटकारा लेना ही होगा। प्राण हाँफ उठे हैं। अब नहीं बनता। दूसरों का बोझा उठाये भूत की यह बेगारी अब नहीं चल सकेगी। अपने बीवी-बच्चे को याद तक करने की फुरसत नहीं मिलती—लोगों से बैर-विरोध करके दिन काटना, निन्दा-कलंक को गहना बनाना—यह सब अब बरदाश्त नहीं होता! अब वह चैन की साँस लेकर गहरी शान्ति में, निरुद्वेग आनन्द में समय बिताना चाहता है। अपने विचित्रताओं से भरे वेदनातुर अतीत को छोड़कर वह इस गाँव से निकल पड़ेगा! जी भरकर अपनी बिलू, अपने मुन्ने को याद करेगा, भगवान को पुकारेगा—मुन्ने और बिलू की चिताओं को बँधवा देगा पक्के से और तीर्थाटन करेगा। हाँ, श्मशान में छोटी-सी चलिया बनवा देगा। आँधी-पानी में, गरमी के दिनों में, धूप में श्मशान-बन्धुओं को कड़ा कष्ट होता है। संगमरमर के एक पटिये में खुदवा देगा—'बिलू और मुन्ने की याद में।'

बिलू और मुन्ना! आज इन एकान्त क्षणों में वे मानो जी उठे हैं, जाग उठे

हैं। सामने के उस हरसिंगार-पेड़ की फाँकों में चाँदनी उतरी है—लगता है, जैसे बिलू ही खड़ी है। पद्म-जैसी इशारा कर रही है। बिलू! मुन्ना।

देबू चौंक उठा। नाम को ही अनमना हुआ था वह। हठात् उसने देखा, हरसिंगार के नीचे से कौन तो बाहर निकल आयी। धप्-धप् धुले कपड़े में कोई स्त्री! बिलू! हाँ, वही तो। गोद में बच्चा। मुन्ने को गोद में लिए वह ओसारे पर आयी। देबू के सर्वांग में एक सिहरन-सी उठी। नस-नस के लहू में आग की चिनगारियाँ दौड़ीं। वह चौकी पर बैठा था। उछलकर अन्धे आवेग से उसने बिलू को अपनी छाती में खींच लिया—दबाकर चुम्बनों से उसे भर दिया। जी उठी, बिलू उसकी जी उठी!

"अरे रे, जमाई! छोड़ो-छोड़ो! पागल हो गये क्या?"

देबू चौंका। आर्त स्वर में पूछा, "कौन?"

"मैं हूँ। दुर्गा! तुम शायद..."

"एं? दुर्गा?"—उसे छोड़कर देबू बुत बन गया।

दुर्गा ने कहा, "घोषाल का बच्चा मेले में बिछड़ गया था। रो रहा था। उसी को गोदी में ले आयी। मौत मेरी—दे आती हूँ।"

देबू ने जवाब नहीं दिया। ओसारे पर ऐसा विवश बैठा रहा जैसे लकवा मार गया हो। दुर्गा चली गयी।

लौटकर दुर्गा ने देखा, देबू चौकी पर औंधा पड़ा है।

वह कुछ देर चुपचाप खड़ी रही। चेहरे पर एक अजीब हँसी खेल गयी। धीमे से पुकारा, "जमाई गुरुजी!"

देबू उठ बैठा—"कौन, दुर्गा?"

"हाँ!"

"मुझे माफ करना दुर्गा, मन में कुछ खयाल मत करना।"

"क्यों, खयाल कैसा करने लगी मैं।"—दुर्गा खिलखिलाकर हंसी! लोट-पोट हो गयी।

"मुझे ऐसा लगा दुर्गा कि हरसिंगार-तले से मेरी बिलू मुन्ने को गोद में लिए चली आ रही है। मैंने लपककर उसे छाती से लगा लिया। अपने को जब्त नहीं कर सका।"

दुर्गा ने गहरा निःश्वास छोड़ा। बोली नहीं। चुपचाप ही उसने कमरे की जंजीर खोली। लालटेन लाकर चौकी पर रखते हुए बोली, "अँधेरे में जाने क्या-क्या खयाल आता है। रोशनी लेकर बैठो तो—।" कहते-कहते ही उसने लालटेन की बत्ती और बढ़ा दी। तेज रोशनी में देबू की शक्ल देखकर वह अवाक् हो गयी। उसके बाद बोली, "इसके लिए तुम रो रहे हो जमाई गुरुजी!"

देबू की आँखों से बहती हुई आँसू की धारा रोशनी में चमक रही थी। मुसकराकर देबू ने अपनी आँखें पोंछ लीं।

दुर्गा ने कहा, "तुमने मुझे छू लिया, इसके लिए रो रहे हो?"

देबू ने कहा, "आज पहले से ही आँसू आ रहा है दुर्गा! बिलू और मुन्ने की याद आ गयी है। अचानक गोदी में बच्चा लिए तू आ गयी—मुझसे कैसी तो गलती हो गयी!"...देबू की आँखों से फिर आँसू बहने लगा।

कुछ देर चुप रहकर दुर्गा ने कहा, "तुम्हारे-जैसे आदमी को क्या रोना चाहिए जमाई गुरुजी?"

हँसकर देबू ने कहा, "रोना ही तो चाहिए। उन्हें क्या भूल सकता हूँ?"

दुर्गा ने कहा, "वह नहीं कह रही मैं। कहती हूँ कि तुम्हारे-जैसा आदमी अगर रोएगा तो गरीव-दुखियों के आँसू कौन पोंछेगा?"

एक उसाँस लेकर देबू सामने की तरफ ताकने लगा।

उधर नदी-किनारे का बाजा-गाजा थम चुका था। दूर पर लोगों की आहट सुनाई दे रही थी। वह आहट बढ़ती जा रही थी।

दुर्गा बोली, "चूल्हे में आँच देती हूँ। काफी रात हो गयी, उठो।"

"नः, आज अब कुछ नहीं खाऊँगा।"

"छिः, उठो। तुम्हारे मुँह से ऐसी बात नहीं सोहती। नहीं उठोगे तो मैं तुम्हारे पैरों सिर पीटूँगी।"

"खैर! चल।"

—कि पास ही कहीं फिर ढोल बज उठा। हैरत में आकर देबू ने कहा, "यह फिर क्या है?"

हँसकर दुर्गा बोली, "लुहार है और क्या?"

"अनिरुद्ध?"

"हाँ। भसान देखने गया था। खूब हुल्लड़ मचाया है आज उसने! पक्की शराब ले आया था। टोलेवालों को पिलायी। आज मंगल-चण्डी गायी जाएगी। लगता है, वही शुरू हो गया।"

देबू हँसा। अनिरुद्ध से इस बार आकर उस टोले को खूब जमा दिया है। जमाया ही नहीं है, बहुतों को बहुत मदद भी की है।

दुर्गा ने कहा, "सुना है, भैया लुहार के साथ काम करने के लिए कलकत्ता जा रहा है!"

"यों ही सुना है, एक दिन अन्नी भाई ही बता रहा था!"

"और भी बहुतों ने पकड़ा है लुहार को। उसने कहा, 'भई सबको लेकर आखिर मैं कहाँ जाऊँगा? पातू मेरा पुराना साथी है, इसे ले जाऊँगा। तुम लोग जंक्शन की मिल में काम करो।'"

"हाँ?"

"हाँ। आज ही शाम को तो—भसान देखने जाने से पहले, खूब कलू-कलू कर

रहे थे सब। सतीश भैया कह रहा था—अरे, मिल में क्या मजूरी करेगा! दूसरे सब कह रहे थे—जरूर करेंगे, जरूर! लुहार ने ठीक ही बताया है।...पूछो मत। जो कूद-फॉद हुई! नशे में थे न सब!"

देबू चुप रहा। दुर्गा की बातों में चिन्ता का विषय मिल गया उसे। मिल में मजूरी करने जाएँगे! जंक्शन में मिल बहुत दिन से बनी है। लेकिन आज तक गरीब-गुरबे या छोटी जाति का कोई वहाँ मजूरी करने नहीं गया। सन्ताल और दूसरी जगह के मोची ही वहाँ खटते आये हैं। वहाँ के मजूरों की हालत भी देबू को मालूम है। पैसे जरूर मिलते हैं, काम का वक्त भी बँधा-बँधाया होता है, मगर वहाँ जो रवैया है कि उसमें गृहस्थों का गृह-धर्म बचना मुश्किल है। गृह भी नहीं, धर्म भी नहीं बचता। मिलवालों ने लाख कोशिश की, हजार लोभ दिखाया पर गृहस्थ में से किसी ने उस रास्ते पर कदम नहीं बढ़ाया। काल-जैसी बाढ़ में लोगों का घर गया, अनिरुद्ध अपनी फूँक से धरम भी उड़ा देगा क्या?

दुर्गा बोली, "लो, फिर क्या सोचने लगे? रसोई चढ़ाओ।"

देबू हाँड़ी लाने के लिए चला। दुर्गा बोली, "ठहरो, ठहरो!"

"क्या हुआ ?"

"कपड़ा बदल लो।"

"क्यों?"

लजायी-सी दुर्गा बोली, "हमको छू जो दिया है!"

देबू ने बिना कुछ बोले चूल्हे पर हाँड़ी चढ़ा दी।

बाउरी टोले में शोर-गुल हो रहा था। नशे में सब माते हुए हैं शायद। अनिरुद्ध ने मानो एक आँधी-सी उठा दी है। ढोल बज रहा है, गाना हो रहा है। सुनसान रात। गाना साफ सुनाई दे रहा था। देबू डूब-सा गया।

दुर्गा बोल उठी—"चूल्हे की आग जो बुझ गयी! और लकड़ी लगाओ।"

देबू ने चूल्हे की तरफ देखकर कहा, "दे दे न बाबा, तू ही डाल दे।"

एक चैला बढ़ाकर दुर्गा ने कहा, "न, तुम्हीं दो।"

उधर गीत चल रहा था—

> भादों के महीने घिरा घोर है बादल।
> नदी-नदी एकाकार, आठों ओर जल।

देबू का मन कवि की तारीफ में मुखर हो उठा। 'आठों ओर जल'—केवल ऊर्ध्व और अधः को छोड़ सभी तरफ पानी।

दुर्गा बोली, "इस बार-जैसी बाढ़ होती तो दईमारी बचती नहीं।"

देबू के मन में औचक खिंची एक लकीर-सी चिन्ता जग उठी। फुल्लरा का गीत जो छोकरा गा रहा था, उसकी आवाज ठीक लड़की-जैसी थी, साथ ही जोरदार

भी थी! लग रहा था, फ़ुल्लरा ही उस टोले में बैठी गा रही है। उस टोले का हर घर तो फ़ुल्लरा का ही घर है। कोई फर्क नहीं। ताड़ के पत्ते की छौनी, दीवार भी टूटी, रेंड़ की खूँटी नहीं है केवल—खूँटी बाँस की है। दो-एक के यहाँ बरगद की डाल की भी खूँटी है।

आखिर गाना खत्म हुआ। देबू को खयाल आया—भात उतार लेना चाहिए। कहा, "दुर्गा, भात हो गया शायद। उतार लूँ, क्या खयाल है?"

किसी ने उत्तर नहीं दिया।

अचरज से देबू ने पुकारा, "दुर्गा!"

किसी ने जवाब न दिया। चली गयी? कब गयी? अभी तो थी!

"दुर्गा!"

सच ही दुर्गा जाने कब चली गयी थी।

पचीस

कातिक बीत चला था। सर्दी का समय आ गया। लेकिन इस बार इसी समय अच्छी सर्दी पड़ गयी। सवेरे कँपनी-सी लगती है। भोर में अब सूती चादर से सर्दी नहीं जाती। कातिक में लोग रजाई नहीं ओढ़ते हैं। क्योंकि कातिक महीने में रजाई ओढ़ने से मरने पर कुत्ता होना पड़ता है फिर भी लोगों ने केथा-रजाई निकाल ली। बाढ़ से माटी इस कदर भीग गयी थी कि अभी तक सूख नहीं पायी। घनी छाँहवाले आमकटहल के बगीचे की माटी में सील थी। बाउरी टोले के लोगों ने घर में डालों से मचान बाँध लिया था। सतीश पैरों पर एक विलायती कम्बल डाल लेता है, रजाई अभी नहीं ओढ़ता है।

पातू ने कहा, "कुत्ता बनने का गम नहीं है सतीश दादा! लेकिन हाँ, बड़े-बड़े रोएँवाला विलायती कुत्ता बनें। मजे में जंजीर डालकर बड़े लोग पालेंगे। दूध, भात, मांस खाने को देंगे।"

अनिरुद्ध ने कहा, "अबे साले, रोएँ में जूँ होगा, रोआँ उठ जाने से मरेगा। भगा देगा।"

"तो जिसे पाऊँगा, उसी को काट खाऊँगा।"

"तो डण्डों की मार से या गोली दागकर मार देगा।"

"बस, फिर तो कुत्ता जनम से छुटकारा पा जाऊँगा!...और कहीं देशी कुत्ता होऊँ तो तुम पाल लेना सतीश दादा!"

अनिरुद्ध के आने के बाद से ही पातू की बोल-चाल का ढंग ऐसा हो गया है। बगैर चिकोटी काटे बोल ही नहीं सकता। पातू की बात से सतीश को थोड़ी-बहुत चोट लगी।

कल रात बात कुछ और पक्की हो गयी। टोले के तमाम औरत-मर्दों ने शराब पी और खूब हो-हल्ला किया। और अन्त में मिल में काम करने की बात एक प्रकार से तय कर ली। सतीश ने सवेरे विलायती कम्बल ओढ़कर हल जोतने की तैयारी की। उसके टोले में सब मिलाकर कुल पाँच हल थे। पहले अवश्य और ज्यादा थे। इस पातू के ही एक था। मवेशियों की यह जो महामारी हुई, उसमें पाँच हलों के दस बैल में से चार ही बच रहे। सतीश के ही दो रहे, बाकी दो आदमियों के एक-एक। उन दोनों ने भी रबी बोने की सोची थी। उनमें से एक के यहाँ जाकर सतीश ने ताकीद की–

"चल, चक्का उग गया।"

अटल ने कहा, "हाय राम! लो, जरा मजे से तम्बाखू पी लो। मैं कालाचाँद को बुला लूँ और बैल ले आऊँ।"

सतीश तम्बाखू पीने के लिए बैठ गया।

अटल अकेला ही लौटा। बोला, "सतीश दादा, तुम जाओ। आज मेरा जाना नहीं हो सका।"

"नहीं हो सका?"

अटल ने कहा, "साला कालाचाँद नहीं जाएगा।"

"नहीं जाएगा?"

"नहीं? जाएगा भी नहीं, बैल भी नहीं देगा। बोला, 'मुझे खेती-बारी नहीं करनी है। अपना बैल मैं बेच दूँगा। बने तो खरीद लो।' साले की बात भी कैसी होती! कहा, पैसे निकालो खोआ खाओ। मैं क्या तुम्हारा पराया हूँ?"

"हाँ। साले पर भूत सवार है।"

"भूत ही सवार है। नहीं तो पुरखों का ऐसा काम-काज, कुल-धर्म कोई क्यों छोड़े? आः, ऐसे सुख का, ऐसा पवित्र भी काम है कोई? खेती, गो-सेवा ये पवित्र काम हैं। काम करते जाओ–मालिक के घर का धान, वेतन, कपड़ा–इसी से गुजारा हो जाएगा! पानी-काँदो में कहीं मजदूरी करके जान नहीं देनी होगी। पहले-जैसा सुख अब जरूर नहीं है। पहले तो बीमार पड़ने पर खेतिहर इलाज तक कराता था। और फिर खेतिहर से लकड़ी-काटी, फूस-बूस तो मिलता ही है। तीज-त्योहार में कुछ मिलता-मिलाता है ही। ऐसा आराम छोड़कर लोग मिल में खटने के लिए कूद रहे हैं। यह लुहार कुछ रुपये ले आया और पिला-पिलाकर उसने सबका दिमाग खराब

कर दिया। उसका भी कोई कसूर नहीं है। उसने कभी नहीं कहा। यह सनक पातू ने ही चढ़ायी है, पातू ने खुद ही कहा है कि मुझे ले चलो अनिरुद्ध! मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा।"

अनिरुद्ध पातू को साथ ले जाने के लिए राजी हुआ था। पातू उसका बहुत दिनों का मन का आदमी है। पातू के जब हल था, तो वही अनिरुद्ध की खेती करता था। और वह दुर्गा का भाई है।

अनिरुद्ध उसे ले जाने को तैयार हुआ कि सभी आकर नाचने लगे : "मुझे ले चलिए। मुझे! मुझे!"

अनिरुद्ध को मजा आया। उसने कहा, "अरे भाई, सबको मैं कहाँ ले जाऊँ, तुम लोग यहीं मिल में जाकर काम करो।...अनिरुद्ध का क्या? उसे न घर है, न घरनी; न जमीन, न कुछ। गाँव और माँ एक-से होते हैं और उसने उस गाँव को ही छोड़ दिया है। मिल में काम करने की राय दे दी है।"

मिल में मजदूरी! यह सोचते हुए भी सतीश का बदन सिहर उठता! गरीब छोटी कौम के हैं तो क्या, आखिर गृहस्थ तो हैं। गृहस्थ भला मिल में मजूरी करता है।

सतीश ने अटल से कहा, "गोली मारो कालाचाँद को। तू मेरे साथ चल। तीन वैलों से हम दोनों जितना कर सकेंगे, करेंगे। चल।"

अटल चुप बैठा था। वह भी पातू की ही तरह कुछ सोच रहा था। उसने न तो जवाव दिया, न हिला ही।

सतीश ने पूछा, "क्या इरादा है, चलेगा?"

सतीश ने सिर खुजाकर कहा, "वाद में बखरा किस ढंग से होगा?"

"बखरा? पाँच जने जैसा कहेंगे, होगा।"

"नहीं भैया, इसे तुम पहले ही तय कर दो।"

"ठीक है। गुरुजी के यहाँ से होते चलें। गुरुजी जो कहेंगे, वही करूँगा। उनका कहा तो मानोगे न?"

गुरुजी के दरवाजे पर खासी भीड़-सी लगी थी। श्रीहरि घोष भी खड़ा था। भारी गले से बड़े रौब के साथ वही कह रहा था, "काम तुम ठीक नहीं कर रहे हो देबू!"

श्रीहरि पहले देबू को देबू चाचा कहता था। आज सिर्फ देबू कह रहा था। लिहाजा वह देबू पर सख्त नाराज हुआ है—सतीश और अटल को इसमें शुबहा नहीं रहा।

गुरुजी ने हँसकर ही कहा, "यह सवेरे-सवेरे तुम धमकाने आये हो श्रीहरि?"

श्रीहरि ऐसे जवाब के लिए तैयार नहीं था। कुछ क्षणों के लिए वह ठक्-सा

रह गया। उसके बाद बोला, "तुम समझ नहीं रहे हो कि तुम गाँव का कितना बड़ा नुकसान कर रहे हो!"

गुरुजी ने कहा, "मैं गाँव का नुकसान कर रहा हूँ?"

"नहीं कर रहे हो? गाँव के सब लोग मिल में जा रहे हैं। तुम उन्हें उकसा रहे हो।"

देबू बोला, "नहीं। मैंने नहीं उकसाया है।"

"कैसे नहीं उकसाया? तुमने अनिरुद्ध को रहने दिया है। वही कर रहा है।"

"वह इसी गाँव का है। मेरे बचपन का साथी है। दो दिन के लिए आया है, मेरे यहाँ है। जब तक उसके जी में आएगा, रहेगा। वह क्या करता या नहीं करता है, उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ।"

श्रीहरि ने कहा, "मालूम है तुम्हें, वह छोटी जाति के लोगों के साथ शराब पीता है, खाता है। और वैसे आदमी को तुमने घर में जगह दी है।"

देबू ने कहा, "मैं अतिथि का जाति-विचार नहीं करता। उसका जूठन भी मैं नहीं खाता। और फिर..." देबू ने हँसकर कहा, "मैं भी तो जाति से निकाला हुआ ही हूँ श्रीहरि!"

श्रीहरि आगे बोल नहीं सका। खड़ा भी न रहा वह। घर की ओर चला गया।

श्रीहरि के पीछे-पीछे जानेवालों में से हरीश आगे आकर बोला, "सुनो भैया देबू, सुनो।"

देबू ने कहा, "कहिए।"

"चलो, तुम्हारे ओसारे पर बैठें। नहीं, घर के अन्दर ही चलो।"

देबू ने आदर से ही कहा, "चलिए। वह तो सौभाग्य है मेरा।"

घर के अन्दर जाकर हरीश ने कहा, "वह अजाति-बजातिवाली बात रहने दो। वह महज यों ही है। तुम्हीं कहो, कभी किसी ने कहा भी है कि देबू गुरुजी के यहाँ नहीं जाएँगे, वह अजाति है? या कि तुम्हारे घर आया नहीं है? वह सब हम लोग टीक-टाक कर देंगे।"

देबू चुप रहा।

हरीश ने कहा, "श्रीहरि तो मुझसे कह रहा था कि आप देबू से पूछिए, वह अगर राजी हो तो मेरे साले की एक बेटी है। लड़की बड़ी है। उससे शादी की बात करें। अजाति! वह सब बेकार बात है।"

देबू बोला, "ब्याह की बात छोड़िए हरीश चाचा! और क्या कहना है?"

हरीश ने कहा, "इस काम से, तुम बाज आओ भैया। यह काम न करो। गाँव में मजूरा नहीं मिलेगा, हलवाहा नहीं मिलेगा। बड़ी तकलीफ होगी लोगों को। गोबर की टोकरी लोगों को खुद माथे पर उठाकर खेत ले जानी होगी। उन लोगों को तुम मना करो।"

"ठीक तो है। आप लोग सबको बुलाकर कहें।"

"नहीं भैया! वे लोग तुम्हें देवता-जैसा मानते हैं।"

देबू ने कहा, "सुनिए चाचा, मैंने उन लोगों से कुछ भी नहीं कहा है। कहा है अनिरुद्ध ने। पहले यों ही उड़ती-सी खबर सुनी थी। कल रात सब ठीक से सुना। मैंने सारी रात इसपर सोचा है। हिसाब लगाकर देखा—गाँव में जितने गृहस्थ हैं, उनसे पाँचगुने ज्यादा लोग उन लोगों के टोले में हैं। बहरहाल गृहस्थों की हालत इतनी बिगड़ गयी है कि जन-मजूर रखनेवाले गृहस्थों को उँगलियों पर गिना जा सकता है। ज्यादा लोग तो दूसरे गाँव के गृहस्थों के यहाँ काम करते हैं। बाढ़ के बाद तो दूसरे गाँववालों ने भी जन-मजूर को हटा दिया है। ऐसी दशा में ये लोग खाएँगे क्या? इन्हें खिलाएगा कौन?"

हरीश देर तक चुप बैठा रहा। उसके जवाब के इन्तजार में देबू भी चुप रहा। जवाब न मिला, तो बोला, "तम्बाखू पिएँगे? भर लाऊँ?"

हरीश ने गरदन हिलाकर 'ना' कर दिया। फिर एक लम्बा निःश्वास छोड़कर कहा, "अच्छा, तो मैं चलता हूँ।"

दरवाजे पर पहुँचकर वह फिर बोला, "इस गाँव का जो नुकसान तुमने किया देबू, वह किसी ने कभी नहीं किया। सर्वनाश कर दिया तुमने!"

देबू ने कहा, "मैंने उनसे मिल में काम करने के बारे में कतई नहीं कहा है। आप यकीन न करें, यह और बात है।"

"लेकिन मना भी तो नहीं किया!"

बतियाते हुए वे रास्ते पर आये। इसी वक्त चण्डीमण्डप से श्रीहरि का गला सुनाई पड़ा—"उनसे कह दे, जो लोग मिल में काम करने जाएँगे, उन्हें मेरी चाकरान जमीन में बसने नहीं दिया जाएगा। मिल में खटना हो तो मेरे गाँव से चले जाएँ।"

...कि चण्डीमण्डप से झट-पट कालू शेख उतरा। वह हाथ में लाठी लिये मुड़ैठा बाँधे उन्हीं के सामने से निकल गया।

श्रीहरि के इस हुक्म की घोषणा से देबू के होठों पर हँसी आ गयी थी। यह फिजूल का हुक्म है। उसे मालूम है कि लोग इसे नहीं मानेंगे। सेटलमेण्ट इतना तो कर गया है। लोगों के हाथ में वह परचा देकर निरे कमजोर और डरपोक आदमी को भी यह बता गया है कि इस जमीन पर तुम्हारा यह हक है, इतना अधिकार है। पहले गृहस्थ लोग बाउरी, डोम, मोचियों को अपनी जगह में बसाया करते थे। वे गृहस्थों के इस काम को उनकी अपार दया मानते थे। और उन गृहस्थों के सुख-दुःख में वे अपने एक पवित्र कर्तव्य की तरह हाथ बँटाया करते थे। इन लोगों को पुश्त-दर-पुश्त यह धारणा ही नहीं थी कि धरती पर उनकी भी जमीन हो सकती है। लिहाजा, जो उन्हें बसने के लिए एक टुकड़ी जगह देता था, वही उनका राजा होता था। कोई पारिवारिक झगड़ा होता, तो निपटारे के लिए उसी राजा के पास

जाते। उसका फैसला मानते, उसकी दी हुई सजा सिर झुकाकर स्वीकार कर लेते। उनकी बेगारी करते, भेंट देते। कभी राजा अपनी जगह से हट जाने को कहता तो उनके पैरों पड़ जाते, रोते-गिड़गिड़ाते। इस पर भी दया की भीख नहीं मिलती, तो बाल-बच्चों के साथ किसी दूसरे ऐसे राजा की शरण जाते। शिवकालीपुर में ये लोग जमीन पर बसे हुए थे। उसी नाते श्रीहरि आज वैसा ही पुराना हुक्म जारी कर रहा था। लेकिन इस बीच समय जो बदल गया! ये लोग अब पहले-जैसे कमजोर नहीं रहे। तिस पर सेटलमेण्ट ने उन्हें बता दिया कि इस जमीन पर तुम्हारा लिखित अधिकार है, वह जबानी-जमा-खर्च से नहीं जाने का। बात-बात में वे परचा निकालते हैं। श्रीहरि के इस हुक्म से कोई डरनेवाला नहीं है, यह देबू जानता था।

पिछली रात देबू को जागते बीती। थका हुआ-सा था वह, आँखों में जलन हो रही थी। दुर्गा को हरसिंगार-तले से बच्चा गोदी में लिये आते देख वह भारी भूल कर बैठा था। उसका अफसोस और इन लोगों के मिल में जाने की बात से जाने उसे क्या हो गया था कि नींद ही नहीं आयी।

ये दोनों बातें उसके दिमाग में ऐसी उलझ गयीं कि उन्हें अलग-अलग पहचानने तक का उपाय नहीं रहा। माथे पर हाथ रखे ध्यानमग्न की नाईं वह तमाम रात बैठा सोचता रहा : बिलू! मुन्ना! उफ्!, आज कैसी भूल कर बैठा वह! दुर्गा को गोद में बच्चा लिये आते देख उसे लगा, मुन्ने को गोदी में लिये बिलू चली आ रही है! अभी भी वह उस दृश्य को भ्रम नहीं समझ पा रहा है। बिलू और मुन्ना के बिना इस घर में वह रह कैसे रहा है? किस जी से है? उसका कलेजा हाहाकार कर उठा था। पराया काम, देश का काम सब भुतहा मामला है। सोना और उसकी माँ की चिन्ता, उनकी घर-गिरस्ती का प्रबन्ध, सोना के इम्तहान में सहायता, तिनकौड़ी के मुकदमे की पैरवी, सहायता-समिति—इन्हीं सब कामों में उसके दिन कटते हैं। अब वह इन सबसे मुक्ति चाहता है। यह सब अब ढोया नहीं जाता।

तिनकौड़ी का बोझा उतरने में अब विलम्ब नहीं है। ऐसे मौके से अन्नी भाई ने बाउरी-डोम-मोचियों को मिल में जाने की सलाह देकर अच्छा ही किया है। वे लोग मिल में ही चले जाएँ। सहायता-समिति का तीन हिस्सा काम तो उन्हीं लोगों से है। सारी जिन्दगी तो वह उन्हीं लोगों के लिए झेल रहा है! उसे याद आया, मयूराक्षी के बाँध पर ताड़ का पत्ता काटने के कारण श्रीहरि से लड़ाई हुई थी।[1] श्रीहरि ने उन लोगों को पकड़वाया था। उन्हीं लोगों को छुड़ाने के लिए उसे मुन्ने के हाथ का कंगन बन्धक देना पड़ा था। याद आया, रात में न्यायरत्न उसे वह कंगन वापस दे गये थे। उसी रात उन्होंने देबू को ब्राह्मणवाली कहानी का आरम्भिक अंश भी सुनाया था। उसके बाद ही उसके टोले में हैजा फैला था। लोगों की सेवा में

1. 'चण्डीमण्डप' में।

जाकर वह उस महामारी का जहरीला दाँत अपने साथ ले आया, जो दाँत पहले तो उसके मुन्ने के कलेजे में चुभा, फिर चुभा उसके कलेजे में! ओह! वह सारा-कुछ सहकर भी उनकी सेवा करता आ रहा है।

न्यायरत्न की कही कहानी याद आयी—मछेरिन की टोकरी में शालग्राम शिला! वह उन लोगों को गले में आज भी झुलाये चल रहा है। मगर हुआ क्या? उसी का क्या हुआ? उन बदनसीबों का ही वह क्या कर सका? हाँ, बाढ़ के बाद सहायता-समिति से उन लोगों का बहुत उपकार हुआ है। पर उपकार से वे कितने दिनों तक जिन्दा रहेंगे? अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, घर-गिरस्ती में कोई साधन नहीं—सिर्फ दूसरों की मदद पर जीना क्या जीना है? और दूसरों की मदद भी कब तक? नः, इससे मिल में काम करना कहीं अच्छा है। अन्नी भाई ने लोगों के जीने की तरकीब बता दी है। चौधरी ने जब से अपने गृह-देवताओं को बेच दिया, तब से गले में शालग्राम शिला को ढोते फिरने के आदर्श पर आस्था नहीं रह गयी। न्यायरत्न की बात का उसे अविश्वास नहीं, पर मछेरिन की टोकरी के बजाय देवता अब मूर्ति धारण करके प्रकट हों, वह यह चाहता है। शायद हो कि तब उसे मुक्ति मिले! लेकिन उसकी मुक्ति के बाद शालग्राम शिला की सेवा कौन करेगा? तर्क करनेवाले शायद यह कहें—अरे बाबा तुम्हारे सिवा संसार में करोड़ों-करोड़ लोग हैं। कहना सही है। लेकिन यह परीक्षा पुरानी हो गयी है। और ये बाउरी-डोम ही अगर शालग्राम शिला हों, तब तो सेवक से देवता की ही तादात ज्यादा है। नः, वे लोग अगर अपने-आप जीने का उपाय नहीं कर सकेंगे तो किसी की मजाल नहीं कि उन्हें बचाये। उससे अनिरुद्ध का बताया उपाय ही ठीक है। इस उपाय से वे लोग अपने पसीने की कमाई पर खा-पहनकर जी सकेंगे। एक बात के लिए पहले उसे इस पर एतराज था। वहां जाने से औरतों का धर्म नहीं बचेगा। मर्द भी नशेबाज और उच्छृंखल हो जाएँगे। लेकिन कल उसने सोचकर देखा, यह आशंका व्यर्थ न भी हो, पर इसकी जितनी गम्भीरता उसने सोची थी, उतनी तो नहीं ही है। गाँव में रहते हुए ही उनका धर्म कौन बचा हुआ है! उसे श्रीहरि, कंकना के बाबू, हरेन घोषाल की बात याद आयी : भवेश और हरीश के जवानी के दिनों की भी कहानी उसने सुनी है। उस दिन द्वारका चौधरी के बेटे हरेकृष्ण के बारे में भी सुना। अन्नी भाई ने भी जिन दिनों ऐसी हरकतें की थीं, वह गाँव का ही था! यहाँ की औरतें कंकना के बाबुओं के यहां रेजा का काम करने जाती हैं। उसके बड़े-बड़े किस्से सुने जाते हैं। कल ही उसने सोच देखा, जिस पुण्य से लोगों का यह पाप जाता है, लोग जब तक उस पुण्य से पुण्यवान् नहीं होंगे, तब तक सभी हालत में यह पाप बना रहेगा। पाप की यह प्रवृत्ति गाँव में रहने से भी रहेगी, बाहर जाने से भी रहेगी। शकल-भर बदलेगी।

खैर! अनिरुद्ध के कहे अगर लोग मिल में जाते हैं तो जाएँ। देबू उन्हें मना

नहीं करेगा। उनकी दुःख-दुर्दशा के प्रतिकार का फिलहाल इससे कोई दूसरा अच्छा रास्ता नहीं है।

मिल के भी लोगों को उसने देखा है। बहुतों से जान-पहचान भी है। वे अच्छे हैं। थोड़ा उच्छृंखल जरूर हैं। अनिरुद्ध इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। तो क्या हुआ! ज्यादा कमाएँ तो कुछ पैसे की पीएँ। लेकिन अनिरुद्ध की सेहत कितनी अच्छी हो गयी है। साहस कितना है उसमें। ये लोग भी वैसे ही हों। वह मना नहीं करेगा। कन्धे से बोझा उतरा चाहता है, वह उसमें बाधा नहीं डालेगा। उसे मुक्ति चाहिए।

वह बाधा भी देगा तो लोग नहीं सुनेंगे। यह बात कल रात ही लोगों ने उससे कह दी है। गीत का सुर सुनाई दे रहा था। एकाएक गीत थम गया और एक जोरों का कोलाहल-सा उठा। देबू अपने ओसारे पर सोच रहा था। कोलाहल से चौंककर वह दौड़ पड़ा। ज्यादा पी लेने से ये कम्बख्त मार-पीट जरूर करेंगे। सभी बहादुर बन जाते हैं। लहू-लुहान हो जाते हैं। मन के दबे आक्रोश रात के अँधेरे में साँप-से निकलकर फुफकार उठते हैं। बहुतेरे लोग तो मार-पीट करने के लिए ही पीते हैं।

देबू गया। देखा, कुरुक्षेत्र मच गया है। नशे में किसी को ठीक से खड़े होने की ताकत नहीं है। लड़खड़ा रहे हैं सब। उसी हालत में घूँसा-मुक्का चल रहा है आपस में। दोस्त-दुश्मन समझने का उपाय नहीं। एक जगह मामला संगीन-सा लगा। देबू लपका। वास्तव में बात संगीन हो गयी थी। पातू ने बेरहमी से एक आदमी का गला धर-दबोचा था। वह खासा मजबूत जवान है। उसके हाथ के दबाव से उस भले आदमी की जीभ निकल आयी। देबू चिल्लाया—"ऐ पातू, छोड़ दे! छोड़!"

पातू गरज उठा—"नहीं! नहीं छोड़ूँगा।"

देबू ने इसके बाद दुविधा नहीं की और तुरत उसने पातू के कन्धे पर जोरों का एक घूँसा जमा दिया। पातू के हाथ खुल गये। छुटकारा पाते ही वह आदमी सिर पर पैर रखकर भागा, लेकिन पलटकर पातू ने देबू पर ही हमला करना चाहा। देबू ने उसे धक्का दिया—"पातू?"

पातू अब सहम गया। नशीली आँखों से पहचानने की कोशिश करता हुआ बोला, "कौन?"

"मैं हूँ, गुरुजी!"

"गुरुजी?"—पातू तुरत बैठ गया। देबू के पाँव छूकर प्रणाम किया—"पर नाम! आप ही विचार करें गुरुजी! बाम्हन का लड़का है, वह कम्बख्त हरदम मोची टोले का चक्कर क्यों काटता है?"

उधर हलचल तब तक थम आयी थी। सभी दबे गले से कहने लगे—"ऐ, चुप हो जाओ। गुरुजी! अरे, गुरुजी!" केवल एक कमजोर-सा आदमी उस समय भी अकेले ही शून्य में घूँसा चला रहा था। पातू कह रहा था—"नहीं मानता मैं। तुम सालों की बात मैं नहीं सुनता! जा!"

देबू ने कहा, "आखिर बात क्या है? तुम लोगों ने यह शुरू क्या किया है?"

पातू बोला, "हम लोगों का कोई दोष नहीं है। बस यह सतीश! साला दादा क्या है, कच्चू है!"

"क्या हुआ सतीश, क्या किया तुमने?"

उसने कहा, "मत जा। मत जा।"

"मुसीबत, मत जा क्या?"

पातू ने दोनों हाथ बाँधकर कहा, "आप मत मना करना गुरुजी! आपके पैरों पड़ता हूँ।"

"क्या? क्या मना करूँगा?"

"हम लोगों ने मिल में जाने का तय कर लिया है। अनिरुद्ध सब ठीक कर देगा। मैं अवश्य उसके साथ कलकत्ता जाऊँगा। ये लोग मिल में काम करेंगे। आप मत मना करिएगा।"

देबू हँसा।

पातू ने कहा, "लेकिन हम लोग मान नहीं सकेंगे!"

देबू ने पूछा, "तो सतीश ने क्या किया?"

"वह साला कह रहा है कि मत जा। जाने से गिरस्त-धरम नहीं रहेगा। तेरे गिरस्त-धरम की ऐसी की तैसी। पेट में दाने नहीं तो कहता है, धरम का उपवास किया है! साला, भीख माँगकर खाना पड़ता है, गिरस्त-धरम!"

एक ने कहा, "उस साले की जमीन है, हल है। हम लोगों को खेत, हल-बैल दे तो समझें। सो नहीं, अपने साला भर-पेट खाएगा और हम लोग भीख माँगकर गिरस्त-धरम करते रहेंगे।"

फिर पातू बोला, "और वह साला घोषाल।"...सहसा जीभ काटकर प्रणाम करके माथे से हाथ लगाकर बोला, "नहीं-नहीं। बाम्हन है। आप ही कहो गुरुजी, घोषाल मेरे यहाँ आता है। सभी जानते हैं। खैर। आता है, पैसा देता है, धान देता है, ठीक है। लेकिन आखिर मेरी भी तो इज्जत है। सो नहीं, इधर हम लोगों में मार-पीट मची और कम्बख्त सबके सामने हमारे घर से निकल पड़ा। और निकलकर नवाबी दिखाने लगा। इसीलिए उसका गला धर दबाया था।..." उसके बाद आप ही आप बोला, "ठहर-ठहर, जाता हूँ, चला अनिरुद्ध के साथ। तेरे प्रेम के मुँह में राख डालता हूँ मैं। ठहर।"

लम्बा निःश्वास छोड़कर देबू ने कहा, "अनिरुद्ध है कहाँ?"

"वह है। सो रहा है।"

शराब के नशे में अनिरुद्ध मौलसिरी-तले ही पड़ गया था। नींद और नशे में लगभग बेहोश पड़ा था। इतने शोरगुल में भी वह जगा नहीं।

देबू सबको घर जाने की कहकर लौट आया था।

लोगों ने उससे कह भी दिया कि तुम मना मत करना। अनिरुद्ध की खुशहाली देख सबने वही रास्ता अपनाना चाहा है। भीख माँगकर गृहस्थ-धर्म का अभिनय करना वे नहीं चाहते। कमाई का रास्ता रहते, पेट-भर खाने का उपाय रहते वे खरीदे हुए गुलाम की नाई रहना, अधपेटा रहकर जीना नहीं चाहते। इसपर देबू उन्हें मना क्यों करे? और फिर उनका बोझा कन्धे से उतारना चाहता है, तो उसे वह थामे क्यों रहे? मुक्ति की राह में वह रोड़ा डालना नहीं चाहता। मुक्ति आना चाहती है, आये। बिलू और मुन्ना के बिना घर मरुभूमि-सा खाँ-खाँ करता है। अब वह उन्हीं की खोज में निकलेगा। परलोकवासी आत्मा रूप धरकर प्रियजनों के सामने आता है—ऐसे किस्से तो उसने बहुत सुने हैं।

सवेरे जगते ही आँखें लाल-पीली किये श्रीहरि उसे धमकाने आया था। बेचारा जमींदार का रोब दिखाने का लोभ रोक नहीं सका।

देबू ने मिल-मालिक से कह आने की सोची। सोचा, इनके काम का इन्तजाम करके शर्त ठीक कर आएगा। और श्रीहरि ने अगर इन्हें उजाड़ने की कोशिश की तो सबको लेकर खुद मजिस्ट्रेट के यहाँ जाएगा।

पातू ने आकर प्रणाम किया। पातू अब वह रात का पातू नहीं था। इस समय वह निरीह और शान्त आदमी था।

देबू ने हँसकर कहा, "आओ पातू!"

और सिर खुजाते हुए पातू देबू के पास पहुँच गया।

"क्या खबर है, कहो?"—देबू ने पूछा।

"कल रात..."

हँसकर देबू ने कहा, "याद है?"

"सब नहीं। आप गये थे न, है न?"

"तुम्हें क्या खयाल आ रहा है?"

"लगता है कि गये थे।"

"हाँ, मैं गया था।"

सिर खुजाकर पातू बोला, "मैंने क्या-क्या कहा था?"

"बेजा कुछ नहीं कहा तुमने। लेकिन मैं नहीं जाता तो घोषाल को मार ही डालते तुम।" पातू ने एक निःश्वास छोड़कर कहा, "दोष जरूर हो गया। लेकिन उसका भी दोष था। मजलिस के सामने मेरे घर से उसका निकलना ठीक नहीं था।"

देबू चुप रहा। इस बात का क्या जवाब देता?

पातू ने कहा, "गुरुजी?"

"कहो।"

"अब क्या कह रहे हैं? कहिए।"

"इस बात का क्या जवाब दूँ?"

पातू ने जीभ काटकर कहा, "राम-राम! वह बात नहीं।"

"फिर?"

पातू चकित हो गया—"आपने सुना नहीं है? मिल में जाने की बात?"

"सुना है!"—देबू उठकर बैठ गया। कहा, "सुना है। जाओ-जाओ तुम लोग। मैंने सोच देखा है, उसके सिवा दूसरा उपाय भी नहीं। मैं मना नहीं करूँगा।"

खुश होकर पातू ने देबू के पैरों की धूल ली। बोला, "मिल तो गुरुजी, उस पार में बहुत पहले ही खुली है। इतने दिनों तक हम लोग नहीं गये। दुःख हुआ, कष्ट हुआ, तो भी नहीं गये। मगर, अब नहीं सहा ज़ाता।"

देबू ने पूछा, "अन्नी भाई कहाँ है?"

"वह मिल-मालिक से बात पक्की करने के लिए जंक्शन गया है।"

"ठीक है। तुम लोग वही करो।"

पातू चला गया। कुछ देर के बाद देबू भी उठा और जगन डॉक्टर के यहाँ गया। आवाज दी—"डॉक्टर!"

डॉक्टर के ओसारे पर अभी रोगियों की भीड़ थी। मलेरिया का हमला हलका जरूर हो आया था, मौत की संख्या भी घट आयी थी, लेकिन पुराने रोगी ही तो बहुत हैं। कई आदमी ओसारे पर बैठे काँप रहे थे। एक आदमी ने गाना शुरू कर दिया था—गाता ही चला जा रहा था—'मुझे क्या हो गया बकुल फूल?'•

डॉक्टर अन्दर दवा बनाने में मशगूल था। देबू की आवाज सुनकर बोला। "देबू भाई! आओ, यहीं अन्दर आ जाओ।"

कलई किये हुए एक बहुत बड़े बरतन में डॉक्टर दवाई तैयार कर रहा था। हँसकर बोला, "पैकारी दवा बना रहा हूँ। कुनैन, फेरीपर क्लोर, मैगसल्फ और सिनकोना। थोड़ा-सा लीकर आर्सनिक देने से अच्छा होता है। मगर मिलता कहाँ है? एक-एक शीशी डुबाऊँगा और यही अमृत लोगों को दूँगा। हाँ, तो क्या खबर है?"

देबू ने कहा, "सहायता-समिति का जिम्मा तुम्हीं को लेना पड़ेगा। समय निकालकर जरा हिसाब-किताब समझ लो। यही कहने आया था।"

"सो क्यों?"

"हाँ भई! रुपये-पैसे भी खास नहीं हैं। काम भी कम हो आया है। तिस पर ये बाउरी-मोची कल से मिल में काम करने जा रहे हैं। मैं अब छुटकारा चाहता हूँ भाई! एक बार तीर्थयात्रा को निकलूँगा।"

"तीरथ जाओगे?"—डॉक्टर के हाथ रुक गये। एक अजीब निगाह से वह देबू की तरफ ताकता रह गया! उस निगाह के सामने देबू को घुटन-सी लगी। डॉक्टर की ठोड़ी सहसा काँपने लगी—रूखा और कटु बोलनेवाला डॉक्टर जगन उस कम्पन को सँभालकर बोल नहीं सका।

देबू हँसा। गहरे स्नेह से मानो अपना अपराध मानकर उसने हँसते हुए कहा, "हाँ भैया! मेरे कन्धे का बोझा तुम लोग उतार दो।"

डॉक्टर ने अपने को जब्त करके एक उसाँस ली।

देबू ने कहा, "बस, तिनकौड़ी चाचा का झमेला चुका कि मुझे रिहाई मिली!"

छब्बीस

देबू के माथे का बोझा जल्दी ही उतर गया।

दिसम्बर के बीचोंबीच तिनकौड़ी के दौरे की सुनवाई खत्म हो गयी। उसके छुटकारे का कोई उपाय ही नहीं था। छिदाम का कबूल कर लेना और सोना की गवाही शुरू होते ही उसने कसूर मान लिया। सोना को वकील ने बहुत-बहुत जतन से सिर्फ एक शब्द 'नहीं' सिखाया था। उसका तीन ही जवाब था—नहीं जानती; याद नहीं और नहीं। पहले इजहार में पूछे तो कहना, क्या कहा है, याद नहीं है। राम और तिनकौड़ी में कोई बातचीत होने की पूछे तो कहना—नहीं। ऐसा उसने नहीं सुना...। लेकिन कटघरे में खड़ी होकर हलफ उठाने के बाद सोना कैसी तो हो गयी। सरकारी वकील पक्का घाघ था। मुकदमा चलाते-चलाते माथा चन्देल हो गया था। रहा-सहा बाल पकना भी शुरू हो गया था। कब डाँटकर, कब मीठी बातों से काम निकालना पड़ता है—सब उसे मालूम है। लोक-चरित्र के पक्के अनुभवी। हलफ उठाते समय सोना के उड़े हुए चेहरे को देखते ही उन्होंने कहा, "देखो, तुम ईश्वर के नाम पर, धरम के नाम पर हलफ ले रही हो। अगर सच को छिपाकर झूठ कहोगी तो भगवान तुमसे नाराज होंगे। उससे तुम्हारे बाप का भी भला न होगा।" उसके बाद पूछा, "तुमने यह बात एस.डी.ओ. के यहाँ कही है?"

सोना खोयी निगाहों वकील की तरफ ताकती रही।

वकील ने डाँटा—"बोलो। जवाब दो?"

सोना की शकल देखकर तिनकौड़ी तुरत कठघरे से बोल उठा, "मैं अपना कसूर मान लेता हूँ हुजूर! बिटिया को छुटकारा दीजिए।"

तिनकौड़ी ने कसूर मान लिया। कहा कि मैंने डकैती की है। घोष-टोले की डकैती में मैं शामिल था। मैं घर के अन्दर नहीं गया था। घाटी अगोर रहा था।

उसने फकत अपना कसूर माना। किसी दूसरे का नाम नहीं बताया। कहा,

"मैं केवल छिदाम को पहचानता हूँ! मुझे छिदाम ही बुलाकर ले गया था—जमात के लोगों को वही जानता था। छिदाम ने बहुत दिनों तक मेरे यहाँ नौकरी की है। बाढ़ के बाद लगभग भीख पर ही गुजारा चल रहा था। सहायता-समिति से भीख लेते देख उसने मुझसे कहा—साथ चलोगे तो काफी हाथ लगेगा। मैं लोभ नहीं सँभाल सका। चला गया। बाकी जो लोग थे, वे कहाँ के थे, क्या नाम था उनका—मैं नहीं जानता। राम भल्ला से मेरी बातें हुई थीं। उसने मुझे डाँटा था—तुम भले आदमी के लड़के हो, आखिर यही किया! बस।"

मुखबिर बन जाने से तिनकौड़ी शायद छूट जाता। लेकिन उसने वैसा नहीं किया। फिर भी जज साहब ने उसे औरों की तुलना में कम सजा दी, इसलिए कि उसने अपना अपराध कबूल कर लिया। तिनकौड़ी को चार साल सख्त कैद की सजा सुनायी गयी। राम, तारनी आदि को ज्यादा कड़ी सजाएँ मिलीं—उन्हें छह से सात साल की कैद हुई।

देवू अदालत से बाहर निकल आया। खैर। एक अप्रीतिकर घुटानेवाली जिम्मेदारी से उसे छुटकारा मिल गया। इस दुःख में भी उसे इस बात का सन्तोष रहा कि तिनकौड़ी चाचा ने जैसा पाप किया था, वैसा ही उसने माँगकर उसकी सजा ले ली।

फैसले के दिन वह अकेला ही आया था। सोना या तिनकौड़ी की स्त्री नहीं आयी थी। सजा तो निश्चित ही थी, सिर्फ कितने दिनों की सजा हुई, इतना ही जानना था। यही उन सबों को बता देना होगा।

लौटने वक्त वह विद्यालय-निरीक्षक के दफ्तर में गया—सोना के परीक्षा-फल के बारे में जानना था। परीक्षा-फल निकलने में अभी देर थी। फिर भी किसी से अगर कुछ पता चल सके।

सोना ने मिडिल की परीक्षा दी थी और अच्छी ही दी थी। जैसा जवाब लिखा था उसने, उससे उसका उत्तीर्ण होना निश्चित था। हिसाब के सारे ही सवाल उसने ठीक किये थे।

देबू को उम्मीद थी कि वह छात्रवृत्ति पाएगी। मिडिल में चार रुपये की वृत्ति मिलती है और चार साल तक मिलती है। वृत्ति मिलने से उसे जंक्शन के बालिका विद्यालय में नौकरी मिल जाएगी। शिक्षिकाओं ने भरोसा दिया है। सेक्रेटरी ने भी कहा है। नौकरी के सिवा उसे पढ़ने की भी सुविधा मिलेगी। ऐसा हो जाएगा तो उसके भविष्य के बारे में देबू निश्चिन्त हो जाएगा। ज्ञान में, विद्या में सोना वह मन्त्र पा लेगी जो देबू उसे दे नहीं सका। यही नहीं, सम्मान सहित जीविका कमाने का उपाय पा जाने से वह अपने जीवन को सार्थक कर सकेगी। कल्पना में मानो वह उस सोना के उज्ज्वल और हँसते हुए रूप को भी देख पाता है। देबू को बड़ा अच्छा लगता है। साफ-सुथरे कपड़ों में, चेहरे पर शिक्षा की दीप्ति लिये सोना मानो उसकी आँखों के आगे हँसती हुई खड़ी होती है।

विद्यालय-निरीक्षक के दफ्तर में उसे अप्रत्याशित रूप से खबर मिल गयी। जिला बालिका विद्यालय की प्रधान शिक्षिका और सेक्रेटरी बरामदे पर बातें कर रहे थे। देबू किसी जाने-चीन्हे किरानी की तलाश में था। जब वह गाँव की पाठशाला में पढ़ाता था, तो दो-एक जनों से जान-पहचान थी। एकाएक उसके कान में ये शब्द पहुँचे—शिक्षिका कह रही थीं, "आप ही चिट्ठी लिखिए। आपकी चिट्ठी का कहीं अधिक महत्त्व होगा। आप स्कूल के सेक्रेटरी हैं, नामी वकील हैं—आपकी बातों का उन्हें भरोसा होगा। गाँव-घर की लड़की वृत्ति पाने पर भी सहज ही घर छोड़कर शहर में पढ़ने नहीं आएगी। अगर आप लिखें कि हॉस्टल, पढ़ाई सब-कुछ मुफ्त और उसके सिवा भी हाथ खर्च के लिए कुछ हम देंगे, फिर हम खुद निगरानी रखेंगे, तभी वह आ सकती है।"

"ठीक है, वैसा ही लिख दूँगा मैं।"

"हाँ। बहुत ही अच्छा नम्बर लायी है। बड़ी तेज लड़की है।"

"स्वर्णमयी दासी। देखुड़िया, पोस्ट कंकना। यही ठिकाना है न?"

"हाँ। उसके बाप का नाम तिनकौड़ी मण्डल है शायद। मैंने सुना, वह एक डकैती के जुर्म में गिरफ्तार हुआ है। कैसी अजीब बात है, देखिए तो जरा। बाप डकैत और बेटी को मिली छात्रवृत्ति।"

देबू आनन्द से लगभग अधीर हो गया। आगे बढ़कर अपना परिचय देते हुए वह पूछने जा रहा था कि वे लोग क्या चाहते हैं? कि इतने में सेक्रेटरी साहब ने कहा, "मैं शिवकालीपुर के जमींदार श्रीहरि घोष को चिट्ठी लिखता हूँ। मैं उन्हें जानता हूँ।"

देबू ठिठक गया। वे चले गये, तो उसकी भेंट एक जाने-सुने किरानी से हो गयी। नमस्कार करके पूछा, "ये दोनों कौन थे?"

"ये दोनों महिला यहाँ के बालिका विद्यालय की प्रधान अध्यापिका हैं और वे सज्जन हैं सेक्रेटरी—राय साहब सुरेन्द्र बोस। वकील हैं। क्यों, क्या बात है?"

"यों ही पूछ रहा हूँ। वे दोनों छात्रवृत्ति की बातें कर रहे थे।"

"हाँ, आज वे वृत्ति के बारे में जान गये। जिन लड़कियों को वृत्ति मिली है, उन्हें वे अपने स्कूल में लाने की कोशिश करेंगे। इसीलिए पहले ही आकर पता लगा गये। हमें दो-चार दिन में पता चलेगा। आप तो गुरुगिरी छोड़कर खूब मातबरी कर रहे हैं। सुना, एक डकैती के मुकदमे में खूब आपने पैरवी की। कैसा मिला-जुला?"

देबू को लगा, किसी ने अचानक उसकी पीठ पर चाबुक मार दिया। सिर से पाँव तक सिहर उठा वह। लेकिन अपने को जब्त करके उसने हँसकर कहा, "अच्छा ही मिल रहा था। अब हजम करने में तकलीफ हो रही है।"

"हम लोगों को कुछ खिलाइए-पिलाइए!"—दाँत निपोरकर वह हँसने लगा।

देबू ने कहा, "आप भी हजम नहीं कर सकेंगे।"—कहकर वह और खड़ा नहीं रहा। स्टेशन की राह पकड़ी। शहर से बाहर आने पर थोड़ा खुला मैदान। उस मैदान

के बाद स्टेशन। खुले सूने मैदान में पहुँचकर उसने चैन की साँस ली। आः, अब छुटकारा मिला। सहायता-समिति की जिम्मेदारी गयी—डॉक्टर को हिसाब-किताब समझा दिया। थोड़े-से रुपये हैं। तय पाया है कि वे रुपये अभी जमा रहेंगे। वे रुपये उसने डॉक्टर को ही दे दिये। इधर तिनकौड़ी का भी झमेला चुक गया। सोना को वृत्ति मिल गयी। वह जंक्शन के स्कूल में नौकरी भी करेगी—पढ़ाई भी चलती रहेगी। शहर के स्कूल से यह कहीं अच्छा होगा। खासकर उस स्कूल का सेक्रेटरी श्रीहरि का जाना-सुना है, वह मानता है कि जमींदार ही देश का मालिक है, वही पालनेवाला, हुक्म देनेवाला है। ऐसे के स्कूल में वह सोना को नहीं रहने देगा। हरगिज नहीं। जंक्शन का स्कूल घर से करीब है। वहाँ रहने से जगन डॉक्टर भी खोज-खबर लेता रहेगा। खैर! सोना वगैरह की ओर से भी वह एक प्रकार से निश्चिन्त हो गया। अब सचमुच ही उसे छुट्टी मिल गयी। आः, जान बची!...

जब वह जंक्शन में उतरा, तो वेला बच नहीं रही थी। चक्का अस्त हो चुका था। मयूराक्षी के बालू-भरे गर्भ के पश्चिमी तरफ दिन की रोशनी झिकमिक कर रही थी। जहाँ लग रहा था कि नदी के दोनों तट एक बिन्दु पर मिलकर दिगन्त की वनरेखा में खो गये हैं। मयूराक्षी में पानी नहीं-सा है। इसी बीच बालू में जाड़े का आभास। दुबली-सी धारा में कहीं घुटने-भर पानी। घाट पर आकर देबू हाथ-मुँह धोकर थोड़ा बैठा। कुछ दिनों से उसके जीवन में उदासी आ गयी है—वह उदासी आज जैसे रात के अन्तिम पहर की नींद-सी उसे दबोच बैठी है। उसका मुन्ना पहले दिन मरा और उसके दूसरे ही दिन मरी उसकी बिलू! उस रोज़ रात के अन्तिम पहर में नींद ने जैसा दबोच लिया था उसे, आज उदासी ने वैसे ही धर दबाया है। खैर, काम उसका समाप्त हो गया। औरों का बोझा गले से उतर गया—भूत की बेगारी आज से खत्म हो गयी। अब कोई काम नहीं, कोई जिम्मेदारी नहीं।

देबू को याद आ गया, उस रोज न्यायरत्न ठीक यहीं पर बैट पड़े थे। उसने उदास आँखों ऊपर की तरफ ताका। मयूराक्षी की धारा के बाद बालू की ढेर, उसके बाद चौंर। चौंर पर इस बार खास खेती नहीं हुई—ऊपर की माटी फटकर चौचीर हो गयी थी। चौंर पर बाँध। बाँध के उस पार पंचग्राम की बैहार। बाढ़ के बाद फिर उसमें फसल के अंकुर उग आये थे। मगर नाम-भर के ही लिए! आधे चाँद के आकार में बैहार को घेरकर पंचग्राम! न कोई आहट, न आवाज—जरा-जर्जर पाँच गाँव चाम-हाड़ का बोझा लिये निस्तब्ध पड़े।

साँझ घनी हो आयी। जाड़े की साँझ की किरणों की अन्तिम आभा। इतने में ही ताप गायब हो गया। देबू उठा। पानी पार करके बालू से होता हुआ वह बाँध पर पहुँचा। सोना के यहाँ समाचार देकर ही घर लौटना उसे ठीक जँचा। तिनकौड़ी को सजा ही होगी, यह वे जानते हैं—फिर भी उत्सुकता लिये बैठे होंगे। आदमी का मन आशा की हलकी-सी रेखा को भी पकड़े रखना चाहता है। बहते को तिनके

का सहारा—यह बात अतिरंजित है। लेकिन एक पतली-सी ढाल को पाने पर वह हरगिज नहीं छोड़ता, यह सत्य है। सोना अभी भी उम्मीद किये बैठी है कि जब उसके बाप ने कसूर मान लिया है, तो जज साहब जबानी डाँट-फटकार सुनाकर उसे छोड़ देंगे। सजा भी होगी तो कुछ महीनों की। इस समाचार से उसे चोट पहुँचेगी, पर उपाय क्या है? उसके वृत्ति पाने का भी समाचार वह देगा। और साथ ही साथ उसके भविष्य का पक्का प्रबन्ध भी कर देगा। सब काम चुका ही देना पड़ेगा। अब एक बार यहाँ से निकल पाए तो जी जाए।

अचानक वह ठिठक गया। लगा, बाँध के पास चौंर के जंगल में मौन की भाषा में कुछ लोग कानाफूसी कर रहे हैं, हँसी से मतवाले हो रहे हैं। पास में ही श्मशान था। देबू के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। उसकी बिलू और मुन्ना यहीं हैं। तब क्या वही लोग हैं? हाँ, उनके शरीर तो हैं नहीं। कण्ठनली न होने से कलेजे की बात हवा के प्रवाह सी लग रही है। हो सकता है, माँ-बेटा खेल में माते हों! उनका हँसना, उनकी कानाफूसी की लहर शून्यलोक को भरकर पेड़ों के माथे-माथे पर उठ आयी है। अशरीरी आत्माएँ श्मशान के जंगल में दौड़ती फिर रही हैं। खेल में मशगूल होकर वे नाचते चल रहे हैं। उनके चलने के वेग से जाड़े के झड़े हुए पत्तों में घूर्णी जगी है। शायद मुन्ना भागा है--उसे पकड़ने के लिए बिलू पीछे-पीछे भाग रही है। वही बात है। उनकी उमगती चाल का चिह्न—पत्तों की घूर्णी—इस पेड़ की ओट से उस पेड़ की ओट को नाचता चल रहा है। देबू वहाँ से एक डग भी बढ़ नहीं सका। एकदम अभिभूत हो गया वह। भय-विस्मय-आनन्द सबकी मिली-जुली एक अनोखी अनुभूति! जी में हुआ, एक बार वह चीखे—बिलू, मुन्ने! लेकिन गले से आवाज ही नहीं निकली। लेकिन वे क्या देबू को देख नहीं पा रहे हैं? फिर उसकी मौजूदगी की ऐसी उपेक्षा क्यों? क्या इसलिए कि वह दूसरे का बोझ ढोने, देश का काम करने में डूबा हुआ है ? कुछ ही क्षणों के बाद उन अशरीरियों के पैरों की आहट गुम हो गयी। तो क्या उन्होंने उसे देख लिया? लगता है। अब वह शब्दहीन भाषा की कानाफूसी नहीं है—मौन अभिमान का अविराम सुर। अब वे मानो बुला रहे हैं—आओ। आओ। शून्य में, हवा में, पेड़ों की चोटियां पर, पंचग्राम की बैहार में भाषाविहीन वह आह्वान गूँज उठा है। हाँ, वही बुला रहे हैं। उसका सारा शरीर झिम्-झिम् कर उठा। सारी शिराएँ मानो शिथिल हो आयीं। हाथ-पाँव की उँगलियों की नोकों में स्पर्श का बोध नहीं रहा। ऐसी अवश-विवश अवस्था में वह कब तक खड़ा रहा, कौन जाने! कि दूर से आती हुई क्षीण-सी एक ध्वनि क्रमशः स्पष्ट होने लगी। उस शब्द के स्पर्श से जीवित मनुष्य के अस्तित्व-बोध की अनुभूति के साथ-साथ उसकी इन्द्रियाँ सचेतन हो आयीं। सुबह की धूप और ताप के स्पर्श से मुँदे कमल-दल की तरह बिखरकर सजग हो गयीं। अब उसका भ्रम जाता रहा। समझा कि यह बिलू और मुन्ने की कानाफूसी नहीं—यह खेल हवा और पेड़ का है।

सर्दी की हवा से ताड़ के पत्तों में आवाज हो रही है। जंगल के झड़े पत्तों में घूर्णी उठ रही है। उधर, किन्हीं के गीत का सुर धीरे-धीरे नजदीक आने लगा।

जाने कौन लोग तो गाते हुए इधर ही आ रहे थे। शुक्लपक्ष की चतुर्थी या पंचमी का एक टुकड़ा चाँद चाँदी के हँसिया-जैसा पश्चिम आकाश में मद्धिम चमक रहा था। बहुत बड़े कमरे में जलते दीये की ज्योति-सी मटमैली चाँदनी। धुँधली छाया-से लोग आ रहे थे। बहुत-से लोग। औरत-मर्द, सभी। कि देबू को याद आया, ओ! ये मिल से काम करके डोम-बाउरी लोग लौट रहे हैं। अब देबू चलने लगा। चलते-चलते वह बिलू-मुन्ना की नहीं, उन लोगों की बात सोचने लगा। उनकी बातों से उसे आज जो तसल्ली मिली, वह भूलने की नहीं। उन सबका भला हो। उनकी मौजूदा हालत पर देबू को खुशी हुई। अभी डेढ़ ही महीने हुए, इनमें से बहुतों को राहत मिली। अभाव-अभियोग हैं लेकिन दोनों जून दो मुट्ठी खाना नसीब होता है। घर पहुँचते ही सब ढोल लेकर बैठ जाएँगे। इनके लिए अब देबू निश्चिन्त है। एक बोझा तो उतरा। अब आज ही सोना वगैरह का भी बोझा उतार आएगा। बहुत ढोया, पर अब नहीं। भगवान से उसने बहुत बार प्रार्थना की—'हे भगवान, मुझे मुक्ति दो।...' लेकिन मुक्ति नहीं मिली। बहुत बार बिलू और मुन्ने की चिता पर बैठकर रोना चाहा, नहीं रो पाया। लोग उसे पकड़कर लौटा ले गये। उसका जी अफसोस से भर गया। दिनों तक बिलू-मुन्ने को भुलाये रहकर उसकी हालत ऐसी हो गयी कि आज निर्जन श्मशान में जैसे ही उनकी अशरीरी आत्मा का आभास हुआ कि उसका मन, उसकी चेतना भय से सिकुड़ गयी। मन-ही-मन वह मर-सा गया। जब इन आनेवालों की आहट मिली, तो जान में जान आयी। वह खुद ही अपने पर छिः-छिः कर उठा। संकल्प भी किया कि—न, अब नहीं।

देखुड़िया बस्ती में घुसते ही अँधेरे में किसी ने कहा, "कौन? गुरुजी?"

चिन्ता में डूबता हुआ देबू चौंका—"कौन?"

"मैं हूँ—ताराचरण।"

"ताराचरण?"

"जी हाँ। आप शायद सदर से लौट रहे हैं?"

"हाँ!"

"तिनकौड़ी को सजा हो गयी? कितने दिनों की?"

"चार साल।"

एक निःश्वास छोड़ते हुए ताराचरण ने कहा, "गजब हो गया गुरुजी, एक घर ही चौपट हो गया!" ...उसके बाद हँसकर बोला, "बचा ही कौन-सा घर ? आज रहम चाचा का भी सब गया।"

"सब गया? मतलब?"

"दौलत का हैण्डनोट था। नालिश हुआ था। सूद और मूल बराबर। आज

अस्थावर गया। था भी क्या, ले-देकर बहुत होगा, तो पचास रुपये। बाकी रुपयों के लिए जमीन कुर्क। मालगुजारी भी बाकी पड़ी है।"

देवू चुप रहा। उसकी राह चलने की शक्ति भी मानो जाती रही।

तारा ने कहा, "यह धक्का रहम चाचा सँभाल नहीं सकेगा।"—फिर एक क्षण चुप रहकर बोला, "आपसे एक बात पूछूँ गुरुजी?"

"पूछो।"

"आप क्या तिनकौड़ी की बिटिया का ब्याह कराएँगे ? विधवा-विवाह?"

भँवें सिकोड़कर देबू ने कहा, "तुमसे किसने कहा?"

ताराचरण चुप रहा।

देबू ने जरा गरम होकर कहा, "ताराचरण?"

"जी?"

"यह अफवाह कौन फैला रहा है, कहो तो? श्रीहरि?"

"जी नहीं।"

"फिर?"

ताराचरण ने कहा, "घोषाल कह रहा था।"

"हरेन घोषाल?"

"हाँ।"

देवू के दिमाग में दप् से आग जल उठी। लेकिन वह क्या कहे, खोज नहीं पाया। जरा देर बाद बोला, "गलत बात है ताराचरण। लेकिन हाँ, सोना तैयार होती तो मैं उसका व्याह करा देता।"

देबू जब सोना के यहाँ पहुँचा तो माँ-बेटी रोशनी जलाये बैठी थीं, चुपचाप।

सब कुछ सुनकर भी वे दोनों चुप बैठी रहीं। देर तक कोई कुछ कह नहीं सकी।

उसके बाद देबू ने सोना को वृत्ति मिलने की बात बतायी। यह सुनकर भी सोना ने माथा नहीं उठाया।

सोना की माँ ने ही एक उसाँस ली।

कुछ देर चुप रहकर देबू ने कहा, "मैं आपके भविष्य की सोच रहा था।"

सोना की माँ ने कहा, "तुम जो कहोगे, वही करूँगी। तुम्हारे सिवा हमारा अपना तो कोई है नहीं।--

ऐसी करुणा के साथ उसने ये बातें कहीं कि देबू उससे यह नहीं कह सका कि अब मैं किसी का बोझा नहीं ढो सकूँगा। जरा देर चुप रहकर उसने कहा, "मैं तो अब यहाँ रहूँगा नहीं चाचीजी!"

"नहीं रहोगे?"

सोना चौंकी। इतनी देर के बाद वह अब बोली, "कहाँ जाएँगे देबू भैया?"

"तीर्थ करने।"

"तीर्थ करने?"

"हाँ, तीर्थ करने! सूना घर अब मुझे अच्छा नहीं लगता है।"

सोना और कुछ नहीं कह सकी। वह माटी के खिलौना-सी मौन हो रही। कुछ देर में रोशनी की छटा में देबू की नजर पड़ी—सोना की दोनों आँखों से आँसू की धारा बह रही है। उसने मुँह फेर लिया। ममता में उसे अविश्वास नहीं। प्राणों में उसके अपार ममता है। यहाँ के लोगों को वह नितान्त अपना सगा ही मानता है। एक श्रीहरि को छोड़कर किसी से भी उसका मन-मुटाव नहीं है। लोगों की तो बात ही क्या, यहाँ के कुत्ते तक उसके आज्ञाकारी और प्रिय हैं। गाँव के कुछ कुत्ते जूठन के लोभ से फिलहाल जंक्शन चले गये हैं। आज भी उसे जंक्शन में देखने पर वे जैसी खुशी जाहिर करते हैं—वह देबू को याद है। आज ही दो कुत्ते उसके साथ वहाँ से घाट तक आये थे। यहाँ के पेड़-पौधों, धूल-माटी तक पर उसे एक गहरी ममता है। इस गाँव के लिए कितनी ही बार उसने कितनी-कितनी कल्पनाएँ की हैं। फुरसत के समय कितनी बार उसने नक्शा बनाकर यहाँ की घाट-बाट की नयी योजना बनायी है। कहाँ पुलिया बनने से ठीक होगा, कहाँ की ऊबड़-खाबड़ राह को समतल करने से सुविधा होगी, टेढ़ा रास्ता सीधा होने से ठीक होगा; बन्द रास्ते को दूसरे गाँव तक जोड़ देने से अच्छा रहेगा—कितना सोच-सोचकर उसने नक्शा बनाया है। गाँव के और इलाके के लोग भी उसे प्यार करते हैं—उसे मालूम है। वही लोग उसे अजाति भी कहते हैं, उसपर कलंक की कालिख पोतते हैं, पीठ पीछे उसपर व्यंग्य कसते हैं—मगर तो भी वे उसे प्यार करते हैं। उस प्यार को देबू अपने हृदय की गहराई से अनुभव करता है। लेकिन उस ममता की ओर पलटकर देखने से जाना न हो सकेगा। अपने को संयत करके मुँह फेरकर उसने कहा, "तुम्हारे लिए जिस व्यवस्था की बात मैंने कही थी, उसमें तुम्हें आपत्ति तो नहीं है ?"

जमीन की तरफ ताकती हुई सोना ने दो-एक बार होठ हिलाया—कोई बात नहीं निकली।

देबू कहता गया—"मेरी यही इच्छा है। सोच देखो। इससे कोई अच्छी व्यवस्था तुम लोगों की नहीं हो सकती। जंक्शन के स्कूल में नौकरी करोगी, पढ़ोगी, तनख्वाह, वृत्ति आदि को मिलाकर पन्द्रह-सोलह रुपये हो जाएँगे। उन्हें थोड़ा दबाने से कुछ ज्यादा भी हो सकता है। अपनी जमीन मैंने सतीश को बँटैया पर दे दी। वह तुम्हें हर महीने एक मन चावल दे आया करेगा। स्वाधीन रहोगी। आगे मैट्रिक पास कर लोगी तो नौकरी में और भी तरक्की होगी। लिखना-पढ़ना सीखने से मन का बल भी बढ़ेगा। फिर तो तुम्हीं कितनों को आश्रय दोगी—लालन-पालन करोगी। और तब तक गौर भी जरूर लौट आएगा।"

देबू चुप हो गया। सोना के जवाब की राह देखने लगा। लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया। देबू ने फिर पूछा, "चाचीजी?"

एकान्त अनुगृहीत की नाई मान लेने-जैसी सोना की माँ ने मान लिया—"तुम जो कह रहे हो, वही करूँगी बेटे!"

देबू ने कहा, "सोना?"

"ठीक है!"—सोना ने मुख्तसर-सा उत्तर दे दिया।

मुँह घुमाकर देबू ने सोना की तरफ देखा। वह अभी तक अपने को सँभाल नहीं पायी थी। उसकी आँखों के कोने का आँसू अभी तक सूखा नहीं था।

देबू उठा। यह सब न जानने के अभिनय में ही ढका रहे तो अच्छा। नहीं तो बहुतेरे रोएँगे।

तीन दिन के बाद जब देबू ने विदाई ली तो वास्तव में बहुतेरे लोग रोये।

बाउरी लोग रोये। सतीश के दोनों होठ काँप रहे थे, आँखों में आँसू टलमल कर रहा था। वह बोला, "अब हम लोगों का खयाल कौन करेगा गुरुजी।"

पातू नहीं था। वह अनिरुद्ध के साथ जा चुका था, नहीं तो वह भी रोता। पातू की माँ जोर-जोर से रो पड़ी—"हाय री बिलू बेटी, तेरे लिए मेरा जमाई संन्यासी हो गया।"

आश्चर्य था कि इनमें से दुर्गा नहीं रोयी। खीझकर उसने माँ से कहा, "मौत मेरी! तू थम भी..."

देबू के अपने-सगे रोये। रामनारायण रोया, हरीश रोया; श्रीहरि ने कहा, "अहा, आदमी बड़ा भला था। लेकिन अब देबू चाचा ने अच्छा रास्ता चुन लिया है।"

हरेन घोषाल भी रोया—"ब्रदर, फिर आना।"

देबू से एकान्त में मिलकर जगन डॉक्टर भी रोया। कहा, "मैंने भी जंक्शन में जगह खरीद ली है। यहाँ का सब बेच-खोंचकर वहीं चला जाऊँगा। इस गाँव में अब नहीं रहूँगा।"

इरशाद आया था। उसने भी आँसू बहाकर कहा, "देबू भाई, धरम के काम में बाधा नहीं डालनी चाहिए। मैं मना नहीं करूँगा। खुदा ताला तुम्हारा भला ही करेंगे। लेकिन मेरा कोई दोस्त नहीं रहा।"

रहम नहीं आया। लेकिन वह भी रोया शायद। इरशाद ने ही कहा, "सुनकर रहम चाचा की आँखों से झर-झर पानी बहने लगा। कहा, इरशाद तुम उसे मना करना। मैं तबाह हो गया हूँ—यह शकल दिखाने में शर्म आ रही है। नहीं तो मैं जाता, जाकर देबू से कहना।"

मयूराक्षी पार करके वह एक बार पलटकर खड़ा हो गया। पंचग्राम की ओर

ताकते हुए खड़ा हुआ। उस पार के घाट पर एक भीड़ खड़ी थी। देबू जा रहा है—लोग देख रहे थे। उनके पीछे बाँध पर कई जने थे। दूर—शिवकालीपुर के बाहर औरतें खड़ी थीं।

देबू को खयाल आया, एक समय यह रिवाज था। उस समय कोई जाता था तो गाँव के लोग उसे विदा करने आते थे। पंचग्राम में जब घर-घर धान था, जवान लोग थे, हँसी-खुशी थी, तो जब बूढ़े तीरथ को जाते थे, गाँव के लोग इसी तरह उन्हें विदा देने आते थे। धीरे-धीरे वह रिवाज उठ गया। कहा जाए तो अपने-आप ही उठ गया। आज सुबह से शाम तक खटने के बाद भी लोगों को अन्न नहीं नसीब होता; ताकत नहीं है—हड्डियों के ढाँचे-से लोग शोक से मायूस, रोग से जर्जर हैं—फिर भी वे आये हैं। इतनी दूर चलने से बहुत-से लोग हाँफ रहे हैं—तो भी आये हैं! निराशाभरी आँखों से अपने जानेवाले मित्र को देख रहे हैं।

देबू ने उनकी ओर से मुँह फेर लिया। नः, अब नहीं! हाथ उठाकर सबको नमस्कार करके उसने अन्तिम विदाई ली। वह अब नहीं लौटेगा। उसे मालूम है, लौटने पर भी अब पंचग्राम को नहीं देख पाएगा। यहाँ के लोगों का परित्राण नहीं। जिन्दगी के पेड़ की जड़ में कीड़ा लग गया है। पंचग्राम की मिट्टी रहेगी—लोग नहीं रहेंगे! पत्ते झड़े हुए पेड़-जैसे पंचग्राम का रूप उसकी आँखों में झलक उठा।

नः, वह अब वापस नहीं आएगा।

आयी नहीं तो सिर्फ सोना और उसकी माँ। सोना की वजह से उसकी माँ नहीं आ पायी। दुर्गा ने बताया, "सोना रो रही है। उस दिन बाप के कैद होने की सुनकर बिस्तर पर पड़ी मुँह गाड़कर रोना जो शुरू किया, सो तब से लगातार रो रही है।"

देबू कुछ क्षणों के लिए सन्न-सा खड़ा रहा। जाते वक्त सोना और उसकी माँ को नहीं देख पाकर वह जरा दुःखी हुआ। सोचा, उसने अच्छा ही किया। वह अब नहीं लौटेगा।...

कई महीनों के बाद।

देश में, सारे भारतवर्ष में फिर देश-प्रेम की एक लहर-सी आयी। जादू-मन्तर से मानो प्रत्येक प्रदीप में रोशनी जल उठी! एक अनोखा जोश! उस जोश से शहर-गाँव चंचल हो उठे—गाँवों के झोंपड़ों को भी उसका स्पर्श लगा। सन् 1930 साल का कानून-भंग आन्दोलन शुरू हो गया। पंचग्राम में भी जोश जागा।

जगन डॉक्टर जंक्शन स्टेशन तक आया था। पहनावे में खद्दर का धोती-कुरता, सिर पर टोपी। डॉक्टर भी उस जोश में मतवाला था! जिला कांग्रेस कॅमिटी के सेक्रेटरी आये थे, वह उन्हीं को विदाई देने आया था। गाड़ी पर उन्हें

सवार करा दिया। गाड़ी चली गयी। जगन लौटा कि किसी ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा, "डॉक्टर!"

जगन ने घूमकर देखा। आनन्द और उत्साह से वह मानो लहक उठा। दोनों हाथ फैलाकर उसने देबू को छाती से लगाकर बोला, "देबू भाई!"

"हाँ डॉक्टर, मैं लौट आया।"

"आः! तुम लौटोगे, मैं जानता था। मैं जानता था।"

हँसकर देबू ने कहा, "जानते थे!"

"रोज ही तुम्हें याद करता रहा, रोज हजार बार तुम्हारा नाम लेता था। यह भला झूठा हो सकता है देबू भाई! हृदय से पुकारने पर परलोक से आकर मनुष्य की आत्मा मिलती है, तुम तो धरती पर, इसी देश में थे!"...और डॉक्टर फिर जोर से हँस पड़ा।

देबू ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा, "नहीं भाई, मनुष्य की आत्मा अब नहीं आती। तीन महीने तक निरन्तर पुकारते रहने के बाद भी तो मैं कुछ नहीं देख पाया।"

इस बात से डॉक्टर थोड़ा बुझा-बुझा-सा हो गया। चुपचाप चलते हुए वे नदी के घाट पर पहुँचे। देबू ने कहा, "जरा बैठो डॉक्टर।"

"बैठने का समय नहीं है भाई। मैं चलूँ। आज मीटिंग है।"

"मीटिंग?"

"कांग्रेस की मीटिंग। अपने यहाँ हम लोगों ने आन्दोलन शुरू कर दिया है न। आज शराबबन्दी की मीटिंग है।"

देबू चमकती आँखों डॉक्टर को देखता रहा।

डॉक्टर ने कहा, "तुम गये। अचानक एक दिन बहुत बड़ा एक झण्डा लिये तिनकौड़ी का बेटा गौर आया। कांग्रेस का झण्डा। बोला--छब्बीस जनवरी को उसे फहराना है।"

"गौर लौट आया है?"

"हाँ। वही तो अभी हमारे यहाँ कांग्रेस का सेक्रेटरी है। यहाँ से भागकर वह कांग्रेस का स्वयंसेवक बन गया था। गाँव में काम करने के लिए लौट आया है। तुम्हें नहीं पाकर बेचारा बड़ा मायूस हो गया। कहा, 'देबू भैया नहीं हैं! यह सब करेगा कौन?' मुझसे रहा नहीं गया देबू भाई, उतर पड़ा मैदान में।" उत्साह से उमगकर डॉक्टर वह कहानी कहता गया। कहा, "घर-घर चरखा चल रहा है। लगभग सभी बाउरी-मोची ने शराब पीना छोड़ दिया है। गाँव में पंचायत कायम की है। चारों ओर मीटिंगें हो रही हैं, चलो, अपनी नजर से देखना। अब तुम आ गये न, बाढ़ ला दूँगा। तुमको अब छोड़ूँगा नहीं। तुमने जो सोच रखा है कि दो दिन में चला जाऊँगा—सो नहीं होगा।"

देबू ने कहा, "मैं जाऊँगा नहीं डॉक्टर। उसी के लिए तो लौटा। तुमसे तो मैंने बताया—इन कई महीनों में बहुत घूमा। छब्बीस जनवरी को मैं इलाहाबाद में था। वहाँ उस दिन जवाहरलालजी ने झण्डा फहराया, मैंने देखा। उस रोज गाँव के लिए मेरा जी टन्-टन् कर उठा था। मैं उस दिन रोया था। जी में हुआ सभी जगह झण्डा फहरा, शायद हमारे पंचग्राम में ही नहीं फहरा। वहाँ छाती में दुःख छिपाये लोग सिर झुकाकर घर में ही बैठे रहे। लौट आने की भी इच्छा हुई थी। पर मन को जबरदस्ती समझाया : नहीं, जिस रास्ते निकला है, उसी पर चल।...उसके बाद कुछ दिन तक त्रिवेणी संगम पर झोंपड़ा डाला। रात-दिन बिलू और मुन्ने को पुकारता था। अच्छा नहीं लगा। काशी आया। हरिश्चन्द्र घाट पर जाकर बैठा रहता था। इसी श्मशान में हरिश्चन्द्र का रोहिताश्व जी गया था। लेकिन—"

कुछ देर चुप रहकर देबू ने आगे कहा, "शायद हो कि तुम्हारी बात झूठ नहीं हो। प्राणों से पुकारने पर परलोक का आदमी आकर मिलता है। हो सकता है, मैं हृदय से पुकार नहीं सका। न्यायरत्नजी तो वहाँ थे! उन्होंने मुझसे कहा, तुम लौट जाओ गुरुजी! तुम्हारा यह रास्ता नहीं है। इसमें तुम शान्ति नहीं पाओगे। और ध्यान से भगवान मिलता है। लेकिन मरा हुआ आदमी नहीं मिलता, वह फिर नहीं लौटता। बाहर देखने की बात तो पागल की है, मन में भी नहीं मिलता। जितना ही दिन बीतता है, वह और खोता चला जाता है। नहीं तो मौत के डर से लोग अमृत क्यों ढूँढ़ते? अपने शशि को मैं भूल गया हूँ गुरुजी! मैं तुमसे सच कहता हूँ, उसका चेहरा भी मेरे सामने धुँधला हो गया है। नहीं तो मैं भला विश्वनाथ के बेटे अजय को लेकर फिर गिरस्ती बसाता?"

"इसके सिवा"—देबू ने कहा "न्यायरत्न ने एक बात और कही कि जो मर जाता है उसे फिर दुनिया में खोजकर नहीं पाया जाता, वह आदमी के मन में भी नहीं रहता। रहता वह उसी में है जो वह दे जाता है। शशि मुझे सहनशीलता दे गया है। मुझमें वह उसी में जिन्दा है। तुम्हारी स्त्री को मैंने एक दिन देखा था। शान्त, हँसमुख। तुम्हें मैंने बचपन से देखा है। तुम वड़े उग्र थे। बड़े असहिष्णु। आज तुम ऐसे सहनशील हो गये हो अपनी स्त्री की बदौलत। तुम जिसे बाहर खोज रहे हो, वह वे नहीं, तुम्हारी घर-गिरस्ती की कामना है!" देबू चुप हो गया। जगन भी कोई जवाब नहीं दे सका।

कुछ देर चुप रहकर उसने कहा, "मैं आज भी ठीक-ठीक समझ नहीं सका डॉक्टर कि मेरा मन वास्तव में चाहता क्या है! बिलू, मुन्ने की सोचने बैठता हूँ तो उसी में गाँव की, तुम लोगों की याद आ जाती है। तुम्हारी, दुर्गा की, चौधरी की याद आती है। गौर की—खैर वह शैतान आ गया!"

डॉक्टर ने कहा, "अनोखा उत्साह है गौर को। उसकी बहन सोना भी खूब काम करती है। चरखे का स्कूल चलाती है। बहुत बढ़िया धागा कातती है।"

"सोना! वह पढ़ती है न? नौकरी कर रही है?"

"हाँ। लेकिन नौकरी अब रहेगी या नहीं, सन्देह है।"

देबू कुछ देर चुप रहकर बोला, "नहीं रहेगी, न सही। यही तो मैं सोचता था डॉक्टर! जब चारों तरफ जुलूस, बैठक होते देखता था—शराबी ने शराब छोड़ दी, नशेबाजों ने नशा छोड़ दिया, व्यापारी ने लोभ छोड़ा, धनी जमींदार, प्रजा, खेतिहर, मजूर एक साथ गले मिलकर चल रहे हैं—तो मेरी आँखों से आँसू आ जाता था। सच कहता हूँ डॉक्टर, आँसू आ जाता था। लगता, हमारे पंचग्राम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ—कुछ नहीं। और अन्त तक मैं नहीं रह सका—भागा आया।"

डॉक्टर ने कहा, "चलो देखना, बहुत काम हुआ है।"...फिर हँसकर पीठ पर थपकी देकर बोला, "जो गौर चेला को छोड़ गये हो!"

गौर दीये की लौ-सा जल उठा—"देबू भैया!" सोना ने बहुत करीब से प्रणाम करके कहा, "लौट आये!"

दुर्गा ने जिसे कोई लाज-संकोच नहीं, गाढ़े स्वर से सबके सामने ही कहा, "जी जुड़ाया जमाई गुरुजी!"

गौर ने कहा, "यहीं मीटिंग होगी आज। सबको यहीं बुलाओ, खबर कर दो। कहो, देबू भैया आये हैं।" फिर वह बाहर निकल पड़ा।

देबू के ही घर में कांग्रेस कॅमिटी का दफ्तर था। अपने ओसारे पर बैठकर देबू को बुलाया—"आइए भैया, हाथ-मुँह धो लीजिए।"

घर के अन्दर जाने पर देबू चकित रह गया। घर की शकल कतई बदल गयी थी। जतन से चारों तरफ घर झकमक कर रहा था। देबू ने कहा, "वाह! कौन करता है इसकी देखभाल?"

सोना बोली, "मैं। हम लोग तो यहीं रहते हैं।"

देबू ने पूछा, "चाचीजी कहाँ हैं?"

सोना ने कहा, "माँ नहीं रही देबू भैया!"

देबू चौंक उठा—"चाचीजी नहीं रहीं!"

"नहीं। दो-एक महीना हुआ, गुजर गयीं।"

देबू ने लम्बा निःश्वास छोड़ा। चाची बड़ी दुखिया थीं। हाथ-मुँह धोकर देबू ने सूटकेस से खद्दर की एक साड़ी निकाली—"यह तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

सोना का चेहरा दमक उठा। लेकिन तुरत वह चमक फीकी हो गयी। म्लान मुख से बोली, "यह तो लाल चौड़ी कोर की साड़ी है भैया!"

देबू को खयाल आया, अरे हाँ, सोना तो विधवा है। इस बात की याद ही नहीं थी उसे। जरा देर चुप रहकर बोला, "तो क्या हुआ। तुम पहनना। मैं कहता हूँ, पहनना।"

गौर ने आकर कहा, "चलिए देबू भैया, सब लोग आ गये।"

देबू बाहर निकला। सारे गाँव के लोग आये थे। देबू को देखकर सबका चेहरा खिल उठा। दुबले, भूख से सूखे हुए चेहरे पर दो आँखें जलने लगीं। जिस दिन देबू जा रहा था, उस दिन यही औरतें बुझते हुए दीये की लौ-सी थीं। प्राण की हवि के योग से आज वही आँखें फिर दमक लिये जल उठीं। उच्छ्वास, जोश, जागृति की चंचलता से वे दुबले लोग दृढ़ होकर रीढ़ सीधी किये बैठे थे! देबू अवाक् हो गया। वह यह सोचकर चला गया था कि पंचग्राम के लोगों का विनाश निश्चित है—वे लोग फिर सिर ताने खड़े हो गये, उनके गले में स्वर जागा, आँखों में दमक आयी; कलेजे में एक नयी आशा उगी।

ओसारे पर से देबू लोगों के बीच पहुँचा।

सत्ताईस

तीन साल के बाद। सन् उन्नीस सौ तैंतीस।

जिला जेल का फाटक खुल गया। सुबह का समय। सूरज नहीं उगा था, महज चारों ओर अँधेरे को मिटाकर भोर की रोशनी जाग रही थी। पूरब क्षितिज पर ज्योतिलेखा के औचक क्रम-विकास की रेखाएँ भी नहीं शुरू हुई थीं। सिर्फ चिड़ियाँ लगातार चहक रही थीं।

जेल का फाटक खुल गया। देबू बाहर निकला। कानून-भंग आन्दोलन में वह गिरफ्तार हुआ था। डेढ़ साल की सजा हुई थी। सन् तीस के जून में जिले-भर में सभा और जुलूस की मनाही का आदेश जारी हुआ था। उस आदेश को तोड़कर उसने ज़ुलूस निकाला था, सभा की थी। उसे न केवल सजा हुई थी, माथे पर चोट भी आयी थी। डेढ़ साल पूरा होने के पहले ही—गाँधी-इरविन समझौते के मुताबिक—उसके छूटने की ही बात थी। गिरफ्तार किये गये अधिकांश लोग ही छूटे, लेकिन देबू छूटते ही नजरबन्द कर लिया गया। फिर जेल में रहा। और छुटकारे का आदेश आने पर वह जेल से छूटा। गाड़ी बहुत तड़के ही जाती थी। छुटकारे का आदेश आने पर पहले दिन साँझ को देबू का मन बड़ा चंचल हो उठा था। उसने अधिकारियों से कहा था—"यदि कृपा करके ऐसा कर दें कि मैं सुबह की गाड़ी पकड़ सकूँ तो बड़ा अच्छा हो।"

अधिकारियों ने उसकी बात मान ली। स्टेशन जाने के लिए तड़के मोटर का

भी इन्तजाम कर दिया था। देबू जेल से निकलकर बाहर खड़ा हुआ। दूर पर मोटर का भोंपू सुनाई पड़ रहा था। जेल की चहारदीवारी के चारों ओर जेल के खेत। खेत के चारों तरफ ऊँचा और चौड़ा अड्डा। अड्डे पर घने ऊँचे पेड़ों की कतार। उस कतार में झाऊ के कई ऊँचे-ऊँचे पेड़ खड़े थे और सुबह की हवा में सन्-सन् कर रहे थे। तुरन्त जेल से छूटे हुए देबू को वह आवाज बड़ी रहस्यमय लगी। लगा, उन पेड़ों की चोटी पर दूर के किसी आह्वान की गूँज हो रही है। दूसरे ही क्षण उसे हँसी आयी—उसे कौन बुलाएगा?

फिर जी में हुआ, क्यों नहीं, पंचग्राम के लोगों के हृदय में वह कैसा उछाह देख आया है—सागर के ज्वार-जैसा ज्वार—उनके उन उमगे प्राणों में उसके लिए कितनी ममता है! वही लोग उसे बुला रहे हैं। गौर, जगन, हरेन, सतीश, ताराचरण, भवेश, हरीश, इरशाद, रामनारायण, अटल, दुर्गा, दुर्गा की माँ—सभी उसकी राह देख रहे हैं, सभी उसे बुला रहे हैं। सोना—सोना उसकी राह देख रही है। अब तो शायद वह मैट्रिक की परीक्षा देने की कोशिश कर रही होगी। जेल में उसे खबर भी मिली कि वह पढ़ रही है। सोना ने खुद भी उसे चिट्ठी दी है। उसकी लिखावट, उसके पत्र की भाषा से देबू को बड़ी खुशी हुई। कभी-कभी हैरत भी हुई।

इस लम्बी सजा के अरसे में भी बहुत परिवर्तन हुआ। सजा के कष्ट के बावजूद बहुतेरे नजरबन्दों के रहने के सुयोग को वह जीवन का एक आशीर्वाद मानता है। इस बीच उसने काफी पढ़ा भी। एक लम्बे अरसे के बाद खुली धरती पर खड़े होकर उसने अनुभव किया कि धरती का रंग मानो बदल गया है। सुर बदल गया है। पहले, ऐसे जेल जाने के पहले उस झाऊ के पेड़ की आवाज कानों में आने पर भी वह इस ढंग से पकड़ में नहीं आती और आती भी तो लगता कि यह उस पार की पुकार है—मयूराक्षी के किनारे बिलू और मुन्ने की पुकार है, साँझ के बाद ताड़ के पत्तों पर हवा के एक शब्द ने जिस पुकार का इशारा देकर उसे देश-देशान्तर में भटकाया था—वही पुकार!

बस आयी। देबू उसपर सवार हो गया।

बस सामने चल पड़ी। शहर के प्रान्त से प्रान्तर में लाल धूलि से भरी सड़क। सामने पूरब क्षितिज! क्षितिज पर ज्योतिलेखा—रह-रहकर रंगों की छटा का रूपान्तर! धीरे-धीरे रक्तराग घना हो रहा था। सूरज के उगने में देर न थी। देबू गाँव के ही बारे में सोच रहा था। जेल में उसने बहुत सोचा-विचारा, बहुतेरी किताबें पढ़ीं। फलस्वरूप वह एक बड़ी अच्छी योजना लिये लौट रहा था। अब वह गाँव को बड़े अच्छे ढंग से गढ़ेगा। जो उत्साह, जो जागृति, उन हड्डियों के ढाँचों में जिस महासंजीवनी का संचार वह देखकर आया, उससे वह कल्पना कर रहा था कि पंचग्राम के लोग जुलूस निकालकर चल रहे हैं। टूटे रास्तों का सुधार करके, नदी-नालों पर पुल बाँधकर, काँटे की झाड़ियों को साफ-सुथरा करके, श्मशान की

हड्डियों को हटाकर वे उन्नति की राह पर बढ़ रहे हैं।

बस स्टेशन पर रुकी।

देबू उतर पड़ा। एक छोटा-सा बक्स और हलका-सा बिछौने के सिवा और कोई सामान नहीं था। दोनों को अपने ही हाथ में लेकर उतर पड़ा।

स्टेशन का प्लेटफॉर्म उत्तर-दक्षिण है। सामने पूरब। सूरज उग रहा था। स्टेशन के प्रान्तर के उस छोर पर पास-पास कई बस्तियाँ थीं। उन बस्तियों में ढाक बज रहा था। आश्विन का महीना। पूजा का ढाक बज रहा था। प्लेटफॉर्म पर घूमते-घूमते उसे मीठी-सी खुशबू मिली! उसकी सदा की जानी-चीन्ही—हरसिंगार की खुशबू थी। उसने चारों ओर नजर दौड़ायी। प्लेटफॉर्म की रेलिंग के उस पार रेलकर्मचारियों के क्वार्टरों के पास हरसिंगार का एक बड़ा-सा पेड़ नजर आया। नीचे बेशुमार फूल बिछे थे। सवेरे की हवा में अभी भी टुपटापू फूल चू रहे थे। उसे अपने घर के सामनेवाले पेड़ की याद हो आयी। सुबह की हवा में भी उसका सर्वांग मानो कैसा तो कर उठा– आँखें स्वप्निल हो आयीं!

टिकिट की घण्टी बजी तो उसे खयाल हुआ।

टिकिट कटाकर वह फिर प्लेटफॉर्म पर खड़ा हुआ।

प्लेटफॉर्म पर धीरे-धीरे भीड़ बढ़ने लगी। यहाँ-वहाँ अपनी-अपनी गठरी-मोटरी लिये मुसाफिर कुछ बैठे थे—कुछ खड़े थे। दो-चार चीन्हे चेहरे भी नजर आये। सब शहरी लोग—कोई वकील, कोई मुख्तार, कोई व्यापारी। देबू उन्हें पहचानता था। उस युग में देबू को लगता था, ये लोग मान्य व्यक्ति हैं। इसीलिए वे उसके मन पर परिचय की एक छाप छोड़ गये थे। वे देबू को नहीं पहचानते। अचानक उसे नजर आया, कंकना के एक जमींदार बाबू भी हैं। मजे में दरी डालकर प्लेटफॉर्म पर जम गये हैं—गुड़गुड़ी से तम्बाखू पी रहे हैं। उनकी पुरानी चाल अभी भी बरकरार है। चाहे जहाँ जाएँ, गुड़गुड़ी-तम्बाखू और गंगाजल की सुराही साथ जाती है। गंगाजल छोड़कर वे दूसरा पानी नहीं पीते। उस समय गंगाजल के इस प्रेम के लिए देबू इस भलेमानस की खातिर करता था। जो भी हो, अपनी यह निष्ठा उन्होंने कायम रखी है।

"आपसे एक बात पूछूँ?"

देबू ने मुँह घुमाकर देखा—उसके पास ही सस्ते साहबी पोशाक में एक भला आदमी खड़ा है। साहबी पोशाक के बावजूद भला आदमी अधमैले धोती-कुरतावाले बंगाली बाबू-सा ही लगा। मध्यवित्त। उसने पूछा—"मुझसे कह रहे हैं?"

"जी हाँ। आपका घर क्या शिवकालीपुर है?"

"जी। क्यों?"—देबू ने समझा, वह सी.आई.डी. का आदमी है।

"आपका नाम शायद देवनाथ घोष है?"

"हाँ।"—देबू का स्वर जरा सख्त हो आया।

"जरा इधर आइएगा?"

"क्यों?"

"जरूरत है?"

"आपका परिचय पूछ सकता हूँ?"

"बेशक। मेरा नाम है जोसेफ नगेन्द्र राय। मैं ईसाई हूँ। पहले यहीं घर था। लेकिन पाँच-छह साल से आसनसोल में रह रहा हूँ। यहाँ अपने एक आत्मीय के पास आया था। आज आसनसोल वापस जा रहा हूँ। मेरी स्त्री ने कहा—'वे हमारे गुरुजी देवनाथ घोष हैं।' मैंने आपके बारे में उनसे बहुत-बहुत सुना है। आपकी सजा और नजरबन्दी के समय भी खोज-पूछ की थी। शायद आज छूटे हैं?"

देबू अवाक् हो गया। कुछ समझ नहीं सका। उसने सिर्फ 'हाँ' कहा।

"मेरी स्त्री आपसे जरा मिलना चाहती हैं।"

"आपकी स्त्री?"

"जी। आपको कृपा करके जरा चलना ही पड़ेगा। वहाँ खड़ी हैं।"

देबू ने देखा—लम्बी साँवली-सी एक औरत जूता और आधुनिक रुचि की साफ-साफ साड़ी पहने उन्हीं लोगों की तरफ ताक रही थी। बगल में उँगली पकड़े ढाई-तीन साल का लड़का। उसके मुन्ने-जैसा।

उसे देखकर देबू के मन में चौंक-सी हुई। कौन है यह? चेहरा तो चीन्हा हुआ-सा लगता है! बड़ी-बड़ी आँखों में उज्ज्वल अपलक दृष्टि, नुकीली नाक...बहुत ही पहचानी-सी! बहुत ही जानी-चीन्ही स्त्री अनपहचाने परिवेश में नये ढंग, नयी साज-सज्जा में खड़ी है, जिसमें उसका नाम और परिचय दब गया है। हैरान और थिर आँखों ताकता हुआ देबू बढ़ा जा रहा था—वह औरत भी कई कदम बढ़ आयी, शायद बहुत करीब और आमने-सामने खड़ी होने में देर उसे सही नहीं जा रही थी। हँसकर वह बोली, "मितवा!"

पद्म! लुहार-बहू! देबू के अचरज की सीमा नहीं रही। अशेष आश्चर्य से वह पद्म की ओर ताकता रह गया। वही पद्म? आँखों में अस्वस्थ जलती-सी नजर, शंकालु अपराधी-से कदम, फटे कपड़े, दुबली देह, स्वर में ऊष्मा तीखापन, बातों में रुखाई—वही लुहार-बहू?

पद्म ने फिर कहा, "मितवा! कुशल है न?"

देबू ने आपे में आकर कहा, "मितनी! तुम?"

"हाँ। पहचान नहीं सके, क्यों?"

देबू ने मान लिया, "नहीं। नहीं पहचान सका। मगर मन कह रहा था, चीन्हता हूँ; यह हँसी पहचानी-सी है, यह खिंची हुई आँखें जानी-सी, यह बनावट चीन्ही हुई—फिर भी ठीक नहीं कर पा रहा था कि कौन है!"

पद्म का चेहरा अनोखी हँसी से खिल उठा। उसने बच्चे को अपनी गोद में उठाकर कहा, "मेरा लड़का!"

पल में देबू की आँखें भर आयीं। क्यों, सो नहीं मालूम। दोनों आँखें मानो स्पर्श कातर हों—रस-भरे फल-से पद्म के उन दो शब्दों की छुअन से फट गयीं!

पद्म ने फिर कहा, "इसका नाम क्या रखा है, मालूम है?"

देबू ने पूछा, "क्या?"

"डेविड देवनाथ राय।"

"डेविड देवनाथ राय!"

बगल से नगेन्द्र राय ने कहा, "आपके नाम पर नाम रखा है। ये कहती हैं, हमारा बच्चा गुरुजी-जैसा आदमी बनेगा।"

देबू चुपचाप हँसा।

पद्म ने गाँव के लोगों की खोज-पूछ शुरू की। सबसे पहले उसने दुर्गा के बारे में पूछा।

देबू ने कहा, "अच्छी ही होगी। मैं तो आज तीन साल के बाद लौट रहा हूँ मितनी!"

पद्म ने कहा, "लक्ष्मी-पूजा के दिन दुर्गा की याद आती है। लक्ष्मी-पूजा तो अपने यहाँ होती नहीं, लेकिन हमें खेत है। नया धान होता है, तो चावल का पकवान बनाती हूँ। उस दिन याद आती है। षष्ठी के दिन याद आती है।"

देबू हँसा। खुशी से उसका हृदय मानो भर गया। पद्म का यह रूप देखकर उसकी तृप्ति की सीमा नहीं रही!"

"ऐ, मारो घण्टी...ट्रेन आती है।..."

देबू ने मुड़कर देखा, लाइन क्लियरवाला लोहे का गोल फ्रेम लिये नीला पाजामा पहने एक आदमी जा रहा है। उसे तुरत अन्नी भाई की याद आ गयी। वह किसी भी प्रकार से अपने को सँभाल नहीं सका। बोल पड़ा—"बीच में अन्नी भाई आया था मितनी।"

पद्म स्थिर दृष्टि से देबू को देखती रही।

देबू ने कहा, "कलकत्ते में मिस्त्री का काम करके वह बहुत रुपया ले आया था।"

बाधा देकर पद्म ने कहा, "उसकी बात रहने दो। अब तो मैं तुम्हारी वह लुहार-बहू नहीं हूँ।"

उसकी बात सुनकर देबू हैरान रह गया। उसकी बातचीत का ढंग बदल गया है!

पद्म बोली, "उसे अभावों, कष्टों से छुटकारा मिला, उसने सुख का मुँह देखा, सुनकर मुझे खुशी हुई। लेकिन मैं इसी में सबसे ज्यादा सुखी हूँ गुरुजी। मेरा मुन्ना, मेरा घर—गुरुजी, मैंने इन्हें बड़े कष्ट से बनाया है! पर काल?"—कहकर वह हँस उठी—"पर काल मेरे माथे पर रहे। मैंने इसी काल में स्वर्ग पाया है। मेरा मुन्ना!"—और फिर उसने बच्चे को छाती से जोरों से चिपका लिया।

ठंग-ठंग-ठनन्-नन्—गाड़ी की घण्टी बजी।

नगेन्द्र राय ने देबू का हाथ दबाकर कहा, "लेकिन मैं आज आपसे बात नहीं कर पाया!"

देबू ने कहा, "अपने बेटे के ब्याह में न्योता दीजिएगा, मैं आऊँगा।"

पद्म ने कहा, "आओगे गुरुजी?"

"क्यों नहीं आऊँगा मितनी।"

गाड़ी पर बैठकर आँखें बन्द करके वह पद्म की उस अपरूप छवि का मन-ही-मन ध्यान करने लगा। उसकी छवि अकस्मात् गायब हो गयी और सोना की याद आयी। पढ़-लिखकर सोना क्या ऐसी ही सार्थक नहीं हो उठी होगी! जरूर हुई होगी!

वह जब जंक्शन में उतरा, तो दस बज रहे थे।

शरद की साफ और चमकती धूप चारों तरफ झलमला रही थी। आसमान गहरा नीला—बीच-बीच में सफेद हलके मेघों के टुकड़े तेजी से भाग रहे थे। मयूराक्षी के किनारे से बगुलों की उजली पाँत देवलोक की फूलमाला-सी तिरती जा रही थी! प्लेटफॉर्म से मयूराक्षी का पाट दिखाई दे रहा था। नदी का पानी अब वैसा कँदोर नहीं; भरी हुई नदी में नाव उस पार से इस पार को आ रही थी। जंक्शन की कुछ चिमनियों से धुआँ उठ रहा था।

प्लेटफॉर्म से बाहर निकलकर अपने को छिपाते हुए उसने एक सूनी पगडण्डी पकड़ी। यहाँ के प्रायः सभी उसके जाने-पहचाने हैं। उस पर नजर पड़ने पर उसे सहज ही नहीं छोड़ेंगे। लोग उसे प्यार करते हैं।

वह मयूराक्षी के घाट पर उतरा। नाव इस पार आ रही थी। इस पार के घाट पर बहुतों से मुलाकात हुई। उस पार के घाट पर भी बहुतेरे लोग खड़े थे। उन्होंने भी देबू को देखा! कुछ लड़के खड़े थे। वे उसी पार से चिल्ला उठे—"देबू भैया! देबू भैया!" उनमें से दो गाँव की तरफ दौड़ पड़े। देबू ने मुसकराकर हाथ उठाते हुए इशारा किया।

नाव का मल्लाह शशी भल्ला ने मुसकराते हुए कहा, "गुरुजी! लौट आये आप?"

"हाँ, तुम अच्छे हो?"

शशी ने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा, "हमारा अच्छा रहना भी क्या है गुरुजी! किसी कदर जिन्दा हैं। अदरिस्ट (अदृष्ट) का लिखा भोग रहे हैं। और क्या!"

देबू के हृदय में खुशी की जो ज्योति थी, वह उसके बोलने के स्वर से फीकी हो गयी। अगल-बगल और भी जो लोग खड़े थे—वे भी कैसे बुझे-बुझे-से—मौन।

मामूली दो-एक बातें पूछकर चुप हो गये। लेकिन शशी के साथ-साथ लम्बा निःश्वास सबने छोड़ा।

देबू ने पूछा, "बच्चे-वच्चे सब अच्छे हैं?"

"जी हाँ। जी रहे हैं किसी तरह। सर्दी-बुखार। घर में खाने को नहीं, कपड़े नसीब नहीं। यह भादों का महीना है—समझिए कि तकलीफ की हद नहीं।"

वही पुरानी बात—"अनाज नहीं, कपड़ा नहीं! अनाहार, रोग से पंचग्राम फिर मरने-मरने को है।"

देबू ने दिलासा दिया, "अबकी बारिश अच्छी है। फसल भी अच्छी हुई है। कुछ दिनों में ही धान तैयार हो जाएगा। अभाव जाता रहेगा। चिन्ता क्या है?"

शशी एक अजीब हँसी हँसा : "चिन्ता क्या है? अब कोई भरोसा नहीं गुरुजी! सब गया!"

"देबू भाई! देबू..." बाँध पर से कोई चिल्ला उठा। देबू ने उलटकर देखा। जगन डॉक्टर उसे पुकार रहा है। सुनते ही दौड़ा आया है। नाव पर खड़े होकर हाथ उठाते हुए बोला, "जगन भाई!"

डॉक्टर चिल्ला उठा, "वन्दे मातरम्!" साथ ही सभी लड़कों ने दोहराया—"वन्दे मातरम्!"

देबू ने हँसकर कहा, "वन्दे मातरम्!"

डॉक्टर हाँफ रहा था। शायद दौड़ता ही आया था वह। देबू ने खूब समझा कि सारे गाँव के लोग कतार बाँधकर निकलते आ रहे हैं।

शिवकालीपुर के घाट पर उतरते ही डॉक्टर ने उसे छाती से लगा लिया। लड़कों के चेहरे दमकने लगे। पहले प्रणाम करने की उनमें होड़ लग गयी। मुसकराते हुए देबू ने उनके सिर पर हाथ रख-रखकर कहा, "हाँ-हाँ, चलो हो गया!"

मगर फिर भी वे माननेवाले न थे। किशोर-प्राण की आवेग-चंचलता से वे अधीर हो उठे थे। देबू के हाथ के सूटकेस और बिछौने को झपटकर उन्होंने अपने माथे पर रख लिया। कतार बाँधकर पगडण्डी पर किशोरों की सेना चली—गर्वित और उल्लास-भरे कदम बढ़ाती हुई। लेकिन तो भी देबू को इस सेना में एक अभाव खटका। कहाँ, गौर कहाँ है? सबसे आगे जिसे चलना चाहिए, वह कहाँ है? देबू ने पूछा, "डॉक्टर, गौर कहाँ है?"

"गौर?"—डॉक्टर ने कहा, "जेल से आने के बाद से वह एक तरह से यहाँ से चला ही गया है।"

"चला गया है?"

"हाँ। कलकत्ते में कहीं रहता है। बीच-बीच में आता है, दो-एक दिन रहकर चला जाता है। अभी कुछ रोज पहले तो आया था।"

"नौकरी करता है?"

"नहीं, वालण्टियरी। क्या करता है, वही जाने भैया!"

अब तक लोग बाँध पर पहुँच गये थे।

देबू ने पूछा, "और सोना? सोना कैसी है डॉक्टर? वह—वह शायद जंक्शन में ही रहती है न?"

"हाँ। उसी समय से जंक्शन में मास्टरी करती है। वहीं रहती है। बहुत ही अच्छी लड़की है। इस बार मैट्रिक देगी।"

देबू ने पीछे पलटकर जंक्शन की ओर देखा। लेकिन खड़े रहने की फुरसत नहीं थी। किशोर-सेना बढ़ी जा रही थी—रुकना नहीं चाह रही थी।...

सामने ही पंचग्राम की बैहार थी। आश्विन का आरम्भ। बारिश भी इस बार अच्छी हुई थी। फसल अच्छी थी। धान के पौधे खासे बढ़े और फैले थे। नये धान के पौधे, काले मेघ-से गाढ़े। कहीं-कहीं खेतों की मेड़ पर कसाल के माथे पर सादे-सादे फूल थे। कतिकी धान में बालियाँ फूट आयी थीं। यह रहा कंकना, वह कुसुमपुर और वह, वहाँ उसका शिवकालीपुर। वह रहा महाग्राम! महाग्राम की तरफ नजर आते ही वह जैसे चोट खाकर खड़ा हो गया। क्षण-भर के लिए उसने आँखें बन्द कर लीं। उसकी शिरा-शिरा में एक दुस्सह मार्मिक वेदना का प्रवाह बह गया। जगन ने पीछे से कहा, "देबू!"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर देबू फिर बढ़ा। कहा, "डॉक्टर!"

डॉक्टर ने कहा, "क्या हो गया भाई? रुक क्यों गये थे?"

देबू ने उसकी बात का जवाब नहीं दिया। पूछा, "न्यायरत्नजी फिर आये थे?"

डॉक्टर ने उसाँस लेकर कहा, "नहीं।" फिर जरा देर चुप रहकर बोला, "विश्वनाथ के बारे में मालूम है?"

"मालूम है। जेल में ही खबर मिली थी।"

विश्वनाथ नहीं रहा। वह जेल में ही मर गया।

कुछ देर के बाद अपने को जब्त करके देबू ने सिर उठाया। विश्वनाथ के लिए अँधेरी रातें उसने जेल के झरोखे पर खड़े होकर रो-रोकर गुजारी हैं। अब उसे रोना नहीं आता।

वह है देखुड़िया! दूर तक फैली हुई बैहार में झूमते हुए धान के सब्ज पौधे। हवा के झोंकों से उनमें लहर पर लहर उठ रही थी। लेकिन कहीं किसी आदमी की आहट नहीं। पास-पास आधे चाँद के आकार में पाँच गाँव—बुझे हुए-से स्तब्ध!

देर तक देबू चुपचाप चलता रहा। उसके बाद बोला, "तो जगन भाई, क्या हाल हैं यहाँ के?"

"अपने यहाँ के? सब मर गये, सब खत्म हो गया। अधपेटा खाते हैं और सोते हैं। बस! वह सब-कुछ नहीं रहा।"

"ऐं! कह क्या रहे हो?"

"चलो, देखना।"

वे फिर चुपचाप चलने लगे। लड़के शोरगुल कर रहे थे। देबू की वह शकल देखकर उनके कलरव का उत्साह ठण्डा पड़ गया। धान के खेतों में लबालब पानी भर दिया गया था। आश्विन का महीना–कन्याराशि। इसमें खेतों में पानी भर देना चाहिए।

खेतों में निराई चल रही थी। देबू को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सारे लोग अपरिचित हैं–सब सन्ताल हैं।

उसने पूछा, "ये लोग कहाँ से आ गये डॉक्टर?"

जगन ने कहा, "श्रीहरि और फेलू चौधरी इन्हें दुमका से ले आये हैं।"

देबू और भी हैरान होकर डॉक्टर की ओर देखने लगा।

डॉक्टर ने कहा, "ये सारे ही खेत करीब-करीब श्रीहरि और फेलू चौधरी के जबड़े में घुस गये हैं!"

देबू सन्न रह गया, "पंचग्राम तबाह हो गया!"

शिवपुर के बगल से भठे हुए चौधरी-तालाब को दाएँ छोड़ते हुए दोनों ओर बँसवारी के बीच से कालीपुर जाने का रास्ता है।

डॉक्टर ने कहा, "चौधरीजी को जिन्दगी से मुक्ति मिल गयी।"

देबू एक उदास हँसी हँसा–"हाँ, मुक्ति ही मिल गयी।"

लड़कों की जमात ने गाँव में घुसते वक्त नहीं माना। वे जय-जयकार कर उठे–"जय, देबू घोष की जय!"

गाँव की ओर से कोई दौड़ी आ रही थी।

अपनी आँखों पर से देबू को विश्वास नहीं हो रहा था! दुर्गा है? हाँ, वही तो है। क्षार से धोयी सादी कोर की धोती, निराभरण, दुबला शरीर, चेहरे पर वह कोमल कान्ति नहीं–बालों की वह सँवार भी नहीं थी। वह दुर्गा यह हो क्या गयी है!

देबू ने कहा, "दुर्गा! अरी, तू ऐसी क्या हो गयी! तेरे शरीर की यह दशा!"

दुर्गा का सब जा चुका था, लेकिन दोनों बड़ी-बड़ी आँखें रह गयी थीं। उन दोनों आँखों में तुरत पानी भर आया।

डॉक्टर ने कहा, "दुर्गा अब वह दुर्गा नहीं है। दान-ध्यान, टोले में सुख-दुःख हो तो सेवा–"

दुर्गा शरमाकर बोली, "आप रुकिए भी डॉक्टर भैया!"–उसके बाद बोली, "ओह, कितने दिनों के बाद आये जमाई!"

रास्ते से चण्डीमण्डप में श्रीहरि दिखाई पड़ा। उसके कपाल पर तिलक था। जगन ने कहा, "श्रीहरि अब बड़ा धरम-करम कर रहा है।"

अट्ठाईस

दुर्गा ने घर खोल दिया। घर-द्वार वह साफ-सुथरा रखा करती थी—फिर भी उसने बुहारकर पानी छींट दिया।

रास्ते पर खड़े होकर देबू चारों तरफ देख रहा था। सद्‌गोपों के टोले की हालत देखकर आँखों में आँसू आना चाह रहा था। हर घर में टूटन शुरू हो गयी थी। टूटे छप्परों की सूराख से बहनेवाली बरसाती जलधारा ने दीवारों को खूँख्वार जानवरों के नाखून-सा नछोर दिया था। जगह-जगह की मिट्टी धँस रही थी।

जगन ने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहा, पंचग्राम का सब खत्म हो गया।

इन कई वर्षों में कितने लोग जो मरे, इसका हिसाब एक आदमी नहीं दे सका। एक की विसुधि दूसरे ने याद दिला दी। वे लोग ऐसे मरे कि मरकर खो गये। जो जिन्दे थे, उनका शरीर दुर्बल, उस दुर्बलता पर अभाव और रोग के पीड़न की साफ छाप थी। गले की आवाज बुझी-बुझी, आँखों का सफेद हिस्सा पीला, निगाहें वेदना-भरी। उन काले-काले लोगों के रंगों पर और अधिक कालिमा आ गयी थी। जवानों तक के चमड़े में सिकुड़न की जर्जरता झलक रही थी। यही नहीं, लोग मानो गूँगे हो गये हों!

देबू को इसका कयास तक न था।

वह जिस दिन जेल जा रहा था, उस दिन के इनके मुखड़े की याद आयी।

उफ् कैसा उत्साह था! जीवन की कैसी प्रेरणामयी उमंग! उस दिन की याद से तो आज यही लगता है कि सब खत्म हो गया।

एक-एक करके बहुत से लोग आये। धीमे-धीमे कुशल-क्षेम पूछा। देबू ने जब उनका हाल पूछा तो उदास हो कष्ट की हँसी हँसते हुए कहा, "अरे, हमारा भला-बुरा क्या!"

उनकी इस बात से देबू को एक बात याद आ गयी।

सन् तीस के आन्दोलन के वक्त एक रोज इन लोगों ने उससे पूछा था, "अच्छा, यह तो कहो कि इससे होगा क्या?"

उस समय देबू को भी यह सब मालूम नहीं था, बड़ी धुँधली सी-धारणा थी। उसे अपनी ही एक अनोखी कल्पना थी, इसीलिए उसने लोगों को बड़ी आवेगमयी भाषा में बताया था। वह अनोखी कल्पना अकेली उसी की नहीं थी, पंचग्राम के सभी लोगों ने वैसी ही एक काल्पनिक अनोखी व्यवस्था की कामना की।

उस रोज देबू ने कहा था, "हमारी जो-जो भी कामनाएँ हैं, सब इसी से पूरी होंगी—सुख, स्वतन्त्रता, अन्न-वस्त्र, औषध-पथ्य, आरोग्य, स्वास्थ्य शक्ति, निर्भयता। उम्मीद की थी कि अब कोई किसी पर अत्याचार नहीं करेगा। पीड़न नहीं रहेगा, कोई आदमी अब जुल्म नहीं करेगा, लोगों के हृदय से बुरी भावनाएँ दूर हो जाएँगी,

लोगों को शान्ति मिलेगी, फुरसत मिलेगी, उस फुरसत के समय वह खुशियाँ मनाएगा–हँसेगा, गाएगा, नाचेगा–दोनों शाम देवता का स्मरण करेगा।"

लोगों ने स्तब्ध होकर वही सुना था।

एक आदमी ने कहा था, "सुनता तो सदा से यही आ रहा हूँ कि एक दिन ऐसा होगा! जैसा–सतयुग में था। बाप-दादे यही कहते आये हैं।"

और इस पर देबू ने भावुकता से कहा, "मगर अब वही होगा।"

लोगों ने उस बात पर यकीन कर लिया था। सतयुग की बात पर। सतयुग क्या उतना ही होगा! गाय-गोरू का रंग कतई सफेद होगा–ऊँचाई होगी आदमी से ज्यादा। गाएँ बेहिसाब दूध देंगी–दूध बरतन से छलकेगा और जमीन भीगेगी। सादे पहाड़-जैसे बैलों की एक ही बार की जुताई से खेती होगी। माटी की उपजाऊ शक्ति बेहद बढ़ जाएगी; हर बीये से पौधा होगा, अनाज का कोई दाना कमजोर नहीं होगा। बादल नियमित पानी देंगे। पोखरे-तालाब भरे रहेंगे। आदमी ऐसे दुबले और आकार में छोटे नहीं होंगे–वे लम्बे-तगड़े और बलवान होकर दुनिया में बेखौफ घूमा करेंगे।

लम्बे अरसे तक जेल में रहने के बाद देबू दूसरा ही आदमी बन गया है। उसकी नजर में दुनिया की सूरत बदल गयी है। उसने समझा कि इस देश के लोग मरेंगे नहीं। वे मंगल की मूर्ति होकर नया जीवन पाएँगे। चार हजार साल से बार-बार संकट आते रहे हैं–विनाश के सामने खड़ा होना पड़ा है; उस संकट, उस ध्वंस की सम्भावना जाती रही है। लोग नये जीवन से जाग पड़े हैं। इन बातों को याद करके इनमें सिर्फ बाप-दादों की ही नहीं, युग-युग के मानवीय इतिहास के साथ उसके नये मन की कल्पना-कामना में एक अनोखे सादृश्य का उसने प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया। न केवल यही, बल्कि मनुष्य की जीवन-शक्ति में उसने अमरता का पता पाया है! अमर हो तो! मनुष्य की छाती पर दिन-दिन मनुष्य के अन्याय का बोझा चढ़ता चला जा रहा है, वह बोझा विन्ध्य पहाड़-सा बढ़ता जा रहा है–लोग बेदम हो रहे हैं। मगर ये आदमी भी कैसे अजीब हैं, अजीब है उनकी सहन-शक्ति कि बेदम होते हुए भी वे चुपचाप उस बोझा को ढोते चल रहे हैं। अद्भुत है उनकी आशा, अद्भुत है उनका विश्वास! वह आज भी वही कह रहा है, दिन गिन रहा है–कब वह दिन आएगा! आदमी–यहाँ के आदमी मरेंगे नहीं। वे रहेंगे। जब तक यह चाँद-सूरज है!....

रामनारायण यूनियन बोर्ड के प्रायमरी स्कूल का शिक्षक है। देबू की पाठशाला उठ जाने के बाद से वही यहाँ का शिक्षक है। देबू का जाति-भाई है। उसने आकर मुसकराते हुए पूछा, "अच्छे हो देबू भाई?"

उसे देखते ही देबू को इरशाद की याद आयी, "वह कैसा है? इरशाद भाई! कैसा है वह? यहीं है न?"

"हाँ! पाठशाला छोड़कर वह मुख्तारी पढ़ता है और किसान-समिति बनाये हुए है।"

"अच्छा! इरशाद किसान-समिति बनाये हुए है! उसके भी दिमाग में कीड़ा घुसा है?"

"हाँ दौलत शेख ने लीग शुरू की है, तो इरशाद ने किसान-समिति।"

"लगता है, ससुराल से इरशाद का झगड़ा निबटा नहीं?" देबू हँसा।

"नहीं। लेकिन उसने फिर से शादी की है।"

"शादी करने के बाद भी वह किसान-समिति कर रहा है?"—देबू फिर हँसा।

लेकिन मजाक को समझ नहीं सका। बोला, "सो तो मैं नहीं जानता भाई!"—इतना कहकर वह दूसरे प्रसंग पर आ गया—कहा, "लेकिन रहम चाचा फाँसी लगाकर मर गया देबू भाई!"

देबू चौंक उठा,"फाँसी लगाकर मर गया?"

रामनारायण बोला,"क्षोभ से उसने गले में रस्सी लगा ली। बाबुओं ने उसकी वह जमीन नीलाम कर ली। उसी क्षोभ से—" रामनारायण ने अपनी गरदन उलट ली।

देबू को काठ-सा मार गया। रहम चाचा ने फाँसी लगा ली!

जगन ने आकर कहा, "खाना रेडी है देबू भाई, नहा लो। सब कोई जाओ अभी, अब शाम को।..."

दोपहर को देबू अकेला बैठा सोच रहा था।

सामने के उस हरसिंगार पेड़ की तरफ देखते हुए सोच रहा था। बिखरी-बिखरी बातें। पेड़ के नीचे झरे, धूप से मलीन हुए फूलों की एक भीनी-सी, बड़ी ही करुण गन्ध आ रही थी। शरद् की दोपहरी की धूप झलमला रही थी। पूजा आसन्न है। कमजोर शरीर लिये भी लोग-बाग अपने-अपने घरों की मरम्मत में लग गये हैं। वर्षा के पानी से दीवारों पर जो दाग आ गये हैं, उन्हें गोबर-माटी से लीप रहे हैं। जगन ने देबू से कहा था—सब खत्म हो गया। लेकिन नहीं। लोग जी रहे हैं—जिन्दा हैं। जिन्दा रहना चाहते हैं। ये मरेंगे नहीं। ये सुख चाहते हैं, स्वच्छन्दता चाहते हैं। घर-द्वार चाहते हैं—और भी बहुत-कुछ चाहते हैं। सुख, शान्ति, स्वच्छन्दता परिपूर्ण नया जीवन चाहते हैं। खुद न पा सकें, तो बेटे-पोते को छोड़ जाना चाहते हैं—वे पाएँगे।

हवा का एक झोंका उधर हरसिंगार के पेड़ को झकझोर गया। जो झरे हुए फूल पेड़ पर अटके थे, चू पड़े।

देबू ने गौर नहीं किया। वह सोच रहा था, सभी रहेंगे, एक वही मरेगा। उसकी जिन्दगी में तो यह सब आने से रहा। और बाल-बच्चों में भी वह नहीं रहने का। उसका सारा-कुछ तो उसी के साथ खत्म हो जाएगा!

इसी वक्त उसे हरसिंगार की महक मिली। चौंककर उसने चारों तरफ देखा।

लगा, जैसे बिलू के बदन की महक आयी। लेकिन दूसरे ही क्षण समझ गया, नहीं। हरसिंगार की ही महक है!

मगर गजब यह कि बिलू का चेहरा ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा था। याद करते ही—कोड़ा खाये घोड़े की तरह सारा हृदय चौंक उठा।

हाय रे आदमी!

ओसारे पर से वह प्रायः कूदकर उतर पड़ा और चलना शुरू कर दिया। अचानक ठिठक गया। फिर हरसिंगार के पास आया। कुछ फूल चुने और चलने लगा।

तीन साल हो गये, बिलू और मुन्ने की चिता पर वह नहीं जा सका है। फूल हाथ में लिये वह मरघट की तरफ चल पड़ा।

दोपहर-भर चिता के पास बैठा रहा।

तीरथ में जाने से पहले उसने बिलू और मुन्ना की चिता को बँधवा दिया था। लगातार मयूराक्षी की माटी पड़ते-पड़ते वह चिता जाने कहाँ गुम गयी थी। पाँच-सात जगह कोड़ने के बाद आखिर उसे खोज निकाला। धोती का छोर मयूराक्षी में भिगोकर उसे पोंछा, साफ-सुथरा किया। लेकिन बार-बार पोंछकर उसे मन-मुताबिक नहीं चमका सका। लाचार थककर उसने उसपर उन फूलों को सजा दिया।

बड़ी देर तक बैठने के बाद वह हँसा। हरसिंगार के उन फूलों से ही उसकी तुलना चल सकती है। अब तक एकाग्र ध्यान करने के बावजूद वह बिलू और मुन्ने को स्पष्ट रूप से याद नहीं कर सका। खयाल आया—"न्यायरत्न ने कहा था, अपने बेटे शशिशेखर को वे भी नहीं याद कर सकते थे। कहा भी था कि शशिशेखर उनके अन्दर उन्हीं चीजों में जिन्दा है, जो वह दे गया है। बिलू-मुन्ना भी उसमें ठीक उसी तरह से हैं। उनके रूप खो गये हैं। एकाएक याद हो आते हैं और फौरन गायब हो जाते हैं। अँधेरी रात में मरघट की हवा से उनकी अशरीरी आत्मा की हरकत का अनुमान करके शिराएँ शून्य और बेबस हो आती हैं !"—देबू हँसा।

बेला झुक आयी। वह बस्ती को लौटा।

उसके ओसारे पर गाँव के लोग आकर बैठे थे। कोई जोशीली चर्चा चल रही थी। इरशाद भी आया था। जगन भी आकर बैठा था। देबू आकर खड़ा हुआ।

इरशाद ने उसे जकड़ लिया, "आह, देबू भाई! कितने दिनों के बाद!" गरम-गरम बहस चल रही थी नवीनकृष्ण की जोत की नीलामी पर। रामनारायण कह रहा था, "नये कानून से भी डिग्री रद्द नहीं होगी।"

प्रजा के अधिकार सम्बन्धी नये कानून की आलोचना हो रही थी। नवीन जोश में आकर कह रहा था—"क्यों नहीं रद्द होगी, जरूर होगी।"

जगन ध्यान से डिग्री को पढ़ रहा था। देबू को देखकर उस फैसले के कागज को रखकर बोला, "यहाँ भी किसान-समिति कायम की जाए देबू भाई!"

इरशाद उत्साहित हो उठा। देबू ने कहा,"ठीक तो है। कल ही करो।"

उसका मन मानो ऐसा ही कुछ चाह रहा था। जगन फौरन कागज-कलम लेकर बैठ गया। ऐन वक्त पर चीखता हुआ घोषाल आ पहुँचा—"ब्रदर, तुम्हारी ही राह देख रहा था। मेरी तो कोई सुनता नहीं। अब जुट ही पड़ना है।"

जगन ने कहा, "तुम रुको भी घोषाल!"

देबू ने हँसकर कहा, "माजरा क्या है?"

घोषाल ने कहा, "सार्वजनीन दुर्गापूजा जंक्शन में होती है। मैं कब से कह रहा हूँ। अबकी उस पर पड़ जाना है।"

देबू ने कहा, "हर्ज क्या है। हो?"

घोषाल तुरत कागज-कलम लेकर बैठ गया।

शाम से पहले बाउरी और मोची लोग पुहँचे। मिल से काम करके लौटे थे। लौटते ही उन्हें देबू के आने की खबर मिली। और वे सुनते ही आये। उन सबका नेता वही सतीश था। वह भी आजकल मिल में ही काम करता है। खेती भी है। खेती के दिनों खेती करता है। मिल में मजदूरी मिली थी। इसलिए सबने शराब पी थी। सतीश ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। कहा, "आप लौट आये। जी जुड़ा गया।"

अटल ने कहा, "एक बार हमारे टोले में चरण रखना पड़ेगा।"

"क्यों? क्या बात है?"

"गीत होगा।"

"काहे का गीत।"

"हम लोगों का गीत?"

लिहाजा चरण रखना ही पड़ेगा।

देबू ने हँसकर इरशाद और जगन से कहा, "चलो, इनका गीत सुन आएँ।"

वे लोग कुछ बुरे नहीं थे। मिल में काम करते, खाने की खास तकलीफ नहीं। वेश-भूषा में गरीबी होते हुए भी शहरी छाप है। लेकिन घर-द्वार की हालत अच्छी नहीं। जाने कैसी एक श्रीहीनता है। जाते-जाते देबू ने पूछा, "ये घर गिर कैसे गये सतीश?"

सतीश ने कहा, "जोगी, कुंजो, शम्भू—ये लोग साहबगंज चले गये। कहते गये—रहने दो। जब लौटेंगे तो फिर से बना लेंगे।"

उधर ढोल बजने लगा। सतीश गाने लगा—

> देबू घोष गुरुजी ने दिखलाया खूब मजा,
> हुकुम किया जारी, शराब पीने से कड़ी सजा!

देबू ने कहा, "सतीश, दूसरा गीत गाओ, यह गीत नहीं सुनूँगा।"

"क्यों गुरुजी?"

"हाँ। दूसरा गीत गाओ—फुल्लरा का बारहमासा।"

गीत की महफिल काफी रात हुए टूटी।

देबू इरशाद को वहाँ से रुखसत करके ही लौटा। जगन को कहाँ से बुलाहट आयी, वह बीच में ही उठकर चला गया था। बाउरी टोले के बाद थोड़ी-सी खुली जगह मिलती है। शरद घने नील आसमान में पूरब की ओर से थोड़ी-सी छटा पड़ रही थी प्रकाश की। अँधेरिया पाख की सातवीं का चाँद उग रहा था। देबू रुक गया। घर लौटने की खास गरज नहीं। आज इस जून के भोजन की व्यवस्था करना भी भूल गया था। दुर्गा को भी शायद याद नहीं रहा। होता तो अब तक वह निश्चय से तकाजा करती! आजकल वह और ही तरह की हो गयी है। और फिर कमजोर भी है। हो सकता है—उसे बुखार आ गया हो बिस्तर से उठ न सकी हो।

दूर पर ताँबे-जैसी चाँदनी में पंचग्राम की बैहार किसी नर्म काली चीज-सी दिखाई पड़ रही थी। बाँध पर के खड़े पेड़ भी काले-काले लग रहे थे। सरपत की घनी झाड़ियाँ बाँध पर काली दीवार-जैसी नजर आ रही थीं। वह रही उस अर्जुन के पेड़ के नीचे मरघट। आज ही वह वहाँ बिलू और मुन्ने की चिता पर फूल बिखेर आया है। अजीब है, उनकी कमी है। वही खो गये हैं! ऐसे ही वक्त खाने की याद आती है—घर लौटकर खाएगा क्या, इसका भी ठिकाना नहीं। पहले तो हँसी आयी। उसके बाद ख़याल आया, बिलू रही होती तो पका-चुकाकर उसका इन्तजार करती होती। लम्बी उसाँस ली उसने!

फिर चलने लगा।

उसने सोच लिया था, फिर से पाठशाला चलाएगा। लड़कों को पढ़ाएगा-लिखाएगा। उनसे वेतन लिया करेगा! विनिमय। सेवा नहीं, दान नहीं। लेन-देन पढ़ाने-लिखाने में वह उन्हें जीवन के भरोसे की बात जता-बता जाएगा। बता जाएगा, समझा जाएगा कि तुम लोग आदमी हो, तुम लोग मरोगे नहीं। मनुष्य मरता नहीं है। वह जीते-जी दुःख-कष्ट का बोझा ढोता चल रहा है—पीठ धनुष की तरह झुक गयी है, लगता है, कलेजे में हृत्पिण्ड फटा जा रहा है—फिर भी वह उस अच्छे दिन की आशा में चला जा रहा है। उस दिन मनुष्य का जो वाजिब पावना है, वह पावना तुम लोग पाओगे। सुख, स्वच्छन्दता, अन्न, वस्त्र, औषध-पथ्य, आरोग्य-अभय—यह सब तुम्हारा पावना है। मैंने जो सीखा है, सो सुन लो—मैं किसी से बड़ा नहीं हूँ, किसी से छोटा नहीं। न तो किसी को वंचित करने का अधिकार मुझे है, न मुझको वंचित करने का किसी दूसरे को।...मनुष्य की चरम कामना की वह मुक्ति एक दिन जरूर *आएगी*। उसी दिन की ओर निहारते हुए आदमी दुर्वह बोझा ढोता चला जा रहा है। अपनी वंश-परम्परा को जतन से रखता, पालता चला जा रहा है। उसे विश्वास

है, वह दिन आकर ही रहेगा और जिस समय वह आएगा, उस समय पंचग्राम के जीवन में ज्वार आएगा! वह फिर फूलकर गरज उठेगा! पंचग्राम ही नहीं, पंचग्राम से सप्तग्राम, सप्तग्राम से नवग्राम, नवग्राम से विंशति, पंचविंशति ग्राम, शत और सहस्र ग्राम में जीवन का कलरव जागेगा! शायद हो कि उस दिन देबू न रहे, अपने वंशानुक्रम में भी वह नहीं रहेगा!

चलते-चलते वह फिर ठिठक गया। उसके मन की इस अवस्था का मानो सहसा ही एक रूपान्तर हो गया। सर्वांग की शिराओं में एक आवेग का संचार हुआ। पागल हो गया वह? जीवन की सारी अवसन्नता एक पल में किस चीज ने खत्म कर दी? यह मधुर संजीवनी गन्ध है क्या? हवा के झोंके से उड़कर आयी हरसिंगार की महक ने उसका कलेजा भर दिया। वह इसे समझ नहीं पाया था। औचक ही अभिभूत हो गया था। उस महक में मानो कुछ है। कम-से-कम उसके लिए है। उसका सारा शरीर सिहर उठा, सर्दी खाये हुए की तरह बदन में रोमांच जागा। मन्त्रमुग्ध की नाई वह उस गन्ध का अनुसरण करता हुआ अपने घर के सामनेवाले हरसिंगार के पास जा खड़ा हुआ। देखा, टुपटाप करके एक-एक फूल डाल से जमीन पर गिर रहा है। पंखड़ियों में अभी भी बाँकपन है। फूल ही रहा है। अभी-अभी फूली शेफाली की महक में वह खोया खड़ा रहा। मन में एक के बाद दूसरी—कितनी ही छवियाँ जागीं! हृदय मचलने लगा!

"कौन? कौन है वहाँ?"—नारी-कण्ठ ने पूछा।

उसी विभोरता में देबू ने कहा, "मैं हूँ।"

देबू के ओसारे एक औरत उतर आयी। चाँदनी में सफेद कपड़ों में वह अजीब लग रही थी—कोई अशरीरी हो जैसे। वह कौन निकली घर से? बिलू? नहीं। इस डाँवाडोल हालत में भी उसे एक दिन के धोखे की बात याद आ गयी।

"बाप रे! साँझ से ही आकर बैठी हूँ"—कहते-कहते वह देबू के बिलकुल करीब आकर खड़ी हो गयी। वह कुछ और भी कहने जा रही थी—लेकिन कह नहीं सकी। देबू ने झुककर उसे देखा। वह औरत हैरान हो गयी। सचमुच में ही क्या देबू उसे पहचान नहीं सका? दूसरे ही दम उसकी ठोढ़ी पकड़कर उसने उसके मुँह को खिली चाँदनी की ओर उठाया। यही तो—यही तो वह नवजीवन है। वह मानो इसी को चाह रहा था! समझ नहीं पा रहा था!

उस औरत ने कहा, "मुझे पहचान नहीं रहे हैं? मैं सोना हूँ।"

"सोना?"

सोना चकित रह गयी थी। बोली, "हाँ।" और फिर उसने झुककर देबू को प्रणाम किया। बोली, "तीसरे पहर खबर मिली। शाम को आयी हूँ। आप तो जंक्शन से ही आये। खबर नहीं भिजवायी?"

देबू ने कोई जवाब नहीं दिया। वह एक अजीब ही दृष्टि से उसे देख रहा

था। सोना! तीन साल में यह कैसा परिपूर्ण रूप लेकर आज उसके सामने खड़ी हुई है?

शरद् की लबालब मयूराक्षी-जैसी! चेहरे पर, आँखों में ज्ञान की दमक, अंग-अंग में तरुण स्वस्थता की निर्दोष पुष्टि, गोरे रंग पर लहू के उच्छ्वास की आभा। एक क्षण के लिए उसे पद्म की याद आ गयी।

सोना ने आवाज दी, "देबू भैया!"

"कहो सोना।"

"चलिए, अन्दर चलिए। रसोई किये बैठी हूँ। जाने कितनी बार दुर्गा से बुलाने के लिए कहा। वह हरगिज नहीं गयी।"

"तुम मेरे लिए रसोई किये बैठी हो?"—अवाक् हो गया वह।

"हाँ। आयी तो देखा, रसोई-वसोई का कोई इन्तजाम नहीं है। आप भी खूब हैं!"—देबू एकटक उसे देख रहा था।

पद्म से सोना का अन्तर है। पद्म में उल्लास की उमंग है, सोना में नहीं। उसे देखते हुए उसकी पलकें गिर नहीं रही थीं।

सोना ने फिर पुकारा, "देबू भैया, आप ऐसे ताक क्यों रहे हैं?"

गाढ़े स्नेह और सम्भ्रम के साथ हाथ बढ़ाकर उसने सोना का हाथ पकड़ा। कहा, "तुमसे मुझे बहुत-कुछ कहना है सोना!"

उसके स्पर्श से सोना काँप उठी। ज्वर के उत्ताप से जलते आदमी की तरह देबू का हाथ गरम था। सोना ने अपना हाथ खींच लेने की कोशिश की—देबू की मुट्ठी और भी सख्त हो उठी। गाढ़े स्वर में देबू ने कहा, "डर रही हो सोना? तुम्हें डर लग रहा है?"

"देबू भैया!"—निरी विह्वल-सी सोना ने निरर्थक उत्तर दिया।

"डरो मत।—आखिर तुम किसान के घर की 'काला अक्षर भैंस बराबर' लड़की नहीं हो! डरो मत। यह पल बीत जाने से शायद मेरा कहना हो नहीं पाएगा। सोना, मैंने आज समझा है कि मैंने तुम्हें प्यार किया है।"

सोना काँप रही थी। वह देबू को ही पकड़कर किसी तरह खड़ी रही।

क्षण के पखनेवाले डैने फैलाये रात जा रही थी। आसमान में ग्रह-नक्षत्रों की जगहें बदल रही थीं। कृष्णपक्ष की सप्तमी के चाँद ने अपना पहला पहर पार करके दूसरा पहर भी थोड़ा-सा पार किया। ध्रुवतारा को केन्द्र में रखकर सतभैया का घूमना समाप्त हो चला। चाँदनी की ज्योति से आलोकित आकाश में व्योम-प्रवाही नदी-जैसा एक छोर से दूसरे छोर तक फैला छायापथ! सफेद झाग की ढेरी-सा वह नीहारिका पुंज। क्षण-क्षण उनमें परिवर्तन हो रहा था। आँखों से देखकर समझ में नहीं आता।

देबू को जो कहना था सोना से कहता चला जा रहा था। अपनी बात, पंचग्राम की बात, भविष्य की योजना। वही पुरानी बात। नये युग का आमन्त्रण नयी भंगी

से; नयी भाषा, नयी आशा से, नये परिवेश में। सुख-स्वच्छन्दता-भरी धर्म की गिरस्ती–

देबू ने कहा, "मेरी-तुम्हारी उस गिरस्ती में समानाधिकार होगा। पति प्रभु नहीं, पत्नी दासी नहीं–कर्म के पथ पर दोनों एक-दूसरे से कन्धा मिलाकर चलेंगे। तुम यहाँ की लड़कियों; बच्चों को पढ़ाओगी, मैं पढ़ाऊँगा लड़कों को, युवकों को। तुम्हारी और मेरी, दोनों की कमाई से हमारी धर्म की गिरस्ती चलेगी।"

दुर्गा उन दोनों के पास ही बैठी थी, सब सुनकर अवाक् रह गयी वह।

उन्हीं का नहीं केवल, पंचग्राम का प्रत्येक घर न्याय का होगा; सुख-स्वच्छन्दता से भरा, अभाव नहीं, अभियोग नहीं–अन्न-वस्त्र, औषधि-पथ्य, स्वास्थ्य-शक्ति, साहस-अभय से उज्ज्वल, भरा-पूरा। आनन्द से मुखर, शान्ति से स्निग्ध। देश में भूखा कोई नहीं रहेगा–भोजन और औषधि से पंचग्राम शक्तिशाली और नीरोग होगा। मनुष्य स्वस्थ-सबल होगा। ऐसी चौड़ी होगी छाती, अदम्य साहस से निभंय चला-फिरा करेगा। नये सिरे से घर बनाएगा। राह-घाट बनाएगा। झकमकाते घर मुक्त प्रकाश से उज्ज्वल होंगे, मुक्त हवा से निर्मल और स्निग्ध होंगे। सुन्दर, चौड़ी, समतल सड़कें घर के सामने से बैहार होती दूर-दूर तक चली जाएँगी–शिवकालीपुर से देखुड़िया, देखुड़िया से महाग्राम, महाग्राम से कुसुमपुर, कुसुमपुर से कंकना, कंकना से मयूराक्षी पार होकर जंक्शन! ग्राम से ग्रामान्तर, देश से देशान्तर। उसी रास्ते से चलेंगे पंचग्राम के लोग–यहाँ की अन्न-लदी गाड़ियाँ देशान्तर जाएँगी!...

सोना अपलक आँखों देबू की ओर देखती हुई चुपचाप सुन रही थी। शर्म नहीं, संकोच नहीं। चेहरा जरा लाल हो उठा था सिर्फ! दुर्गा सारी बातें समझ नहीं रही थी, फिर भी एक आवेग से उसका कलेजा भर उठता था। आँखों से आँसू बहने लगा था।

देबू ने कहा, "उस दिन सवेरे से धन्य होंगे लोग। सजल आँखें ऊपर उठाये पुरखों को याद करेंगे। हमारी सन्तान हमें याद करेगी–उन्हीं की आँखों हम उस दिन के सूर्योदय को देखेंगे।"

दुर्गा हठात् पूछ बैठी, उससे रहा नहीं गया–"जमाई!"

देबू ने उसकी ओर देखकर पूछा, "बोल कुछ कहना चाहती है?"

दुर्गा-जैसी प्रगल्भ औरत भी कहना चाहते हुए नहीं कह पा रही थी। आखिर भरोसा पाकर बोली, "हम-जैसे पापियों का क्या होगा? हम नरक में जाएँगे?"

देबू ने हँसकर कहा, "नहीं, नरक अब नहीं रहेगा दुर्गा। सब स्वर्ग हो जाएगा। छोटा-बड़ा का छोटा नहीं रहेगा, छूत-अछूत का अछूत नहीं रहेगा, भला-बुरा का बुरा नहीं रहेगा–"

"ऐसा भी होता है? कह क्या रहे हो?"

"ठीक ही कह रहा हूँ, ठीक। मनुष्य चार युग से तपस्या कर रहे हैं इसी नये

युग के लिए। इसी उम्मीद के नियम से रात के बाद दिन आता है। दिन के बाद महीना, महीने के बाद बरस और फिर बरस पर बरस गुजर जाता है! मनुष्य वही उम्मीद लिये बैठा है। उस दिन को आना ही पड़ेगा।"

दुर्गा ने मन-ही-मन कहा, "उस दिन जिसमें मैं तुम्हें पाऊँ जमाई! बिलू दीदी को मुक्ति मिली, मैं जानती हूँ। सोना भी जिसमें उस दिन मुक्ति पाये--नारायण की दासी बने। मैं मर्त्य में आऊँगी, तुम्हारे लिए आऊँगी--तुम आना। मेरे लिए एक जनम के लिए आना! तुम्हारी बात का मैं विश्वास नहीं करती, महज इसीलिए करती हूँ--तुम्हें पाने के लिए!"

कृष्ण सप्तमी का चाँद बीच आसमान पर पहुँच रहा था। उसका पाण्डुर वर्ण बुझता आ रहा था। रात बीतने में देर नहीं थी।

क्वार की शुरुआत में खेतिहरों को काम बहुत रहता है। निराई का काम। कुछ धान पके हैं, काटना है। सुबह-सुबह ही वे खेतों को जाएँगे। औरतें घर-द्वार में गोबर के छींटे दे रही थीं। घरों को झाड़-पोंछकर चूना पोता हुआ-सा साफ-सुथरा करना है, आलपना आँकना है। पूजा के लिए मुरमुरे भूँजना है, लड्डू बनाना है--बहुत-बहुत काम है। तीज-त्योहारों पर इसी तरह से घर को लीप-पोतकर, आलपना आँककर श्रीसम्पन्न करना होता है। महापूजा आ रही है। मयूराक्षी के उस पार मिलों के एक साथ दस-बारह भोंपू बज रहे थे। सतीश के टोले में हलचल-सी हो रही थी--मिल जाने की तैयारी! कितना काम! कितना काम!! कितना काम!!! पेड़ों पर चिड़ियाँ चहक उठीं। आसमान की ओर देखकर दुर्गा ने कहा, "सवेरा हो गया? चलूँ मैं, घर-द्वार में पानी के छींटे दूँ।" सोना उठी। गले में अँचरा डालकर उसने देबू को प्रणाम किया। बोली, "तुम आकर मुझे लिवा आना। जिस दिन लाओगे, मैं आऊँगी।" दुर्गा की आँखों से पानी की दो धाराएँ बह चलीं--होठों के किनारे-किनारे जाग पड़ी हँसी की रेखा!

अँधेरे को मिटाकर सूरज उगने लगा। क्षण, पल, प्रहर, दिन, रात की राह से सवेरा उम्मीदों के उस सवेरे की ओर चल पड़ा।

□□□